महामति प्राणनाथ

जागनी संचयन

(1974 - 1990)



महामति प्राणनाथ तिरोधान त्रिशताब्दी

1694 - 1994

Recd on 4/3/85

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महामति प्राणनाथ
जागनी संचयन

विश्वधर्म सद्भाव को समर्पित शोधग्रंथ

वर्ष 1994-95 अंक 20-21

विश्वधर्म प्रेरक विजयाभिनंद बुध

महामति प्राणनाथ

की

तिरोधान त्रिशताब्दी पर

प्रकाशित

श्रीमती विमला मेहता
संयोजिका

डॉ. रणजीत साहा
मानसेवी सम्पादक

श्री प्राणनाथ मिशन
72, सिद्धार्थ एन्कलेव
रिंग रोड, नयी दिल्ली 110 014

महामति प्राणनाथ : जागनी संचयन

जागनी में प्रकाशित लेखों से चयन

विक्रमी संवत् 2051-52
बुधजी का साका 316-17

प्रकाशक
श्री प्राणनाथ मिशन
72, सिद्धार्थ एन्कलेव
रिंग रोड, नयी दिल्ली 110 014
दूरभाष 6845230

सम्पर्क
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर,
हक़ीकत नगर
माल रोड, दिल्ली 110 007

मूल्य - 100

मुद्रक
गोल्डन प्रिन्टर्स
61, म्युनिसिपल मार्किट, कनॉट सर्कस
नयी दिल्ली 110 001

MAHAMATI PRANNATH : JAGNI SANCHAYAN - 1994-95, Vol. 20-21
An anthology of selected papers printed in *Jagni*
Hony. Editior : Dr. Ranjit Saha

आभार

पिछले कई वर्षों से जागनी शोध पत्रिका के विद्वान लेखक और विचारक महामति प्राणनाथ जी की वाणी के गुह्य रहस्यों का उद्‌घाटन कर पाठक वर्ग की ज्ञान पिपासा को शान्त करके उन्हें प्रबुद्ध बना रहे हैं। महामति वाणी के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ अन्य संत वाणियों को भी इन लेखों में समेटने का प्रयास किया गया है। समाज, देश, धर्म-सम्प्रदायों एवं विश्व की अनेक समस्याओं को सुलझाने के उपायों का संकेत भी जागनी के माध्यम से दिया जा रहा है।

यह वर्ष (1994) महामति प्राणनाथ (1618-1694) तिरोधान त्रिशती का वर्ष है। देश विदेश में कई सभाओं-संगोष्ठियों द्वारा महामति को श्रद्धांजलि दी जा रही है। यह दिवस 'कुलजम स्वरूप साहब' के गुरु-भाव से गादी पर विराजमान करने का भी है। जागनी में प्रकाशित विशिष्ट व्यक्तियों के संदेशों, श्रद्धांजलियों एवं लेखों का संकलन एक 'पुष्पहार' की भाँति महामति प्राणनाथ को समर्पित किया जा रहा है।

मुझे प्रसन्नता है कि 'जागनी' में प्रकाशित लेखों तथा श्री प्राणनाथ मिशन द्वारा आयोजित महामति प्राणनाथ जयन्ती के दौरान भारत के शीर्षस्थ पद पर विराजमान वर्तमान राष्ट्रपति तथा भूतपूर्व राष्ट्रपतियों के संदेशों से इस संचयन को समृद्ध किया जा रहा है। इनके अलावा कई ऐसी विभूतियों के भी लेख एवं संदेश इसमें संकलित हैं जो समय-समय पर हमारे पाठक समाज में प्रेरणा का संचालन करते रहे हैं-हम इन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

महामति वाणी प्रकाशन के संयोजकों के मन में सदैव यह बात रही है कि एक ऐसा ग्रंथ प्रकाशित हो जिसमें उनकी वाणी के विभिन्न पहलुओं पर विद्वानों के लेख हों-यह संचयन उस उद्देश्य को भी एक सीमा तक पूरा करेगा। यह अंक विज्ञजनों एवं लेखकों को श्री प्राणनाथ वाणी में गहरे उतरने और उन्हें शब्द श्रद्धांजलि देने के लिये अवश्य प्रेरणा देगा। आप सब विद्वान लेखक हमारी शुभकामनाएँ एवं धन्यवाद स्वीकार करें।

प्रणाम !

कैलाशचन्द्र अग्रवाल
अध्यक्ष, श्री प्राणनाथ मिशन

2, नज़ीर वाड़ी
जूहू रोड, बम्बई

कर्म गति

तप-दान तीर्थ नियम संयम नित्य कर्म हैं। जन्म-मुण्डन, विवाह आदि नैमितिक कर्म हैं। प्रायश्चितादि—वेदों का अध्ययन मनन सब काम्य कर्म है—इनसे संकल्प सिद्धि होती है। जिस कामना और गुण के वशीभूत होकर कर्म किया जाता है, उसमें सफलता प्राप्त होती है। यज्ञादि सकाम कर्म और साधनाएं करने वालों की पुण्य के प्रताप से स्वर्गादि देवलोकों में गति होती है। परन्तु यह सब देवलोक प्रलय में नष्ट होने वाले हैं। यहाँ चिरकाल तक सुख है—अनन्त काल तक नहीं। जिस प्राणी के सभी कर्म कामना रहित हो गये हैं, जिसने संचित कर्मों को ज्ञान रूपी अग्नि से भस्म कर दिया है, ज्ञानी लोग उसे ही पंडित कहते हैं। आशा रहित कर्म करने वाले मन, इन्द्रियवशी (त्यागी) सर्व परिग्रह से रहित अर्थात विषय भोग की इच्छा रूप अंकुर जिसका नष्ट हो चुका है केवल शरीर की रक्षा मात्र के अर्थ कर्म करने वाले प्राणी, पाप के भागी नहीं बनते। उनके शरीर का पात होता है तो उत्तम धाम में उन्हें गति मिलती है।

हिंसादि क्रूर एवं घोर कर्म करने वाले असुर हैं। अनेक कष्टकर साधनाओं को करने वाले लोग, शरीर में जीव रूप से स्थित ईश्वर को ही दुःख देते है। श्रद्धा रहित यज्ञादि को करने वाले लोग तामस प्रवृति के कहे जाते है। दूसरे को कष्ट देने के लिये किया गया तप तामस कहा जाता है; वे लोग तामसी योनि को प्राप्त होते है। प्राणीमात्र से द्रोह-मद्यपान, चोरी, हिंसा, परस्त्रीगमन, जुवा खेलना निषिद्ध कर्म कहे गये हैं। ऐसे कर्म करने वालों को नीच योनियों के कर्मानुसार सुख दुख भोगना, जन्म मरण लेना ही पड़ता है

परम हंस श्री कृष्ण चिताचार्य

दो शब्द

महामति प्राणनाथ के समन्वयी दर्शन एवं प्रेरणादायी व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने के लिये पिछले दो दशक से 'जागनी' वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। जागनी के माध्यम से हम इतिहास के भूले-बिसरे किन्तु कालजयी पक्ष को उजागर करने का प्रयास करते हैं। समाज की विसंगतियाँ, मानवों में अशान्ति, वैमनस्य एवं धर्म शास्त्रों के प्रति उन्हें न समझने के कारण जो उपेक्षा या फिर कलह का वातावरण बन रहा है, उसे दूर करने के प्रति हमारा यह अल्प ही सही, विशिष्ट योगदान है।

महामति के विशाल 'कुलजम' ग्रंथ में संसार के लगभग सभी धर्म ग्रन्थों की सार भूत बातों का समावेश हुआ है। धर्मों के मूलभूत तत्त्वों में एकता का शास्त्रीय ढंग से प्रतिपादन करते हुए उन्होंने अपने धर्म चिन्तन को 'विश्व धर्म' का रूप प्रदान किया है ; धर्म का वह रूप जिसे प्रत्येक धर्म को माननेवाला अपने धर्म का वास्तविक रूप और लक्ष्य मान सकता है।

महामति ने जो तारतम दृष्टि प्रदान की उसमें कोई भी शास्त्र वचन व्यर्थ नहीं लगता। अभिप्रेत अर्थ खोजकर किसी भी विचारधारा को अपनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है कि कोई भी सत्य द्रष्टा ग़लत नहीं कहता। सब सयाने एक ही बात कहते हैं, उनके मनमाने अर्थ निकालकर स्वार्थी प्रचारक जनता को बहकाते हैं और भ्रमित करके ग़लत राहों पर भटका देते हैं। महामति की यही निष्कलंक ज्योति है जिसकी मशाल का उन्होंने युग के एक-दो व्यक्तियों के नहीं, जन-जन में, 'सुन्दर साथियों' के हाथों में देने का आग्रह किया है। जिसे तारतम मिले वह दूसरों को दे, जो जाग जाये वह औरों को भी जगा दे। सारा समाज, सारा विश्व 'जागनी' की ज्योति से युग का अंधकार दूर कर दे।

साम्प्रदायिकता या विशेष गुट में बँधे रहकर दूसरों को हीन मानने की भावना ही मानव मन की संकीर्णता और मानवता पर कलंक है। धर्म ज्ञान देने वाले अवतारी पुरुष परमात्मा की आज्ञा से मानव को उसकी भाषा में ईश्वरीय संदेश देते हैं। युग, देश, भाषा और वातावरण की भिन्नता के कारण वे कुछ अलग दिखायी देते हैं। उन सबका आशय समझ कर हम एक दूसरे के निकट हो सकते हैं और सभी अवतारी पुरुषों और पैग़म्बरों का अनुग्रह प्राप्त कर सकते हैं।

महामति का 'कुलजम' सागर की तरह विशाल और गहरा है। समय-समय पर विद्वान लेखकों ने इस महासागर में गोता लगाकर मुक्ता चुने हैं, उनके सौंदर्य को उन्होंने शब्द देने का सफल प्रयास किया है। देश विदेश के विद्वानों ने उन शब्दों का स्वागत किया है एवं श्री प्राणनाथ वाणी के मंथन के लिये अग्रसर हुए हैं। फिर भी अभी बहुत कुछ करना शेष हैं।

दस-बीस शोध विद्यार्थी-विद्वान, अनेक भाषाओं के जागरूक लेखक एवं धर्म शास्त्रों के मर्मज्ञ ज्ञाता मिलकर महामति की तारतम ज्योति में निरन्तर शोध कार्य करें तभी हम 'कुलजम सरूप' के साथ कुछ न्याय कर पायेंगे। ऐसे शोधकर्त्ताओं का अपने अल्प साधनों के रहते हुए भी हम आह्वान करते हैं एवं अपना यथासम्भव सहयोग देने का आश्वासन देते हैं।

महामति वाणी को आधार मानकर अनेकों शोध ग्रंथ लिखे जा चुके हैं— उनमें से बहुतेरे प्रकाशित भी हुए हैं। चार-पाँच शोध ग्रंथों का प्रकाशन स्वयं श्री प्राणनाथ मिशन ने ही किया है। प्रवीण विद्वान लेखक महामति वाणी को लेकर यदि ग्रंथ लिखें एवं अन्य प्रकाशक उन्हें छपवाने के लिये अग्रसर हों तो हम कुछ प्रतियों के लिए अग्रिम सहयोग राशि में देने को सदैव उत्सुक रहेंगे।

पिछले कुछ वर्षों से जागनी के कुछ लेखकों का आग्रह रहा कि हम केवल उनकी ही लेखमाला का प्रकाशन करें। प्रस्तुत अंक में हमने बहुत-से लेखकों के वैचारिक योगदान को सँजोकर बड़े लेखों के रूप में उनका प्रकाशन किया है, इसलिये जागनी का यह ग्रंथ बड़ा आकार और पुस्तक का प्रकार लेकर सामने आया है। आशय यह था कि महामति वाणी के विशेष पहलुओं की पर्याप्त जानकारी पाठकों को मिल सके। शीघ्र ही कुछ ऐसे विषय एवं लेख जो छूट गये हैं, उन्हें दूसरे अंकों में लाने का प्रयास हम करते रहेंगे। सुबुद्ध लेखकों से आग्रह है कि वे हमें अपना भरपूर योगदान दें। जिनके लेख इस अंक में नहीं आ पाये वे हमें क्षमा करें एवं आगामी अंक की प्रतीक्षा करें।

महामति प्राणनाथ की तिरोधान एवं कुलजम स्वरूप की गादी प्रतिष्ठा की त्रिशती के अवसर पर इस 'जागनी संचयन' द्वारा महामति की तारतम ज्योति को जलाये रखने के हमारे इस प्रयास में श्रेष्ठीजनों ने अग्रिम राशि दे कर हमारा उत्साह बढ़ाया है, जागनी परिवार का प्रणाम उन्हें स्वीकृत हो।

एक बार पुनः प्रबुद्ध लेखकों के सहयोग की कामना करते हुए,

विनीत,
विमला मेहता
संयोजिका

सम्पादकीय

भक्ति आन्दोलन के अधिकांश संत कवि इतर ब्राह्मण जाति और प्रायः निम्न वर्ग के थे। इन्हें सामाजिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा था। निम्न कही जानेवाली जातियों के साथ छुआछूत भी बरता जाता था। मन्दिरों में उनका प्रवेश निषिद्ध था। संत जनों के संवेदनशील मन ने सदैव इनके विरुद्ध आवाज़ उठाई। कबीर रैदास, नानक, ज्ञानेश्वर और नामदेव जैसे संतों और भक्तों ने जाति-वर्ग प्रथा का विरोध किया और इन्सानी भाईचारे पर बल दिया। इस भक्ति में केवल ईश्वर के प्रति गहन अनुरक्ति को पर्याप्त समझा गया। इसमें न वेदाध्ययन आवश्यक था, न कर्मकाण्ड, न व्रत-उपवास न मंदिर-प्रवेश। भक्ति की इस विशिष्टता ने विशाल जन समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट किया। भक्ति ने सदियों से पददलित इस वर्ग में आस्था और विश्वास का संचार किया। उन्हें अपने मनुष्य होने का बोध हुआ। इस प्रकार भक्ति आंदोलन से जन जागृति या सामाजिक जागनी का एक महान उद्देश्य काफ़ी दूर तक पूर्ण हुआ।

ऐसा नहीं था कि सामाजिक परिदृश्य तब बहुत उदार और समदर्शी था। जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय एवं धर्म के नाम पर होने वाले युद्धों से जन मानस आतंकित था। इन संत जनों ने बताया कि ऊँच-नीच, शूद्र-ब्राह्मण, हिन्दू-मुसलिम में कोई भेद नहीं। परमात्मा के निकट वही है जो शुद्ध चित्त, नम्र बनकर आत्मसमर्पण कर दें। नमाज़-पूजा, व्रत-उपवास, दान-ज़कात आदि एक ही हैं—ये साधना के साधन पर्याय हैं। हिन्दू या मुसलमान के सीमित सामाजिक पहचान या संबोधन से अधिक श्रेष्ठ है परमात्मा का भक्त कहलाना।

परम सत्ता केन्द्रित और उसे समर्पित प्रेम के सारे प्रस्थान अंग और अंगी की समग्र उपस्थिति में ही सम्पूर्ण होते हैं—प्रेमी और प्रिय के एकात्म मिलन को ही एकेश्वरवाद कहा गया। इसकी व्याख्या में भारत की बौद्धिक धारा पिछले हज़ारों वर्षों से लगी हुई है। कई विद्वानों ने अद्वैतवाद के प्रश्नों पर विचार व्यक्त करके विषय को और भी दुरूह और जटिल बना दिया। पुराणकाल में लोक आस्थाएँ अवतारवाद की अवधारणा से जुड़ीं और उनके मतावलम्बियों को अपनी-अपनी सुविधा और स्थानीयता के अनुरूप कर्मकाण्ड और अर्चापूजा को स्थान मिला। राम-कृष्ण, शिव-गणेश, रुद्र-विग्रह पूजन के साथ-साथ असंख्य गुटों एवं सम्प्रदायों में बँट गया। गंगा-स्नान, पूजा अर्चना में आगे कौन रहे, इसके लिये रक्तपात भी होने लगे। ऐसे समय में कुछ भक्तों एवं संत कवियों ने साम्प्रदायिक संगठन एवं हिन्दू मुस्लिम एकता की बात उठायी। इस उपक्रम में महामति प्राणनाथ (1618-1694 ई-) ने अपने जीवन एवं अर्जित अनुभव (वस्तुगत तथा आत्मगत) और सर्वधर्म सद्भाव, समभाव और ममभाव के लिए एक व्यापक परिभूमि का निर्माण किया। जागनी अभियान के द्वारा धर्म और आस्था को जगाने का अभूतपूर्व प्रयास किया, जिसे उनके वाणी संग्रह एवं बीतक साहित्य 'कुलजम स्वरूप' में देखा जा सकता है।

महामति ने श्रीकृष्ण प्रेम से अपनी स्वानुभूति को मुखरित किया था। इसलिये परस्पर प्रेम, मानवता, भ्रातृत्व और सद्भाव का संदेश लानेवाले सभी युगपुरुष, मनीषी, चिन्तक और मसीहा उनकी तारतम वाणी-कुलज़म स्वरूप में सादर उपस्थित हैं। महामति की स्थापना है कि पूरे विश्व में ऐसी जितनी भी शक्तियों का अवतरण हुआ वे सबकी सब एक ही स्रोत की प्रेरणा और आदेश से उद्भासित थीं। इसलिए उन ज्ञात या अज्ञात शक्तियों के संकेतों धर्मग्रंथों या पुराकथाओं में निहित मिथकों या दृष्टांतों को सारी मानवता

की संयुक्त धरोहर मानकर सम्पूर्ण मानव जाति के आत्मोत्थान या जागरण का उपलक्ष्य माना जाना चाहिए।

इसीलिए महामति ने मुसलिम एकेश्वरवाद तौहीद या वाहेदत की सराहना करते हुए, भारतीय समाज में प्रचलित बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वर परमब्रह्म या अद्वैत ब्रह्म की पुनर्प्रतिष्ठा के लिये उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान की। इसे इस्लाम का भी समर्थन प्राप्त हुआ। जागनी अभियान महामति का एक ऐसा व्यापक आयोजन था जिससे ब्राह्मण वर्ग या अभिजात वर्ण प्रतिपादित हिन्दू धर्म की आधारभूत संकीर्णता दूर की सके।

जागनी महामति का युग-संकल्प था। इसे अभिनव चेतना से उन्नीत और अभिषिक्त कर वे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को नया संस्कार प्रदान करना चाहते थे। वे युग के जर्जर और रूढ़िग्रस्त संस्कारों से आगे बढ़कर प्रगतिशील विचारों को प्रतिपादित करना चाहते थे। उनके विचारों की प्रगतिशीलता उनके मत प्रसार में बाधक भी बनी और हिन्दू मुसलमान दोनों ने ही उन्हें समझने और मानने में असमर्थता दिखायी और उनका विरोध भी किया :

"करे हिन्दू लड़ाई मुझसों और सरीयत मुसलमान।"

महामति ने विभिन्न धर्म-संस्कृतियों के धर्म-संकल्पों को समान रूप से पूज्य और मान्य बताते हुए कारी कामरी से श्याम-मुहम्मद और इमाम के संदेश को एक साथ अपनी वाणी में संयोजित किया, जन-जन के मन में आध्यात्मिक स्वातंत्र्य एवं देश के धार्मिक ऐक्य, सामाजिक उत्थान एवं राजनैतिक अभियान को जागनी नाम दिया।

कभी-कभी यह सोचकर आश्चर्य होता है कि महामति प्राणनाथ का आविर्भाव चाहे जिस युग में हुआ हो, उस युग की विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ आज भी उपस्थित हैं। महामति ने अपने उपदेश के माध्यम से धर्म को उदात्त बनाना चाहा और एक ऐसे धर्म की बुनियाद रखी जो देश, काल और व्यक्ति की सीमा रेखा से परे समग्र मानव की भावी संकल्पना और उसकी सार्थक सम्भावना को व्यक्त करे। तभी जागनी का अनुरोध और आह्वान सामूहिक उत्कर्ष का पर्याय और समवेत का मुखर स्वर एवं समाज का सार्थक आन्दोलन बन सका। 'जागनी' का स्वर सबको वृहत्तर और महत्तर सत्ता और हक़ से जोड़ सका। उनका जागनी आंदोलन सबके अंतर में एक नये विश्वास का आलोक जगाना चाहता था जो कि सारे मानवीय कर्म को अविकृत बनाकर मनुष्य की आस्था और धर्म चेतना को जगाये रखे, जुगाये रखे। समाज में धर्म और कर्म के नाम पर कोई ज़ोर-जबरदस्ती या जुल्म न हो—

एक ज़रा जुलम न रहवहीं, सुबुध सबों में धरम।
बरत्यो सुख संसार में, विकार काटे सब करम।। सनंध, ४०/२०

महामति की तारतम वाणी में विश्व की प्रतिनिधि धार्मिक अवधारणाएँ समन्वित हो गयीं। धर्म का मर्म व्यक्ति या व्यष्टि में नहीं वरन् समष्टि के सर्वतोमुखी उत्कर्ष में समाहित हो गया। महामति वाङ्मय अपने आपमें सम्पूर्ण विश्व धर्म दर्शन है। तारतम कुंजी से उन्होंने विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के सदियों पुराने जंग लगे तालों को ही नहीं, बंद द्वारा को भी खोला। तभी तो वे मान्य धर्मग्रंथों तथा पूज्य शास्त्रों में निहित ज्ञान (इल्म लुदंनी); अंधकार को विदीर्ण करनेवाले नूर और असत्य के पर्दे को उड़ानेवाले 'हक़' तथा परमतत्त्व को समर्पित सुन्दरसाथ में वितरित कर सके।

एक 'अधम विप्र' की अपेक्षा एक 'निर्मल हृदय चांडाल' कैसे श्रेष्ठ और उपादेय है, यह उन्होंने सिद्ध कर दिया। शहर-शहर और देश-देशान्तर घूमकर अपनी अमृत वाणी द्वारा उन रत्नों को बिखेरते रहे, जिनका संकलन 'कुलजम स्वरूप' में हुआ है।

श्री प्राणनाथ मिशन एक ऐसा सांस्कृतिक मंच है जो मात्र प्रणामी सम्प्रदाय ही नहीं सारी मानवता के लिए अपनी भूमिक को सार्थक बना रहा है। मिशन द्वारा प्रकाशित 'जागनी' या संबन्धित सद्ग्रंथों का प्रकाशन, संगोष्ठी या अन्य आयोजन महामति के सम्पूर्ण वाङ्मय और उनके प्रेरक जीवन वृत्त को केन्द्र में रखकर सामाजिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक और धार्मिक अवबोध को जाग्रत करने का प्रयास कर रहे हैं। महामति के युगान्तरकारी संकल्पों के अनुरूप ही जागनी शोध पत्रिका ने अपने स्वर और स्वरूप को सीमित या मर्यादित रखा है। विद्वान लेखकों के लेखों को सम्पादित एवं समायोजित कर हम इसे पिछले दो दशक से एक वार्षिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित कर रहे है।

महामति वाङ्मय के अध्येता विद्वानों, प्रणामी साहित्य के सुधी अनुसंधित्सुओं एवं जिज्ञासु पाठकों ने 'जागनी' के प्रकाशित अंकों की भूरिशः प्रशंसा की है। हमें प्रसन्नता है कि कई विश्वविद्यालयों तथा अन्यान्य शैक्षणिक संस्थाओं के विद्वानों ने इन अंकों के लिए सहर्ष अपना लेखन-सहयोग प्रदान किया है।

सामाजिक विडम्बनाओं को पहचानने और सबको साथ लेकर चलने की दिशा में कार्य का शुभारम्भ ही हुआ है। अभी बहुत कुछ करना शेष है। 'जागनी' पत्रिका को हम इस जन आंदोलन का एक अंग बनाये रखना चाहते हैं। इसके लिये विद्वान लेखक और सुधी पाठक हमें अपने विचारों एवं सहयोग से पुष्ट करते रहें, हमें मार्ग दर्शन दें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हम 'जागनी' में इन समस्याओं और सामाजिक विडम्बनाओं के समाधान के लिए महामति की वाणी से प्रेरित आलेखों को ससम्मान प्रकाशित करते रहेंगे। महामति के संकल्प और महायज्ञ में यही हमारी अल्पाहुति एवं श्रद्धांजलि होगी। उनकी तिरोधान त्रिशताब्दी पर हम यह विशेष संकलन। **जागनी संचयन** उनकी तेजस्वी मनस्विता को समर्पित करते हैं।

डॉ. रणजीत साहा
मानसेवी सम्पादक

एम. जी. 1/26
विकास पुरी,
नयी दिल्ली 110018

महामति प्राणनाथ की जागनी

प्रीतम मेरे प्राण के, आतम अंगना नूर।
मन कलपे खेल देखते, सोय दुख करूँ सब दूर।।
हम उपाया सुख कारने, ए जो मांगया खेल तुम।
दुख दे वतन बोलावहीं, ए इन घर नहीं रसम।।
लगोगे जो दुख को, तो दुख तुमको लागसी।
याद करो निज सुख, तो दुख तुमथे भागसी।।
अब तारूँ तुमें या बिध, ज्यों लगे न लहर लगार।
सुखपाल में बैठाय सुखें, घर पोहोंचाऊँ निरधार।।
असत सों उलटाय के, सत सों कराऊँ संग।
पर आतम सों बंध बांधूं, ज्यों होय न कबहूँ भंग।।
पिउ जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ए जिमी झूठी दुख की, सो कर देऊँ सत सुख।।
अब दुख आवे तुमको, तहां आड़ा देऊँ मेरा अंग।
सुख देऊँ भली भांत सों, जो होय न बीच में भंग।।
जो किन जीवें संग किया, ताको करूँ न मेलो भंग।
सो रंगे मेलूँ वासना, वासना सत नो अंग।।
ए जोत होसी जागनी, ए नूर बिना हिसाब।
लोक चौदे पसरसी, तब उड़ जासी ए ख्वाब।।
संसार सारे के अंग में, मेरी बुध को करूँ प्रवेस।
असत सब होसी सत, मेरे नूर के आवेस।।
अनेक आगे होयसी, इन बानी को विस्तार।
ए नेक कह्या मैं करने, अखंड ए संसार।।

कलश – जागनी प्रकरण

अनुक्रम

English

भारत के राष्ट्रपति
महामहिम डा. शंकर दयाल शर्मा जी का संदेश

महामति प्राणनाथ

हमारे इतिहास का मध्यकाल इस मायने में विशेष महत्त्व रखता है कि इस युग में अनेक संत, भक्त तथा सूफ़ी संत एवं कवि हुए। इन सभी की, चाहे वे हिन्दू धर्म के अनुयायी हों या इसलाम धर्म के, निर्गुण ब्रह्म के समर्थक हों अथवा सगुण ब्रह्म के, कुछ समान विशेषताएँ थीं। इन सभी ने रूढ़िग्रस्त संकुचित समाज को उन्मुक्त आकाश देने की विराट् चेष्टा की। हृदय की उदारता और आचरण की पवित्रता इन सभी के चिंतन का केंद्र थी। इनकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इन सभी ने जनता की भाषा में, जनता के साथ सीधे संवाद स्थापित किए। शायद इसीलिए इस युग के संत जन-जीवन में गहरे समा सके। संत महामति प्राणनाथ भी इसी उदार एवं सुधारवादी आंदोलन के उत्तरार्द्ध की देन थे।

महामति प्राणनाथ का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विघटन का काल था। सत्रहवीं शताब्दी की धर्मपरायणता धर्मांधता में परिणत हो गई थी। धर्म में बढ़ता हुआ बाह्याचार पाखंड का रूप लेता जा रहा था। ऊँच-नीच तथा अस्पृश्यता की भावना ज़ोरों पर थी। लोग स्वार्थी और इंद्रिय-लोलुप हो गए थे। समाज नैतिक पतन की ओर जा रहा था। ऐसे समय में महामति ने अध्यात्म की गहराई में उतरकर उसे मानव सुलभ बनाने की चेष्ट की। उन्होंने अपने व्यवहार और वाणी द्वारा धार्मिक वैमनस्य, अलगाववादी विचारधारा तथा सांप्रदायिक धर्मांधता का सकारात्मक विरोध किया।

महामति प्राणनाथ का जन्म गुजरात में सन् १६१८ में हुआ था। उन्होंने जामनगर जैसी समृद्ध रियासत का दीवान पद त्यागकर लोगों के सामने त्याग का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने अरब देशों की यात्रा की और वहाँ इस्लाम धर्म और संस्कृति को नज़दीक से समझा। इसके अलावा उन्होंने बाइबिल, जबूर और तोरेत का गहरा अध्ययन किया। वे इसलाम के एकेश्वरवाद तथा ईसाई धर्म के मानव-सेवा की भावना से बहुत प्रभावित हुए। जैन धर्म के एकांतवाद और स्याद्वाद भी उनके चिंतन के आधार बने। सभी धर्मों के अध्ययन के पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वस्तुतः सभी धर्मों की मूल भावना एक ही है। केवल भाषा तथा वातावरण की भिन्नता के कारण ईश्वर के वर्णन में भिन्नता आ गई है। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने सभी प्रमुख धर्मों के मिथकों की व्याख्याएँ की, और स्पष्ट किया कि इन अलग-अलग आख्यानों की मूल बात एक ही है। इस प्रकार उन्होंने दो महान् परंपराओं — सेमेटिक और हेमेटिक को मिलाने का अभूतपूर्व कार्य किया। सन् १६७८ में उन्होंने हरिद्वार में आयोजित शास्त्रार्थ में 'एक सनातन धर्म', 'एक विश्व धर्म' तथा 'एक ईश्वर' की बात प्रतिपादित की। इसके लिए उन्हें 'विजयाभिनंद निष्कलंक अवतार' से अभिषिक्त किया गया। मेरी समझ से विश्व के महान् धर्मों का इस प्रकार विनियोग करना महामति प्राणनाथ की बहुत बड़ी देन है।

महामति प्राणनाथ संकीर्ण सीमाओं से परे थे। वे जाति-पाँति और अस्पृश्यता की अमानवीय प्रथा को मिटाना चाहते थे। उन्होंने वेदों की 'एकैव मानुषि जाति' को अपने ढंग से प्रस्तुत किया। महामति से कुछ समय पहले के संत—नामदेव, तुकाराम, रामदास, रविदास, कबीर, गुरु नानक आदि ने भी संपूर्ण मानव जाति को एक ही कहा था। गुरु नानक ने इसे ही 'एक नूर ते सब जग उपज्या' कहा। संत रविदास ने भी ब्रह्म को एक माना है। एक ही ब्रह्म सबके अंदर व्याप्त है तथा सभी एक ही ब्रह्म के अंदर समाहित हैं। उन्होंने कहा है—

एकै ब्रह्म हइ सकलमाँहि। अरु सकल ब्रह्म माँहि।।
रविदास ब्रह्म सम भेषमाँहि। ब्रह्म बिना कछु नाँहि।।

महामति प्राणनाथ के समय में भी लोगों के बीच अपने-अपने धर्म और जाति को श्रेष्ठ बताने की होड़ थी। उससे धर्मांधता बढ़ रही थी तथा सांप्रदायिक तनाव को बल मिल रहा था। महामति ने इसी तनाव को समाप्त करने के लिए 'एक ईश्वर' की घोषणा की। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संतों की बात को ही आगे बढ़ाते हुए कहा—

जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनिया, और उड़ गई दूजी बात।। सनंध-३३/१७

महामति प्राणनाथ ने इस सत्य को अच्छी तरह से समझ लिया था कि धर्म और समाज की एकता में ही मानव जाति का कल्याण निहित है। यदि अलगाव, आतंक और विखंडन की नीतियों से जनमानस को नहीं बचाया गया तो मानवता का विनाश निश्चित है। इसलिए उन्होंने देशी-विदेशी सभी धर्मों को मिलाकर एक मानव धर्म की प्रतिष्ठा की।

महामति प्राणनाथ ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि जनसमुदाय को जाग्रत करके उन्हें संगठित किया, ताकि वे न्याय-अन्याय को समझ सकें और अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकें। उन्होंने अपने अनुयायियों में यह भावना प्रबल की कि संसार के सभी धर्म एक ईश्वर की बात करते हैं। उन सबका उद्देश्य मानव का कल्याण करना है। संसार के सभी धर्म और ईश्वर नाम और वाणी से अलग-अलग मालूम पड़ते हैं, जबकि वस्तुतः वे एक हैं। वेदों में भी कहा गया है कि 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति', अर्थात् सत्य एक ही है, लेकिन विद्वान् उसे अलग-अलग ढंग से कहते हैं। महामति प्राणनाथ ने भी कहा है—

जुदे-जुदे नामे गावही, जुदे-जुदे भेष अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।। सनंध-४१/७२

महामति प्राणनाथ धार्मिक और आध्यात्मिक आचरण को व्यावहारिकता की कसौटी पर देखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आत्मा की निर्मलता पर विशेष ज़ोर दिया। उन्होंने कहा कि सच्चा वैष्णव वही है, जिसकी आत्मा निर्मल है। व्यक्ति को चाहिए कि वह आडंबर और अहंकार को छोड़कर शुद्ध मन से ईश्वर के प्रति समर्पित होकर मानव की सेवा करे। त्याग, करुणा और सेवा से बढ़कर दूसरा कोई पुण्य-कार्य नहीं है। समानता की भावना से युक्त होकर जन-कल्याण के कार्यों में लग जाना ही सच्चा धर्म है। यह भावना तभी आ सकती है, जब व्यक्ति के भीतर परमात्मा और मानव के प्रति सच्चा प्रेम हो। जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ पवित्र आत्मा और पवित्र मन का निवास नहीं हो सकता। इसलिए प्राणनाथ जी ने 'प्रेम ब्रह्म दोउ एक हैं', कहकर प्रेम को ही

ईश्वर का रूप माना। सूफ़ी संतों के लिए भी प्रेम ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम था। कबीरदास ने जिसे 'ढाई आखर प्रेम का' कहा, उसे ही महामति ने यह कहकर आगे बढ़ाया—

इस्क बड़ा रे सबन में, ना कोई इस्क समान।
एक तेरे इस्क बिना, उड़ गई सब जहान।। सनंध-६/१

यही जैन और बौद्ध धर्म की अहिंसा है। महामति ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि ईश्वरीय आदेश तो कभी हिंसा-प्रेरक हो ही नहीं सकता, बल्कि वह तो शाश्वत, दिव्य और जीवंत प्रेम की प्रेरणा देता है। तत्कालीन हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक कटुता का उन्हें आभास था। इसलिए उन्होंने कहा—

छोड़ के बैर मिले सब प्यार सों,
हुआ जगत् में जय-जयकार। किरंतन, ५४/१२

महामति प्राणनाथ ने प्रेम को सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण माना है। अध्यात्मिक क्षेत्र में उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति का सहारा लेकर अद्वैत में पहुँचने की बात कहीं है। उन्होंने अपने उद्देश्य के बारे में स्पष्ट रूप से कहा है कि 'सुख शीतल करूँ संसार'। इस सुख और शांति की स्थापना भेद से नहीं, प्रेम से ही हो सकती है।

महामति केवल आध्यात्मिक संत ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने स्वयं को तत्कालीन परिस्थितियों से लगातार जोड़े रखा। उनकी दिव्यता से प्रभावित होकर बुंदेलखंड के शासक छत्रसाल ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था। उन्होंने छत्रसाल की धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में सहायता की। वे छत्रसाल के गुरु होने के साथ-साथ उनके प्रधान सहायक, प्रेरणा और शक्ति के स्रोत भी थे। उनमें शास्त्रवेत्ता और शस्त्रवेत्ता दोनों का समन्वय था। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष छत्रसाल के राज्य में बिताए और वहीं पन्ना में सन् १६९४ में उन्होंने अपनी देह त्यागी। पन्ना में बना उनका गुम्मट मंदिर हिन्दू और मुसलिम धर्म तथा संस्कृति के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है।

आज हमारे समाज में धर्म का वास्तविक स्वरूप धूमिल पड़ता जा रहा है। धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता को उभारा जा रहा है। समाज में ऊँच-नीच की भावनाएँ मौजूद हैं। विश्व विनाश की विभीषिका के कगार पर खड़ा है। ऐसे समय में महामति प्राणनाथ का चिंतन हमारे लिए अत्यंत उपयोगी हो गया है। वर्तमान समाज को उसी 'एक धर्म' और समन्वय की आवश्यकता है। उसी अहिंसा, प्रेम-भावना तथा निर्मल हृदय की आज ज़रूरत है।

महामति प्राणनाथ के जन्म दिवस समारोह पर व्यक्त उद्‌गार, नई दिल्ली, १६ अक्तूबर, १९९८ ; **'हमारी सांस्कृतिक धरोहर'** ग्रंथ से साभार

भारत के प्रथम राष्ट्रपति

डा. राजेन्द्र प्रसाद के उद्गार

धर्मशील वीर छत्रसाल

(महाराजा छत्रसाल प्रतिमा अनावरण, पन्ना, २८ जनवरी १९५१ के अवसर पर)

भारत के गौरवपूर्ण इतिहास के निर्माता की स्मृति मूर्तिरूप में क़ायम रखने के लिए यह आज का समारोह इकट्ठा हुआ है। बुन्देलखंड के सुप्रसिद्ध वीररत्न महाराजा छत्रसाल की अश्वारोही मूर्ति का अनावरण संस्कार मेरे हाथ से कराने का जो यह मंगल आयोजन किया गया हैं—इसके लिए मैं छत्रसाल स्मारक सिमिति तथा आप सब लोगों का हृदय से आभार मानता हूँ। न्याय एवं नीति के धर्म मार्ग पर चलकर अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र और समृद्ध करनेवाले वीरपुरुषों को चाहे वे किसी भी धर्म के हों, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हमेशा हर्ष होता है।

भारत के इस भू भाग (बुंदेलखंड) में आने का मेरा पहला अवसर है। श्रद्वेय ठक्कर बापा ने डेढ़ बरस पहले इस प्रदेश का दौरा किया था। तब अखबारों में प्रकाशित उनके अनुभव मैंने पढ़े थे। उन्होंने बुंदेलखंड के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के बारे में बहुत कुछ लिखा था। केशव दास लाल, पद्माकर जैसे सुप्रसिद्ध कवि आप के प्रदेश में हुए। महाराजा मधुकर शाह राव, चम्पतराय और महारानी लक्ष्मीबाई इसी भूमि के अमूल्य रत्न हैं। राजस्थान की भाँति यह विन्ध्य भूमि भी वीर-प्रसविनी मानी जाती है। मगर दुख है कि इतिहास लेखकों का ध्यान इस प्रदेश की ओर गया ही नहीं अथवा बहुत ही कम गया है।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि महाराज छत्रसाल जैसे महापुरुषों के नाम का साधारण उल्लेख तक प्रचलित इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता। उनके विषय में जो भी अल्प जानकारी मिलती है उससे इस महान देशनायक की स्वातंत्र्य-प्रियता, न्याय और ईश्वर भक्ति का हमें खासा परिचय मिल जाता है। देश के स्वातंत्र्य की ख़ातिर महाराजा छत्रसाल अस्सी वर्ष की आयु तक बराबर लड़ते रहे। एक बहुत बड़े राष्ट्र का उन्होंने स्थापना की और शासन किया। स्वभावतः यह उनके बाहुबल और भारी पराक्रम का फल था। पर जिन सद्गुणों से वह महान और चिरस्मरणीय बने वे तो उनके दूसरे ही गुण थे। एक तो उनमें अभिमान नहीं था। सिंहगढ़ में जाकर शिवाजी से नम्रतापूर्वक उन्होंने स्वतंत्रता का गुरुमंत्र लिया। वृद्धावस्था में बाजीराव पेशवा से सहायता माँगी। यह राजपूत है, यह मराठा है—इस तरह की संकीर्ण भावना उनके विशाल हृदय में न थी। दूसरे, वह सदा अनीति और अत्याचार के ही विरुद्ध लड़े—किसी ख़ास जाति या सम्प्रदाय के लिए नहीं। छत्रसाल की सेना में राजपूत, कायस्थ, भार, अहीर, ढीमर और बाटी भी थे। मेहतर भी सेना में रहते थे और मुसलमान मियाँ भी। उनके राज्य में भी सभी वर्ग और सभी जातियों के लोग मान पाते थे। छत्रसाल ने शिवाजी

की तरह मुसलमान स्त्रियों के साथ बहू-बेटियों की तरह व्यवहार किया। तीसरे, किसी भी युद्ध में न तो उन्होंने शत्रु से विश्वासघात किया न निहत्थों पर हाथ उठाया। युद्ध में तथा राज्य शासन मे छत्रसाल ने हमेशा न्याय का ही पक्ष लिया। अपने पिता श्री चम्पत राय से उन्होंने इन वीरोचित गुणों को उत्तराधिकार में पाया था।

छत्रसाल में कृतज्ञता भावना भी पूरी थी। बचपन में घोड़े की सवारी करानेवाले 'महाबलि' को राजाधिराज हो जाने पर भी वे भूले न थे। अपने साथी घोड़े को 'भले भाई' की उपाधि दे रखी थी। छत्रसाल की गुण ग्राहकता तो प्रसिद्ध है। महाकवि भूषण छत्रपति साहू के दरबार के आदर को क्यों न छोटा मानते जब कि स्वयं सम्राट छत्रसाल ने उनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर उठाया था। कवि को अनूठी गुण ग्राहकता के आगे झुककर कहना पड़ा—

और राव राजा कोऊ मन में न लाऊँ अब,
साहू को सराहूं के सराहों छत्रसाल को।।

छत्रसाल स्वयं भी एक उच्च कोटि के कवि थे। 'छत्रसाल ग्रन्थावली' में उनके उच्च कोटि के भक्ति और राजनीति से पूर्ण गीत हैं।

देखकर आश्चर्य होता है कि घोर संघर्षमय जीवन में उन्हें इतनी सरस कविता रचने के लिए कैसे अवकाश मिला होगा? भारत की वीर परम्परा में ही ऐसा होना सम्भव है। छत्रसाल की कविताओं को देखकर लगता है कि वे एक धर्मशील व्यक्ति ऊँचे कृष्ण भक्त थे। महाप्रभु स्वामी श्री प्राणनाथ जी का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उनके दैनिक जीवन, राजनीति और धर्म नीति पर उनकी छाप स्पष्ट थी। यही कारण है कि छत्रसाल ने अपने बाहुबल पर कभी गर्व नहीं किया वरन् अपने सर्वस्व को प्रभुकृपा और गुरु के आशीर्वाद का ही फल माना। वे अपने आपको प्रभु का सेवक छोड़ और कुछ नहीं मानते थे। जब अपने अन्तिम दिनों औरंगज़ेब ने उन्हें मनसबदार का पद देना चाहा तो उन्होंने कहा—

नर की उदारता में कौन है सुधार, मैं तो मनसबदार सरदार ब्रजराज को।

परहित की खातिर जो प्राणों को भी तुच्छ समझता है वह वीरपुरुष भगवान का आश्रय छोड़ किसी और का आश्रय कैसे ले सकता है? छत्रसाल अपने आपको प्रजा का स्वामी नहीं सेवक मानते थे। वे बड़े ही लोकप्रिय शासक थे।

महापुरुषों की मूर्ति स्थापना से ही हमारे कर्त्तव्यों की इतिश्री नहीं हो जाती। वीर पूजा का यह एक प्रकार है परन्तु असली वीर पूजा तो वीरों के जीवन को अपने जीवन में उतार कर ही हम कर सकते हैं। श्रद्धा प्रकट करने का असली तरीक़ा तो उनके चरण-चिह्नों पर चलना है। अपने जीवन में उन गुणों को लेना है जिनसे वे महान बने थे। वे गुण हैं उनका त्याग, तपस्या, जन सेवा, देश सेवा और ईश्वर पर विश्वास तथा श्रद्धा। भगवान हमें बल दें कि हमारा स्वतंत्र भारतवर्ष अपने महापुरुषों के जीवन से उनके ऊँचे गुणों को अपनाए जिससे कि हम लोग सत्य और प्रेम मार्ग पर चलकर धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के योग्य नागरिक ओर सच्चे लोकसेवक बन सकें।



भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

श्री फख़रुद्दीन अली अहमद का सन्देश

महामति का इत्तेहाद, यकजहती और मुसावात का पैग़ाम

स्वामी जी (महामति प्राणनाथ) का दिया हुआ इत्तेहाद यकजुहती और मुसावात का वह पैग़ाम जो उन्होंने तक़रीबन तीन सौ साल पहिले दिया था आज भी जारी है।

हज़ारहा साल से इस मुल्क में मुख्तलिफ़ मजहबों और अकीदों के लोग दोस्ती और भाईचारा से रहते आए हैं। भारत माता को यह फ़ख्र हासिल है कि इसकी गोद में ऐसे-ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया जिन्होंने क़ौमी मसावात और भाईचारे को बढ़ावा दिया। ऐसे ही महापुरुषों में थे स्वामी प्राणनाथ ! हमको फ़ख्र हासिल है कि तरह-तरह से उसूल और तरीके इत्तेहाद और यकजुहती को बढ़ावा देने के हमें बिरसा मिले। हमको इन्हें मजबूत बनाना है। जब हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ तो हमारे रहनुमाओं ने आइन को इस ख़ूबसूरती के साथ सँवारा जिसमें छोटे-बड़े, ऊँच-नीच और जात-पात का फ़र्क़ न रखते हुए सबके हक को यक-सां रखा। हमारे सेक्यूलरिज़्म का मतलब है तमाम मजहबों को इज्ज़त करना।

कितना सही और मुनासिब है ऐसे में स्वामी प्राणनाथ जैसे महापुरुषों को याद करना—जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी मसावात और भाईचारा के लिये वक्फ़ कर दी ! सही मज़हब वह है जो इन्सानियत का सब़क दे। इसके जेहन को साफ़ और इसकी रूह को रोशन करे। जहाँ साइन्स और टैक्नालोजी हमारी ज़िन्दगी के मयार को बुलंद करने के ज़राये हैं वहाँ मज़हब आदर्शों और इख्लाक को ऊँचा रखने का वसीला है। यह दो मज़हबों के बीच में दीवार खड़ी नहीं करता बल्कि सीधा रास्ता बनता है। वह आपस में नफ़रत का बीज नहीं बोता बल्कि मुहब्बत और मसावत की राह दिखाता है।

जिस वक़्त हमारे मुल्क में मज़हबी तअस्सुब और आपसी नफ़रत ने ज़ोर पकड़ा था उस वक़्त स्वामी प्राणनाथ ने बीड़ा उठाया था महज़बी इख्तलाफ़ को दूर करने का और कोशिश की हर मजहब के लोगों को एक दूसरे के नज़दीक मुहब्बत और मुसावात से लाने की। इन्होंने हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए बड़ी जद्दोज़हद की और अवाम को बताया कि मज़हब आपस में नफ़रत और बैर रखना नहीं सिखाता। वह तो इन्सानियत का पैग़म्बर है।

स्वामी प्राणनाथ जी ने इस्लाम और हिन्दू धर्म की किताबों को पढ़ा। अरब मुल्कों का दौरा किया। सालों तक बग़दाद और बसरा में रहे। मज़हबी आलिमों से मिले। उन्होंने हिन्दुस्तान के गोशा गोशा मज़हब की हक़ीक़त, इत्तेहाद और भाईचारा का दरस दिया जिससे मुतासर होकर हज़ारों की तादाद में लोग इनके साथ हो गए और इनके इस मिशन को कामयाबी और उसको बढ़ावा देने में लग गये। स्वामी जी ने हमारी

रहनुमाई के लिए अपने कारनामों का एक मुक्कदस जखीरा छोड़ा है। उनकी हमेशा कोशिश रही मज़हब की हक़ीक़त को उजागर करने और उन अकीदों को जो एक दूसरे के नज़दीक लाने की, दुनियां वालों तक पहुँचाने की।

सोसाइटी अफराद के गिरोह से बनती है। जब तक इसमें रहनेवाला हर फ़रीक ईमानदार और सही तौर पर इन्सान न हो उसको एक अच्छी सोसाइटी नहीं कहा जा सकता। आजकल जितनी ख़राबियाँ देखने में आ रही है इनकी जड़ ज़ाती फ़साद, खुदगर्ज़ी और लालच की वज़ह से है। सही मज़हबी नज़रिया इन बीमारियों का सही इलाज़ साबित हो सकता है।

महात्मा गाँधी ने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया कि रूहानी और साईंसी हम अहिनगी आजकल की सबसे बड़ी ज़रूरत है। जहाँ साइन्स और टेक्नालोजी हमारे मुल्क के रहनेवालों के लिए लाज़मी है वहाँ मज़हब और रूहानियत के रंगीन फल इसकी खूबसूरती को और ज़्यादा चमका सकते हैं। मज़हब का सही रास्ता है कि इन्सान मुहब्बत और प्यार का सलूक करे और सच्चे भाईचारे से अपनी ज़िन्दगी बसर करे। हमारा फ़र्ज़ है कि हम अपनी ज़िन्दगी में उनके बताये हुए उसूलों को मशाल राह बनाएँ और इन पर कारबन्द रहे। यही नज़राना होगा ऐसे महापुरुषों के लिए।

जय हिन्द।।



भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

श्री ज्ञानी ज़ैल सिंह जी के उद्‌गार

महामति प्राणनाथ जी की ३६५वीं जयंती के मौक़े पर मुझे आप सबके बीच आकर बहुत प्रसन्नता हुई। मैं इन सात विद्वानों को, जिनका आपने सम्मान किया है, और जिन्होंने श्री प्राणनाथ जी की वाणी को क़लमबद्ध करके अलग-अलग भाषाओं में रचनाएँ रची हैं, बधाई देता हूँ। ऐसे सुन्दरसाथ में हम जब भी इकट्ठे होते हैं तो महापुरुष की याद ध्यान में आ जाती है, एक फ़िल्म बनकर। इस देश के महापुरुष और ऋषि-मुनियों की याद आती है, जिन्होंने समाज के लिये किसी साधन के बग़ैर अपनी ज़िन्दगी अर्पित करके हमें सीधा रास्ता दिखाया है। आप अंदाजा लगा सकते हैं कि श्री प्राणनाथ जी के उस ज़माने में जबकि देश किन-किन मुश्किलों से गुज़र रहा था तो वे उस संसार में आए थे। गुरु तेगबहादुर जब शहीद हुए, उसके दो वर्ष बाद श्री प्राणनाथ जी दिल्ली आए। ऐसे ज़माने में एक बहुत ऊँचे घराने में जन्म लेकर एक दीवान का बेटा हमारे देश में आया। उनके बाद एक दूसरा दीवान का बेटा महात्मा गाँधी आया। ऐसा सुनने में आया है कि महात्मा गाँधी ने अपनी माता के द्वारा महामति जी के संदेश को जीवन में उतारा। ऐसे-ऐसे महापुरुषों के विचार, जो बचपन से ही पनपना शुरू कर देते हैं उनकी कीर्ति ऐसी बन जाती है कि वे सबके साथ मिल जाते हैं। उनके सभी रास्ते एक ही तरफ़ जाते हैं। हमारे संतों ने ज़ात-पात और भेद-भाव को मिटाया। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि शैली अलहदा हो सकती है किन्तु उनके सभी रास्ते एक ही तरफ़ जाते हैं। पर एक दूसरे के ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा की जाती है। ऐसे संतों के विचार हमेशा एक ज़माने के लिये नहीं होते। वे ऐसे विचार हैं जो भूत, वर्तमान, भविष्य में चाहिये। हमें फ़ख्र है कि हमारे देश में इतने महापुरुष संत जन पैदा हुए। उन्होंने क्या उपदेश दिये हैं और कठिनाइयों के बावजूद—जब हुकमत साथ नहीं देती या कोई रेडियो, कोई आने-जाने के साधन नहीं थे। हमारे स्वामी प्राणनाथ जी के देश में जो भ्रमण स्थल हैं, उनको देखकर याद आती है, संत गुरु नानकदेव की, जिन्होंने बहुत पहले दो सौ साल के क़रीब, उन्होंने भी कई देशों का भ्रमण किया। उन्होंने ऐसा क्यों किया? विचार करो। लिखारी थे, कवि थे, वे लिखकर छोड़ जाते। लेकिन नहीं। जो उन्होंने देखा, स्वामी प्राणनाथ ने भी वही देखा। जो आदमी ज़मीन की तरफ़ देखकर चलता है, वह गिरता नहीं, जो आसमान की तरफ़ देखकर चलता है, वह गिर भी जाता है। इसलिए अपने मार्ग को पहचानना—उस उद्‌देश्य तक पहुँचना है जिस पर कोई नहीं पहुँचा। उसको विचारना है, मिलना है। मैं समझता हूँ, यही परम्परा हमारे देश को बचाए हुए है। अब तो हमारे देश की किस्मत हमारे हाथ में है। हम अपनी किस्मत के मालिक है और प्रजातंत्र की वज़ह से हम ही हाकिम है। लेकिन वे तो उस ज़माने में आए जब फ़िरकेवाराना शहंशाहियत थी। उस वक़्त भी वह इतना संदेशा कैसे पहुँचा गये, इस बात की बड़ी हैरानी होती है। श्री एच. के. एल. भगत जी मेरे साथ आ रहे थे तो उन्होंने बताया उनके कई स्थान पाकिस्तान में भी रह गये। देश में कई शहर हैं जहाँ उनके मन्दिर हैं, दिल्ली में भी हैं। मैं समझता हूँ कि ऐसे महापुरुषों के लिये हमेशा ऐसी सभाओं का, ऐसे समागमों का आयोजन करना चाहिये ताकि आनेवाली पीढ़ी को हम समझा सकें।

नफ़रत की आग बुरी चीज़ है, दुश्मनी रखना बुरी बात है। लेकिन आज का इन्सान तो इतना गिर गया कि वह दुश्मन को ही नहीं मारता—जिसको बिल्कुल नहीं जानता, जिसे कभी ज़िन्दगी में देखा नहीं, शक्ल से नहीं जानता, उसे भी मार देता है। क्या इसे हम इन्सानियत कहें ? जो हैवानी बुद्धि है, वह भी अपनी जिन्स को नहीं मारती। आप यहाँ की भी ख़बरें सुनते हैं। अभी-अभी दिल्ली में बम फटे। चडीगढ़ में बम फटा और कुछ ही दिन पहले एक ही धर्म के आदमियों को कोई मारकर भाग गया। यमुना नगर में रक्तपात हुआ, आग लगाई गई, और उनमें जो भाई-भाई में प्यार-मुहब्बत थी—साथ-साथ रहे, सब ख़त्म हो गया। यह क्यों हो रहा है ? यह हमें सोचना है, देखना है। मैं समझता हूँ इस काम में सरकार इतना कुछ नहीं कर सकती, जितना आप हम कर सकते हैं, जितना लोग कर सकते हैं। आप मिलकर अपने फ़र्ज़ को सँभालें और सोचें—जिसके मन में मारने की वृत्ति होती है, वह कायर होता है, बुज़दिल होता है; जो मरने के लिये तैयार रहता है, वह बहादुर होता है। कायर, बुज़दिल, निकम्मे आदमी उनका स्थान इस जगह नहीं होना चाहिये। ऐसी जगह पर बहुत से महापुरुषों ने अपनी जानें क़ुरबान कर दीं—लेकिन उन्होंने इन्सानियत का खून बहने नहीं दिया। इन्सान का लहू गंदी नाली में बहाने के लिये हमें परमात्मा ने नहीं बनाया। हमें एक दूसरे से सद्भावना ही नहीं, एक दूसरे से प्रेम करने की बात बताई। स्वामी जी महराज के उपदेश से यह मालूम होता है कि दूसरों को बर्दाश्त करना ही नहीं, बल्कि सम्मान करना है दूसरे के विचारों का। हमने साथी बनाना है। यहाँ आकर मैं ज़्यादा देर रहना चाहता था। कुछ सुनाने के लिये नहीं, सुनने के लिये। दो बहनों ने स्वामी प्राणनाथ जी की वाणी गाई—कितने मीठे बोल हैं। उनसे प्रेरणा मिलती है कि हमें इन्सान कैसे बनना चाहिए ! केवल भाषा का भेद है, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि हमारा प्रान्त क्या है, हमारी जाति क्या है, हमारा मज़हब क्या है? उन्होंने हमें सरल भाषा में सब बातें कहीं—हालाँकि वे कई भाषाओं को जानते थे, मेरी यह भावना है कि वह हमारे देश के हर प्राणी मात्र को निडर होकर उपदेश देते हैं। ऐसी सभाओं में आकर मुझे आत्मिक प्रसन्नता होती है। मैं आपका बड़ा मशकूर हूँ कि भगत जी ने मुझे इस जगह पर लाकर खड़ा किया—

सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय।
संत समागम हरी कथा, तुलसी दुर्लभ दोय।।

ये दोनों ही दुर्लभ हैं। बड़ी मुश्किल से मिलती है। जहाँ हरि कथा होती है, वहाँ परमात्मा होते हैं। संतों में और परमात्मा में फ़र्क़ नहीं होता। हमारा भरोसा यह होना चाहिए कि ईश्वर पता नहीं, कब मिलेगा लेकिन हम आपको तो जानते हैं—आपको कैसे छोड़ दें ? यही भरोसा, यही इच्छा हमें आगे ले जा सकती है। इन शब्दों के साथ, मैं उनकी याद को श्रद्धा के फूल चढ़ाता हूँ। अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ और आशा रखता हूँ कि आप उनके मार्ग पर चलनेवालों को और ताक़त और बरकत मिले और यह संदेशा हम भारत में हर जगह, हर घर में पहुँचा सकें।



भारत के भूतपूर्व उपराष्ट्रपति

श्री ब. द. जत्ती जी का सन्देश

सत्रहवीं शताब्दी में श्री प्राणनाथ जी ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया था— उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उनका सर्व-धर्म-समभाव की प्रतिष्ठा के लिए किया गया प्रयास है। वे अपने समस्त जीवन में भेदभावना, संकीर्ण विचारों एवं सहिष्णुता के दुराग्रहों से समाज को ऊपर उठाने के लिए क्रियाशील रहे। उनके लिए उन्होंने प्रायः सभी धर्म ग्रन्थों का अच्छी तरह से अध्ययन किया, उनमें मूल-भूत सिद्धान्तों में एकता का तत्त्व खोजकर, लोगों को मानव धर्म का मर्म समझाया, उन गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट किया जो सब धर्मों में एक ही हैं और अनादि सत्ता की महिमा गाते हैं। उन्होंने धार्मिक एकता का केवल प्रचार ही नहीं किया, उसे व्यावहारिक दृष्टि से सिद्ध किया। व्यक्ति की उच्चता का सम्बन्ध कर्म की उच्चता से ही उन्होंने स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति की महानता एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं से लोगों को देश भक्ति की प्रेरणा दी। स्वयं कई भाषाएँ जानते हुए भी उन्होंने अपनी वाणी को हिन्दुस्तानी भाषा देकर नागरी लिपि में लिखवाया था। श्री प्राणनाथ जी अपने युग से बहुत आगे थे। श्री प्राणनाथ जी ने सर्व-धर्म-समभाव, मानवीय एकता, विषमताओं के उन्मूलन के लिए व्यापक, उदारवादी एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण का आश्रय लेकर कार्य आरम्भ किया था, वह काम अभी पूरा नहीं हुआ। आज मनुष्य जिस बौद्धिक स्तर तक पहुँचा है, उसे उससे अभी बहुत आगे जाना है।



पं. प्यारे लाल

महात्मा गाँधी के प्रारम्भिक जीवन (प्रथम खण्ड) से उद्धृत प्रसंग

पुतली बाई के माता-पिता सुप्रसिद्ध परनामी या सतपरनामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। यह एक समन्वयवादी धार्मिक सम्प्रदाय है जिसका लक्ष्य है हिन्दू और इस्लाम धर्मों के सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों का समन्वय। मोहन (गाँधी जी) के बचपन के दिन पोरबन्दर में बीते। उसकी दशा आज बहुत कुछ बदल चुकी है। महात्मा गाँधी ने लिखा भी है "मेरे विवाह के बाद मेरी माँ मुझे इस मंदिर में भी ले गयी थी।" पोरबन्दर में यह अपनी तरह का एक ही मंदिर था। श्री प्राणनाथ जी ने अपने अनुयायियों को तम्बाकू, मांस, मदिरा आदि मादक द्रव्यों के सेवन और व्यभिचार आदि दुष्कर्मों से वचने का उपदेश दिया है और शान्ति एवं शुद्ध के आचरण की शिक्षा दी है।



भूतपूर्व रक्षामंत्री

बाबू जगजीवन राम जी का सन्देश

हमारी भारतीय संस्कृति, समाज और धर्म बहुत प्राचीन है। प्राचीन काल में भारत का धर्म और संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आधार पर मानव मात्र के कल्याण के लिये थी। समय बीतने पर अपना वर्चस्व और श्रेष्ठता दूसरों पर स्थापित करने के इच्छुक कुछ 'बुद्धिमान और धनवान वर्ग' ने भारतीय समाज, विशेषकर हिन्दू समाज के ढाँचे को अपने हित में परिवर्तित करने के लिये धर्म का विकृत रूप समाज के सामने प्रस्तुत किया। समाज को वर्ण और तज्जनित अनेक जातियों में विभाजित करके उसे बहुत चतुराई से धार्मिक मान्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार भारत समाज और धर्म समानता का परिपोषक न रहकर विभिन्न वर्णों और जातियों में विभाजित हो गया।

मध्ययुगीन काल में अनेक संतों ने समाज में फैले मिथ्यावाद, रूढ़िवाद एवं भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। इस दृष्टि से, महामति का प्रयास बड़ा महत्त्वपूर्ण था।

गुजरात के तत्कालीन जामनगर प्रदेश के दीवान के घर जन्म लेनेवाले महामति प्राणनाथ जी ने देश में जब साम्प्रदायिक भेदभाव और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियों का बोलबाला देखा तो वे बहुत क्षुब्ध हुए। इन्होंने समाज में समानता लाने के लिये मानव-मानव में किये जा रहे भेद-भाव का विरोध किया। देश-विदेश में फैले हिन्दू, मुसलिम सिख, जैन, पारसी और ईसाई आदि धर्मों का समन्वय करके एक विश्व धर्म की स्थापना का प्रयास किया। अपने तर्कों, धार्मिक ग्रंथों के उद्धरणों और धर्म प्रवर्तकों के उपदेशों के उदाहरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि मूल रूप से सभी धर्म एक है। इसलिये पृथक्-पृथक् धर्मों को एक 'विश्व धर्म' की आवश्यक कड़ियों के रूप में स्वीकार करके सबको एक परब्रह्म की शरण में आ जाना चाहिये। इस प्रकार विभिन्न धर्मों के अनुयायी बिना किसी भेद-भाव के इनके अनुयायी बने। इन्होंने अपने इस मन्तव्य का अपनी वाणी द्वारा जो प्रायः सधुक्कड़ी भाषा में है, प्रचार किया। औरंगज़ेब जो इनका समकालीन था, उसे भी अपना संदेश पहुँचाया, और धार्मिक कट्टरता को छोड़ उसे भी विश्व धर्म को मानने का आग्रह किया।

महामति की वाणियों में सृष्टि-उत्पत्ति, धार्मिक एकता, अवतारवाद, ज्ञान, प्रेम, और भक्ति आदि विषयों का प्रतिपादन है। धार्मिक एकता एवं विश्व शान्ति के लिये प्रयास करनेवाले मनीषी, महामति की वाणी की अनदेखी नहीं कर सकते।



श्री महामति प्राणनाथ मिशन, भोपाल में आयोजित महामति प्राणनाथ के ३५२ वें जयन्ती समारोह में मध्य प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री के. सी. रेड्डी का सन्देश

आज श्री महामति प्राणनाथ मिशन, भोपाल ने प्राणनाथ जी के प्रति मुझे अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर दिया, उसके लिए मैं मिशन का बहुत आभारी हूँ।

श्री प्रभु प्राणनाथ ने धर्म, वर्ण, भाषा तथा क्षेत्र की संकीर्णता से ऊपर उठकर विश्व-बन्धुत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। प्रभु प्राणनाथ ने हिन्दू तथा इस्लाम धर्म के प्रति समान रूप से श्रद्धा व्यक्त की और दोनों ही के श्रेष्ठ तत्त्वों का समन्वय कर अभिनव मानव धर्म प्रतिपादित किया था।

ऐसा कहा जाता है कि महात्मा गाँधी की माँ पुतली बाई भी प्रभु प्राणनाथ जी द्वारा प्रवर्तित प्रणामी धर्म की उपासिका थीं। पोरबंदर में पूज्य बापू के निवास स्थान पर अपने ढंग का एक प्रणामी मन्दिर था, जो अब भी है, किन्तु इसका स्वरूप अब बदला हुआ मालूम होता है। बचपन में गाँधी जी अपनी माँ के साथ इस मन्दिर में जाया करते थे।

भारतवर्ष में अनेक धर्म प्रचलित हैं किन्तु इस अनेकता में एकता के तत्त्व उपस्थित हैं। प्रभु प्राणनाथ ने इसी एकता की स्थापना पर बल दिया था। उनके संदेश का देश की एकता के साथ ही विश्व कल्याण की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

प्रभु प्राणनाथ के उपदेश अठारह हजार चौपाइयों के रूप में 'कुलजम सरूप' नामक ग्रंथ में संग्रहीत हैं। उनकी वाणी में ओज, संगीत, सौन्दर्य, शक्ति, और आदर्श आदि गुणों का अद्‌भुत समन्वय है।

उन्होंने बंधन मोचन द्वारा आत्म प्रकाश का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने सभी प्रकार की रूढ़ियों, संकीर्णताओं तथा अहंकार का प्रतिकार किया है, इसके साथ ही सभी मतों पर विचार प्रस्तुत किया। उनकी वाणी में भ्रामक चमत्कार के स्थान पर सरलता और हृदय की निश्छलता की प्रधानता है।

प्रभु प्राणनाथ ने इन आदर्शों का तथा सिद्धांतों के प्रचार के लिए लगभग सम्पूर्ण भारत की पद यात्रा की। मध्य प्रदेश के एक प्रमुख नगर पन्ना में उन्होंने अपने नश्वर शरीर को त्यागा। प्रभु प्राणनाथ अपने आदर्शों तथा सिद्धान्तों के रूप में सदैव अमर रहेंगे और सम्पूर्ण मानवता के पथ का प्रदर्शन करते रहेंगे।

प्रभु प्राणनाथ के सिद्धान्तों को साकार रूप में उतार कर ही उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की जा सकती है। मैं इस अवसर पर प्रभु प्राणनाथ के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। प्रभु प्राणनाथ की जयंती के माध्यम से उनकी लोक कल्याणकारी वाणी को प्रकाश में लाने के लिए बहुत धन्यवाद।

प्रणाम !



महामति वाणी प्रतिष्ठा

जागनी शोध पत्रिका के लेखक पिछले बीस वर्षों से इस पत्रिका को समृद्ध बना रहे हैं। महामति वाङ्मय के विभिन्न पक्षों को व्याख्यायित करनेवाले उनके लेख ज्ञानवर्धक होते हैं। महामति प्राणनाथ अन्तर्धान त्रिशताब्दी के अवसर पर चुने हुए लेखों का संचयन प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई।

संसार में अनेक धर्म एवं असंख्य मत-मतान्तर हैं। लोग धर्म के बाह्य रूप एवं अनेक रूढ़ियों को धर्म मानकर उनके पालन में मग्न हैं, इसीलिये एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। परम तत्त्व को जानने की ओर ध्यान नहीं दे रहे। यदि परम तत्त्व, आत्म ज्ञान और धर्म के आन्तरिक रूप को समझने का प्रयास किया जाय तो मानव-मानव में हो रहे विघटन को दूर किया जा सकता है। महामति प्राणनाथ जी ने 'कुलजम स्वरूप' के द्वारा धर्म के आंतरिक रहस्यों का उद्घाटन किया। धर्म का ऐसा स्वरूप दिखाया जिसे किसी भी धर्म को माननेवाला अपने धर्म का शुद्ध स्वरूप कह सकता है।

महामति ने कहा-तुम स्वयं आत्मा हो। इस मानव तन को तुमने धारण किया है। तुम्हारा सम्बन्ध उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के साथ है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वरेण्य स्वामी हैं। समस्त अवतारी पुरुष, पीर-पैग़म्बर, देवी-देवता उसी एक की उपासना करते हैं। जागनी का स्वर है कि तुम उठो ! जागो ! स्वयं को पहचानो ! उस स्वामी से सम्बंध रखो जिसे श्रीकृष्ण, पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत परमात्मा, उत्तम पुरुष, नूर, अला नूर अल्लाह परम पुरुष के नाम से जाना गया है। स्थान, काल, वातावरण और भाषा के कारण अलगाव है। उस अलगाव या बाह्य रूप के भीतर एकत्व, वाहेदत या अद्वैत को पहचान लो—

लौक चौदे कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक।
वेद कहे ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक।।

महामति की वाणी भारतीय संस्कृति को मुखरित करती हुई संसार के सभी धर्मों वर्ण, वेष की विभिन्नता में एकता के दर्शन कराती है। संसार के सभी धर्मों के तत्त्व-ज्ञान का संगम कुलजम स्वरूप में दिखायी देता है। इस पवित्र वाणी द्वारा दिया गया एकात्मता का संदेश 'गेहे-गेहे जने-जने' पहुँचाने के लिये आप सब लेखकों का प्रयास स्तुत्य है। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा श्रीराज जी की अनुकम्पा आपके साथ रहे, मेरी यही शुभकामना है।

महन्त कृष्णमणि

जामनगर
गुजरात



जागनी - त्रिशती

म. मोहन प्रियाचार्य
मंगलधाम, कालिम्पोंग, प. बंगाल

जुदे जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेष अनेक।
जिन कोई झगड़ों आप में, धनी सबों का एक।।

"भिन्न-भिन्न नामों से उस परब्रह्म को पुकारा जा रहा है,
भिन्न-भिन्न वेषों में उसे देखा जा रहा है,
विभिन्नता को लेकर आपस में मत झगड़ो,
सबका परमात्मा एक ही है।"

महामति प्राणनाथ (१६१८-१६९४) का आविर्भाव उस ज्योतिर्मय मिहिर के समान हुआ जिसके उदय मात्र से सारे नक्षत्र एवं तारागण निस्तेज होते प्रतीत होते हैं। उस महातेज में सम्पूर्ण तेज राशि का विलय होता है। परब्रह्म को परिभाषितं करने के लिए विश्व में कभी हामी और सामी दो महान परम्पराएँ चल पड़ी थीं। कालान्तर में उन दो की भी शाखाएँ अनन्त हो गई। अनेक पंथ, ग्रंथ, संत एवं मंत्रों द्वारा अध्यात्मवाद की विपुल व्याख्याएँ रखे जाने से एक धर्म अनेक-सा प्रतीत होने लगा। एक ही ब्रह्म के अनेक नाम और रूप बना दिए जाने के कारण धर्म के नाम पर विवाद, द्वन्द्व एवं तनाव उत्पन्न होने लगा। धर्मानुयायी लोग धर्म के यथार्थ से हटकर धर्म के नाम पर किए जानेवाले कर्मकाण्ड की अकाट्य बेड़ियों में जकड़ गए। जाति-पाँति, वर्ग-वर्ण भेद, छुआछूत, अंधविश्वास आडम्बर आदि कुसंस्कारों से अध्यात्म आच्छादित हो गया। महामति का उदय समस्त मानव समुदाय के एकीकरण के लिए परम आवश्यक था। उन्होंने शताब्दियों से कर्मकाण्ड की दलदल में फँसे विशुद्ध धर्म को उसी प्रकार खींचकर बाहर निकाला जैसे हिरण्याक्ष के दबदबे से पाताल में दबी पृथ्वी को वराह भगवान ने खींचकर पुनः अस्तित्व में स्थापित किया था। उन्होंने सत्य का अविभाज्य स्वरूप एवं धर्म का अविभक्त दर्शन समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसे आज के सन्दर्भ में परम आवश्यक अनुभव किया जाता है।

आज की राजनीति, अर्थनीति, विज्ञान एवं भौतिकवाद मानव समाज को क्षत-विक्षत कर रहे हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मीलों की दूरी को कम कर दिया पर दिलों की दूरी को और बढ़ा दिया है। लोगों में होड़बाजी, आपाधापी और प्रतिस्पर्धा निरंतर बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप आविष्कार सृजनात्मक न हो कर ध्वंसात्मक बन गए हैं। मानव मस्तिष्क से प्रेम सहअस्तित्व, सहजीवन जैसे सद्‌गुणों का लोप हो रहा है। क्रांति, युद्ध, मारधाड़ और धमाका का शोर सर्वत्र सुनाई दे रहा है। ऐसी ही विषम परिस्थिति में महामति ने टूटते हुए मानव अस्तित्व को अध्यात्म के रसायन सूत्र से जोड़ने

का बीड़ा उठाया था। उन्होंने विश्व की समस्त आध्यात्मिक धाराओं में व्याप्त मौलिक एकता का संयोजन कर एक ऐसे धर्मग्रंथ को प्रकट किया जिसमें विश्व के सारे धर्म चिन्तन समा गए हैं। तारतम का सागर 'कुलजम' एक ऐसा ज्ञानकोष है जिसमें विश्व धर्म समभाव की पृष्ठभूमि परिलक्षित होती है। जिसके अध्ययन, चिंतन एवं मनन से मानव-मानव की दूरी कम होगी और विश्व मानव एकता एवं विश्व धर्म एकता जैसे महानतम कार्य सिद्ध हो सकेंगे। अध्यात्म एवं विज्ञान की रस्साकशी के बीच द्रुतगति से इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर रहे विश्व भर के मानवों में महामति की वाणी अमृतधारा की भाँति नव चेतना प्रदान करेगी।

महामति प्राणनाथ अन्तर्धान त्रिशताब्दी पर 'जागनी' की विमल किरणें विश्व आकाश पर प्रतिबिम्बित हों। हमारा शत्-शत् प्रणाम।

महामति प्राणनाथ—जीवन झाँकी

१५८१ सिन्ध प्रदेश के उमर कोट गाँव में श्री मतु मेहता एवं कुँवरबाई जी के घर निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्र जी का अवतरण। अनेक साधनाओं के उपरान्त चालीस वर्ष की उम्र में श्रीमत् तारतम मंत्र की प्राप्ति।

१६१८ गुजरात जामनगर के तत्कालीन दीवान केशव ठाकुर तथा धनबाई के घर वि० सं० १६७५ आश्विन कृष्ण चतुर्दशी रविवार प्रथम प्रहर में अविर्भाव, बचपन का नाम मिहिरराज।

१६३० बड़े भाई गोवर्धन के साथ श्री नौतनपुरी धाम में निजानंदाचार्य श्री देवचन्द्र जी से सम्पर्क एवं श्रीमतारतम दीक्षा मंत्र प्राप्त, १३ वर्ष पर्यन्त गुरुदेव का सत्संग।

१६४३ बड़े भाई गोवर्धन के निधन से दुःख, तीन वर्ष तक देह कसनी एवं कठोर साधनाएँ।

१६४६ श्री देवचन्द्रजी के ओदशानुसार अहमदाबाद एवं बसरा (इराक) की यात्रा, गांगजी भाई के भ्राता खेता भाई को जगाने का प्रयास, चार वर्ष तक बसरा में निवास।

१६५० खेताभाई का धन जामनगर लाने हेतु बग़दाद की यात्रा, तत्काल सुलतान इमाम से मुलाकात, हिन्दुस्तान के समाचार से अवगत।

१६७१ वापस जामनगर आगमन, लगभग चार वर्ष तक ध्रोल एवं अहमदाबाद में दीवान पद का दायित्व निर्वाह।

१६५५ श्री देवचन्द्रजी महाराज का परमधाम गमन, गुरुपुत्र बिहारी जी की गादी प्रतिष्ठा, दो वर्ष तक जामराजा के दीवान।

१६५८ चुग़ली हो जाने पर एक वर्ष तक नज़रबंद, वाणी अवतरण-रास, प्रकाश एवं षट्रुत

१६५९ नज़रबंदी से मुक्त, ध्रोल में तेजकुंवरी को धर्मपत्नी के रूप में स्वीकार, दो वर्ष तक जूनागढ़ रहकर धर्म प्रचार, कान्हजी भाई एवं हरजी व्यास की जागनी।

१६६१ पुनः जामनगर के दीवान, दो वर्ष पश्चात् सुबेदार कुतुबद्दीन के कर वसूल न कर पाने पर नज़रबंद।

१६६५ ड्यू (दीव) में धर्म प्रचार, जयराम कंसारा को आत्मबोध, तेज कुंवरीबाई सहित सुदरसाथ का अपहरण, उन्हें छुड़ाने पाटन, नबी, पोरबन्दर, भुज एवं लाठीबंदर की यात्रा।

१६६९ ठट्ठा नगर (अब पाकिस्तान) में धर्म प्रचार। चिन्तामणि (कबीर पंथी संत) एवं लालदासजी (बीतककार) की जागनी।

१६७० मस्कत (ओमान) की यात्रा, मावजी भाई के परिवार की जागनी, अब्बास (ईरान) की यात्रा, सेठ भैरों ठाकुर द्वारा तेजकुंवरी बाई बंधनमुक्त, भैरों एवं गोवर्धन भट्ट सहित अन्य श्रद्धालुओं की जागनी।

१६७१ वापस ठट्ठानगर आगमन, नलिया कच्छ की यात्रा, गुरुपुत्र बिहारी से भावी योजनाओं पर विचार-विनिमय।

१६७२ धोराजी, घोघा पश्चात् सूरत शहर आगमन, १७ माह सूरत में धर्म प्रचार, धर्म पीठ श्री महामंगल पुरी की स्थापना, मुकुन्ददास, भीमभट्ट, श्याम भट्ट जैस विद्वान शिष्यों की जागनी, कलश ग्रन्थ का अवतरण।

१६७४ सिद्धपुर, पालनपुर होते हुए मेरता राजस्थान प्रवेश, राजाराम अग्रवाल एवं झांझन मल सहित मारवाड़ी सुन्दरसाथ की जागनी। चार माह बाद सायं टहलते समय मस्जिद में से बाँग (अजान) श्रवण, बांग में उच्चरित 'लाइल्लाह इल्लुल्लाह' को गीता के क्षर अक्षर अक्षरातीत से मिलान, समन्वय की पहल प्रारंभ, गोवर्धन भट्ट की मार्फ़त औरंगज़ेब के सेनापति जसवंत सिंह को धर्म सन्देश

१६७५ आगरा, मथुरा, वृन्दावन की यात्रा मार्ग के प्रत्येक पड़ाव में किरंतन ग्रन्थ के प्रकरणों का अवतरण।

१६७८ दिल्ली से हरिद्वार, महाकुम्भ मेले में प्रवेश चार संप्रदाय, दशनाम संन्यासी, षटदर्शनी एवं अन्य मत पन्थों से धर्म चर्चा, साम्प्रदायिक संगठन का प्रयास, विजयाभिनन्द बुधावतार की पदवी प्राप्त, बुधजी का शाका स्थापित ।

१६७९ दिल्ली के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में निवास, बादशाह औरंगज़ेब को सर्व धर्म समभाव का सन्देश देने का प्रयास, बादशाह के निकटस्थ शेख इस्लाम, (प्रधान काज़ी) रजवीख़ान (न्यायाधीश) शेख निज़ाम (उस्ताद) अकिल खान (अमीर) सिद्धी पोलाद (कोतवाल) को पत्र द्वारा आख़िरी इमाम के ज़ाहिर होने का सन्देश। बारह सत्याग्रही शिष्यों को जामा मस्जिद तथा लाल क़िला में भेजना, स्वयं अनूप शहर रहकर 'सनंध' ग्रंथ का उपदेश, प्रकाश एवं 'कलश' का हिन्दी रूपांतरण, बारह शिष्यों द्वारा बादशाह औरंगजेब से धर्म चर्चा, चार माह की नज़रबंदी।

१६८० कामा पाहाड़ी, आमेर, सांगानेर एवं उदयपुर की यात्रा, राणा राजसिंह को धर्म सन्देश, मन्दसौर उज्जैन, बुरहानपुर एवं औरंगाबाद की यात्रा राजा भावसिंह हाड़ा की जागनी।

१६८१ आकोट, देवगढ़ होते हुए रामनगर की यात्रा, बादशाह औरंगज़ेब द्वारा

भेजे गए सूबेदार पुरदल खान एवं शेख़ खिदर को क़ुरान के माध्यम से धर्मबोध, भिखारी दास एवं शासक छत्रसाल गौड़ को धर्म शिक्षा, धर्म समन्वय की पृष्ठभूमि रूप में 'खुलासा' ग्रन्थ का अवतरण।

१६८३ गढ़ा, अगरिया, बिलहरी होते हुए पन्ना में प्रवेश, किलकिला नदी का शुद्धिकरण, धर्म का झंडा फहराना, मऊ में शासक छत्रसाल से मुलाकात, धर्म रक्षार्थ छत्रसाल को आशीर्वाद, पन्ना चोपड़ा की हवेली में पधरावनी, छत्रसाल को शिष्य बनाकर महाराजा की पदवी से विभूषित, श्री ५ पद्मावती पुरी की स्थापना, बंगलाजी मन्दिर का निर्माण ।

१६८६ छत्रसाल को पन्ना में हीरा मिलने का वरदान, अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिये तलवार भेंट, दिग्विजय यात्रा, राठ खड़ोत, जलालपुर, शास्त्रार्थ में 'मेहेजर नामा' प्राप्त।

१६८७ शासक बसन्त सुरखी के आग्रह पर एक वर्ष चित्रकूट निवास, 'क़यामतनामा' छोटा एवं बड़ा का अवतरण।

१६८८ पुनः पन्ना आगमन। खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार, सिंधी, मारफत ग्रन्थों का अवतरण; पाँच हज़ार से अधिक सुन्दर साथ शिष्यों की जागनी, विजावर में जागनी रास लीला।

१६६१ श्री गुमंटजी मन्दिर का निर्माण, सुन्दरसाथ द्वारा अष्ट प्रहर की सेवा, एक वर्ष का मौन धारण।

१६६३ श्रीमती तेज कुंवरीबाई का परमधाम गमन।

१६६४ वि० सं० १७५१ श्रावण कृष्ण तृतीया, रात्रि के अन्तिम प्रहर में परमधाम गमन, चतुर्थी को अन्तिम दर्शन एवं पंचमी तिथि के दिन पार्थिव शरीर को पन्ना में समाधि, गादी पर उनकी सम्पूर्ण वाणी —'तारतम वाणी' या कुलजम स्वरूप की प्रतिष्ठा।



महामति प्राणनाथ

(स्व) पं. सुन्दरलाल

मानव इतिहास के शुरू से लेकर दुनिया के अनेक देशों में अलग-अलग समय पर अनेक धर्म फैले हैं। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसके मायने हैं— 'धारण करना'—'सँभाले रखना' अथवा सबको एक सूत्र में पिरो कर साथ रखना। अंग्रेज़ी शब्द 'Religion,' Religio से बना है जिसका अर्थ है—to bind अर्थात् बाँधे रखना। धर्म अर्थात 'रिलिजन' प्रेम की वह डोर है जो मनुष्य को अपने ही शरीर में समाज और दुनिया को एकसूत्र में बाँध कर रख सके।

दुनिया के अलग-अलग देशों में लोगों का एक दूसरे से मिलना बढ़ गया है। ऐसे लोगों की तादाद भी बढ़ रही है जो मानव एकता को साकार करने के लिए उत्सुक और बेचैन हैं। इस शुभ प्रगति में मानव एकता के प्रेमियों को सबसे अधिक सहायता धर्म से मिल सकती थी परन्तु यह विचित्र दुःख की बात है कि एकता लानेवाली वस्तु ही मानव को अलग करने का कारण बन गई है।

कारण स्पष्ट है— धर्म या मज़हब के दो अलग पहलू होते हैं। एक उसके सदाचार के नियम—रीति रिवाज़ और कर्मकांड ; दूसरे उसका ज्ञान-परमात्मा या खुदा के बारे में, मनुष्य की मूल सत्ता से सम्बन्ध के बारे में जानकारी दिलानेवाला पहलू। यदि हम सभी धर्म ग्रंथों को ध्यान से देखें तो उनमें अधिकतर बातों में गहरी समानता दिखाई देती है। इन बातों को हम धर्मों की बुनियादी एकता कह सकते हैं। पूजा आदि के तरीक़ों तथा देश काल भाषा के अनुसार कई बातों में अन्तर हाना लाज़मी था। उनकी परवाह न करते हुए धर्म गुरुओं का कर्त्तव्य बन जाता है कि वे धर्म की एक-सी दिखनेवाली तथा परस्पर मिलानेवाली बातों का प्रचार करते। ऐसा न करके आम धर्म प्रचारकों ने अपने स्वार्थ के लिए केवल उन्हीं बातों को लोगों को बताया जिनसे आपस में अलग गुटों में बँटे रह जाएँ। भारत तथा अन्य देशों में भी इस बात के प्रमाण हमें बहुतायत से मिल सकते हैं जिसके फलस्वरूप इन्सान ने धर्म के नाम पर बड़े ही शर्मनाम काम किए हैं।

दूसरी ओर हमारे देश में अनेक तत्त्वदर्शी सन्त और महात्मा हमें इस बात की याद दिलाते रहे हैं कि दुनिया के सब धर्मों के बुनियादी सिद्धान्त और मूल तत्त्व एक हैं। इनमें कहीं अन्तर दिखाई देता भी है तो उसे ज़्यादा न बढ़ाकर प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर रहा जा सकता है। यही सच्चा धर्म है और इसी को मानने में हम सबका कल्याण है। पिछली कुछ शताब्दियों में कबीर, दादू, मलूक दास, चैतन्य महाप्रभु, तुकाराम, बुल्लेशाह, बाबा फ़रीद, नानक आदि अनेक संतों ने इस ओर सफलतापूर्ण प्रयास किए

हैं। इसी तरह का एक अत्यन्त आदरणीय नाम महामति प्राणनाथ जी का है।

महामति प्राणनाथ (मेहराज ठाकुर) का जन्म गुजरात शहर नवा नगर—जिसे आज जामनगर कहते हैं—में, १६१८ में हुआ। पिता का नाम केशव ठाकुर और माँ का धनबाई जी था। केशव ठाकुर जामनगर के दीवान थे। उनके बाद मेहराज ठाकुर वहाँ के दीवान बने। उन्हें गुजराती, हिन्दुस्तानी एवं संस्कृत भाषा पर पूर्ण योग्यता प्राप्त थी। बारह वर्ष की उम्र में उन्होंने निजानन्द सम्प्रदाय (परनामी धर्म) के आचार्य श्री देवचन्द्र जी से दीक्षा ली। बड़े होने पर फूलबाई जी से इनका विवाह हुआ। फूलबाई शीघ्र ही धाम सिधार गईं। कुछ वर्ष बाद उनका दूसरा विवाह वीरभाण जी की पुत्री तेज बाई जी से हुआ। सैंतालीस वर्ष की उम्र में उन्होंने वैराग्य वेष ले लिया परन्तु तेजबाई जीवनपर्यन्त इनके साथ रहीं।

अपने धर्म प्रचार के कार्य के लिए श्री प्राणनाथ जी भारत के अनेक भागों जैसे गुजरात, कच्छ, राजस्थान, उत्तर भारत, मध्य भारत में दीप बन्दर, ठट्ठा नगर जामनगर, खम्भालिका सूरत, सिद्धपुर, पाटनपुर, दिल्ली, हरिद्वार, आमेर, उदयपुर, औरंगाबाद, मंदसौर रामनगर, आदि होते हुए बुन्देलखंड के पन्ना में जाकर स्थायी रूप से रहने लगे। कुछ वर्ष किसी कार्यवश अरब में भी रहे जहां अरबी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान हो गया। उनके अनुयायियों में हिन्दू मुसलमान दोनों थे।

बुंदेलखंड का राजा छत्रसाल इनके ख़ास शिष्यों में से था। ७६ वर्ष की आयु में महामति प्राणनाथ जी ने अपना नश्वर शरीर छोड़ा। उन्हें पन्ना में ही समाधि दी गई।

सब धर्मों की एकता पर ज़ोर देते हुए प्राणनाथ जी ने लिखा है—

सब सयानों की एक मत पाई।
पर अजान देखें रे जुदाई।। किरंतन, प्र. ४

हिन्दू और मुसलमान भारत में दो प्रमुख धर्म उस समय प्रचलित थे। हिन्दू से उनका अभिप्राय सभी हिन्दू सम्प्रदायों से तथा मुसलमान और कतेब से चारों ग्रंथो—जंबूर, अंजील, तौरात, क़ुरान तथा उनके माननेवालों से था। धर्मों के मुख्य पारिभाषिक शब्दों के भाषा भेद को हटाकर बड़े सुन्दर रूप में उनकी एकता का दिग्दर्शन कराया—

नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनियां, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।
लोक चौदे कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक।
वेद कहे ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक।।
तीन सृष्टि कही वेद ने, उमत तीन कतेब।
लेने न देवे मायना, दिल आड़ा दुश्मन फरेब।।
दोऊ कहे वजूद एक है, अरवाह सबों की एक।
वेद कतेब एक बतावहीं, पर पावे नहीं विवेक।।
जो कछु कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाए भेद।।
बोली सबों जुदी परी, नाम जुदे धरे सबन।
चलन जुदा कर लिया, ताथें समझ न परी किन।।
सोई अवलीस सबन के, दिल पर हुआ पातशाह।
एही दुशमन सबन का, जिन मारी सबन की राह।। खुलासा-दोनामा

हम विवेक से काम नहीं लेते—माया के, अबलीस के, शैतान के गुलाम बनकर आपस में झगड़ते हैं। वही हमारा दुश्मन हमें एकता की ओर ध्यान ही नहीं देने देता। महामति प्राणनाथ जी ने अनेकों पारिभाषिक शब्दों, कथा-कहानियों का मिलान करके अपने 'खुलासा' ग्रंथ में सभी धर्मों की गुत्थियों को सुलझा दिया है।

महामति प्राणनाथ हद दर्जे के स्पष्टवादी थे। जहाँ धर्म ग्रंथों तथा उनके रचयिताओं की प्रशंसा की वहाँ धर्म के नाम पर थोथे रीति-रिवाजों को ही धर्म माननेवालों की भरसक निन्दा की। मुसलमान को सच्चे मुसलिम और मोमिन की पहचान बताई और हिन्दू को सच्चे मानव और वैष्णव की परिभाषा दी। मनुष्य की क़द्र उसके धन, रूप, जाति-पाँति से नहीं उसके गुणों और प्रेम से होनी चाहिये। उस भयावह युग में अकेले जन प्रवाह से टक्कर लेते हुए भी निराशा उनके पास न फटक सकी। राजनीति, धर्म जीवन को वे अलग न मानते थे। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति छुआछूत की उन्होंने भरसक निन्दा की। मानव जाति की सामाजिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक एकता के वे ज़बर्दस्त समर्थक और प्रचारक थे।

यह दिखाने के लिए कि बुनियादी एकता के महत्त्वपूर्ण सिलसिले की श्री प्राणनाथ जी एक जबरदस्त कड़ी थे। हम अन्य तीन ऐसे ही संतों की वाणी के उद्धरण देना चाहते हैं जिन्होंने जीवन में ऐसे ही सिद्धान्तों का प्रचार किया। कबीर के अनुसार—

भाई रे दोऊ जगदीश कहां ते आयो, कहो कौने बौराए।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हज़रत नाम धराए।।
गहना एक कनक ते गहना, वामे भाव न दूजा।
कहन सुनन को दोऊ कर थापे, एक निमाज़ एक पूजा।।
को हिन्दु को तुरक कहावे, एक जिमी पर रहिये।
वेद कतेब पढ़ें बै कुतबा, बै मुल्ला बै पांडे।।
कहहिं कबीर वे दोनों भूले, रामहि किनहू न पाया।।

गुरु गोविन्द सिंह के नीचे लिखे पद इस विषय पर अपने ढंग से बड़े ही सारगर्भित और निराले हैं—

मानस की जाति सबे, इक्के पहिचानवो।
देउरा मसीत ओई, पूजा निमाज ओई,
वेद और कुरान ओइ।
न्यारे-न्यारे देसन के भेष को प्रभाव है।।

एक सूफ़ी फ़क़ीर ने कहा है—

शादबाश-ए-इश्क़, खुश सौदाय मा।
ए इलाजो नखवतो ना भूसे मा।
ऐ तू अफलातूनो, जाली नूसे मा।
ए दवाए जुमला इल्लत हाय मा।
वेद अवस्था अल् कुरान इंजील नीज़।
काबा ओ बुतखाना ओ आतश कदा।
कल्बे मन मकबूल करवा जुमला चीज़।
चूंमरा जुस इश्क़ ने दीगर खुदा।

—यानी ऐ प्रेम, ऐ मेरे प्यारे उन्माद शाबाश! तू ही मेरे अहंकार और मेरे घमण्ड

का इलाज है। तू ही मेरे मानसिक रोगों को दूर करनेवाला दार्शनिक है। तू ही मेरे शारीरिक रोगों को दूर करनेवाला वैद्य है। तू ही मेरे हर तरह के रोगों की दवा है। मेरे दिल ने वेद, ज़िंदावेस्ता, क़ुरान, इंजील, काबा, मन्दिर और अगियारी सबको एक समान अपना लिया है। क्योंकि प्रेम के सिवा मेरे लिए कोई दूसरा खुदा ही नहीं है।

इसी को कबीर के शब्दों में देखिये—

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

महामति के शब्दों में—

जब चढ़े प्रेम के रस। तब हुए धाम धनी बस।
जब उपजे प्रेम के तरंग। तब हुआ धाम धनी सों संग।।
प्रेम नज़रों जो कछु आया। ताको इतही अखंड पहुँचाया।।
प्रेम है बड़ो विस्तार। भव जल हुतो जो खार।।
सो मेट किया सुधारस। सुखअखंड धनी को परस।
प्रेमे गम अगम की करी। सो सुध बैराट में सब विस्तरी।।

परिकरमा १/५६-५८

महामति प्राणनाथ के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग है उनका दिल्ली में सोलह महीने रहकर औरंगज़ेब को धर्म का सच्चा पैग़ाम पहुँचाने का प्रयास करना। उन्होंने उसे अपने सन्देश में क़ुरान के हवाले देकर एक खुदा और एक धर्म की दुहाई दी। उनके कुछ शिष्य अपनी जान हथेली पर रखकर उनके इस प्रयास में डटे रहे परन्तु औरंगज़ेब की कट्टरवादी नीतियों के कारण उन्हें विशेष सफलता न मिली।

जो भी हो, इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं कि जिस एक मात्र मानव धर्म का महामति प्राणनाथ उपदेश दिया करते थे और दे गये हैं वही निकटवर्ती भविष्य में सारी मानव जाति का एक समान और एक मात्र धर्म होनेवाला है। विश्व धर्म को एक माननेवालों को जिस संहिता की आवश्यकता है वह बहुत कुछ हमें उनकी 'वाणी' से मिल सकती है। मनुष्य के व्यक्तिगत कल्याण और सारी मानव जाति के कल्याण के लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं।



राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार महामति प्राणनाथ

(स्व०) मुनि सुशील कुमार जी

महामति प्राणनाथ जी इस देश की वह ज्ञान ज्योति हैं जिन्होंने मनुष्य की भावनाओं से वासनाओं को धो देने का एवं उसके आत्म विकास को चरम सीमा तक पहुँचाने का पवित्र प्रयास किया है। ऐसे महात्माओं से संसार उन्नत दशा की ओर अग्रसर हो सकता है। आज समाज में विभिन्न प्रकार की विषमताएँ बढ़ रही हैं और साम्प्रदायिक घेरा-बन्दी मनुष्य को संकीर्णता के घेरे में बाँध रही हैं। ऐसे अवसर पर महामति प्राणनाथ की याद आये बिना नहीं रह सकती जिन्होंने धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों का चिन्तन कर और विभिन्न धर्मों के ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर धार्मिक एकता का मार्ग प्रशस्त किया है।

भारत विभिन्न धर्मों का देश है। अनेक प्रकार के फूल इस धरा के उद्यान में खिले हैं किन्तु सच्चा माली वह है जो इन फूलों की रक्षा करे और इन्हें गुलदस्ते के रूप में गूँथ दे। महामति प्राणनाथ ने विभिन्न धर्मों के सैद्धान्तिक पुष्पों को गुलदस्ते में गूँथा। भारतीय एवं विश्व समाज को धर्म के गुलदस्ते को भेंट करने एवं महामति प्राणनाथ की इस जयन्ती पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मुझे आत्मिक आनन्द हो रहा है। हमारे देश को साम्प्रदायिकता और स्वतंत्रता इन दोनों में से किसी एक चीज़ को ही चुनना होगा। अगर साम्प्रदायिक तनाव और संकीर्णतायँ इस देश से विमुक्त न हो सकीं तो हम स्वाधीनता का भोग नहीं कर सकेंगे। स्वाधीनता के लिए प्राणनाथ जैसे सन्तों के मार्गदर्शन में चलने की ज़रूरत है। संकीर्णता, तंगदिल्ली, आग्रह, आरोप एवं द्वेषान्वेषण आदि का हमें निराकरण करना होगा। विश्व मंगल की भावना को सुदृढ़ता के साथ अपने मन में जमाना होगा। संसार में भौतिक विकास चाहे कितना भी हो जाये किन्तु आत्मिक विकास के बिना यह जगत अपने विनाश को रोक नहीं सकता।

स्वामी प्राणनाथ विज्ञान और धर्म में समझौता चाहते थे। समाज की कुरीतियों, कुप्रथाओं ओर अर्थशून्य रूढ़ियों के वे एकदम विरुद्ध थे। ज्ञान पूर्वक आचरण में लाये गये कर्म को ही वे अनुष्ठान मानते थे। धार्मिक पुराणों में अनेक प्रकार की धार्मिक विषमताएं, बाईबल, तोरेत, अंजील आदि धर्म ग्रन्थों में बताई गई रहस्यमय पहेलियों को इतने शुद्ध ढंग से उन्होंने समझाया है कि कोई भी मनुष्य उसके भावार्थ को समझ सकता है। उनका कहना था कि मनुष्य अहंकार के गधे पर चढ़कर कभी शुद्ध ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः कोई भी व्यक्ति तपःपूत आचरण किये बिना अपने मन को निर्मल नहीं बना सकता। भावना की शुद्धि और अन्तःकरण की निर्मलता ही उनके

जीवन का लक्ष्य था। समाज को वे बदल देना चाहते थे, प्रेम और सत्य के नये मूल्यों की स्थापना इस ढंग से प्राणनाथ जी ने की थी अगर हम उसमें से किंचित् मात्र भी अपना सकें और उनके उपदेशों को आचरण में ला सकें तो हम अपनी शान्ति ही नहीं समूचे विश्व बन्धुत्व का मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे और सच्चे रूप में विश्व धर्म सम्मेलन के रूप को निखार सकेंगे।

राष्ट्र की एकता के सूत्रधार के रूप में मैं महामति प्राणनाथ जी के अवदान को मानता हूँ। कबीर ने भावात्मक एकता और प्राणनाथ जी ने धार्मिक एकता का अविनाशी बिरवा बोया है उसी की छाया में संसार सुख शान्ति की साँस ले सकता है।

भारत एक विशाल और महान देश है। अनेक विचार धाराएँ-धार्मिक-राजनीतिक तथा बौद्धिक इस देश में समानान्तर चलती रही हैं। भारत, ने अपनी प्राचीन सभ्यता को अनेक बाधाओं के विद्यमान रहते हुए भी अक्षुण्ण रखा है। स्मरण आता है गीता का वह वचन— 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।' इससे हमारी प्राचीन विचार धारा की रक्षा किस प्रकार हो सकी इसकी एक कल्पना हमारे मानस पटल पर अंकित हो जाती है।

आज समस्त संसार भौतिकवाद की ओर अग्रसर हो रहा है। एक तेज़ वायु के झंझावात में हम पत्तों की तरह उड़ते जा रहे हैं। इस तूफ़ान में स्थिर रह पाने की शक्ति हमें धर्म और अध्यात्म ज्ञान से मिल सकती है। वह शक्ति हम में है परन्तु हम उसे भूलकर असहाय बने तेज़ चलनेवाली जल धारा में लकड़ी के तख्तों के समान बहते चले जा रहे हैं।

भारत की यह एक विशेषता रही है कि यहाँ अनेक महापुरुष अवतीर्ण हुए, जिन्होंने विभिन्न धर्मों के बीच एक धर्म को स्पष्ट देखा। वे महापुरुष किसी एक सम्प्रदाय विशेष के न होकर समस्त जनता के थे। सभी ने उन्हें पूज्य माना। इन महापुरुषों ने धार्मिक सिद्धान्तों की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ा और सभी विचारों को एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का माध्यम बनाया। ऐसे सन्तों में मध्यकालीन युग के प्रबुद्ध विचारक स्वामी श्री प्राणनाथ जी (१६१८-१६९४ ई०) का प्रमुख स्थान है।

श्री प्राणनाथ जी ने सड़ी-गली रूढ़ियों को काटकर एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण सामने रखा। वे अनेक भाषाओं के पंडित थे। जन्म से गुजराती होते हुए भी उन्होंने आत्माभिव्यक्ति के लिए हिन्दवी-हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया। वे जानते थे कि भारत अनेक भाषाभाषियों का देश है परन्तु जनता की भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है। भाषा के प्रश्न पर समन्वय का इससे अधिक उत्तम कौन-सा रास्ता हो सकता था। इसलिए राष्ट्रभाषा शिल्पी के रूप में उनकी मान्यता है।

श्री प्राणनाथ जी का यह रूप हमें देखने को न मिलता यदि कुछ पाश्चात्य और भारतीय लेखकों ने जनता का ध्यान इस ओर न दिया होता। डॉ. ताराचंद, पं. क्षितिमोहन सेन, डॉ. भगवान दास गुप्त, डॉ. माताबदल जायसवाल तथा डॉ. राजबाला के प्रयास इस विषय में स्तुत्य हैं। श्री प्राणनाथ मिशन के प्रयास के फलस्वरूप श्री प्राणनाथ जी एक सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध न होकर सामान्य जन से सम्बद्ध हो सके। श्री प्राणनाथ जी की वाणी की निम्न चौपाई उनके जीवन दर्शन और विचारों को स्पष्ट करती है।

खोज बड़ी संसार रे, तुम खोजो रे साधो।
खोजत खोजत सतगुरु पाइये, सतगुरु संग करतार।।

उपर्युक्त चौपाई एक ओर दार्शनिक विचार धारा से ओत-प्रोत है दूसरी ओर जन साधारण को सेवा का पाठ पढ़ाती है। नवानगर (जामनगर) के दीवान का पद त्याग कर वे धर्माभियान पर निकले और अपने अनुभवों का सार उन्होंने अपने साहित्य में दिया। साहित्य समाज का दर्पण है। अतः तत्कालीन सभी परिस्थितियों का चित्र तथा उसे सुधारने के उपाय हमें उनकी वाणी में मिलते हैं। उनका समय संघर्ष और मुग़ल साम्राज्य के आतंक का युग था। सन्यास धारण कर लेने के पश्चात् भी उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों से मुँह न मोड़ा। जनता को अत्याचारों के विरुद्ध संगठित किया। यही उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण का आधार बन गया। अत्याचारों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

असुरें लगाया रे हिन्दुओं पर जज़िया, वाको मिले नहीं खान पान।
जो गरीब न दे सकें जज़िया, ताय मार करें मुसलमान।।
किरंतन, ५८/१६

इतना होने पर भी उन्होंने धर्म समन्वय पर ज़ोर दिया। उन्होंने यह कहा कि विरोधी बातों की चर्चा करना छोड़कर धर्म में समानता लानेवाली बातों का प्रचार किया जाय तो परस्पर सद्भावना और प्रेमपूर्वक रहा जा सकता है।

श्री प्राणनाथ जी का युग धार्मिक झंझावात का युग था। मुसलमान शासक तलवार की शक्ति से अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म में लाना चाहते थे। इसका विरोध नागपंथियों, हठयोगियों तथा तत्कालीन संतों की वाणियों में मिलता है। इसके अतिरिक्त निर्गुण, सगुण, और पौराणिक मायावाद आदि के अनेक झगड़े थे। स्वयं हिन्दू जनता भी आडम्बर, कुरीतियों तथा अन्ध विश्वासों की शिकार हो रही थी। श्री प्राणनाथ जी ने एक साथ हिन्दुओं को अपने अन्धविश्वासों से मुक्त होने की प्रेरणा दी, शासक वर्ग को प्रेम का पाठ पढ़ाना चाहा तथा धर्म प्रचारकों को धर्म समन्वय का मंत्र दिया।

साहित्य के क्षेत्र में जहाँ राम कृष्ण के जीवन की पावन धारा में जनता सराबोर हो रही थी वहाँ इश्क़ हक़ीक़ी को मानने वाली सूफ़ी विचार धारा भी ज़ोर पकड़ रही थी। प्राणनाथ की वाणी में इन सब भावों के दर्शन हमें मिलते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से छत्रसाल और भूषण कवि ने बड़ी रसभीनी तथा ओजपूर्ण कविताओं की रचना की।

श्री प्राणनाथ जी ने भरसक प्रयास किया कि वे अत्याचारों को दूर कर सकें। उन्होंने बादशाह के पास अपने शिष्यों को भेज कर और कयामत का ध्यान दिला कर उसी के धर्म ग्रन्थ क़ुरान द्वारा उसे समझाना चाहा कि राजा का काम प्रजापालन है। सच्चे मुसलमान राजा को प्रजा पर अत्याचार करना शोभा नहीं देता। उन्होंने क़ुरान के प्रमाण देकर बताया कि सच्चा मुसलमान बदी से दूर रहकर खुदा से डरे, किसी पर अन्याय न होने दे—

खूनी की सोहबत न करें, या दीन मुसलमान। सनंध, २१/२२

महामति मानते थे कि खुदा की दृष्टि में न कोई हिन्दू है न मुसलमान। ये सब भेद मनुष्य के बनाए हुए हैं। वे उस भयानक युग में कुछ काल तक देहली में समन्वयात्मक विचारों का प्रतिपादन करते रहे परन्तु वहाँ विशेष सफलता न मिलने पर सारे देश में घूम-घूम कर उन्होंने राजाओं को संगठित किया ताकि वे अत्याचारी सम्राट की नीतियों का मुक़ाबला शारीरिक शक्ति से कर सकें। उन्होंने कहा—

जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो। किरंतन, ४१/४

महामति की मान्यता थी कि जन्म से कोई छोटा बड़ा नहीं— आचार और कर्म से मनुष्य की पहचान होती है। वे सदाचारी चाण्डाल को दुराचारी ब्राह्मण से अच्छा समझते थे। उनका विरोध किसी व्यक्ति, सम्प्रदाय से नहीं बल्कि बुराइयों से था। और उन्हें दूर करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। हिन्दू और मुसलमानों को एक ही खुदा की औलाद मानकर उनमें भेदभाव उत्पन्न करनेवाले 'मुल्ला' और पंडित का उन्होंने विरोध किया—

पढ़े मुल्ला आंगू हुए, सो तो खाय गुमान।
लोकों को बतावहीं, कहें हम पढ़े कुरान।। किरंतन, ४०/४

उदर कारण बेचें हरि को, मूढ़ो एही पाया रोजगार।
मारते मुख ऊपर; वाको ले जासी जमद्वार।। किरंतन, २७/५

उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट होता हैं कि वे पाखंड के कितने विरोधी थे और समन्वय मार्ग के कितने समर्थक। उनका विचार एकांगी न हो कर सांगोपांग था और सीमित न हो कर समस्त विश्व के लिए था। परिस्थितियों के आधार पर उन्होंने जो मार्ग अपनाया, उसका आज भी उतना ही महत्त्व है जितना उस युग में था। धर्म और राजनीति का ऐसा समन्वय और कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। उन्होंने समय के रुख़ के अनुरूप आचरण करना सिखाया। कर्म, ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय ही मनुष्य जीवन को ऊँचा उठाने में सहायक बनता है। छत्रसाल के रूप में एक ओजस्वी वीर, कुशल शासक और परम भक्त का उदाहरण वे हमारे सामने प्रस्तुत कर गए हैं। उन्होंने सभी विचारों और सम्प्रदाय के लोगों के लिए भेदभाव को मिटाकर ज्ञान के द्वार खोल दिए। सभी वर्गों के सभी धर्मों के सभी विचारों के नर-नारियों को समान रूप से मिल-जुल कर रहना सिखाया। वर्ण-भेष जाति-पाँति भूल सब लोग एक दूसरे को 'साथी' सुन्दरसाथ के नाम से सम्बोधन करने लगे। उनका खान पान एक था। इकट्ठे रहना और खाना ही नहीं वे परस्पर विवाहादि भी करने लगे।

हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने एक वर्ग, वर्ण, जाति के भेदभाव से रहित समाज की स्थापना की। जिसे उन्होंने सुन्दरसाथ कहा। संसार के सभी लोगों को एक सूत्र में पिरोने का आदर्श उन्होंने स्थापित कर दिया। श्री प्राणनाथ जी की सबसे बड़ी विशेषता कथनी और करनी में भेद न होना है। उन्होंने जो कहा वह किया, और जो किया उसे माना—

कहनी कही सब रात में, अब आया रहनी का दिन।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि श्री प्राणनाथ जी एक भविष्यवक्ता थे। उन्होंने जो मूल्य अपने समय में स्थापित किए उनका आज भी उतना ही अथवा उससे भी अधिक महत्त्व है। अनेक देशों की अनेक समस्याएँ हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध महावीर, नानक एवं प्राणनाथ की वाणियों से हमें अपने उद्धार का मार्ग खोजना ही पड़ेगा।



महामति प्राणनाथ को श्रद्धांजलि

(स्व.) प्रो. राजाराम शास्त्री
भूतपूर्व संसद् सदस्य, उपकुलपति, काशी विद्यापीठ

हमारे राष्ट्रीय मूल्य जिनके कारण संसार में हमारी मान्यता है स्वामी प्राणनाथ जी का इतिहास उन्हीं मूल्यों को व्यावहारिक रूप देने के कार्यक्रमों का इतिहास है। सही मजहब इन्सनियत सिखाता है। रूह को साफ़ करके परमात्मा के काबिल बनाता है। इन्सानों में एकता पैदा करता है। प्रेम और भाईचारे का सन्देश देता है। धार्मिक एकता और विश्व-शान्ति, मानव एकता के संदेशदाता की स्मृति को हम विश्व धर्म दिवस के रूप में मना रहे हैं।

राष्ट्रीय एकता और मानव एकता में गहरा सम्बन्ध है। राष्ट्रीय एकता और इन्सानी एकता का एक ही सिलसिला है। इन्सानी एकता जब हो तो राष्ट्रीय एकता भी हो जाती है। राष्ट्रीय एकता में महामति का अपूर्व योगदान है। इसलिये उनका जन्म दिवस हम इस सिलसिले से मना रहे हैं या यूँ कहें कि उनके सिलसिले से यह आयोजन किया जा रहा है जो राष्ट्रीय एकता के विषय पर है। यह जो हमारी राष्ट्रीय एकता के बाधक तत्त्व हैं—साम्प्रदायिकता-जाति-पाँति इन सब वैमनस्य फैलानेवाली बातों का स्वामी जी ने विरोध किया। उनके उपदेश आज के ज़माने में भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उनके युग में थे। इन्सानी एकता के आधार पर सब के हक़ूक़ को बराबर रखना वगैरा। सब बातों की बुनियाद स्वामी प्राणनाथ के उपदेशों से मिलती है। इस वज़ह से उनकी बातें इस सिलसिले में बहुत प्रासंगिक है। स्वामी प्राणनाथ जी की विशेषता धार्मिक क्षेत्र में बहुत है। परन्तु हम यहां राष्ट्रीय एकता और धार्मिक एकता के विषय में उनकी बातों की चर्चा करेंगे। आप जानते हैं कि हमारी राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या साम्प्रदायिकता है और साम्प्रदायिकता नाम धारण कर हर साम्प्रदायवादी अपने आप को किसी धर्म से सम्बन्धित मान लेता है। धर्म इसलिये पैदा हुए कि सबको उस एक खुदा में मिलाएँ। लेकिन वही धर्म न जाने कैसे एक दूसरे में मुख़ालफ़त और विद्वेष पैदा करने लगे। फिर इस बात की ज़रूरत पड़ी कि अवतार, पैग़म्बर और मसीहा आएँ और इन्सान की बुनियादी एकता की तरफ़ उसका ध्यान दिलाएँ। महामति प्राणनाथ उन्हीं महामानवों में थे, कई लोग हाल में भी हुए जिन्होंने कि हर मज़हब के इख़्तलाफ़ को ध्यान में न रखकर जो इत्तेफ़ाक़ है, उनकी तरफ़ हमारा ध्यान दिलाया। गुरु नानक ऐसे हुए, बहाउल्ला हुए, जिन्होंने ऐसी बातों पर ज़ोर दिया। स्वामी प्राणनाथ जी ने वही बातें अपने रूहानी एहसासात के, रूहानी अनुभव के बल पर कही। क्योंकि और लोग तो इस बात को किताबें पढ़कर कहते हैं। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये, वही

दस 'कमांडमेंट' मूसा के हैं वही ईसा के सर्मन में कहा गया, वही हजरत मुहम्मद ने क़ुरान के जरिये दुनिया के सामने रखा। बस कहने का ढंग अलग है। विद्वानों की किताबी बात अलग बात है। यह बाहरी उसूल है नैतिकता के, इख्तलाक के उसूल है जो कि ज़िन्दगी में अपनाए जाएँ। लेकिन इनकी बुनियादें क्या है ? लोगों को लगे कि हम सब एक हैं। मूल रूप से सब रूहें एक हैं। उसी खुदा के अन्दर हैं और खुदा सबके अन्दर व्याप्त है। जब इस एकता या बुनियादी समानता पर हम पहुँचते हैं तब हम सब महसूस करते हैं कि अगर हम अपना फ़ायदा करते हैं तो दूसरे का फ़ायदा करते हैं। दूसरे का नुक़सान करते हैं तो हमारा भी नुक़सान हो जाता है। क्योंकि हम सब एक खुदा के बन्दे, उसका नूर हैं। तमाम रूहें उस एक बड़ी रूह की अंग हैं। उसी से निकलकर उसी में समा जाती हैं। जब इस अनुभव को, रूहानी एहसास को कोई योगी, कोई सिद्ध पुरुष सामने रखता है तो यह सिद्ध होता है कि सारे मजहब सब एक ही बात कहते हैं। कोई और कहे तो बात दूसरी बन जाती है और उसे हक़ ही क्या है कहने का। जो कोई और इस बात को कहते भी हैं वे अपने उस अनुभव के आधार पर थोड़े ही कहते हैं जिस अनुभव के आधार पर ईसा या कि वेद के ऋषियों ने सन्देश दिया था। योग का, रूहानियत का अध्यात्म का अनुभव जब तक न हो और वह कोरे किताबी ज्ञान के बल पर नैतिकता का उपदेश देता है तो उस पर किसी को भरोसा या इतमीनान थोड़े ही हो सकता है। इसलिये वैसे ही लोगों की ज़रूरत होती है जो रूहानी एहसास रखते हों और उस तजुर्बे के आधार पर बताएँ कि तुम लोगों ने धर्मों को जो मुख्तलिफ़ समझ रखा है यह सब इख्तलाफ़ ऊपरी हैं और बाहरी हैं। तरह-तरह के पूजा-पाठ और तरह-तरह के कर्मकांड हैं जो कि अलग-अलग देशों और अलग आबोहवा के हिसाब से बन गए हैं। असलियत कर्मकांड में नहीं, वरन् आध्यात्मिकता में है, जिसके कि उसूल हर जगह एक से ही हैं। उस बात को योगी अनुभव से बता सकता है और वही इस इख्तलाफ़ को दूर कर सकता है और कोई कर नहीं सकता।

श्री प्राणनाथ जी की विशेषता तो यही है वे इतना ही नहीं कि इख्तलाख के, नैतिकता के उसूल बताकर चुप रहे जाते हैं बल्कि उन्होंने धर्म के अन्दर घुस करके इबादत के जो तरीक़े हैं, साधना के तरीक़े हैं, साधना में जो रूहानी रहस्य छिपे हैं, जो मिस्टिसिज़्म है, उनके अन्दर वो बातें देखी हैं जिनका ज़िक्र सूफ़ी फ़क़ीरों ने किया है। मौलवी रूम की पहली मसनवी आपको याद होगी। बाँसुरी हर एक के मुँह से लग-लग के कहती है, शिकायत करती है कि मुझे अपनी बुनियाद से अलग क्यों किया ? या वह रूह कहती है कि तुमने हमें हमारे खुदा से अलग क्यों किया? हमारा असली घर खुदा का घर है उसमें हमें अलग क्यों किया? जब तक यह जुदाई ख़त्म नहीं होती, जब तक आत्मा परमात्मा में लीन नहीं होती, जब तक रूह ब्रह्म में समाविष्ट नहीं होती तब तक आदमी का आख़री मकसद हल नहीं होता। तो इस तरह हर एक की साधना के भीतर जाकर उन्होंने एकता देखी। इसमें उन्होंने कमाल हासिल किया। इन शब्दों के साथ मैं महामति प्राणनाथ को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।



महामति

– डा. हरभजन सिंह

पूर्व अध्यक्ष, आधुनिक भारतीय भाषा संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

महामति प्राणनाथ जी पर शोध निबंध लिखने का प्रस्ताव मैंने तब स्वीकार किया जब मुझे इनके संबंध में प्रारम्भिक जानकारी भी नहीं थी। मतिहीन होकर भी महामति संत का प्रसाद प्राप्त करने की इच्छा ही मुझे इस ओर खींच लाई। मैं जानता हूँ कि इस महामानव की संपूर्ण कृति का पारायण भी न कर पाऊँगा। तो भी इस संदर्भ में मुझे किसी सन्त की वाणी का यह दोहा स्मरण आ रहा है :

एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूँ पुन आध।
सन्तन सेती गोष्टे तो कीनों सो लाभ।।

अध्यात्म साधना के लिए पूर्ण जीवन चाहिए, किंतु उपर्युक्त दोहा एक घड़ी बल्कि उससे कहीं कम अवधि को भी संत संगोष्ठी के लिए पर्याप्त मानता है। जीवन की पूर्णता कालावधि में नहीं, मति में है। महामति प्राणनाथ जी के नाम से जुड़े इस विशेषण से मुझे ऐसी ही प्रतीति हुई है। उम्र एक साल है कि सौ साल—दोनों को ही पूर्ण जीवन प्राप्त करने का मौका है। जो क्षण अखंड विश्व की अनुभूति में, सकल चराचर, इहलोक, परलोक, दृश्यादृश्य की प्रतीति में गुज़र जाए, वही पूर्ण जीवन है। यही मेरे मतानुसार महामति है। कभी किसी क्रिश्चियन संत का एक सुभाषित पढ़ा था 'All prayers are accepted, you have only to put your whole person behind your prayer.,....'

महामति—पूर्णमति, अखंडमति का ही दूसरा नाम है। परमात्मा सभी को अखंडमति देकर संसार यात्रा के लिए भेजता है, हम उसका प्रयोग टुकड़ा-टुकड़ा बाँट कर करते हैं। बँटे हुए जेहन, बँटे हुए शऊर, टुकड़ा-टुकड़ा शख्सियत से संत संगोष्ठी संभव नहीं। महामति जी को कैसे समझा जाए? महामति होकर । महामति का अर्थ मैं सबसे ऊँची मति नहीं ले रहा हूँ। मेरे नजदीक महामति प्राणनाथ जी— सर्वमति, पूर्णमति, अखंडमति के प्रतीक हैं— दूसरों से बेहतर नहीं, बल्कि सभी दूसरों को अपने आप में सन्निविष्ट करनेवाले सर्वात्मा, 'निज' और 'पर' के भेद से मुक्त— अमिश्रित 'महा'। गुरु नानक ने अपनी प्रसिद्ध वाणी 'जपु' में कहा — अध्यात्म साधना का चरम लक्ष्य ऐसी सुरति, मति, मन और बुद्धि की रचना करना है, जिससे सकल भवन की सुधि हो जाए—

घडिए सुरति, मति, मनि, बुधि।
घड़िए सगल भवन की सुधि।

प्राणनाथ जी ऐसे ही महासुरति, महामति, अध्यात्मसेवी थे। यह मति क्या है? क्या यह मात्रबुद्धि की पर्याय है, क्या सदाचारिक विवेक है, अच्छे या बुरे की पहचान एवं हानिकारक की पहचान भर है। महामति में 'महा', कुलजम में 'कुल' और तारतम में 'तर' और तम यानी कि Comparative and Superlative degree से ऐसा भान होता है कि महामति प्राणनाथ जी एक ऐसी चेतना या संवेदना की ओर संकेत कर रहे थे, जिसे आधुनिकं युग में 'टोटल मीनिंग' Total meaning कहा जाता है। यह एक ऐसी महादृष्टि है जिसमें सब कुछ समाविष्ट हो जाता है। यह दृष्टि केवल इस लोक तक सीमित नहीं, इसमें परलोक भी शामिल है। यह अनवरत विस्तार की धरती है, जब महामति जी कहते हैं—

देखो दिल में दसों दिस, कौन तरफ है हक।
ए विचार देखो दिल सों, तो या में जरा न सक।।

खिलवत, १५/५८

तो उनका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि वास्तविक तौहीद, वाहेदत्त या अद्वैत तक पहुँचने के लिए द्वैत के भेदभाव की पहचान ज़रूरी है।

एक सत्य को जान लेना उस पर विश्वास कर लेना ही काफ़ी नहीं है। बहु-सत्य को जाने बिना एक सत्य को पहचानना मुश्किल है। अनेकों को जानो—तभी एक को पहचान पाओगे। साम्प्रदायिक धर्मों की त्रासदी यही है कि वह 'अनेक' की ओर से आँखें मूँदकर 'एक' में सिमट जाता है। यह एक को अपना, निजी बना लेता है, उससे मोह करता है और उसके अतिरिक्त अन्य अनेकों को हेय समझता है। मानव-जाति की अब तक की एक भावना अनेक के तिरस्कार पर आधारित है, यही मानव जाति से ग़लती हुई है। जिस एक को हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसके चारों ओर अनेक विध मानवों का जमघट है। महामति प्राणनाथ जी कहते हैं—

कई बोली चालें जुदियां, माहें मजहब भेख अपार।
पूजें आग पानी पत्थर, इनमें 'खुदा' हजार।।

खिलवत, १५/२०

हज़ार 'खुदा' में से एक को पहचान सकना, यही सच्ची अध्यात्म साधना है। जो केवल अपनी एक में मस्त है— वह पक्के भरोसे से यह नहीं कह सकता कि उसकी असली है या नक़ल है। विवेक प्राप्त करने के लिए कम-से-कम दो तत्त्वों की पहचान ज़रूरी है। सम्प्रदायिक कलह वहीं संभव है, जहाँ लोग केवल एक ही सम्प्रदाय को जानते हैं, दूसरे सम्प्रदाय को समझे बिना उससे उलझते हैं। महामति का धर्म दूजे के ज्ञान पर आधारित है, दूजे के अज्ञान पर नहीं। सभी धर्मों में एक को पहचानने वाले साधक विश्व के अणु-अणु में फैल जाते हैं, केवल अपने पैतृक धर्म में एक को पहचानने वाला अपने आप में सिमट जाता है। संकीर्ण अद्वैत और विस्तीर्ण अद्वैत में अन्तर स्पष्ट है। दोनों अद्वैत अपने-अपने स्थान पर मूल्यवान हैं—एक साम्प्रदयिक कलह में बहुत काम आता है, दूसरा विश्वजनीन एकता और शांति में।

महामति प्राणनाथ ने एक प्रकार से, सर्वदेव मंदिर की पुनर्स्थापना का यत्न किया। सर्वदेव मंदिर प्राचीन वैदिक धर्म-साधना का बीज-विचार है। सभी देवताओं का एक स्थान पर आह्वान और सभी के प्रति सम-श्रद्धा वैदिक उपासना की मूल परिकल्पना है। धर्म में साम्प्रदायिकता का प्रवेश पुराणकाल की देन है। प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने

लिए एक विशिष्ट देवता स्वीकार कर लिया है। किन्तु हम पूर्णतः एक देववादी भी न हो सके। निज देव-प्रेम में, अनचाहे भी, परदेव द्वेष भी शामिल होता गया। हमारी पवित्र भावना में अचेत रूप से कलुष का समावेश होता गया। भारतीय स्मार्त-धर्म ने पुनः सर्वदेव मंदिर की स्थापना पर बल दिया। महामति प्राणनाथ ने इसी मार्ग का अनुसरण करते हुए इससे भी और परे जाने का यत्न किया। उनके सर्वदेव चिंतन में भारतीय सीमाओं से भी पार झाँकने का आग्रह है। क़ुरान तो बहुत देर से भारतीय जनमानस का अंग बन चुका था। ज़बूर और तौरेत के प्रति उनकी रुचि से पता चलता है कि वे केवल भारतीय समाज की सामयिक ज़रूरतों और मजबूरियों से ही परिचालित न थे। वे एक स्वस्थ एवं निर्लिप्त महादृष्टि की रचना करना चाहते थे, जो हर देश एवं हर काल में संतुलित एवं आग्रहमुक्त धर्म-साधना का दृढ़ आधार सिद्ध हो सके। इस प्रकार के अनेक संतुलित एवं तुलना सिद्ध धर्म-दृष्टि के लिए अहम् का नाश अनिवार्य शर्त है। लगभग सभी धर्मों ने अहंकार को अध्यात्म साधना का शत्रु माना है। अहंकार के अनेक रूप हैं, उनमें से अधिकांश हमें पैतृक धन के समान अपने पुरखों से मिलते हैं। देश, धर्म, भाषा, संस्कृति सभी का हमारे अहं की निर्मिति में स्पष्ट एवं सशक्त हाथ है। महामति प्राणनाथ जिस नई मति के सृजन का परामर्श देते हें, उसका संबंध सांस्कृतिक अहम्मन्यता के विनाश से ही है। यह काम सहज नहीं है, इसके लिए दृढ़ निश्चय और अनवरत साधना अपेक्षित है। महामति का कथन है :

मैं बिन मैं मरे नहीं, मैं सों मारना मैं।
किन बिध मैं को मारिए, या बिध हुई इनसे।।

खिलवत ३/१

स्पष्ट है, अहम् के विस्तार के द्वारा ही अहम् को मारा जाता है। बहुत कुछ पढ़ लेने के पश्चात् ही पता चलता है कि अभी बहुत कुछ पढ़ना शेष है और यह काम इस जीवन में समाप्त न हो सकेगा। प्लेटो का कथन है— मूर्ख और बुद्धिमान में मूल अंतर यही है—बुद्धिमान को पता है कि मैं मूर्ख हूँ, मूर्ख को पता नहीं। जैसे अपनी मूर्खता का बोध ज्ञान के द्वारा होता है, इसी प्रकार अपनी संस्कृति की सीमाओं का निर्धारण अन्य संस्कृतियों से संबंधित जानकारी प्राप्त करने से ही होता है। महामति—प्राणनाथ जी की उपाधि धर्म गुरु प्रदत्त है शिक्षा देने का उनका अपना ढंग तुलनात्मक (कम्पेरेटिव) और अंतर-अधिकायिक (इंटर-डिसिप्लिनरी) है। कभी किसी अंग्रेज़ ने कहा था, जिसने सिर्फ़ इंगलिस्तान ही देखा है, उसने इंगलिस्तान भी नहीं देखा। महामति जी के कुलजम का अत्यंत उथला-सा अध्ययन करने के उपरांत यही कहने को जी चाहता है जिसने केवल अपना धर्म ही जाना है, उसने वस्तुतः अपना धर्म भी नहीं जाना। 'कुल' को जाने बिना 'जुज' की समझ नहीं आती । कुल को जानकर ही जुज का अहंकार मिटता है। महामति का कथन हैः—

जब लग मैं ना समझी, तब लग थी मैं मैं।
समझे थे मैं उड़ गई, सब कुछ हुआ तुमसे।।

अव्वल आखर सब तुम, बीच में भी तुम।
मैं खेली ज्यों तुम खेलाई, खसम के हुकम।।

इन मैं को तो तुम किया, आदि मध्य और अब।
और मैं तो नेहेचे नहीं, कितहूं न देखी कब।।

खिलवत, ३/१०-१२

इसलिए और सभी संस्कृतियों में समाए इसी एक को पहचानना, अहम्मन्यता को मार देना अपने आपको शक्तिहीन अथवा निष्प्राण करने के बराबर है। अपने झूठे पूर्वाग्रहों से मुक्त मनुष्य में नयी शक्ति का, नये व्यक्तित्व का उदय होता है। महामति जी का ही कथन है :—

मैं दुनी की थी सो मर गई, इन मैं को मारया मैं।
अब ए मैं कैसे मरे, जो आई है खसम से।।

३/५ उपरिवत्

महामति प्राणनाथ जी का ग्रंथ 'खुलासा' उनकी प्रचार-विधि पर विशेष प्रकाश डालता है। हमारे सामाजिक जीवन की शैली मूलतः आदिम कबीलावादी विधि है। एक कबीला के सदस्यों के वार्तालाप में वक्ता और श्रोता के बौद्धिक, भावुक और सांस्कृति स्तर एक से होते हैं, उनके अनुभव क्षेत्र और अभिव्यक्ति विधि भी एक-सी है। एक की बात दूसरा सहज समझ जाता है। वस्तुतः ऐसे वार्तालाप में संवाद की, अथवा विवाद की कोई गुंजाइश नहीं होती। एक प्रकार से, ऐसा वार्तालाप एकालाप होता है, अपनी बात—अपने से कहना। हमारे मंदिरों, गुरुद्वारों, मस्जिदों और गिरिजाघरों में आज भी एकालाप द्वारा प्रचार कार्य सम्पन्न होता है। किंतु इस प्रचार का कार्य वक्ता, श्रोता और संचार वस्तु में समरूप संबंध होता है । ऐसे व्याख्यान, कीर्तन एवं कर्मकांड से पूर्व विश्वास एवं पूर्वाग्रह ही परिपक्व होता है; नयी दृष्टि अथवा नयी जानकारी प्राप्त नहीं होती। मानसिक अथवा बौद्धिक विकास में इनका योगदान नगण्य है।

महामति प्राणनाथ की प्रचार विधि इससे भिन्न थी। उनकी जीवन गाथा से पता चलता है कि कई बार वे अपना संदेश विषम रूप श्रोता तक पहुँचाना चाहते थे। उन्होंने अपने शिष्यों को औरंगज़ेब के दरबार में भेजा। उनका मूल उद्देश्य अपनी और उसकी धार्मिक स्थापनाओं का प्रकटन ही था। और भी कई बार वे अन्य धर्मों के विश्वास को अभूतपूर्व श्रद्धा और स्पष्टीकरण द्वारा अपने श्रोताओं तक पहुँचाते हैं। वैषम्य को स्वीकार करते हुए उसे साम्य में परिणत करने का यत्न उनकी प्रचार-विधि का अनूठा रूप है। दूसरों के प्रति सद्भाव ज्ञानाधारित होना चाहिए, अज्ञानाधारित नहीं; सद्भाव का निर्माण आत्म प्रतीति (रिएलाईजेशन) की भित्ति पर होना चाहिए, किसी वक़्ती ज़रूरत की पूर्ति के लिए नहीं— ऐसा प्राणनाथ जी की वाणी से ध्वनित होता है। दो विषम संस्कृतियों के समान 'मिशनों' को पेश करने की अद्भुत शैली प्राणनाथ जी की शैली में बहुधा व्यंजित हुई है। कृष्ण और नूह के जन्म से संबंधित दो कथाओं के एक आधार को महामति ने इस प्रकार प्रकट किया है—

कंसे काला-गृह में, किए वसुदव देवकी बंध।
भानेज मारे आपने, ऐसा राज मद अंध।।
नूह काफर की बंध में, रहे साल चालीस।
बेटे मारे कै दुख दिए, तो भी काफरें न छोड़ी रीस।।
कहे वेद बैकुंठ से, आए चत्र-भुज दिया दीदार।
वसुदेव तिन सिखापन, स्याम पोहोंचाया नंद द्वार।।
मलकूत से फिरस्ता, नूह समझाया आए।
नसीहत कर पीछा फिरया, नूहें स्याम दिया पोहोंचाए।।
अहीरों की कोम में, जित मेहेतर नंद कल्यान।

सुख लिया ब्रज बधुएँ, औरों न हुई पेहेचान।।
मेहतरों की कोम में, जित हूद कील सरदार।
जोत रसूल टापू मिने, दिया जबराईलें आहार।।
सात रात आठ दिन का, सुकें कह्या इंद्र कोप।
भेजी वाए जल अगनी, प्रलै को मृत लोक।।
तब गोवरधन तले, स्यामें राख्यो गोकुल।
जल प्रले के फिरवले, अंदर न हुआ दखल।।
सात रात आठ दिन का, हुआ तोफान हूद मेहेतर।
राखी रूहें कोहतूर तले, और डूब मुए काफर।।

खुलासा, १३/१-१०

दो भिन्न संस्कृतियों की दो भिन्न मिथकों के समान धर्म एवं समान विधि को समझने का यह प्रयत्न अपने आप में अनुपम है। धर्म और विधि की यह पहचान आधुनिक चेतना या संवेदना की द्योतक है। मिथक ऐसी कथा अथवा कथा प्रबंध है जिसके मानवीय एवं परामानवीय अस्तित्व के गहनतम पक्षों को प्रतीकों द्वारा परिभाषित किया जाता है— Myth may be defined as a story or a complex of story elements taken as expressing as therefore as implicitly symbolising certain deep laying aspects of human and trans-human existense"[1]

प्रसिद्ध मिथक लेखक विशेषज्ञ लेव-स्त्रोस का कथन है कि मिथक के तत्त्वों को, चाहे किसी रूप अथवा किसी क्रम में पेश किया जाए वह मिथक के रूप में अविकल बना रहता है। अनेक विषम तत्त्वों में समता पहचान कर महामति जी ने एक ऐसी अर्न्तदृष्टि का परिचय दिया है जो मानव जाति के गहनतम जातीय अवचेतन की अनेक परतें खोलती है। अब तक विभिन्न धर्मों में समभाव एवं समन्वय स्थापित करने का जो यत्न हुआ है वह बौद्धिक अथवा व्यावहारिक स्तर पर हुआ है। महामति जी ने इन स्तरों को स्वीकार करते हुए इनसे भी गहरा उतरने का यत्न किया है। मिथक सम्पूर्ण मानव जाति की मूलभूत एकता का सुनिश्चित प्रतीक है। बुद्धि और व्यवहार के स्तर पर हम एक दूसरे से कट गए हैं, मिथक स्तर पर हम एक दूसरे में रचे-बसे हैं। कटी और बँटी हुई मानवता अपनी एकता मिथक अध्ययन द्वारा पहचान सकती है। आज हमें महामति जी के विचारों की ही नहीं, उनकी चिंतन-विधि की भी आवश्यकता है।

अंत में, कुछ शब्द महामति जी की भाषा के विषय में हैं। मानव जाति की पारस्परिक कलह का एक कारण हमारे भाषा-विषयक मताग्रह भी हैं। महामति जी भी इस भाषा कलह के प्रति जागरूक थे—

जात भेष ऊपर के, ए सब छल की जहान।
जो न्यारा मांहें बाहेर से, तासों करो पहचान।।

सनंध, २९/५

इस सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न यह है कि भाषा मानवीय कलह के अनेक कारणों में से एक कारण है। मानव जाति को जोड़ने वाला एक तत्त्व, ईश्वर भी, अनेक भाषागत भावों में प्रकट होता है। और इस प्रकार अनावश्यक कलह का कारण बन जाता है। ईश्वर एक है, उसके भाषा-नाम अनेक हैं। मानव जाति ने अनजाने अपने दुःख का सृजन

1. Princeton Encyclopedia of Poetry and Poeties, Page, 538

किया है। भाषा मूलतः एक-दूसरे के निकट होने का साधन है और यही हमें एक-दूसरे से अलग करता है। कैसी विडम्बना है? भाषा अनिवार्यतः साम्प्रदायिक रचना है और ईश्वर सम्प्रदाय से परे हैं। हमारे अर्थ, मजबूरन हमारे शब्दों से एकमेक हो गए हैं। हम किसी के अभिप्राय या मंशा का अंदाजा उसकी बात से ही लगाते हैं; यही हमारी त्रासदी का मुख्य कारण है। महामति जी ने, अन्य सन्त-जनों के समान, एक ऐसी मिश्रित भाषा का सृजन किया है, जो हमारे भाषागत मताग्रहों से मुक्त है। शुद्ध भाषा एक गहरा मताग्रह है, जो मानव-मानव के बीच दूरी पैदा करता है—

बाकी तो वेद कतेब, दोऊ देत हैं साख।
अन्दर दोऊ के गफ़लत, लड़त वास्ते भाख।।

खुलासा, १२/५५

सन्तों की मिश्रित भाषा इस मताग्रह को तोड़ने का सचेत प्रयास है। मन की शुद्धता और भाषा की शुद्धता में अन्तर है। यह अन्तर नामगत शुद्धता और भाषागत शुद्धता का प्रतीक है। महामति जी का मार्ग नाम मार्ग है, उनकी भाषा भी नाम-भाषा है। नाम-भाषा शोर की भाषा नहीं, मौन की भाषा है। भगवान, अन्ततः एक प्रशांति है, जिसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति मौन है। महामति जी द्वारा प्रयुक्त भाषा इसी परम सत्य की ओर संकेत करती है।



अपरिमेय सम्भावनाओं के द्रष्टा महामति प्राणनाथ

डा. राममूर्ति त्रिपाठी

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उज्जैन विश्वविद्यालय
देवास रोड, उज्जैन (म.प्र.)

भारत की दृष्टि 'अद्वयी' और 'संस्कृति समन्वयी' है। संसार का पट जिन तानों-बानों से बना हुआ है—वे 'सत्य' और 'अनृत' हैं। 'सत' और 'असत्' हैं। मूल तत्त्व ने अपनी प्रथम अभिव्यक्ति इसी परस्पर विरोधी युग्म या द्वंद्वों में की। निरपेक्ष तत्त्व इन्हीं साक्षेप रूपों में प्रकट हुआ। एक इसी क्रम में दो हुआ। ऐसा होने में उसका स्वभाव ही कारण है— यह स्वभाव ही लीला है। लीलावश जब संख्यातीत परस्पर विरोधी सापेक्ष द्वंद्व रूप में व्यक्त होता है— तो उसी की संज्ञा सृष्टि होती है। बात-यह है कि कभी मूल रूप में द्वैत था ही नहीं — किसी प्रकार का कोई द्वंद्व था ही नहीं—

रुहें बेनियाज थीं, बीच बका बारे हजार।
जाने नाहिं अरसकी, साहेबियां अपार।।
सुध नाहीं सुख दुख की, न सुध विरह मिलाप।
न सुध बुजरक अरस की, खबर न खाविंद आप।।
साहेब बंदे की सुध नहीं, छोटा बड़ा क्यों कर।
न सुध एक न दोए की, न साँच-झूठ खबर।।
न सुध दोस्त न दुश्मन, न सुध नफा नुकसान।
न सुध दूर नजीक की, न सुध कुफर ईमान।।
तिस वास्ते खेल दिखाइया, ए बात दिल में आन।
झूठ निमूना देखाए के, रूहों होए हक पहचान।।
सांची साहेबी अरस की, कोई नाहीं दूजा और।
झूठ नकल देखे बिना, पाइए न हक ठौर।।
जित दूजी कोई है नहीं, एकै साहब हक।
तो तिनको दूजी बिना, क्यों पाइए मुतलक।। खुलासा, १७/४६-५५

इन पंक्तियों के साक्ष्य से स्पष्ट है कि अव्यक्त चरम सता में द्वैतभाव नहीं था। वहाँ 'एकै साहब हक' था— सो 'असल' ने अपनी पहचान कराने के लिए 'नक़ल' की सृष्टि की। सृष्टि इसी 'असल' और 'नमूना' का मिश्रण है। ये ही दो विरोधी ध्रुव हैं — भारतीय सांस्कृतिक चेतना 'विरोध' में 'अविरोध' को ढूँढ़ती है और काल-कृत महान्

संकट टालती है। भारतीय समाज विधान भेद के भीतर अभेद की प्रतिष्ठा के विषय में एक प्रशंसनीय उद्यम है, परन्तु परिश्रम करके इसका आविष्कार करना पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जैसे क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष इन दो परस्पर विरुद्ध तत्त्वों के स्पष्टीकरण के लिए पुरुषोत्तम तत्त्व का प्रतिपादन किया था और सकाम जीवन दर्शन तथा निष्काम जीवन दर्शन के अविरोध में निष्काम कर्मरूप महायोग का समन्वयी रूप आविष्कृत किया था। — ठीक उसी प्रकार जब-जब यह असमन्वय उभरकर सृष्टि को संतप्त करता है — तब-तब महापुरुष के रूप में जगद्धात्री समन्वयी शक्ति अवतीर्ण होती है और निरोधों को एकाधारा में प्रतिष्ठित कर समन्वित अद्वैत पक्ष का उद्‌घाटन करती है। महामति प्राणनाथ ऐसे ही अवतारी शक्ति थे।

महामति के समक्ष भारत में विभिन्न संस्कृतियों का विरोध उभर रहा था — जो जनसंहारक था। अतः महामति ने विश्व के समस्त धर्म ग्रन्थों को मथकर समन्वित मार्ग की सम्भावना व्यक्त की। आज विज्ञान ने भी राष्ट्रों के अनुल्लंघ्य भौतिक अवरोधों को तोड़कर उन्हें विश्वात्मक इकाइयों में बदल दिया है — क्योंकि आज तो विश्व को एक समन्वित जीवन दर्शन की कहीं अधिक आवश्यकता है। 'कुलजम स्वरूप' आज की इसी अपेक्षा की पूर्ति करता है। महामति ने अपने 'जागनी' अभियान में विश्व की विभिन्न इल्हामी किताबों के साक्ष्य पर आपाततः उभरनेवाले विरोधों में अविरोध स्थापित किया है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अंधसंप्रदायवाद का चश्मा उतारकर धर्मग्रंथों के अविरोधी स्वरूप को महमति द्वारा दिखायी गयी पद्धति से आत्मसात् करें। वस्तुतः इल्हामी भाषा समाधि भाषा होती है जिसका रहस्य समाधि में ही, समाधि से ही खुलता है। असमाहित मन वालों को समाहित मन से समाहित मन के स्तर की भाषा भला किस तरह समझ में आयेगी? महामति ने छत्रसाल की भाँति औरंगज़ेब को भी उसके क़ुरान के साक्ष्य पर अविरोधी स्वर का साक्षात्कार कराना चाहा था, लेकिन उसके इर्द-गिर्द फैले हुए अंध सम्प्रदायवादियों ने वह सब कुछ नहीं होने दिया।

वैसे तो 'कुलजम स्वरूप' या 'तारतम बानी' के साक्ष्य पर ऊपर स्वीकार किया गया है कि सृष्टि दो विरोधी तानों-बानों से बनी है जो एक ही लीला का खेल है। जिस प्रकार सूर्य स्वयं स्वनिर्मित मेघ-खंड से अपने आपको आच्छन्न करता है फिर भी अविच्छिन्न रहता है। आच्छन्न सूर्य के ही प्रकाश से मेघखंड का बोध होता है, उसी प्रकार मूल ज्योति या अल-नूर ही अपनी शक्तिं या मिफत से स्वविरोधी अंधकार या असत् या अभाव की सृष्टि करता है। फिर यही दोनों मिलकर संसार बनते हैं। विरोध का विस्तार संहार की ओर ले जाता है — पर एक ऐसा तत्त्व भी है जो दोनों को समन्वित कर सृष्टि को प्रगति की दिशा देता है। दीप में बत्ती और आगर परस्पर विरोधी हैं पर 'स्नेह' ऐसी वस्तु है जो दोनों में सहयोग पैदा करता है समन्वय पैदा करता है और समन्वित होकर दोनों ज्योति में एकरूप हो जाते हैं। फिर लोग भी प्रकाश के निर्देशन में गंतव्यगामी मार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार, विश्वभर के अवतार, पैग़म्बर, भागवतपुत्र और अवतारों ने भी समय-समय पर प्रकट होकर 'राग' रस से विरोधों में भी समन्वय पैदा किया है। यह राग की ही साधना है जो विरुद्धों को एक आधार में प्रतिष्ठित और सहयुक्त करती है। वह निःस्वार्थ राग जो माता में दृष्टिगोचर होता है — जगद्धारक चरम सत्ता का ही एक अंश है। वह 'राग' जिसकी तृप्ति की आशा में जीवन सरस हो जाता है और चरम कोटि की व्यथा के बीच भी जिजीविषा

बनी रहती है — वह जगद्धारक का ही अंश है — क्षर-अक्षर अतीत पुरुषोत्तम तत्त्व का ही एक कण है।

महामति का ध्यान उन बिन्दुओं पर गया, जिनको लेकर प्रायः दोनों अलग होते हैं — हिंदू और मुसलमान। प्रायः यह धारणा है कि हिंदू वे हैं जो पुनर्जन्म में आस्था रखते हैं और मुस्लिम या ईसाई वे जो पुनर्जन्म नहीं मानते। नमाज़, रोजा, हज, ज़कात और तौहीद में से प्रथम तीन परमतत्त्व को स्मरण करने की विधि है — ज़कात या दान सर्वसामान्य तत्त्व है। तौहीद अद्वैत है। वास्तव में —

जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनिया, उड़ गई दूजी बात।। सनंध, ३३/१७
लड़ फिर के जुदे हुए, हिंदू मुसलमान
और खलक केती कहूँ, सबमें लड़े गुमान।। खुलासा, १०/१०

अस्तित्व तो परमात्मा का ही है, और सभी तो उसकी सत्ता से ही सत्तावान् हैं। दुनिया में आकर हम लोगों ने कल्पित भेद कर लिया है। व्यवहार चलाने के लिए उसमें भेद नहीं आता। धर्मग्रंथों का ऊपरी अर्थ हम अपनी मोटी बुद्धि से समझते हैं— समाधि साध्य गहरे अर्थ को समझनेवाले क़ुरान के पूजक मौलाना रूम, अत्तार और सेणाई ने उन सार्वभौम बिन्दुओं पर बल दिया—जिनसे सबकी एकता व्यक्त होती है। महामति कहते हैं—

मायना ऊपर का सबों लिया, और लिया अहंकार।
फिरके फिरें सब हक से, बांधे जाए कतार।।६।। खुलासा, १०/११

अर्थात् धर्मग्रंथों को पढ़ा तो सबने, पर उसके बाह्य शब्दार्थ भर ही समझे। इस अधूरे ज्ञान के अहंकार से भरे सभी मत-मतान्तर सत्य को छोड़ बैठे हैं। ये सब लकीर को पीटते चले जा रहे हैं। श्रीमद्भागवतकार भी कहता है—

परोक्षवादाः ऋषया परोक्षं च ममप्रियम्।

अवतारों, पैग़म्बरों और महान् पुरुषों तथा ऋषियों की वाणी अस्पष्ट होती है—और परमात्मा को भी वही प्रिय हैं। हमारे बा-शरा सूफ़ी सन्त भी कहते हैं कि हज़रत मुहम्मद के पास इल्म दो तरह का था-'इल्म-ए-सीना' तथा 'इल्म-ए-सफीना'। पहला ऊपरी ग्रंथी ज्ञान—जो सामान्य जन के लिए आधार-संहिता या सामाजिक विधि-विधानपरक होता है और दूसरा गम्भीर तथा आन्तरिक या दिल का इल्म है जो पहुँचे हुए लोगों की समझ में आता है। क़ुरान की आयतों की भी दार्शनिकों ने अनेक तरह की व्याख्याएँ की हैं, जिसके कारण अनेक फ़िरके पैदा हो गए। रास्ते के अलग होने से मंज़िल अलग नहीं होती—मंज़िल तो एक ही है। रास्ते रुचिभेद से अलग-अलग हो सकते हैं। खुदा या अल्लाह दुर्जनों का शासक है, पर सज्जनों का प्रिय। फलतः शासक-शासिंत-भाव सम्बन्ध भी सही है और प्रिय-प्रिया-भाव भी। एक ही को सही मानकर भेद को ही चरम सत्य मानना अहंकार है और दूसरों का अस्वीकार करना कठमुल्लापन है। समन्वयी वही है जो स्तर भेद से सबमें अविरोध देखता है।

कहे काफर असुर एक दूसरे, करत लड़ाई मिल।
फुरमान जब रोसन भया, तब पाक हुए सब दिल।।३।। खुलासा, १३/१००

तत्त्व से अनभिज्ञ कठमुल्ला और पंडित एक दूसरे को काफ़िर और असुर कहते हैं लेकिन अल्लाह का पैग़ाम देनेवाले क़ुरान और वेद, भागवत आदि का रहस्य जब

साधक को खुल जाता है—तब सारे भेद मिट जाते हैं। पवित्र किताबें एक ही बात कहती हैं। आगम और निगम-सभी मानते हैं कि लीला से भेद दिखाकर परमात्मा ने बंदे के माध्यम से आत्म-वैभव का साक्षात्कार कराने के ही लिए सृष्टि रची। हदीस भी कहता है—

'कुंतो कनजन मखफीयन फाहववतो अन ओरिको फफलखतुक खल्क।'

—मैं छिपा हुआ ख़ज़ाना था—सो उसी का साक्षात्कार करने के लिये दुनिया बनायी—अपना प्रतिरूप आदम बनाया। उसमें रूह फूँकी और अर्शे-कल्ब में उसी का जमाल और जलाल देखा। हिंदू, मुसलमान और क्रिश्चियन—सभी मानते हैं कि शब्द या नाद से ही सृष्टि हुई-निगम कहते हैं—

वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे।

क़ुरान कहता है कि अल्लाह ने कहा 'कुन' (हो जा) और खल्क हो गया।

बाइबिल में कहा गया है—**"Let there be light and there was light."**

बाइबिल का ही दूसरा **Text** कहता है—

"In the beginning there was the word, the word was with the God and the word was the God."

उन उक्तियों की सारसत्ता को समझनेवाला यही तो कहेगा कि विश्व की सारी इल्हामी किताबें मानती हैं कि नाद से ही सृष्टि हुई—शब्द से ही दुनिया बनी। शब्द क्या है—एक चैतन्य हलचल—स्पंद। शक्ति का स्पंदन और उसकी विभिन्नाकार अभिव्यक्ति। पदार्थ शक्ति व्यूह ही हैं और स्पंदमय शक्ति (**Energy**) ही शब्द है—वही सृष्टि का मूल है।

ज़मीन में मृत देह को गाड़कर मुसलमान और ईसाई यह समझते हैं कि लाश को फूँकनेवालों से हम अलग हैं। अन्तिम दिन हम इसी शरीर में पुनः जीवित किये जायेंगे। महामति प्राणनाथ ने इस रहस्य का खुलासा करते हुए कहा कि ऊपरी आचार का यह भेद है—सचाई यह है कि शरीर ही मिट्टी या राख हो जाता मानव देह रूप कब्र में फँसी हुई आत्मा तब तक क़ब्र में सोई है—जब तक आवागमन के चक्र से वह छूट नहीं जाती। शरीर भी क़ब्र है—उस क़ब्र से जब आत्मा निकल जाती है—फिर उसमें नहीं आती। और मुक्त आत्मा जब लोक मंगल की इच्छा से इस शरीर—क़ब्र—में आती है, तब शरीर रूह पर नहीं—रूह शरीर पर हावी रहता है—तब कबीर की यह उक्ति उस पर लागू नहीं होती—

ठाड़ा सिंह चरावै गाई।

रूह या आत्मा सिंह और शरीर गाय। बद्धात्मा की रूह सिंह है—पर उसके अनुरूप चरा रही है—शरीर रूपी गाय। आत्मा और शरीर में सिंह और गाय का सम्बन्ध इसलिए है कि आत्मा न जाने कितने शरीरों को खा गयी—यहाँ मतलब भक्षक सिंह है आत्मा और भक्ष्य गाय है—शरीर। बद्धात्माओं की आत्मा पर शरीर हावी रहता है—यही गाय द्वारा सिंह का चराया जाना है। सिंह यहाँ शक्ति का प्रतीक है।

निष्कर्ष यह है कि समन्वयी संस्कृति का सर्वात्मा प्राणनाथ सर्वत्र समन्वय और विरोध में अविरोध दिखाता है—आज विश्व में यही सन्देश महान् सम्भावनाओं का और सांप्रतिक सन्देश हैं—

किन खोले न मायने कबूं कुरान। पावें न हकीकत करें बयान।।
पढ़ें आलम आरफ कै जन। पर एक हरफ न खोल्या किन।।

बड़ा कियामतनामा, ६/३२

महामत कहें ए मोमनो, देखो खसम प्यार।
ईसा महंमद अंदर आए, खोल दिये सब द्वार।।

यों उरझे नाम जुदे धर। रब आलम का आया आखर।।
अपनी अपनी में समझे सब। जुदा न रह्या कोई अब।।

बड़ा कियामतनामा, ६/३०

विश्व के धर्म ग्रंथों में की गयी भविष्यवाणियों के अनुसार 'विश्व धर्म' की स्थापना के लिये महाशक्ति का अवतरण हुआ है जो सबको उनके अपने धर्म ग्रंथ के द्वारा धर्म का शुद्ध रूप, समन्वयी रूप दिखा रही है। मानव एकता और विश्व शान्ति के लिये उसे पहचानना आवश्यक है।



राज विद्या गुह्य विद्या

डॉ. घनश्याम आर. भट्ट
३१ माधो भवन, सर हुकुम चन्दमार्ग, इन्दौर (४५२००२) म.प्र.

वेद भारतीय संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के उद्‌गम केन्द्र हैं। उनके महत्त्वपूर्ण दार्शनिक विवेचन का विस्तार उपनिषदों में हुआ है। आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या के रहस्य का उपनिषदों में सम्यक् विवेचन हुआ है। उपनिषद् शब्द का अर्थ भी ब्रह्मविद्या ही है। 'उप' और 'नि' उपसर्ग है। 'सद्' धातु 'गति' के अर्थ में प्रयुक्त होती है। ज्ञान, गमन और साक्षात्कार 'गति' के तीन अर्थ हैं। यहाँ प्राप्ति अर्थ उपयुक्त है। 'उप-सामीप्येन, नि-नितरां, प्राप्नुवन्ति परब्रह्म यथा या विद्या सा उपनिषद्' जिस विद्या के द्वारा परब्रह्म का सामीप्य एवं तादात्म्य सम्बन्ध प्राप्त किया जाता है, वह उपनिषद् है।

परमात्मा की प्राप्ति का रहस्यमय ज्ञान ब्रह्मविद्या का प्रयोजन है। इसलिए ब्रह्मविद्या को उपनिषद् कहा जाता है। आत्मकल्याण का मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए उपनिषदों से बढ़कर प्रकाश स्तम्भ अन्य कोई हो नहीं सकता। संसार के सभी तत्त्वदर्शियों के लिए उपनिषद् का तत्त्वज्ञान अमृतोपम होता रहा है। जिसने इसमें जितना ही अवगाहन किया है, उसे उतना ही आनंद मिलता है।

वर्तमान मन्वन्तर में वेद की ११५० शाखाएँ होना माना गया है। प्रत्येक शाखा का एक मंत्र भाग एक उपनिषद् तथा एक ब्राह्मण (ग्रंथ) होता है। इस प्रकार ११८० उपनिषदें और ११८० मंत्र भाग होने चाहिए। पर आज इस वाङ्मय का अधिकांश भाग लुप्त है। कतिपय उपनिषदें ही विद्यमान हैं। वर्तमान में १०८ उपनिषदें प्रसिद्ध हैं, जिनमें से दस उपनिषदें प्रधान मानी जाती हैं।

(१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) तैत्तिरीय (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) श्वेताश्वतर।

प्रायः सभी उपनिषदों में ब्रह्म-मुमुक्षु ब्रह्मनिष्ठ के सामीप्य तथा अनुग्रह से ज्ञान प्राप्ति द्वारा, आत्मा की जागृति करके परात्पर ब्रह्म का अनुसन्धान करना है। संक्षेप में—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।। श्वेताश्वतर उप. अ. ३/८/.

अर्थात् जो कोई ब्रह्ममुनि आत्मानुभव करता है—कि इस महान्‌तर से भी महान्‌तम पुरुषोत्तम (अक्षरातीत परमात्मा) को मैं जानता हूँ, वे अविद्यारूप अंधकार (मोहमाया-क्षर पुरुष-अज्ञान) से सर्वथा अतीत है या सूर्य की भाँति स्वयं दिव्य प्रकाश स्वरूप हैं। उनको जानकर ही मानव मृत्यु (काल) का उल्लंघन करने में—इस जन्म-मृत्यु के बन्धन से

सदा-सर्वदा के लिए छुटकारा पाने में समर्थ होता है। परमपद की प्राप्ति के लिए इसके सिवा दूसरा कोई अन्य मार्ग अर्थात् उपाय नहीं हैं। और भी–

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्तिकश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।।

श्वेताश्वतर, ३/९

अर्थात्–उन अक्षरातीत परमेश्वर (परमात्मा) से श्रेष्ठतम दूसरा कुछ भी नहीं है, वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं जितने भी सूक्ष्मतत्त्व हैं, उन सबसे अधिक वे ही हैं। उनसे अधिक प्राकृत रूप से सूक्ष्म कोई भी नहीं हैं। इसी सूक्ष्मतम सत्ता द्वारा वे छोटे-छोटे जीव के शरीर में अपने तेज (शक्ति) द्वारा प्रविष्ट होकर स्थित हैं। इसी प्रकार जितने भी महान् व्यापक तत्त्व हैं, उन सबसे महान अधिक व्यापकतम सत्तारूप वे परब्रह्म-परमात्मा हैं, उनसे अधिकतम व्यापक सत्ता कोई भी नहीं हैं। इस महान् व्यापक सत्ता (शक्ति) को वे महाप्रलयकाल में सम्पूर्ण ब्रह्मांडों के साथ अपने अंदर लीन कर लेते हैं। वे स्वलीलाद्वैत निश्चल भाव से परमधामरूप (दिव्य ब्रह्मपुर–मूलघर) प्रकाशमय दिव्य, अनंत आकाश में स्थित हैं, उन परब्रह्म परमात्मा की परम दिव्य चेतन शक्ति समस्त विश्व में व्याप्त है अर्थात् उस परमपुरुष पुरुषोत्तम की सत्ता से ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशमान है।

मुण्डकोपनिषद् का मुख्य उद्देश्य संसार में व्याप्त अनेकत्व का भेद मिटाकर परब्रह्म के एकत्व एवं उनकी दिव्य लीला की आत्मानुभूति करना है। इस उपनिषद् के अध्ययन-मनन से स्पष्ट हो जाता है कि, परब्रह्म (परमात्म) तत्त्व क्षर, अक्षर से पर (श्रेष्ठ) है। उस परम तत्त्व की प्राप्ति मानसी पूजा तथा अनन्य परा प्रेमलक्षणा भक्ति द्वारा ही संभव है।

महामति श्री प्राणनाथ ने यद्यपि लौकिक दृष्टि से समस्त शास्त्रों का सविधि विद्याध्ययन तो नहीं किया था तथापि उनका तन, मन, धन परब्रह्म को सहजरूप से समर्पित था, पंच महाशक्तियाँ विराजमान थी तथा सद्गुरु की परमकृपा थी। इसके अतिरिक्त तारतम ज्ञान, परा भक्ति के सत्प्रभाव से जो अनूठा, अद्वितीय ब्रह्मज्ञान उन्होंने हमें दिया वह, निश्चय ही स्तुत्य, ग्राह्य एवं अलभ्य है। ये स्वयं कहते हैं–

ना कछु सुनिया वेद पुरान, ना कछु किव चातुरी।
एक दो वचन सुने मुख धनी के, तिन से सुध सब परी।।

प्रकाश हि०, २०/९

अपने सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रदत्त तारतम ज्ञान की जाग्रत महाशक्ति ने कर्म, ज्ञान, उपासना और भक्ति को इतना उन्नत किया कि कर्म सहज रूप से निष्काम और ज्ञान स्वसंवेदात्मक (अनुभवात्मक) बना और पराप्रेमलक्षणा भक्ति के रंग ने अपने आकर्षण से परमधाम में स्थित श्री राजश्यामाजी के युगलकिशोर स्वरूप को निर्मल हृदय में विराजित कर लिया। तभी तो महामति की अनुभवात्मक वाणी की तरंगें कहती हैं–

शास्त्र पुराण वेदांत जो, भागवत पूरे साख।
नहीं कथा ए दंतनी, सतवाणी ए वाक्।। श्रीरास, प्र० १

मुण्डकोपनिषद् के प्रारंभ में ही तीन विद्याओं का उल्लेख हैं–(१) अपरा विद्या (२) परा विद्या और (३) ब्रह्म विद्या। चारों वेद और छः वेदांग इन दस का नाम अपराविद्या है, अर्थात् क्षरात्मक जगत् (पच महाभूत, त्रिगुण एवं अन्तकरण) का ज्ञान इस विद्या द्वारा ही सम्भव है। अपराविद्या द्वारा इहलोक और परलोक सम्बन्धी कर्मकांड, भोगों

तथा उसकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जिसमें विधि, भोगों की स्थिति, भोगों के विविध प्रकार, भौतिक पदार्थों की रचना, गुणधर्म और उनको उपलब्ध करने के विभिन्न साधनों का सम्पूर्ण ज्ञान होता है। संक्षिप्त में हमारे भौतिक (स्थूल-सूक्ष्म) जगत् के समस्त ज्ञान-विज्ञान का समावेश इस विद्या में हो जाता है—

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।
शिक्षा कल्पोव्याकरणं निरुक्तं छंदो ज्योतिषमिति।।
अथ परा ययातदक्षरमधि गम्यते।

मुण्डक १/५

पराविद्या द्वारा अक्षर ब्रह्म (कूटस्थ, अविनाशी) को जाना जाता है। इस विद्या का वर्णन वेदों के क्वचित् मंत्रों में संकेत मात्र ही है—

अक्षरब्रह्म ही अनेक ब्रह्मांडों (जगत्) की उत्पत्ति का कारण है। जिस प्रकार—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्मम्भवतीह विश्वम्।।

मुण्डक, १/७

जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट में स्थित जाले को बाहर फैलाती है और फिर उसे निगल जाती है, उसी प्रकार वह अक्षरब्रह्म अपने अंदर सूक्ष्मरूप में लीन हुए जड़ चेतन रूप जगत् को सृष्टि के आरम्भ में नाना प्रकार से उत्पन्न करके फैलाते हैं और महा प्रलय में पुनः उसे अपने में लीन कर लेते हैं। (गीता, अध्याय ९, श्लोक ७,८) जिस प्रकार पृथ्वी विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ उत्पन्न करती है, मनुष्य के शरीर से जैसे केश और लोम प्रकट होते हैं, उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से यह पंचभौतिक, त्रिगुणात्मक (प्राकृत) विश्व उत्पन्न होता है। सृष्टि काल में जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म नाना प्रकार के मूर्त—अमूर्त (व्यक्त—अव्यक्त) पदार्थ और भावों को जन्म देते हैं, प्रलयकाल में उसे पुनः अपने में लीन कर लेते हैं।

जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि से हज़ारों चिनगारियाँ नाना प्रकार से प्रकट होती हैं, उसी प्रकार अविनाशी (अक्षर) ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, और उसी में विलीन हो जाते हैं।

तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति।

मुण्डक, २/१/१

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठाम्। मुण्डक, १/१/१

इस मंत्र द्वारा उपनिषद्कार ने यह स्पष्ट कर ही दिया है कि जिस विद्या से ब्रह्म, पर और अपर (अक्षर-अक्षरातीत) दोनों स्वरूपों का पूर्णतया ज्ञान हो, उसे ही **ब्रह्मविद्या** कहते हैं। यह संपूर्ण विद्याओं की परमाश्रय है। उपनिषद् मंत्रद्रष्टा मुनियों का स्वानुभव है जिसके तप-संकल्प द्वारा ब्रह्म प्रत्यक्ष होता है।

अक्षरातीत पूंर्ण पुरुषोत्तम सर्वेश्वर का स्वरूप निस्संदेह प्राकृतिक आकार (शरीर) रहित और समस्त ब्रह्मांड के बाह्याभ्यंतर परिपूर्ण है। वे जन्मादि विकारों से रहित सर्वथा परमदिव्य एवं विशुद्ध हैं, क्योंकि वे प्राण, इन्द्रियों एवं मन से रहित हैं। प्राकृत अंगों के बिना अर्थात् अपनी अनन्त दिव्यशक्तियों के द्वारा वे सब कुछ करने में समर्थ हैं, इसीलिए वे परम शासक, सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर (अक्षरातीत) अक्षर ब्रह्म से भी श्रेष्ठ प्राणिमात्र के पति, अक्षरात्परतः पर हैं—

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।।

मुण्डक, २, खण्ड १, मंत्र २

तथा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

बृहदारण्यक, ५/१

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति।।

मुण्डक, २/२/७

अर्थात् जो परब्रह्म परमेश्वर, सर्वज्ञ और सब ओर से सबको भली भाँति जाननेवाले हैं, जिनकी ज्ञान शक्ति देशकाल से बाधित नहीं है तथा जिनकी यह आश्चर्यमयी महिमा जगत् में प्रगट है, वे सबके परमात्मा परमेश्वर परमव्योम नाम से प्रसिद्ध अनन्त, अखण्ड दिव्यबह्मपुर धाम में विराजित हैं। बुद्धिमान मनुष्य (ब्रह्मभाव वाला) पराविज्ञान (मारफत सागर) द्वारा उन परब्रह्म (श्री राजश्यामाजी) को भली-भाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं ऐसे स्वलीलाद्वैत सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम की अनुभूति ब्रह्मविद्या द्वारा ही सम्भव है।

उस अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा का अनंत, असीम दिव्यब्रह्मपुर कैसा है ? इस विषय का वर्णन उपनिषद् में इस प्रकार है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

मुण्डक, २/२/१०

गीता (अ० १५, श्लोक ६) में श्रीकृष्ण ने परमधाम के विषय में भी यही बात कही है और स्वामी श्री मुकुन्ददास जी ने भी अपनी सरल भाषा में यों कहा है—

चाँद सूरज की गम नहीं, नहीं पावक को काम।
पहुँचे सो आवे नहीं, सोई मुकुन्द निजधाम।।
काल कर्म भव दुःख से, तुम ही छुड़ावनहार।
परमहंस पद देत हो, क्षर अक्षर के पार।।
क्षर अक्षर के पार हैं, अक्षरातीत आधार।
बिना सम्बन्ध न पाइए, कोटिन करे आचार।।

(सेवापूजा पुस्तिका, संध्यावंदना)

उन स्वप्रकाश परमानंद स्वरूप परमेश्वर के समीप यह लौकिक (खगोलीय) सूर्य, चन्द्र, तारागण और विद्युत् आदि (प्राकृतिक तत्त्वों) का प्रकाश नहीं होता तो अग्नि का प्रकाश ही कहाँ से होगा ? क्योंकि मूलरूप से ये सब प्रकाश स्रोत उसी पुरुषोत्तम के परमाणु मात्र शक्ति में प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे सर्वशक्तिसम्पन्न कार्य कारण स्वरूप परमानंद, परात्पर परब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम को तत्त्व (तारतम्य दृष्टि) से जान लेने पर जीव के हृदय की अविद्या (माया) रूप ग्रन्थि खुल जाती है जिसके कारण इसने इस शरीर तथा जगत् को ही अपना स्वरूप मान रखा है। इतना ही नहीं, जीवात्मा के समस्त संशय सर्वथा कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट होकर वह जीव भव बन्धन

तथा भवसागर से सर्वथा मुक्त होकर परमधाम के परमानन्द में लीन हो जाता है। यथा—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्द्रष्टे परावरे। (मुण्डक, २/२, मंत्र ८)

भारतीय दर्शन में सृष्टि-क्रम संचालन हेतु मुख्य रूप से तीन लोक (पुरुष, सत्ता एवं अधिकारी) का वर्णन किया गया है।

(१) क्षरपुरुष-प्रकृति (पंच भौतिक त्रिगुणात्मक जगत) (२) अक्षर ब्रह्म (पुरुष), पराप्रकृति (अमृत, नित्य ब्रह्म, कूटस्थ, जगत की उत्पत्ति का मूल कार्य-कारण, जीवात्मा) और (३) पुरुषोत्तम परब्रह्म, अक्षर से उत्तम, अक्षरातीत पूर्णब्रह्म—(दिव्य लीलामय, युगलकिशोर स्वरूप, सच्चिदानन्द विग्रह, राज विद्या द्वारा जाना गया स्वरूप)।

इस प्रकार, (१) पुरुष (२) पुरुषतर और (३) पुरुषोत्तम—तीनों प्रकार के पुरुषों की सत्ता (शक्ति, लोक) का वर्णन शास्त्रों में पाया जाता है। संस्कृत व्याकरण में इसे सामान्य, तुलनात्मक और श्रेष्ठतादर्शक तर-तम प्रत्यय लगाकर वर्णित किया जाता है।

गीताकार ने गीता के उत्तम पुरुष को पुरुषोत्तम अक्षरातीत मानते हुए श्रीकृष्ण के साथ-साथ परमधामयुक्त, दिव्य स्वरूप वाले विराट पुरुष, विभूतियुक्त, सर्वव्यापक श्री विष्णु, श्री नारायण, वासुदेव भी माना है। इसके अलावा उत्तम पुरुष की शक्तियाँ भी लीला भेद से क्षर पुरुष एवं अक्षर में व्याप्त हैं। इस बात का उल्लेख किया गया है। राज विद्या द्वारा ही श्रीकृष्ण जी को तत्त्वतः जाना जाता है, इसका प्रमाण भी गीता में दिया है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।। गीता ९/२

यह (परब्रह्म विषयक) ज्ञान सब विद्याओं का राजा (सर्वश्रेष्ठ सत्तायुक्त) तथा समस्त गोपनीयों का भी राजा एवं परम पवित्र, उत्तम प्रत्यक्ष फलवाला और धर्म (आत्ममुक्ति) युक्त है, साधन करने को बड़ा ही सुगम और अविनाशी (नित्य, अमृतमय) है।

अक्षर धाम को प्राप्त करने के बाद ही परम गति प्राप्त होती है। इसके विषय में गीता में कहा गया है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। गीता, ८/२१

जो वह अव्यक्त 'अक्षर' ऐसे कहा गया है, उसे ही अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परमगति कहते हैं तथा सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं लौटते हैं। वही मेरा परम धाम है।

परमात्मा और परमधाम की प्राप्ति अनन्य भक्ति से ही होती है। यथा—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।। गीता ८/२२

हे अर्जुन ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत अर्थात् जिस कालमाया की लीला के अन्तर्गत सर्वभूत है और जिस सच्चिदानन्द घन परमात्मा की दिव्य सत्ता से यह सब जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष, अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। गीता ८/१४

—हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरे में अनन्य चित्त से स्थित हुआ, सदा ही निरन्तर मेरा स्मरण करता है उस निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूँ, अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

इस प्रकार गीता में नारायण को ब्रह्म एवं विभूतियों को धारण करने के कारण विष्णु को भी श्री कृष्ण परमपुरुष, परमेश्वर श्री हरि इत्यादि विशेषणों से अलंकृत किया है।

महामति प्राणनाथ ने श्रीकृष्ण का सर्व व्यापक अर्थ करते हुए बताया है कि 'कृष्' धातु परम सत्ता वाचक और ण (न्) परमानंद वाचक होने से श्रीकृष्ण को सबके आत्मपति, नित्य अखंड, अनंत, अविनाशी, पूर्णतम सनातन ब्रह्म सत्ता माना गया है। परमाकर्षण एवं आत्मा को अखंड आनंदप्रदायक को पुरुषोत्तम कहा गया है। यह भी सत्य है कि सच्चा आनंद देने की शक्ति केवल श्री कृष्ण में ही है, अन्य किसी में नहीं।

पुरुषोत्तम का अर्थ होता है, पुरुषों से भी उत्तम। अर्थात् क्षरपुरुष (नाशवान, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाली सत्ता) और अक्षरब्रह्म से भी जो उत्तम है, उसे ही पुरुषोत्तम कहा जाता है।

महामति के दर्शन में पुरुषोत्तम अक्षरातीत परमात्मा की युगलकिशोर लीला है, लेकिन यह लीला भेद (अंग, अंगीभाव) से अलग है। अक्षरातीत परमात्मा की युगलकिशोर लीला है, जब कि अक्षरब्रह्म की बालस्वरूप की लीला है। महामति ने अक्षर ब्रह्म को 'भगवान' के रूप में माना है—यथा **'भगवान जी खेलत बाल चरित, आप अपनी इच्छासों खेलत।'** यह बालचरित—में ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और मोक्ष ये छह पदार्थ देनेवाले हैं, तथा इनकी इच्छा से पंचभौतिक, त्रिगुणात्मक भूतों की उत्पत्ति स्थिति प्रलय, (जन्म, मरण और विद्या, अविद्या) हैं।

महामति ने पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को अपनी आत्मा का पति माना है, इसलिए तारतमसागर में प्रायः श्री कृष्ण जी का नाम, स्मरण उल्लेख बहुत-सी चौपाइयों में किया गया है। महामति श्री महेराज के सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी महाराज ने चौदह वर्ष तक निष्ठाबंध भागवत सुनकर उस अनादि अक्षरातीत श्री कृष्ण के युवा स्वरूप का दर्शन किया था तथा तारतम महामंत्र भी श्रीकृष्ण ने स्वमुख से सद्गुरु को प्रदान किया था। महामति ने भी यही बात कही है—

पर तोले न आवे एक ने, मुख श्रीकृष्ण कहन्त। किरंतन १२७/१

महामति प्राणनाथ ने भी श्रीकृष्ण को अनादि अक्षरातीत पूर्ण, पुरुषोत्तम मानते हुए श्रीराज, धामधनी, मेहबूब, प्रियतम, श्यामसुंदर, सुंदरवर, श्री वल्लभ, श्यामावर श्याम जैसे अनेक नामों तथा विशेषणों से अलंकृत किया है। साथ ही श्रीकृष्ण की आनंदस्वरूपा परमशक्ति को 'श्री श्यामा' के रूप में वर्णित किया है।

महामति अपने प्राणाधार श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम के प्रति अनन्य प्रेमलक्षण युक्त पातिव्रत धर्म की अविरत सरिता के प्रवाह का इस प्रकार दर्शन कराया है।

धनी अमारो अक्षरातीत अमें तोये न समज्या पतीत।।

श्री रास, १/५६

हमारे आत्मपति अक्षरातीत परमात्मा हैं, लेकिन हम मोहमय माया के गुणधर्मों में इतने पतित हो गये हैं कि अखंड आनन्द देनेवाले पुरुषोत्तम को न समझ सकें।

बड़ी मत सो कहिए तायें, श्री कृष्णजी सों प्रेम उपजाए।
मत की मत तो ए है सार, और मत को कहूं विचार।।
श्री कृष्णजी सों प्रेम करे बड़ी मत, सो पोहोंचावे अखंड घर जित।
ताए आड़ों न आवे भवसागर, सो अखंड सुख पावे निजघर।।

(प्रकाश हिन्दुस्तानी, प्र० २१/५, ८)

अक्षरातीत सुख अखंड देवे को, जगाऊँ तुम्हारे काजजी।

वही, ३०/१८

हद पार बेहद है, बेहद पार अक्षर।
अक्षर पार वतन है, जागिए इन घर।।

प्रकाश, ३१/१६५

शरीर (बाह्य करण) और अंतःकरण (सूक्ष्म साधन) को परमात्मा और परमधाम की अनुभूति नहीं होने का कारण बताते हुए महामति ने वेद, उपनिषद् और गीता का सिद्धांत सरल भाषा में मार्मिक रूप से प्रकट किया है—

मन चित्त बुध श्रवणा, पोहोंचे दृष्ट ना सब्दा कोए।
षट् प्रमाण से रहित है, सो दृढ़ कैसे होए।।

कलश हिन्दुस्तानी, २/१५

एक परमात्मा की ही कालमाया (जगत) और योगमाया की स्वाप्निक ऐन्द्रजालिक-लीला में मानव को मोह हो गया है लेकिन सबका धर्म और परमात्मा एक होते हुए और जानते हुए भी, हम पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम के न जाने किस उद्देश्य से कितने मत, पंथ, संप्रदाय, वाद, अलग-अलग पूजा-पद्धति, मंत्र, उपासना एवं स्थानों के आकार-प्रकार में विविधता बढ़ाये जा रहे हैं और बढ़ाते जायेंगे, क्योंकि हमने एक परमात्मा को विविध रूपों में देखा है और बाँटा है। इन सबमें एक कौन है, इस बात का निर्णय करना बड़ा कठिन है, क्योंकि—

पारब्रह्म तो पूरण एक है, ऐ तो अनेक परमेश्वर कहावे।
अनेक पंथ सबद जुदे जुदे, और सब कोई सास्त्र बोलावे ।।

किरंतन, ६/७

उतपन प्रेम पारब्रह्म संग वाको, सुपन हो गयो संसार।।
प्रेम बिना सुख पार को नाहीं, जो तुम अनेक करो आचार।।

किरंतन, ८/६

केवल ब्रह्म ही अक्षरातीत सत, चित्त आनंदस्वरूप ब्रह्म हैं। इस प्रकार महामति ने माया की दृष्टि का आवरण दूर करके आत्मदृष्टि द्वारा सबके हृदय कमल में निवास करनेवाले आत्मा में परमात्मा के तेज को प्रकाशित किया है। आपने श्रीकृष्ण तत्त्व को कृष्ण जी द्वारा प्रदत्त दिव्य मंत्र से पहचाना, वेद और उपनिषद् में जिसे ब्रह्म-परब्रह्म कहा है, उस सच्चिदानन्दमय **'रसौ वै सः'** स्वरूप को ही श्रीकृष्ण जी माना है।

अज्ञान की ग्रंथि तो आध्यात्मिक ज्ञान से ही खुलती है। अतः महामति ने आत्मजागृति हेतु परा प्रेम लक्षणा भक्तिद्वारा पुरुषोत्तम की शरणागति के अनन्य मार्ग (दर्शन) की घोषणा की है।

अब हम गीता के पन्द्रहवें अध्याय में पुरुषोत्तम योग के कुछ सांकेतिक श्लोकों की ओर दृष्टिपात करें। गीताकार ने गुप्ततम श्रीकृष्ण तत्त्व अर्जुन (जीवात्मा) को कैसे

समझाया है तथा अर्जुन का मोहभंग दूर होने पर तथा स्मृति प्राप्त होने पर परमात्मा से कैसे समझा है। गीता में (अध्याय १ से १४ तक) कर्मयोग, ज्ञान योग, आत्म-अनात्मत्तत्त्व, स्थितप्रज्ञ के लक्षण, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, परा-अपरा प्रकृति, राजविद्या, विभूतियोग, परमात्म तत्त्व के प्रति अनन्य भक्ति का वर्णन करके १५वें अध्याय में श्री कृष्ण जी ने मोहमय संसार को पीपल के वृक्ष की उपमा दी है। संसार वृक्ष के मूल में एक परमात्मा ही नित्य है, शेष परिवर्तनशील है। परमात्मा की पहचान के लिए प्रेम, सेवा, अनासक्ति और निष्काम भाव का बड़ा ही महत्त्व है। यह मायावी जगत से परे उस दिव्य धाम में सूर्य, चन्द्र, तारे, दिशा, काल, कर्म, भय, भूख, रोग, भोग, शोक वेदना नहीं है, वहाँ तो सब कुछ ब्रह्ममय है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। गीता, १५/६

स्वयं प्रकाशमय परमधाम को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिस परमपद (परमधाम-दिव्यब्रह्मपुर) को प्राप्त होकर मनुष्य संसार में नहीं लौटता वही मेरा परमधाम है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियानि प्रकृति स्थानि कर्षति।। गीता, १५/७

इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी (सत्, रज, तम) माया में स्थित हुई, मन सहित पाँचों इन्द्रियों के आकर्षित करता है।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। गीता, १५/१५

—मैं.(श्रीकृष्ण) ही समस्त प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप में स्थित हूँ तथा मुझ से ही स्मृति, ज्ञान और मोह का नाश होता है और सब वेदों द्वारा मैं (श्रीकृष्ण) ही जानने योग्य हूँ तथा वेदान्त (उपनिषद्) का कर्ता और वेदों को जाननेवाला भी मैं ही।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। गीता, १५/१६

इस संसार में नाशवान (क्षर पुरुष, लोक) और अविनाशी (नित्य) यह दो प्रकार के पुरुष (सत्ता-शक्ति) हैं, उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर नाशवान (क्षर) और आत्मा नित्य (अक्षर) कहा जाता है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
या लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। गीता १५/१७

परंतु क्षर (नाशवान पुरुष, पंचभौतिक त्रिगुणात्मक जगत) और अक्षर (अमृत, पुरुषतर नित्य) से उत्तम पुरुष तो अन्य और अलग ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण, पोषण करता है, उसे (अक्षरातीत को) ही अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। गीता, १५/१८

मैं (श्रीकृष्ण, परात्परः पुरुषोत्तम) नाशवान (क्षरपुरुष) जड़वर्ग (प्रकृति-पंचमहाभूत, त्रिगुण) क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत (उत्तम, परे) हूँ, और माया में स्थित अविनाशी अक्षर (जीवात्मा) से भी उत्तम हूँ, इसलिए इस संसार (लोक) और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम

से (ही) प्रसिद्ध हूँ—

यो मामेवमवसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्व भावेन भारत।। गीता, १५/१९

हे अर्जुन ! इस प्रकार तत्त्व रूप से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम को ही भजता है—

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। गीता, १५/२०

—हे अर्जुन, (जाग्रत आत्मा) ऐसे यह अति रहस्ययुक्त परम गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसके तत्त्व को जानकर मानव ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है अर्थात् आत्मदर्शन के बाद अपनी परात्म को और परमधाम को पहचानता है।

महामति जी द्वारा क्षर-अक्षर-अक्षरातीत का स्वरूप तथा परमधाम वर्णन भारतीय एवं विश्व के दार्शनिक, पवित्र ग्रन्थों के अनुरूप सूक्ष्म अर्थ प्रकट करनेवाला एवं समन्वयात्मक है। यह ब्रह्मांड जो पाताल से लेकर चौदह लोक शून्य निरंजन निराकार तक क्षर लोक (नाशवान सत्ता) है—

पाँच तत्व गुन तीनों ही, ये गोलक चौदे भवन।
निरगुन सुंन या निरंजन , ज्यों पैदा त्यों ही पतन। किरंतन, १०७/८

इस क्षर लोक की सृष्टि अक्षर ब्रह्म के संकल्प मात्र से होती है और समयावधि के अनुसार महाप्रलय में अक्षर ब्रह्म के अव्याकृत स्वरूप में लीन हो जाती है।

अक्षर ब्रह्म की दो अचिन्त्य शक्तियाँ, कालमाया और योगमाया हैं। कालमाया की आवरणात्मक, विक्षेपात्मक एवं भ्रमात्मक शक्ति परमात्मा के सच्चिदानन्दमय स्वरूप का साक्षात्कार करने में अनेक प्रकार के अवरोध पैदा करती हैं। जबकि योगमाया की दिव्यशक्ति आत्मा को अक्षर ब्रह्म की लीला का दर्शन कराती हैं—

महामति प्राणनाथजी के शब्दों में—

जा कारन माया रची, सास्त्र भी ता कारन।
खेल भी एही देखहीं, और अर्थ भी लिए इन ।। किरंतन, ५२/६

जिन जानो सास्त्रों में नहीं, है सास्त्रों में सब कुछ।
पर जीव सृष्टि क्यों पावहीं, जिनकी अकल है तुच्छ ।।
किरंतन, ७३/२६

महामति ने माया की उत्पत्ति का मूल कारण जीव का मिथ्याभिमान बताया है। जबकि ब्रह्मप्रियाओं का प्रेमाधिक्य ही इसका द्योतक बना।

सत् को असत् और असत् को सत् समझ लेने का नाम ही माया है। इसी भ्रम में वशीभूत जीव, जगत को ब्रह्म और ब्रह्म को जगत मान लेता है। इस प्रकार जीव अनेकानेक योनियों में पुनः पुनः भटकता हुआ संसार के त्रिविध तापों का अनुभव करता रहता है। महामति के अनुसार सृष्टि भी तीन प्रकार की हैं— (१) जीव सृष्टि (२) ईश्वरी सृष्टि (३) एवं ब्रह्म सृष्टि—

सास्त्रों तीनों सृष्टि कही, जीव ईश्वरी ब्रह्म।
तिनके ठौर जुदे जुदे, देखियो अनुक्रम।।
जीव सृष्टि बैकुण्ठ लों, सृष्टि ईश्वरी अक्षर।
ब्रह्म सृष्टि अक्षरातीत लों, शास्त्र कहें यों कर।। किरंतन, ७३/२२/२३

जीव सृष्टि वैकुण्ठ तक के ज्ञान की अधिकारी है। ईश्वरी सृष्टि के जीव ब्रह्म की शक्तियों को पहचानने के अधिकारी होते हैं। अतः इनकी जाग्रतावस्था है और ब्रह्म सृष्टि की वासना (सुरता-स्मृति) सच्चिदानन्द स्वरूप श्री अक्षरातीत कृष्ण परमात्मा के ध्यान में सदा निमग्न रहती हैं। इन्हें तारतम्य (परमसार रूप सर्वोत्तम तत्त्वज्ञान) दृष्टि की प्राप्ति के पश्चात् त्रिगुणात्मक माया का प्रभाव सताता नहीं है। क्योंकि जो जीव जिस कोटि का होगा, उसमें अपनी मुक्ति एवं आराध्य के प्रति आसक्ति भी वैसी ही होगी।

ब्रह्म सृष्टि तो नित्य मुक्त है ये दिव्य ब्रह्मपुर में परात्पर पुरुषोत्तम (श्री राजश्यामाजी) की अंगनाएँ हैं— जिनका इस क्षरात्मक, मायामय, असत्, जड़, दुःखरूप, स्वप्नवत् महामोह सागर रूप, कर्मबन्धन वाले अक्षर ब्रह्म की मोहमयी माया की लीला का खेल (नाटक) देखने के लिए सुरता स्वरूप आविर्भाव हुआ है। महामति ने इन दिव्य ब्रह्ममुनियों को शुद्ध वासना माना है तथा इस जगत् को कालमाया के अन्तर्गत जागनी रास का ब्रह्मांड माना है। ईश्वरी सृष्टि में अनेक देवी, देवता, परमहंस, ज्ञानी और तपस्वी जन आते हैं। महामति प्राणनाथ ने पंचवासनाओं को भी ईश्वरी सृष्टि माना है। आप मोहरूपी माया के विषय में कहते हैं—

ए माया छे अति बलवंती। उपनी मूलधनी थकी।।
मुनिजन ने मनाव्या हार। शिव ब्रह्मादिक न लहे पार।।

श्रीरास, १/४

हवे माया नो जे पामसे पार। तारतम करसे तेह विचार।।
ब्रह्मांड मांहे तारतम सार। एणे टाल्यो सहु नो अंधकार।।
लोक चौद मायानो फंद। सहु छल तणाए बंध।।
समझया बिना सहुए अंध। तारतम कहे से सहू सनंध।।

श्रीरास, १/४१, ४२

महामति के अनुसार अक्षर ब्रह्म का कार्य अनेक ब्रह्मांड पैदा और लय करना है—

तहाँ एक पलक ना होवही, इत कै कलप बीतत।
कै इंड उपजे होए फना, ऐसे पल में कै इन रीत।।
ए मण्डल है सदा, जाए कहिए अक्षर।
जाहेर इत थे देखियें, मिने बाहर थे अंतर।।

कलश हि०, २४/१३,१६

जिसकी पलक मात्र से करोड़ों प्राकृत ब्रह्मांडों का उदय, स्थिति और लय हो जाता है, उसे अक्षर (अविनाशी) कहते हैं। जैसे—

भगवान जी खेलत बाल चरित। आप अपनी इच्छा सों प्रकृत।।
कोट ब्रह्मांड नजरों में आवे। क्षण में देखके पल में उड़ावे।।

परिकरमा, ३/८८

अक्षर ब्रह्म के चार स्वभाव हैं — (१) सत् स्वरूप, (२) सबलिक ब्रह्म (३) केवल ब्रह्म (४) अव्याकृत ब्रह्म।

अक्षर ब्रह्म के चार अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—जो एक प्रकार से जगत के उत्तम जीवों के लिए मोक्ष स्थान है। यहाँ पर मुक्तात्माओं को ब्रह्मलीला के आनन्द का अनुभव होता है और वे आवागमन रहित हो सदा के लिए अखंड हो

जाती हैं। वेद के पुरुषसूक्त में अक्षर ब्रह्म की चतुःपाद विभूति का वर्णन इस प्रकार है—**'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'** (पुरुष सूक्त, मंत्र ३) अर्थात् अक्षर ब्रह्म के चारपादों में से तीन दिवि (दिव्य धाम) क्रीडा स्थान में मोक्षरूप अखंड है और एक पाद (अव्याकृत, चिदानन्द लहरी और सुमंगला शक्ति) से महामोहमय सम्पूर्ण विश्व का प्रादुर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है। सबलिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का दिव्य स्वरूप है। अनन्त कोटि ब्रह्मांडों का कर्ता-हर्ता सबलिक ब्रह्म ही है। अव्याकृत ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म के अहंकार का स्वरूप है। यही प्रतिबिम्बित गोलोक है। केवल ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म की बुद्धि का स्वरूप है। यहाँ शृंगाररस का प्राधान्य है। इन केवल ब्रह्म के साथ उनकी अर्द्धांगिनी स्वामिनीजी (लक्ष्मीजी) एवं २४ हज़ार सखियाँ (ईश्वरी सृष्टि) हैं।

महामति ने स्वामिनी लक्ष्मीजी के आनन्द को योगमाया कहा है। इनका धाम 'केवल धाम' है। श्री कृष्णजी का महारास (रसो वै सः) आनन्द का आश्रय लेकर स्वतन्त्र योगमाया का नया ब्रह्मांड बनाकर हुआ था। केवल ब्रह्म रसानन्द होने से इसमें चतुष्पाद की कल्पना नहीं है। इस प्रकार पाताल से लेकर केवल ब्रह्म पर्यन्त जितने भी नित्या नित्यरूप धाम हैं वे सब (नित्य वैकुण्ठ) अक्षर ब्रह्म के सत्स्वरूप के अन्तर्गत हैं। सत्स्वरूप अक्षर ब्रह्म का सदंश मात्र है — **'सदंशेनाक्षरः जगत्'**।

यहाँ महामतिजी का 'दर्शन' एक विशेष बात प्रस्तुत करता है कि केवल भूतमात्र का शरीर ही क्षरात्मक नहीं है, लेकिन पंच महाभूत (भौतिक जगत) त्रिगुणात्मक तथा अंतःकरण चारों अष्टावरण सहित प्राणिमात्र तथा ब्रह्मांड (जगत्) को क्षरलोक माना गया है। कुछ विद्वान भूतमात्र के शरीर में व्यापक जीवात्मा को ही अक्षर ब्रह्म मानते है, परन्तु महामति प्राणनाथजी जीव को तो नारायण ब्रह्म का एक अंशांश मात्र मानते हैं। अक्षर ब्रह्म कार्य-कारण से असंख्य ब्रह्मांडों की उत्पत्ति एक पलक मात्र में करते हैं। अतः जीवात्मा को ही अक्षर ब्रह्म कहना उचित नहीं है। अक्षर ब्रह्म तो प्राकृत शरीर तथा इस ब्रह्मांड से परे अद्वितीय अखंड आनन्द अक्षरातीत परब्रह्म का अंग मात्र है।

अनादिकाल से सृष्टि तथा माया की उत्पत्ति इसी अक्षर ब्रह्म के सदंश से होती है और महाप्रलय काल में संपूर्ण जगत इसी में विलीन हो जाता है। ब्रह्म भुवन में अज्ञान भी नहीं है और काल की छाया भी नहीं है। ब्रह्मविषयक, शास्त्र प्रमाण के बारे में महामति जी कहते हैं—

काल आवत कबूँ ब्रह्म भवन में, तुम क्यों न विचारो सोई।
अखंड साईं जो यामें होता, तो भंग ब्रह्मांड को न होई।।

किरंतन, ३२/६

ए संसार सकल है सुपना, तो तुम पारब्रह्म क्यों पेख्या।

किरंतन, ३२/१

क्षर, अक्षर से परे जो अक्षरातीत ब्रह्म का लीला धाम इस सत्स्वरूप से भिन्न है, यद्यपि अक्षरब्रह्म और अक्षरातीत ब्रह्म में लीलाभेद के कारण भिन्नता दिखाई पड़ती है, अन्यथा अंगागी भाव से दोनों एक (अद्वैत) हैं। गीता एवं उपनिषदों में भी क्षर, अक्षर और अक्षरातीत के आधार से ब्रह्म के तीन रूप बताये गये हैं। महामति कहते हैं—

पाँच तत्व तारा ससि सूर, फिरे फिरे त्रिगुन निरगुन।
पुरुष प्रकृति यामें फिरे, निराकार निरंजन सुंन।।
ए चौदह पल में पैदा किये, पांच तत्व गुन निरगुन।।

याही पल में फना हुए, निराकार सुन निरंजन।
ए चौदे चुटकी में चल जासी, गुन निरगुन शून्यतत्व।।
निराकार निरंजन सामिल, उड़ जासी ज्यों असत।
अक्षर स्वरूप के पल में, ऐसे कै कोटि इंड उपजे।
पल में पैदा करके, फेरे वाही पल में खपे।।

किरंतन, ७४/६,८, २६

क्षरात्मक जगत् उत्पत्ति, स्थिति एवं लयात्मक है, अतः प्रलयकाल के समय अक्षर में लय होना ही इसकी नियति है। अक्षर ब्रह्म नित्य और अविनाशी है और वह सर्वलीला सम्पन्न होते हुए भी परब्रह्म अक्षरातीत की गुह्य लीला को नहीं जानते हैं। अक्षरातीत परब्रह्म के विषय में महाप्रभुजी का कहना है—

धणी अमारो अक्षरातीत। अमे तोहे न समझया पतीत।

श्रीरास, प्र० १ चौ० ५६

अक्षरातीत निध करी पेहचान। प्रकाश हि० प्र० २२ चौ० ६

अक्षरातीत सुख अखंड देने को, जगाऊँ तुम्हारे काजजी।

प्रकाश हि०, प्र० २७ चौ० ३०

सो अक्षर मेरे धनी के नित आवे दरसन।
ए लीला इन भाँत की, इत होत सदा वरतन।।
अक्षरातीत के मोहोल में, प्रेम इसक बरतत।
सो सुध अक्षर को नहीं, किन विध केल करत।।

किरंतन, प्र० ७४ चौ० २८, २६

जिस प्रकार श्रीकृष्ण भक्ति शाखा के विद्वान, आचार्य, संत भक्तों ने श्रीकृष्ण को ही पूर्णब्रह्म माना है, उसी प्रकार महामति प्राणनाथजी ने भी अपने उपास्य एवं आराध्य त्रिगुणात्मक, नारायण वासुदेव इत्यादि अंशांश तत्त्व से भी परे अनादि अक्षरातीत परब्रह्म श्रीकृष्ण को माना है। गीता, उपनिषद्, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, भागवत तथा अन्य पुराणों में भी परब्रह्म को ही श्रीकृष्ण नाम से अभिहित करने के पुष्ट प्रमाण हैं। इसीलिए सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी ने भी श्री मिहिरराज, महेराज को तारतम मंत्रोपदेश में यही परमसार रूप वचनामृत दिये हैः— **'निजनाम श्रीकृष्ण जी अनादि अक्षरातीत'** ये ही श्रीकृष्ण परब्रह्म, परमश्रेष्ठ तत्त्व हैं एवं सब के परम शासक एवं आलंबन भी। अतएव आराधना के योग्य है। इन अनादि अक्षरातीत, रासेश्वर, रासविहारी श्री कृष्ण की जिन्हें तत्त्वतः पहचान हो जाती है, वे परमधाम, मूलघर, अखंड मंडल, मूलमिलावा को प्राप्त कर लेते हैं। श्रीकृष्ण जी का दिव्य ब्रह्मपुरधाम अनादि एवं अखंड है। श्रुति, स्मृति में ब्रह्म के दिव्य अलौकिक नित्यविग्रह, लीला तथा अनंत शक्ति समूह एवं धाम, वन, गिरि, सरोवर आदि संपूर्ण सामग्री का वर्णन किसी-न-किसी रूप में मिलता ही है। अतः श्रीराजश्यामाजी एवं सुदंरसाथ (ब्रह्मसृष्टियाँ) का दिव्य ब्रह्मपुर अति उज्ज्वल, विभिन्न साधन सम्पन्न, अखंड और स्वलीलाद्वैत है। महामति—जी के शब्दों में श्रीकृष्णजी के परमधाम में—

ना होय नया न पुराना, श्री धाम इन परकार।
घटे बढ़े नहीं पत्र एक, सत सदा सर्वदा सार।।
एक पात ना खिरे वन का, ना गिरे पंखी का पर।

नया पुराना न होवहीं, जंगल या जानवर।।

कलश हि०, २३/६३

ऐसा सूक्ष्म स्वरूप देखाय के, दे धाम करी चेतन।
इत विलास कै विध कै, मांहे सिरदारी सैयन।। किरंतन, ७४/३३

अक्षरातीत परब्रह्म पूर्ण है। ऐश्वर्य, आनंद और संकल्प सिद्धि में अनंत सामर्थ्य रखते हैं। आप श्री अपनी इच्छानुसार एक से असंख्य हो जाते हैं और ब्रह्मानंद की रसानुभूति का अनुभव स्वलीलाद्वारा कराते हैं।

पूर्णपुरुषोत्तम युगलकिशोर श्रीकृष्ण पाँच लक्षणों से युक्त हैं—सत्, चित्, आनंद, अनंत और अद्वैत। **सत्** से प्रत्येक पदार्थ में सत्तात्मक स्वरूप से व्याप्त है। **चिद्** से चैतन्य और ज्ञानस्वरूप हैं। **अनंत** से धाम, गिरि, नदी, नहर, वृक्षादि, पशु लीला विशिष्ट गुणों से अखंडानंद की अनुभूति करवाते हैं तथा अद्वैत से सदा सर्वदा एक रस रूप है। उनसे परे कुछ भी नहीं है—

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः।।

कठोपनिषद्, १/३/मंत्र १२

इसीलिए ये अक्षरातीत पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण सदा सर्वदा उपास्य हैं—

मोटी मत ते कहिए एम, जेहेना जीवने वल्लभ श्रीकृष्ण।
मतनी मततां ए छे सार, वली बीजी मतां नो कहूँ विचार।।

प्रकाश, गुज० २४/५

अनादि अक्षरातीत 'श्री राजश्यामाजी' स्वयं प्रकाशवान है और अपने प्रकाश से क्षर, अक्षर की तमाम समृद्धि को सनाथ करते हुए प्रकाशित करते हैं। इसीलिए 'स्वलीलाद्वैत' भी कहे जाते हैं। इनकी परमाद्या आल्हादिनी शक्ति महारानी रासेश्वरी श्री श्यामाजी और उनके अंग स्वरूप बारह हज़ार ब्रह्मांगनाएँ भी सदा अखंडानंद में लीन परमप्रेमास्पद दिव्य ब्रह्मपुर में विराजित हैं। ऐसे परमोपास्य श्रीकृष्णजी को केवल ब्रह्मप्रियाएँ ही जान सकती हैं, जो कि अक्षर ब्रह्म का असत् जड़, दुःख, स्वप्नस्वरूप खेल देखने की इच्छा (मोह) से सुरता स्वरूप से कालमाया के ब्रह्मांड में अपने प्रियतम श्री राज से बिछुड़ गई हैं या अपने दिव्य (मूल) स्वरूप की मोहसागर में विस्मृत हो गयी है। उस दिव्यधाम में सुरता (ध्यान) को जागृत करने हेतु महामति जी कहते हैं—

तारतम का जो तारतम, अंग इन्द्रावती विस्तार।
पैए दिखावे पार के, तिन पार के भी पार।।
ए खेल देख्या बैठे घरों, अग्याएं सैयाँ नजर।
जब अन्तर आंखां खुली, तब दृष्ट घर की घर।

कलस, हि० २३/७२, ७०

क्षरथी तीत अक्षर थया, अने अक्षरातीत केहेवाये।
आपणे जावुं एणें घरे, इहाँ अटकलें केम पहुँचाये।।

किरंतन, ७०/५

परमधाम के रंगभवन आदि पचीस पक्ष ब्रह्मानंद युगलकिशोर की नित्य विहार स्थली हैं। जिसका वर्णन तारतम सागर में महामति जी ने अनिर्वचनीय कहकर के

ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की स्मृति हेतु किया है। तो भी—

न कहेवाय माया मांहें आ वाणी, पण साथ माटे कहेवाणी।
साथना रूदे मां रमाड़वा, तो में शब्द मां आणी।।

श्रीरास, १/४४

भारतीय दर्शन में आचार्यों ने जहाँ एक ओर राम, कृष्ण, वासुदेव, नारायण, ऊँकार, ज्योतिस्वरूप को परब्रह्म माना है, साथ ही शून्य निरंजन निराकार को भी परब्रह्म मानते है, अर्थात् साकार निराकार और शब्द ब्रह्म को भी ब्रह्म का रूप मानते है और यह भी मानते है कि सभी में ब्रह्म सत्ता है। दूसरी ओर अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म जैसे वेदांत के वाक्यों द्वारा जगत को ब्रह्म और ब्रह्म को जगत का रूप माना है। जगत में अज्ञान और ब्रह्म में ज्ञान भी बताया है, ऐसे विरोधाभासी वाक्यों एवं प्रश्नों के संदर्भ में महामति जी तारतम ज्ञान द्वारा सम्यक् उत्तर दिया है। महामति प्राणनाथजी का दृढ़ विश्वास है कि इस दुनिया में माया का बल प्रबल है, माया के गुणधर्म असत्, जड़, दुःख और अज्ञान है। यहाँ का जीवन व्यावहारिक, लेकिन बड़ा ही विलक्षण, विडम्बना युक्त, पानी के बुलबुले के समान, स्वप्न, ऐन्द्रजालिक तथा अनिर्वचनीय है। यहाँ नित्य कुछ भी नहीं है, राजसत्ता के सर्वोच्च स्थान से लेकर रंक से रंक व्यक्ति या प्राणी का जीवन अस्थिर है, क्योंकि यहाँ का नियम जन्म, वृद्धि और मृत्यु है। पंचभौतिक और त्रिगुणात्मक (अष्टधा प्रकृति) शरीर का अवश्य ही नाश होता है। अतः महामति ने शरीर और संसार को (अनित्य) क्षरात्मक (नाश होनेवाला) बताया है। क्षरात्मक सत्ता की विशालता उन्होंने पाताल से लेकर अक्षर ब्रह्म तक बतायी है। इस सत्ता को ही महामति ने माया कहा है— यह महामाया की सत्ता के मोह में बड़े-बड़े साधु-संत, ऋषि, मुनि, यति, जति, तांत्रिक, आदि लोग पड़े हुए है। माया की सत्ता भी अपने आपमें बड़ी प्रबल है।

वली लीधो तत्व मोह, जे थकी उपन्या सहू कोए।
कहे इन्द्रावती वल्लभा, ए माया छे अतिछल।
एहना आयुध अमृत रूप रस छल बल वल अक्ल।
अगिन कुटल ने कोमल, चंचल चतुर चपल।
लोक चौद माया नो फंद,
सहू छल तणां ए बंध,
जुओ जीव तणी ए रीत। नव छोड़े अंधेर नी प्रीत।।
चौद भवन माया अंधार। पार नहीं मोटो विस्तार।।

श्रीरास, प्रकरण १, २

चौद लोग स्वप्नवत् होने से अनित्य भी है, यथा—

सुपन तणी जे रामत, रची ते अति अख्यात।
मूल बुध बिसरी गई, जाणे सुपन नहीं साक्षात्।।

कलस गु०, प्र० २/२

जहाँ नथी कोई तहां है कहेवाए, ए बंने मोहना वचन,
ए सुध अजू किन ना परी, बढ़त जात विवाद।

कलस गुज०, १२/१३३

खेल तो है एक खिनका, पर जाने सदा अनाद।।

सनंध, ४/३७

मोहतत्व कहया नींद को, सुरत अहंकार।
सुपन को कहया ब्रह्मांड, नाम धरे बेसुमार।।

प्रकाश हि., ३१/८१

तत्व पांचो जो देखिए, यामें ना कोई थिर।
परले होसी पल में, वेराट सचराचर।।
ए उपजे पाँचो मोह से
और मोह को तो नाही पार।
नेत नेत कहे निगम फिरे।
आगे सुध ना परी निराकार।।

कलस हिन्दु., १/२६,२७

ज्यों मनुआ सुपना मिने, बेसुध गोते खाए।
खिनमें कहे सब ब्रह्म है, खिन में बंझा पूत।
खिन में कहे सत् असत, माया कछुए कही ना जाए।
यो संग संसा दृढ़ हुआ, सब धोखे रहे फिराए।

कलस हिन्दुस्तानी, २/२६,२७

पाँच तत्व छठी आत्मा, शास्त्र सबों ए मत।
यों निरमाण बाँध के, ले सुपन किया सत्।।

कलस हिन्दुस्तानी, १७/३५

इस प्रकार महामति प्राणनाथ के मतानुसार क्षरात्मक का अर्थ १४ लोक, ब्रह्मांड शून्य निरंजन, निराकार तक होता है।

मुण्डकोपनिषद में भी क्षरात्मक ब्रह्मांड से श्रेष्ठ अक्षरब्रह्म का संधान किस प्रकार करना चाहिए इस विषय में अनेक मंत्रों में से कुछ मंत्र इस प्रकार हैं—

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्।
एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाधद्वरिष्ठं प्रजानाम्।।

मुण्डक, खण्ड २/मंत्र १

भावार्थ— सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी परमेश्वर प्रकाश रूप है। समस्त प्राणियों के अत्यन्त समीप उन्हींके हृदय रूप गुहा में छिपे रहने के कारण ही ये गुहाचर नाम से प्रसिद्ध है। जितने भी हिलने, चलने वाले, श्वास लेने पर और आँख खोलने और मूँदने वाले प्राणी हैं उन सबका समुदाय इन्हीं परमेश्वर में समर्पित अर्थात् स्थित हैं। सबके आश्रय यही परमात्मा हैं। तुम इनको जानो। ये सत् और असत् कार्य और कारण, प्रकट और अप्रकट सब कुछ है। सबके द्वारा वरण करने योग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा समस्त प्राणियों की बुद्धि से परे अर्थात् बुद्धि द्वारा अज्ञेय हैं।

यदर्चिमधदणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः।
तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ।।२।। मुण्डक, खण्ड २/मंत्र २

जो परब्रह्म परमात्मा अतिशय देदीप्यमान प्रकाश स्वरूप है, जो सूक्ष्मों से भी अतिशय सूक्ष्म हैं, जिनमें समस्त लोक और उन लोकों मे रहनेवाले समस्त प्राणी स्थित

हैं। अर्थात् ये सब जिनके आश्रित हैं, वे ही परमक्षर ब्रह्म है, ये ही सब के जीवनदाता प्राण हैं वे ही सबकी वाणी और मन अर्थात् समस्त जगत के इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप में प्रकट हैं। वे ही परम सत्य और अमृत अविनाशी तत्व हैं। प्रिय शोनक! इस बेधने योग्य लक्ष्य को तू बेध अर्थात् आगे बताये जाने वाले प्रकार से साधन करके उसमें तन्मय हो जा—

धनुर्गृहीत्वोपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत्।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा, लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।।३।।

मुण्डक, २/२/३

जिस प्रकार किसी बाण को लक्ष्य पर छोड़ने से पहले उसकी नोक को सान पर धरकर तेज़ किया जाता है, उस पर ज़ंग आदि को दूर करके उसे धारयुक्त एवं चमकीला बनाया जाता है, उसी प्रकार आत्मा रूपी बाण को उपासना द्वारा निर्मल एवं शुद्ध बनाकर उसको प्रणव रूप धनुष पर भली-भाँति चढ़ाना चाहिए। अर्थात् आत्मा को प्रणव के उच्चारण एवं उसके अर्थरूप परमात्मा के चिंतन में सम्यक् प्रकार से लगाना चाहिए। इसके अनन्तर जैसे धनुष को पूरी शक्ति से खींचकर बाण को लक्ष्यपर छोड़ा जाता है, जिससे वह पूरी तरह से लक्ष्य को वेध सके, उसकी प्रकार वहाँ भावपूर्ण चित्त से ओंकार का अधिक से अधिक लम्बा उच्चारण एवं उसके अर्थ का प्रगाढ़ एवं सुदीर्घ काल तक चिन्तन करने के लिए कहा गया है, जिससे आत्मा निश्चित रूप से अविनाशी परमात्मा में प्रवेश कर जाय, उसमें तन्मय होकर अविचल स्थिति प्राप्त कर ले। भाव यह है कि ओंकार का प्रेमपूर्वक उच्चारण एवं उसके अर्थ रूप परमात्मा का प्रगाढ़ चिन्तन ही उनकी प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय हैं।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत।। मुण्डक, २/२/४

इस रूपक में परमेश्वर वाचक प्रणव (ओंकार) ही मानो धनुष है, यह जीवात्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसके लक्ष्य हैं। तत्परता से उनकी उपासना करने वाले प्रमादरहित साधक द्वारा ही वह लक्ष्य वेधा जा सकता है, इसलिए हे सौम्य ! तुझे पूर्वोक्त रूप से उस लक्ष्य को वेधकर बाण की ही भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिए।

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्ष-
मेतं मनः सह प्राणैच सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ।। (मुण्डक,२/२/५)

जिन परब्रह्म परमात्मा में स्वर्ग, पृथ्वी तथा उनके बीच का सम्पूर्ण आकाश एवं समस्त प्राण और इन्द्रियों के सहित मन बुद्धिरूप अन्तःकरण सब के सब ओतप्रोत हैं, उन्हीं एक सर्वात्मा परमात्मा को तुम पूर्वोक्त उपाय के द्वारा जानो दूसरी सारी बातों को असार समझकर सर्वथा छोड़ दो। वे सब तुम्हारे साधन में विघ्न हैं, अतः उनसे सर्वथा विरक्त होकर साधना में तत्पर हो जाओ। यही अमृत का सेतु है, अर्थात् संसार समुद्र से पार होकर अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पुल के सदृश्य है। अक्षर ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति होती है इस विषय में उपनिषद् में अनेकानेक प्रमाण मिलते हैं। जीवों के विभिन्न कर्म रूप बीजों के अनुसार ही परमात्मा उनको भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न करते हैं। उनमें किसी विषमता और निर्दयता का दोष नहीं।

दिव्य परम पुरुष परमात्मा निःसंदेह मायिक आकार रहित और समस्त जगत के बाहर और भीतर भी अपनी सम्पूर्ण सत्ता से परिपूर्ण हैं। वे जन्म आदि विकारों से रहित सर्वथा विशुद्ध हैं, क्योंकि उनको न तो मायिक प्राण है, न इन्द्रियाँ हैं और न मन ही है। वे सत्ता मात्र से सबकुछ करने में समर्थ हैं, इसीलिए सर्वशक्तिमान परमात्मा अविनाशी (अक्षर ब्रह्म) से अत्यन्त श्रेष्ठ या सर्वथा उत्तम हैं।

वे परब्रह्म परमात्मा सचमुच रस स्वरूप (आनन्दमय) हैं, यही वास्तविक आनंद है, क्योंकि अनादिकाल से जन्म-मृत्यु रूप और दुःख का अनुभव करने वाला यह जीवात्मा इन रसमय परब्रह्म को पाकर ही आनंदयुक्त होता है। जब तक इन परम प्राप्य आनन्द स्वरूप परमेश्वर से इसका संयोग (तारतम्य) नहीं हो जाता, तब तक इसे किसी भी स्थिति में पूर्णानन्द, नित्यानंद, अखंडानन्द और अनन्त आनन्द नहीं मिल सकता। अतः मनुष्य को दृढ़तापूर्वक विश्वास करना चाहिए कि परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करते है। जब सच्चिदानंद स्वरूप एकमात्र परमात्मा ही है, तब दूसरा कौन आनन्द दे सकता है।

इस विषय में गीता में निम्नानुसार प्रमाण हैं :—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। गीता, २/१६

असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों को ही तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुं मर्हति।। गीता, २/१७

नाश रहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। गीता, २/२७

जन्म हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। अतः प्राणनाथ जी ने जिस प्रकार कतेब पक्ष के गूढ़ार्थ शब्दों के सूक्ष्मतम अर्थ बताये हैं, उसी प्रकार वेद-उपनिषद्-गीता, श्रीमद्भागवत जैसे पवित्र ग्रंथों के स्थूल अर्थ (बाहरी अर्थ) न बताते हुए संस्कृत शब्दों के भी सूक्ष्मतम परब्रह्म सच्चिदानंद परक अर्थ बताये हैं। ज़रूरत है वेद पक्ष के शब्दों का सम्मान करने और उसके सूक्ष्मतम (आंतरिक) अर्थ समझकर ग्रहण करने की। महामति का भी अर्थ होता है महान् सूक्ष्मतम जागृत बुद्धि वाले। महामति जी ने वेद-कतेब का झगड़ा मिटाके हिन्दूधर्म के सनातन स्वरूप और सर्वधर्म समभाव की की मूलभूत संकल्पना का प्रगटीकरण किया है। इस बात का स्पष्टीकरण उन्होंने 'खुलासा' ग्रंथ में किया है। अतः निजानंद (आत्मानंद) दर्शक, श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म ही निजानंद दर्शन का पर्यायवाची है। निजानंद दर्शन वेद की उद्घोषणा के समान ही असत् जड़ दुःखमय संसार से सत्य की ओर ले जाने की प्रेरणा देता है कि —

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय।।

—बृहदारण्यकोपनिषद्, १/३/२८

हे परमात्मा !
मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलिये,
मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलिये,
मुझे अपूर्णता (मृत्यु) से पूर्णता की ओर ले चलिए।

एक परम सत्य एवं नाम के विषय में ऋग्वेद में इस प्रकार मंत्र है —

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहु :। ऋग्वेद, १/१६४/४६

एक ही मूल परमात्म तत्त्व को विद्वान् लोग अनेक नामों से कहते हैं—

इसके अलावा 'ब्रह्मसूत्र' में भी अक्षर ब्रह्म विषयक अनेक सूत्र हैं—

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा (ब्रह्मसूत्र १/२/२) अब यहाँ से ब्रह्मविषयक जिज्ञासा का आरम्भ किया जाता है।

जन्माद्यस्य यतः। (१/१/२) इस जगत के जन्म आदि (उत्पति, स्थिति, और प्रलय) जिससे होते हैं, वह ब्रह्म है।

अक्षरमम्बरान्त घृतेः (१/३/१०)

'अक्षर' शब्द परमात्मा का ही वाचक है, क्योंकि आकाशपर्यन्त सम्पूर्ण जगत को धारण करनेवाला परमात्मा बताया गया है।

सा च प्रशासनात् (१/३/१)

वह 'अक्षर ब्रह्म' सब भूतों को धारण कर सब पर भली-भाँति शासन करनेवाला कहा है। महामति ने अपनी वाणी में अक्षर ब्रह्म एवं अक्षरातीत पर ब्रह्म का महद् उल्लेख किया है—

सुंन निरगुन निरंजन, देखे वैकुंठ निराकार।
अक्षर पार अक्षरातीत, प्रेम प्रकास्यो पार के पार।।

किरंतन, ५३/९

इस प्रकार महामति का दर्शन सभी शास्त्रों की नींव भी है और कलश भी है। उन्होंने एक ओर जहाँ कतेब पक्ष के रहस्य को सम्यक् रूप से खोला है, वहाँ वेद, उपनिषद् इत्यादि भारतीय दर्शन में अवगाहन करके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थ भी प्रकाश में लाकर स्वलीलाद्वैत की अनुभूति करायी है। संक्षेप में सभी दर्शनों का समन्वय करते हुए श्री महामति ने तारतम ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण परमधाम का प्रगट रूप से वर्णन किया है, वह अपने आप में अद्वितीय है, अनुपम है, परमसत्य है तथा आत्म जागृति की अवस्था में परम सत्य की परम अनुभूति भी है। वेद और कतेब ग्रंथों में संकेतित परम गुह्य विद्या का स्पष्टीकरण महामति की ब्रह्मवाणी, श्री कुलजमस्वरूप में हुआ है।



दिव्य लीला दर्शन

ब्रह्मलीन पं. कृष्णदत्त शास्त्री

जिस प्रकार इस परिवर्तनशील स्थूल विश्व के पीछे समस्त सुख-दुखों की साधन-रूप प्रकृति और इस स्थूल जगत की बीज भूत अदृश्य एवं मोहक सूक्ष्म दुनिया विद्यमान है, उसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों व्यष्टि-समष्टि के पीछे एक नित्य आनन्द भूमिका है। उसके स्वरूप को समझे बिना किसी भी जगत् का कितना भी अन्तर्दृष्टि विज्ञान प्रामाणिक क्यों न हो, वह अपूर्ण ही माना जायेगा। उस वास्तविक विभूति का ज्ञान होते ही, कोई ज्ञातव्य शेष नहीं रहता। वास्तविक जगत्, वह चिन्मय परमधाम तो सदैव से वर्तमान है। इस दृश्य जगत् को विशेष कारण से बनाया गया है।

यह दृश्यमान अष्टावरण सहित विराट, महाविष्णु (आदिनारायण) एवं प्रकृति पर्यंत, स्थूल, सूक्ष्म जगत् सब क्षर है। उससे परे चतुष्पाद-विभूति लीला एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न सृष्टिनियन्ता अविनाशी अक्षर ब्रह्म है। उनके उन्मेष मात्र से काल में अनन्त विश्वों का उदय एवं लय हुआ करता है। ऐसे शक्तिसम्पन्न अक्षर ब्रह्म भी सच्चिदानंद स्वरूप, परात्पर पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की एक कला मात्र है।

कूटस्थ अक्षर से पर उत्तम पुरुष सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह स्वलीलाद्वैत ब्रह्म, अनन्त धाम लीलादि कला सम्पन्न पूर्ण परमधाम में अखंड विराजमान है। वस्तुतः ब्रह्म—अक्षर एवं अक्षरातीत दोनों एक ही हैं, केवल लीला मात्र से भेद है। उसी प्रकार आनन्द अंग श्यामा एवं उनकी कलाओं की प्रतीकित स्वरूप, उनकी अंगरूपा आत्माएँ भी परब्रह्म का अंग, उनका रूप ही है। परमधाम के महल, बन, सरोवर आदि भी परब्रह्म के सजातीय, उनके नूर या तेज का विस्तार हैं। इस आत्मा को जो कुछ योग्य वस्तु यहाँ प्राप्त हैं और जो प्राप्त नहीं अर्थात् मनोरथ मात्र अगोचंर हैं, वे सब उस परमधाम में निरतिशय चिन्मय रूप से विराजमान हैं। आनन्दस्वरूप ब्रह्म अमृत अखण्ड रूप से प्रकाशित हो रहा है। ब्रह्मधाम सच्चिदानंदमय सामग्री सम्पन्न परब्रह्म की महिमा में विराजमान है।

परमधाम में सर्वत्र सब कुछ पूर्ण है। अभाव है तो 'अभाव' का ! अक्षरब्रह्म की कल्पना में निर्मित जगत् में कुछ भी पूर्ण नहीं। अपूर्णता की यही स्थिति दिखाकर पूर्णानन्द का बोध या अहसास ज़गाने के भाव को मन में लाकर अक्षरातीत ब्रह्म 'श्री राजजी' ने आनन्द अंग श्यामा एवं ब्रह्मात्माओं के मन में नश्वर संसार के अनुभव और अक्षर ब्रह्म के मन में आनन्द-लीला दर्शन का विचार उत्पन्न किया। यही भाव सृष्टि-रचना (क्षर जगत) एवं उनमें ब्रह्मात्माओं के अवतरण क़ा महाकारण बना।

1. निजानन्द चरितामृत से संकलित

परब्रह्म ने मोहनिद्रा का विस्तार किया। अक्षर ब्रह्म के मन पर आवरण पड़ा तो उसके चतुर्थ अव्यक्त पाद में जाग्रत अवस्था में देखा परमधाम, स्वप्न समान भासने लगा। मोह समुद्र में गोता लगाने पर मन में अहंकार का उदय हुआ। यही भाव हिरण्यगर्भ बनकर उसमें आदिनारायण रूप से प्रकट हुआ। 'एकोऽहं बहुस्याम' की कल्पना यहीं से निःसृत होकर विस्तार पाती है। इसी चित्तवृत्ति ने तीन गुणों एवं पाँच तत्त्वों की सहायता से त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) एवं त्रिलोक पाताल, मर्त्य देव लोक का विस्तार किया। उधर परब्रह्म स्वामी ने ब्रह्मात्माओं पर सत् का आवरण डालकर उन्हें तन्द्रिल किया। इतने में जगत् के कितने ही मन्वन्तर व्यतीत हो गये। ब्रह्मात्माओं की सुरत को जगत् जीवों पर उतारा गया।

ब्रज लीला :

मृत्युलोक में विष्णु भगवान श्री कृष्ण के अवतरण का काल था। मथुरा की कारा में पड़े देवकी वसुदेव के आठवें पुत्र के रूप में उन्होंने अवतार धारण कर किया। परब्रह्म स्वामी की किशोर लीला देखने की वासना से व्याप्त अक्षर ब्रह्म की शुद्ध वृत्ति ने गोलोकीय लीला रस को धारण कर अद्वितीय बालक में प्रवेश किया। विष्णु भगवान के आदेश से गोलोक आवेशधारी बालक को वसुदेव जी नंद बाबा के घर छोड़कर बदले में उनकी पुत्री को ले आये। नंद बाबा के गृह में प्रवेश करते समय उनपर अक्षरातीत ब्रह्म का आवेश विराजमान हुआ। ब्रज मंडल की गोपबालाओं में परमधाम की आत्माओं की सुरत का अवतरण हो चुका था। उन्हें लीला दिखाकर आनन्दित करने के लिये परब्रह्म स्वामी स्वयं श्री कृष्ण के बाल रूप में प्रकट हुए।

रास लीला :

बालक श्री कृष्ण में ग्यारह वर्ष बावन दिन तक अक्षरातीत ब्रह्म का आवेश रहा। अपनी बाल-लीलाओं से जगत् को मुग्ध और विस्मित करके अपनी योगमाया शक्ति के द्वारा उन्होंने चिन्मय रास मंडल की रचना की। उन्होंने बंशी बजाकर गोपियों को वहाँ बुलाया। अक्षर ब्रह्म की चित्तवृत्ति जिस प्रणय-क्रीड़ा को देखने की इच्छुक थी—जगत में वही लीला रास-लीला के नाम से विख्यात हुई। अक्षर ब्रह्म का ध्यान रास मंडल में केन्द्रित होते ही कालमाया का यह ब्रह्मांड देवी-देवताओं सहित श्री कृष्ण में लीन हो गया। रास लीला के लिये चिन्मय योगमाया रचित वृन्दावन में प्रवेश करने से पूर्व श्री कृष्ण और गोपिकाओं ने योगमाया के कलेवर धारण किये। वृन्दावन में श्री कृष्ण ने गोपियों को अनेकों आनन्ददायी क्रीड़ाओं में रमण कराया। वहाँ की अपूर्व शोभा एवं रासलीला का विशद् वर्णन 'कुलजम स्वरूप' में संकलित ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

नित्य अखंड रास लीला की ओर संकेत करते हुए श्री व्यास जी की धारणा यह थी कि रास लीला प्रकृति से परे होने से अनुभव में नहीं आ सकती। जब श्री कृष्ण प्रभु प्रकृति में रमण करते है अर्थात् प्राकृत जगत में रासलीला करते हैं तब इनकी लीला का अनुभव महानात्माओं को होता है। वास्तवी रासलीला तो सदैव एवं अव्याहृत चलती रहती है। अक्षर ब्रह्म एवं ब्रह्मात्माओं की इच्छा को पूर्ण करने के लिये यह लीला योगमाया के ब्रह्मांड में हुई। एक मधुर स्वप्न की भाँति वह वास्तविक लीला अक्षर ब्रह्म के चित्त में अखंड रूप से अंकित हो गयी। नित्य वृन्दावन में इस लीला का प्रतिभास है। इस प्रतिबिम्ब को देखकर वेद ऋचाओं या श्रुतियों ने उसका अनुभव प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। उनके लिए पुनः कालमाया का ब्रह्मांड बना।

जागनी लीला :

पूर्ववत् एवं इच्छित विश्व प्रकट होने के अनतर वेद-श्रुतियाँ, गोपियों के रूप में प्रकट हुईं। अक्षर ब्रह्म श्री कृष्ण रूप में अवतरित हुए। अब उनमें अक्षरातीत परब्रह्म का आवेश नहीं था। सात दिनों तक गोकुल में आनन्द विहार हुआ। तदनन्तर श्री कृष्ण गोकुल छोड़ मथुरा में आ गये। यहाँ तक अक्षर ब्रह्म का आवेश उनमें विराजमान रहा। अक्षरब्रह्म श्री कृष्ण ने मथुरा-प्रवेश से लेकर गजमल्ल कंसादि राक्षसों को मारकर, वसुदेव देवकी को बन्धन: मुक्त करना और उग्रसेन का राज्याभिषेक आदि समस्त कार्य चार दिन में पूर्ण किये। इस लीला को 'व्यवहारिकी लीला' का नाम दिया जाता है। पुराण ग्रन्थों में अखंड रास, छह मास की रास लीला एवं रास रात्रि की लीला के नाम से रासलीला का वर्णन है। इन सबका रहस्य स्पष्ट करते हुए महामति ने बताया कि इन सबमें क्रीड़ा करनेवाली शक्तियाँ एवं आत्माएँ भी विभिन्न स्तर एवं लोक से प्रकट हुई थीं। ग्यारह दिन की 'व्यवहारिकी लीला' के उपरान्त श्री कृष्ण में जो आवेश शक्ति थी, वह गोपिकाओं में समा गयीं। इसी के बल पर वे श्री कृष्ण का शारीरिक वियोग सहन करती हुई—शरीर छोड़ने के उपरान्त उनके धाम को लौट गयीं।

गोपाल वेष उतार देने के बाद मथुरा से द्वारिका तक श्री कृष्ण ने जो भी लीलाएँ की, वे सब विष्णु स्वरूप श्री कृष्ण की हैं। यों तो श्री कृष्ण की एक-एक लीला में अनन्त भेद भरे पड़े हैं, परन्तु मुख्य रूप से कृष्ण लीला और स्वरूप के तीन भेद माने गये हैं। ग्यारह वर्ष बावन दिवस पर्यन्त परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण की बाल लीला को 'गोकुल लीला' कहते हैं। रास-रात्रि के उपरान्त उन्होंने ब्रज में जितनी लीलाएँ कीं यथा, मथुरा में कंस वध तथा उग्रसेन को राज्याभिषेक एवं तदनन्तर ग्वाल-वेश का परित्याग कर क्षत्रिय भेष का धारण, यहाँ तक अक्षर-ब्रह्मावेशधारी गोलोक स्वरूप की लीला है। तत्पश्चात् द्वारका पर्यन्त जितनी भी लीलाएँ हैं वे विष्णु स्वरूप की हैं जिसके अन्तर्गत उन्होंने क्षत्रिय भेष धारण कर जरासंध आदि दैत्यों का संहार किया। महाभारत युद्ध के समय गीता का ज्ञान दिया। पांडवों को युद्ध से बचाकर भीष्म पितामह द्वारा धर्मनीति तथा राजनीति आदि का उपदेश सुनवाया। इस जगत में अनेक लीला कर वे बैकुण्ठ लोक पधारे। और इस प्रकार जगत् में सोलह कला सम्पूर्ण श्री कृष्ण अवतार का कार्य सम्पन्न हुआ।

श्री कृष्ण की वास्तवी लीला के भेद स्पष्ट न होने के कारण शास्त्रवेत्ता सम्पूर्ण श्री कृष्ण लीला को केवल बैकुंठवासी श्री कृष्ण की लीला मानते हैं। वास्तविकता यह है आवश्यकतानुसार समय-समय पर उनमें गोलोक, अक्षरब्रह्म और अक्षरातीत ब्रह्म की शक्तियों का प्रवेश हुआ। तारतम ज्ञान के अभाव के कारण जिज्ञासु जन भी मृत्युलोक, गोलोक एवं चिन्मय योगमाया के ब्रह्मांड में हुई लीला का भेद जान न पाये।

चिन्मय वृन्दावन में रासलीला खेलकर ब्रह्मात्माओं की सुरत परमधाम को लौटी। परन्तु जगत् के दुख-सुख को देखने की कामना शेष रह गयी। जैसे निद्रा में स्वप्न भंग होने पर जागकर हम पुनः निद्रा में लीन हो जाना चाहते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मात्माएँ पुनः जगत में अवतरित हुईं। इस क्षण भर में यहाँ कई मन्वन्तर व्यतीत हो गये। उनके अवतरण के लिये शास्त्र-पुराण, कतेब ग्रंथों में अनेक भविष्य-वाणियाँ की गई हैं—जिससे कि मरणधर्मा, जगत् जीव उनके दर्शन पाकर मुक्त हो सकें। इस आयोजन में आनन्द अंग श्यामा महारानी की सुरत का प्रवेश श्री देवचन्द्र जी में हुआ।

निजानंद स्वामी श्री देवचन्द्र जी महाराज :

सिंध प्रदेश के उमरकोट नगर में श्री मतु मेहता एक साधनसम्पन्न, सुसमृद्ध, यशस्वी और सुकुलीन प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनकी धर्मपत्नी कुँवरि बाई दया, धर्म और भक्ति भाव की साक्षात् मूर्ति थीं। उदार भाव, सात्त्विक जीवन, एवं पवित्र आचार-विचार के कारण समस्त उमरकोट के निवासी इनका पर्याप्त सम्मान करते थे। सब प्रकार से सुखी एवं सम्पन्न होने पर भी सन्तान का अभाव उनको खटकता था।

एक दिन पूजा में लीन कुँवरि बाई को ऐसा आभास हुआ कि मानो एक तेजपुंज उनकी गोद में समा गया हो। ज्योतिषियों ने इसे पुत्र जन्म का योग बताया। इसके दस मास उपरान्त सम्वत १६३८ (१५८१ ई०) आश्विन मास, शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन, ब्राह्मी मुहूर्त में बालक श्री देवचन्द्र का जन्म हुआ। परात्परपूर्ण ब्रह्म की आनन्द अंग श्यामा का आवेश लेकर परमधाम की सुन्दरी सखी के अवतार लेने से उमरकोट गाँव धन्य हो गया।

मतु मेहता एवं कुँवर बाई के हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया एवं सबकी मांगलिक बधाई, भेंट-उपहार एवं आशीर्वाद को स्नेहपूर्वक ग्रहण किया। सारे नगर के नर-नारियों के हर्ष का पारावार न रहा। पंडितों ने बालक का नाम देवचन्द्र रखा। माता पिता ने विधिपूर्वक इस बालक के सभी संस्कार कराये।

अवतारी पुरुषों के जीवन में प्रायः चमत्कारी घटनाएँ घटा ही करती हैं। बालक श्री देवचन्द्र जी के बाल्यकाल में घटी कुछ चमत्कृत करनेवाली घटनाओं की चर्चा उनके साथी बालक अपने घरों में करते थे। वे जब कभी अपने हाथ से भोगादि अर्पित करते तो स्वयं देवता प्रत्यक्ष होकर पुजापा एवं प्रसाद को ससम्मान ग्रहण करते। एक दिन देवी के मन्दिर में अनेकों देवियाँ प्रत्यक्ष होकर बालकों के संग खेलने लगीं। इसी प्रकार, एक बार श्री देवचन्द्र जी बालकों के साथ श्मशान-भूमि में चले गये। उन्हें ऐसे लगा मानों कुछ भूत-प्रेतादि उनके आसपास नाचने लगे हैं। बताते हैं, श्री देवचन्द्र जी ने अपने कमण्डलु से उनपर कुछ जल डाल दिया तो वे अपना प्रेत-योनि से मुक्त होकर बैकुंठ लोक को चले गये।

श्री देवचन्द्र अन्तर्मुखी बालक थे। सदैव संत-महात्माओं की खोज में रहते। मारवाड़ देश में जलाभाव एवं आवागमन की कठिनाइयों के कारण उच्चकोटि के संत और महात्माओं का आगमन नहीं हो पाता था। श्री देवचन्द्र जी के हृदय में ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा एवं संसार के लिए वैराग्य की भावना क्रमशः बढ़ती चली जा रही थी। उनके मन में सर्दव यह प्रश्न गूँजा करते—मैं कौन हूँ ? संसार क्या है ? इसके परम निर्माता का साक्षात्कार कैसे हो ? हम इस संसार में क्यों आये हैं ? हमारा गन्तव्य कहाँ है ? उमरकोट में इनके प्रश्नों का समुचित उत्तर न मिला। वे एक योग्य गुरु की खोज में थे। इधर-उधर भटकते रहने एवं बहुत सत्संग करने पर भी जब संतोष न हुआ तो उन्होंने उमरकोट छोड़ देने का निश्चय कर लिया। उनकी उदासीन चित्त वृत्ति को देखते हुए श्री मतु मेहता अपने कार्य व्यापार के सिलसिले में इन्हें कच्छ प्रदेश भुजनगर (भुज) ले गये। पिता अपनी आवश्यक वस्तुओं का लेन-देन करते रहे जबकि पुत्र ने वहाँ के साधु-संतों के स्थान परख लिये। वे बेमन से घर वापस लौटे। निर्णय लेने में देर न हुई। सोलह वर्ष की आयु में घर-द्वार त्याग कर एक बारात के पीछे वे पैदल ही सदा के

लिये घर से निकल कर पुनः भोजनगर की ओर चल पड़े। लेकिन ऊँट और घोड़ों पर सवार बारात आगे निकल गयी। रात्रि के घोर अंधकार तथा पहाड़ों के समान ऊँची उड़ती रेत ने पगडंडियों के चिह्न तक मिटा दिये थे। ऐसे में भटके, घबराये, थके और हारे तरुण को स्वयं परब्रह्म स्वामी ने प्रकट होकर मार्ग दिखाया और उनकी गठरी उठाकर उन्हें मरुभूमि से पार कर दिया। पार पहुँचकर श्री देवचन्द्र जी ने उस 'पुरुष' को धन्यवाद कहना चाहा किन्तु वे कहीं दिखाई न दिये। वे एकदम चकित और अवाक् थे— अरे ! मैं जिन्हें खोजने निकला था, वही तो मेरी गठरी उठाकर मेरे साथ चल रहे थे। मैं उन्हें खोज ही लूँगा। इस प्रकार का आत्मविश्वास लेकर श्री देवचन्द्र अपने गन्तव्य-स्थल तक जा पहुँचे।

भुजनगर में महात्माओं का बहुत सम्मान था। स्थान-स्थान पर अनेक मत-मतान्तरों के विद्वानों, संतों और मठाधीशों ने अपनी धाक जमा रखी थी। देवचन्द्रजी वहाँ अनेक महात्माओं, योगियों एवं साधकों के मिले किन्तु उनके मन की जिज्ञासा शान्त न हुई। यद्यपि वे परब्रह्म की निर्मल आत्मा सुन्दरबाई के स्वरूप थे तथापि गुरुजनों की आज्ञा के पालन के लिये उन्होंने समस्त यज्ञ योग, तप-होम के अनुष्ठान किये। कठिन साधनाओं में शरीर को तपाया। वे जहाँ भी गये, सबका ज्ञान सुनते सीखते। सबने अपने-अपने अनुभव और शक्ति भर इनको बताने-सिखाने में कोई क़सर न रखी। परंतु आत्म-साक्षात्कार करा देना सहज कार्य नहीं था। इन स्थानों से श्री देवचन्द्र जी को निराश लौटना पड़ा। लेकिन उनके उत्साह और आत्म प्रेम में किसी प्रकार का अन्तर न पड़ा।

श्री देवचन्द्र जी पहली बार भुजनगर में आये थे तो राधावल्लभी सम्प्रदाय के संत श्री हरिदास स्वामी का दर्शन प्राप्त कर चुके थे। जब जप-तप-नियमों से मन सन्तुष्ट न हुआ तो वे एक बार पुनः उनकी शरण में आ गये। स्वामी जी प्रेमभाव से राधा माधव भक्ति में लीन रहते थे। श्री देवचन्द्र जी ने उनके साथ प्रेम सेवा में मन लगाया। साधु हरिदास जी ने उन के उद्विग्न माता-पिता को भी भुजनगर बुलवा लिया।

श्री देवचन्द्र जी पूर्ण गुरुभक्ति और समर्पण भाव से सेवा में लीन हो गये। प्रातः चार बजे से पूर्व ही मन्दिर की परिक्रमा करते, द्वार खुलने पर जलादि भर लाते। हरिदास जी के सभी सेवा कार्यों में इनका संग रहता। संत हरिदास जी ने प्रसन्न होकर इन्हें मंत्र प्रदान किया। कुछ दिन उपरान्त हरिदास जी ने बाल मुकुन्द की प्रतिमा उन्हें देने का संकल्प लिया। किन्तु बालमुकुन्द जी ने दर्शन देकर उन्हें बताया कि श्री देवचन्द्र तो साक्षात् परब्रह्म स्वामी की अंगना हैं, उनसे सेवा लेने का अधिकार हमें नहीं। यदि श्री देवचन्द्र जी हठ करें तो उन्हें बाँकेबिहारी के अंगवस्त्र दे दीजिये।

उन वस्त्रों को ही सम्मानपूर्वक सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर या पधरा कर श्री देवचन्द्र जी विधिपूर्वक उनकी पूजा करने लगे। उनकी दिनचर्या भक्तिभाव में बीतने लगी। स्वयं जल भरना, अपने हाथों रसोई बनाकर भोग लगाना, ऋतु के अनुसार सभी सेवा करना उनकी दिनचर्या हो गयी। विवाह हुआ, पुत्र एवं पुत्री का जन्म भी, किन्तु श्री देवचन्द्र जी की पूजा-अर्चना में कमी न आयी।

एक दिन प्रेम की तल्लीनता में, ध्यानावस्था में ही आप ब्रजधाम में जा पहुँचे। वहाँ श्री कृष्ण के साथ घुंघरी खाने लगे तो इनका ध्यान अचानक उचट गया। आँखें खुलीं तो देखा तो प्रसाद पत्तल पर प्रत्यक्ष पड़ा था। श्री देवचन्द्र जी को विश्वास हो गया कि जिस स्वामी ने मरुभूमि में राह दिखाई थी, उसी ने मुझे अपने स्वरूप को दर्शन

दिखाकर कृपा की है। इतना कुछ प्राप्त करने के उपरान्त भी वे संतुष्ट नहीं हुए। उनके मन में उठनेवाले प्रश्न अब भी अनुत्तरित थे। उन्हें उन प्रश्नों का उत्तर चाहिए था। वे विचलित हो उठे।

भुजनगर से श्री देवचन्द्र जी जामनगर आ गये। यहाँ श्याम जी के मन्दिर में उन्होंने कान्ह जी भट्ट से चौदह वर्ष पर्यन्त निरंतर श्रीमद्भागवत की कथा सुनी। आँधी, तूफ़ान, रोग, शोक की अवस्था में भी कथा श्रवण का उनका नियम भंग न हुआ। प्रभु-प्रेम की कसौटी पर खरे एवं प्रेम-परीक्षा में वे पूरे उतरे। एक दिवस श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण करते समय प्रेमावेश में अधिक निमग्न हो जाने के कारण हृदय सिन्धु के आलोड़न से दुर्लभ रत्न बाहर आ छलके। एक महान तेज पुंज उनके सामने प्रकट हुआ। उन्हें करोड़ों सूर्यो के प्रकाश से भी अधिक समुज्ज्वल शीतल-प्रभापूर्ण, अभिनव कांति से देदीप्यमान श्री कृष्ण जी का साक्षात् दर्शन हुआ। आश्चर्यचकित श्री देवचन्द्र जी से कुछ कहते न बना। स्वयं स्वामी ने मन की सभी दुविधाओं को मिटाते हुए कहा—'मेरा नाम श्री कृष्ण है। क्षर अक्षर जगत से परे मेरा धाम है। तुम परमधाम की अंगना श्यामा हो। सुख दुखमय जगत् देखने की अभिलाषा लेकर तुम यहाँ आयी हो। तुम्हारे समान अनेक आत्माएँ जगत् के इन्द्रजाल में उलझ गयी हैं। उन्हें मोह निद्रा से जगाकर परमधाम लौटा लाओ।'

'मैं उन्हें कैसे खोजूँ स्वामी?—' देवचन्द्र जी ने पूछा। उत्तर मिला, 'यहाँ कुछ दिनों के लिए चमत्कार-लीला होगी। तुम्हारे परमधाम और आत्म स्वरूप के वर्णन को सुनकर लोग एकत्र होंगे। तब तुम्हारी सुरत अपनी संगी आत्माओं को परख सकेगी।'

तदनन्तर स्वामी ने पूछा, 'कोई जिज्ञासा हो तो पूछ लो, फिर इस प्रकार मिलन न होगा।' श्री देवचन्द्र जी ने भरे गले से पूछा, 'आप कहाँ जायेंगे प्रभु !' ज्योति वलय स्थित श्री कृष्ण ने कहा, 'मैं तुम्हारे हृदय में ही अवस्थित रहूँगा।......'

'तब मुझे क्या पूछना'—देवचन्द्र आश्वस्त हुए।

वार्ता यहीं समाप्त हो गयी। अन्तरात्मा में तारतम और आवेश सरूप का बल पाते ही श्री देवचन्द्र जी की दिव्य दृष्टि खुल गयी। धाम लीला आदि के समस्त प्रश्न और सम्बन्धित प्रकरण सब कुछ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगे। तारतम बुद्धि के दिव्य प्रकाश ने अकस्मात् नवचेतना की आभा प्रकट कर दी। श्री देवचन्द्र जी निजानंद स्वामी हो गये।

भट्ट जी से विदा लेकर वे अपनी साधना-स्थली पर बैठने लगे। उनके पास जिज्ञासु एवं साधु लोगों की मंडली भी जमने लगी। सर्वप्रथम उनके साथी श्री गांग जी भाई ने उनसे तारतम मंत्र ग्रहण किया। पूर्ण ब्रह्म का रहस्य जानकर उन्होंने इनकी सेवा की और अपने घर में ही भगवत् कथा करने का आयोजन किया। श्री देवचन्द्र जी की पत्नी लीलबाई के धाम गमन के उपरान्त उनके दोनों बालकों के लालन-पालन का प्रबन्ध भी श्री गांग जी भाई ने कर दिया।

अब तो निजानन्द स्वामी गुरु देवचन्द्र का संसार या गृहस्थी से नाममात्र का जो भी लगाव था, वह भी छूट गया। नित्य निरंतर कथा-श्रवण एवं प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रजा वहाँ जुटने लगी। ब्रज, रास एवं परमधाम की लीलाओं का श्रवण करके लोग अपनी सुध-बुध भूल जाते। वर्षों तक जामनगर में ब्रह्मानन्द लीला का विस्तार होता रहा। अनेकों भक्तजन तारतम मंत्र पाकर जाग्रत हुए और यह क्षेत्र भगवत् क्षेत्र बन गया।

श्री मेहराज ठाकुर : महामति प्राणनाथ

जामनगर के राजा के दीवान श्री केशव ठाकुर के परिवार से कुछ लोगों ने निजानन्द स्वामी की कथा सुनी। प्रत्यक्ष लीला की बात सुनकर उनके बड़े पुत्र श्री गोवर्धन ठाकुर भी वहाँ जाने लगे। श्री मेहराज ठाकुर उनके मँझले पुत्र थे। बाल्यकाल से ही उनमें उच्च आत्मा के लक्षण प्रकट होने लगे थे। बारह वर्ष की उम्र में ही अपने बड़े भाई गोवर्धन ठाकुर के संग वे श्री देवचन्द्र जी की शरण में आ गये।

निजानन्द स्वामी ने अपना वरदहस्त श्री मेहराज जी के सिर पर रखकर परम शिष्य भाव से उनका सम्मान किया। उनमें श्री इन्द्रावती की वासना परखकर तारतम निधि प्रदान की। तारतम मंत्र प्राप्त होते ही आत्मा में जागृत बुद्धि का समावेश हुआ और दिव्य प्रकाश भासने लगा। मेहराज ठाकुर महामति हो गये।

सद्गुरु ने समझाया—'परमधाम से अवतीर्ण आत्माएँ ब्रह्म-सृष्टियाँ (सुन्दरसाथ) इस मिथ्या जगत में नाना भेष, वर्णों—सुर-असुर योनि में—स्त्री-पुरुष रूप से तन धारण करके अपने मूल स्वरूप को भूल गयी हैं। उनको जाग्रत कर हमें धाम ले जाना है। साकुंडल और सकुमार नाम की दो ब्रह्मात्माएँ इस जगत् में उच्च पद पर विराजमान होने के कारण यहाँ बड़ी प्रसन्न हो रही हैं। संभवतः वे राजकुल में हैं। इनके जाग जाने और मिलन से जागनी लीला का लक्ष्य पूरा होगा। संसार में धर्म, जाति और वर्ग के नाम पर फैले वैमनस्यों से लोग दुखी हो रहे हैं। शास्त्रों में हमारी इन बातों के प्रमाण तो हैं ही—क़ुरान ग्रंथ में भी इनके संकेत हैं। हम उन्हें भली-भाँति देख नहीं पाये। तुम्हें उन संकेतों को देख लेना है। यह सब कार्य तुम्हारे द्वारा ही पूर्ण होगा।'

श्री मेहराज का सतगुरु के प्रति श्रद्धाभाव समर्पण में परिवर्तित हो गया। दोनों भाई बड़े प्रेम से ब्रह्मानन्द लीला का गुण-गान करने लगे। श्री मेहराज जगत से अलग रहने लगे। परमधाम दर्शन की इच्छा से स्वयं को कसौटी या कसनी पर चढ़ा दिया। घर की अनावश्यक वस्तुएँ, पत्नी के आभूषण तक निर्धन लोगों की सेवा में अर्पित हो गये। आहार घटा कर दिन भर में एक तोला भर रह गया। अधिकतर मौन रह कर ध्यान-वन्दना में लगे रहते। बार-बार सद्गुरु से प्रार्थना करते कि आप मेरे अवगुण और प्रमाद अवश्य बता दिया कीजिये।

निजानन्द सतगुरु कहते हैं— 'मेहराज ! आप तो परमधाम की निर्मल आत्मा इन्द्रावती हैं। आपके स्वरूप में कोई विकार नहीं।'

श्री मेहराज के वैरागी मन को सुन्दर साथ के कल्याण के लिये जगत् में मोड़ने के लिये निजानंद स्वामी ने उन्हें अरब देश में भेज दिया। वहाँ गांगजी के भाई खेता भाई के कार्य-व्यापार को समेट कर उन्हें स्वदेश लौटाना इनका मुख्य दायित्व था। खेता भाई बीमार होकर चल बसे। उनकी सम्पदा तो धर्म के काम न आयी, किन्तु पाँच वर्ष वहाँ रहने से, श्री मेहराज को वहाँ की संस्कृति और धर्म को बड़े निकट रहकर देखने का अवसर मिल गया।

स्वदेश लौटने पर सतगुरु पुत्र बिहारी जी, गांग जी भाई के पुत्र श्याम जी एवं बहन बाल बाई ने इन्हें कई प्रकार से कष्ट और क्लेश पहुँचाया। सतगुरु के मन में भी गाँठ डालने का प्रयास किया। यह सब 'गुरु गादी' प्राप्त करने तथा साम्प्रदायिक वर्चस्व बनाये रखने के लिए ही था। यह सारा कुछ छोड़कर श्री मेहराज ने धरोल जाकर वहाँ के राजा कल्लाजी ठाकोर के यहाँ मंत्री का कार्य भार सँभाल लिया। दो वर्ष तक वे

इसी पद पर बने रहे।

इधर श्री निजानन्द सतगुरु के कलेवर त्याग का समय निकट आया। उनकी चित्तवृत्ति परमधाम जाने के समय अटकने लगी। ब्रह्मात्माओं को जाग्रत करने का महान दायित्व भी शेष था। श्री मेहराज में ही उन्हें इस कार्य की क्षमता दिखाई दी। बड़े आग्रहपूर्वक उन्हें लौट आने के लिये संदेश भेजे। श्री मेहराज भी सतगुरु के वियोग से अत्यन्त दुखी थे। वे यह सूचना मिलते ही कार्यभार छोड़कर पुनः सतगुरु की शरण में लौट आये।

निजानंद स्वामी ने कहा— 'आपको यह कार्य भार सौंपे बिना मैं परमधाम नहीं लौट सकता था। इस महान कार्य को प्राणपण से पूरा करना है। जागनी का महान कार्य आपके द्वारा ही सम्पन्न होगा।'

वास्तविक रूप में निजानन्द सतुगुरु एवं श्री प्राणनाथ दोनों एक ही स्वरूप हैं एक ही आत्मा और एक दिव्य तेज के प्रतीक हैं। परम शिष्य के साथ परमधाम के गूढ़ातिगूढ़ तत्त्वों का विवेचन कर, निजानन्द स्वामी ने नश्वर कलेवर का त्याग किया। उनकी आत्मा श्री मेहराज में समा गयी। गुरुपुत्र बिहारी जी से उन्होंने आग्रह किया कि दोनों मिलकर सामूहिक जागनी की योजना बनाएँ।

मेहराज ठाकुर ने बिहारी जी को गुरु गादी पर बिठाकर गुरु के समान ही उनकी अभ्यर्थना की। सर्वत्र 'सुन्दरसाथ' में उनके गादी संचालन की सूचना भेज दी गयी। धर्म चर्चा एवं सुन्दरसाथ के प्रबन्ध का सम्पूर्ण कार्यभार श्री मेहराज ने अपने सिर ले लिया। आत्मिक भावों को व्यक्त करते समय उनकी हार्दिक तल्लीनता एवं दिव्य प्रकाश आभा ने सुन्दरसाथ का मन मोह लिया किन्तु वे धनाभाव के चलते सुन्दरसाथ की अपेक्षित सेवा नहीं कर पा रहे थे। अतः जामराजा के यहाँ दीवान का पद सँभाल लिया।

निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्र जी की बरसी पर श्री मेहराज ठाकुर एक बड़ा आयोजन करना चाहते थे। उसके लिये अपने वेतन से उन्होंने सामान इत्यादि जमा किया। लेकिन इसी बीच किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने जामराजा से चुग़ली खाई कि श्री मेहराज ने ख़ज़ाने के धन का अनधिकृत उपयोग किया है। बिना कोई विचार या छानबीन किये जाम राजा ने श्री मेहराज का सारा सामान ज़ब्त कर लिया और दो भाइयों सहित उन्हें कारागार में डाल दिया। मिथ्या दोषारोपण एवं सुन्दरसाथ के वियोग के कारण श्री मेहराज की आत्मा कराह उठी। विरह, विलाप एवं प्रेमाधिक्य से उनके निर्मल-हृदय में धाम धनी की दिव्य ज्योति प्रकट हुई। तत्क्षण शब्दातीत वाणी का अवतरण होने लगा। प्रेमावेश में विभोर सर्वप्रथम श्री राज जी की आनन्द अंग श्यामा का स्वरूप शृंगार वर्णन हुआ। तदुपरान्त श्री राज जी का स्वरूप उभरा। इसके उपरान्त सुन्दरसाथ का महिमामंडित स्वरूप प्रकट हुआ, तत्पश्चात् मोहसागर के सशक्त प्रहारों का अनुभव व्यक्त करती हुई वाणी का जो अविकल प्रवाह चला, वह जीवन भर चलता ही रहा। इनकी अमृतमयी वाणी को मेहराज के छोटे भाई ऊधव जी ने सर्वप्रथम कोयले से कारागार की दीवारों पर लिखना आरम्भ कर दिया। इनके प्रेममय ओजस्वी शब्दों को निकट ही बने महल की रानियों ने सुना तो वे स्तब्ध रह गयीं। उन्हें हैरानी हुई कि किस सिद्ध पुरुष को हमारे स्वामी ने नज़रबंद कर रखा है। राजा और वज़ीर दोनों तब मुहिम पर थे। उनकी अनुपस्थिति में वे इस दिव्य साधक को छुड़वा तो नहीं सकतीं थीं लेकिन उनका कुशल-क्षेम पुछवाकर उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का आदेश दिया। ऊधव जी ने केवल स्याही और काग़ज़ की माँग की।

मेहराज ठाकुर के सशरीर विद्यमान रहने तक उनकी वाणी का जब-जब अवतरण हुआ उसे तत्काल लिपिबद्ध कर लिया जाता था। इस प्रकार महामति प्राणनाथ प्रणीत 'कुलजम स्वरूप' परब्रह्म परमात्मा के आवेश द्वारा दिव्य और अनुपम वाणी संकलन ही नहीं, प्रामाणिक धर्म ग्रंथ भी है। इसे 'तारतम ग्रंथ' या 'स्वरूप साहब' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

जिस स्थान पर श्री मेहराज अपने भाइयों सहित बंदी रहे उसे 'हब्सा' या प्रबोध पुरी नाम दिया गया। 'कुलजम स्वरूप' में प्रथम संकलित ग्रंथ 'श्रीरास' की कुछ रामतों को छोड़कर शेष ग्रंथ वहीं पूर्ण हुआ। रास की कुछ रामतें मेरता राजस्थान में प्रकट हुईं। श्री मेहराज एक वर्ष हब्सा में रहे। वहीं पूरे एक वर्ष का विरह 'षट्ऋतु' ग्रंथ में प्रकट हुआ। तीसरे ग्रंथ 'प्रकाश गुजराती' के सम्पूर्ण हो जाने पर चतुर्थ ग्रंथ 'कलश' आरम्भ भी यहीं हो गया। 'कलश' ग्रंथ का शेषांश दीवबन्दर और सूरत में अवतरित हुआ। वे जब दीवबन्दर से जहाज़ पर बैठकर कहीं जा रहे थे तो 'बेहद वाणी' का प्रकरण उतरा। श्री रास की कुछ रामतें और वेदान्त के 'कीर्तन' या किरंतन मेरता शहर में उतरे। अनूप शहर में श्री जी पहुँचे तो 'सनंध' किताब की वाणी प्रकट हुई। यहीं विराजकर उन्होंने गुजराती भाषा में अवतीर्ण 'प्रकाश' और 'कलश' ग्रंथों का हिन्दुस्तानी में रूपान्तर किया। 'खुलासा' के कुछ प्रकरण एवं कुछ अन्य वाणी रामनगर (मध्य प्रदेश) में प्रकट हुई। खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार, मारफत सागर और सिंधी का अवतरण पन्ना में हुआ। 'कयामतनामा' चित्रकूट में प्रकट हुआ। इस प्रकार सम्पूर्ण 'तारतम वाणी' भारत के विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न भाषाओं में अवतरित हुई। महामति के समग्र वाङ्मय का अवतरण मुख्यतः कच्छी, गुजराती, सिंधी और हिन्दुस्तानी (उर्दूमिश्रित) भाषाओं में हुआ। अरबी भाषा में भी कतिपय प्रकरण हैं। सुखद आश्चर्य, हर्ष एवं गौरव की बात तो यह है कि इन सब भाषाओं को महामति ने देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध कराया।

जामनगर के राजा जब युद्धोपरान्त सन्धि करके लौटे तो रानियों एवं परिवार के लोगों ने सारा विवरण दिया। वज़ीर ने यह बात सुनी तो वह पश्चात्ताप करने लगा। तत्काल अपनी भूल समझकर उसने श्री मेहराज को भाइयों सहित ससम्मान विदा किया।

'तारतम वाणी' के प्रकट होने से सुन्दरसाथ में उल्लास की लहर दौड़ गयी। किन्तु बिहारी जी असन्तुष्ट हो गये। उन्होंने उसके प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उन्हें सदैव यही भय बना रहता था कि कहीं श्री मेहराज मेरा स्थान न ले लें। वे संकुचित मनोवृत्ति एवं हीन भावना से ग्रस्त कटु स्वभाव के एक हठी व्यक्ति थे। ज़रा-ज़रा-सी बात पर शिष्यों को दण्डित कर देते। श्री मेहराज के समझाने पर बिहारी जी की कोपाग्नि और धधक उठती थी। इसका फल उनके प्रिय साथियों को भोगना पड़ता था। श्री मेहराज क्या करते ? बहुत दिनों तक वे यह सब कुछ सहन करते रहे। श्री मेहराज को ही नहीं, उनकी पत्नी फूलबाई को भी इनका कोप सहन करना पड़ा। इसी दुख में उनकी पत्नी ने देह त्याग दी।

बिहारी जी ने माया में फँसाये रखने के लिये श्री मेहराज को पुनः विवाह करने का आग्रह किया, जिसे प्रभु की आज्ञा मानकर उन्होंने स्वीकार किया। उनकी दूसरी पत्नी तेजकुंवरि जीवन भर अपने 'पति-परमेश्वर' तथा सुन्दरसाथ की सेवा में निष्ठापूर्वक लगी रहीं।

श्री मेहराज के अद्वितीय आत्मबल एवं धार्मिक जाग्रति, सत्य पर आधारित आदर्श

राजनीति से जाम-राजा बहुत प्रभावित हुए थे। नज़रक़ैद से मुक्त करते समय उन्होंने श्री मेहराज को आग्रह किया कि आप जूनागढ़ के निकट सोरठ गाँव बसाइये। श्री मेहराज ने जिस दक्षता से उस नगर का निर्माण करके उसे आवश्यक सुविधाओं से पूर्ण किया, उससे साधारण जन तो लाभान्वित हुए ही—स्वयं राज्य सत्ता के लोग दंग रह गये।

ब्रह्मात्माओं को ढूँढ़ने और जाग्रत करने के लिए श्री मेहराज स्थान-स्थान पर भ्रमण करने लगे। बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान उनके मनोमुग्धकारी ज्ञान को श्रवण कर उसके सामने नतमस्तक हो जाते। उनका मृदु भाषण, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व तथा ओजपूर्ण उपदेश सुनकर सैकड़ों लोग घर-बार त्याग उनके संग हो जाते। नये स्थानों पर उन्हें पुनः बसाकर स्वामी जी आगे बढ़ जाते। हरजी व्यास, जयराम भाई कंसारा तथा चिन्तामणि भाई जैसे प्रतिभाशाली विद्वान एवं धर्मगुरु उनकी शरण में आ गये। अलौकिक आत्मबल और फिर अखण्ड लीलारस का अनुभवात्मक ज्ञान पाकर साधक एवं जिज्ञासु जन ब्रह्मानंद सागर में सराबोर हो रहे थे। क्षर एवं अक्षर स्वरूप का अपूर्व रहस्य और अक्षरातीत ब्रह्म की अखण्ड लीला का अलौकिक वर्णन सुनकर असंख्य स्त्री-पुरुषों की आत्म दृष्टि खुल गयी। वेद, शास्त्र एवं पुराणों में आस्था रखनेवाले तथा ईश्वर के अवतारों को माननेवाले प्रायः क्षर-अक्षर-भेद को स्पष्ट तौर पर समझ नहीं पाते। वे अनित्य देवों को ही अविनाशी ब्रह्म मानकर उनकी उपासना करते रहते हैं। किन्तु जिस देवी-देवता की उपासना की जाय, मरणोपरान्त उपासक की गति वहीं होती है। जन्म-मरण का चक्र छूट नहीं पाता। देवलोक को असत्य माननेवाले, ओंकार एवं शब्द ब्रह्म के उपासकों की गति शून्य में होती है। वहाँ संतापों से मुक्ति मिलती है और परम शान्ति प्राप्त होती है। स्वामी जी परम आनन्द और परम मोक्ष के लिये परात्पर पूर्ण ब्रह्म की उपासना को ही अपना लक्ष्य बनाने का आग्रह करते थे। उनके साथियों को अनेक कठिन परीक्षाओं से गुज़रना पड़ा किन्तु कोई भी बाधा उनके विश्वास को डिगा न पाई।

उन दिनों अरब से आने वाले समुद्री लुटेरे भारतीय सीमा पर आकर लोगों को उठाकर ले जाते थे। वे उन्हें बन्धक बनाकर रुपये ऐंठा करते थे। कुछ अरबी लोगों ने दीव बन्दरगाह पर छापा मारा तथा अन्य लोगों के साथ प्राणनाथ जी की अर्द्धांगिनी तेजकुँवरि बाई जी भी पकड़ में आ गयीं। श्री प्राणनाथ जी ने इस घटना को परब्रह्म परमात्मा की इच्छा मान कर शिरोधार्य किया और उन डाकुओं की खोज में अरब समुद्रतट के सभी बन्दरगाहों और निकटस्थ नगरों का भ्रमण किया। स्थान-स्थान पर उनके ज्ञान की धूम मच रही थी, लेकिन उनके मन में भी भयंकर हाहाकार मचा हुआ था। इस्लाम शासित मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में किसी ब्रह्मस्वरूप शास्त्रवेत्ता विद्वान के आगमन से लोग अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे। उन्होंने अनेक लोगों को धर्म का उपदेश देकर सुन्दरसाथ समाज में प्रवेश दिलाया।

जितने भी लोगों को श्री मेहराज जाग्रत करते वे उन्हें सद्गुरु की गादी पर विराजमान श्री बिहारी जी के दर्शनार्थ जाने का आग्रह करते थे।

ठट्ठानगर में एक ग्वाले के मुख से ब्रह्मज्ञान युक्त चर्चा सुनकर श्रीमदभागवत के धुरंधर विद्वान और कथाकार, सेठ लक्ष्मणदास श्री जी से आ मिले। वे अकूत सम्पति के स्वामी थे। लेकिन महामति के साथ हुई धर्म चर्चा से प्रभावित होकर वे भी अपने असंख्य जलपोतों द्वारा होनेवाले व्यापार को त्यागकर उनके संग हो लिये। जीवन पर्यन्त वे श्री जी के वचनों को मन में उतारकर उनके चरणों में बैठकर, उनकी दिव्य-वाणी

लेखनीबद्ध करते रहे। कतेब पक्ष के अनेक रहस्यों को उन्होंने स्पष्ट किया। महामति प्राणनाथ की दैनन्दिनी के आधार पर उन्होंने उनकी 'बीतक' या जीवनी लिखी। आज भी प्रतिवर्ष उसी बीतक को आतम साक्षी मानकर प्रणामी मन्दिरों में श्री मुखवाणी की तरह ही पूज्य मानकर ससम्मान पाठ किया जाता है।

श्री जी के साथी मसकत बन्दरगाह में उन दो महिलाओं से मिले, जो अरबों की क़ैद से छूट कर आयीं थीं। उनसे पता पूछकर वे स्थानीय दारोग़ा से मिले। दारोग़ा ने बंधक सुन्दरसाथ को छोड़ने के लिये सत्तर हज़ार लहारी की माँग की। ऐसे में भैरों सेठ ने अपने सेवाएँ अर्पित कीं। उन्होंने धन देकर साथियों को छुड़वा दिया और श्री मेहराज स्वामी को अपने घर रुकने का आग्रह किया। इनके सत्संग तथा कथा-प्रभाव से उनके सारे व्यसन छूट गये और वे मुक्तिदायी तारतम-ज्ञान के पात्र बने। उनकी आत्मा जाग उठी और वे 'तारतम' मंत्र ग्रहण कर सुन्दरसाथ में शामिल हो गये। इस प्रकार अरब से लेकर कच्छ प्रदेश के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित अब्बासी, मसकत, लाठी, ठट्ठा, लक्ष्मणपुर आदि अनेक नगरों में धर्म-केन्द्र स्थापित कर साक्षात् तारतम स्वरूप श्री जी नलिया पधारे। कुछ दिन वहाँ रहकर वे सूरत चले आये और यहाँ सैयदपुरा में भगवान दास के यहाँ बहुत दिनों तक रुककर धर्म प्रवचन किया। यहीं भीम भाई, मुकुन्द दास आदि प्रसिद्ध वेदान्ती भी उनसे प्रभावित होकर उन्हें समर्पित हो गये।

उनकी चर्चा की महिमा सुनकर अनेक उद्भट विद्वान श्री जी से मिलने आये। इनके ओज एवं ब्रह्मज्ञान से चमत्कृत होकर वे इन्हीं के शिष्य बन गये। वेदान्ती लोग जगत् को ब्रह्मरूप मानकर 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' कहते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है। ब्रह्म विश्व में स्वरूप से नहीं किन्तु केवत सत्ता से व्यापक है। परब्रह्मस्वरूपा कहलानेवाली श्रुतियाँ ब्रह्मधाम स्वरूप होने से 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है। जिस प्रकार ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है, उसी प्रकार ब्रह्मधाम भी सच्चिदानंद स्वरूप ही है।

वल्लभ मत के वैष्णवों को श्री प्राणनाथ का इस प्रकार होनेवाला प्रचार अखरने लगा। वे उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए आन पहुँचे। उनके विचार में धर्म का वास्तविक रूप शुद्ध कर्म कांड ही था। श्री जी ने उन्हें बताया—भेष भूषा का निर्मल होना वैष्णव की कसौटी नहीं; उसके लिये मन की स्वच्छता एवं आत्मा का जाग्रत होना ही श्रेष्ठ है। वैष्णव वह है, जिसका पुरुषोत्तम से स्पर्श हुआ हो, फिर संसार की कोई वस्तु उसे अस्पृश्य नहीं बना सकती। वैष्णव वही है, जिसने अपने सभी अंगों को निर्मल बना लिया हो। उसके मन में परब्रह्म स्वामी के प्रति अनन्य प्रेम छलकता है। वह अपने अन्तर में प्रतिक्षण प्रभु का प्रकाश देखता है। बाह्याडम्बर रचकर वैष्णव कहलानेवाला वैसा ही है जैसे कोई धनहीन धूर्त अपना नाम धनपति रख ले। अनेक वैष्णवों ने धर्म के शुद्ध स्वरूप को समझा एवं उनके जागनी अभियान में उनके संग हो लिये।

सूरत के सैयदपुरा में स्वामी जी सत्रह मास तक रहे। उनके जागनी अभियान की सूचना निरंतर बिहारी जी को मिल रही थी। बिहारी जी बिफर उठे। वे महामति पर अंकुश लगानेवाले प्रताड़ना भरे पत्र लिख रहे थे। उन्होंने ये नियम बनाये—

१. उनके और श्री मेहराज के बिना कोई तारतम मंत्र न दे।
२. विधवा स्त्री को मंत्र न दिया जाय।
३. निम्न जाति के लोगों को सुन्दरसाथ समाज में दीक्षित न किया जाय।

श्री मेहराज ठाकुर ने इन तीनों नियमों का सादर विरोध किया। बिहारी जी भड़क

उठे। उन्होंने श्री मेहराज से सारे सम्बन्ध तोड़ लिये और उनके कट्टर विरोधी हो गये। सुन्दरसाथ के आग्रह पर श्री मेहराज ने सूरत से जागनी-अभियान को अपने सिर ले लिया। उन्होंने बिहारी जी की अपेक्षा छोड़ दी और निरपेक्ष होकर धर्म प्रचार द्वारा ब्रह्मसृष्टि को जाग्रत करते रहे। निजानन्द स्वामी ने उन्हें राजकुल में उत्पन्न दो आत्माओं को जाग्रत करने का आदेश दिया था। उसकी पूर्ति के लिये वे दिल्ली की ओर चल दिये। हिन्दू पूजा-पद्धति पर मुग़ल शासकों के निरंकुश शासन ने उन्हें विवश कर दिया कि वे औरंगज़ेब से मिलकर उसे सुपथ पर लाने का प्रयास करें। उन्होंने धर्म, जाति, वर्ण, भेद और वैमनस्यों को दूर करके धर्म के शुद्ध स्वरूप या एक सत्य धर्म की स्थापना का व्रत लिया। सुन्दरसाथ ने इनमें परब्रह्म परमात्मा का आवेश देखकर इन्हें 'श्री प्राणनाथ' कहा।

आवागमन के साधनों के अभाव के कारण श्री प्राणनाथ स्वामी स्थान-स्थान पर रुकते हुए जा रहे थे। अहमदाबाद, पाटन तथा सिद्धपुर होते हुए वे मेरता पहुँचे। प्रत्येक नगर में इनके साथियों की संख्या बढ़ रही थी। घर-द्वार छोड़कर लोग इनके साथ चल देते। स्वामी जी उन्हें स्थान-स्थान टिक जाने का आग्रह करते। इतने बड़े समाज को संग लेकर चलना दुष्कर कार्य था। लेकिन इससे लोक-पक्ष में नयी चेतना जग रही थी।

मेरता में उन्होंने तांत्रिक लाभानन्द यति को चमत्कार और सिद्धियों का खोखलापन बताकर पराजित किया। यहीं पर उन्हें श्री राजाराम और श्री झांझन भाई नगर सेठ मिले। दोनों श्रीमंत जीवन भर धन-धान्य से श्री प्राणनाथ जी की सेवा करते रहे। यहीं स्वामी जी ने औरंगज़ेब के सेनापति यशवन्त सिंह को पत्र लिखकर उसे जाग्रत करना चाहा। किन्तु श्री प्राणनाथ से भेंट होने के पूर्व ही वह किसी षड्यंत्र का शिकार होकर चल बसा।

एक दिन श्री प्राणनाथ जी सायंकाल के समय एक बाग़ की ओर जा रहे थे। तभी मार्ग में एक मस्जिद के ऊपर खड़े होकर मुल्ला ने नमाज़ के लिये मुसलिम समाज में प्रसिद्ध क़ुरान का क़लमा पढ़ा—

'ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसूललिल्लाह।'

श्री जी ने इस क़लमा के गर्भित अर्थ में तारतम के वचनों से साम्यता पायी। इस उक्ति को उन्होंने गीता के क्षर, अक्षर तथा उत्तर पुरुष के समकक्ष पाया। उन्हें मुसलमान भाइयों को शरीयत के अन्धानुकरण से हटाकर अध्यात्म तत्त्व की एकता की ओर ले जाने का सूत्र मिल गया। उन्होंने श्री लालदास जी एवं अन्य प्रबुद्ध साथियों से कहा कि आप सुलतान से डँटकर लोहा ले सकते हैं। शरीयत का कोई भी प्रहार आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। यदि औरंगज़ेब इस बात को समझ लेगा तो अन्य लोगों को समझाना सहज हो जायेगा। यदि वह न मानेगा तो जनता को त्राण दिलाने के लिये हमें दूसरा मार्ग अपनाना पड़ेगा। दिल्ली में श्री प्राणनाथ के जाग्रत बारह साथी, जिनमें दस हिन्दू और दो मुसलिम थे, प्राणनाथ का संदेश औरंगज़ेब तक पहुँचाने के लिये कटिबद्ध हो गये। शराअ का ज़बरदस्त चलन, राजकर्मचारियों की कट्टरता एवं धर्मांधता की ढ़ाल को छेदकर शहंशाह तक पहुँच पाना असम्भव था। इसी बीच हरिद्वार में कुम्भ का अवसर आ गया। असंख्य धर्माचार्यों एवं अनगिनत अखाड़ों को एक ही स्थान पर देखकर महामति ने धर्म का शुद्ध रूप बताकर उनमें फैले पार्थक्य, विरोध एवं वैमनस्य को मिटा देना चाहा। धर्म के नाम फैले अंधविश्वासों एवं आडम्बरों को दूर करने के

लिये वे हरिद्वार आ पहुँचे। इनके बढ़ते प्रभुत्व को देखकर कई धर्माचार्य इन्हें शास्त्रार्थ के लिये चुनौती देने एकत्र हो गये। महामति ने बड़े प्रेम से उनसे धर्म चर्चा की। उन्होंने बताया कि शास्त्रों ने तो ब्रह्म को एक ही बताया है और उसे सदा-सर्वदा एकरस, अद्वितीय और समस्त गुणों से परे बताया है। आपने अपनी सुविधा और बुद्धि के अनुसार उसके सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार आदि अनेक रूपों एवं नामों की कल्पना करके परस्पर कलह का कारण उत्पन्न कर लिया है। ब्रह्म साकार या निराकार दोनों से भिन्न सच्चिदानन्द स्वरूप है। इसी पूर्णब्रह्म के ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। नाना देवी-देवताओं की उपासना का भ्रम फैलाकर जनता को आत्म तत्त्व से वंचित रखना कितना बड़ा दुस्साहस है। धर्म के उन्मुक्त मार्ग में संकीर्णता को स्थान देना विज्ञजनों को शोभा नहीं देता। इन अकाट्य प्रमाणों से प्रभावित होकर संवत् १७३५ (१६७८ ई०) में वहाँ उपस्थित विभिन्न धर्म-के धर्माचार्यों एवं अनुयायियों ने श्री प्राणनाथ को 'विजयाभिनन्द निष्कलंक बुध' उपाधि से विभूषित किया। तब से निष्कलंक बुध जी का शाका प्रचलित हुआ। शास्त्रों में वर्णित निष्कलंक बुधावतार के प्रकटीकरण के लक्षणों को भी सबने लक्ष्य किया।

चार मास तक हरिद्वार में रहकर महामति मथुरा होते हुए दिल्ली आए। यहाँ सबसे विचार-विमर्श करके औरंगज़ेब बादशाह से मिलने की योजना बनायी गयी। उसके लिये फ़ारसी लिपि में पाँच पत्र तैयार किये गये। दो माह तक उनके साथी औरंगज़ेब के क़ाजी, मुल्ला, सेनापति आदि के मुकामों पर भटकते रहे। लेकिन उन्होंने औरंगज़ेब से मिलाने का कोई उपक्रम न किया। यहीं अनूप शहर में क़ुरान के सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए 'सनंध' ग्रंथ के तीस प्रकरण उतरे। इन्हें देखकर कुछ हिन्दू साथी शंका में पड़ गये। किन्तु जब श्री प्राणनाथ ने क़ुरान के अनुसार क़द्र की रात के तीन तकरार और यमुना जोय और ताल (हौज़क़ौसर) आदि के प्रमाण देकर क़ुरान की आयतों का स्पष्टीकरण किया तो वे सब कट्टर शराअ से टक्कर लेने के लिए कटिबद्ध हो गये।

सुलतान के पदाधिकारियों ने जब औरंगज़ेब से मिलने में हर प्रकार की अड़चन डाली तो साथियों ने जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर क़ुरान के रहस्यों को स्पष्ट करनेवाली 'सनंध' ग्रंथ की वाणी का गायन आरम्भ कर-दिया। मस्जिद के क़ाजी ने यह आवाज़ सुनी। वह उन्हें बादशाह औरंगज़ेब के पास ले गया। बादशाह उनकी बातें सुनकर बड़ा प्रभावित हुआ किन्तु उसके निकट खड़े सभासदों ने इसे हिन्दुओं की एक चाल बताकर कट्टर और शंकालु बादशाह का मन फिरा दिया। क़ौम के अभिमान और शरीयत के अज्ञान ने उसकी रूह को जाग्रत न होने दिया।

दिल्ली से चलकर साथियों सहित महाप्रभु प्राणनाथ पुनः राजस्थान आ गये। अनेक हिन्दू राजाओं को प्रबोध देकर वे उन्हें औरंगज़ेब के विरुद्ध खड़े होने के लिये प्रेरित करते रहे। शाही दबदबे के मुक़ाबले खड़ा होने की शक्ति अपने में न देखकर उन्होंने उनकी बात पर ध्यान न दिया। बल्कि वे इनकी अवहेलना करके इनके मार्ग में कठिनाइयाँ उत्पन्न कर रहे थे। उधर शाही फ़ौज इनकी गतिविधियों पर खुफ़िया नज़र रखने के लिये पीछा कर रही थी। ऐसे में महामति के साथियों को अनेकों कष्ट सहन करने पड़े। भोजन-आवासादि का कहीं ठिकाना नहीं मिल रहा था। कड़ाके की सर्दी, भीषण गर्मी, भूख-प्यास और कई प्रकार की यंत्रणाओं और मुसीबतों का शिकार हो सुन्दरसाथ औरंगाबाद आ पहुँचे। बड़ी कठिन परीक्षा से गुज़र कर श्री मुकुन्द स्वामी ने भावसिंह हाड़ा को श्री प्राणनाथ का संदेश दिया था। साथी यहाँ भी अधिक दिन टिक न पाये।

राणा भावसिंह हाड़ा की मृत्यु के कारण उनके छोटे भाई ने एक बार पुनः सुन्दरसाथ को वहाँ से चले जाने पर विवश किया।

वहाँ से बुढ़ानपुर और आकोट आदि होते हुए महामति प्राणनाथ रामनगर आये। स्थान-स्थान पर इस्लाम के मौलवी एवं हिन्दू धर्म के पंडितों से इनकी धर्म-चर्चा भी होती रही। महामति ने उन्हें स्पष्ट कर दिया कि क़ुरानादि ग्रंथों के मसीहा (मेहदी) एवं हिन्दू शास्त्रों में संकेतित कल्कि अवतार के प्रकट होने का समय आ गया है। एक ही सत्य धर्म की स्थापना के लिये वे स्वयं न केवल अपने स्वर में बल्कि स्वरूप में प्रकट हो चुके हैं।

रामनगर में राजा छत्रसाल के भतीजे दीवान देवकरण जी स्वामी जी की शरण में आये। इनके वचनों से प्रभावित होकर उसने छत्रसाल जी को इनकी सूचना देने का निश्चय किया। यहीं पर कई सुन्दरसाथ एक महामारी की चपेट में आकर चल बसे। किन्तु कुछ ही दिनों में वह प्रकोप शान्त हो गया। अनेकों मुसलमान विद्वान स्वामी जी की शरण में आ गये। यह समाचार सुनकर सुलतान ने शेख़ खिदर को इन्हें पकड़ने के लिये भेजा। लेकिन इनकी ज्ञान चर्चा से प्रभावित होकर शेख ख़िदर ने औरंगज़ेब को लिख भेजा—'मैंने आख़री ज़माने के खाविंद इमाम मेंहदी को यहाँ रू-ब-रू देखा है— आप भी उनके दीदार पाकर अपनी किस्मत को सराहिए।'

इस बीच दीवान देवकरण ने राजा छत्रसाल से श्री जी की चर्चा की तो उन्होंने उन्हें मऊ बुला भेजा। पहले ही दिन राजा ने भेष बदलकर दूर से उनका दर्शन पा लिया। महामति के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं ओजपूर्ण शब्दों के सुनकर वह स्वयं को सँभाल न पाया। श्री जी जैसे साक्षात् ब्रह्मरूप धर्मगुरु को पाकर वीर छत्रसाल जी के हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने स्वयं को स्वामी जी के आदेश पर बलिदान कर देने का वचन दिया। 'विजयाभिनन्द निष्कलंक बुध' रूप महामति ने छत्रसाल को अपनी तलवार प्रदान की और सरोपा प्रदान कर सर्वत्र सदैव विजयी रहने का वरदान दिया।

महाराज छत्रसाल स्वामी जी को पालकी में बिठाकर अपना कंधा लगाकर अपने महल ले गये। वहाँ पाँवड़े बिछाकर उनका स्वागत किया। उन्होंने अपने सारे आभूषण श्री जी को और रानियों ने अपने आभूषण तेजकुंवरि बाई जी को पहना कर न्योछावर हुए। इन्हें परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् स्वरूप मानकर अपने राजसिंहासन पर बिठाकर इनकी आरती उतारी और हाथ जोड़कर आज्ञा के लिये खड़े हो गये।

महामति ने छत्रसाल को महाराजाधिराज के पद से विभूषित किया। यह वरदान दिया कि पन्ना की धरती हीरा उगलेगी जिससे इस राज्य को कभी किसी भी बात का अभाव नहीं खटकेगा। सत्य-धर्म और सत्य की रक्षा के साथ-साथ धार्मिक शान्ति और क्रान्ति के लिये उठी तुम्हारी तलवार कभी झुकेगी नहीं।

उनके संरक्षण में महाराजा छत्रसाल ने एक आदर्श राज्य की स्थापना की। छत्रसाल के अनुरोध पर पन्ना में ही श्री जी की आज्ञानुसार एक टेकरी के ऊपर पन्ना धाम बसाया गया। सुन्दर साथ भी महामति प्राणनाथ द्वारा स्थापित मन्दिर के आसपास निवास करने लगे। महाराजा छत्रसाल ने सतगुरु के वचनामृत एवं उनके परामर्श से लाभान्वित होने के लिये थोड़ी दूर पर अपना महल बनवाया। अपनी इहलीला संवरण करने तक महामति प्राणनाथ पन्ना में ही विराजमान रहे।



महामति की जागनी चेतना

डा. विष्णुदत्त राकेश
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

महाराज छत्रसाल को आशीर्वाद देते हुए महामति प्राणनाथ जी ने आदर्श राजा विषयक अपनी आकांक्षाओं को इन शब्दों में व्यक्त किया था –

छत्ता तेरे राज में, धक धक धरती होय।
जित जित घोड़ा मुँह करै, तित तित फत्तै होय।।

महामति राजा को छत्रपति सम्बोधित न कर 'छत्ता' या छत्र शब्द से सम्बोधित करते हैं। उनकी दृष्टि में राजा वह है जो दीन-दुखियों, पीड़ित या आर्तजनों के लिए छाते का या संरक्षण का कार्य करे, जिसकी छाया में प्रजाजन आश्वस्त होकर कार्य कर सकें तथा जो राज्यदण्ड से धर्म की स्थापना तथा अधर्म, अन्याय, उत्पीड़न और शोषण का उन्मूलन करते हुए 'सुराज' की स्थापना कर सके। छत्रसाल महामति के इसी आदर्श के प्रतीक थे। या यों कहिए, औरंगज़ेब जैसे धर्मान्ध राजाओं के सामने पन्ना के शासक को प्रस्तावित आदर्श के रूप में गढ़ने और सँवारने का कार्य महामति जी ने किया था। तत्कालीन विषम परिस्थितियों के समाधान के रूप में यह सकारात्मक उद्यम था। मुझे ऐसा लगता है कि राजा की सहायता और लोकसेवाव्रत की पूर्ति के लिए जब महामति जी ने हीरों की खान का पता बताया तो वह हीरे को भौतिक सम्पत्ति के रूप में नहीं आध्यात्मिक लक्ष्य के रूप में संकेतित कर रहे थे। हीरा कोयले का परिष्कृत और समृद्ध रूप है, जिसकी काट तेज़ और धारदार होती है। धर्मनिष्ठ राजा वह है जो अपने चरित्र से कोयले के समान तुच्छ और कलंकी व्यक्ति को भी चारित्रिक गुणों से सम्पन्न कर हीरे के समान बना देता है तथा पतित से पतित का उद्धार कर भी वह अधर्मी को काटने में, पाप का उच्छेद करने में हिचकता नहीं। छत्रसाल दण्ड देने में हीरे की तरह कठोर, वीरदर्पपूर्ण मूर्ति थे, पर दया और करुणा में वह साक्षात् घनश्याम थे। छत्रसाल संस्कारी भक्त थे। 'अंकुर' सम्बन्ध से ही वह भगवान् प्राणनाथ जी के अनुग्रह भाजन बने। छत्रसाल का अर्थ है, 'शत्रुशल्य' अर्थात् शत्रुओं के लिए भाले की चुभन पर आध्यात्मिक संस्कारों के कारण श्री प्राणनाथ जी ने उन्हें धर्म, दया, त्याग, करुणा का 'छत्र' बना दिया–'छत्ता' बना दिया।

रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि 'लाल' ने छत्रप्रकाश में इनके शैशव की एक घटना दी है, जिससे इनके 'श्रीकृष्ण अनुग्रह भाजन' होने का पता चलता है। कहते हैं– देवमंदिर

में इन्होंने पुजारी से पूछा कि ठाकुर जी क्यों नहीं बोलते? पुजारी कुछ नहीं बोले। फिर इनकी इच्छा हुई कि यदि बालमुकुन्द जी नाच कर दिखाएँ तो इन्हें मक्खन खिलाया जाए। कहते हैं, बाल मुकुंद नाचने लगे। पुजारी ने भयभीत होकर उन्हें संपुट में बंद कर दिया, पर यह नृत्य संपुट में भी बंद न हुआ। लाल कवि लिखते है कि जिन लीला पुरुषोत्तम ने ब्रजगोपिकाओं के साथ रास किया था, वे अचेतन मूर्ति में छत्रसाल के प्रेम के कारण नाचने लगे—

चेतन तन नाचे हुते, व्रजवनितन के संग।
छत्रसाल के प्रेम सों, नचे अचेतन अंग।।

उनके राज्य में धर्मपथ पर चलनेवाला हर सदाचारी व्यक्ति सुखी था। दुराचारी और दुष्ट के लिए वह 'शल्य' की तरह कठोर थे। तभी तो विजावर के राजा लक्ष्मण सिंह ने 'नृपनीति शतक' में छत्रसाल की महिमा में लिखा है—

जो चलि है इति नीति मग, ताहि न अरि-भव-ताप।
या पै लिखी प्रमान करि, छत्रसाल नृप छाप।।

जैसे उमड़ती नदी को देखकर उसके पूर के हेतु रूप में वर्षा की संभावना दृढ़ होती है, वैसे ही छत्रसाल की नीति-रीति देखकर उनके आचार्यगुरु महामति प्राणनाथ की क्षमता और शक्तियों का पता चलता है।

जनजागरण का यह राजनीतिक आयाम था। इसे पूरा कर लेने के बाद धार्मिक जागरण की दिशा में महामति आगे बढ़े। गुजरात, मध्यभारत, उत्तरभारत की यात्रा के साथ-साथ उन्होंने अरब देश की यात्रा भी की। यहूदी, पारसी, ईसाई, इस्लाम, जैन, बौद्ध तथा हिन्दूधर्म के ग्रंथों, संतों, विचारों और धर्म साधनाओं से उनका अन्तरंग परिचय था। वह मानवमात्र की एकता के प्रतिपादक वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा में विश्वास करते थे। 'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः' उनका उद्घोष था। हिन्दू धर्मग्रंथों और हिन्दू धर्मेतर ग्रंथों में उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर अद्भुत समानता दिखाई। श्रीरास—श्री अंजील, प्रकाश—जंबूर, श्री कलश—तौरेत और सनंध—क़ुरान उनकी दृष्टि में एक थे। क़ुरान और श्रीमद्भागवत में उन्होंने कोई अन्तर नहीं देखा—

जो कछु कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोउ बन्दे एक साहेब के, पर लड़त न पाये भेद।।

खुलासा, १२/४२

अन्य संतों की तरह उन्होंने भी कहा—सभी संत, महापुरुष और अवतारी आत्माएँ एक हैं। सबमें एक आत्मा का नूर है, प्रकाश है। कृष्ण, ईसा, मुहम्मद एक उज्ज्वल चेतना के तीन नाम हैं। खुलासा में उन्होंने जो कुछ लिखा, उनसे पूर्व किसी संतकवि ने 'विश्वमानव' की ऐसी त्रिधारात्मक धारणा प्रस्तुत नहीं की—

नाम सारों जुदा धरे, लई सबों जुदी रसम।।
सबमें उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।

खुलासा, १२/३६

'ज्योतिषाज्योतिः' यदि उपनिषद् ने कहा, उसे तो क़ुरान ने 'नुरून अल्लानूर नूरस्समा बाते बल अर्ज' कहा। 'एकमेवाद्वितीयम्' श्रुति-छाया 'वहद हू लाशरीकालहू' में प्रतिध्वनित है। फिर दोनों धर्म जुदा कहाँ हुए? सिद्धांतगत एकता, उपासना प्रणाली की एकता तथा मूल पुरुषगत एकता के आधार पर सभी धर्मों में समानता की बात

महामति जी ने उठायी। जब वह हरिद्वार कुंभ के अवसर पर पधारे तो उन्होंने हिन्दू धर्म को विभिन्न सम्प्रदायों, पंथों और शिविरों में बँटा पाया। शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सब एक दूसरे को अपने से छोटा कर देख रहे थे। हिन्दू शक्ति बिखरी हुई थी। गंगा में कौन पहले स्नान करे, इसी पर मार-काट हो जाती थी। शैव साधुओं और बैरागी वैष्णव साधुओं की ठनाठनी में कुंभ कई बार रक्त की धारा में डूबा-उतराया। बाद में निर्मल साधुओं ने भी अपने अस्तित्व प्रदर्शन के लिए इस युद्ध में भाग लिया। गरीबदासी पंथ के प्रवर्तक संत गरीबदास ने इस युद्ध को अपनी आँखों से देखकर लिखा था—

तेग तुपुक तलवार कटारी, जम घर जोर बँधावे हैं।
हरपैड़ी हरहेत न जान्या, तहँ जाय तेग चलावे हैं।।

प्राणनाथ जी महाराज के सामने भगवान कृष्ण का यह उपदेश था—

असंशयं समग्रं मा यथाज्ञास्यसि तच्छृणु।

—अर्थात् हे अर्जुन! मैं खंड-खंड के रूप में नहीं, समग्र रूप में जाना जा सकता हूँ। इसी समग्रता की खोज को महामति ने 'जागनी' का नाम दिया। उन्होंने टुकड़ों में बँटे हुए हिन्दू धर्म और उसके व्याख्याताओं को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। विजय प्राणनाथजी की हुई। कलियुग में अन्तिम अवतार बुद्ध हुए। प्राणनाथ जी को 'निष्कलंक बुध' की उपाधि हरिद्धार के संत समागम में मिली। बुद्ध ने जिस वर्ण-धर्म हीन मानवमात्र की एकता का प्रतिपादन किया, उनके अनुयायियों ने उसे भी संकीर्ण बौद्ध संज्ञा में बाँध दिया, पर अभिनव बुध अब जिस धर्मपंथ का प्रवर्तन कर रहे हैं, उसमें हिन्दू, यहूदी, ईसाई, मुसलमान सभी दीक्षित हो सकते हैं। श्रीकृष्ण को एकमात्र स्वामी मान लेने पर तथा पवित्र नाम उच्चारण कर लेने पर किसी भी देश जाति, धर्म, वर्ग भाषा और स्तर का व्यक्ति 'भक्त-कुल' का सदस्य हो सकता है। संतों का कुल एक है और उसका 'धनी' या मूलपुरुष भी एक है। भागवत में 'किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस, आदि को भगवान के नामोच्चारण मात्र से ही 'पवित्र' घोषित किया गया था। शुकदेव जी ने 'शुद्धान्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः' कहकर इस वैष्णव मत की मुहर आगे बढ़ाई थी। उनके बाद केवल महामति जी ने कहा—

जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनिया, और उड़ गई दूजी बात।।
सनंध, ३३/१७

भेष की व्यर्थता, बाह्याचार का खंडन, जातिभेद का खंडन तथा सर्वधर्म समन्वय उनकी सामाजिक 'जागनी' के मुख्याधार थे।

महामति पारस्परिक भाषा और धार्मिक जड़वाद के विरोधी थे। संस्कृत के बारे में उनका कहना था कि यह भाषा द्वयर्थक है। निरुक्त के सहारे एक शब्द के कई अर्थ कर विद्वान् जिज्ञासु पर अपने मत की छाप डाल सकता है, उसके स्वतंत्र चिंतन को अवरुद्ध कर सकता है, पर लोकभाषा में छल की यह संभावना नहीं होती। अतः जनभाषा में ही वह उपदेश देना पसंद करेंगे। 'कलस हिन्दुस्तानी' में उन्होंने कहा : अक्षर तो एक है, बारह मात्राओं के प्रयोग से उसके भिन्न-भिन्न रूप हुए और फिर बत्तीस अक्षरों के अनुष्टुप में बाँधकर अपने विचार को पंडितों ने कह दिया, यह प्रमाण है। महामति इस 'कागद लेखी' को अंध प्रमाण मानकर स्वीकारने के पक्षधर नहीं। उन्होंने कहा— मैं संस्कृत, अरबी, फ़ारसी से अलग, प्रचलित जनभाषा में अपनी बात कहता हूँ जो

संस्कृत के कारण अकथ्य और अगम्य, दुर्बोध और जटिल समझी जा रही थी, वह अनुभूतिमयी वाणी लोकभाषा में खुलासे के साथ कही जा रही है। ताकि इसे सभी समझें और अपना जीवन सुधारें—

बारे मात्र एक अख्यर के, अख्यर स्लोक बतीस।।
छल एते आड़े अरथ के, और खोज करे जगदीस।।
कलश हिन्दु., १७-६

सुनियो बानी सोहागनी, हुती जो अकथ अगम।
सो बीतक कहूँ तुमको, उड़ जासी सब भरम।।
कलश हिन्दु., १-१

क्योंकि महामति जन-जागरण के लिए अवतरित हुए थे। अतः उनकी भाषा में भी समन्वय की विराटता है। संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, सिंधी सभी को उन्होंने देवनागरी मे लिखकर राष्ट्रीय एकता का सूत्रपात किया। गाँधी और विनोबा की 'एकलिपि' की प्रेरणा 'कुलजम सरूप' में निहित है और आधुनिक भारत के निर्माण का जो स्वप्न गाँधी ने देखा, उसके रंग उन्हें महामति के ग्रंथों और उपदेशों में मिले।

महामति का उपासना-भाव भागवत परम्परा का है। उन्होंने निर्गुण-सगुण की धारणा भी भागवत परम्परा की रखी। श्रीराज और श्री श्यामा के लीला विहार और लोक की कल्पना भी वैष्णव धर्म की माधुर्य शाखा के अनुरूप निर्धारित की। उनका 'इन्द्रावती' नाम सखी सम्प्रदाय की अवधारणा को सूचित करता है। गोपीभाव मर्यादा मार्गी वल्लभ को भी परम इष्ट था। उनके पुत्र विट्ठलनाथ तो गोपीभाव से बढ़कर माधुर्यभाव के उपासक थे। गोस्वामी हरिदास, हितहरिवंश, वंशीअली, चरणदास, गरीबदास, यारी साहब, बुल्लासाहब, गुलाल साहब, धरणीदास, तुलसीदास निरंजनी तथा महामति प्राणनाथ सत्रहवीं शती के उन भक्त आचार्यों में हैं जो प्रेमभक्ति के आदर्श व्याख्याता और साधक कहे जा सकते हैं.। जानकवि और दुखहरनदास में कृष्ण-भक्ति माधुर्य के साथ जिस तसव्वुफ़ के आध्यात्मिक आवेश की छाया दिखाई पड़ती है, उसके परिपक्व सूत्र प्राणनाथ जी में हैं। प्राणनाथ जी के कवि-व्यक्तित्व के दो रूप हैं : (१) जागनी के वैतानिक और छत्रसाल के प्रेरक का रूप तथा (२) इन्द्रावती के रूप में एकांत सखी भावोपासक का आदर्श रूप जो भागवत की छाया में निर्मित हुआ—

निसिदिन ग्रहिए प्रेम सों, युगल स्वरूप के चरन।
निर्मल होना याही सों, और धाम बरनन।।

शुक सम्प्रदायी चरणदास जी ने 'रास में निरत करत बनचारी' कहकर जिस रासलीला को ब्रह्मात्माओं की जागरण लीला कहा है, प्राणनाथ जी ने उसी रास को ईश्वरीय सृष्टि की जागनी या उद्‌बोधन कहा है। इस साधना में तीन तरह की जीवात्माएँ भाग लेती हैं। (१) साधना-उन्मुख — गोपियाँ, (२) साधना-लीन— जिनके साथ भगवान अंतर्धान होते हैं तथा (३) कृष्णमय—श्यामा, जिन्हें ब्रह्मात्मा कहा जाता है तथा जो श्रीकृष्ण (श्रीराज) से कभी पृथक् नहीं होतीं। पहली का सम्बन्ध जीवसृष्टि से, दूसरी का संबंध ईश्वरीय सृष्टि से तथा तीसरी का संबंध ब्रह्म सृष्टि से है। यह तीसरी अवस्था सिद्धावस्था है। पहली में प्रेम अंकुरित होता है, दूसरी में पल्लवित होता है और तीसरी में पुष्प-फल बनकर जगत् के आधार से मुक्त हो जाता है। इसमें पार्थिवता या माया का वृन्त नहीं रहता, जैसे बीज से निकलकर अंकुर मिट्टी का अंश लिये तब तक रहता है, जब तक

वह वृक्ष नहीं बनता, उस पर फल नहीं लग जाते, वैसे ही भक्ति का अंकुर वासना की पार्थिवतः में तभी तक लिपटा रहता है, जब तक ब्रह्म-भाव में परिणत नहीं हो जाता। इसी अवस्था में रासलीला में अन्तर्धान ब्रह्म का प्रकटीभाव होता है। श्री प्राणनाथ जी इस सिद्धावस्था का चित्रण करते हुए किरंतन में कहते हैं—

प्रगटे पूरन ब्रह्म सकल में, ब्रह्मसृष्टि सिरदार।
ईश्वरी सृष्टि और जीव की, सब आय करो दीदार।।
किरंतन, प्रकरण-५७ चौ. २

शुकदेव जी ने भी इसी प्रकार भागवत में कहा था—

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः।

यहाँ लक्षित करने की बात यह है कि घट में रहते हुए भी (जीवसृष्टि) जिन्होंने पारिवारिक, भौतिक, जागतिक संबंधों की ज़ंजीर तोड़कर ईश्वरीय वासना प्राप्त की (ईश्वरीय सृष्टि), वे ही रासलीला में पूर्ण परिपक्व होकर ब्रह्मसृष्टि की मुक्तात्मा बन सकीं। संत गृहस्थ में ही तीनों आत्माओं का स्तर सम्पादित होने की बात पर बल देते हैं। पहली अवस्था में भावाद्वैत, दूसरी में द्रव्याद्वैत तथा तीसरी में क्रियाद्वैत सम्पन्न होता है। स्व-ममता से ईश्वरोन्मुख होना भावाद्वैत, ईश्वरीय प्रेम में वासनाओं का कृष्णाभिमुखी हो जाना द्रव्याद्वैत तथा कृष्णप्रिया भाव से जागतिक पदार्थों का अनासक्त भोग क्रियाद्वैत है। श्री प्राणनाथ जी ने प्रेमा-साधना के यही तीन स्तर माने हैं। इसीलिए रास मंडल में निरत उक्त तीन स्तर की गोपियाँ जीवात्माओं की तीन कोटियाँ है और इनकी प्रशंसा में श्रीकृष्ण को स्वयं कहना पड़ता है—

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां, स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः
या मा भजन् दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना।।

प्राणनाथजी ने जिन्हें जीव सृष्टि कहा है, जीव गोस्वामी के अनुसार उन्हें आरोप सिद्धा, जिन्हें ईश्वरीय सृष्टि कहा गया है, उन्हें संग-सिद्धा तथा जिन्हें ब्रह्म सृष्टि कहा है, उन्हें स्वरूप-सिद्धा कहा जा सकता है। स्वरूपसिद्धावस्था उच्च कोटि की है, क्योंकि इसमें भाग लेनेवाली जीवात्माएँ श्यामा की अंगरूपा या 'नूर' हैं। इनके स्वामी एकमात्र श्रीराज हैं—

सो निजवतनी सुहागनी, पिया अंग निज नूर।

श्यामा, क्योंकि श्रीराज जी की आह्लादिनी शक्ति का सारभूत विग्रह हैं और ब्रह्मात्माएँ उस विग्रह में तेज या दीप्ति रूप में समाहित हैं, अतः यहाँ उपासक का उपास्य से 'तारतम' संबंध श्रेष्ठतम होता है। वृन्दावन में यह युगल 'परमाद्भुतप्रकाश' के रूप में लीलास्वाद करता है और श्री श्यामा लीला सहचरी बनकर उन्हें रसास्वाद (स्वरूपाद्वैत) कराती हैं, क्योंकि ब्रह्मात्माएँ इस लीलासहचरी का प्रकाश-कण हैं, अतः श्यामा के ब्याज से वे भी उस आस्वाद में भाग लेती हैं। 'श्रीकृष्णसंदर्भ' में जीव गोस्वामी ने कहा है—

अतः सर्वतोऽपि सान्द्रानन्द चमत्कार कर श्रीकृष्ण प्रकाशे
श्रीवृन्दावनेऽपि परमाद्भुतप्रकाशः श्रीराधया युगलितस्तु श्रीकृष्ण इति।

महामति जी ने इसीलिए श्यामा के बारे में लिखा—

सोभा स्यामाजीय की, निपट अति सुंदर।
अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नज़र।। सागर, ६/३१

वृन्दावन या परमधाम का वर्णन भी द्रव्याद्वैत की दृष्टि से सर्वोत्तम उदाहरण है। महामति जी ने बैकुंठ, गोलोक, अक्षरधाम, अक्षरातीत परमधाम का वर्णन अपने ढंग से किया है। इसके सात यमुनाघाट, रंगमहल के दस खण्ड हठयोग के ढंग के वर्णित हैं। इस परमधाम के वर्णन का लक्ष्य है ब्रह्मसृष्टि की आत्माओं की 'निजघर' की याद कराकर जगाना तथा ब्रह्मात्मा के रूप में भाव-देह की प्राप्ति कराना। भाव-देह की परिपक्वता विरह की आँच में तप कर ही प्राप्त की जा सकती है। 'किरंतन' में उन्होंने कहा—

दुख से पीऊ जी मिलसी, सुखें ना मिलिया कोय।
अपने धनी का मिलना, सो दुखै से होय।।
किरंतन, १८/१०

'कलस हिन्दुस्तानी' में इस विरह का ताप कैसे ईश्वर सृष्टि में बदलता है, का चित्रण मिलता है—

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू माँस।
ना आवै अन्दर बाहिर, या विध सूकत साँस।।
कलश, ५/२

भागवत में श्री शुकदेव जी ने भी कहा था— गोपियाँ तीव्र विरह के ताप से वासना शून्य हो गई। उनके शुभ-अशुभ दोनों क्षीण हो गए। ध्यान में श्रीकृष्ण की प्राप्ति शुभ कर्मों का फल थी— अतः उसका सूक्ष्मभोग हो गया और विरहजन्य कष्ट झेलते-झेलते अशुभ कर्मों का फल मुक्त हो गया, अब न शुभ रहा और न अशुभ। अतः गोपी पाप-पुण्य के फल से क्षीण होकर मुक्त हो गई—

दुःसह प्रेष्ठ विरह तीव्र तापधुताशुभाः
ध्यान प्राप्ताच्युताश्लेष निर्वृत्या क्षीणमंगलाः।
तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्यापि संगताः
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः।।

प्राणनाथ जी की ब्रह्मात्मा भी विरह की बलिवेदी पर श्रीकृष्ण की अभिलाषा के हवन-कुंड में अपनी अस्थियों को समिधा, अहंकार को नारियल तथा मांस-मज्जादि रूप वासनाओं को हविष बनाकर होम देती है और कर्म करके भी कर्म-बन्धन से क्षीण हो जाती है—

हाड़ हुए सब लकड़ी, सिर श्रीफल ब्रेहे अगिन।
मांस मीज लोहू रगों, या विध होत हवन।। कलश हिन्दु., ५/३

प्रेम दरद इसक तुम्हारा, मैं फेर फेर माँगू फेर।
प्यारे मिलूँ प्यारे पीऊ सों, प्यारी महामति कहे बेर बेर।।
किरंतन, ६२/२०

सगुणभक्त कवियों और निर्गुणमार्गी भक्तमार्गी कवियों मे विरहानुभूति की तीव्रता का वर्णन भागवत परम्परानुमोदित है और महामति प्राणनाथ जी विरह की स्वीकृति 'ब्रह्मात्मा की जागनी' का अनिवार्य साधन मानते हैं। दादू में विरह की तीव्रता उच्च कोटि की है।

इन उत्तर मध्ययुगीन भक्त-आचार्यों का माधुर्य पाश्चात्य प्रेरित रहा है, यह स्थापना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। वैदिक साहित्य में माधुर्योपासना के संकेत पर्याप्त रूप से मिलते हैं। प्राणनाथ जी का माधुर्य दाम्पत्य कोटि का है। इसीलिए सुहागिन आत्मा के पातिव्रत्य और स्वरूप की ही यहाँ चर्चा है। सूफ़ियों का परकीया भाव यहाँ स्पर्श नहीं करता। अथर्व वेद में तो जीवात्मा-परमात्मा के दुल्हा-दुलहिन रूप (वर-जाया) का चित्रण भी मिलता है। महामति की वाणी में,

भी कहूं मेरी सैंयन को, जो है मूल अंकूर।
सो निज वतनी सुहागनी, पिया अंग निज नूर।।
कलश हिन्दु., १२/१

पीउ बातें खेले हँसे, गीत पिया के गाए।
रोवै उरझै पीउ की, बातन सों मुरछाए।।
कलश हिन्दु., ११/१५

प्राणनाथ जी ने भी सुहागनी, दुलहिन या धनी शब्द का प्रयोग किया है।

तलफे तारुनी रे, दुलही को दिल दे।
सन्मन्ध मूल को जान के, सेज सुरंगी पर ले।।
कलश, ५,१

तात्पर्य यह कि कृष्ण प्रणामी सम्प्रदाय का सखी भाव आयातित नहीं, सहज है और उसका मूल सर्वथा भारतीय है। सखी सम्प्रदाय में उपास्य, लीला, धाम, परिकर की चर्चा है, पर उपासना में उपास्य-उपासक का संबंध क्या है, इसकी चर्चा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से हुई है। प्राणनाथ जी ने इस संबंध को अंकुर नाम दिया है। सूफ़ियों के अभिव्यक्तिवाद, वैष्णवों के परिणामवाद या ज्ञानियों के विवर्तवाद से श्री प्राणनाथ जी का मत पृथक् है। दृश्य वस्तुओं के पीछे ईश्वर की एकता का 'वहदतुल वजूद' सिद्धान्त भी उनसे पूरा मेल नहीं खाता। वे जगत् को पूर्ण ब्रह्म की लीला-साधना के लिए उपयुक्त और समीचीन नहीं पाते। अक्षर के खेल की इच्छा का फल होने से इसका स्वरूप लीला-तरंग का है, अतः न यह पूर्ण सत्य है और न पूर्ण असत्य, असत्य इसलिए नहीं कि आत्म जागरण द्वारा जगत् में परमधाम की लीला की अनुभूति हो सकती है, क्योंकि स्वरूप की दृष्टि से श्रीराज और श्यामा विग्रह का अंग होने से जीवात्मा एक है, अतः यह सिद्धान्त स्वरूपाद्वैत कहा जा सकता है, क्योंकि लीला के लिए श्री श्याम-श्यामा पृथक् हैं, अतः इस दृष्टि में उनमें लीला-द्वैत है। जीव सृष्टि का बैकुंठ धाम में प्रवेश हो सकता है, लीला में नहीं; ईश्वरीय सृष्टि का लीला में प्रवेश हो सकता है, रंगमहल में नहीं। जीव सृष्टि शून्य तक पहुँच सकती है, ईश्वरीय सृष्टि अक्षर धाम तक। ब्रह्मसृष्टि ही परमधाम या रंग महल में जा सकती है। प्रेमाभक्ति तारतम्य रूप से जीव-ईश्वर-ब्रह्म तक की यात्रा सम्पन्न कराती है और इस प्रेमाभक्ति का अंकुर नाम-जप से संभव है, अतः तारतम मंत्र सर्वोत्तम है। प्रणामी सम्प्रदाय का उपास्य श्रीराज-श्यामा का युगल है। उनकी लीला ब्रह्मात्माओं के जागरण का साधन है। यह जागरण प्रेमाभक्ति के अंकुर रूप में होता है, जो उत्कट विरहानुभूति द्वारा ब्रह्मभाव जागरित कराता है। यह जागरण एक का भी होता है और यूथ का भी। इन्द्रावती के रूप में महामति इसी साधना में दीक्षित हुए और फिर लाखों आत्माओं ने उनसे प्रकाश पाया। कलस हिन्दुस्तानी में आया भी है—

पीउ जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ए जिमी झूठी दुख की, सो कर देऊँ सत सुख।।

कलश हिन्दु., २३/४४

महामति जी ने सखी भाव को पुरुषभाव का अभाव नहीं, परिष्कार कहा है। तन,मन को निर्विकार कर एक 'धनी' को देखने का इससे उपयुक्त साधन कोई दूसरा नहीं है। प्रेम, दास्य और सख्य के मिश्रण से विराट भाव का उन्मेष इसी साधना में होता है। प्रणाम शब्द का मूल इन्हीं तीन भावों के ग्रहण और विकास पर बल देता है। परतत्त्व रूप 'श्रीराज-श्यामा' नूर रूप या प्रकाश रूप हैं जो आत्मा के चिन्मंडल वृन्दावन धाम में प्रकट होते हैं। इस युगल के साथ उपासिका का संबंध 'अंकुर' भाव का है। इसी अंकुर भाव का दृढ़ीकरण पुरुषार्थ है—परम पुरुषार्थ है। यह अंकुर क्रमशः बढ़ता है, भाव का जल और ध्यान का प्रकाश लेकर। नाम के तन्तुवृन्त पर यह बेल चढ़ती है, इसलिए किरंतन में कहा गया—

बढ़त बढ़त मेहर बढ़ी, वार न पाइए पार।

यह साधना क्रमशः परिणत होती है, इसलिए इसे तारतमिक साधना कहते है। जीव सृष्टि से ब्रह्मसृष्टि की ओर बढ़ना तारतम-दृष्टि नहीं तो क्या है? महामति जी इस साधना के वैतालिक थे जो राजनीतिक स्तर पर व्यापक राष्ट्रवाद, सामाजिक स्तर पर एकमानववाद और आध्यात्मिक स्तर पर तारतम्य के हामी थे। प्रणामी सम्प्रदाय की यही उपलब्धि है और यही दार्शनिक अवधारणा। सत्रहवीं शती के धर्माचार्यों में अपने त्रिविध जागरण अभियान के कारण वह सबसे अलग और सबसे ऊपर दिखाई पड़ते हैं।



महामति प्राणनाथ का दर्शन

विमला मेहता
नई दिल्ली

संसार की उत्पत्ति के समय से मानव मन में ही नहीं आदिदेव ब्रह्माजी के मन में भी यह प्रश्न उद्वेलित हुआ कि मैं कौन हूँ ? यह संसार क्या है ? मैं कहाँ से यहाँ आया हूँ। मानव ने यह अनुभव किया कि 'मैं' इस शरीर-पिंड और ब्रह्मांड से अलग हूँ। उस 'मैं' को उसने 'जीव' का नाम दिया। पिंड ब्रह्मांड और जीव के सृष्टा रूप में उसे एक परम सत्ता, पूर्ण ब्रह्म या परमात्मा का भी आभास मिला। इन सब प्रश्नों के चिन्तन-मनन में उसे जो अनुभव मिले उसे अध्यात्म या 'दर्शन' का नाम दिया जाता है। आध्यात्मिक अनुभवों को शब्द नहीं दिये जा सकते। दार्शनिक विचारों को तर्क की कसौटी पर परखना कठिन है, तो भी समय-समय पर दार्शनिकों ने अपने विचारों को तर्कबद्ध किया। आध्यात्मिक अनुभवों को शब्द दिये गये जिससे आगामी साधकों का मार्ग प्रशस्त हो और उन्हें कठिन पथ पर चलने का संबल मिले। आध्यात्मिक अनुभव में जो स्वाद मिलता है उसे स्वजनों को चखाने के लिए आत्मा लालायित हो उठती है। किन्तु वह वर्णन 'गूँगे का गुड़' बनकर रह जाता है।

सत्रहवीं शताब्दी में जब महामति प्राणनाथ (१६१८-१६९४ ई०) का अवतरण हुआ तो उन्होंने विश्व को 'धर्मों' एवं उनके नाम पर चले रहे आडम्बरों के कारण उपस्थित संकटों से घिरा पाया। मेहराज ठाकुर का नाम लेकर वे क्षत्रिय परिवार में जन्मे-पले थे। दीवान पिता का राजसी वैभव उन्होंने देखा था। स्वयं दीवान रहते हुए राजनीतिक दाँव पेंचों को झेला था। उनके कोमल संवेदनशील मन ने निरीह जनता पर निरंकुश शासकों के प्रहारों की पीड़ा का गहराई से अनुभव किया। सत्गुरु श्री देवचन्द्र जी ने उनके मानस पटल पर हिन्दू धर्म शास्त्रों का सारभूत ज्ञान एवं हिन्दू संस्कृति की महानता की अमिट छाप छोड़ दी थी। पाँच वर्ष तक अरब देशों के भ्रमण में उन्होंने इस्लाम और मुस्लिम संस्कृति को बड़े निकट से देखा। मेरता में मस्जिद के मुल्ला की अजान में कलमा के गुह्य अर्थों में उन्हें गीता के क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत अर्थात् उत्तम पुरुष का भाव मिला तो मानों अलौकिक सम्पदा हाथ आई हो। उन्होंने धर्म का वह स्वरूप दिखाया जिसमें धर्म प्रेमी मानवता को त्राण मिला। उनके दर्शन में सबने अपने धर्म का शुद्ध स्वरूप देखा।

महामति प्राणनाथ के दर्शन की आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिये संसार के लगभग सभी मुख्य दर्शन ग्रंथों एवं आध्यात्मिक अनुभवों को एक साथ सँजो कर उनको उनके समूचेपन में देखना पड़ता है। महामति को अपने आध्यात्मिक अनुभवों को शब्द

देने में कठिनाई हुई तो भी उन्होंने जो कुछ कहा, उसकी साक्षी में अन्य ग्रंथों के प्रमाण दिये। उन्होंने प्रकाश ग्रंथ की प्रकट वाणी में तथा उनके शिष्यों ने तारतम की प्रणालिका में सृष्टि विज्ञान के रूप में उसे व्याख्यायित और स्पष्ट किया है।

महामति प्राणनाथ का सम्पूर्ण दर्शन तारतम मंत्र, तारतम ज्ञान एवं तारतम दृष्टि में समाहित है। छः चौपाइयों युक्त तारतम मंत्र उनके सम्पूर्ण ज्ञान, उनके लक्ष्य एवं दृष्टिकोण का प्रतीक है। क्षर-नश्वर जगत् से परे परमसत्ता अक्षर ब्रह्म एवं उनसे भी परे अक्षरातीत या उत्तम पुरुष की लीला, सत्ता एवं परब्रह्म के रूप में व्याख्यायित हुआ। तारतम मंत्र एकेश्वर की उपासना से प्राप्त होनेवाले परमानन्द में प्रवेश दिलाता है। तारतम ज्ञान सब धर्मों में दिखाई देनेवाली भिन्नता एवं अनेकता में एकता एवं तारतम्य का रहस्य खोलता है। तारतम दृष्टि सबको अपने में समेट कर, निरर्थक को अलग करके सार्थक को अपनाने की प्रेरणा देती है। तारतम दृष्टि से जाना जाता है कि सभी धर्म, वर्ण, वर्ग, भाषाएँ परब्रह्म परमात्मा की अद्‌भुत योजना के अनिवार्य अंग हैं। उनके आदेश से, उनकी लीला और सत्ता का बोध कराने के लिये इतना बिखराव हुआ। उनका आदेश पाते ही सब कुछ सिमटकर उस एक परम तत्त्व में विलीन हो जायेगा।

यह तो एक अकाट्य, सर्वसम्मत तथ्य है कि परमात्मा एक है। दृष्ट तथा अदृष्ट जगत् एक क्रम चक्र में घूम रहा है उस क्रम का आधार, उसको चलाने एवं अनुशासन में रखनेवाली परम सत्ता परब्रह्म परमात्मा ही की है। उसकी इस लीला से उसका क्या सम्बन्ध है ? शास्त्र ने परमात्मा को सच्चिदानंद, अद्वैत, अनन्त अखंड ब्रह्म कहा। सत्, चिद् और आनन्द उसके तीन अंग हैं। उससे असत् जड़ दुख पूर्ण विश्व कैसे और क्यों बन गया ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर देने की दो विधियाँ अपनाई जा सकती है। पहली यह है कि इस विश्व प्रहेलिका को सुलझाने का प्रयास करते हुए इसके मूल तक जायें। दूसरा यह उपाय है कि इसके मूल और मूल कारण का विवेचन करें। पहेली स्वयं ही सुलझ कर स्पष्ट हो जायेगी। संसार के ज्ञान ग्रंथ वेद शास्त्र आदि साधारणतया विश्व की संरचना एवं विवरण में बहुत कुछ कह गये किन्तु मूल ब्रह्म तत्त्व का संकेत मात्र ही दे पाये। विश्व प्रहेलिका में वे इतने उलझे कि मूल तक पहुँचना न हो पाया। प्रकाश ग्रंथ की प्रकटवाणी में महामति सीधे मूल तत्त्व की और संकेत करते हैं, मूल से चल कर डाल पात रूप सृष्टि के विस्तार की चर्चा करते हैं।

जब नहीं उपज्यो मोह अहंकार, नाहीं निराकार नाहीं सुंन।
न ईश्वर न मूल प्रकृति, ता दिन की कहूँ आपाबीती।। (प्रकाश, प्रकटवाणी)

आपबीती—अपनी गाथा—अपनी दिनचर्या, या वास्तविकता—हक़ीक़त, हक़ीक़ी इल्म—यथार्थ ज्ञान आदि कई शब्दों से उस लीला को संकेतित एवं व्याख्यायित किया जा सकता है। उस परम लीला के वर्णन में महामति ने कहा है :

सच्चिदानंद ब्रह्म अद्वैत अनन्त, अखंड सत्ता है। निजधाम उनका तेज, प्रकाश उनके नूर का विकास, और सत्, चित्, आनन्द, अखंड गुणों से पूर्ण अद्वैत ब्रह्म का लीला धाम है। निजधाम अंगी अंग की लीला भूमि है। भोग और भोक्ता स्वयं पूर्णब्रह्म ही है। वे राज राजेश्वर श्री 'राज जी' है। श्री राजजी के तीन स्वभाव कहे गये। वेद-शास्त्र आदि ग्रंथों में उसे सत्-चित् आनन्द कहा। कतेब ने सत् को नूर, आनन्द को इश्क़ (प्रेम) और हक़ चित् स्वरूप को माना है। श्री राज चिद्‌घन किशोर स्वरूप हैं। उनके सत् स्वभाव

की एक कला अक्षर ब्रह्म हैं। उनके आनन्द स्वभाव की स्वामिनी उनके अंग का नूर श्यामा महारानी हैं। श्यामा का ज़हूर, उनके तेज और आनन्द की कलाओं का प्रतीकित स्वरूप ब्रह्मात्माएँ या सखियाँ हैं—जिनकी संख्या आनन्द की कलाओं की 'गिनती' के आधार पर बारह हज़ार बताई गयी है।

परमधाम परमात्मा की आनन्द लीला के लिये उनके चिन्मय स्वरूप से प्रकट उनका जहूर ही है। श्री राज जी, श्री श्यामा जी की चिन्मय नित्य प्रेमानन्द लीला महान है, एक रस है। नित्य नवीन आनन्द प्रदान करनेवाली है। चिन्मय परमधाम उनकी क्रीड़ा-स्थली होने के कारण शाश्वत आनन्दों से एवं अनन्त प्रसाधनों से भरपूर है।

हम आनन्द में है, हमारी लीला नित्य है, सत्य है, परमधाम चिन्मय है इसका एहसास, बोध सदैव उस रंग में रहने से नहीं होता। आनन्द का दिव्य आस्वाद, प्रेम के माधुर्य का अनुभव तनिक से वियोग के उपरान्त अधिक माधुर्य से भर देता है। सुख, आनन्द, अनन्तता, अखंडता, सत्य जीवन आदि का अनुभव, विरोधी परिस्थितियों में ही सम्भव है। श्रीराज जी ने ब्रह्मात्माओं को ऐसे नवीन अनुभव दिलाने का भाव दिल में लिया। जिनसे उनकी अपनी आनन्दमयी स्थिति का बोध उन्हें मिल सके।

अरस परस आनन्दकारी, एक रस एह लीला भारी।
लज्जत आनन्द की आनन्द को न आवे, बिना ब्रह लज्जत नहीं पावे।
सेवा सत चित आनन्द बुध, प्रभुता प्रेम विलास।
लजत अनुभव की, न थी सखिन के पास।।
असत जड़ और दुख, होय अनुभव जब।
सुध सत चित आनन्द लीला की, लजत होय मन सब।।
सबे सुख थे साथ में, लजत बूझ थी नाहें।
जब दृष्टा दोऊ के हुए, तब हुई लज्जत बूझ माँहे।।
(तारतम की परणालिका)

दोनों विरोधी तत्त्वों या परिस्थितियों का अनुभव परमधाम में नहीं हो सकता। परमधाम की रूहों को परमधाम से अलग किया नहीं जाय, इसके लिये नवीन आयोजन हुआ।

सत् और आनन्द दोनों ही सच्चिदानंद पूर्णब्रह्म के दो अंग हैं जो अपने में पूर्ण, चिद्घन के चिद् से ज्योतित हैं। सत् की एक कला, अक्षर ब्रह्म, चिद् की प्रेरणा से, अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा, स्वप्नवत् ब्रह्मांडों को बनाकर मिटाते हैं। अक्षर ब्रह्म के स्वप्न जगत् में विरोधी भावों का अनुभव दिलाने के लिये ब्रह्मात्माओं की सुरत को तन्द्रिल, मोहिल या स्वप्निल बनाकर उतारा गया—

सत आनन्द दोऊ अंग हैं, चिदानन्द धनी संग।
सबे सरूप सखियन के, हैं आनन्द के अंग।।
सत अरथ अखंड है, आनन्द करे विलास।
सत आनन्द जाने नहीं, चेतन चित की बात।। (तारतम की परणालिका)

सत् और आनन्द अपने में पूर्ण एक दूसरे की लीला सुख एवं चिद्घन स्वरूप के चित् की बातों से अनभिज्ञ एवं उस सुखानुभव से वंचित न रहें इसलिये अभाव और न्यूनता की स्थिति उपस्थित करके इस नाहीं के विश्व में सबको एक साथ रमण करने का अवसर प्रदान किया गया—

ए विस्तार सत आनन्द को, चेतन गुप्त पूरन।
साख्यात सत आनन्द को, वह इन सरूप तिन।।
न तो एह रस एक है, एह लीला सरूप विचार।
जो पुरुष सुख प्यारी लखें, सो रस विरुध होय नार।।
(तारतम की परणालिका)

अक्षर स्वरूप को विशेष ब्रह्मांड बनाने का आदेश मिला, जिसमें ब्रह्मात्माओं की सुरत को आकर्षित कर लेने की सामर्थ्य हो—लेकिन जब कोई कहीं गया या आया नहीं—परमधाम के बाहर कुछ है नहीं तो वहाँ कुछ प्रवेश कैसे होगा ?

अक्षर ब्रह्म की सुरत ने स्वप्न के समान विश्व बनाया और अक्षर ब्रह्म के स्वप्न को ब्रह्मात्माओं की सुरत ने उसमें प्रवेश करके देखा—उसमें वे स्वयं हैं, ऐसा अनुभव किया। द्रष्टा के रूप में नहीं बल्कि भोक्ता बनकर उसमें वे पूरी तरह खो गयीं।

ले दृष्टांत तू आप पर, अपने सुपन के मांहे।
तें देख्यों सेहेर कोई सुपन में, तू जाने गई मैं ताहें।।
इतही बैठी तू आप में, देखत है सुपन।
नींद हुई जाने गयो, ए गयो न सोयो मन।।
(तारतम की परणालिका)

अक्षर ब्रह्म भी असंख्य शक्तियों के स्वामी हैं, उनमें उनकी दो शक्तियाँ मुख्य रूप से सृष्टि-रचना में व्यस्त रहती हैं। उनकी इच्छा शक्ति उनमें चेतना का कार्य करती है—उनके द्वारा बने जगत् को ब्रह्मात्माओं की सुरत ने परमधाम के मूल मिलावा में बैठे देखा परन्तु ऐसे जाना मानों परमधाम और उनके बीच महान अन्तर पड़ गया हो। परमधाम में समय का प्रभाव नहीं। वहाँ तो वही पल, वही क्षण था और इधर संसार में मानो युग व्यतीत हो गये!

सक्ति अक्षर सरूप को, एक जड़ एक चेतन।
सो रहित सामिल अक्षर में, करे जगत उतपन।।
चौदे लोक निराकार सुन, ईश्वर पार अक्षर।।
बीच अन्तर ऐसा पड़्या, कहो केता घर दूर।
चौदे लोक निराकार सुन, देख्यो सुपन माहें निरधार।।
सो तेरे तन के हिये मिने, समयों ऐतो विस्तार।।
(तारतम की परणालिका)

वास्तव में ब्रह्म—ब्रह्म सृष्टि, परमधाम, सब मिलकर एक स्वलीलाद्वैत ब्रह्म का बोध कराते हैं। ब्रह्म अद्वैत हैं। एक ही हैं : सत् आनन्द उनके अंग, परमधाम उनका तेज—नूर, लीला के लिये अलग दिखाई देते हैं। परमधाम में नूरमयी, चिन्मय अखंड ऐश्वर्य युक्त, अनन्त परिधि लिए, असीम, दिव्य एवं सुउच्च अट्टालिकाएँ, महलों के समरूप सुन्दर वृक्ष, विभिन्न गुण, रंग स्वाद से पूर्ण सागर द्वीप, वन, उपवन, पर्वत समूह का वर्णन कुलजम सरूप के 'परिकरमा' ग्रंथ में है। महामति ने स्वयं कहा कि असीम परमधाम और उसके अनुभवों को सीमित शब्दों में बाँधना भूल है। तो भी तार्किक बुद्धि को मौन करने एवं आत्मा को ध्यान के लिये आधार देने के लिये यह वर्णन किया है।

महामति ने जो शब्द दिये, उनसे ऐसा प्रतीत होता है मानों किन्हीं रमणीय स्थलों

का वर्णन कर दिया हो। कतिपय लोग यह कहने में संकोच नहीं करते कि संसार में उपलब्ध सर्वोत्तम वस्तुओं को परम धाम की कल्पना में घटित करके भक्तों को आकर्षित करने का प्रयास किया गया है। जबकि सृष्टि-रचना का क्रम देखने से विदित होता है कि तथ्य इसके विपरीत है।

परब्रह्म परमात्मा की लीला-स्थली परमधाम चिन्मय, ओजपूर्ण, आनन्ददायी ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है। जब सृष्टि रचना के लिये कल्पना शक्ति का सहारा लिया गया तो अक्षर ब्रह्म ने जाग्रतावस्था में जिस परमधाम को देखा था—कल्पना अथवा स्वप्न में—उसे ही पुनः देखा। यथार्थ एवं कल्पना में, साक्षात् एवं स्वप्न में—वास्तविक एवं प्रतिबिम्ब में—जो अन्तर होता है, वही मूल परमधाम एवं अक्षर ब्रह्म की इस नश्वर सृष्टि में है।

जब तक हम स्वप्न देखते हैं तब तक स्वप्न जगत सत्य एवं यथार्थ परमधाम भ्रम या कल्पना प्रतीत होता है। उसी प्रकार आत्मा मिथ्या जड़ जगत् को सत्य एवं चिन्मय परमधाम को कल्पना मात्र मान लेती है।

जब सृष्टि रचना होती है तो मूल की कल्पना, उसकी सृष्टि कला का विकास, उस कल्पना का प्रतिबिम्ब, उस प्रतिबिम्ब का आभास सब होते-होते चिन्मय से महाकारण, कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत् का विकास हुआ है। पुनः चिन्मय स्वरूप में लौटने के लिये इन आवरणों को भेदकर इनसे पार जाना पड़ता है।

इससे भी आश्चर्यजनक बात यह कि मूल परमधाम का जितना वर्णन हुआ है, उससे कई गुना अधिक विस्तार इस जड़ जगत् का दिखाई देने लगा है। इतना कि इसे ही पार कर पाना असम्भव प्रतीत होता है। 'सृष्टि विज्ञान', 'ब्रह्मविज्ञान भास्कर' और 'विराट पट् दर्शन' आदि ग्रंथों में क्षर, अक्षर एवं अक्षरातीत भूमिकाओं का विधिवत् विस्तार से वर्णन हुआ है। यहाँ मात्र संकेत ही दिया जा रहा है।

सृष्टि रचना का विचार उठते ही मन, चित्त, बुद्ध, अहंकार एवं सत्, रज, तम तीनों गुण अपना क्षेत्र, न्यास और व्यास बाँट लेते हैं। इन सबके जाग्रत, विभक्त एवं क्रियाशील हुए बिना सृष्टि की संरचना, विस्तार एवं विकास नहीं हो सकता। सच्चिदानंद ब्रह्म के सदंश अक्षर ब्रह्म को भी चार विभूतियुक्त माना गया है। मन का विस्तार सत् स्वरूप में : बुद्धि केवल ब्रह्म में, चित्त सबलिक ब्रह्म एवं अहंकार अव्याकृत अथवा अव्यक्त ब्रह्म स्वरूप में विस्तृत हो जाता है। सत्, केवल एवं सबलिक ब्रह्म तो सदैव अखंड में वर्तमान हैं। उनमें बदलाव नहीं होता। अव्यक्य सत्ता में उनके अंश, कला, बिम्ब, प्रतिबिम्ब, अथवा आभास के प्रवेश से सृष्टि रचना होती है। इन चारों पाद, विभूति अथवा सोपानों में कारण, स्थूल-सूक्ष्म के रहते विविध प्रकार की रचना होती है। अक्षर ब्रह्म के मन में स्थित इच्छा शक्ति अथवा मूल प्रकृति इन सबकी प्रेरक है। योगमाया कालमाया आदि शक्तियों का संरचना में विशेष योगदान रहता है। इस प्रकार परब्रह्म के लीला धामों को इन रूपों में व्याख्यायित किया जा सकता है—

अखंड भूमिका—अक्षर ब्रह्म धाम एवं परमधाम।
बेहद भूमिका—सत् केवल, सबलिक, अव्याकृत।
अव्याकृत में पड़े प्रतिबिम्ब से प्रणव।

हद, भूमि-सीमित या क्षर, नश्वर भूमि—जिसमें प्रणव ब्रह्म से प्रेरित एवं व्रिकसित महाविष्णु नारायण, त्रिदेव (ब्रह्मा विष्णु महेश) एवं चर-अचर, जड़-चेतन चौदह लोक।

चौदह लोकों के ऊपरी छः देवलोक हैं और फिर मृत्युलोक। इसके नीचे सात पाताल हैं। शेषशायी नारायण की पीठिका पर यह जगत् स्थित है। नारायण ब्रह्म पाँच तत्त्व एवं तीन गुण की सहायता से सृष्टि रचना करते हैं और कण-कण में जीव रूप से व्याप्त हो जाते है। गुरुनानक जी ने भी 'अनेकों आकाश एवं अनेकों पाताल' कहकर सृष्टि का वर्णन किया है।

असंख्य ब्रह्मांड, असंख्य देवी-देवता; हर ब्रह्मांड के अलग-अलग ब्रह्मा—विष्णु-महेश तथा इन सबको क्षर जगत् के ब्रह्म नारायण अपने एक अंश में धारण किये हैं। वही सबके कर्ता, भोक्ता एवं पालक हैं। वह सबमें व्याप्त भी हैं। प्राकृत प्रलय के समय नारायण सबको अपने में समेटकर अक्षर ब्रह्म के प्रणव अंश में विलीन हो जाते हैं। इनके विस्तृत विवेचन के लिये प्रणामी सम्प्रदाय में प्रचलित 'सृष्टि विज्ञान', 'विराट पट दर्शन' तथा बीतक तथा सर्वोपरि 'कुलजम स्वरूप' या 'तारतम बानी' का अध्ययन करना पड़ेगा।

सारांश यह कि यह सृष्टि अक्षर ब्रह्म की कल्पना या स्वप्न सदृश रची गयी। यह एक खेल है, जिसे देखने या जिसका अनुभव प्राप्त करने के लिये अक्षरातीत ब्रह्म की आनन्द अंग श्यामा की बारह हज़ार कलाओं की प्रतीक स्वरूप ब्रह्मात्माओं की सुरत या ध्यान का जगत् जीवों पर अवतरण हुआ। अद्वैत ब्रह्मात्मा को 'परात्म' नाम भी दिया जाता है। इसकी सुरत को आत्मा एवं इस पंचभौतिक जड़ शरीर में प्रवेश करनेवाले सूक्ष्म स्वरूप को जीव कहा जाता है। जीव चराचर, जड़ चेतन, प्राणीमात्र में सूक्ष्म रूप से विराजमान है। जीव ही जन्म मरण के चक्र में पड़ा कर्मफल के अनुसार, विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है। मनुष्य-योनि में आकर वह शुभ कर्म और साधना के द्वारा शुद्ध होकर आत्मा (परात्म की सुरत) के प्रवेश के योग्य बनता है। आत्मा के संग से जीवात्मा, मुक्त जीव या जीवन्मुक्त कहलाता है। मुक्त जीव शरीर छोड़ने के उपरान्त अखंड मुक्तिधामों में परम मोक्ष पाता है।

परात्म या ब्रह्मात्मा परमधाम में ही हैं—उनका कहीं जाना-आना नहीं होता। वहीं बैठे खेल देखकर दुःख सुखादि विरोधी परिस्थितियों का अनुभव प्राप्त करती है। जीव और परात्म के बीच आत्मा सेतु का कार्य करती है। सभी जीवों को आत्मिक अनुभव प्राप्त नहीं होते। जिन्हें होते हैं, वही परमपद या मोक्ष प्राप्त करते हैं। स्वामी जी कहते हैं जब तक वह परम अनुभव प्राप्त न होगा तब तक जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहेगा।

तीन सृष्टि :

इस अभूतपूर्व नियोजन के लिये सृष्टि में तीन प्रकार की आत्माएँ अवतरित हुईं। परमधाम से अवतरित आत्माओं को ब्रह्मसृष्टि नाम मिला। अक्षर ब्रह्म की दैवी या ईश्वरीय सृष्टि है, जो एक ओर तो अक्षरब्रह्म के रचना कार्यों में प्रवृत्त होकर उनका आनन्द लेती है—दूसरी ओर ब्रह्मसृष्टि की 'रखोपा' रक्षक एवं सेवक रूप में संसार में भ्रमण करती है। ब्रह्मात्माओं का संग पाकर इन्हें भी रासलीला आदि का परमसुख प्राप्त हुआ। अक्षरधाम से अवतरित होकर, अपना कार्य करके ईश्वरीय सृष्टि वहीं लौट जाती है। जीव सृष्टि नाटक के पात्रों की तरह विशेष लीला के लिये प्रकट होती है। जीव सृष्टि क्षर ब्रह्म की लीला में गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप अनेक योनियों में भटकती है। ब्रज, रास एवं जागनी तीन लीलाओं में जीव, ईश्वरीय, ब्रह्म तीन प्रकार की मुख्य सृष्टि है। इनमें स्वभाव, गुण, लीला एवं स्थान को लेकर अनेकों भेद है।

मुक्ति : कतेब ग्रंथों में मृत्योपरान्त दो ही गतियाँ मानी गयी हैं—पैग़म्बर की पनाह में आने वाले और अच्छे कर्म, वन्दना—उपासना करनेवाले या शराअ को माननेवाले बहिश्त में नित्य सुख प्राप्त करेंगे। अन्य सब दोज़ख़ की आग में जलते रहेंगे। हिन्दू-शास्त्र शुभ कर्मों का फल देवलोकों की प्राप्ति मानता है। बैकुंठ धाम तक पहुँचने वाले चार प्रकार की मुक्ति-सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य प्राप्त करते हैं। यह सब स्थान क्षर ब्रह्मांड में होने से प्राकृत प्रलय में विलीन होनेवाले हैं। महामति ने बहिश्तों को बेहद अखंड भूमिका में बताया। मुमुक्षु जीव तथा जिनमें ब्रह्मात्माओं की सुरत का प्रवेश रहा वे इन मुक्ति स्थलों या बहिश्तों में अनन्त जीवन एवं अखंड सुख प्राप्त करेंगे। ईश्वरीय सृष्टि अक्षरधाम में और ब्रह्मात्माएँ अपने परमधाम में जागेंगी।

जगत में असंख्य ब्रह्मांड हैं। उनके पूज्य ईशों की पूजा करते हुए जीव उन्हीं के धामों में प्रवेश करते हैं। कर्मफल भोगकर पुनः मृत्यु लोक अथवा निम्न लोकों में उतारे जाते हैं। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक वह ब्रह्म या ईश्वरीय सृष्टि की कृपा, सम्बल या सम्पर्क प्राप्तकर अथवा उनके समान आचरण करके मुक्त नहीं हो जाते।

इसी क्रम में आध्यात्मिक अनुभवों में आनन्द की मात्रा या घनीभूतता में अन्तर पड़ जाता है। 'परात्म' को परमधाम में जो सुख मिलता है, उसका कुछ अंश आत्मा के माध्यम से जीव को मिलता है। बुद्धि जीव का सुख सँजोकर उसका अनुभव मन को देती है। मन उसे शब्द देने के लिये लालायित हो उठता है। शब्द उसे नश्वर जगत देता है। शब्दों का सहारा लेकर किया वर्णन जड़ प्रतीत होता है। इन शब्दों में उस परम सुख की तनिक-सी अनुभूति रहती है, जिससे साधक को चिन्तन का ठोस आधार मिल जाता है।

महामति सम्पूर्ण मानव जाति का वर्गीकरण वर्ण, जाति या सम्प्रदाय के आधार पर नहीं करते। वे कहते हैं कि संसार में तीन तरह के लोग हैं—परमात्मा के प्रेमी (ब्रह्मसृष्टि) साधक (ईश्वरीय सृष्टि) एवं साधारण जीव, जिन्हें शास्त्र ने मुक्त, मुमुक्षु और बद्ध जीव की कोटि में विभाजित किया। इन्हें कतेब में ख़ासुलख़ास, ख़ास और आम खलक का दर्जा दिया गया। हर सम्प्रदाय, वर्ग, देश या जाति में साधारणतया तीन तरह की वृत्तियों वाले लोग हैं—जो अपने-अपने कर्म, स्वभाव एवं आचरण के द्वारा संसार में परखे जा सकते हैं। इनकी यही पहचान अन्त में उनकी गति का आधार बनती है।

तीन सृष्टि के उपास्य साधना या उपासना से इष्ट को चुनने में स्वामी जी विशेष रूप से सतर्क रहने का आदेश देते हैं। अक्षरातीत ब्रह्म के अनन्त अखंड सत्ता-सागर का लव मात्र अक्षर ब्रह्म है। उनके भी चतुर्थ पाद की एक विभूति सृष्टि रचना का उपक्रम करती है। सृष्टि परम सत्ता पर आधारित है। इसलिये जगत में ब्रह्म नहीं है, आभास मात्र है। वह आभास चिन्मय ब्रह्म का है इसलिये चिद् या चेतन प्रतीत होता है।

कल्पना द्वारा रचित ब्रह्मांड के देव भी नश्वर हैं। वे अपनी-अपनी सौंपी भूमिका निभाकर मूल में विलीन हो जानेवाले हैं। मोह एवं अहंकार आदि का प्रभाव देवलोकों में भी है। मृत्यु प्राप्त या विनष्ट हो जाने का भय मिट नहीं पाता। इनकी पूजा से प्राप्त फल भी नाशवान होने से दुखदायी है। सत्यानन्द की अनुभूति के लिए परब्रह्म परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। तीन प्रकार की सृष्टि की तरह इन पूजित देवों, इष्टों अथवा

'पूज्यों' को भी महामति ने तीन वर्गों में बाँट दिया है—क्षर जगत् के सभी देव जिनमें ब्रह्मा, शिव सहित विष्णु भगवान की कलाओं के अवतार भी सम्मिलित हैं, नाशवान हैं। इन लोकों में मिली मुक्ति भी महाप्रलय में लीन होने के समय तक स्थायी होती है।

विष्णु भगवान के अन्तिम अवतार श्री कृष्ण को 'पूर्णावतार' कहा गया, किन्तु वह भी अविनाशी नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में उन्होंने क्षर, अक्षर एवं उत्तम पुरुष कृष्ण के तीन स्वरूपों का बोध कराया है। महामति ने श्री कृष्ण की त्रिधा लीला कहकर उसका परिचय कराया है। श्रीकृष्ण की जगत् लीला में गोकुल के कृष्ण पर ग्यारह वर्ष बावन दिन पर्यन्त उत्तमपुरुष अक्षरातीत का आवेश रहा। रास लीला के उपरान्त नये ब्रह्मांड में ग्यारह दिन तक अक्षर ब्रह्म की सुरत का प्रवेश था। तदनन्तर एक सौ बारह वर्ष तक योगीराज श्री कृष्ण में विष्णु भगवान की सोलह कलाओं का अवतरण हुआ। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के लोक भी नश्वर जगत में है। अलग-अलग अनुयायियों द्वारा वे मान्य भी हैं। महामति के अनुसार, स्तुति, पूजा या उपासना एक परब्रह्म परमात्मा, उत्तम पुरुष श्री कृष्ण की ही होनी चाहिये। उनकी पूजा मात्र से सभी देव तृप्त एवं सन्तुष्ट हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में 'परम पुरुष' की उपासना को मुख्य एवं देवोपासना को 'अविधि पूर्वक' कहा गया है। कतेब ग्रंथों में भी एक खुदा या परमसत्ता की वन्दना का आग्रह है।

पारब्रह्म तो पूरन एक है, ए तो अनेक परमेश्वर कहावें।
अनेक पंथ सबद सब जुदे जुदे, और सब कोई शास्त्र बोलावें।।

किरंतन ७/७

सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।
पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।।

किरंतन २१/६

विश्व धर्म : महामति ने धर्म को समग्र—पूर्ण, एक ही विश्व धर्म रूप में देखा-परखा है। उसी विश्व धर्म को स्पष्ट करके उन्होंने उसी का प्रचार किया। अन्य सिद्धान्तों की भाँति इस विचार को भी उन्होंने शास्त्रों की गवाही से पुष्ट किया। श्रीमद्भावगत पुराण में लिखा है कि कलियुग के अन्तिम चरण में बुधावतार होगा। वह अनेक धर्मों की अच्छी बातों को लेकर एक धर्म की स्थापना करेगा। शिव पुराण और भविष्य पुराण में भी ऐसी ही भविष्य वाणी की गयी है।

कतेब ग्रंथों—जबूर, तौरेत, अंजील और क़ुरान का सारा ज़ोर इसी बात पर है कि आख़िरत में एक मसीहा आयेंगे और सारे संसार में एक दीन स्थापित होगा। सभी धर्मावलम्बी यही घोषणा करते हैं कि उनका धर्म सर्वोपरि है और वही धर्म समूचे जगत में फैल जायेगा। जबकि महामति सभी धर्मों को विश्व धर्म की एक विशिष्ट इकाई या कड़ी के रूप में देखते हैं।

परमात्मा का आदेश या हुक्म प्रत्येक युग एवं देश में अवतारी पुरुषों के रूप में प्रकट होकर मानव जाति को धार्मिक मूल्यों एवं आध्यात्मिक विकास की ओर प्रेरित करते हैं। पूर्व में श्रीकृष्ण 'संभवामि युगे युगे' का पावन संदेश देते हैं तो पश्चिम में परमात्मा के हुक्म के स्वरूप मुहम्मद सभी देशों, सभी युगों में अवतरित पैग़म्बरों के माध्यम से वही कार्य संपन्न करते हैं। भाषा एवं भौगिलिक परिस्थितियों आदि के कारण इनमें अलगाव या टकराव होता है। फिर तीनों प्रकार की सृष्टि अपनी मति एवं परिस्थिति

के संयोग के अनुसार उन संदेशों को जीवन में ढाल लेती है। अनेकों धर्म बन जाने के यही कारण हैं। कोई भी अवतारी पुरुष या धर्म ग्रंथ किसी विशेष सम्प्रदाय की बपौती नहीं। धर्मग्रंथों में छिपे आध्यात्मिक ज्ञान एवं अर्थ को लिया जाय तो वे समूची मानवता के नाम संदेश देते हैं। महामति ने उन सबमें निहित श्रेष्ठ अंशों को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार, धर्म ग्रंथों का सारांश यही है कि आत्मा परमात्मा से बिछुड़कर मायाजाल में फँस गयी। परमात्मा की शक्तियाँ उसे प्रियतम परमात्मा का संदेश सुनाकर पुनः उससे मिलवाने का प्रयास करती हैं। आत्मा की जगत् यात्रा को कई रूपों में कहा गया है। उनके प्रकटीकरण एवं परमधाम लौटने के निर्धारित समय का भी सांकेतिक वर्णन है। महामति ने लगभग सभी ग्रंथों की कथा शैली में वर्णित प्रसंगों, कथा मिथकों में आध्यात्मिक संदेश खोजने का आग्रह किया है। यदि वे कथाएँ युग की घटनाएँ मात्र हैं तो उन्हें इतिहास की तरह ही पढ़ना चाहिये। धर्मग्रंथ वे तभी कहलाते हैं जब उनमें आत्मा एवं परमात्मा की जानकारी प्राप्त होती है। बाइबिल के दृष्टान्त (पैरेबल) क़ुरानादि ग्रंथों में पैग़म्बरों के क़िस्से, पुराणों की कहानियों में छिपे गुह्य ज्ञान को खोजे बिना धर्म का मर्म पाया नहीं जा सकता। अपने 'खुलासा' ग्रंथ के 'दोनामा' प्रकरण में महामति ने उन सबकी तालिका बनाकर, कड़ियाँ मिलाकर, क़ुरान-पुरान के कथानकों में अकाट्य साम्य दिखाया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो एक ही समय, एक ही स्थान पर घटी घटनाओं को अलग-अलग क़ौमों और भाषाओं में अलग तरह से कहा गया है। इस प्रसग में हूद पैग़म्बर की कहानी वासुदेव से, इन्द्रकोप की हूद तोफान से, नूह तोफान की महाप्रलय से और बाग़ में किश्ती को उतारा जाना वृन्दावन-लीला के समानान्तर दिखाकर महामति ने विभिन्न धाराओं को मिलाकर विश्व धर्म के शाश्वत महानद का बोध कराया है। यह सब पढ़ने के उपरान्त सभी पैग़म्बर, सभी धर्मग्रन्थ परब्रह्म का संदेश देते हुए, अपने ही दिखाई देते हैं। अध्यात्म की धरातल पर सारा भेदभाव मिट जाता है।

प्रेमलक्षणा भक्ति : कर्म, ज्ञान और भक्ति धर्म के तीन अंग हैं—क़ुरान में यह शरीयत, तरीकत और हक़ीक़त के नाम से जाने गये। महामति इनसे भी ऊपर प्रेमलक्षणा भक्ति का सहारा लेकर मारफ़त, या अद्वैत में पहुँचने का आग्रह करते हैं, जहाँ दुई, द्वैत या दुविधा समाप्त हो जाती है। प्रेमी आत्मा और प्रियतम परमात्मा एकाकार हो जाते हैं।

साधना : महामति का साधना पक्ष भी समन्वय का भाव लिये हुए हैं। मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, अपासरों को धन कमाने के साधन बनाने का उन्होंने कड़ा विरोध किया—क्योंकि धन संग्रह से आनेवाले दुर्गुण आदि उनमें समाहित हो जाते हैं। मन्दिर सामूहिक प्रार्थना और परस्पर भाईचारा बढ़ाने और समाज-कल्याण के केन्द्र भर हैं—

देहुरे मसीत अपासरे, सब लगे माँहें रुजगार।
बाहेर देखावे बंदगी, मांहें माया मोह अहंकार।।

किरंतन, ३१/७

मूर्ति-पूजा, देव पूजा आदि मानव द्वारा जुटाये बाह्य उपकरणों में परमात्मा नहीं है। मन को स्वच्छ मन्दिर बनाकर उसके निर्मल चेतन में प्रियतम की छवि निहारना—और उसी के सम्मुख समर्पित हो जाना ही वास्तविक पूजा है। महामति ने हिन्दुओं को एकेश्वर परब्रह्म की उपासना करना सिखाया और आसुरी प्रवृत्तिवाले यवनों को मन की पाशविक

वृत्तियों का संहार या जिब्ह करने का आदेश दिया। बाह्य उपकरण भले ही मन की प्रवृत्तियों को दिशा देते हैं किन्तु वास्तविक साधना तो मन चित्त प्राण को एकाग्र कर लेने से संभव हो पाती है। जो कुछ भी संसार में सुखदायी है, उससे अनन्त गुणा चिन्मय अखंड रूप में अपने परमधाम में है। उस आनन्द को प्राप्त कर लेना ही साधना का परम लक्ष्य है। 'कुलजम स्वरूप' में परमधाम और प्रियतम परमात्मा की छवि का सजीव चित्रण किया गया है। महामति बार-बार उसी स्वरूप में सुरत साधने का उपाय बताते हैं। जब 'स्वरूप' में मन रमण करने लगे, आत्मा को रस आने लगे तो समझ लेना चाहिये कि आत्मा जाग रही है। परमधाम के निकट आ रहे हैं। संसार का मोह छूटते ही मायाजनित विकार एवं दुखपाश खंडित हो जाते हैं। जाग्रतात्मा की पूजा बँधे समय या कुछ पल क्षण की पूजा नहीं, उनका जीवन पूजा बन जाता है, जिसमें विस्मृति को स्थान नहीं।

ए सुख बिसरे धनी के, इन सुपन भोम में आए।
सो फेर फेर याद देत हों, जो गये तुम्हें बिसराए।। ३.
चौकस कर चित्त दीजिये, आतम को एह धन।
निमख एक न छोड़िये, कर मन वाचा करमन।। ६.
जो लों इस्क न आइया, तो लों एही उपाय।
यों ही इस्क जोस आवहीं, पल देसी पट उड़ाय।। १०.
बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जाग्रत।
खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब बिध इत।। १६.
फेर फेर सुरत साधिये, धनी चरित्र सुख चैन।
इस्क आए बेर कछु नहीं, खुल जाते निज नैन।। १६

परिक्रमा, प्र० ४

इन सबके लिये घर छोड़ने, संन्यास लेने या मृत्यु-शरीर त्यागने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं—यहीं, अभी, इसी क्षण प्रियतम का दर्शन और आनन्दानुभव सम्भव है, दुःखद स्वप्न के उपरान्त आनन्द धाम में जागरण के समान। यहीं वह सुख दिलाना उनकी 'जागनी लीला' का ध्येय है।

साधना की राह में दुख को महामति ने सहायक माना है। दुख से उनका अभिप्राय कष्टदायी साधना, दारिद्र्य अथवा रोग-शोक से कदापि नहीं है। दुख या विरहानुभूति, प्रियतम से बिछुड़ने की पीड़ा है, जिसे उसके प्रेमी सहज ही अंगीकार करते हैं। इस दुख का निदान एवं उपचार प्रेमी प्रियतम परमात्मा के हाथों सम्भव है।

सायास, फल के लिये, कर्मों में प्रवृत्ति बन्धन का कारण बनती है। महामति ने निष्काम भाव से उन्हीं कर्मों की ओर प्रवृत्त किया, जिनसे आत्म जागृति का मार्ग अवरुद्ध न हो। धर्म के लक्षणों—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, स्वाध्याय, दया, दान आदि को सम्मान देते हुए उन्हें नवीन परिभाषा दी। परमात्मा का प्रेम अंकुरित हो जाये तो धर्म के लक्षण स्वयं घटित होने लगते हैं। जीवन साधनामय हो जाता है।

सत्य वचन धारण सूं पालिये, जहाँ लग ऊभो देह।
कोटि विघन पड़े जो माथे, तोहें न मूकिये पिऊ नेह।।
दया दान सेवा सर्वे अंगे, कीजे ते सर्वे गोप।
असुभ करम जेम लिये निंदया, सुभ करम नामना लई जाये।

गोप साधन कीजे ते माटे, जेम जीव ने पोहोतूँ थाय।।

किरंतन, प्र० १२६

महामति ने शरीर के विकारों एवं मन की प्रवृत्तियों से लड़ने-जूझने का विरोध किया। वे अपने 'प्रकाश' ग्रंथ के 'गुन फिराये हैं' प्रकरण में सभी गुण-अवगुणों को साध-कर परमात्मा की राह पर लगाने का आग्रह करते हैं। माया के भ्रम में मोहित आत्मा को जगाने का यही सहज, सरल और प्रामाणिक मार्ग है। जीवन की महाभारत में जूझते जीव को अपने शरीर रूपी रथ की बागडोर भगवान के हाथ सौंप देने पर ही उसकी भलाई एवं विजय सम्भव है। जीवन में परमात्मा का प्रवेश हो जाय, सभी कार्यों में वह संगी एवं निरीक्षक बन जाये तो सहज कर्त्तव्य एवं कर्मों को करता हुआ मानव मुक्त हो जाता है—

काया बेड़ी समझ समर, सायर लख संसार।
मालम जीव जगाय साथी, मेहराज पुनो पार।।

किरंतन, १३३/२४

साधना के मार्ग पर महामति गुरु को परमावश्यक बताते हैं। पहले तो गुरु का चुनाव ध्यानपूर्वक करना चाहिए। वे, धूर्त, पाखंडी, सम्मान के भूखे, धन के लोभी, तथा-कथित गुरुओं से बचने का आदेश देते हैं। सतगुरु को खोजकर आत्म समर्पण कर दो। वह हमारे मन के कलुष धोकर उसके स्वच्छ दर्पण में हमें प्रियतम की छवि दिखा देगा। प्रियतम परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा को मिलाने का कार्य सद्गुरु द्वारा ही सम्पन्न होता है—

महामत कहे गुर सोई कीजे, जो अलख की देवे लख।
इन उलटी से उलटाय के, पिया प्रेमें करे सनमुख।।

किरंतन, प्र० ५/१३

एक सौ आठ पक्ष : महामति ने अनेक धारणाओं में छिपे रहस्य और शब्दों के अभिप्रेत अर्थ बता कर जनसाधारण के लिए उनकी उपयोगिता और महत्त्व को बढ़ा दिया है। माला के एक सौ आठ मोती ही क्यों हैं ? इसके लिऐ अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रकट किये हैं। महामति का उत्तर बड़ा तर्कसम्मत है। वाणी के 'प्रकाश' ग्रंथ के पुष्ट, प्रवाह एवं मर्याद के 'अठोतर सौ पख' प्रकरण तथा 'वृत्तान्त मुक्तावली' (महामति की बीतक, बृजभूषण कवि कृत) में इसका स्पष्टीकरण हुआ है।

संसार में भक्तजन आत्म तुष्टि, सामाजिक मर्यादा अथवा लोगों की देखादेखी प्रवाह में बहते हुए अध्यात्म पथ पर चलने लगते हैं। वे सब लोग अपने में सत्, रज तम गुणों की विशेषता लिये रहते हैं। पुष्टि, प्रवाह एवं मर्यादा—तीनों स्तरों को सत्, रज, तम से गुणा करें तो नौ प्रकार के साधक बने। ये सबके सब नवधा भक्ति का सहारा लेते हैं। अमुक गुण, अमुक भाव, अमुक प्रकार की भक्ति—इस प्रकार इन सबका गुणा इक्यासी होता है। ये सब साधना के सोपान हैं। सत् गुण, पुष्टि भाव और सर्वोच्च आत्म समर्पण भक्ति का सहारा लेनेवाले बैकुंठ धाम की मुक्ति प्राप्त करते हैं। जो परम मुक्ति नहीं, इक्यासी पक्षों के आगे निराकार और बेहद भूमिका के दो पक्ष हैं जहाँ नश्वरता और दुःख से स्थायी मुक्ति तो है आनन्द नहीं। इसके उपरान्त पच्चीस पक्ष परमधाम के हैं, जहाँ आत्माएँ अनन्त अखंडानन्द में रमण करती हैं।

महामति प्राणनाथ ने यह भी बताया कि धर्मग्रंथों के बाह्य या शब्दार्थ मान लेने

से ही विरोधाभास हो रहा है। धर्म के लिये किये गये कर्मों, नियमों, साधनाओं और बाह्य प्रतीत होनेवाले लक्षणों की गहराई में जायें, उनके अभिप्रेत अर्थ और लक्ष्य की ओर ध्यान दें तो हमें एकता और समानता के सूत्र दिखायी दे जायेंगे। धर्म के बाह्य पक्ष, कर्मकांड और शराअ के पक्ष, धर्म के नाम प्रचलित रूढ़ियों और परम्पराओं का प्रचलन मानव के धरती पर अवतरण के साथ-साथ शुरू होकर पनपा और फैला है। प्रकृति की शक्तियों, उपादनों और प्रकोपों को देखकर मानव ने स्वयं को सीमित शक्तिवाला, अल्पज्ञ और असहाय मानकर जगत की दैवी शक्तियों और प्रकृति (परमात्मा की सर्जक सत्ता) के सामने सिर झुकाया, सिजदा किया, विनय की, प्रार्थना करने के फलस्वरूप कुछ माँगा। उसकी माँग पूरी हुई तो उसने दैवी शक्ति का आभार मानने के लिये पूजा की या चढ़ावा दिया। वरदान न मिला तो दैवी कोप समझकर इष्ट को प्रसन्न करने के लिये पुनः प्रार्थना की ! प्रार्थना में चित्त की एकाग्रता के कारण मानव अदृश्य शक्ति के साथ जुड़ता है और अपनी आंतरिक शक्ति को प्रखर और चेतना को मुखर होता देखता है। उसका मनोबल बढ़ जाता है और वह अपने मनोनीत या प्रस्तावित कार्यों में और ज़ोर-शोर से लग जाता है।

धर्म के इस बाह्य रूप में भी समानता है कि इष्ट के सम्मुख दीप, धूप, अगरू, मोमबत्ती अथवा किसी और साधन से ज्योति करके, सुगन्धित और शुद्ध वातावरण में बैठा जाता है। भले ही काल्पनिक स्वरूप, इष्ट के इच्छित रूप, मूर्ति, चित्र, संतों की समाधि या फिर मेहराब या काले पत्थर के ही सामने सिर झुकाया जाता हो। साधारणतया भावना यही होती है कि इष्ट प्रसन्न हों और मनोकामना पूरी करें। एक ही धर्म-सम्प्रदाय के माननेवालों के इष्ट का स्वरूप भिन्न हो सकता है, लेकिन इतनी भावना समान है कि शुद्ध, पवित्र, ज्योतित और सुवासित वातावरण में कुछ भी अर्पण करने से इष्ट प्रसन्न होते हैं, वर देते हैं। यह तो सभी मानते हैं कि परमात्मा एक है, लेकिन बहुत कम लोग हैं जो सीधे उनकी उपासना करते हैं। साधारण लोग तो उनकी प्रकृति के अंश या प्रतीक महाभूतों, देवों, संतों और पीरों की समाधियों और मज़ारों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करके फल की आशा करते हैं। ये देव, संत, पीर चूँकि दुनिया के निकट या अंदर ही रहे होते हैं, इसलिये कहा जाता है कि ये सब प्रार्थना सुनकर जल्दी ही फल देते हैं। यह पूजा मनुष्य को स्वार्थ और अहंकार से भर देती है। अपने इष्ट को बड़ा और दूसरों को छोटा सिद्ध करने के लिये क्रोध, व्रोध (विरोध) और वैमनस्य बढ़ जाता है—

मायना ऊपर का सबों लिया, और लिया अहंकार।
फिरके फिरे सब हक से, बाँधे जायें कतार।।
कहे सब एक वजूद है, और सबमें एकै दम।
सब कहे साहेब एक है, पर सबकी लड़े रसम।।

खुलासा, १०/११, १२

जब तक मानव मन संसार से जुड़ा, यहीं के ऐश्वर्य भोग का अभिलाषी है, तब तक प्रतीक-पूजा होती रहेगी। मनुष्य मन सृष्टि में ही विचरण करेगा। उसकी जीवात्मा कर्म भोगों से मुक्त नहीं होगी। किसी धर्म विशेष का नाम लेकर भी वह कभी और कहीं बच न पायेगा।

व्रत, नियम, जाप, साधन आदि सभी धर्मों में समान हैं, सबका लक्ष्य भी समान ही है। लोक कल्याण या आत्मोत्थान के लिये प्राप्त ये शक्तियाँ (जिन्हें शास्त्र अष्ट सिद्धि

दूसरों को वश में करनेवाली शक्तियाँ और नव निधियाँ — ऐश्वर्य और भोग करानेवाली शक्तियाँ मानता है) यश, मान-सम्पदा के लिये उपयोग में लायें तो यह आत्मोत्थान में बहुत बड़ी बाधा बन जाती हैं। दूसरों से स्वयं को श्रेष्ठ माननेवाले व्यक्ति जगत में अपनी पूजा करवाकर साधना को कौड़ियों के मोल बेच देते हैं। चौरासी लाख में सर्वश्रेष्ठ जो मानव योनि आवागमन या जन्म मरण के चक्कर से छुड़ा सकती है, उसे भी हम नश्वर सीमित जगत की मोह-माया में गँवा देते हैं—

आगम भाखो मन की परखो, सूझे चौदे भवन।
मृतक को जीवित करो, पर घर की न होवे गम।।
किरंतन, १५/१०

अभिप्राय यह कि समस्त साधनाओं का लक्ष्य मन की शुद्धता, नियंत्रण और संचालन ही है। मन के स्वच्छ दर्पण में इष्ट की छवि प्रतिबिम्बित होती है। तीर्थों पर जाकर सिद्धि की भावना से जुड़कर मन शुद्ध और पवित्र हो जाता है। मूल में भावना ही काम करती है। इस बात को समझकर सभी तीर्थों को पवित्र मानकर, सम्मान से देखा जाता रहा है।

माला-तस्वीह, जाप, दान-ज़कात, रोज़ा-व्रत या उपवास, हज-तीर्थ, दया-रहम, स्वाध्याय, सत्य, किसी को दुख न देना (अहिंसा), अधिक संग्रह न करना, दूसरे के अधिकारों की रक्षा, शौच—शरीर और मन की शुद्धि, धृति—सहनशीलता, क्षमा आदि धर्म के लक्षणों को अंतःबाह्य रूप से भी मानना सभी धर्म सम्प्रदाय वालों के लिये समान है। मानव मात्र के यह सार्वभौम और सर्वकालिक गुण हैं। इनको आंतरिक रूप से जानने और मानने से ही आत्म जागृति सम्भव हो जाती है। महामति ने कहा है—

तीरथ ते जे एक चित्त कीजे, करम न बाँधिये कोय।
अहनिस प्रीतें प्रेम सूं रमिये, तीरथ एणी पेरे होय।।
दान दया सेवा सर्वा अंगे, कीजे ते सरवे गोप।
पात्र ओलखी ने कीजे अरचा, सास्त्र अरथ जोइये जोप।।
सत व्रत धारण सूं पालिये, जिहां लगे उभो देह।
अनेक विघन पड़े जो माथे, तोहे न मूकिये सनेह।।
किरंतन, १२६/२३, २७, २९

चित्त एकाग्र होता है तो उसमें अनेकों प्रश्न आते हैं। यह सृष्टि क्यों और कैसे बनी ? मैं यहाँ क्यों हूँ? मानव जीवन का लक्ष्य क्या है ? परमात्मा की चिन्मयी सत्ता और परमधाम का स्वरूप क्या है ? इन सबका समाधान संतों के संग, स्वाध्याय (सद्ग्रंथों के अध्ययन) कभी-कभी ज्योतित मन और आत्मा में दैवी—अलौकिक शक्ति के प्रसाद से सम्भव हो जाते हैं। उस अवस्था में जो कुछ भी उसके मुख से प्रकट होता है, अपनी सामान्य अवस्था में उसे वह कौतुक या अहैतुकी कृपा मानता है। यह एक तथ्य या हक़ीक़त है कि अलौकिक लीलाओं, अपरोक्षानुभूतियों या खुदाई संदेशों और आदेशों को शब्द देना असम्भव होता है। इस पिंड और ब्रह्मांड से परे से जो इल्हाम या ब्राह्मी संकेत मिलते हैं वे अलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाले होते हैं। अपने प्रियजनों को उस आनन्द की अनुभूति दिलाने के लिये संवदेनशील आत्माएँ उन्हें शब्दों में अभिव्यक्त करने का प्रयास करती हैं। शब्द उन अनुभवों का वर्णन करते हैं तो वे जगत् की साधारण अनुभूतियों का भाव दे जाते हैं लेकिन सार तत्त्व की बातें वही आत्माएँ समझ पाती हैं जिनके लिये

वे संकेत होते हैं। बेतार की तार की टिक... टिक... ध्वनि में जो संकेत होते हैं उन्हें बेतार विधा का विशेषज्ञ ही समझता है। महामति ने शब्दार्थ से अधिक महत्त्व गूढ़ या अभिप्रेत अर्थ को ही दिया है। ज़ाहिरी मायने या शब्दार्थ कई बार भ्रम में डालकर अविश्वासी बना देते हैं। बाह्य अर्थ ही विद्वेष फैलानेवाले हैं। अभिप्रेत और गूढ़ार्थ आध्यात्मिक अनुभव दिलाते हैं जो सभी धर्म सम्प्रदायों में एक जैसे, सबके लिये समान रूप से हितकारी और आनन्द-प्रदायक होते हैं। सर्वेश्वर ब्रह्म मानव आत्माओं के उत्थान और अखंडानन्द प्रदान कराने के लिये अपने चिन्मय परमधाम में बुलाना चाहते हैं जहाँ वह चिन्मय स्वरूप से सदैव ईश्वर के समीप रह सकें अथवा संसार में ईश्वरीय राज्य स्थापित कर सकें।

महामति कहते हैं कि स्थिति स्वरूप और सत्ता तो एकमात्र परमात्मा की ही है। वे अपनी अंगरूपा आत्माओं को असंख्य आनन्ददायी लीलाओं में मग्न रखते हैं। यह जगत आनन्द का एहसास दिलाने के लिये दुःख सुखमय अनुभवों से युक्त बनाया और दिखाया गया। आत्माएँ अपने चिन्मय स्वरूप से परमधाम में विराजमान हैं अपने आत्मस्वरूप, ध्यान या सुरत के द्वारा वे इस जगत के अनुभव प्राप्त कर रही हैं। जगत जीवों को नाटक के पात्रों अथवा ब्रह्मात्माओं की सुरत को धारण कर जगत के अनुभव दिलाने के लिये उत्पन्न किया गया। यह जीव ही बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में कर्मफल भोगता रहता है। ब्रह्मात्माओं के संग से इसे भी अविनाशी मुक्तिधामों -- बहिश्तों में मुक्त सुख देने की व्यवस्था है। अखंडानन्द के चिन्मय अनुभव परात्म स्वरूप को ही होते हैं और वे क्रम से आत्मा, जीव, बुद्धि और मन तक आते-आते स्थूल होते जाते हैं। मन जब जिह्वा को उन्हें शब्द देने के लिये प्रेरित करता है तो वह वर्णन संसारी बनकर रह जाता है। शब्दों में मूल सुख या आनन्द की सही व्याख्या हो ही नहीं पाती—

किन माया पार न पाइया, किन कहयो न मूल वतन।
सरूप न कहयो काहूं ब्रह्म को, कहे उत चले न मन वचन।।
जो सुख पर आतम को, सो आतम न पोहोंचत।
जो अनुभव होत है आतमा, सो नाहीं जीव को इत।।
जो कछु सुख जीव को, सो बुध न अंतसकरण।
सुख अंतस्करण इन्द्रियन को, उतर पोहोंचावे मन।।
जो सुख मन में आवत, सो आवे न जुबां मों।
और जो सुख जुबां से निकसे, सो क्यों पोहोंचे परात्म को।।
तो कहया तीत शब्द से, जो कछु इतका पोहोंचत नाहें।
असत न मिले सत को, ऐसा लिख्या सास्त्रों माहें।।

किरंतन, ७३/६-१०

जो शब्द इल्हाम से आये और खुदा द्वारा कहलाये कहे जाते हैं वे भी संकेतमय और रहस्यपूर्ण होते हैं। उनके भी अभिप्रेत या बातिन अर्थ समझे बिना हक़ीक़त और मारिफत या आध्यात्मिकता में प्रवेश नहीं हो पाता—

जिन लिये मायने बातून, हुआ पैगम्बर सोय।
उमत औलिये अंबिये, बिन बातून न हुआ एक कोय।।

कयामतनामा, छोटा-१/६६

जाहेरी मायने लिये अंधेर। जाको लानत लिखी बेर-बेर।

ढाँपे कुरान की रोसनाई। अंदर सैताने एही सिखाई।।

कयामतनामा बड़ा-२/४

ये शब्दार्थ आध्यात्मिक संदेशों को पकड़ नहीं पाते इसलिये अर्थ का अनर्थ हो जाता है। मोमिन रूहें धर्मग्रंथों के वास्तविक अर्थ लेकर आत्माओं को वहदानियत या अद्वैत में प्रवेश दिलाती हैं जबकि माया या दज्जाल से प्रभावी लोग उन्हें फ़िरकों, दलों और सम्प्रदायों में बाँटते हैं। गूढ़ एवं अभिप्रेत अर्थ जान लेने से ही अपरोक्ष की बातें जानी और समझी जा सकती हैं।

सृष्टि रचना कैसे हुई ? इस विषय में भी कुछ विवाद दिखाई देते हैं। क़ुरान में कहा है कि खुदा ने 'कुंन' या 'हो जा' कहा और सृष्टि अस्तित्व में आई। सूर्य, चाँद, सितारों ने अपनी-अपनी जगह सँभाल ली। वेद के अनुसार 'ॐ' शब्द की टंकार या 'कंपन' से प्रकृति में हलचल हुई, तत्त्वों और गुणों का सम्मिश्रण हुआ और जगत का क्रम चल निकला। बाइबिल के अनुसार परमात्मा ने छः दिनों में दुनिया को बनाया। सातवें दिन उन्होंने विश्राम किया। महामति ने समन्वयात्मक दृष्टि से इन भिन्न प्रतीत होती घोषणाओं को समझने-परखने की दृष्टि दी। श्री प्राणनाथ प्रणीत 'खुलासा' के दोनामा प्रकरणों के अनुसार सृष्टि रचना के लिये परमात्मा को मात्र शब्द उच्चारण या 'हो जा' कह कर आदेश देना ही पर्याप्त है। सात दिनों की गणना को ब्रह्मात्माओं की जगत लीला के साथ जोड़ा गया है। पहले दिन ब्राह्मी आत्माओं या मोमिनों का ब्रजमंडल में आगमन हुआ उसे ही बाइबिल या क़ुरान में हूद पैग़म्बर के क़िस्से के साथ मिलाया जा सकता है। हूद तोफान ही इन्द्र कोप है जिसमें श्री कृष्ण ने अपनी आत्माओं को बचा लिया। नूह तोफान या महाप्रलय के समय श्री कृष्ण ने योगमाया से (नूह ने नाव में) अपने लोगों को बचाया। उनके पुत्र साम ने उन्हें सुन्दर बाग़ में पहुँचा दिया, जहाँ उन्हें अलौकिक आनन्द मिला। वही रास लीला का आनन्द है।

इसके बाद तीसरे दिन खुदाई आदेश ने कहीं मुहम्मद (साम) और कहीं कृष्ण बलराम (हाम) के रूप में भागवत गीता, बाइबिल या कुरान आदि ग्रंथों के द्वारा संसार को शराअ और कर्मकांड में बाँधा। लोगों को अन्तिम न्याय के दिन की प्रतीक्षा करने को कहा जब उन्हें जगत के सभी बन्धनों से मुक्त किया जायेगा। बुध जी-ईसा रूहअल्लाह के आगमन का चौथा दिन है जो श्री देवचन्द्र जी के आगमन की भविष्यवाणी है। पाँचवाँ दिन बुध निष्कलंक इमाम मेहदी के अवतरण का है जब संसार में एक धर्म का प्रचलन और अद्वैत ब्रह्म की पूजा कराई जायेगी। छठे दिन मोमिन आत्माएँ एकत्र हो जायेंगी। सातवाँ दिन परमधाम में लौटकर उनके विश्राम का होगा।

शास्त्रों में निष्कलंक बुधावतार का घोड़े पर सवार होकर प्रकट होने का संकेत है। महामति प्राणनाथ धर्म के अश्व पर सवार होकर सत्य ज्ञान की तेज़ तलवार से धर्म के नाम फैले पाखंडों और आडम्बरों को काट रहे हैं।

क़ुरान में लिखा है कि क़यामत के समय धरती से 'दाभ तल अर्ज़' प्रकट होगा जिसकी छाती शेर की, गर्दन मुर्ग की, पीठ गीदड़ की और मुँह इन्सान का होगा। महामति ने पशुवृत्ति वाले मानवों को ही ऐसे जीव बताया। कतेब ग्रंथों में लिखा है कि क़यामत के समय धरती में गाड़े गये मुर्दे उठेंगे और उनका न्याय होगा। महामति कहते हैं कि शरीर रूपी क़ब्र में मृतक के समान सोयी पड़ी आत्माओं का जागना ही क़ब्र से मुर्दों को उठना है। शैतान और दज्जाल को बड़ी धिक्कार दी जाती है। महामति कहते हैं

कि गुमराह, मायाप्रेरित और अवज्ञाकारी मन ही शैतान है जो इन्सान को भटका देता है। इसी से लड़ो, इसका संयम करो – कहीं बाहर से कोई तुमको परमात्मा से विमुख या काफ़िर नहीं बना देता। क़ुरानादि धर्म ग्रंथों के शब्दार्थ लेकर कुछ एक ऐसी मान्यताएँ शुरू हो गयी हैं—गूढ़ार्थ या अभिप्रेत अर्थ लेकर जिनको नया कल्याणकारी मोड़ दिया जा सकता है। वहाँ यह लिखा है कि औरतें (रूहें) बदनज़र और बदफैलों से पर्दे में रहती हैं और सारी मुस्लिम औरतों को बुर्कों में डाल दिया गया। जहाँ खुदा या मालिक के लिये बिकी (न्योच्छावर) रूहों से प्रेम करने का आदेश है, वहाँ दासियों से सम्बन्ध को जायज़ मान लिया गया। बकरे का बलिदान अहंकार की बलि है। गाय इन्द्रिय संयम या परमात्मा की ओर बलिदान होने के अर्थ में लिया जाय। खुदा को तो मांस और खून पसन्द नहीं लेकिन स्वयं का बलिदान देने के बदले हिन्दू-मुसलमान दोनों मूक पशुओं की बलि चढ़ाते हैं। जिह्वा रस और पेट भरने की क्रिया को इष्ट का वरदान बना लेते है। दूसरी तरफ सब जीवों में परमात्मा का अंश मान उनके जीवन की रक्षा और पालन का ध्यान छोड़ उनकी पूजा भी आरम्भ कर दी गयी। आशय यह कि धार्मिक घोषणाओं के गहरे अर्थ लेकर जीवन में उतारने के बदले हम दूसरों पर बाह्यार्थ थोपने का प्रयास करते हैं। आशय समझ लेने से परस्पर स्नेह और सद्भावना बढ़ सकती है। ज़ाहिरी मायनों के लिये कट्टरता परस्पर वैमनस्य बढ़ा रही है।

तारतम ज्ञान द्वारा महामति ने फ़रिश्तों-देवों, भविष्यवाणियों और घटित हो रही घटनाओं का ऐसा समन्वय किया है जिससे यह आभास मिलता है कि यह सब कुछ एक ही स्थान पर घटित और प्रकटित हुआ है। अलग-अलग स्थानों पर वहाँ के परिवेश या वातावरण के अनुकूल बनाने और अलग मनुष्यों द्वारा वर्णन किये जाने के कारण वे अलग दिखायी दे हैं। 'खुलासा' के 'दोनामा' प्रकरणों को आधार मानकर धर्म ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन विरोध और कलह को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

परमात्मा साकार है, निराकार है या उसका कोई नूरानी चिन्मय स्वरूप है— इस विषय में भी मतभेद दूर किया जा सकता है। पाँच तत्त्वों एवं तीन गुणों से निर्मित जगत और देवी-देवता साकार या आकारवान हैं किन्तु ये सारे आकार नश्वर हैं। परमात्मा जब माया से अपने स्वरूप को छिपा लेते हैं तो उस स्थिति का नाम निराकार या शून्य है। परमात्मा शुद्ध साकार चिन्मय स्वरूप हैं। स्वप्नवत् जगत में उनका आभास है। साकार या निराकार दोनों उनकी लीला या मायाजन्य रूप है।

वास्तव में, यह जगत सच्चिदानन्द ब्रह्म के सत् अंग अक्षर ब्रह्म की एक शक्ति मूल प्रकृति ने सत्-चिद्-आनन्द के विपरीत लक्षणों या अभाव से उत्पन्न असत्, जड़ता, मृत्यु, दुःख द्वैत का प्रकोप दिखाने के लिये बनाया है। इस क्षणभंगुर खेल में सच्ची आत्माएँ अपने अद्वैत स्वरूप और आनन्द भाव को भूल गयी हैं। नये दिखायी देनेवाले जगत् की मृगतृष्णा में भटककर सत्य, चेतना और आनन्द को ढूँढ़ रही हैं। बार-बार गुरुजनों, अवतारों, पैग़म्बरों द्वारा बोध दिये जाने पर भी इस माया का मोह छूट नहीं रहा। शास्त्रों ने मार्कण्डेय का दृष्टांत और 'गोबिन्द भेड़ा' नाम से इस जगत की व्याख्या की है। परमात्मा ने विनोद के लिये अपनी आत्माओं को यह खेल देखकर लौट आने का आदेश दिया था जबकि उनके आदेश की अवहेलना करके मानव ने विरोध, द्वैत भाव बढ़ाने को ही धर्म मान लिया है।

तारतम या तारतम्य खोज कर तादात्म्य बिठाने का प्रयास ही तारतम दृष्टि है।

'प्रणामी धर्म' की नींव ही तारतम मंत्र या तारतम ज्ञान पर आधारित है। निजानंद स्वामी को स्वयं श्री कृष्ण ने 'निजनाम' सुनाया और उसे उन्होंने तारतम मंत्र की संज्ञा दी। वही मंत्र महामति प्राणनाथजी को प्राप्त हुआ तो उन्होंने उसे छः चौपाइयों में, और बाद में, लगभग उन्नीस हज़ार चौपाइयों में विकसित किया। सम्पूर्ण कुलजम स्वरूप तारतमावेश में उन्हीं छः चौपाइयों का विवेचनात्मक विस्तार है, जिसे 'तारतम सागर' भी कहा जाता है।

महामति प्राणनाथ की वाणी में तारतम शब्द गहन अर्थ लिए हुए है। वाणी के अन्य अनेक पारिभाषिक शब्दों की भाँति तारतम को उसके मूल तथा अभिप्रेत अर्थ में समझ लेना अति आवश्यक है। सुधी विद्वान इस शब्द का प्रायः यह अर्थ बताते हैं कि अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जानेवाला अथवा भवसागर से तारनेवाला तारक मंत्र—तारतम है। शास्त्र ग्रंथ, श्रीमद्भागवत में न्यूनाधिक, सामान्य एवं असाधारण, निकृष्ट और उत्तम में समभाव से (सत्तारूप में) विराजमान और इनसे अन्य भी ब्रह्म उल्लेखित हैं। महामति तारतम से रूप का बोध करा देते हैं। उनके आभास, लीला एवं मूल चिन्मय स्वरूप में उनकी सत्ता के द्वारा तारतम्य दिखाते हैं। तारतम की महिमा वर्णन में वह कहते हैं—

बोहोत धन ल्याये धनी धाम से, बिध बिध के परकार।
सो ए मैं सब में तोलिया, तारतम सबमें सार।।
तारतम को बल कोई न जाने, एक जाने मूल सरूप।
मूल सरूप के चित की बातें, तारतम में कई रूप।।

कलश, २३/५४, ५६

तारतम की महिमा का क्या बखान करें ? इसके द्वारा प्राप्त सूक्ष्म दृष्टि से जंगत् के विविध रूपों, संसार में प्रचलित सभी धर्मों—यहाँ तक कि अक्षरातीत ब्रह्म के मन के भेद जान लेने की क्षमता मिल गई।

जिस दिन निजानंद स्वामी को तारतम मंत्र द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई, उसी दिन परमधाम की विलक्षण प्रतिभावान आत्मा श्री इन्द्रावती का श्री मेहराज ठाकुर रूप में अवतरण हुआ। उनसे प्राप्त निधि का विस्तार एवं प्रचार करके सम्पूर्ण जगत् को उससे लाभान्वित कराने का दायित्व मेहराज ठाकुर ने सँभाला—

साक्षात स्वरूप इन्द्रावती, तारतम को अवतार।
वासना होसी सो बलगसी, इन वचन के विचार।

कलश, २३/५६

तारतम की प्रज्ज्वलित मशाल हाथ में लेकर महामति ने समस्त संसार से अज्ञानांधकार मिटा देने का व्रत लिया। मोहिनी माया, ऐन्द्रजालिक जगत् ने आत्माओं को इतना सम्मोहित कर लिया है कि वे अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को ही भूल गईं। ऐसे में परब्रह्म के स्वरूप, लीला एवं सत्ता का बोध उनमें कैसे रह पाता ? परिणामस्वरूप रज्जू में सर्प की भाँति माया जन्य, स्वप्नवत् क्षणभंगुर विश्व ही उन्हें सब कुछ प्रतीत होने लगा। अखंड अविनाशी परमधाम एक सुखद कल्पना मात्र बनकर रह गया। निरंतर दुःखों में सुखाभास से मिलनेवाला रस स्थायी हो जाये—इसी प्रयत्न में उनके विचार ढलने लगे। उनके क्रिया-कलापों में इसी विश्व में सदैव रहने के उपक्रम रहने लगे। नित्य बदलते, मरते-खपते विश्व के प्राणियों को देखकर भी अपने जीवन की क्षणभंगुरता पर

किसी को विश्वास नहीं होता। महामति की तारतम दृष्टि से क्षणभंगुर अस्थायी जगत् के पार अक्षर ब्रह्म की अविनाशी सत्ता का बोध होता है। साधारणतया लोग क्षर ब्रह्मांड के देवों को ही परम ईश्वर मानकर उनकी उपासना करते हैं तथा उनसे क्षणभंगुर सुखैश्वर्यों की याचना करते हैं। तारतम दृष्टि से अक्षरब्रह्म के प्रेरणास्रोत अक्षरातीत ब्रह्म के परमधाम पर दृढ़ निश्चय एवं विश्वास जाग्रत होता है। तारतम के आलोक में ब्रह्मात्माओं ने माया के आवरण को, भ्रम की केंचुली को छोड़कर, स्वयं को अपने शुद्ध बुद्ध चिन्मय परात्म स्वरूप में देखा। माया का सम्मोहन टूट गया। परमेश्वर के प्रति प्रेम जाग्रत हुआ। यही नहीं ; जगत् जीवों को भी तारतम दृष्टि प्रदान करने में महामति कृपण नहीं रह पाये—

संसार सारे के अंग में, मेरी बुध को करूँ प्रवेस।
असत सब होसी सत, मेरे नूर के आवेस।।

कलश, १३/८३

तारतम दृष्टि से प्राप्त विवेक समस्त संसार में फैलेगा तभी तो लोगों के मन से घृणा, वैमनस्य, द्वेष, अहिंसा आदि की भावनाएँ दूर होंगी। तारतम क्षीर-नीर, सत्य-असत्य, ब्रह्म एवं माया के अन्तर को स्पष्ट कर देगा। मानव सत्य को परखकर ग्रहण कर लेगा, असत्य का परित्याग करना सहज हो जाएगा। तब वह धर्म के नाम पर फैली रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों एवं अनावश्यक कर्मकांडों से मुक्त—धर्म के ऐसे स्वरूप को धारण करेगा, जो सबका एक है। सब धर्मों में, उसके बाह्य अंगों में तालमेल बिठाने के असफल प्रयास से मानव हतप्रभ हो उठा है। धर्म का वास्तविक रूप उसके सामने आता है तो वह बरबस यह कह उठता है—"वास्तव में यही तो मेरे धर्म का शुद्ध स्वरूप है।" तारतम दृष्टि से सभी धर्मों के मर्म तक पहुँचकर पाया जाता है कि धर्म तो एक ही है—टुकड़े जोड़कर कोई धर्म बनाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज तक अनेक देशों में, अनेक भाषाओं में, अनेक युगों में जिस तत्त्व ज्ञान को बार-बार दोहराया गया। तारतम दृष्टि के अभाव में वह अनेक धर्मों का जन्मदाता बन गया। विविधता का आनन्द देने के लिए स्वयं परमात्मा की आज्ञा से ही यह सब हुआ। अब उनकी आज्ञा से ही महामति तारतम दृष्टि प्रदान कर सबको मिला रहे हैं—

एते दिन इन हुकमे, जुदे जुदे खेलाय।
अब ए हुक्म इमाम का, लेत सबों मिलाय।।

सनंध, ३/७

तारतम के प्रकाश में दुई और द्वैत का भ्रम मिट जाएगा। समस्त जगत् के प्राणी अद्वैत ब्रह्म के अद्वैत बोध से अद्वैतानन्द का अनुभव करेंगे। महामति ने इस बात को भी स्पष्ट किया कि तारतम दृष्टि किस प्रकार कार्य सम्पन्न करती है। तारतम प्राप्त होने से क्या होता है ?

तारतम जोत उद्योत है, तिनसे कहा होय।
एक सुपन दूजा वतन, जीव देखे दोय।।

प्रकाश, ३१/१२८

तारतम के उजाले कर, रोसन कियो इन सूल जी।
कै कोट ब्रह्मांड देखाई माया, पाया अंकूर पेड़ मूलजी।।

प्रकाश, ३०/३५

अर्जुन को भगवान श्री कृष्ण ने दिव्य दृष्टि प्रदान करके विराट विश्व रूप दिखाया तथा उसमें स्वयं अर्जुन की क्षुद्र सत्ता का बोध करा दिया। तारतम दृष्टि उससे आगे बढ़कर अनन्त ब्रह्मांडों की क्षणभंगुरता एवं अल्पता का बोध देकर अविनाशी अखंड ब्रह्मांड की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। माया, नींद, स्वप्न, जगत, ब्रह्मांड, शून्य, निराकार,—निरंजन इन सबका अस्तित्व, आत्मा—निद्रा की ही अवस्था में अनुभव करती और देखती है। सम्मोहन के हटते ही मूल परमधाम का चिन्मय स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। स्वप्न जगत् में विचरण करती सुरत परब्रह्म धाम में लौट जाती है।

विश्व के क्षणभंगुर रूप की असारता एवं जगत् सम्बन्धों की व्यर्थता का बोध हो जाने पर भी मानव मन का लगाव कम नहीं होता। जीव चिटका एवं असहाय बना रह जाता है। तारतम बार-बार उसका ध्यान परमानन्द की ओर आकृष्ट करता है। मूल घर की स्मृति दिला कर उस तक पहुँचा देने का आश्वासन देता है। माया की सम्मोहन शक्ति एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों का बल आँककर ही महामति तारतम का संबल प्रदान करते हैं—

जो जीव नींद छोड़े नहीं, पिलाइये बानी।
ल्याये धनी धाम से, माया बल जानी।।
मोह जेहेर ऐसा जान के, ल्याए तारतम।
सब बिध का ए ओषद, प्रकासे खसम।।

प्रकाश हिन्दु., ३१/१३८, १६०

सभी प्रकार के मानसिक क्लेशों, आध्यात्मिक वंचनाओं एवं शारीरिक बंधनों के विष को दूर करनेवाली औषधि तारतम का ज्ञानामृत है। इसी संसार में बैठे अखंड परमधाम के आनन्द का अनुभव इसी तारतम दृष्टि से सम्भव है—

याद आवे सारे सुख, जीव नैनो भी देखें।
तारतम सब सुख देवहीं, बिध बिध अलेखे।।
तारतम रस बेहद का, सब जाहेर किया।
बोहोत बिधे सुखसाथ को, खेल देखते दिया।।

प्रकाश, ३१/१३०, १३६

तारतम ज्ञान—बेहदी समाचार, अखंड परमधाम का ज्ञान है। माया के विकल्प एवं बहुरंगी बाह्य चेष्टाएँ इसका स्वरूप बिगाड़ नहीं सकतीं। इसमें इतनी क्षमता है कि धर्म एवं धर्म ग्रंथों के चारों ओर फैले धुँधलके को साफ़ करके उनमें निहित ज्ञान एवं सत्य संकेतों को स्पष्ट कर दे। प्रत्येक मतावलम्बी यह कहता है—"हमारा धर्म सच्चे से सच्चा, ऊँचे से ऊँचा और अच्छे से अच्छा है।" इन सबमें से हमारा शब्द बाहर निकाल दें तो धर्म की सबसे अच्छी, सच्ची और ऊँची परिभाषा मिल जाती हैं। उस धर्म की जो सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च और सबके लिए एक है और सहज प्राप्य है।

तारतम, तह तक उतरने का दृष्टिकोण प्रदान करता है। धर्म ग्रंथों में भी इतिहास के समान कथानक दिखाई देते है। लोग उन्हें भी बीती हुई घटनाएँ, भूतकाल में हुए कुछ लोगों की जीवनियाँ मान लेते हैं। तारतम दृष्टि से इतिहास एवं धर्म ग्रंथों के कथानकों में भेद जाना जाता है। वह कहानियाँ, जिन्हें आत्मा परमात्मा के सम्बन्धों, सृष्टि रचना, संसार में आत्माओं के अवतरण एवं परमधाम लौट जाने के संकेत मिलते हैं, वे सब धर्म गाथाएँ हैं। शेष इतिहास ग्रंथ हैं। श्रीमद्भागवत्, कुरान, बाइबिल यहाँ तब कि

रामायण एवं महाभारत में आयी गाथाओं को इस तुला पर तोला जा सकता है। तारतम दृष्टि से महाभारत अच्छे एवं बुरे लोगों के बीच मात्र एक युद्ध ही नहीं। ऐसा होता तो वह एक इतिहास ग्रंथ की तरह पढ़ा जा सकता था। महाभारत तो पिंड ब्रह्मांड में निरंतर चल रहा है। अच्छे लोगों की संख्या कम एवं सद्‌गुणी इने-गिने हैं, वे जब श्री कृष्ण परमात्मा का संबल पा लेते हैं तो असंख्य दुर्जेय कौरवों पर उनकी विजय होती है। रामायण एक आदर्श राजा राम की कहानी भी है—विष्णु भगवान के चौदह कला स्वरूप की लीला भी। तारतम दृष्टि इसमें एक और रहस्य खोजती है। आत्मा की प्रतीक सीता, माया, कलियुग या दज्जाल स्वरूप रावण के चंगुल में हैं, स्वयं ब्रह्म—मन गुण अंग इन्द्रियों की वानर सेना को संबल प्रदान कर सीता को मुक्त कराते हैं और परमधाम ले आते हैं। बाइबिल एवं क़ुरान के सारे पात्र आत्मा को पुनः धाम लीला में पहुँचाने वाले सहायक पात्र बनते हैं। तारतम दृष्टि थोथे जड़ कर्मकांड में प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे सार्थक बना देती है। तब फिर गाय की क़ुर्बानी अपनी इन्द्रियों को परमात्मा की राह में बलिदान करना बन जाता है। अहंकार रूप बकरे को बलिदान करने से ही 'मैं पन' का संहार होता है। दिनचर्या 'जेहाद' बनती है तो सभी अंग तिल-तिल तड़पकर प्रियतम की राह में क़ुर्बान होते दिखाई देते हैं। तब दज्जाल को कहीं बाहर ढूँढ़कर मारने जाना नहीं पड़ता। अपने मन के आसन से उठा देने भर से उसकी मृत्यु हो जाती है। 'काफ़िर' कोई और नहीं, अपना ही मन है, जो परमात्मा की ओर उन्मुख होने से बचने के लिए कारण ढूँढ़ता है और दूसरों को दोषी ठहराया करता है।

तारतम की सूझ बता देती है कि किसी भी जाति या समाज के लोगों को एक साथ नकारा या स्वीकारा नहीं जा सकता। प्रायः हिन्दू स्वयं को सुर बताते हैं दूसरों को असुर समझने लगते हैं या जन्म से जाति-पाँति पर विश्वास करते हैं। उधर मुसलमान अन्य सबको काफ़िर मानते हैं। चाहे वह व्यक्ति कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो! "ईसाई ही अन्तिम न्याय के दिन चुने जायेंगे—" ऐसा मत ईसाई भाइयों का है। तारतम दृष्टि पवित्र हिन्दू, पाक मुसलमान या सच्चे ईसाई की पहचान करा देती है। सच्चा धर्म-निष्ठ 'सभी धर्मों' की कसौटी पर खरा उतरता है। इसलिये तारतम दृष्टि—तीन वर्गों में मानव को बाँट देती हैं—सर्वश्रेष्ठ वे लोग हैं, जो परमात्मा से प्रेम करते हैं और उसके अतिरिक्त किसी वस्तु की चाह नहीं करते। उनके गुण अंग इन्द्रिय सहज ही प्रभु की ओर उन्मुख रहते हैं। सामने आये कार्य को सहज करते हुए वे निष्काम कर्मी शरीर छोड़ देने पर प्रियतम परमात्मा के धाम में पहुँच जाते हैं। दूसरे वे लोग हैं, जो साधनाओं और तपस्या से आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते हैं। तीसरी तरह के लोग साधारण जीवन जीते हैं और अच्छे बुरे कर्मों के फलस्वरूप देव लोकों या नरक योनियों में जन्मते-मरते रहते हैं।

इस तरह, तारतम दृष्टि सूक्ष्मतिसूक्ष्म विवेक प्रदान करके एक परमात्मा, एक धर्म और एक मानवता का बोध देती है, जिसमें अन्तर जन्म के कारण नहीं—गुण कर्म के अनुसार है। इससे सभी धर्म-ग्रंथ—प्रियतम परमात्मा का संदेश देने के कारण और प्रिय लगने लगते हैं। जहाँ अपनापन देखने की इच्छा हो वहाँ कोई-न-कोई बात अपने जैसी मिल ही जाती है अन्यथा प्रचारक लोग 'विरोधाभास' को तूल देकर वितंडावाद फैलाया करते हैं। धर्म के कल्याणकारी रूप को छोड़कर हम बाह्य आचार-संहिता एवं कर्मकाण्ड को अधिक बढ़ावा देते हैं। धर्म की जो विधियाँ आत्मा को निर्मल बनाकर उसकी मंज़िल तक पहुँचाने की सामर्थ्य रखती हैं, वही दैहिक क्रियाएँ एवं रूढ़ियाँ बनकर उसकी राह

में विघ्न बनती हैं।

तारतम दृष्टि बाह्य कर्मकांड, दिखावे तथा आडम्बर से हटाकर अन्तर्मन तक झाँक लेती है, जिससे अन्तर के विकार स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनका निराकरण करने का उपाय हो जाता है। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि दिखावा, मान, यश सम्पदा सब माया के भुलावे हैं, जिनके लिये, पूजा-पाठ, यज्ञ, तप करने की आवश्यकता नहीं। बुद्धि और कौशल से ही इनकी प्राप्ति हो जाती है। पाठ एवं नाम-स्मरण पूजा से मन पवित्र और आत्मा जाग्रत हो सकती है। हम कौड़ियाँ बटोरने में लगे थे—तारतम-दृष्टि हीरों के भंडार में पहुँचा देती है।

जीवात्माओं को जाग्रत करके उन्हें अखंड सुखों का अनुभव कराने के लिये महामति आग्रहपूर्वक तारतम रसामृत का पान कराते हैं—

तारतम रस वानी कर, पिलाइये जाको।
जेहेर चढ़या होय जिमी का, सुख होय ताको।।
ए रस श्रवनों जाके झरे, ताको कहा करे जेहेर।
सुपन न होवे जागते, देखी तां बेर।।
एही रस तारतम का, चढ़या जेहेर उतारे।
निरविषी काया करे, जीव जागे करारे।।

प्रकाश हि०, ३१/१३७, १४०-१४२

मन, प्राण और काया में यह कौन-सा विष है, जिसने समूची मानवता के सम्बन्धों को विषाक्त बना दिया है ? अपने-अपने साम्प्रदायिक घेरे में बँध-कर, धर्म के एकांगी रूप के कूप में बैठकर मानव ने सागर की गहराइयों का आनन्द खो दिया है। मन के परिवर्तन के बिना नाम या धर्म परिवर्तन उपहास बनकर रह जाता है :—

एक खाई ग्रहतें काढ़ के, ले डारे दूजी खाड।
जबेह करे जोरावरी, कहें हमें होत सवाब।।

सनंध, प्र० ४०/६

धर्म के लक्षण—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, क्षमा आदि को भुलाकर, इनकी अवहेलना करके रक्तपात एवं निर्दोषों का संहार सिखानेवाला धर्म ईश्वरीय कैसे हो सकता है ? तारतम दृष्टि धर्म परिवर्तन की नहीं, धर्म में गहरे पैठने का आग्रह करती है। शब्दों के मर्म को समझने की शक्ति प्रदान कर मानव के सुप्त विवेक को जगाती है और मन को पवित्र कर प्रभु मन्दिर बना देती है। आत्मा के सम्मुख प्रबल माया की शक्ति भी नगण्य है। किन्तु सम्मोहित आत्मा, माया के वशीभूत हो जाती है। तारतम दृष्टि उसमें सोयी शक्ति को जगा देती है। माया का बल क्षीण हो जाता है :—

कुंजर काढूँ चींटी मुख, सुध आनू सरीर।
तारतम कहे जुदे जुदे, करूँ खीर और नीर।।

किरंतन, ३१/१५८

तारतम वाणी बलदायिनी, जीवनदायिनी संजीवनी है। इसके रसपान से जन्मजात ही नहीं, जन्म-जन्मान्तर के कलुष धुल जाते हैं।

सुख बड़े तारतम के, क्यों जाहिर कीजे।
बानी मायने देख के, जीव जगाय लीजे।।

किरंतन, ३६/१५४

महामति कहते हैं, निजानन्द स्वामी ने मुझ अकेले को जाग्रत किया। अब मैं असंख्य आत्माओं के समूहों को जगा देना चाहता हूँ ताकि जिस अखंडानन्द का प्रसाद मुझे मिला है, उसे सबमें वितरित कर दूँ, खारे भवजल को मधुमय बना दूँ:

पिऊ जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ए सारी जिमी खारी, सो कर देऊं सत सुख।।

कलश, २३/४४

—यह सब करने के लिए कहीं जाने या बाहर कहीं से उपकरण जुटाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे अपने गुण अंग इन्द्रिय एवं सुप्त शक्तियाँ ही जागकर, तुम्हें बेहद पार के अखंड अनंत सुख दिलाने में समर्थ हो जायेंगी—

गुण पख इन्द्री उलटे, करत है सब जोर।
सो सब टेढ़े टाल के, कर देऊं सीधे दोर।।
चोर फेर करूँ बोलावे, सुख सीतल करूँ संसार।
अंग में सबे आनन्द, होसी हरख अपार।।
असत सों उलटाय के, सत सों कराऊँ संग।
पर आतम सों बंध बाँधू, ज्यों होय न बीच में भंग।।

कलश, २१/२४, २३ ; २३/४३

इसके लिये एक ही शर्त है, क्षणिक सुखों एवं प्रलोभनों का मोह त्याग देना पड़ेगा। बर्तन ख़ाली करके शुद्ध किये बिना उसमें अमृत कैसे भरा जाये—

लगोगे जो दुख को, तो दुख तुमको लागसी।
याद करो निज सुख, तो दुख पीछे भागसी।।

कलश, प्र० २३/२६

अब तारूँ तुम्हें या बिध, ज्यों लेहेर न लगे लगार।
सुखपाल में बैठाये सुखें, घर पाहोंचाऊँ निरधार।।

कलश, प्र० २३/२५

महामति कष्टकर साधनाओं के पक्षपाती कभी नहीं रहे। तपस्या और कठोर साधनाओं से जो मन वश में नहीं आता, वह विवेक, प्रेम और शरणागति से पालतू पशु की तरह दुबक कर बैठ जाता है। वह तो सबको जगाकर अपने समान हक़ दिलाना चाहते हैं, सच्चे साथियों की तरह। उनकी जागनी ब्रह्मांड की जागनी है। उनकी मुक्ति—समूह मुक्ति है। वह सुन्दर साथ को जगाने में व्यस्त रहे और प्रियतम से एकान्त संयोग सुख से वंचित रह गये—

सब साथ करूँ आपसा, तो मैं जागी परवान।
अखंड सुख देऊँ धाम के, मिलाये मूल निसान।।

कलश, प्र० २३/४५

निजानन्द स्वामी ने यही स्वप्न देखा था, जो महामति ने साकार कर दिखाया। प्रियतम ने तारतम की ऐसी युक्ति बता दी, जिससे सबकी मनोकामनाएँ पूरी हो गयीं—

साथ के सुख कारने, इन्दावती को मैं कह्या।
ताथे मुख श्री इन्द्रावती के, कलश सबन का भया।।

कलश, प्र० २४/४७

महामति का दर्शन जगत को ब्रह्म की कल्पना या इच्छा पर आधारित एक नाटक,

लीला स्वप्न या खेल स्वीकार करता है। इसका अस्तित्व तब तक रहता है, जब तक उसकी आवश्यकता रहती है। इसके असंख्य देवों का केन्द्र या सूत्र नारायण ब्रह्म है, जो सुरत या जीव रूप से जगत् के कण-कण में व्याप्त है। अक्षर ब्रह्म की सुरत स्वरूप ईश्वरीय सृष्टि है। ब्रह्मात्माओं की सुरत ब्रह्म सृष्टि है। तीनों इस लीला के पात्र, नियामक एवं दर्शक के रूप में विराजमान हैं। परमात्मा सर्वोपरि सत्ता है, वही सबका प्रेरक संचालक एवं संवरण करनेवाला है। मृत्यु के समय पाँच भौतिक शरीर मरता है। सूक्ष्म जीव कर्मफल भोगने के लिए अनेक योनियों में भटकता है अथवा श्रेष्ठ आचरण, निष्काम कर्म एवं प्रेमलक्षणा भक्ति को प्राप्त कर मुक्त होता है। ईश्वरीय और ब्रह्म सृष्टि जगत लीला से संतुष्ट होकर अपने धाम में जाग्रत होती है।

इतहीं बैठे घर जागे धाम। पूर्ण मनोरथ हुए सब काम।।
उड़यो अज्ञान सबों खुली नज़र। उठ बैठे सब घर के घर।।
प्रकाश हि., प्र. ३३/३३

दुख सब सुपनो हो गयो, अखंड सुख भोर भयो।
महामत खेले अपने लाल सों, जो अक्षरातीत कह्यो।।
किरंतन, १७/१२

जब तक हम जगत में हैं तब तक द्वैत और द्वेषभाव को भूलकर सभी पैग़म्बरों, संतजनों और अवतारी पुरुषों की वाणियों में अपने प्रियतम परमात्मा के संदेशों को खोजने और प्राप्त करने में संलग्न रहें। परमात्मा ने धर्म-शास्त्रों के माध्यम से जिस ईश्वरीय राज्य को जगत् में स्थापित करने की घोषणा की, उसका आधार प्रेम, सत्य, सेवा और अहिंसा ही हो सकते हैं और हो सकती है— तारतम दृष्टि जिसमें सबके बीच तादात्म्य बिठाने की शक्ति है।



लालदास बीतक में
महामति प्राणनाथ का जीवन वृत्त

प्रो. माताबदल जायसवाल
२५, बी. सी. वाई चिंतामणि रोड
इलाहाबाद

स्वामी लाल दास कृत बीतक[१] का सम्बन्ध श्री प्राणनाथ द्वारा प्रवर्तित तथा प्रचारित प्रणामी धर्म और प्रणामी साहित्य[२] से है। भारतीय इतिहास के मध्ययुग में श्री प्राणनाथ ने हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक धार्मिक विद्वेष को शान्त करने का सन्देश दिया उन्होंने "हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ वेद-उपनिषद्, गीता-भागवत; मुसलमानों के धर्मग्रन्थ क़ुरान, ईसाइयों के इंजील, यहूदियों के जंबूर तथा दाउद पैगम्बर के अनुयायियों के धर्मग्रन्थ तौरेत में मौलिक एकता खोजने का प्रयत्न किया।'[३] प्रणांमियों के उपास्य ग्रन्थ 'कुलजम स्वरूप' में संग्रहीत १८, ७५८ चौपाइयों के प्रणेता, सत्रहवीं शती ई० में सर्व-धर्म-समन्वय के स्वप्न द्रष्टा तथा छत्रसाल के प्रेरणा स्रोत महामति प्राणनाथ के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भारतीय इतिहास तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक अब तक मौन रहे हैं।

मध्यकाल में प्राणनाथ के सम्बन्ध में कुछ कहने का प्रथम श्रेय छत्रसाल के दरबारी कवि श्री गोरेलाल को है। इस कवि ने 'छत्रप्रकाश' के अंतिम दो अध्यायों में श्री प्राणनाथ द्वारा छत्रसाल को उपदेश दिलवाया है। ('छत्रप्रकाश'[४] के सम्पादक स्वर्गीय श्यामसुन्दर दास के अनुसार इस ग्रंथ की प्राप्त प्रति अपूर्ण-सी है। संभव है, पूर्ण प्रति में प्राणनाथ के संबंध में कुछ और अध्याय भी रहे हों।) आधुनिक युग में एफ. एस. ग्राउज़ ने १८७९ ई० में प्रकाशित अपने एक लेख[५]—'ए सेक्ट आव द प्राणनाथीज़—में प्राणनाथ के 'व्यापक प्रगतिशील उदारवादी दृष्टिकोण' तथा 'शुद्ध हिन्दी वाक्य रचना में फ़ारसी- अरबी शब्दों के प्रयोग की विशेषता की ओर संकेत करते हुए 'छत्रसाल के विशेष संरक्षण में रहनेवाले

---

१. 'बीतक' शब्द वृत्त या वृत्तान्त के अर्थ में हल्लार जनपद में आज भी प्रयुक्त होता है। यद्यपि हिन्दी कोष में यह शब्द नहीं मिलता।
२. दे० लेखक का 'प्रणामी साहित्य' नामक निबन्ध, साहित्य सम्मेलन पत्रिका, भाग ४१, संख्या १, सं० २०११
३. वही, पृ० ३
४. गोरेलाल, छत्रप्रकाशः २३वाँ, २५ वाँ अध्याय तथा संपादक द्वारा प्राणनाथ पर संक्षिप्त टिप्पणी।
५. एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, सन् १८७९, भाग १, पृ० १७१।

इस 'क्षत्रिय कवि' का आविर्भाव, काल अठारहवीं शती ई० बताया है। मथुरा के एक प्रणामी करकदास द्वारा प्राणनाथ की एक रचना 'कयामतनामा' आपको प्राप्त हुई थी। केवल उसी ग्रंथ का परिचय होने के कारण ग्राउज़ के लेख में प्राणनाथ के १४ ग्रंथों का नाम भी कुछ अशुद्ध है और उनका आविर्भाव काल भी।

इसी प्रकार 'कैम्ब्रिज़ हिस्ट्री आव इंडिया' में इतिहासकार ने शाहजहाँ काल के 'वर्नाक्यूलर' साहित्यकारों में सुन्दरदास (ग्वालियर), चिन्तामणि (कानपुर), देवदत्त (मैनपुरी) आदि ब्राह्मण कवियों के साथ कुछ पंक्तियों में प्राणनाथी संप्रदाय के प्रवर्त्तक प्राणनाथ का उल्लेख मात्र[६] है। किन्तु इतिहासकार का सूचना-स्रोत मौलिक न होकर संभवतः ग्राउज़ के लेख पर ही आधारित है, अतएव श्री प्राणनाथ के जीवन-वृत्त की जानकारी नहीं के बराबर होती है। औरंगज़ेब युग के इतिहास लेखक श्री यदुनाथ सरकार भी 'छत्र-प्रकाश' की सामग्री का उपयोग करने पर प्राणनाथ के संबंध में मौन रह जाते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में मिश्रबंधु,[७] डा. हीरालाल[८] डा. श्यामसुन्दर, डा. बडथ्वाल[९] डा. रामकुमार वर्मा[१०] तथा श्री परशुराम चतुर्वेदी[११] ने श्री प्राणनाथ तथा प्रणामी संप्रदाय का उल्लेख किया है। किन्तु मौलिक सामग्री का उपयोग न करने के कारण जो कुछ भी सामग्री उन के जीवनवृत्त तथा प्रणामी धर्म के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गई है वह अत्यल्प है।

यद्यपि जीवन वृत्त तथा प्रणामी धर्म के संबंध में अन्य स्रोत मौन से हैं, किन्तु स्वयं प्रणामी सम्प्रदाय इस संबंध में पूर्णरूप से मुखरित है। इस सम्प्रदाय में श्री प्राणनाथ के जीवन वृत्त लिखने की एक परम्परा-सी दिखाई पड़ती है—जिसे सम्प्रदाय का बीतक साहित्य कहा जा सकता है। सम्प्रदाय में लगभग ७ बीतकें मानी जाती हैं, किन्तु उनमें से निम्नलिखित प्रचलित हैं—(१) स्वामी लालदास कृत बीतक (२) ब्रजभूषण कृत बीतक या 'वृत्तांत मुक्तावली' (कानपुर निवासी काव्यतीर्थ पंडित कृष्णदत्त शर्मा व्याकरण शास्त्री साहित्य-आयुर्वेद-आचार्य द्वारा सम्पादित तथा श्री प्रणामी धर्म सभा, नौतनपुरी, जामनगर द्वारा दो बार प्रकाशित (३) मुकुन्द स्वामी या नौरंग स्वामी कृत बीतक, नेपाल निवासी ब्रह्मचारी मोहन मकुन्द जी द्वारा संपादित राज शिरोमणि दास द्वारा प्रकाशित, (४) हंसराज स्वामी कृत बीतंक मेहेराज चरित्र। (बिहाली दलेनी निवासी शास्त्री देवकृष्ण शर्मा द्वारा संपादित श्री नौतनपुरी धाम जामनगर द्वारा प्रकाशित वि० २०२२) (५) स्वामी लल्लू महाराज कृत बीतक प्रकाशित गुजराती में। (६) जयरामदास जी कृत बीतक प्रकाशित और (७) बहुरंग स्वामी कृत बीतक (हस्तलिखित)। उपर्युक्त बीतकों में स्वामी लालदास कृत बीतक सर्वाधिक प्राचीन, पूज्य, व्यापक और अधिक विश्वसनीय है।

---

6. Prannath a Chatri of Panna in Bundelkhand wrote a number of poems which attempt to reconcile Hinduism and Islam. Their Language itself being marked by a grammatical basis with a vocabulary of Persian and Arbic words. Ref. Cambridge History of India', vol. IV 1937 p. 221.
७. मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, पृ०।
८. ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट १६-२४, २६, संवत् १९९३।
९. छत्र प्रकाश, २३ वाँ अध्याय फुटनोट, ना० प्र० पत्रिका, पृ० ११३ भाग १
१०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २७८-७९।
११. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५२७, ५३७।

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता स्वामी लालदास[१२] पोरबंदर[१३] (सुदामापुरी—महात्मा गाँधी की जन्मभूमि) काठियावाड़ के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। पोरबंदर में महात्मा गाँधी तथा कस्तूरबा के घर (जिसे आजकल पोरबंदर में कीर्तिभवन कहते हैं) से मिला हुआ प्रणामी मंदिर हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर ही लालदास जी का पुराना घर है। पोरबंदर प्रणामी मन्दिर के मंत्री प्रतिष्ठित व्यो-वृद्ध श्री प्रभुदास जी भाई (वकील) ने एक मुलाकात में और पत्र में लिखा था कि गाँधी जी की भतीजी आज भी उसी परंपरानुसार प्रणामी संप्रदाय में दीक्षित हैं।

महात्मा गाँधी के परिवार द्वारा प्रदत्त एक मक़ान मन्दिर की वृत्ति के लिये आज भी लगा हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि महात्मा गाँधी के परिवार का प्रणामी धर्म से घनिष्टतर संबंध था। कहा जाता है बाल्यावस्था में प्रायः महात्मा गाँधी इसी प्रणामी मन्दिर में खेलने आया करते थे। खुद महात्मा गाँधी की माँ प्रणामी संप्रदाय को मानती थी। हावर्ड यूनीवर्सिटी अमेरिका के एक विद्वान प्रोफ़ेसर स्टीफ़ेन ने एक पत्र के जरिए मुझसे इस बात का जिक्र करते हुए, तथ्य का समर्थन इस प्रकार किया है—

"महात्मा गाँधी की माँ का जन्म दात्राणा (गुजरात) ग्राम के एक प्रणामी परिवार में हुआ था। मुझे यह अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि यदि हमें महात्मा गाँधी के धार्मिक विचारों से अवगत होना है तो हमें महात्मा गाँधी की माँ के धार्मिक विचारों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।"

ठट्ठानगर में लालदास जी का वृहत व्यापार था। आपके पास निन्यानवे व्यापार जल पोत थे। व्यापारियों में आप लक्ष्मण सेठ के नाम से प्रख्यात थे। धर्मप्रिय होने के कारण गीता-भागवतादि शास्त्रों में विशेष रुचि थी। धर्मप्रचार करते हुए जिस समय श्री प्राणनाथ जी ठट्ठानगर पधारे उस समय चतुरा नामक एक द्विज के द्वारा लालदास (पं. लक्ष्मणदास) ने प्राणनाथ के दर्शन की प्रार्थना की, जिसका उल्लेख स्वयं लाल दास ने अपने बीतक में किया है—

चतुरें आए अरज करी, लाल चाहे करें दीदार।।
लक्षमन उनका नाम है, है तालिब धनी निरधार।।

लालदास, बीतक २३/४

वहीं श्री प्राणनाथ द्वारा 'तारतममंत्र'[१४] की दीक्षा लेकर लालदास पोरबंदर में धर्म

---

१२. प्रणामी संप्रदाय के ब्रह्मचारी मंगलदास शर्मा ने (वर्तमान मंगलपुरी के आचार्य) लालदास का संक्षिप्त जीवनवृत्त भी दिया गया है।

१३. लालदास (लक्ष्मण) की जन्मभूमि होने के कारण श्री प्राणनाथ जी इस स्थान को लक्ष्मणपुरी कहा करते थे—बीतक में इस नाम का भी उल्लेख है *Gandhi's mother come from a Pranami family in the village of Datrana. Now it seems to me important to understand Gandhi's mother's religious ideas if we are to understand Gandhi.
(Extract from a letter by Prof. Stephen, Hey, East Asian Research Centre Harward University, Cambridge, U.S.A.

१४. प्रणामी सम्प्रदाय का दीक्षामंत्र।

प्रचार[15] करने लगे। संवत् १७२९ सूरतनगर[16] मंगलपुरी में श्री प्राणनाथजी ने अपने 'सुन्दरसाथ' सहित भारत में धर्म प्रचार करने का निश्चय किया। लालदास भी उनके साथ चले—

लालदास संग चले, खाली लेकर हाथ।
निबाहें आखर लों, चले राज के साथ।।

ला० बी० ३१/११

तब से लेकर श्री प्राणनाथ के 'परमधाम गमन' तक लालदास छाया को भाँति उनके साथ रहे और सब प्रकार से उनके दाहिने हाथ बने रहे। श्री प्राणनाथ के सहस्रों समसामयिक शिष्यों में लालदास ही उनके अन्यतम शिष्य, निकटतम 'साथी' तथा सर्वाधिक विश्वासपात्र थे। श्री प्राणनाथजी लघु से लघु और महान् से महान् बातों में इनकी सम्मति लेते थे। लालदासजी सिन्धी, कच्छी, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी (खड़ी, ब्रज), संस्कृत, फ़ारसी और अरबी कई भाषाओं के ज्ञाता थे। श्री प्राणनाथ से दीक्षित होने के पूर्व भी आप गीता-भागवत के सम्बन्ध में प्रवचन करते थे। प्राणनाथ जी के लिए यहाँ कुरान का पाठ करते थे—

कुरान हदीसां बांचने, बैठत हैं दासलाल।

ला० बी० छठा पहर ८/३

लालदास के नाम से निम्नलिखित रचनायें[17] सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं—(१) बीतक (२) बड़ी वृत्त (पद्य) (३) छोटी वृत्त (खड़ी बोली गद्य) (४) मोहम्मद साहब की बीतक या माजजा (खड़ी) (५) बड़ा मसौदा (खड़ी) (६) श्रीमद्भागवत अनुवाद (७) लगभग १००० अन्य छंद (खड़ी बोली) इन समस्त ग्रन्थों में बीतक ही सम्प्रदाय में सर्वाधिक मान्य और महत्त्वपूर्ण है। सम्प्रदाय में जिस प्रकार श्री प्राणनाथ के बाद लालदास जी का स्थान है उसी प्रकार प्रणामी साहित्य में उपास्य ग्रन्थ 'कुलजम स्वरूप' के बाद लालदास कृत बीतक का स्थान है।

प्रणामी सम्प्रदाय में 'बीतक' मात्र से अधिकांशतः लालदास कृत बीतक का ही बोध होता है और प्रस्तुत बीतक का लालदास कृत होना प्रणामी के लिए स्वतःसिद्ध है। किन्तु प्रणामी संप्रदाय से अनभिज्ञ किसी भी पाठक को बीतक के रचयिता के नाम की समस्या उलझन में डाल सकती है, क्योंकि ग्रन्थ में कहीं भी लेखक के नाम का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में अधिकांशतः 'श्री महामत कहें ऐ साथजी', और कहीं-कहीं, 'श्री महांमत कहे ऐ मोमिनो' 'श्री महामत कहे ऐ सैयनों', 'श्री महामत कहें ब्रह्मसृष्टि को' आदि वाक्य मिलते हैं। ग्रन्थ में लालदास का नामोल्लेख पचीसों बार हुआ है, किन्तु लेखक की छाप के रूप में स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं

---

१५. **ठट्ठा तें पोरबंदरहि, लालदास इत आन।।**
पैंहुचे अपने घर तहां, अब तिनकी पहचान।। प्र० ४६, चौ० ३७

१६. **सत्रह शत पर बीस नव, बीतें संबत आइ।।**
लालदास सूरत तबै, प्रभु ढिग पहुंचे जाय।। वही प्र० ४६, चौ० ५१

१७. दे० श्री छोटी वृत—(ब्रह्मचारी मंगलदास आचार्य मंगलपुरी द्वारा सम्पादित) पृ० १२२।

ामलता—सर्वत्र लालदास का नामोल्लेख[१८] अन्य पुरुष में ही हुआ है, जबकि लेखक होने के कारण अपने लिए उत्तम-पुरुष ('मैं' या 'हम') का प्रयोग होना चाहिए। प्रणामी बन्धुओं के अनुसार इसका समाधान इस प्रकार होता है। श्री प्राणनाथ की अनेक उपाधि नामों में 'महामत' भी एक उपाधि नाम है। परमधाम गमन के पूर्व ही उन्होंने लालदास को अपनी उपाधि देकर—अपनी ओर से ही धर्म की सारी बीतक लिखने की आज्ञा दी। प्राणनाथ तथा धर्म की सेवा में निरत लाल ने इसी कारण 'मैं' और 'हम' को यथाशक्ति अलग करके प्राणनाथ की दी हुई उपाधि 'महामति' के नाम से ही सारी बीतक कही और लेखक की छाप में अपना नाम कहीं नहीं दिया। उपाधि नाम से ही संबोधन करने की बलवती साम्प्रदायिक प्रवृत्ति को देखते हुए यह असंभव भी नहीं प्रतीत होता है। लालदास के सम्बन्ध में सम्प्रदाय में प्रचलित अकाट्य विश्वास तथा सुदृढ़ मत के अतिरिक्त भी ग्रन्थ की अन्त:सक्ष्यि परीक्षा करने पर इसका कृतित्व लालदास ही को प्रदान करने को विवश होना पड़ता है। लेखक के रूप में अपना नाम न देने का यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी लालदास जी कई स्थलों में उत्तम पुरुष (हम) में घटना वर्णन करते हैं। यथा,

(१) इन भांत सवद फेरकें, किए जब तैयार।
तब भीम लालदास को कह्या, देओ पैगाम परवरदिगार।। ३३/२३
दोनों तैयार होयकें, सिर चढ़ाया हुकम।।
चले बूडीए सेहेर सें, आए पोंहोंचे डिली हम। ३३/२४

अंतिम पंक्ति का सरल अन्वय इस प्रकार होगा : हम दोनों (भीम—लालदास) बूडीए सेहेर सें चले (और) दिल्ली आए पोंहोंचे। इस प्रसंग से स्पष्ट संकेत मिलता है कि बीतक का वर्णन कर्त्ता ही है।

(२) चले पीछे दिन तीसरे, पोहोंचे हादी कदम।
मिलाप कर बातें कही, जो बीतक भई हम।। ५३/४२

बुढ़ानपुर में धर्म-प्रचार करते हुए श्री प्राणनाथ जी ने पुन: औरंगज़ेब के प्रधान काजी शेख़-उल-इसलाम से शास्त्रार्थ करने के लिए लालदास को भेजा; किन्तु इससे विशेष लाभ न देख लाल को पत्र भेज कर बुढ़ानपुर लौट आने के लिए कहा। पत्र पाकर लालदास हादी (श्री प्राणनाथ) के पास पहुँचे और अपनी बीतक कही। प्रस्तुत उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि बीतक के रचयिता लालदास ने अपने लिए ही 'हम' का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त भी कहीं-कहीं तो लालदास बीतक के कथनकार के रूप में अपना नाम तक दे गए हैं। यथा—

(१) श्री महामत कहें ए मोमिनों, ए सरत करो याद।
फेर लाल आगे की कहों, जो झगड़े की बुनियाद।। २६/११२
(२) श्री महांमत कहें ऐ साथ जी, ए बात बड़ी बुजरक।
एक जरा मैं ना कहें सकों, लाल कह्या गजे माफक।। ४/१०२

---

१८. **लालदास संग चले, खाली लेकर हाथ।** ला० बी० प्र० ३१, चौ० ११
तब अरज करी लालदाल ने, ए हमकों देओ देखाई।। ला० बी० ३२-२
तब भीम लालदास को कह्या, देओ पैंगाम परवरदिगार।। ला० बी० ३३-२३

(३) श्री महामत कहें ऐ मोमिनों, सुनो जिकर सुभान।
ए सिफत सुभान की, लाल जिनको भई पेहेचान।। ५/७२

ग्रन्थ को आद्यन्त पढ़ने के पश्चात् सरल, सजीव तथा यथातथ्य वर्णन शैली की गवेषणात्मक विवेचना से यही संकेत मिलता है, कि ग्रन्थ का लेखक श्री प्राणनाथ का कोई समसामयिक निकटतम शिष्य होगा और ऐसे व्यक्ति लालदास ही हो सकते हैं। वहिर्साक्ष्य से सम्बन्धित संप्रदाय की प्रबल मान्यता के अतिरिक्त छत्रसाल के समसामयिक शिष्य कवि श्री ब्रजभूषण जी उपर्युक्त बीतक को लालदास कृत मानते हैं। जिसका समर्थन उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से होता है—

सुनि मैं चरचा धाम धनी की, सत्तरि साथ मिले नरनारी।
श्री लालदास कृत बीतक मांही, नाम ठौर सब कहे उन्हारी।। वृत्तान्त मु., ४१/१२

इस प्रकार अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य सब प्रकार से प्राणनाथ के समसामयिक शिष्य लालदास ही बीतक के रचयिता सिद्ध होते हैं।

ग्रन्थ की रचना तिथि लेखक ने स्वयं नहीं दी। अभी तक यह ग्रन्थ हस्तलिखित परम्परा से पोषित था। 'कुलजम स्वरूप' की भाँति 'बीतक' की एक हस्तलिखित प्रति भी प्रत्येक प्रणामी मंदिर में प्रायः रहती है। सम्प्रदाय में यह माना जाता है कि श्री प्राणनाथ के परमधाम गमन (श्रावण बदी ४ वि० सं० १७५१) के दूसरे दिन से पन्ना में लालदास जी ने बीतक लेखन का कार्य आरम्भ किया और भादौ बदी अष्टमी (कृष्ण जन्माष्टमी) के दिन समाप्त किया। इसके पश्चात् लालदास की भी इहलीला समाप्त हुई[१६]। आज भी उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, गुजरात बम्बई, असम, तिब्बत, नेपाल जहां कहीं भी प्रणामी मंदिर हैं सर्वत्र श्रावण बदी पंचमी से भादौं बदी अष्टमी तक बीतक का पाठ होता है। अतएव बीतक की रचना-तिथि १७५१ संवत् (१६९४ ई०) ही मान्य होनी चाहिए। हो सकता है कि बीतक के कुछ प्रकरण (यथा, प्राणनाथ के दो पत्र) अथवा उनकी रूपरेखा इसके पहले भी बनी हों; किन्तु ग्रंथ रूप में बनने की तिथि वि. सं० १७५१ ही है।

ग्रन्थ की प्रायः समस्त हस्तलिखित प्रतियाँ गुटका के आकार की हैं। सबकी लिपि शैली भी एक ही प्रकार की है। आज भी यदि पन्ना में इसकी प्रतिलिपि तैयार की जाती है तो मध्यकालीन हिन्दी लिपि शैली का ही प्रयोग होता है। धार्मिक महत्त्व के कारण लिपिकर्ता आदि प्रति की पूर्ण अनुकृति बनाने का प्रयत्न करते हैं, जान कर कोई भी परिवर्तन नहीं किया जाता है। प्रणामी मंगलदेव शर्मा द्वारा मौखिक रूप से ज्ञात हुआ कि संवत् १७६० की 'कुलजम स्वरूप' तथा 'बीतक' दोनों की प्रतियाँ उन्होंने देखी हैं।

ग्रन्थ में कुल ७१ प्रकरण और ४३०० चौपाइयाँ हैं। ५९ प्रकरण तक पन्ना की बीतक कही गई है ओर शेष १२ प्रकरणों में 'पद्मावतीपुरी' या पन्ना में निवास करते समय श्री प्राणनाथ का आठों पहर का वृत्त या दिनचर्या वर्णित है।

श्री देवचन्दजी का जीवन वृत्त

श्री प्राणनाथ की भाँति लालदास भी सर्वधर्म समन्वय में विश्वास रखते हैं। मूलतः सब धर्म एक हैं और सब धर्मों के मूल पुरुष श्री देवचन्द्र तथा प्राणनाथ का जीवन वृत्त लिखते समय भी वह इस महान् धर्म-रहस्य को भुलाते नहीं हैं—यही कारण है कि बीतक

---

१६. प्राणनाथ मन्दिर में समाधि

को वह तीनों स्वरूपों (कृष्ण-मुहम्मद और देवचन्द्र तथा प्राणनाथ) की बीतक मानते हैं। उनका कथन है—

तीनों सरूपों की बीतक, जनम से लेकर।।
सो कहूं आगे सैयन के ए चरचा सब ऊपर।। २/२६

बीतक के मंगलाचरण वाले प्रथम प्रकरण के बाद ही दूसरे प्रकरण (मूल मिलावे) के आरम्भ में वह उस महान धर्मैक्य को सिद्ध करने के लिए कृष्ण-मुहम्मद और धनी-प्राणनाथ के ऐक्य की ओर संकेत करते हैं। मुसलमानों से शास्त्रार्थ करते समय जिस 'मूल मिलाप' की बात श्री प्राणनाथजी करते थे उसी का सार दूसरे प्रकरण के आरम्भ तथा पुनः ५२ वें प्रकरण में भी कहा गया है। जो मूल ब्रज में अंकुरित हुआ, वही रास में प्रकट हुआ।[२०] रास के बाद वही बरारब (अरब) में अवतरित हुआ और अन्त में वही धनी देवचन्द्र तथा प्राणनाथ के रूप में प्रकट हुआ।

श्री देवचन्द्र जी का जीवनवृत्त—

इस महती भूमिका के पश्चात् लालदास जी प्राणनाथ के गुरु देवचन्द्र का जीवन वृत्त आरम्भ करते हैं। बीतक के प्रथम १३वें प्रकरण तक मुख्य रूप से श्री देवचन्द्रजी का जीवन वृत्त वार्णित है। बीतक के आधार पर श्री देवचन्द्रजी के जन्म, जन्मकाल, जन्म-स्थान, परिवार, शिक्षा, विवाह, धर्म-चेतना-जागृति, तारतम्य मन्त्र की अनुभूति, गुरु-खोज, देवचन्द्र-प्राणनाथ (श्री मेहेराज) मिलन, निजानन्द सम्प्रदाय की स्थापना तथा देवचन्दजी के परमधाम गमन की संक्षिप्त सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। जीवन वृत्त सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

जन्म तिथि—

(१) "संवत सोला सें अडतीसे, आसो सुद चौदस कों।
जनमदिन श्री देवचन्दजी, आए प्रगटे मारवाड़ मों।। प्र० २/१६

स्थान-माता-पिता—

(२) तामें गाँव उमरकोट, मतू मेहता घर अवतार।
माता जो कुंवरबाई, ताको करो विचार।। प्र० १७/७

धर्म-विचार—

(३) बात तब की मन में रहे, मैं जाउँ कच्छ में।
तहां जाए के खोंज करों, पाउं परमेस्वर तिनसें।। प्र० ३८
(४) तहां जाय के खोज करी, सोए बताऊँ इत।। प्र० ३/१
(५) आय खोजे सन्यासी, बड़े डिंभ धारी।
आम पूजें तिनकों, आवे खलक सारी।। प्र० ३/४
(६) बड़े डिंभ कनफटे, जाए पोहोंचे तिन ठौर।। प्र० ३/७

---

२०. **रास लीला खेल कें, आए बरारब स्याम।**

(७) इन भांत मेहेजद में मुल्ला की करी सोहोवत।।
तहां कछू ना पावहीं, कोइक दिन रहे तित।। ३/११
(१२) फेर भुजनगर, आए तिन सहर में।।
तहां हरदासजी रहें, भई सोहोवत तिनसें।। ३/१३
(१४) वो थे राधावल्लभी, सेवत कारज आतम।।
सेवा बांकेबिहारी की, करें सखी भाव होए धरम।। ३/१४
(१५) पूछया नाम पेहेलें, काहू का लिया है।
कहा सन्यासी का, कर विस्वास।। वही,
(१६) दिया नाम सुमरन, देख्यों सरूप सनमुख।। वही,
(१७) जामां बांके बिहारीजी का, दिया सेवन को।।
श्रीदेवचंदजी सिर चढ़ाए कें, ल्याए अपने घर मों।। वही/४/३०

धर्म-प्रचार—

(१८) यहाँ से आए, बीच हलार देस।।
तहां पुरी नौतन मिनें, बोहोत जमां भए खेस।।५/१

(१९) सुनत भागवत देहुरे, तहाँ कहा तारतंम।।
तुम आए हो अरस सें, जगाओ अपनी आतम।।७/८

श्री मेहेराज को धर्म-कार्य सौंपना—

(२०) बरस चोहत्तर न्यून, भए एक मास।।
तब सौंप चले श्रीमेहेराज को, उमत खासल खास।।७/१०

मृत्यु—

(२१) संवत सत्रह बारोतरे, भादों मास उजाला पख।।
चतुरदसी बुधवारी भई, हुए धनी अलख।।७/१०

विवाह—

(२२) संबंध जाहिर का, हुआ लीलाबाई से।।
सेवा करी सनेह सों, सोभा दई राजें इनें।।८/४
(२३) तिनके उदर प्रगट भए, बिहारीजी है नाम।।८/५

उपर्युक्त उदाहरणों से देवचन्द्रजी के जीवन की एक सामान्य रूपरेखा सामने आ जाती है। वास्तव में श्री प्राणनाथ के जीवन वृत्त के लिए देवचन्द्रजी का वृत्त एक वास्तविक भूमिका आधार स्तम्भ है। अतएव, संक्षेप में वह वृत्त आवश्यक था। कई अलौकिक तथा चमत्कारिक बातों का भी उल्लेख देवचन्द्रजी के जीवनवृत्त में मिल जाता है। देवचन्द्रजी के जीवन वृत्त में भावी प्रणामी धर्म के बीज निहित हैं जिसे श्री प्राणनाथ ने निजानन्द सम्प्रदाय के रूप विकसित किया।

श्री प्राणनाथ का जीवन वृत्त—

श्री प्राणनाथ का जीवन वृत-वर्णन ही बीतक लेखक का प्रमुख उद्देश्य है। ग्रंथ के दसवें प्रकरण से प्राणनाथ का क्रमबद्ध जीवन वृत्त मिलता है यद्यपि छठवें प्रकरण से ही प्राणनाथ के आविर्भाव तथा परिवार आदि का उल्लेख होने लगता है। बीतक के आधार पर संपेक्ष में उनका जीवन वृत्त इस प्रकार है—

श्री प्राणनाथ का जन्म[21] हल्लार देश जामनगर या नौतनपुरी में[22] वि० सं० १६७५ भाद्रपद, कृष्ण पक्ष १४ रविवार को चढ़ते प्रहर हुआ था। इनके पिता का नाम केशव ठाकुर और माता का नाम धनबाई[23] था। बाल्यावस्था में इनका नाम श्री मेहेराज (मिहिरराज) था। इनके तीन बड़े (स्यामल, गोवरधन, हरवंश) और एक छोटे (ऊधव) भाई भी थे। वि० संवत् १६८७ मार्गशीर्ष शुक्ल ६ को (१२ वर्ष २ मास, १४ दिन की उम्र में) नौतनपुरी (जामनगर) में आपने सर्वप्रथम श्री देवचन्द्रजी के दर्शन[24] किये। अपनी पुर्णकुटी में (जहाँ आज प्रणामियों का प्रसिद्ध खिजड़ा मन्दिर है) श्री मेहेराज को श्रीदेवचन्द्रजी ने तारतम्य मन्त्र की दीक्षा दी। संवत् १७०० में बड़े भाई गोवरधन की मृत्यु के पश्चात् वे अधिक ब्रह्मविद्या तथा तपश्चर्या में रत हुए। तपश्चर्या से अति क्षीण होते देख देवचन्द्रजी ने इन्हें लौकिक कार्य में लगाया जिससे जीवन भावी कार्य के लिए बना रहे। अतएव अपने एक विशेष कार्य के लिए गुजरात[25] भेजा।

अरब यात्रा— १७०३ में अपने एक प्रमुख शिष्य गांगजी भाई के छोटे भाई खेता भाई का समाचार लेने के लिए इन्हें देवचन्द्रजी ने संवत १७०३ में बरारब [26] (अरब) भेजा। नाव में चढ़ कर ४० दिन में आप अरब पहुँचे। और वहाँ चार बरस[27] तक रहे। वहीं खेता भाई का देहान्त हो गया। अरब सुलतान इमाम के समय एक हाकिम ने खेता भाई के सारे माल-असबाब पर मुहर लगा दी। अरब दीवान शेखसला से फरियाद भी की गई; किन्तु व्यर्थ हुई। अन्त में बड़ी कठिनाई से सुलतान की आज्ञा से माल-असबाब की मुक्ति हुई। वहीं देवचन्द्रजी के पुत्र बिहारी जी को सब माल सौंप आप १७०८ में पुनः नौतनपुरी लौट आए। व्यर्थ के दोषारोपण के कारण जामवज़ीर ने आपको नज़रबन्द रक्खा; किन्तु दोषारोपण असत्य सिद्ध होने पर आप रिहा हुए।

संवत् १७१० में आप धरोल राज्य के कला जी राजा के यहाँ राजकाज में सहयोग करने लगे। किन्तु संवत १७१२ में वहाँ से भी अवकाश[28] प्राप्त कर लिया, क्योंकि श्री देवचन्द्रजी ने ६ वर्ष बाद उन्हें पुनः अपने पास बुलाया था। उनके साथ प्राणनाथ जी २२ दिन [29] तक रहे। इसी समय श्री देवचन्द्रजी ने इहलीला समाप्त की। श्री प्राणनाथ ने सं० १७१२ आश्विन शुक्ल अष्टमी के दिन बिहारी जी को देवचन्द्रजी की गद्दी पर

---

२१. संवत सोले से पचहत्तरा, भादो बदी चौदस नाम।
पोहोर दिन बार रबी, प्रगटे धनी श्री धाम।। ला. बी. प्र० ७-१७

२२. हलार देस पुरी नौतन, उदर बाई धन। प्र० ११-३६

२३. केसो ठाकुर पिता कहियत, माता बाई धन।। वही, २३

२४. संवत सोले सें सतासिया, मागसर सुदी नोंम।
मिलाप श्री देवचन्दजी से, भए दाखिल कोम।। वही,

२५. तब गुजरात भेजिया, एक बहाना ले। ला. बी.

२६. संवत सत्रे सै तिलोतरे मिनें हुकम हुआ श्रीराज।
गांगजी भाई के काम को तुम जाओ श्री मेहेराज।। प्र० १३-१

२७. चार बरस परवारते रहे बरारब जब। प्र०, १३ १०

२८. फिर आए गुजरात से कला पें मांगी बगसीस।
संवत् सत्रे बारोतरे अब मैं पाऊँ सीख।।

२९. इहाँ से दिन बाइस, रहे साथ मिने। ला. बी. १४/१९

बिठाया और स्वयं राज्य की 'दीवानगीरी' हाथ में ले राज्य-कार्य के साथ-साथ धर्म प्रचार भी करने लगे। एक धार्मिक समारोह करने की इच्छा से वहीं बहुत-सा सामान एकत्र किया। कुछ लोगों ने व्यर्थ ही 'जाम वज़ीर' से चुग़ली कर दी।

उस अविवेकी ने हबसा में इन्हें बंदीग्रह[३०] में रख दिया। इसी समय अहमदाबाद के सूबेदार कुतुबख़ां[३१] (कुतुबद्दीन ख़ान) ने जामनगर पर चढ़ाई कर दी। जाम वज़ीर इन्हें बंदीग्रह मे छोड़ अहमदाबाद चला गया। वहीं बंदीग्रह में अनेक बानियों का अवतरण हुआ। एक साल बाद लौटने पर वज़ीर ने अपनी भूल स्वीकार की और श्री प्राणनाथ को मुक्त कर उनसे क्षमा माँगी। उन्हें सिरोपा देकर विदा किया।

संवत् १७१६ में आप जूनागढ़ पधारे और वहाँ दो वर्ष रहकर एक गाँव बसाया। वहीं हरजी व्यास नामक एक विद्वान पंडित को शास्त्रार्थ में हराकर अपना शिष्य बनाया। वहाँ से 'नौतनपुरी' (जामनगर) लौट आए और पुनः जामनगर की दीवानगीरी का भार ले लिया। इसी समय संवत् १७१९ में कुतुबखान[३२] ने फिर जामनगर पर चढ़ाई की। सूबेदार को समझाने के लिए 'जाम वज़ीर' के साथ प्राणनाथ भी संवत् १७२० में अहमदाबाद (गुजरात) गए। वहीं से कुछ ऐसी घटना घटी कि आपने लौकिक कार्य त्यागकर पूर्णरूप से सुन्दरसाथ जागरण का कार्य अपने सिर पर लिया।

अहमदाबाद से श्री प्राणनाथ जी दीव[३३] बन्दर (ड्यू) पधारे और वहाँ साथी जैराम[३४] को जागृत किया। और लोग दीक्षित होकर साथी बने। नगर में कीर्तन की हलचल मची जिससे कुछ ईर्ष्यालुओं ने नगर के 'फिरंगियों[३५] के पास चुग़ली करनी चाही; किन्तु एक सज्जन के समझाने पर दरबार में पहुँच कर भी 'चुग़ल' लौट आया; किन्तु फिर फिरंगियों के भय से 'साथियों' में 'खलभल' पड़ गई और सब इधर-उधर 'छिप गए'। 'सुन्दर साथ' एकत्र करने के उद्देश्य से प्राणनाथ जी दीवबन्दर से पोरबन्दर, पाटण होते हुए कच्छदेश में मडई (मांडवी) में साथी प्रागमल के यहाँ पधारे। वहाँ जागरण कार्य करते हुए 'कपाइए' गाँव में हरवंश ठाकुर को 'जागृत' कर भोजनगर में बृन्दावन (हरिदास जी के पुत्र) के यहाँ रहे। धर्मोपदेश देते हुए 'नलिए' होकर 'ठट्ठानगर' में 'नाथा' जोशी के यहाँ १२ दिन तक ठहरे। फिर वहाँ से लाठी बंदर होकर 'मस्कत' (अरब में) बंदर जाने के लिए

---

३०. बीतक में इसीको प्रबोधपुरी कहा गया। वहीं अनेक बानियों का अवतरण हुआ।
ला० बी० प्र० १३, १४, १६

३१. संवत सत्रे बारोतरे भई कुतुबखान की मुहम।
जाम वजीर गए तिनपर खड़भड़ पड़ी इन कोंम।। १५/४२/-४३
बैठे प्रबोधपुरी मिनें।

३२. संवत सत्रे ते उनईसें, देस पर आया कुतुबखांन।
उत इलहाम हुआ। थी ब्रह्मसिष्ट पेहेचान।। १६ ६५

३३. संवत सत्रे बावीसे दीव पधारे श्री राज।
दोए बरस तहां रहे सब पूरे मनोरथ काज।। ला० बी० प्र० १६१५

३४. तब गुजरात में आए दीव में भाई साथी जैराम के घर। १८.३
(साथी जैराम ने भी एक बीतक लिखी है।)

३५. चुगल केतेक दिन पीछे गया फिरंगी पास। प्र० २०.६
फिरंगी ऐसे जालिम पूछे न गुहाही किनसे।। प्र० २०.११

नाव पर सवार हुए; किन्तु १७ दिन तक 'तोफान' रहने के कारण पुनः ठट्ठानगर लौट आए। यहीं एक कबीर धर्मावलंबी साधु 'चिंतामणि' से शास्त्रार्थ हुआ। चिंतामणि ने कबीर का एक पद[३६] सुनाया और प्राणनाथ जी ने भी स्वरचित कई पद (यथा, सुनो सत के बनजारे; हो मेरी आतमा) सुनाए। अन्त में चिंतामणि भी शिष्य बन गया। ठट्ठानगर में ही सर्वप्रथम (संवत १७२४ में) लालदास (लक्ष्मन सेठ) ने श्री प्राणनाथ जी के दर्शन किये और वे जागृत हो धर्म में दीक्षित हुए। पुनः ठट्ठे से लाठी बन्दर होते हुए फिर से संवत १७२५ में मस्कत (अरब की सीमा पर) पहुँचे। धर्मोपदेश कर अनेक बन्धुओं को यहाँ जागृत किया। यहीं कई पदों[३७] की रचना हुई। मसकत में अढ़ाई बरस रहकर आप अबासी बन्दर (अरब देश) पधारे। वहाँ से तीसरी बार १७२८ में ठट्ठानगर होकर नलिए पहुँचे। नलिए में देवचन्द्र जी के पुत्र बिहारी जी ने बुलवाया। और 'जागनी' के सम्बन्ध में बातचीत की। बिहारी जी के रूढ़िवादी विचार से सहमत न होकर श्री प्राणनाथ ने जाति-पाँति का विचार न करके समस्त मानवता को 'जागृत' करने का मत प्रकट किया। मतवैभिन्य होने पर बिहारी जी नौतनपुरी चले गए। वहाँ श्री प्राणनाथ जी मांडवी, धोरा जी, घोघा, सुहाली होते हुए वि० संवत १७२९ आषाढ़ बदी १४ सूरत पहुँचे। वहाँ १७ महीने तक धर्म प्रचार किया। यहाँ महावेदांती भीमभट्ट और श्यामभट्ट तथा वैष्णव कथावाचक गोविन्द व्यास शिष्य बने। यहीं श्री प्राणनाथ ने 'कलश' ग्रन्थ समाप्त किया। यहीं पर समस्त मानवता के उद्धार[३८] के लिए देश-विदेश में पर्यटन करने का विचार किया। लालदास ने सूरत को मदीना और ब्रजभूषण ने 'मंगलपुर' (महामंगलपुरी) कहा है; यहीं से लालदास भी सपत्नीक श्री प्राणनाथ जी के साथ चले।

सूरत से प्रस्थान कर अपने 'सुन्दर साथ' सहित 'चार दिन' गुजरात में तथा सीदपुर (सिद्धपुर) में 'बावीस' (बाइस) दिन रहकर भगवान उपाध्याय को जागृत करते हुए (संवत् १७२१) में मेड़ता नगर पहुँचे। यहाँ लाभानन्द अती (यती) के साथ धर्मचर्चा हुई उसकी चमत्कारी शक्तियों को क्षीण करके उसपर विजय प्राप्त की। यहाँ के प्रसिद्ध सेठ राजाराम अग्रवाल तथा सेठ झाझन 'जागृत' एवं दीक्षित हुए। तबसे संवत १७४३ तक राजाराम सेठ ने धन से जितनी सेवा की उतनी छत्रसाल के अतिरिक्त किसी ने भी नहीं की। श्री जी ने मेरते में चार मास[३९] रह कर अपने धर्मोपदेश से सैकड़ों नर-नारियों को 'जागृत' किया। यहीं से जसवंत[४०] (राजा जसवंतसिंह राठौर) को जागृत करने लिए गोवरधन को दो पत्र देकर अटकपार भेजा किन्तु जसवंत धर्म में न आ सके दूसरा पत्र प्राप्त होने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी। यहीं पर एक दिन प्रातःकाल मस्जिद से एक मुल्ला

३६. एक पलक ते गंग जो निकसी हो गयो चंहुर्दिस पानी।
वह पानी दो परवत ढांपे दरिया लेहेर समांनी।।१।।
उड़ मक्खी तरवर चढ़ बेठी बोलत अंमृत वांनी।
वह मक्खी के मक्खा नाहीं बिन पानी गर्भानी।।२।।
तिन गरभे गुन तीनो जाए वह तो पुरुष अकेला।
कहे कबीर या पद को बूझे सो सतगुरु मैं चेला।।३।।
३७. इत दोए चार कीरतन नए किए बीतक।
३८. तब श्री जी साहेबजीए कहा जो कोई लूला पाँगला साथ।
श्री इंद्रावती न छोडे तिनको पहुंचावे पकड हाथ।

की बाँग सुनी। कलमा (लाईला हो इलुलला हो महमद रसूलअल्ला) और तारतम्य मन्त्र में ऐक्य का आभास पाया और लालदास से इस रहस्य का उद्घाटन किया यहीं से स्वधर्म ओर इस्लाम धर्म में ऐक्य का अनुभव कर सुलतान[41] अवरंग-औरंगज़ेब से धर्म युद्ध करने का ब्रत ठाना गया। यह महान् अग्निव्रत लेकर अपने धर्मप्राण साथियों सहित श्री प्राणनाथ गोकुल-मथुरा-आगरा होते हुए दिल्ली[42] आ पहुँचे।

दिल्ली के इस महान् धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने के लिए श्री प्राणनाथ ने अपने समस्त साथियों का आह्वान किया। कोने-कोने से अनेक साथी आए और दिल्ली में भी अनेक दीक्षित हुए। प्रसिद्ध मुसलमान शिष्य सेखबदल यहीं दीक्षित हुआ। 'उरदू बाजार' में गरीबदास मिले। गोवरधन भी काबुल से (जसवंत सिंह को पत्र देकर) लौट आए। श्री जी पुरी बीठलगोर के सैयद की हवेली में आ गए। यहीं पर श्री प्राणनाथ और लालदास ने 'रात दिन मेहनत' करके 'हिन्दवी' में एक पत्र [43] औरंगज़ेब के नाम लिखा। पत्र तैयार कर श्री प्राणनाथ ने सबकी सम्मति ली। आसाजीत ने कहा-कि 'हिन्दवी' की यह 'पाती' शहंशाह कान से नहीं सुनेगा। अतएव कुछ दिन के लिए प्राणनाथ शाहजहानपुर, बोडिया चले गए। 'सबद फेरके' (शब्द परिवर्तन करके) पुनः फ़ारसी लिपि में पाती तैयार हुई; किन्तु श्री प्राणनाथ को ऐसा आभास मिला कि अभी कार्य पूर्ण नहीं होगा, अतएव ८ माह बाद दिल्ली से हरिद्वार को प्रस्थान किया।

शक संवत् १६००, तथा वि० सं० १७३५ श्री प्राणनाथजी कुम्भ में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली से हरिद्वार आये। वहाँ चार वैष्णव सम्प्रदाय रामानिज (रामानुज), माधव, नीमानिज (निम्बार्क) विष्णुस्याम (विष्णुस्वामी के अनुयायी, दशनामी संन्यासी तथा षड्दर्शनी एकत्र हुए थे। सबको शास्त्रार्थ में पराजित कर एकेश्वर अक्षरातीत ब्रह्म की प्रतिष्ठा करके, निजानन्द सम्प्रदाय की श्रेष्ठता सिद्ध की। यहाँ श्री प्राणनाथ विजयाभिनन्द निष्कलंक बुध की उपाधि से विभूषित हुए। हरिद्वार में चार माह रहकर पुनः आप दिल्ली लौट आए।

दिल्ली के कुछ 'साथ' को अनूपशहर में छोड़कर पुनः शाहगंज में उतरे। यहीं क़ुरान के अभिप्रेत अर्थ और धार्मिक एकता सम्बन्धी अनेक पद बने। लाल दरवाज़े की हवेली में रहते हुए श्रीजी ने शेख सुलेमान को पत्र लिखकर अपना आदमी उसके पास भेजा। धर्मसंघर्ष की इस प्रणाली के सम्बन्ध में शिष्यों (गोवरधन और लालदास) में थोड़ा मतभेद सुनकर श्री प्राणनाथ को दुःख हुआ। सबको अपने-अपने घर जाने को कहकर श्री जी

---

३९. तहां मास चार लग- रहे-मेड़ते में इन बखत। लालदास बीतक

४०. सुनी बात जसवंत की पाती लिखी दोए।
भट गोबरधन से चले पैगाम पोहोचावने सोए।
अटकपार पोहोच के खबर दई उन जाए। ला० बी०, प्र० ३१-६६, ६७

४१. अब लड़ाई करने की जाइए पास सुलतान।
इनको प्रथम दावत करें ए ल्यावे ईमान।।

४२. ए विचार करके मेडते से चले जब ।। ला० बी०, प्र० ३२-५
गोकुल मथुरा आगरा आए पोहोंचे तब। ३२-६
कई दिन तहाँ रहके दिल्ली पोहोचे धाए।
केतेक साथ ठट्ठे का इत पोहोंचा आए।३२-१०

४३. सो पाती हिंदवी की क्यों कर सुने कांन।।३२-३८

ने अनूपशहर को प्रस्थान किया। वहीं सनंध[४४] नामक ग्रन्थ रचा गया और गुजराती कलस तथा प्रकाश ग्रन्थ का हिन्दुस्तानी में भाषान्तर हुआ। सनंध में श्री प्राणनाथ ने भागवत के माध्यम से क़ुरान की नवीन व्याख्या की और उसे लेकर शेखबदल को सुलतान के पास भेजा। किन्तु 'हिन्दवी' की इन बानियों की ओर सुलतान के किसी व्यक्ति ने ध्यान न दिया। परिस्थिति की जानकारी के लिए प्राणनाथ पुनः दिल्ली आए और लाल दरवाज़े छोड़कर रोहिलाखान की सराय में ठहरे। फिर इन बानियों को फ़ारसी[४५] लिपि में लिखने का निश्चय किया गया और एक काइम के लड़के की सहायता से २ महीने में कई प्रतियाँ तैयार की गई। और शेख निजाम, रिजवीखान, शेष इस्लाम तथा अन्य सुलतान के निकटस्थ अमीरों के पास भेजी गईं। किन्तु कोई लाभ न हुआ। पुनः 'हुसेनी तफ़सीर' (फ़ारसी में कुरान की व्याख्या) अड़तीस रुपये में मँगाई गई और 'काइम' से उसे पढ़वाया गया। फिर पाँच नलुए (पत्र) तैयार किए गए जिसमें क़ुरान की आयतों को उद्‌धृत करके क़यामत की नई व्याख्या की गई; श्री प्राणनाथ ने इमामत का दावा किया। कान्ह जी द्वारा ये पाँच नलुए[४६] (पत्र) शेख़ इसलाम, रजबीख़ान, शेख़निज़ाम, आकलखान तथा सीदीपोलाद के पास पहुँचाए गए और उनका उत्तर माँगा गया; किन्तु किसी ने भी उत्तर न दिया। बहुत विचार करने पर अन्ततः यह निश्चय हुआ कि किसी-न-किसी प्रकार बानी का पैग़ाम सुलतान के पास पहुँचाना चाहिए। बात की सुनवाई के लिए नन्दलाल घड़ियालची ने रात को गुसलख़ाने के द्वार पर गुप्त रीति से एक रुक्का गोंद से चिपका दिया। रुक्के को पढ़कर सुलतान ने ढिंढोरा पिटवाया कि फ़रियादी जुमा के दिन मस्जिद में उससे मिले। लाल तथा निरमलदास ने जामा मस्जिद में शेख़ निज़ाम के लड़के अब्दुल्लाख़ान को रुक्का दिया; किन्तु उसने फाड़ डाला। सब प्रकार से हारकर धर्म पर बलिदान होने के महान् उद्देश्य को लेकर प्राणनाथ के बारह शिष्यों— (लखमन, शेख़बदल, मुल्लाकाइम, भीमभाई, सोमजी, नागजी, खिमाई, दयाराम, चिंतामन. चंचल भाई, जोगाराम, बनारसी) ने स्वयं सुलतान तक अपनी बात पहुँचाने की प्रतिज्ञा की और मस्जिद में क़ुरान सम्बन्धी सनंधें पढ़ने लगे। मस्जिद का इमाम सबको लेकर सुलतान के पास आया। सुलतान[४७] औरंगज़ेब ने उन्हें बुलाकर उनका उद्देश्य पूछा।

शिष्यों ने उत्तर दिया, हम एक यही बात माँगते हैं कि हम एकांत में तुमसे 'रूबरू' बात करें— हमारी तुम्हारी बात के बीच में और कोई न पड़े।' शिष्यों ने कहा, 'हममें दस तन हिन्दू और दो तन मुसलमान हैं। 'सुलतान ने कोतवाल सिद्दीपोलाद को उन सबको अपने साथ ले जाने के लिए संकेत किया। उनका मंतव्य सुलतान तक पहुँचाया जाए ऐसी आज्ञा दी। अपने वज़ीर और काज़ी के मना करने पर सुलतान ने 'रूबरू'

४४. सनंध लिख तैयार करी, बिचार देखे सुकन।
यह बानी सुनके, पीछा न हटे मोमिन।। ३-२८

४५. ए कलाम आरबी में रहे, तब होवे पेहेचान। ३५-५२
तब एक मुल्ला पारसी का, हुक्म हुआ दया राम।
बुलाय ल्याओ तिनकों, लिखें पारसी में कलाम।।५३

४६. एक नलुआ शेख इसलाम पर, दूजा रजवी खान।
तीसरा शेख निजाम पर, ए तिनकों होए पेहेचान।।
चौथा अकल खान कों, पाचमां सीदीपोलाद।३८-२४, २५

४७. फेर इसारत करी सुलतान ने, क्या मतलब है तुम। ४६-२६

बात करने की बात स्वीकार न की। इमाम मेहदी के देखने की उसे आशा थी लेकिन शराअ और शंकालु स्वभाव ने उसे ऐसा करने न दिया। कोतवाल के यहाँ रहने के बाद ये सब काज़ी शेख़ इसलाम के यहाँ पहुँचाए गए। वहाँ कई दिनों तक धार्मिक विवाद हुआ। क़यामत सम्बन्धी अपनी बात को सिद्ध करने के लिए शिष्यों को कष्ट दिया जाने लगा। तब श्री प्राणनाथ ने उन्हें [४८] प्रोत्साहित करने के लिए क़ुरान के उदाहरण देकर पत्र लिखा और उनके प्रयास को सराहा।

सोलह महीने तक दिल्ली मे रहकर श्री प्राणनाथ ने समझौते के विचार से धर्मयुद्ध किया किन्तु उससे कुछ लाभ न देख, अन्य हिन्दू राजाओं को इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित करने के उद्देश्य से पर्यटन को पुनः निकल पड़े और आमेर सांगानेर होते हुए सं० १७३६ में उदयपुर पहुँचे। राजसिंह किसी प्रकार भी जागृत न हो सका; बल्कि सुलतानी सेना के भय के कारण उदयपुर छोड़ देने की प्रार्थना की।[४६] वहाँ से नितान्त निर्गुण साधु वेष धारण कर श्री प्राणनाथ मन्दसोर पहुँचे। वहीं दौलत ख़ान दीक्षित हुआ। लालदास ने इब्राहीम की सहायता से क़ुरान को उतारा। यहीं से श्री प्राणनाथ ने बूँदी नरेश भाऊसिंह के पास मुकुन्ददास के द्वारा एक पत्र भिजवाया। मन्दसोर से सीतामऊ, नोलाई, उज्जैन, बुढ़ानपुर से औरंगाबाद भाऊसिंह के घर आए। भाऊसिंह बहुत प्रभावित हुआ और अपने यहाँ श्री प्राणनाथ का स्वागत किया। वहीं भाऊसिंह के मुसलमान कर्मचारियों को अपने धर्म से सहमत किया जिनमें जहान मुहम्मद शिया था; किन्तु फतेह मुहम्मदख़ान ने दुराग्रह के कारण बात न मानी। उसी समय भावसिंह का देहान्त हो गया। फतेमुहम्मद ने अत्याचार करना आरम्भ किया, अतएव बूँदी छोड़ना पड़ा। वहाँ दो बरस रहे जहाँ हरिसिंह और सूरतसिंह तथा दीवान देवकरण 'जागृत' हुए। औरंगज़ेब का भेजा हुआ शेख़ खिदरख़ान भी इनका शिष्य बन गया। वहाँ से श्री प्राणनाथ गढ़ा होते हुए १७४० में पद्मावतीपुरी या परना (पन्ना) पधारे। छत्रसाल से उनका पूर्ण शिष्यत्व स्वीकार किया। महामति ने उसे आत्म बल प्रदान किया एवं हीरों का वरदान दिया। तब से पन्ना की धरती से हीरे निकलने लगे। उन्हीं की प्रेरणा से छत्रसाल ने शत्रुओं को हरा कर एक विस्तृत राज्य स्थापित किया। १७४४ में 'श्री राज' चित्रकोट पधारे जहाँ कियामतनामा बानी उतरी। संवत १७५१ श्रावण बदी ४ रात्रि ४ बजे इहलीला समाप्त कर प्राणनाथ श्री परमधाम सिधारे।[५०]

प्राणनाथ के जीवन वृत्त वर्णन करने के साथ-साथ लालदास ने बीतक में उनकी कृतियों की रचना-तिथि, स्थान आदि का भी उल्लेख किया है। श्री प्राणनाथ की वाणी से सर्वप्रथम हबसा के बंदीगृह (प्रबोधपुरी) में रास के पद सं० १७१२ में प्रस्फुटित हुए जिसे बीतककार ने अंजील के नाम से भी अभिहित किया है। वहीं 'प्रकास' नामक ग्रन्थ मे संग्रहीत बानियाँ भी उतरीं। जैसे-जैसे बानियाँ उतरती थीं, बंदीग्रह में उन्ही के साथ

---

४८. इनमें दो पत्र बड़ी पत्री और छोटी पत्री बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

४६. इस समे पातसाह ने। करी मुहीम राने पर। ४८,४
जब नौरंग चढ़ा राने पर। हुआ मुलक चलविचल। ४६, १

५०. संवत् सत्रहसें इक्यावना सावन बदी चौथ में।
रात पीछली घड़ी दोएमें आया फिरस्ता धाम से। प्र० ७.१६

उनके छोटे भाई ऊधव जी लिखते जाते थे (लालदास ने ऊधव जी को परमधाम की उत्तमबाई की वासना कहा है) बाद में उन्हें पुस्तक में चढ़ाया जाता था। इसी समय 'खटरुती'[५१] नामक किताब में संग्रहीत बानियाँ भी उतरीं। दीवबंदर में (सं० १७२२) बेहदबानी उतरी। मेड़ते में (सं० १७३१) रास की कुछ बानियाँ और लिखी गईं और पद यात्रा के समय 'किरंतन' के अनेक पद रचे गए। सूरत में (सं० १७२६) कलस नामक ग्रंथ की रचना हुई और अनूप सहर (संवत् १७३५-३६) में 'सनंध' ग्रंथ समाप्त हुआ। वहीं कलस ओर प्रकास का मूल गुजराती से हिन्दुस्तानी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार कुछ बानियाँ रामनगर (१७३८) और पन्ना में उतरी। 'खुलासा', 'खिलवत', 'मारफत सागर', 'छोटा तथा बड़ा कयामतनामा' आदि अन्य फिरकों से संबंधित बानियाँ पन्ना में (सं० १७४०-५१) उतरी। पन्ना में 'खिलवत' और 'सागर' भी प्रकट हुए। 'कियामतनामा' चित्रकूट में लिखी गई थी, किन्तु उसे लालदास पन्ना के ही अंतर्गत लिख देते हैं। इस प्रकार बीतक में प्रायः 'कुलजम स्वरूप' या 'तारतमय सागर' में संग्रहीत समस्त ग्रंथों का अवतरण काल दे दिया गया है। (ला० बी०, प्र० १५/५७-६७)

बीतक में सहस्रों व्यक्तियों, सैकड़ों स्थानों तथा अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। इनमें से कुछ व्यक्ति, और स्थान और घटनाएँ ऐसी हैं जिनके सत्यासत्य की परीक्षा इतिहास के आधार पर हो सकती है। अतएव बीतक की ऐतिहासिक परीक्षा बीतक की प्रामाणिकता के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

सर्वप्रथम ग्रन्थकार ने मंगलाचरण में सतयुग, त्रेता, द्वापर के राजाओं के नामोल्लेख के बाद कलियुग के बीस नामों का उल्लेख किया है। ये नाम निम्नलिखित हैं : जदुनाथ, अजयपाल, महिपाल, गंधर्वसेन, और वीर विक्रमादित्य, विक्रमाचंद्र, भोज, गौरी पातसाह, (मुहम्मदगोरी) अलाविदीन (अलाउद्दीन), नसीरुद्दीन, लोढ़ा महमूद, बड़ा सुरखां (शेर खां) तिमिर लंग (तैमूर) बाबर, हुमायूँ, अकबर, सलीमसाह (जहाँगीर) शाहजहाँ और औरंगज़ेब। इनमें से हिन्दू राजाओं के कुछ नाम बहुत स्पष्ट नहीं होते हैं, किन्तु शेष हिन्दू और मुसलमान राजाओं के नाम प्रसिद्ध ऐतिहासिक नामावली के अनुकूल ही हैं। औरंगज़ेब के युग में ही बीतक की रचना हुई अतएव यहीं तक नामगणना की गई है। मध्यकालीन जन समुदाय में जिस रूप में नाम प्रचलित थे, उसी तद्भव उच्चारण के साथ उल्लेख भी हुआ जिससे बीतक की प्रामाणिकता को और बल मिल जाता है। देवचन्द्र तथा श्री प्राणनाथ के कुटुम्बियों के नामों की ऐतिहासिक परीक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि इतिहास की वहाँ तक पहुँच ही नहीं हुई। हिन्दू साहित्य तथा हिन्दू धर्म से सम्बन्धित कबीर-कमाल, नानक, रामानिज (रामानुज) नीमानिज (निम्बार्क) विस्नुश्याम (विष्णुस्वामी) माधवाचारज स्वामी, हरिदास आदि नाम भी इतिहास विरुद्ध नहीं सिद्ध होते हैं। उपयुर्क्त नामों की प्रामाणिकता के आधार पर स्वामी हरिदास के पुत्र वृन्दावन का नाम भी ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य ही है। औरंगज़ेब-काल के हिन्दू राजाओं मे जसवंत[५३] भगवंतराय (६१३) बूँदी के भावसिंह (भाऊसिंह) और छत्रसाल के नाम ऐतिहासिक हैं।

---

५१. दे०, ला० बी० प्र० चौ० २२, २३, २४, २५, २६
५२. दे०, यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आव औरंगज़ेब
५३. वही

संभवत: अन्य हिन्दू राजाओं के नाम भी ऐतिहासिक ही होंगे। औरंगज़ेब दरबार से सम्बन्धित अनेक अमीरों के नाम दिए गए हैं जिनमें से शेख़ इसलाम (३८.३), रजवीख़ान (रिजवीख़ान) शेखनिजाम (शेख़निजाम) अकल खान (अकिलखान) (३८.२४, २५) अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। शेख़ इसलाम (शेख़ उल इसलाम) औरंगज़ेब का प्रमुख काज़ी था। धार्मिक समस्याओं में वह इसी से सम्मति लेता था। रजबीख़ान (रिजवी ख़ान) सदरउल सदर या प्रधान न्यायाधीश था। जो मई १६६७ से जून १६८१ तक सदरउल सदर (दरबार का काज़ी) रहा। अकलखान (अकिल ख़ान) दरबार का एक प्रभुत्वशाली अमीर था जिसे उन्नीसवीं सदी के उर्दू लेखकों ने औरंगज़ेब की पुत्री ज़ेबुनिसा का प्रिय अमीर कहा है। सीदीपोलाद (सिद्दीफ़ौलाद) औरंगज़ेब का नगर कोतवाल था। अपनी उग्रता, प्रचंडता और प्रभुता के लिए यह बहुत प्रसिद्ध था। औरंगज़ेब ने शिवाजी को भी इसी की देखरेख में बन्दी बनाया था। शेख निज़ाम को बीतककार ने औरंगज़ेब का उस्ताद कहा है इसे भी ऐतिहासिक ही होना चाहिए। इन पाँचों के पास श्री प्राणनाथ ने अपने पत्र पहुँचाए थे। शेख़ इस्माइल से तो अनेक बार उनके शिष्यों का शास्त्रार्थ हुआ था। दिल्ली में धर्म-सत्याग्रह करनेवाले बारह शिष्य भी सिद्दी फौलाद और शेख़ इस्लाम की देखरेख में थे। बीतककार ने शेख़ सुलेमान तथा बाद में शेख़ निजाम के पुत्र अब्दुल्ला को औरंगज़ेब का प्रधान वैयक्तिक सहायक बताया है। इनका भी इतिहास में स्थान होना चाहिए। इसी प्रकार बख़्तावर (३८.७), शेख़ खिदर (५४.७४) पुरादल ख़ान (५.१६) गुलाम मुहम्मद (५६.१२७), जहान मुहम्मद (५१.८८), पठान फते मुहम्मद (५१.६६), इभराहीम (इब्राहीम) (४६.३१), सफजंग (५१.१८) और अनेक मुसलमान शिष्यों के नाम आए हैं जिनकी ऐतिहासिक परीक्षा होनी चाहिए। अरब के तत्कालीन सुलतान (इमाम सुलतान) तथा उसके दीवान शेख़सला का नाम भी आया है। प्राणनाथ के सैकड़ों शिष्यों के नाम दिए गए है जिनके नाम दिए गए है उनके नामों तक अभी तक के इतिहास की पहुँच संभव नहीं हुई।

ऐतिहासिक स्थानों मे देवचंद जी की जन्मभूमि उमरकोट (आधुनिक उमरकोट) और प्राणनाथ जी की जन्मभूमि जामनगर को ही बीतककार ने नवतन पुरी कहा है—संप्रदाय में इसे नौतन पुरी ही कहते हैं[५४]। कहा जाता है कि वहाँ के चारण उस समय इसे नवतन पुरी ही कहा करते थे। देवचंद की जागनी और प्राणनाथ का आविर्भाव स्थान होने के कारण भी इनका यह नाम हो सकता है। जन साधारण आज सोराष्ट्र में 'नगर' के नाम से ही पुकारते है। सुदामापुरी का नाम ही पोर बन्दर है जो लालदास की जन्मभूमि है। मेड़ता, (प्र० ३१) जूनागढ़ (१६-१५) दीवबंदर (ड्यू बंदर) (प्र० १६) ठट्ठा (प्र० १६-२०) लाठी बंदर (प्र० २१) मसकत(प्र० २४) आवासी बंदर (प्र० २४-४७) मड़ई बन्दर (२८-२४) सूरत (२८-३१) अटक (३१-६७) गोकुल, मथुरा (३२-६) दिल्ली (३२-१०) और दिल्ली के अंदर उर्दू बाजार (३२-२६) साहगंज (३६-६) रोहिलाखान की सराय (३२-१२) चाँदनी चौक (४०-४४) आमेर (४७-१) सांगानेर (४१-१ उदेपुर (४७ २) मंदसोर (४६-१) रामपुर (४७-२) सीतामऊ (५०-१) उज्जैन (५०-१) बुढ़ान पुर (५१-१४१) बडार (बरार) (५४-३०) एलचपुर (५४-४६) रामनगर (५४५१) बिलेहरी (५७-५) परना (आधुनिक पन्ना) (५७-५२) चित्रकोट (५८-१४६) तथा ओडछा

५४. वही, पृष्ठ ५२

(५८-१६१) आदि नाम बीतक में आए हैं। इन नामों से इन नगरों और मोहल्लों के मध्ययुगीन नामों पर प्रकाश पड़ता है। बीतककार ने अरब को बरारब (५२-२२) कहा है जो बर्रअरब का तद्भव है।

बीतक में वर्णित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ ऐतिहासिक कसौटी पर प्रामाणिक सिद्ध होती हैं। (१) जामनगर पर कुतुब ख़ां का आक्रमण—बीतककार के अनुसार कुतुब ख़ां ने जामनगर पर दो बार चढ़ाई की; प्रथम बार संवत् १७१२ ओर दूसरी बार संवत् १७१६ वि० में औरंगज़ेब युग के इतिहासकार यदुनाथ सरकार के अनुसार सम्राट की आज्ञा से जूनागढ़ के फ़ौजदार कुतुबद्दीन खान खेशगी[५५] के सेनापतित्व में १६६२ दिसम्बर में नवानगर के जाम पर चढ़ाई की जो बीतक के वि० सं० १७१६ से मिलता है। कुतुबुद्दीन को जनसाधारण में कुतुब ही कहा जाता है। (यथा कुतुबुद्दीन की मीनार को कुतुब मीनार) इस प्रकार बीतक में वर्णित दूसरी चढ़ाई इतिहास सिद्ध है। (२) जसबंत सिंह राठौर का अटक पार रहना— बीतक के अनुसार श्री प्राणनाथ जी ने मेड़ता से अपने एक शिष्य गोबरधन को एक पत्र देकर जसवंत सिंह को जाग्रत करने के लिए (१७३१ संवत् में) अटक पार भेजा था। इतिहास सिद्ध है कि औरंगज़ेब ने इसी समय काबुल[५६] पर चढ़ाई की थी। जसवन्त सिंह भी चढ़ाई में गए थे। ब्रजभूषण कृत-वृत्तान्त मुक्तावली में भी गोबरधन का काबुल से लौटकर प्राणनाथ जी के पास जाकर सारा वृत्तान्त कहने का उल्लेख हुआ हैं (३) दिल्ली में श्री प्राणनाथ के धर्म युद्ध के समय औरंगज़ेब का दिल्ली निवास—बीतक के अनुसार प्राणनाथ जी सं० १७३५-३६ बीच १६ माह तक दिल्ली में रहकर धर्म युद्ध का संचालन करते रहे। बाद को १७३७ में उदयपुर की ओर चले गए। यदुनाथ सरकार के अनुसार औरंगज़ेब अफरीदी विद्रोह को दबाकर हशन शदल से मार्च १६७६ (संवत् १७३३-३४ वि०) में दिल्ली लौटा और दिल्ली से वह ३० सितम्बर १६७६ (१७३६-३७ वि०) को उदयपुर के लिए प्रस्थान करता हैं। इस प्रकार प्राणनाथ के दिल्ली-निवास के समय औरंगज़ेब का दिल्ली-निवास इतिहास सिद्ध है। (४) उदयपुर पर औरंगज़ेब की चढ़ाई-बीतक के अनुसार जिस समय सं० १७३६-३७ में श्री प्राणनाथ उदयपुर में थे उसी समय औरंगज़ेब ने अजमेर होते हुए उदयपुर के राना पर चढ़ाई की। इतिहास सिद्ध है कि औरंगज़ेब का यह आक्रमण ५ अक्टूबर १७७९ ई० (सं० १६३६ वि०) को हुआ था। इस प्रकार बीतककार का आक्रमण सम्बन्धी उल्लेख सब प्रकार से इतिहास सम्मत है। इन घटनाओं के अतिरिक्त भी अनेक अति महत्त्वपूर्ण घटनाओं का बीतक में उल्लेख है, किन्तु इतिहास उनकी ओर से मौन है। छत्रसाल प्राणनाथ मिलन का वर्णन छत्रसाल के दरबारी कवि गोरेलाल ने किया है। इतिहास में इस मिलन को उचित स्थान देना चाहिए। इस प्रकार बीतक में आए हुए स्थान, व्यक्तिगत रूप तथा प्रमुख घटनाएँ इतिहास के आधार पर प्रामाणिक सिद्ध होती है।

भाषा की दृष्टि से लालदासकृत बीतक में सत्रहवीं सदी की खड़ी बोली का जीता-जागता अर्न्तप्रान्तीय रूप सुरक्षित है। इस बोली के द्योतक हिन्दवी-हिन्दवीय तथा हिन्दुस्थानी नाम हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम किसी हिन्दू लेखक द्वारा हिन्दी साहित्य

---

५५. हिस्ट्री ऑव औरंगज़ेब, भाग ३ पृ० ४०-४१
५६. वही, भाग ३ पृ० ४०-४१-

में प्रयुक्त होते हैं। छत्रसाल के समसामयिक कवि ब्रजभूषण ने इन शब्दों के बदले 'मध्यप्रदेश' भाषा नाम लिखा है। ध्वनि, रूपरचना, वाक्यरचना सब प्रकार से बीतक सत्रहवीं सदी की खड़ी बोली का प्रतिनिधि ग्रन्थ हो सकता है। गौण रूप से ब्रजभाषा प्रयोग भी मिश्रित हैं, किन्तु मुख्य ढाँचा खड़ी बोली का है। शब्दावली का मुख्य आधार तद्भव रूपों से बना है। गुजराती, सिन्धी, कच्छी के कुछ शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। लालदास श्री प्राणनाथ के उन शिष्यों में थे जो हिन्दू धर्म तथा इस्लाम धर्म की एकता के जोश से परिपूर्ण थे। यही प्राणनाथ की धर्म सभा में क़ुरान को पढ़ा करते थे। इसी धार्मिक जोश के कारण ही बीतककार कुछ फ़ारसी-अरबी शब्दों का विचित्र रूप से प्रयोग करते हैं। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित शब्दों का रूढ़ि अर्थ न लेकर उन्हें अपने नवीन अर्थ में प्रकट करते हैं। धर्म के साथ साथ भाषा सम्बन्धी यह क्रान्ति कभी-कभी सामान्य पाठक को उलझन में डाल देती है। बीतककार अपने धर्म को 'दीन इस्लाम' नाम से पुकारते हैं—

यथा—'मोको लेओ साथ में, दाखिल करो इसलाम'[५७] तब बिहारी जीए कहा— 'न ए राह नहीं इसलाम'[५८]। लेओ सिर तुम अपने एदीन इसलाम का काम।

श्री प्राणनाथ के वेदांती शिष्यों ने इस भाषा प्रणाली का समर्थन नहीं किया। उनकी बीतकों में शास्त्रीय परंपरा के अनुसार संस्कृत शब्दावली का प्रयोग धार्मिक प्रसंगों में हुआ है।

बीतककार अपने अनुयायियों को 'मोमिन' कह कर पुकारते हैं जब कि अन्य बीतककार उन्हें ब्रह्मसृष्टि आदि नाम देते हैं—

'श्री जी आप जाहेर करी। दिया मोमिनों को ताम[५९] इसी प्रकार प्राणनाथ को 'जबराईल'[६०] 'असराफील' का आवेश आता है। लालदास के अनुयायी खुदा के वास्ते लड़ते है क्योंकि उन्हें जुल्म दूर करना है—

'राह खुदा के वास्ते लड़े। मेटन को जुलमात।' अपने तारतम के लिए कभी-कभी लालदास जी 'किल्ली अल्लाकलाम' कहते हैं। चौदह लोक को सर्वत्र 'चौदेतबक' कहा गया है। औरंगज़ेब के कट्टर पंथी अनुयायियों को वह कभी भी 'मोमिन' नहीं कहते हैं। लालदासजी के अनुसार तो सत्य धर्म को न समझनेवाले, धार्मिक अत्याचार करनेवाले ही वास्तव में 'काफिर' हैं। लालदास जी श्री देवचन्द्र जी को हजरत ईसा और तारतम वाणी को 'इल्मलदुंनी' कहते हैं भाषा के क्षेत्र में लालदास की यह क्रान्तिकारिता सामान्य पाठक के अर्थ-बोध में बाधा उपस्थिति करती है। लालदास के क्रान्तिकारी धार्मिक विचारों की पृष्ठभूमि ने इन शब्दों का वास्तविक अर्थ समझा जा सकता है। सामान्य प्रचलित अर्थ लेने से अनर्थ होने की अशंका है। धार्मिक शब्दों के विचित्र प्रयोग के कारण ही आज का सामान्य प्रणामी इन ग्रन्थों का परिचय दूसरों को झिझक के साथ देता है, यद्यपि इसमें झिझक नहीं बल्कि उसे गर्व का अनुभव करना चाहिए। ग्रन्थ में कुछ क़ुरान की

---

५७. वही भाग ३, प्र०
५८. वही प्र० ७,८
५९. दे०, ला० बी० प्र० ३७-३९, ४६
६०. वही, प्र० १५, ६३

आयतें भी उद्धृत की गई हैं— जिनका अनुवाद किया गया है। ग्रंथ चौपाई छंद में लिखा हुआ है, किन्तु छंद गणना के अनुसार नाम मात्र के लिए ही इन्हें चौपाई छंद कह सकते हैं। चौपाइयों की मात्राओं की संख्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया। एक प्रकार से बीतक तुकान्त युक्त गद्य रचना है। संभवतः मध्ययुग का गद्य तुकान्त ही होता था।

बीतक ऐसा जीवनवृत्त समस्त हिन्दी साहित्य में बीसवीं शती के पूर्व दुर्लभ और खड़ी बोली में तो अलम्य है। सत्रहवीं शती मे लिखित यह जीवनवृत्त निस्संदेह खड़ी बोली का प्रथम जीवनवृत्त है। अत्युक्ति नहीं होगी यदि कहा जाए की समस्त हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का यह प्रथम जीवनवृत्त होगा। बीतक ही एक प्रकार से उत्तरी भारत को प्रथम प्रामाणिक खड़ी बोली की रचना है— क्योंकि बीतक की रचना उर्दू के प्रथम कवि फायज, जटल और हातिम से पूर्व ही हो चुकी थी। इस प्रकार खड़ी बोली (हिन्दू-उर्दू) की प्रामाणिक रचना होने के कारण भी यह ग्रन्थ अपना अद्वितीय स्थान रखता है।



विश्व धर्म संकल्पना का आधार प्रेमा भक्ति

प्रो. डा. हरेन्द्र प्रसाद वर्मा
स्नातकोतर दर्शन विभाग
भागलपुर विश्वविद्यालय
बिहार

धर्म आत्मा का परमात्मा से पुनर्मिलन है—योग है। धर्म का अंग्रेज़ी पर्याय 'रिलिजन' शब्द Relegare से बना है, जिसका अर्थ है फिर से जोड़ना। परन्तु धर्म जहाँ जोड़नेवाली शक्ति है, वहाँ वह विघटन और विनाश का कारण भी रहा है। मानव इतिहास में जितना रक्तपात, हिंसा और दंगे धर्म के नाम पर हुए हैं, उतना शायद किसी अन्य प्रश्न पर नहीं। महामति प्राणनाथ के काल में भी धार्मिक वैमनस्य और दंगों की प्रधानता थी। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि कई छोटे-बड़े सम्प्रदाय थे और उनमें सतत संघर्ष चलता था। केवल हिन्दू धर्म में ही सगुण, निर्गुण, वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य आदि विभिन्न सम्प्रदाय थे—जिनमें बराबर संघर्ष की नौबत आती रहती थी। मुसलमानों में भी शिया, सुन्नी आदि कई स्पष्ट सम्प्रदाय थे, जो आपस में झगड़ रहे थे। फिर हिन्दू-मुसलमानों का संघर्ष भी चरम सीमा पर था। इन बातों से महामति के संवेदनशील हृदय पर गहरी ठेस पहुँची। उन्होंने पाया कि न तो हिन्दू—धर्म का मर्म समझ रहे हैं और न मुसलमान ही। दोनों बाह्याडम्बर, कर्मकांड आदि में खोये हुए हैं। कोई धर्म का रहस्य नहीं समझता, इसी कारण उनमें संघर्ष है। अहंकार ही सबको लड़वाता है—

लड़ फिर के जुदे हुए, हिन्दू मुसलमान।
और खलक केती कहूँ, सब में लड़े गुमान।। खुलासा, ७०/९०
जो कुछ कहया कतेब ने, सोई कहया वेद।
दोऊ बंदे एक साहब के, पर लड़त बिना पाए भेद।। खुलासा, १२/४२

महामति ने दोनों में निहित गफ़लत, कुरीति, अन्ध विश्वास एवं ग़लत धारणाओं की आलोचना की। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके ख़िलाफ़ हो गए। उन्होंने स्वयं कहा—

करे हिन्दू लड़ाई मुझसों, और शरीयत मुसलमान।
पाया अहमद माशूक हक का, अब छोड़ों नहीं फुरकान।।
खुलासा, १/१००

परंतु महामति ने उन पर क्रोध नहीं किया, बल्कि जिस प्रकार जीसस ने अपने

शूली चढ़ानेवालों को भी क्षमादान देते हुए कहा था—'हे पिता ! उन्हें माफ़ कर देना—वे अबोध हैं। वे नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।' उसी प्रकार महामति ने भी पाया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अज्ञानवश आपस में झगड़ रहे हैं। वे रीति-रिवाज़ों और कर्मकांडों को ही धर्म मान रहे हैं और आध्यात्मिक अनुभव, जो धर्म का प्राण है—उसे भूल गए हैं। वे केवल भाषा और रहन-सहन को लेकर झगड़ रहे हैं। अतएव उन्होंने किसी का पक्ष स्वीकार नहीं किया, बल्कि दोनों की त्रुटियों की ओर संकेत करते हुए दोनों को समान रूप से प्रबोध दिया। उनका लक्ष्य हिन्दू, मुसलमान आदि के बीच झगड़ा मिटाकर विश्व-धर्म की स्थापना करना था—

बोली जुदी सबन की, और सबका जुदा चलन।
सब उरझे नाम जुदे धर, पर मेरे तो कहना सबन।।
सनंध, १/१४

करना सारा एक रस, हिन्दू मुसलमान।
धोखा सबका भान के, कहूँगी सबका ज्ञान।।
सनंध, ३/३

उनका आर्विभाव ही मानो संसार में फैले धार्मिक वैमनस्य, झगड़ों और भेद-भाव को मिटाने के निमित्त हुआ था। विश्वधर्म की स्थापना ही उनका अभीष्ट था—

साहिब आए इन जिमी, कारज करने तीन।
सबका झगड़ा मेटके, या दुनिया या दीन।। खुलासा, १३/८६

एक धर्म का दूसरे धर्म के माननेवाले पर वर्चस्व ही धार्मिक कलह और कटुता का मूल कारण है। ऐसी स्थिति में विश्व धर्म की स्थापना कैसे हो, इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि धार्मिक कलह और वैमनस्य के मूल कारण क्या हैं ? महामति के अनुसार धर्मों के आपसी संघर्ष का मूल कारण है—अज्ञान और अहंकार। उन्होंने कहा—

मायना ऊपर का सबों लिया, और लिया अहंकार।
फिरके फिरें सब हक से, बँधे जाएँ कतार।। खुलासा, १०/११

अज्ञान और अहंकार मिलकर ही सम्प्रदाय बनाते हैं और संकीर्णता और साम्प्रदायिकता को जन्म देते हैं। अज्ञान की स्थिति में व्यक्ति सत्य से अपरिचित रहता है, फलस्वरूप वह शब्दों का बाह्यार्थ पकड़ लेता है। वह शब्दों के गुह्यार्थ या निहितार्थ को ग्रहण नहीं करता, बल्कि उनके स्थूल अर्थ को ग्रहण करता है जो प्रायः अभिप्रेत अर्थ से उल्टा होता है। इस प्रकार का व्यक्ति शास्त्रीयता में उलझ जाता है। हिन्दू मानते हैं कि वेदों में जो कहा है, वही सत्य है। ईसाई कहते हैं कि बाइबिल में जो कहा है, वही सत्य है। मुसलमान मानते हैं कि कुरान में जो कहा है, वह परम सत्य है। इस प्रकार विभिन्न धर्मावलंबी केवल भाषा में उलझकर ही रह जाते हैं, वे सत्य को खो देते हैं और भाषा को लेकर ही झगड़ने लगते हैं:

बाकी तो वेद कतेब में, दोऊ देत हैं साख।
अंदर दोउ के गफलत, लड़त वास्ते भाख।। खुलासा, १२/५०

अज्ञान की स्थिति में हम नाम-रूप को ही सत्य मान लेते हैं और परमात्मा को—सार को—खो देते हैं। जो अनाम, अनीह और असल है, उनको कुछ नाम और फिर ऊपरी रूप दे देते हैं और नाम और रूप को लेकर झगड़ पड़ते हैं। हम भूल जाते हैं कि विभिन्न

नामों और रूपों में जानी जानेवाली सत्ता एक ही है—

बोली जुदी सबन की, नाम जुदे धरे सबन।
चलन जुदा कर लिया, ताथे समझ न परी किन।। खुलासा, १२/४३

धार्मिक वैमनस्य का दूसरा कारण है अहंकार। अहंकार अज्ञान की ही संतान है। अहंकार के कारण हर धर्मावलंबी मानता है कि उसका ही धर्म सर्वोत्तम है और बाक़ी धर्मों से उसका कोई साम्य नहीं है। धर्म परिवर्तन के पीछे भी यही मनोवृत्ति कार्य करती है। जब हम दूसरों को अपने धर्म में परिवर्तित करना चाहते है, तो हम यही मानते रहते हैं कि हमारा धर्म ही सर्वोत्तम हैं— वही मुक्ति का मार्ग है, जबकि दूसरे लोग अज्ञानी हैं। एक धर्म को दूसरे धर्म से तोड़ते हुए हम यह भूल जाते हैं कि मूलतः सभी एक ही हैं। महामति ने कहा है—

ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक।
दोऊ मुठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक।। सनंध, ४०/४२

विश्व धर्म का स्वरूप या मोटे तौर पर विश्वधर्म क्या है, इसे समझने के लिए यह जानना सहायक होगा कि वह क्या नहीं हैं—

—विश्व धर्म सभी धर्मों का अंत कर किसी एक धर्म की स्थापना करना नहीं है।

—विश्वधर्म समाहरण भी नहीं हैं। अर्थात् यह विभिन्न धर्मों से कुछ अच्छी बातों को लेकर एक धर्म विशेष का निर्माण करना नहीं है।

—विश्वधर्म सभी धर्मों को जोड़कर एक धर्म का निर्माण करना भी नहीं है, क्योंकि न तो वह संभव है और न ही काम्य ही।

—विश्वधर्म अन्य धर्मों से पृथक् कोई धर्म नहीं है। हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म और विश्व धर्म इस प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

—विश्वधर्म किसी भी धर्म विशेष को चाहे वह हिन्दू धर्म हो या मुसलमान या ईसाई—सत्य और ज्ञान का एकाधिकार देना भी नहीं है।

—विश्वधर्म सभी लोगों पर एक विश्वास, एक मिथक और एक कर्मकांड थोपना भी नहीं है, क्योंकि व्यक्ति-भेद से रुचि-भेद में अंतर होता ही है।

तब प्रश्न है कि विश्वधर्म क्या है ? संक्षेप में, विश्वधर्म सभी धर्मों के सारतत्त्व को मानने और तदरूप जीवन जीने में हैं। इनमें भेद रूपात्मक है। सार में कोई भेद नहीं है। सत्य एक है, परमात्मा एक है। इस कारण धर्म—जो परमात्मा का ज्ञान और उसके प्रति प्रेम है— वह भी एक है। सम्प्रदाय भले ही अलग-अलग हों, लेकिन धर्म एक है। सम्प्रदाय धर्म नहीं है। सम्प्रदाय—शरीर है और धर्म आत्मा। शरीर नाम रूप की दृष्टि से भले ही भिन्न हो, परन्तु आत्मा के तल पर कोई भिन्नता नहीं होती। महामति जी ने कहा है—

जुदे जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेख अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।।
नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उम्मत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।। खुलासा, १२/३८

विश्वधर्म की स्थापना कैसे हो ? इसके क्या उपाय हैं ? इसके लिए महामति प्राणनाथ ने ये उपयोगी सूत्र दिये—

१. सत्यानुभव और स्वानुभव :

धर्म के सार को पहचानना सत्यानुभव और स्वानुभव द्वारा ही संभव है। सत्य के अनुभव से ही संकीर्णताएँ मिटती हैं। अज्ञान और भ्रम का निराकरण होता हैं। एकमात्र परमात्मा के अनुभव से ही अहंकार का विनाश हो सकता हैं। परमात्मा का बोध होते ही 'मैं' की सत्ता स्वयं विलीन हो जाती है और तब केवल परमात्मा रह जाता है—

जब लग मैं सुपने मिने, नाहीं खसम पेहेचान।
तब लग मैं सिर अपने, बोझ लिया सिर तान।।
अब खसम ख्वाब की सुध परी, और सुध परी हुकम।
तब मैं में जरा न रही, मैं बैठी तले कदम।। खिलवत, ३/४३, ४४

अहंकार मिटते ही मेरा अलग धर्म नहीं रह जाता। तब व्यक्ति केवल धर्म का होता है। जिसका स्वरूप विश्वजनीन है। उस समय हृदय में कोई कलुष, कोई वैर नहीं रहता—अतएव सभी धर्म का सार एक ही प्रतीत होता है—

एक दीन तब होवसी, जब साफ होवे दिल।
एक हक बिना न होवहीं, जो चौदे तबक आवे मिल।। कि. छोटा, २/२४

साथ ही नाम रूप का भेद भी तभी तक रहता है जब तक परमात्मा का अनुभव नहीं होता। जब परमात्मा का बोध होता है तो सभी नामों में, सभी रूपों में, मात्र परमात्मा ही दृष्टिगत होता हैं। और तब व्यक्ति सारे नाम रूप के परे चला जाता है। सार की यह पहचान ही विश्वधर्म का मूल बनती हैं—

जात भेष ऊपर के, ए सब छल की जहान।
जो न्यारा माहें बाहर से, तुम तासों करो पहचान।। सनंध, २६/५

२. शास्त्रों का गूढ़ार्थ ग्रहण :

धार्मिक वैमनस्य का कारण चूँकि भाषागत भेद को पकड़ लेना है, इसलिए महामति मानते हैं कि भाषागत भेद को भूलकर सत्य को समझना और शास्त्रों का गूढ़ार्थ ग्रहण करना नितांत आवश्यक है—

अर्थ अंदर का जिन लिया, मायने पहचाने तिन।
खासों की एही बंदगी, ए जाने मोमिन दिल वतन।।

प्रायः शास्त्रों में शब्द तो परमात्मा द्वारा प्रतिबोधित होते हैं परन्तु उनमें अर्थ मेरा और आपका होता है। अतएव ईसा और मुहम्मद का झगड़ा वास्तव में उनका झगड़ा नहीं है बल्कि आपका और मेरा झगड़ा है—जो हम सब उनके नाम से लड़ रहे हैं। महामति ने कहा है—

पढ़ पढ़ वेद कतेब को, पर हुआ न दिल रोसन।
अपनी अपनी खोजिया, पाया नहीं खुदाय।।

वास्तव में ईसा रूह अल्लाह, रसूल मुहम्मद और बुद्ध निष्कलंक अवतार, इमाम मेहदी का ज्ञान एक ही है—जहाँ द्वैत है, वहाँ सत्य और परम तत्त्व नहीं—

महमद ईसा बुध जी, तीनों का एक इलम।
हक नहीं ब्रह्मांड में, ए पैदा जिनके हुकम।।

यही कारण है कि महामति ने सभी धर्म ग्रंथों में जो संकेत दिए गए हैं—उन संकेतों के अभिप्रायों और इशारों को खोलने की चेष्टा की थी, जिससे सभी लोग धर्म के सार

को समझें और विश्वधर्म की स्थापना हो सके—

वेदांत गीता भागवत, दैयां इसारतां सब खोल।
मगज मायने जाहिर किए, माहें गुझ हते जो बोल।। खुलासा, १३/६६
अंजीर-जंबूर तौरेत, चौथी जो फुरकान।
ए मायने मगज गुझ थे, जो जाहेर किए बयान।। खुलासा, २३/६७

विभिन्न धर्म बाह्य रूप से अलग पथ दिखायी देते हैं किन्तु सबने एक परब्रह्म की ओर इंगित किया है। बंदगी, उपासना, भक्ति आदि उसे प्राप्त करने के साधन बताये गये हैं। सबने प्रेम को सर्वोपरि और परमात्मा का व्यक्त स्वरूप माना है। नवधा भक्ति में भी प्रेम और समर्पण को प्राथमिकता दी गयी है। 'पंथ होवे कोट कलप प्रेम पहुँचावे मिने पलक' प्रेम ही साधना, साध्य और गंतव्य है। परमात्मा ही प्रेम और गंतव्य है। परमात्मा से प्रेम व्यक्त करने के लिये मानव ने जितने सम्बन्ध स्थापित किये उनमें प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी का संबंध सर्वाधिक मधुर एवं मोहक संबंध होता है। महामति ने मधुरोपासना में आत्मा और परमात्मा के साथ आशिक़-माशूक का संबंध ही माना है।

तुम दुल्हा में दुलहिनी, और न जानूँ बात।
इसक सों सेवा करूँ, सब अंगों साख्यात।।
किरंतन, ६२/१७

संत जॉन ने भी कहा है—"हे प्रिय ! मेरी आत्मा को अपनी दुल्हन बनाकर मेरा आलिंगन करो। जब तक मैं तुम्हारी बाँहों में न होऊँगी, तब तक मुझे अन्यत्र कहीं आनंद नहीं मिलेगा।"[1]

मधुरोपासना में स्त्री-भाव से प्रिय को अंगीकार किया जाता है, क्योंकि पुरुष में अहंकार प्रबल होता है। पुरुष स्वभावतः आक्रामक होता है। उसकी जड़ता और काठिन्य ही परमात्मा से उसके मिलन में बाधक है। इस कारण मधुरोपासना में स्त्री-भाव ग्रहण किया जाता है। स्त्री-भाव में कोमलता है—कमनीयता है और है—सहज समर्पण का भाव ! इसमें अहंकार सहज ही विगलित हो जाता है, जिससे आत्मा का परमात्मा से मिलन सरल और विधायक हो जाता है। पुरुष बर्फ़ के ढेले के समान कठोर बना रहता है, इस कारण वह अपना अस्तित्व (Identity) अलग बनाये रखता है—उसका अन्य से मिलन संभव नहीं है। परन्तु वही बर्फ़ जब पिघलकर पानी बन जाता है, तो पानी पानी के संग सहज ही मिल जाता है, और कोई भेद, कोई दुराव, कोई विभाजक रेखा—नहीं रह जाती। इसी प्रकार अहं के विगलित होते ही आत्मा का परमात्मा से सहज ही मिलन हो जाता है—

'नानक लीन भयो गोविन्द संग, ज्यों पानी संग पानी।'

परमात्मा सच्चिदानंद है। वह चैतन्य स्वरूप है। परमात्मा चैतन्य की उपलब्धि के लिए तदनुरूप चैतन्य एवं संवेदनशीलता आवश्यक है। स्त्रियाँ पुरुष की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होती हैं। इसलिए परमात्मा से मिलन के लिए स्त्री-भाव एवं स्त्री के समान संवेदनशीलता अपेक्षित है। यही कारण है कि संसार के प्रेमी, चिन्तक एवं भक्तजन

---

1. "It may please, thee unite me to thyself, making my soul thy bride. I will rejoice in nothing till I am in thine arms." -St. John of the cross.

स्त्री-भाव अपनाने और संवेदनशीलता बढ़ाने पर ज़ोर देते हैं। महामति ने कहा है—

'पुरुषपणें द्रष्टें न आवे, ए अबलापणें लीजे अंग। (किरंतन, ६४/८)।

ईसाई चिन्तक भी कहते हैं—

—स्वयं को दुल्हन की भाँति दूल्हे के आलिंगन के लिए तैयार करो।[२]

जिस प्रकार मिलन की अदम्य कामना, विरह का दारुण दुःख एवं अपनी भूल पर पश्चात्ताप महामति के दर्शन एवं 'श्रीरास' (प्रकरण-४) के प्रणयन में अभिव्यक्त हुआ है। उसी प्रकार की भावना 'सौंग ऑव सोलोमन' में भी परिलक्षित है, जो 'श्रीरास' में बाइबिल की दयिताकांक्षा को प्रतिष्ठित कर देती है।

आत्माएँ अपने अज्ञान और हठ के कारण परमात्मा से विलग हो गईं और वे ब्रज-वनिताओं के रूप में अवतरित हुईं। परन्तु ब्रज में अवतरण के साथ ही उनके मन में बस एक ही साध थी कि प्रियतम से मिलन कब होगा !

उपजत ही मन आसा घनी।
हम कब मिलसी अपनो धनी।।

प्रकाश हिन्दुस्तानी, ३७/२०

ब्रज-वनिताओं का मन सदा श्री कृष्ण में रमण करता रहता था। वे सतत उनका ही ध्यान गान, उनका ही स्मरण और गुण-कथन करती रहती थीं। उनका हृदय सदा मिलन की कामना में डूबा रहता था।[१] उनका प्रियतम साँवला सलोना है। उनका चेहरा उज्ज्वल गुलाल की भाँति है। उनके चेहरे की आभा अत्यन्त मनोहर है। उनके तेज का क्या कहना ! वे तो प्रकाश पुंज हैं। उनकी बाँहें उनकी प्रियतमाओं को अत्यन्त आकर्षक लगती हैं और वे उन बाँहों के बंधन में—आलिंगन पाश में बँध जाना चाहती हैं।

मुख मेरे महबूब का, रंग अति उज्जल गुलाल।
क्यों कहूं सलूकी नाजुकी, नूर तज्जली नूरजमाल।
बाहें मेरे मासूक की, प्यारी लगें मेरी रूह।
हक हुकम यों कहावत, सो वाही जाने हकहू।।

सिनगार, १२/१,२

गोपियाँ कहती हैं, 'हे सखी, मैं अपने श्याम की शोभा का वर्णन कैसे करूँ ? वह शब्दातीत है, वह अप्रतिम है। नश्वर मुख से ईश्वर की शोभा का वर्णन करना दुष्कर है। उनके श्री चरणों का अंगूठा कोमल है, नख में हीरे की ज्योति है। उँगलियाँ सुकुमार हैं। उनके रंग और रूपाभ को देखकर—मन सहज ही मोहित हो जाता है।[२] अतएव गोपियाँ श्री चरणों में ही पड़ी रहना चाहती हैं।[३] इंद्रावती कहती हैं, 'सखी, चलो, स्वामी के पास चलें प्रियतम के गले में बाँहें डालकर आनंद विहार करें।'[४]

---

2. "Prepare thyself as a Bride to receive the Bridegroom."

३ सोभा रे मारा स्याम तणी, सखी केणी पेरे बरणवुं एह।
सबदातीत मारा बालाजीनी सोभा, मारी जिभ्या आंणी देह।।
चरण तणां अंगूठा कोमल, नखहीरा तणां झलकार।
रंग तो जोई जोई मोहिए, पासे कोमल आंगलियो सार। श्रीरास, ८/२.३

४ सखी इन्द्रावती एम कहे, चालो जैए बालाजी ने पास।
कंठ बलाई मारा बालाजी संगे, कीजै रंग विलास। श्रीरास, ११/८

'सौंग ऑव सोलोमन' की नायिका भी कहती हैं—

मेरा प्रियतम शुभ्र और गुलाबी है।
वह हज़ारों में एक है।
उसका मस्तक दमकते सुवर्ण-सा
उसके कुंतल झबरैले और काक की भाँति काले हैं।

गोपियों की भाँति उसकी भी कामना है—

हे प्रियतम ! तुम सुन्दर हो, सरस हो।
हमारी सेज हरी है।
तुम्हारा बायाँ हाथ मेरे सिर के नीचे हो।
और दायाँ मुझे आलिंगन पाश में बाँधता हो।
(१/१६, २/६)

आश्विन मास की शरद् पूर्णिमा में जब पूर्णचंद्र की छटा सर्वत्र छिटकी हुई थी, श्रीकृष्ण ने अपनी वंशी टेरी—गोपियों का आह्वान किया। गोपियाँ जहाँ, जिस स्थिति में थीं, वहीं, उसी स्थिति में श्री कृष्ण का आह्वान सुनकर विकल हो दौड़ पड़ीं। 'सौंग ऑव सोलोमन' की नायिका भी अपने प्रियतम का आह्वान सुनती है। परमात्मा सदैव हमारा आह्वान कर रहा है—हमें आवाज़ दे रहा है। भाग्यवान् हैं वे, जो उसके नीरव स्वर—उसकी बाँसुरी की टेर—सुन पाते हैं। 'सौंग ऑव सोलोमन' की नायिका यह महसूस करती है कि उसका प्रियतम उसे पुकार रहा है—

मेरे प्रियतम ने मुझसे कहा—उठो
मेरी प्रियतमा, मेरी सुन्दरी, चलो, निकल पड़ो।
क्योंकि देखो शरद ऋतु बीत गयी।
वर्षा समाप्त हो गयी।
धरती पर पुष्प प्रस्फुटित हो रहे हैं।
चिड़ियों के गाने की बेला आ गयी है
और पक्षियों की चहचहाट
सारे प्रदेश में सुनाई पड़ रही है।

जिस प्रकार श्री कृष्ण की वंशी की टेर पर गोपियाँ अपने घरों से निकल पड़ी थीं, उसी प्रकार 'सौंग आव सेलोमन' की दीवानी नायिका भी अपने प्रियतम का आह्वान सुन उसकी खोज में निकल पड़ती है। वह नगर की सड़कों पर चक्कर लगाती है, राजपथ पर उसे ढूँढ़ती है। राह में जो कोई उसे मिलता है, उससे अपने प्रियतम साँवरे-सलोने के विषय में पूछती है। अन्ततः उसका मिलन अपने प्रियतम से हो ही जाता है—

मैं थोड़ी ही दूर गई थी कि मैंने उन्हें पाया जिन्हें मेरी आत्मा प्यार करती है।
मैंने उन्हें पकड़ लिया, मैं उन्हें जाने नहीं दूँगी।
जब तक मैं उन्हें अपने मैके न ले जाऊँ।
अपनी माता के गृह तक, जिसने मुझे जन्म दिया है।

यद्यपि प्रेमिका का ध्यान सतत अपने प्रेमी में रहता हे, फिर भी जब मिलन का क्षण आता है तो उसका गर्व, उसका अहंकार, उसका प्रमाद आड़े आ जाता है। माया, आत्मा का परमात्मा से विछोह करा देती है। रास-रमण के समय गोपियाँ भी प्रेमगर्विता

हो गयीं, फलस्वरूप श्री कृष्ण अन्तर्धान हो गए। 'सौंग ऑव सोलोमन' की गर्विता नायिका ने भी प्रमादवश अपने प्रियतम को खो दिया। वह भी माया का शिकार हो गयी—

'मैं सोती हूँ परन्तु मेरा हृदय जागता है।
यह मेरे प्रियतम की आवाज़ है।
वे द्वार पर दस्तक देकर कहते हैं—
द्वार खोलो, मेरी प्रिया ! मेरी पंडुकी !
मेरी अज्ञता !
मेरे बाल रात के ओस-बिन्दुओं से भींग गए हैं,

परन्तु उस नायिका का प्रमाद आड़े आ गया। वह इस ऊहापोह में रही कि—

जब उन्होंने आवाज़ दी, तो मेरी आत्मा चूक गई।
मैंने उन्हें खोजा, परन्तु उन्हें पा न सकी।
मैंने उन्हें पुकारा, परन्तु वे अनुत्तरित रहे।
नगर में भ्रमण करने वाले प्रहरियों ने मुझे देखा।
उन्होंने मुझे प्रताड़ित कर मुझे घायल कर दिया।
प्राचीर के रक्षकों ने मेरा दुपट्टा छीन लिया। (५/३-७)

—इस प्रकार वह माया के हाथों लुट गयी।

महामति के मन में भी अपने उस प्रमाद के प्रति गहरी व्यथा, ग्लानि, अनुताप, पश्चात्ताप और धिक्कार का भाव है, जिसने उन्हें अपने द्वार पर आए प्रियतम को पहचानने नहीं दिया। वे गुरु से मुख मोड़ कर दीवानगिरी करने चले गए। इस प्रकार वे ठगनी माया के हाथों छले गए।

पुकार चले मेरे पीउजी, मैं तो नींदे में उरझीअ रे।
अब ढूँढे मेरा जीव रे, सो सजन अब कित पाइए।।
सई रें, पीउ की बात मैं कासों कहूँ, मोसों आए कियो मिलाप।
मेरे वास्ते माया मिने, क्यों कर डार्‌या आप।। प्रकाश हि० ८/१-२

मेरी सैयल रे, साह आए थे मेरे घर।
मैं पहेचान ना कर सकी, पीउ चले पुकार पुकार।।
नींद ऐसे भई निगोड़ी, ए तुम देखों रे सई।
दिन दो पोहोरे जागते, मोहे काली रैन भई।।
सजन मेरा चल गया, अब रहूँगी विध किन।
वस्त गई जब हाथ थें, अब रोवना रात और दिन।।
अब कहा करूँ, कहाँ जाऊँ, टूट गई मेरी आस।
कहाँ वतन कौन बतावें, पीउ ना देखों पास।। (प्रकाश हि०, ७/१, ३, ५, १३)

द्वार आए धनी को नहीं पहचानने का अनुताप महामति के शब्दों में स्पष्ट है—

'मुझे निरन्तर इस बात का दुख सालता रहता है कि वह निधि मेरे हाथ आकर मुझसे दूर हो गयी।'

विरह की सघनता चित्त को प्रियतम में एकाग्र कर देती है और उस उन्मनी अवस्था में एक बार प्रभु पुनः दर्शन देते हैं। जब गोपियाँ विरह से अत्यन्त व्याकुल हो गईं, तो श्री कृष्ण पुनः प्रकट हो गए और उन्होंने उन्हें भाँति-भाँति से रास का आनंद दिया।

तब गोपियों ने उन्हें उपालम्भ दिया कि—

'आप हमें रोती-बिसूरती छोड़कर क्यों चले गए थे !' तब श्री कृष्ण ने उन्हें प्रीत की यह रीत बताई कि प्रेम में उभय पक्ष को समान पीड़ा होती है। मात्र गोपियाँ ही विरह-ज्वाला में दग्ध नहीं हुईं। श्री कृष्ण भी उतने ही सन्तप्त रहे; क्योंकि अपनी प्रियतमाओं को तड़पते हुए वे नहीं देख सकते हैं—वे उनसे एक क्षण भी अलग नहीं रह सकते हैं।

सखियों तमें साँचु कह्यूँ, ए बीती छे मूने बात।
तमने व्रह उपनूं मारो, हूँ कहूँ तेहेनी भांत।। श्रीरास, ४७/३५

फिर गोपियों को गले लगाकर उन्होंने कहा—"हे सखी! तुम ऐसा उपालम्भ मुझे क्यों देती हो ? तुम इस प्रकार दुःखी क्यों होती हो ? तुम तो मेरे हृदय का प्राण हो।" उन्होंने उनका चुम्बन लेकर उनका चित्त चुरा लिया और वादा किया कि—'सखियों, तुम जैसा कहोगी, मैं वैसा ही करूँगा। मैं अब अपनी प्रियतमाओं से अलग नहीं रहूँगा। तुम पहले भी बहुत व्यथित हुई हो। अब दुःख मत करो। मैं तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण करूँगा और तुम्हें सब भाँति सुख दूँगा।' इन वादों के साथ वे उन्हें अपने धाम ले गए।

महामति ने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी परमात्मास्वरूप गुरु से विरह को अत्यंत गहराई से अनुभव किया था—जिसका विस्तृत निदर्शन 'प्रकाश' की कई चौपाइयों में द्रष्टव्य है। वह अपनी समस्त हार्दिकता और आतुरता के उपरांत भी इस बात के लिए आजीवन अनुतप्त रहे कि गुरु के वेश में परमात्मा देह धारण कर इस मायिक विश्व में प्रकट हुए, परन्तु वे उन्हें पहचान न पाये और माया के शिकार हो गए—

अवगुन ना देखे अपने, पीउ मेहेर करी फेर अब।
धाम धनी तुझ कारने, आया माया में दोए बेर।। प्र० हि०, १४/२
मेरी सैयल रे, साह आये थे मेरे घर।
मैं पहचान ना कर सकी, पीउ चले पुकार कर।। प्र० हि, ७/१

अपनी अन्यमनस्कता में प्रीतम को खो देने का स्वर 'सौंग ऑव सोलोमन' में भी तीव्र रूप से व्यक्त हुआ है। इन्हीं भावों से 'श्रीरास' का भी प्रारम्भ होता है और विरह-वेदना की यह गाथा षट्रितु, प्रकाश, सिन्धी वाणी, कलश आदि में भी मुखरित है।

'श्रीरास' ग्रंथ इस बात का निदर्शन है कि कैसे व्यक्तिगत पीड़ा—सार्वभौम पीड़ा का रूप ले लेती है। लौकिक जीवन की अनुभूति पारलौकिक अनुभव की गहन गहराई में उतर जाती है। यही अनुतप्त अनुभूति आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध-विरह और मिलन की 'आर्किटाइपल' भावना को उद्दीप्त और प्रदीप्त करती है। जैसे कोई संकेत, उपमान या प्रतीक—अवचेतन में पड़ी अतीत की भूली-बिसरी स्मृतियों को जगा देते हैं, उसी प्रकार महामति के जीवन की कतिपय घटना-स्थितियों ने उद्दीपन रूप में उनकी उन शाश्वत अनुभूतियों को उकसाया है, जो आत्मा सदा से परमात्मा के विरह में अनुभव करती है। निजी और वैयक्तिक अनुभूति ही गहराकर गोपियों की विरह वेदना में ढल गई, जो प्रिय-विरह-वेदना सुलेमान के गीतों में भी अभिव्यक्त है। 'श्री रास' और 'सुलेमान के गीत' एक ही 'आर्किटाइपल' अनुभव की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

अपने व्यक्तिगत जीवन की उन अनुभूतियों को जिन्हें महामति ने अनुभव किया

और जिनका उनके जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा, उनकी ओर महामति ने 'श्रीरास' के प्रारम्भ में ही संकेत किया है। उन्होंने माया को 'महाठगनी' बताते हुए उसकी अपरिमित शक्ति का उल्लेख किया है—

कहे इन्दावती बल्लभा, ए माया छे अतिछल।
हवे जुध मांड्यूं छे अमसूँ, ऐहेनो कह्यो न जाय बल।। श्रीरास, १/८

उन्होंने तीन बार कठिन युद्ध किया। परन्तु उन्होंने स्वीकार किया है कि पीछे उनकी गति-मति मारी गयी और वे माया के शिकार हो गये।

बाहें ग्रही लेई नीसरी, में त्रण जुध कीधां फरी-फरी।
पछे गत मत मारी हरी, लेइ बस पोताने करी।। श्री रास, १/१३

माया के फेरे में पड़कर उन्होंने घर आये प्रियतम को उसी प्रकार भुला दिया जिस प्रकार 'सौंग ऑव सोलोमन' की नायिका ने अपने प्रियतम को प्रमादवश भुला दिया। इस कारण दोनों के अनुताप में पर्याप्त समानता है। जिस प्रकार 'सौंग ऑव सोलोमन' की नायिका पश्चात्ताप ग्रस्त है कि उसने भ्रांतिवश अपने प्रियतम को नहीं पहचान, उन्हें क्यों भुला दिया ? उसी प्रकार महामति को यह पीड़ा बराबर सालती रही और यह टीस बराबर उसी प्रकार बनी रही कि उन्होंने अपने गुरु से क्यों मुख मोड़ लिया ? यह ग्लानि-भाव समय-समय पर और यथास्थल विभिन्न रूपों में—'श्री रास', 'प्रकाश' और 'कलश' में फूट पड़ा है। साथ ही, नूह तोफ़ान की पुरा गाथा—जिसमें नूह का पुत्र साम (श्याम) अपने लोगों को जिस 'गार्डन आव द ब्लेसिड' में ले गये—उसे ही महामति ने 'वृंदावन' कहा। वहाँ की लीला रसमयी 'रास' है। इसलिए भी महामति ने अपने 'श्रीरास' ग्रंथ को 'इंजील' वाणी कहा। श्रीमद्भागवत और इंजील में जो गोपनीय मिलन प्रसंग अधूरा रहा—वह 'श्री रारा' में यानी महामति वाणी में पूर्ण हो गया।

स्पष्ट है कि विश्व धर्म का मतलब महामति की दृष्टि में धर्म के मर्म को जानना है। सार्वभौम सत्य का पहचानना और सबके प्रति प्रेम भाव रखना ही विश्वधर्म का स्वरूप है। बोध की एकता का स्वरूप है। बोध की एकता से प्रेम की एकता अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रेम में एकांगी होना— एक हो जाना अद्वैत में स्थित होना है। विश्व धर्म का आधार प्रेम है और परमात्मा को पाने का उपाय प्रेमाभक्ति है—जिसे अंगी-अंगना रूप में सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है।



जागनी : सार्वजनीन आत्मोत्थान का संकल्प

डॉ. रणजीत साहा
साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन, नयी दिल्ली

महाभारतकार व्यासदेव ने जीवन के अंतिम चरण में बड़ी निराशा के साथ यह घोषित किया था, "धर्म ही प्रधान वस्तु है उसी से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। लेकिन विडम्बना यह है कि मैं बाँहें उठाकर चिल्ला रहा हूँ और कोई मेरी बात नहीं सुन रहा, कोई मेरा अनुरोध मान नहीं रहा—"

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म किं न सेव्यताम्।।

एक अर्थ में महामति का धार्मिक आह्वान और जागनी अभियान व्यासदेव के आह्वान को ही युगीन सन्दर्भों में ध्वनित करता है। लेकिन महामति मात्र उद्घोषणा या टिप्पणी कर चुप नहीं बैठते। वे अपने समय और समाज के चतुर्दिक् व्याप्त अवसादपूर्ण और विडम्बनाग्रस्त परिवेश में विद्यमान समर्थ सत्ता और जुझारू व्यक्तियों को प्रेरित करते हैं ताकि वे धर्म की रक्षा के लिए दौड़े आयें। अपनी निगोड़ी नींद का परित्याग करें तथा श्रेष्ठ मानव मूल्य के रूप में प्राप्त—'मनुष्यत्व' की रक्षा के लिए कमर कसकर खड़े हों। यहाँ 'हिन्दू बनाम इस्लाम' जैसी प्रस्तावित या प्रायोजित कोई मुठभेड़ भिड़न्त या युद्धघोष जैसी कोई पहल नहीं है। यह उस अन्धमनोवृत्तिवाले शासक के विरुद्ध एकजुट होने का आह्वान है, जो हिन्दुओं के आराध्य देवों की मूर्तियों को हाथी के पाँव में बँधवाकर घसीटवा रहे हैं। मस्जिद की सीढ़ियों में उनके टुकड़े चुनवा रहे हैं या फ़र्शबंदी के लिए तुड़वा रहे हैं। अपमान की यह घनीभूत पीड़ा और अवसादग्रस्त हिन्दू चेतना को झकझोरने और झिंझोड़ने के लिए महामति को तनिक उत्तेजित स्तर में पहली बार बड़े स्पष्ट शब्दों में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता और भारत में जन्म ग्रहण के सौभाग्य का उद्घोष करना पड़ा—

त्रैलोकी में उत्तम खण्ड भरत को, तामें उत्तम हिन्दू धरम।
ताके छत्रपतियों के सिर, आए रही इत सरम।। किरंतन, प्र० ५८/४
भरत खण्ड माहें जनम मानखे, कां न करो प्रकास।
मानखो जन्म पांम्या बंध छोड़वा, सामां बाँधो छो अधको बंध।।
किरंतन, प्र० १२६/२६,६०

लेकिन ऐसा नहीं था कि वे हिन्दू धर्म की तत्कालीन अतः बाह्य विकृतियों से परिचित न थे या उनकी आलोचना करने में चूक गये थे। महामति ने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता की

बात तो की लेकिन ऐसा कहते हुए उन्होंने किसी धर्म की हीनता का उल्लेख या उसका विरोध नहीं किया है। 'किरंतन' में महामति के उक्त वचन (५८/१२६) को उनके आलोचकों या प्रशंसकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से गौरवान्वित या रेखांकित किया है। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि स्वयं महामति ने हिन्दुओं की असहिष्णुता का विवरण, दशाधिक बार प्रस्तुत किया है। परिस्थितियाँ ही नहीं, सीख भी ऐसी थी कि सवाब लूटने के चक्कर में मुसलमान 'काफ़िरों' के बुतख़ाने ढहा रहे थे, जिन प्राचीन मंदिरों को हिन्दुओं के पूर्वजों ने बनाया था। दूसरी ओर अवसर मिलते ही, पुण्य अर्जित करने तथा विरोध प्रकट करने के लिए हिन्दू भी मस्जिद ढहाने से बाज नहीं आते थे :

चित दे एक चुनावहीं, हिन्दू जो आद के आद।
सो जोरा कर ढहावहीं, कहें हमें होत सवाब।।
हिन्दू मसीताँ ढहावहीं, मुसलमान सों बाद।
दे सोभा इस्ट दीन को, कहें हमें होत सवाब।।
सुध इस्ट न दीन की, मोह माते उनमाद।
ज्यों ज्यों बेर बढ़ावहीं, कहें हमें होत सवाब।।
सनंध, प्र० ४०/१८-२०

मंदिर गिराने तथा मस्जिद ढहाने पर पुण्य का भागी बननेवाले अन्धे मूल्य समाज में आज भी विद्यमान हैं। परस्पर बैर बढ़ानेवाले तथा एक दूसरे की ओर शंका और संदेह से देखनेवाली अमंगल और अमानवीय दृष्टि के प्रति महामति ने बहुत पहले सतर्क कर दिया था। स्वयं औरंगज़ेब के मन में महामति के प्रति संदेह का बीजारोपण करने में उसके चापलूस मौलवी और दरबारी सफल हो गये थे। लालदास की बीतक से यह सूचना मिलती है कि औरंगज़ेब ने महामति के आग्रह पर अनुकूल रवैया दिखाया था। लेकिन महामति के सद्भाव-पूर्ण अनुरोध पर धार्मिक वार्ता करने को लगभग तैयार औरंगज़ेब ने बाद में, उनसे मिलने से इनकार ही नहीं किया बल्कि उन्हें गिरफ्तार करने को तैयार हो गया। हिन्दू और मुसलमानों में ही नहीं, लगभग सभी सम्प्रदायों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना ने कलह का भयंकर रूप धारण कर लिया था और इसकी प्रचंडाग्नि में सारा समाज धू-धूकर जल रहा था।[1] सारे धर्म और सम्प्रदाय एक दूसरे के विरुद्ध तने ठने खड़े थे—

हिन्दू मुसलमान रे फिरंगी, होदी बोधी जैन अपार।
वादें सो क्रोध वधारियों, करी अगनी उदेकार।। किरंतन, प्र० ५३/२

हिन्दू और मुसलमान ; हिन्दुत्व और इस्लाम; वेद और कतेब के समन्वय के महान प्रवक्ता के लिए 'हिन्दुत्व' की श्रेष्ठता की खुली दुहाई देकर हिन्दुओं[2] को अपनी रक्षा के लिए संग्राम हेतु प्रेरित करना— अचानक और आकस्मिक-सा लग सकता है। लेकिन

---

१. "ऐसा क्यों हुआ ? इसलिए कि समाज के ऐतिहासिक विकास, आर्थिक संयोजन और सामाजिक संगठन के मूल में ही ऐसी कुछ ग़लती रह गयी कि एक दल जिसे धर्म समझता है, दूसरा उसे समझ नहीं पाता। इस वैषम्य को ध्यान में रखकर ही प्रेम और सौहार्द्र का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। दही में जितना भी दूध डालिए, दही होता जाएगा। शंकाशील हृदयों में प्रेम की वाणी भी शंका उत्पन्न करती है" (आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल)

२. महामति का यह उद्घोष एक सम्प्रदाय या समाज का दूसरे धर्म के विरुद्ध खड़ा रहने का उद्देश्य मात्र नहीं था, धर्म के विगड़ते स्वरूप को संयत और संयमित करने का प्रयास भी था। 'धर्म जाता रे कोई दौड़ो'— इन शब्दों में सत्य धर्म की रक्षा और स्थापना का आह्वान भी निहित है।

'किरंतन' जैसी उत्कृष्ट रचना के प्रणयन-काल में महामति ने साम्प्रदायिक या संकीर्ण आग्रहों तथा उससे जुड़ी भावुकता से अपने आपको मुक्त कर लिया था। महामति के जीवन का पूर्वार्द्ध, अंतरंग और अभिन्न जान पड़नेवाले आत्मीय सम्बन्धियों की कुटिल चालों का शिकार होता रहा था। अरब यात्रा के दौरान लगाये गये आरोप, गुरु की वर्षी पर आयोजित समारोह को विफल करने का षड्यंत्र, गुरुभाई बिहारी जी का अनुदारपूर्ण रवैया, दीवान पद का भार सँभालने के क्रम में कारा-यंत्रणा जैसी प्रवंचनाओं का शिकार महामति को होना पड़ा था। जलदस्युओं द्वारा पत्नी का अपहरण आदि की भी ऐसी कई घटनाएँ उन्हें विचलित करती रही होंगी। लेकिन 'किरंतन' जैसी उत्कृष्ट और प्रौढ़ रचना के प्रणयन के दौरान महामति ने इन आग्रहों तथा बंधनों से अपने आपको सर्वथा मुक्त कर लिया तथा जागनी-अभियान-क्रम में उत्तर पश्चिम और मध्य भारत के व्यापक दौरे पर निकल पड़े थे। व्यापक चिंतन-मनन, वृहत्तर लोक-संपर्क तथा धार्मिक सौहार्द्र के लिए किये गये अनुरोधों की औरंगज़ेब द्वारा अवहेलना तथा धर्म के नाम पर अत्याचार ने उन्हें दो टूक निर्णय के लिए बाध्य कर दिया था। अपमान, लांछना तथा तिरस्कार को बड़ी सहजता से पीनेवाले इस कालकूट व्यक्तित्व ने जब यह अच्छी तरह देख-परख लिया कि वर्तमान मुग़ल राज्यव्यवस्था बहुसख्य, उदार और श्रेष्ठ हिन्दू धर्मावलंबियों पर अत्याचार ढाती चली जा रही है तो वे मुग़लिया तोपों के ख़िलाफ़ कमर कसकर खड़े हो गये।

इस अभियान में 'जागनी' नये युग की नयी शक्ति बनी और हिन्दू धर्म के अनुयायियों के साथ-साथ विभिन्न सम्प्रदाओं और मतवादों के लोग इस अभियान में सम्मिलित हुए। दिल्ली-प्रवास और विभिन्न स्थानों की यात्रा तथा जागनी की सफल अलख जगाने के बाद महामति ने बुन्देलखण्ड को ही अपना मुख्य कार्यक्षेत्र बनाया। पारस्परिक धार्मिक सद्भाव तथा साम्प्रदायिक सहभाव का यह व्यावहारिक निदर्शन विरल ही है। लोक चेतना को नैतिक समर्थन देने के कारण ही यह जन-जागरण संभव हो सका। महामति के प्रवचनों एवं प्रार्थना-सभाओं में विभिन्न धर्मों के पूज्य ग्रंथों का पठन होता और उस पर चर्चा होती। 'कुलजम स्वरूप' या 'तारतम बानी' का अधिकांश (लगभग दस हज़ार चौपाइयाँ) पन्ना-प्रवास के दौरान ही लिखा गया, जिनमें विभिन्न धर्मान्दोलनों के समन्वय की विराट चेष्टा देखी जा सकती है। धर्म समन्वय के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

वस्तुतः धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर निर्भरता का व्यावहारिक दृष्टिकोण उपस्थित करते हुए महामति ने लोक मानस को न केवल आध्यात्मिक चेतना से बल्कि आध्यात्मिक उत्कर्ष से भी जोड़ दिया। 'जागनी' के रूप में मानव धर्म के एक नवीन एवं सार्वजनीन स्वरूप का उद्भव हुआ। इस नयी आध्यात्मिक संचेतना एवं स्वतंत्रता में वेद-कतेब, पुराण, भागवत और बाइबिल—इन धर्म शास्त्रों के मूल अभिप्रेत और निहिंत आशय की रक्षा हो सकी। धर्म या अध्यात्म की जर्जर, अप्रासंगिक और रूढ़िग्रस्त मान्यताओं—यहाँ तक कि बहुदेववाद और अवतारवाद की सीमित परिकल्पना को भी उन्होंने वेदों, उपनिषदों और समानांतर एवं स्वीकृत धर्मग्रंथों के बीज भाव से जोड़ा। उनका तारतम मंत्र बीज से फल और पुनः फल से बीज होने की सार्थक यात्रा—अक्षरातीत से अक्षरातीत तक की भाव-परिधि—को ही संकेतित करता है। भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण के लीला रूप का उन्होंने भी अपनी वाणियों में गायन किया लेकिन अवतारवाद की

परिकल्पना वहाँ एकदम गौण है। उनका कृष्ण अक्षरातीत परमात्म स्वरूप में ही पूज्य एवं मान्य है—विष्णु के अवतारों में एक होने के कारण नहीं। तारतम दृष्टि के लिए इस आधारभूत दृष्टि और कसौटी को जान लेना बहुत आवश्यक है। अवतारवाद की इस रूढ़ परिकल्पना से निकलते ही, किसी भी धर्म या सम्प्रदाय की परिभूमि या परिदृष्टि व्यापक और वृहत्तर हो जाती है। महामति ने इस बन्धन-क्रम को तोड़ा और साधक और समाज को सुविस्तृत परिमण्डल प्रदान किया। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि इस नये भाव-प्रस्थान में किसी का निषेध, नकार या तिरस्कार नहीं था बल्कि परस्पर समाहार था। साधन के रूप में—'रहनी, कसनी या चितवन' की कसौटी पर इनकी सामाजिक उपादेयता को भी स्वीकार किया गया लेकिन साध्य या आत्मा के परम लक्ष्य के रूप में इनकी आध्यात्मिक सीमाओं और कोटियों को भी यथास्थान रेखांकित कर दिया गया।

महामति ने 'कहनी' और 'रहनी' के विरोध को आचरण की कसौटी पर परखना चाहा है। उन्होंने परमात्म-प्रकाश या नूर के अंश—अनुपात के आधार पर जीव की तीन विभिन्न कोटियाँ निर्धारित की है। क्योंकि उनमें अपनी-अपनी सीमाओं के कारण आचरण संबंधी अंतर का होना अस्वाभाविक नहीं। लेकिन आचरण की विविधता में भी परमात्मा के आंतरिक और सत्य (हक़) स्वरूप के प्रति एकात्म निष्ठा का भाव सिद्ध किया जा सकता है और महामति इसी पर सर्वाधिक ज़ोर देते हैं। शास्त्र वचनों पर या उनके आशय को पूरी तरह समझकर, उनके आदेशों का पालन करनेवाले के दंभ को महामति बार-बार उजागर करते हैं। सत्याचरण पर सर्वाधिक ज़ोर देते हुए वे कहते हैं कि आचरण में उतारने पर यहीं सारे बंधनों से मुक्ति मिल सकती है और परमधाम या अर्शेअज़ीम का द्वार खुल जाता है—

केहेनी सुननी गयी रात में, आया रेहेनी का दिन।
बिन रेहेनी केहनी कछुए नहीं, होए जाहेर अरस बका वतन।।
कियामतनामा छोटा, प्र० १/५६

महामति की विशेषता यह है कि वह धार्मिक या आध्यात्मिक आचरण की श्रेष्ठता या उपादेयता को सामाजिक या व्यावहारिक कसौटी पर भी उसी ईमानदारी से कसना चाहते हैं ताकि व्यक्ति या पात्र की पात्रता में कोई अंतर्विरोध या गतिरोध न पैदा हो जाय। छोटे-छोटे कालखण्डों में लिये गये निर्णयों या शास्त्रीय स्थापनाओं की उन्होंने अनदेखी कर दी थी और यही कारण है कि अपने पूर्ववर्ती या समानांतर प्रभावों को ग्रहण न करके उन्होंने उनके मूल उत्स की ओर देखना चाहा। तारत्तम बानी में इसीलिए, ब्राह्मण, मोमिन, वैष्णव, चाण्डाल, सकुमार, साकुण्डल, ब्रह्मात्मा, सोहागन, सुरिता, रूह, परात्म, नाजी, नारी, कुंजी, कामरी, अरथी, अंकुर, क़यामत, बसरी, हक़ी, बेचून, हादी और सिरदार आदि की पारिभाषिक अवधारणा को जहाँ नये और व्यापक संदर्भों में प्रस्तुत किया गया, वहाँ उनके आदि स्रोतों पर भी बल दिया गया ताकि अन्य मतावलम्बी भी महाजातीय पहचान के रूप में प्राथमिक एवं समरूप सोपान पा सकें, जिससे धर्म के वास्तविक और सर्वमान्य स्वरूप का प्रारूप बनाने में सहायता मिल सके। महामति एक ऐसा निर्बंध धर्म चाहते थे, जिसमें सभी आस्थावान जातियाँ सद्भावपूर्ण ढंग से रह सकें। धर्म के आंतरिक ऐक्य को ग्रहण कर दिव्य सत्य के प्रकाश में सबको आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हो सके।

वह एक ऐसा उदार राज्य बनाना चाहते थे, जिसमें हिन्दू हो या मुसलमान, सत्य का आराधक ईश्वर-भक्त या खुदा का हर एक बन्दा, 'हिन्दुत्व' और 'इस्लाम' ही नहीं बल्कि हर धर्म की कसौटी पर खरा उतरेगा। क़ुरान-गीता-पुराण ही नहीं, अंजील (बाईबिल), ज़बूर और तौरेत धर्मग्रंथों को भी एक दूसरे धर्म के माननेवाले पर्याप्त आदर की दृष्टि से देखेंगे और उन्हें अपने सदाचरण का एक हिस्सा बनायेंगे। यही वह मूल प्रस्ताव था, जिसके कारण महामति अन्यान्य संतों या भक्त कवियों से एक अर्थ में अलग हो जाते हैं। उनकी आधारभूत मान्यता यह थी कि धर्म के मूल स्वरूप सत्य या कि हक़, परमब्रह्म या कि खुदा एक है। विभिन्न धर्मों का मूल स्वर एक है। इनके सृजन की प्रेरणा एक है। इन विरुद्ध या अलग जान पड़नेवाले ग्रंथों के उद्देश्य, उपदेश और आशय ही नहीं, उनके उद्‌भव और विस्तार की गाथा जिन कथानकों और दृष्टान्तों के आधार पर विकसित हुई है, वे समान हैं। वस्तुतः अलग-अलग समय और स्थान पर, अलग-अलग समुदाय के लोगों के लिए एक ही परम ज्योति या 'नूर' ने अपने को अवतारी शक्तियों, पैग़ंबरों या फ़रिश्तों के रूपों में भेजा। ऐसा न होता तो विश्व के मान्य धर्म ग्रंथों में आदम या नूह की कथा और मनु की सृष्टि-रचना से सम्बन्धित गाथाओं या प्रकरणों में आश्चर्यजनक समानता न होती।

महामति की मूल स्थापना यह रही कि काल, भाषा, स्थान, जातिगत रूढ़ियों और मान्यताओं के बावजूद सभी एक हैं। इसलिए मूल से पृथक् हुए, अपनी-अपनी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक रूपान्तरों के बावजूद सबको समान स्वतंत्रता पाने का अधिकार है। इस्लाम या हिंदू धर्म की मूल संकल्पनाओं को परस्पर जोड़कर तथा उनके 'बातिन' अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए धार्मिक कट्टरता और धर्मान्तिरण को फटकारते हुए उन्होंने धर्म समन्वय पर सर्वाधिक ज़ोर दिया। वे एक धर्म को दूसरे पर थोपकर नहीं, उसे साथ रखकर और पर्याप्त सम्मान देकर वेद-कतेब, क़ुरान-पुराण, भागवत-हदीस आदि का पाठ कराते और उन पर विमर्श करने की प्रेरणा देते थे। एक दूसरे के धार्मिक विश्वास तथा उससे जुड़े जातीय अनुबंधों को उन्होंने पूरी सदाशयता से स्वीकार किया था। यह व्यापक विनियोग आज के धर्म निरपेक्ष राष्ट्र और समाज की दृष्टि से कितना उपयोगी और क्रांतिकारी है, यह सहज ही समझा जा सकता है।

जागनी अभियान का सारा आयोजन मात्र शास्त्रीय या साम्प्रदायिक धरातल पर ही सम्पन्न नहीं हुआ। अपने संकल्प के अनुरूप जब महामति इस कार्य को व्यावहारिकता प्रदान करते हुए आगे बढ़े तो इस कार्य में, जैसा कि स्वाभाविक ही था, उन्हें तत्कालीन मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब से टकराना पड़ा, जो इस्लाम और शरीयत का ज़रूरत से ज़्यादा पाबन्द था। जहाँ तक कि विभिन्न धर्मों में सद्‌भाव स्थापित करनेवाले अपने भाई दारा शिकोह के द्वारा धार्मिक सद्‌भाव के लिए किये जा रहे प्रयासों से क्षुब्ध होकर औरंगज़ेब ने उसे सूली पर चढ़वा दिया था। सिक्ख गुरुओं को दी गयी यंत्रणाएँ, सतनामियों पर अत्याचार तथा मंदिर आदि ढहाने जैसी बातें उसको तनिक भी विचलित नहीं करती थीं। वह इस्लाम या शराअ के विरोध में एक शब्द भी सुनने को तैयार न था। लेकिन महामति के साथी, उनके बारह 'मोमन' (पुण्यात्मा) शिष्य अपनी जान की परवाह किये बिना कभी जामा मस्जिद की नमाज़ के वक़्त तो कभी लाल क़िले की दीवारों के पार से 'अल्लाह' और 'ईश्वर' को समान घोषित करनेवाले आयतों और श्लोकों का पाठ ऊँचे स्वर में करते रहे। महामति के सम्मुख भारतीय धर्म और संस्कृति का विघटन

अपने प्रकर्ष पर था। इस विघटन के सबसे अधिक ज़िम्मेदार शासक औरंगज़ेब भी तत्कालीन धार्मिक आस्था यानी इस्लाम—केवल शरीयत प्रधान इस्लाम के परिप्रेक्ष्य में देख रहा था। हिन्दू स्वयं अपनी ज़मीन पर विधर्मी हो गये थे। उदार और सर्वधर्म समभाव के पोषक हिन्दू धर्मावलम्बी और उनकी समाज व्यवस्था के शिकार कुछ नीची जातियों के लिए तब एक ही विकल्प शेष था कि वे विधर्मी की शरण में चले जायें। 'उदर कारण हरि बेचने' का रोज़गार करनेवाले के साथ-साथ महामति ने उन अपराधियों का भी उल्लेख किया है जो जन्मना हिन्दू होते हुए भी, विधर्मी की सेना में भरती हो गये हैं। वे सुरपुत्र (हिन्दू) होते हुए भी असुरों (हिन्दू इतर) की सेवा में जुटे हुए थे और खुद अपने मंदिर ढहा रहे थे :

सुर ने केहेलाए रे सेवा करे असुर की, जो दारूबाए उड़ावे देहुर।
हिन्दू नाम रे सेन्या तिनकी होए खड़ी, ऐसा कुलिएं किया रे केहेर।।
किरंतन, प्र० ५८/१४

यहाँ उन ऐतिहासिक संदर्भों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है, जिसने भारत में हिन्दू एवं मुसलमान के परस्पर सद्भाव में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। हमारी भारतीय चिंतन परम्परा औरंगज़ेब के बड़े भाई दारा शिकोह (१६१५-१६५९) को किसी शाहंशाह के बेटे से ज़्यादा, एक रहस्यवादी दार्शनिक के रूप में याद करती है। उसके जीवन का एक महान स्वप्न उसकी अकाल हत्या से पूरा न हो पाया। प्रश्न सारे धार्मिक विश्वासों, आस्थाओं और मानवता की एकता का था। लेकिन यह समन्वयपूर्ण दृष्टि विभिन्न सम्प्रदायों तथा धार्मिक मतवादों के आपसी विवाद और टकराव में खो गयी। दारा शिकोह ने 'मजमा-उल-बहरीन' (ई० १६५६) में ब्रह्म विद्या और 'अल क़ुरान' की विरोधी प्रतीत होनेवाली धाराओं को मिलाया था। दारा को डर था कि शरीयत पसंद या कट्टर मुसलमान उसकी इस तरह के कार्यों की कभी सराहना नहीं करेंगे बल्कि इसे 'कुफ्र' ही कहेंगे।[१] ठीक ऐसा ही हुआ और उसके कार्यों से औरंगज़ेब और उसके तमाम क़ाज़ी क्षुब्ध हो उठे थे और उन्होंने इसे ईश्वरीय धर्म के क्षेत्र में उल्लंघन माना और दारा को काफ़िर कहकर सूली पर चढ़ा दिया गया।

इसके पहले खुद अकबर ने 'सुलह कुल' और 'दीने इलाही' द्वारा हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का प्रतिमान स्थापित किया था। अबुल फ़ैज़ी और अबुल फ़ज़ल के द्वारा किये गये कार्यों से भी सभी परिचित हैं। यहाँ एक विशेष संदर्भ में अकबर के दरबारी अनुवादक मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। बदायूँनी ने संस्कृत में लिखित विभिन्न धर्मग्रन्थों एवं शास्त्रों का अनुवाद किया था। वाल्मीकि रामायण के उपरांत उसे अथर्व वेद का अनुवाद कार्य सौंपा गया। बदायूँनी ने हिंदुओं (काफ़िरों) के मान्य या पूज्य ग्रंथ का अनुवाद कार्य अपनी मर्ज़ी से नहीं किया क्योंकि उसे बराबर यह लगता रहा कि यह 'कुफ्र' है। अल्लाह से माफ़ी माँगते हुए उसने यह अनुवाद-कार्य पूरा किया। अनुवाद करते हुए, उसने बार-बार यह स्वीकार किया है—"इस ग्रंथ की कई धार्मिक अवधारणाएँ इस्लाम के नियमों के सदृश्य हैं। अथर्व वेद की कई

1. दाराशिकोह ने उपनिषदों का अनुवाद और उसकी व्याख्या करते हुए 'कुरान' से उसकी समानताओं पर बार-बार प्रकाश डाला। 'सिर्र-ए-अकबर' (५१ उपनिषदों के अनुवाद) में उसने लिखा कि वह इस कार्य को आध्यात्मिक लाभ, अपने बच्चों के धार्मिक उन्नयन एवं मित्रों तथा सत्यान्वेषकों के लिए ही कर रहा है : दारा शिकोह : लाइफ़ एंड वर्क्स, विक्रमजीत हसरत, पृ० २६७

अवधारणाओं (स्थापनाओं) में से एक यह है कि यदि कोई अमुक परिच्छेद नहीं पढ़ेगा तो वह जीवित नहीं रहेगा। इस परिच्छेद में 'अहम्' (मैं) शब्द बार-बार आता है, जो हमारे 'ला-इलाह-इल्लल्लाह' की तरह ध्वनित होता है।"[1]

इस उल्लेख को महामति की उस उपलब्धि से सहज ही जोड़ा जा सकता, जब अपने मेरता-प्रवास के दौरान उन्होंने मस्जिद से आती मुल्ला की अजान 'ला इलाह इल्लुल्लाह मुहम्मदुरसूलुल्लाह' को क्षर-अक्षर-अक्षरातीत (ला-इला-इल्लुल्लाह) की उद्भावना के समकक्ष पाया। उन्होंने परम सत्ता के लिए गीता और उपनिषदों में व्यक्त 'उत्तम पुरुष', 'कूटस्थोक्षरः', 'अनादि अक्षरातीत' आदि संबोधनों एवं विशेषणों को वेद और कतेब की मान्य एवं प्रामाणिक परम्परा के रूप में न केवल घोषित किया बल्कि इसे सिद्ध कर दिखाया। महामति ने अपने लम्बे अरब-प्रवास के दौरान, अपने अवचेतन में इस्लाम को निकट से समझने का जो अनुभव अर्जित किया होगा, वही इस अजान द्वारा अचानक परिस्फुट हुआ और उन्होंने इस मंत्र को अपने गुरुप्रदत्त 'इल्म लदुंनी', तारतम मंत्र से अभिषिक्त कर सार्वजनीन 'जागनी' का जयघोष किया।

महामति ने अपने ग्रंथों में 'साकुमार' 'एवं साकुण्डल' (किरंतन के प्रकरण ५५/२६) का विशेष उल्लेख किया है। साम्प्रदायिक अर्थों में यह मान्यता है कि साकुमार और साकुण्डल परमधाम की दो अंगनाएँ हैं। स्वयं गुरु देवचन्द्र यह मानते रहे कि इन दोनों का जन्म बड़े घरानों में हुआ है। 'साकुमार' उस आत्मा को भी कहा गया जो अपनी तमाम योग्यताओं के बावजूद प्रियतम परमात्मा को पाने का यथोचित संकल्प नहीं जुटा पायी। तत्कालीन ऐतिहासिक सन्दर्भों में शाहंशाह औरंगज़ेब के रूप में इस सांप्रदायिक या पारिभाषिक अभिधान को प्रस्तावित किया जा सकता है।

दूसरी ओर साकुण्डल को महामति के सर्वथा सुयोग्य शिष्य छत्रसाल के रूप में अभिहित किया गया। इस जाग्रत आत्मा (अंगना) ने गुरु और प्रियतम परमात्मा के वचन पर ध्यान दिया और अपने जीवन को सार्थक किया। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि महामति जब किसी 'बड़े घराने' की बात कर रहे थे तो संभवतः औरंगज़ेब और दारा शिकोह के बारे में ही बता रहे थे।

अतः हिन्दू-मुस्लिम विचारधारा के ऐसे महान प्रवक्ता महामति द्वारा हिंदुत्व की खुली दुहाई देकर हिंदू राजाओं, छत्रपतियों को संग्राम के लिए प्रेरित करना—अचानक और आकस्मिक-सा लग सकता है। 'किरंतन' जैसी उत्कृष्ट रचना के प्रणयन-काल में महामति अपने कट्टर सांप्रदायिक आग्रहों से सर्वथा मुक्त होकर राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय हो गये। राज्य संचालन और संगठन का पिछला अनुभव, सैन्य दृष्टि से छत्रसाल जैसे अपेक्षाकृत कम साधन सम्पन्न राजा के मन में नयी स्फूर्ति और युद्ध चेतना जगा सका। १६७५ से १६८५ ई० तक का कार्यकाल ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। संघर्ष और उत्कर्ष दोनों ही क्षेत्र में महामति ने अपने स्वर और स्वरूप को प्रतिष्ठित किया। महामति के संरक्षण में बुन्देला नरेश छत्रसाल ने आदर्श ईश्वरीय राज्य की कल्पना को साकार किया और लोक, अध्यात्म, राजशासन, धर्म संगठन तथा व्यापक जागनी अभियान को महत स्वीकृति मिली। सफलता, विफलता और विरोध जैसी बातों से वे न कभी घबराये और ने पीछे हटे। यह एक ज्ञात तथ्य है कि उन्होंने छत्रसाल के साथ कुछ युद्धों का नेतृत्व भी किया। शस्त्र और शास्त्र का

---

१. मुंतखब तवारीख, खण्ड १, पृ० २१२.

यह अपूर्व सम्बन्ध— धर्म और राष्ट्र के स्वर को सुरक्षित रखने के लिए कितना आवश्यक था, यह उनके कृतित्व और व्यक्तित्व में सहज ही देखा जा सकता है।

महामति ने 'किरंतन' ग्रंथ में बृहत्तर हिंदू-धर्म के छिन्न-भिन्न होने का और इसकी आतंरिक विसंगतियों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इसके आरंभिक प्रकरणों (यथा ४, ७, १६, २७, ६३ आदि) से उनकी बेचैनी को लक्ष्य किया जा सकता है। धर्म के नाम पर जो कुकर्म होता रहा है और चतुर्दिक् हाहाकार मचा हुआ है, वह हमें आत्मनिरीक्षण को प्रेरित कर रहता है। वे उस गर्हित दृष्टि का परित्याग करने की सलाह देते हैं, जिसके कारण सामाजिक दृष्टि धुँधली पड़ गयी है। और अब तो धार्मिकता मात्र साम्प्रदायिक विडम्बना बनकर रह गयी है। इन विरोधाभासों को विद्रोह से नहीं, आत्मपरिष्कार से दूर करने की ज़रूरत है। ऐसा न होता तो वे 'ब्राह्मण बनाम चाण्डाल', 'साकुमार बनाम साकुण्डल' 'मोमिन बनाम काफ़िर', 'नाजी बनाम नारी' जैसे प्रत्ययों को नहीं उठाते। जाति, वर्ण या सामाजिक व्यवस्था या विभाजन से वे आश्वस्त नहीं थे और इस सम्बन्ध में उनकी पहली असहमतिपूर्ण प्रतिकिया गुरुभाई बिहारीजी के संकीर्ण प्रस्तावों पर देखी जा सकती है। उन्होंने धर्म को सामाजिक अनुबंध के रूप में देखने का आग्रह किया, न कि साम्प्रदायिक प्रतिबंध के रूप में। उन्होंने शास्त्र एवं संहिता को सामाजिक संदर्भ प्रदान किया। धर्म वहाँ भी साधन ही है, साध्य नहीं, ऐसा नहीं होता तो वे विधर्मी या विपरीत जान पड़नेवाली धार्मिक मान्यताओं तथा मान्य पूज्य ग्रंथों की आधारभूत एकता को बार-बार रेखांकित न करते। उनका समन्वय या समाहार भी साधन ही है, साध्य नहीं। वैसे अधिकांश मध्ययुगीन संतों, मनीषियों और विचारकों की तरह महामति का साध्य है— एक ऐसा अनन्य भाव सोपान, जो समस्त दुविधाओं, द्वैतों और भेदों से ऊपर उठा दे और सर्वात्म भाव में प्रतिष्ठित कर दे।

अपने 'कलश' ग्रंथ में की महामति ने जागनी की शास्त्रीय या पारंपरिक प्रेरणा पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। वहाँ बताया गया है कि कालमाया ने नश्वर जगत् का निर्माण किया था। तदन्तर्गत ब्रज लीला-हेतु और वृन्दावन बने और यहीं अक्षरातीत ब्रह्म का आवेश धारण कर श्री कृष्ण ने कई क्रीड़ाएँ सम्पन्न कीं। लेकिन रासलीला के महत्त्वपूर्ण समायोजन हेतु कालमाया का ब्रह्माण्ड प्रलय-विसर्जित हुआ और तदुपरांत योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड रासलीला हुई, जो अक्षर शक्ति के हृदय में अखण्ड या अंकित हुई। योगमाया के चिन्मय ब्रह्माण्ड में यह लीला अहर्निश चलती रही। पुनः कालमाया द्वारा सर्जित सृष्टि-विस्तार में, कृष्ण के प्रति उक्त लीला का गोपियों की उत्सुकता या प्रेम की उत्कटता को चरितार्थ करने के लिए उक्त लीला का प्रतिबिम्बन हुआ। कालमाया के उद्‌भव और लय को 'नूह तोफ़ान' के गाथा-संदर्भ से भी ज्ञापित किया गया। इस तरह मूल या आदि बिम्ब लीला से प्रतिबिम्ब लीला का प्रवर्तन या अनुवर्तन हुआ। लेकिन इस रहस्य को समझ न पाने के कारण इस प्रतिबिम्ब लीला को ही अखण्ड मान लिया गया, जिससे कि मूल लीला या पार की लीला का आशय स्पष्ट न हो पाया। शुकदेव तक की वाणी और व्याख्या भी एक रहस्य बनकर रह गयी। 'किरंतन' और 'कलश' के प्रकरणों में भी यही संदर्भ स्पष्ट किया गया है—

तुम आँकड़ी न पाई इत अखण्ड कह्या तोए न खुले रे द्वार।
तुम समझे नहीं बानी सुकदेव की, तो हिरदे रह्यो रे अंधकार।।

किरंतन, प्र० १४/१३

लगभग सभी धर्म-शास्त्रों में सृष्टि की अवधारणा से सम्बन्धित कई गाथाएँ कई रूपों में विन्यस्त की जा चुकी हैं लेकिन महामति ने इसी कालमाया से निर्मित ब्रह्मांड में और कलिकाल में जागनी का परम मंत्र फूँका। उन्होंने इस सन्दर्भ में अपनी 'विजयाभिनंद निष्कलंक बुध' भूमिका को भी स्पष्ट किया। आसन्न जागनी की महान घड़ी में, उन्होंने बताया कि मेरे आकार में ही श्यामा जी अर्थात् गुरु देवचन्द्र के स्वरूप में रूह अल्लाह, अक्षरातीत का आवेश, आदेश, दया तथा अक्षर ब्रह्म की नूर और बुद्धि का अनुप्रवेश हुआ है—

इत भेले रूह नूर बुध, और आग्या दया प्रकाश।
पूरूं आस अक्षर की, मेरा सुख देखाय साक्षात।।

कलश, प्र० २४/३२

महामति की स्थापना है कि ब्रह्मांड के रहस्य या प्रश्न के खोजने या सुलझाने का जितना भी उपक्रम किया जायगा, उतना ही वह उलझता चला जायगा। यही नहीं, उसकी शंकाएँ भी बढ़ती चली जायेंगी। इस अंध रहस्य और सदियों के अंधकार को भेदने का उपक्रम व्यर्थ हो जाता है। यह बंद दरवाज़ा किसी से खुलता नहीं क्योंकि इसकी ताली नहीं मिलती। महामति ने इसीलिए उसे 'कोहेड़ा' या 'गोविन्द भेड़ा' भी कहा है :

ऐ कोहेड़ा काली रैन का, कोई न पावे कल मूल।
कहाँ कल किल्ली कुलफ, जो द्वार न पाइये सूल।।

कलश, प्र० १/२०

सामान्यतः यह कथन उस आत्मा के लिए है, जो यह समझ रही है कि वह जीव या शरीर रूप में, जिस संसार में विद्यमान है, वह स्वयं माया के गहन अंधकार में भटक रही है और ठीक इसी के समानान्तर जीव भी स्वयं को और अपने स्रष्टा को नहीं पहचान पा रहा। महामति की यह उक्ति जीवात्मा की भ्रमित अवस्था को रेखांकित करती है—

मैं न पेहेचानो आपको, न सुध अपना घर।
पीऊ पेहेचान की नींद में, मैं जागत हों या पर।।

कलश, प्र० १/२८

—न तो विस्मृत आत्माओं को मूल घर का ही पता है और न अपनी सुध बुध का। जबकि उन्हे अपने आराध्य या प्रियतम की उन अस्पष्ट बातों का ध्यान तो है जो अर्द्धनिद्रा या खुमारी की दशा में कही गयी थीं। यह संसार अस्पष्टता, विवशता और अंधी-यात्रा में भटकते रहने का ही तो दूसरा नाम है और इस भटकाव को इसी मानव-योनि में किसी उद्देश्य से सार्थक करना है। फ़रमोशी की इस नींद भरी यात्रा में चलते हुए कुछ नहीं बल्कि बहुत कुछ पा जाने की सार्थकता—मानवात्मा के परमार्थ और पुरुषार्थ की विजय है। महामति इस कठिन यात्रा के एक-एक चरण और इसके अवगुंठन को खोलते हैं—

मोह अज्ञान भरमना, करम काल और सुंन।
ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन।।

महामति की समस्त वाणी में प्रियतम मिलन की उत्सुकता के मूल में भी उनके अनन्य शृंगार और ऐश्वर्यपूर्ण विवरण के साथ-साथ उनकी उन्नायक और उद्धारक भाव-मूर्त्ति को प्रस्तुत करने की आकांक्षा बलवती रही है। इस प्रकार के वर्णनों से इस अवधारणा की पुष्टि और अधिक गहराई से होती है कि महामति की मुरिता अन्य

पुण्यात्माओं की भाँति परमात्मा प्रियतम के ही सदेश और अंगांगी भाव से एक-दूसरे से अभिन्न हैं। प्रियतम की समस्त शोभा, ऐश्वर्य, वैभव, दिव्योपदान, मिलन-विरह और वचन-भंगिमा आदि से पूर्ण परिचित होने के कारण ही, महामति आत्मजागरण या जागनी की बेला में उनके कृपापूर्ण आगमन का बार-बार उल्लेख करते हैं—

बिन जाने बिन पेहेचाने, ऐसे धनिएँ हमको देखाए।
अब लों गिरो न जाने धनी गुन, सो जागनी हिरदे चढ़ आए।।

किरंतन, प्र० ८१/७

सांसारिक जीव की दृष्टि से नाम रूप जगत् की सार्थकता तभी संभव है जब समस्त प्रकार की भ्रांति से छुटकारा मिल जाय। किन्तु गहरी नींद की बेसुधि में, ये सारे नाम, रूप, आकार गड्ड-मड्ड हो जाते हैं और ऐसी नींद में डूबा साधक परम सत्ता के विस्तार को—अरूपी, निराकार, निरगुण या सुंन (शून्य) संज्ञा से अभिहित कर अपनी साधना की इतिश्री कर लेता है। यही साधक की सीमा है, इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं। यह संभ्रम या यह सीमा रेखा ही किसी जाग्रत साधक को सीमातीत की ओर उन्मुख करती है। जगत् को नश्वर, अपर्याप्त और दुख का आगार समझ ले पाना भी बहुत बड़ी उपलब्धि है। सच्चा साधक जगत् को साध्य न समझकर इसे भी साधन के रूप में अपनाता है। इसलिए महामति के चिंतन में 'माया' की अखिल व्याप्त सत्ता को साँप, नागन, राक्षसी, डायन, चुड़ैल, सौत, विषबेल आदि न कहकर उसे जीव सत्ता के उत्कर्ष के लिए उपादेय बताया गया है। लेकिन माया की उद्‌दाम शक्ति से महामति जीव को सतर्क भी करना चाहते हैं। इस माया का प्रवाह इतना तीव्र और चाह इतनी प्रबल है कि ये उँगलियों से नाखूनों को अलग कर, दूर बहा ले जाते हैं। माया सागर में उठनेवाली लहरों और भँवरों में फँसी आत्मा पछाड़ें खाती रहती है :

आ माया पूर बहे निताल। नख मूक्यों ले जाय तत्काल।।
लेहेर ऊपर आवेछे लेहेर। माँहे दीसे भमरीना फेर।।

प्रकाश (गुजराती), प्र० ४/३८

इसलिए ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान के पूर्व माया की अदृश्य और अनुपेक्षणीय शक्तियों की पहचान भी उतनी ही आवश्यक है। माया चूँकि परमात्मा से ही उत्पन्न है इसलिए सृष्टि-रचना के उपक्रम में भी इसका और इसके एक रूपान्तरण—मोह का—बहुत बड़ा योगदान रहा। अवशिष्ट दुखानुभव को देहधारी के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से उत्पन्न इस विश्व का निर्माण करने में माया की विशिष्ट भूमिका रही।

परमधाम के दिव्यावदानों की प्राप्ति के पूर्व साधक की योग्यता और पात्रता को महामति ने बार-बार परिरेखित किया है। 'कथनी' 'कहनी', और रहनी' (आचरण) की उच्चतर कसौटी को वैयक्तिक, सामाजिक और सांसारिक उत्कर्ष से जोड़कर ही जागनी का बृहत्तर लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति, इकाई या व्यष्टि की चेतना समूह या समष्टि की व्यापक चेतना में किस प्रकार समाहित हो सकती है और एक पुण्यात्मा किस प्रकार सारी सुधी आत्माओं को साथ लेकर मिथ्या जगत् के सारे अभिशापों को परमधाम के सच्चे सुख में परिणत करने को आतुर हो जाती है—इसे महामति के सार्वजनीन संकल्प में सहज ही देखा जा सकता है। महामति को उपलब्ध 'जागनी' का सन्देश सामूहिक जागरण का परम सन्देश बन सके, यही तो परमात्मा के सर्वव्यापी और सर्वजन सुलभ होने की सार्थकता और चरितार्थता है। सामूहिक या सार्वजनीन आत्मोत्थान

की संवाहिका जागनी का यह युगीन प्रस्ताव महामति की इन पंक्तियों में मुखरित है:

पिउ जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ए जिमी झूठी दुख की, सो कर देऊँ सत सुख।।
सब साथ करूँ आपसा, तो मैं जागी परमान।
जगाय सुख देऊँ धाम के, मिलाय मूल निसान।।

कलश, प्र० २३/४४-४५

वस्तुतः महामति का सारा कृतित्व—जागनी के संकल्प का ही साक्ष्य रूप है। 'कुलजम स्वरूप' में जागनी को तारतम का सार बताया गया है—'तारतम को सार, जागनी विचार।' जागनी ही जीवन को एक उद्देश्य प्रदान करती है और जीव को उसके देह धारण की सार्थकता से अवगत कराती है। यह उस दैवी आदेश का ही लौकिक संस्करण है, जिस पर चलकर जीव की पारलौकिक यात्रा सफल होती है।

विद्वानों ने जागनी को महामति के बहुद्देश्यीय कार्यों का बीजाधार बताया है। 'तारतम' इसका बीजाक्षर बताया गया है और 'अंकुर' इसकी चेतन प्रेरणा। जागनी को पुण्यात्मा का परम उत्कर्ष माना जा सकता है जब कि वह परमात्म स्वरूप से अपना साक्षात्कार करती है। वह अप्रत्यक्ष, अव्यक्त, अस्पष्ट, अगोचर, अलौकिक और असीम सत्ता को प्रत्यक्ष, व्यक्त, स्पष्ट, गोचर, लौकिक और ससीम रूप में उपलब्ध करता है। उसका सत्, चिद्, आनन्द स्वरूप तथा आवेश और नूर-शक्ति एवं ऐश्वर्य—उसकी इच्छा से अन्य योग्य शक्तियाँ धारण करती हैं और सृष्टि का अथवा लीला का कार्य सम्पन्न अथवा विघटित होता है। यह क्रम चलता आ रहा है और चलता रहेगा। वैसे युगपुरुष महामति को अच्छी तरह पता था कि उनका युग भी आज की दुनिया से बहुत अलग नहीं। वह दुनिया भी बाह्य दृष्टि प्रधान थी—

दुनिया हिरदे आंधली, सो देखे नजर बाहेर। किरंतन, प्र. ११०/७

मध्ययुग का परवर्ती काल राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से इतना बिखरा हुआ था कि—कहीं भी वैयक्तिक या सामाजिक सुरक्षा अथवा शरण का आयोजन-उपक्रम होता, जनता भागी चली आती। वहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख या ईसाई जैसी जाति या प्रजाति का कोई प्रश्न नहीं था। वह महज संयोग नहीं था कि महामति ने विभिन्न धर्म-संस्कृतियों को समान रूप से पूज्य और मान्य बताते हुए तथा 'काली कमरी' श्याम, मुहम्मद और इमाम की महान परम्परा से अनुस्यूत एवं अभिषिक्त किया एवं देश में धार्मिक ऐक्य, सामाजिक उत्थान एवं राजनैतिक क्रान्ति को 'जागनी' का नाम दिया।

महामति ने अपने वाङ्मय में, पैग़म्बर मुहम्मद साहब के तीन स्वरूप—बसरी (मानवीय), मलकी (ज्ञान की कुंजी प्रदान करनेवाले) तथा हकी (परब्रह्म का आवेश धारण करनेवाले) में से इसके द्वितीय स्वरूप को, परमज्ञान—तारतम ज्ञान प्रदाता के रूप में स्वीकार किया। साथ ही इस्लामी विचार धारा के अनुसार, तीन दिनों को—तीन सूरतों का प्रतीक मानते हुए, पहली सूरत (अक्षरातीत, परम सत्ता) का हुकुम और नूर स्वरूप 'बसरी'—(मानव धर्म के प्रतिष्ठाता मुहम्मद साहब) दूसरी सूरत—परमधाम का ज्ञान संभार—समस्त विश्व के उपकार के भाव-पर्याय मलकी सूरत सद्गुरु देवचन्द्र जी तथा तीसरी सूरत—स्वयं परमात्मा की विभु को धारण करनेवाली, ज्ञान-पिपासु और अभीप्सु आत्माओं को उद्बोधित करनेवाली हकी सूरत—महामति प्राणनाथ से प्रकट हुई। इन तीनों सूरतों का आगमन ही क़यामत का द्योतक था—

तीन दिन कहे जो बुजरक, सो तीनों सूरत के दिन।
यों कयामत हुई जाहेर दिन, मुहम्मदें करी उमत रोसन।।

कियामतनामा बड़ा, १६/११ २४/६

महामति ने देवचन्द्र जी को 'क़यामत'—ईश्वरीय न्याय की रात के समय आविर्भूत ईसा रूह उल्लाह के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है, जो मृतक शरीरों में पड़ी आत्माओं के उत्थान के लिये, अमरत्व प्रदान करनेवाली संजीवनी—तारतम वाणी—लाये थे, जिसका गौरव या परम अभीष्ट महामति की 'जागनी' ही थी।

जागनी के मन्त्र-माहात्म्य को, महामति ने भी किसी औपचारिक अध्यात्म चर्चा क्रम में उपलब्ध नहीं किया। जिस प्रकार ब्रह्म सृष्टियाँ इस संजीवनी से अपरिचित थीं—अपने जीवन के पूर्वार्द्ध तक मेहराज ठाकुर भी इससे अवगत न थे। लेकिन परम धाम के धनी ने अहैतुकी कृपा द्वारा, बिना किसी पूर्व सूचना या परिचय के ही, धाम स्वरूप की शोभा और अनुकम्पा द्वारा उन्हें अमित सुख प्रदान किया। जागनी की पुण्य बेला में, न केवल उनके प्रसादानुग्रह या कि परम सत्ता का प्रत्यय हुआ बल्कि महामति के अन्तर में औरंगज़ेब (साकुमार) जैसी ब्रह्मसृष्टियों की भी स्मृतियाँ उमड़ पड़ीं—जो धाम धनी की महिमा से अनभिज्ञ, अनन्य प्रेम से वंचित और उनकी कृपा-दृष्टि से दूर रहने को अभिशप्त थीं। जागनी ने आत्म विस्तार के साथ-साथ समान तथा सहयोगी आत्माओं—श्रेष्ठ अंगनाओं को भी उनकी समस्त प्रवंचनाओं और विफलताओं से मुक्त कर, क्षणांश मात्र में, अभिनव मुक्तांगन प्रदान किया—

बिन जाने बिन पेहेचाने, ऐसे धनिएं हमको देखाए।
अब लों गिरो न जाने धनी गुन, सो जागनी हिरदे चढ़ आए।।

किरंतन, ८१/७ ;

जागनी की प्रभात-बेला में, अन्ध मोह का बन्धन टूटेगा और शाश्वत प्रेम का बन्धन फिर से प्रगाढ़ होगा। महामति का विश्वास है कि जो इन संकेतों को ग्रहण कर सकेगा, उन्हें आत्मा के स्तर पर 'तर' और 'तम' की सारी स्थितियाँ स्पष्ट हो जायेंगी। तब तारतम को तर्क से समझाने की आवश्यकता नहीं रहेगी। क्योंकि यही तो आन्तरिक जागनी है। लेकिन जिनका हृदय ही अंधा हो वह कभी नहीं जाग सकते—

अब बोहोत कहूँ मैं केता, करी है इसारत।
दिल आवे तो लीजो सलूक, सुख पाए कहें महामत।।

किरंतन, ६४/३६

जागनी का एक संकल्प, जैसा कि सद्गुरु का आदेश था, मूल अंगनाओं—आत्माओं को परम धाम की स्मृतियों एवं दिव्यावदानों से परिचित करना था। 'अलख' को 'लख' बनाकर उन्हें 'आतम बोध' प्रदान करना भी था। अपने समय की संत्रस्त मानवता को और समस्त अधिकारी एवं योग्य आत्माओं को उन्होंने अपनी आतम साखी द्वारा—आत्म बुद्धि से प्रेरित किया ताकि मानवता के उत्कर्ष को मंगलमय बनाया जा सके। उनकी घोषणा थी—

देह बुद्धि छोड़ाय के, जगाओ बुद्धि आतम।

'कलश' (हिन्दुस्तानी) ग्रंथ में महामति की आत्मांगना 'इन्द्रावती' ने जागनी अभियान के लिए समस्त पुण्यांगना तथा सुहागिन आत्माओं के विराट यूथ का आवाहन किया है। उनके अनुसार प्रियतम-विरह का आत्म-ताप जितना घनीभूत होगा, प्रियतम

उतनी ही जल्दी पधारेंगे। जब परमधाम का सुख उन्होंने अपनी ज़िद से छोड़ा था तो इस मायाजनित संसार की सारी पीड़ा को भी सहर्ष झेलना होगा। महामति की आतम सखी इन्द्रावती केवल यहीं नहीं रुकती। वह प्रियतम के मिलन-सुख का एकाधिकार भी नहीं चाहती। चरम पीड़ा के घनीभूत तथा विरह के अनुतप्त क्षणों में नितान्त अकेली और निरुपाय रहने के बावजूद उसे यह विश्वास है कि जागनी का अमोल उपहार वह सबके लिए समान रूप से वितरित करेगी। प्रियतम का प्रेमोपहार जन-जन को प्राप्त हो—तभी उसकी सार्थकता है।

चोर फेर करूँ बोलावे, सुख सीतल करूँ संसार।
अंग में सबों आनन्द, होसी हरख तुमें अपार।।

कलस हिन्दुस्तानी, २१/२७

अखिल हिन्दूधर्म के वृहत्तर मानवीय और स्वीकृत परिवृत्त में, तत्कालीन वैष्णव मतवाद को, अन्य सदाशयी धर्मचेतना से जोड़कर महामति ने अपनी संकल्पना को ऐसा विराट न्यास प्रदान किया—जिसकी-विलक्षणता को किसी संकीर्ण मत या मतवाद द्वारा संकुचित या सीमित नहीं किया जा सकता। सदगुरु देवचन्द्र जी की भागवत अनुप्रेरणा से सम्पन्न तारतम मन्त्र से समृद्ध और आतम साखी से अभिषिक्त होकर महामति ने लोक जागनी द्वारा जन-जन के आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। इस अभियान क्रम में धर्मनिरपेक्ष ताक़तों को एकजुट करने के लिए वे स्वयं लोक-संस्था और राज-सत्ता के पास गये—भूखे, प्यासे, नंगे पाँव, एक-दीवाने की तरह, एक फ़क़ीर की तरह। लोक-चेतना का आविष्कार और परिष्कार करते हुए उदात्त और सर्वोपरि सत्ता को पाने के लिए समाज के दीनहीन, वंचित और उपेक्षित जनों का आह्वान किया। इस आयोजन के प्रेरक तारतम मंत्र प्रदाता सदगुरु देवचन्द्र—देवतात्मा हिमालय के उत्तुंग धवल शिखर थे तो महामति की पावन वाणी कलकल विनादिनी पुण्यतोया गंगा—जो जन-जन के कल्याण के लिए पर्वतों, चट्टानों, कन्दराओं और बीहड़ों की चीरती हुई लोकभूमि पर अवतीर्ण हुई जिसकी मुखर वाणी 'तारतम बानी' में संकलित हुई। यह अमृत वाणी जहाँ-जहाँ से गुज़री — वे अज्ञात और अनाम क्षेत्र पुण्य-तीर्थ बन गये। महामति की तारतम बानी (कुलजम स्वरूप या स्वरूप सागर) केवल हिन्दू धर्मग्रंथ नहीं है—इसमें मानवीय चेतना तथा विभिन्न धर्म-संस्कृतियों की मूल संकल्पना तथा उनमें निहित विचार धाराओं और सरणियों के समन्वय की विराट चेष्टा देखी जा सकती है। यह मात्र प्रणामी धर्म ग्रंथ नहीं बल्कि समस्त समानान्तर धर्म संस्कृतियों, सम्प्रदायों, साधनाओं तथा विश्वासों का सम्मिलित कीर्ति कलश है।

आत्मा और परमात्मा के मिलन के इस विराट आयोजन को महामति ने अधिकांश स्थलों पर, जहाँ भी अवकाश मिला है, पूरी तन्मयता से वर्णित किया है। उनके इस वर्णन में आगम और आतम— दोनों ही पक्ष की साक्षी ग्रहण करते हुए— परमात्मा के आह्वान और आगमन का संकल्प, बड़ी आशा और आस्था के साथ दोहराया गया है—

आगम की बानी कही, पिया आवेंगे तेहेकीक।
तिन आसा मेरी बाँधी, पूरन आई परतीत।।
मन चित बुध दृढ़ किया पिया न करे निरास।
महामति नेहेचे कर कहें, होसी दुलहे सों विलास।।

कलस हिन्दुस्तानी, प्र. २/५४-५५

इस आयोजन में परमात्मा की सक्रिय भागेदारी और हिस्सेदारी को महामति ने कई प्रकार से व्यक्त किया है और 'तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावे' के अनुरूप कई रूपकों में विन्यस्त किया है। लेकिन किरंतन (प्र. ५५) में दुल्हा-दुल्हन के सांग-रूपक के माध्यम से आत्म-परमात्म तत्त्व के सर्वश्रेष्ठ संबंध को भी बड़े प्रभावी ढंग से निरूपित किया गया है—

मैं जो आई ब्याहन दुलहे को, दुलहा आये मुझ कारन।
बाँधे पालव सों पालव, पाट बैठे दुलहा दुलहिन।।
सत पर सत दोऊ परवत, तोरन बाँधे हैं बंध।
बिन थलिएं विवाह हुआ, हाथों हाथ जोड़े मूल सनमंध।।

किरंतन, प्र. ५५/५-६

महामति का अपने प्रियतम के ऊपर पूर्ण विश्वास रहा और जैसा कि 'सिन्धी वाणी' में उन्होंने बार-बार कहा भी है— आत्मकातरता, आत्मकरुणा, काया-कष्ट और अन्यथा ऊहा-उपालंभ से न तो प्रियतम परमात्मा प्रसन्न होते हैं और न पसीजते हैं। बल्कि अपनी जगहँसाई ही होती है। महामति पीड़ा या कसनी के बहिर्प्रकाशन की अपेक्षा आत्मानुसंधान पर ज़ोर देते हैं और इस प्रक्रिया को आनंद से परिपूर्ण प्रसन्नता से सार्थक और सुख से सम्पन्न करना चाहते हैं। वे यह नहीं चाहते कि अपनी आत्म-अंगनाओं (आत्म सखाओं) को फूल की नरम पँखुरी तक से भी कोई चोट पहुँचे। काया को कष्ट पहुँचाने की तमाम स्वीकृत विधियों और प्रस्तावित योजनाओं को (कलश और प्रकाश) ग्रंथ में विस्तार से देखा जा सकता है। प्रभु की राह पर की जानेवाली मिलन-संकल्प-यात्रा भले ही दुखद या त्रासदायक हो,..... आत्मिक सुख के लिए और परम सुख-प्रदाता परम के आसंग के लिए स्वयं दुःख का मार्ग चुनकर उसका पथ प्रशस्त करना है एवं अपने संगी-साथियों को भी सुखपूर्वक जगाना है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महामति ने प्रेम या 'इश्क़' की महिमा को सर्वोपरि माना है। प्रेम की महत्ता और महानता, गति और शक्ति, इसके सदाशय और पुरुषार्थ को महामति ने, प्रसंगानुरूप और कभी-कभी भावावेश में, एक अभिनव सोपान प्रदान किया है। यह प्रेम ही है जो विराट, शून्य और शब्दब्रह्म की समस्त सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है और यह प्रेम ही है, जो किसी कृतघ्न हृदय में स्थान नहीं बना पाता। इन दोनों ही स्थितियों का अतिक्रान्त करनेवाले प्रेमभाव की विरलता और अपर्याप्तता पर महामति ने बड़ा आश्चर्य और आक्रोश प्रकट किया है। प्रेम को आत्मा और परमात्मा की सबसे बड़ी थाती मानकर 'सनंध' (सनद या संबंध) में जहाँ इसकी सर्वोच्च स्थिति का गुणगान किया गया है, वहीं 'सिनगार' ग्रंथ में परब्रह्म परमात्मा के अन्यान्य सभी अवदानों में प्रेम की उपस्थिति को ही स्वीकार किया गया है, अर्थात् परमात्मा की दया के सभी उपादान और समस्त आयाम प्रेम केन्द्रित और प्रेमपूरित हैं :—

और इसक कोई जिन कथो, इसकें न पोहोंच्या कोय।
इसक तहाँ जाय पोहोंच्या, जहाँ सुन सबद न होय।।

सनंध, प्र. ९/५

अरस सारा इसक का और इसक रूहों निसबत।
इसक बिना जरा नहीं, सब हक इसक न्यामत।।

सिनगार, प्र. २०/१३६

लेकिन साधक (या अंगना) के प्रेम को अंगांगी भाव से समृद्धि प्रदान करते हुए साधक के सदाशय के समर्पण एवं परमाशय के अनुग्रह को भी विशेष महत्त्व एवं सम्मान दिया गया है। महामति की आत्म-शक्ति में परमात्मा के आदेश, आवेश और कृपा का समान स्थान रहा है और सामूहिक जागनी के सरोकार में परमात्मा की अनुकंपा का विशिष्ट और सर्वाधिक महत्त्व है–

इन दुख की जिमी में बैठ के, मेहरें देखे दुख दूर।
कायम सुख जो हक के, सो मेहर करत हुजूर।।

सागर, प्र. १५/११

परमात्मा की अनुकंपा या कृपा से सांसारिक या जागतिक सुखों की पूर्ति भी संभव है, लेकिन वह महामति का लक्ष्य नहीं। इस 'मेहर' को पाने के बाद साधक का विवेक जाग्रत होता है। इस कृपा को आत्मा की आँखों से पढ़ने की ज़रूरत है, तभी उसकी महत्ता समझ में आयेगी :–

केती कहूँ मेहेर महबूब की, रूहों देखो सहूर कर।
महामत कहें मेहेर अलेखे, जो देखो रूह की नजर।।

खिलवत, प्र. ८/५६

आत्म-विवेक को सजग एवं जाग्रत करने के लिए महामति उन तमाम युक्तियों की दुहाई देते हैं– प्रियतम की दया का बार-बार हवाला देते हुए चित्त के समस्त विकारों को दूर करने की विधि बताते हैं और अंत में अपने अवतरण की सफलता के प्रति भी समर्पित देखे जा सकते हैं–

अब जगाऊँ जुगत सों, उड़ाऊँ सब विकार।
रंगे रास रमाय के, सुफल करूँ अवतार।।

कलश, प्र. २३/३

इस रूप में महामति की भूमिका सर्वथा अलग रही है कि वे इस बात से पूरी तरह आश्वस्त हैं कि उन्हें जगत की ब्रह्म-प्रिया आत्माओं–अंगनाओं के सामूहिक आत्मोत्थान और आनंद-रास के लिए सद्गुरु देवचन्द्र महाराज ने महिमा और शक्ति प्रदान की है। पंचशक्तियों–परब्रह्म का आवेश, आनंद अंग श्यामा की आत्मा, अक्षर ब्रह्म की बुद्धि, आदेश या हुक्म और नूर का सम्मिलित उत्कर्ष ग्रहण कर तथा 'विजयाभिनंद निष्कलंक बुध' अवतार से अभिषिक्त महामति प्राणनाथ 'आत्मा-परमात्मा' के बिछोह और विरह व्यक्त करनेवाली वाणी की चौपाइयों में प्रचुरता से वर्णित रूप और रूपक में चाहे जितने भी कातर, दयनीय और बेबस दीख पड़ें– आत्मिक उत्थान और संगी आत्माओं की समवेत जागनी के लिए, उतने ही सक्रिय, आश्वस्त और अलौकिक शक्ति के स्रोत प्रतीत होते हैं। यह गहन आत्म-विश्वास और संगी अंगनाओं की उन पर अटूट आस्था से जागनी के नये परिमंडल और सुविस्तृत दिगंत का निर्माण हुआ। संभवतः जागनी के प्रति साथी आत्माओं के आग्रह और समर्पण भाव से महामति के संकल्प के दोनों ध्रुवांतों का सम्मिलन–सार्थक हो पाया। लोक मंगल के लिए समस्त विकारों और वैमनस्य से अलग एक नये और सच्चे ब्रह्माण्ड (सृष्टि) की अवधारणा पूरी हुई और तारतम वाणी का मूल आशय स्पष्ट हो सका–

ए बानी तो करूँ जाहेर, जो करना सबों एक रस।
वस्त देखाय बिना, वैराट न होने बस।।

कलश, प्र. २३/८३

ए भोम हाँसी देख के, आप होत सावचेत।
मूल सुख कहे महामति, तुमकों जगाय के देत।।

कलश, प्र. २२/२१

महामति ने इस ब्रह्म-ज्ञान से प्राप्त विवेक को व्यापक एवं वृहत्तर संदर्भ प्रदान किया। उनके लिए यह विभिन्न मत-मतान्तरों, मान्य धर्म-संस्कृतियों को समान आदर एवं अन्विति देने का साधन था। इस आत्म-ज्ञान को पाकर यह दुनिया ही नहीं, अखिल सृष्टि, चौदह तबक प्रेममय हो गये। महामति ने इस ज्ञान के प्रभाव से समस्त विश्व की प्रेममयी भावसत्ता पर आश्चर्य प्रकट किया है और कहा है कि अगर यह नश्वर, पल-पल नष्ट होता क्षणभंगुर संसार इस ज्ञान के बल पर प्रेम से परिपूर्ण हो उठा तो परमधाम—अर्श अजीम—पर इसका क्या प्रभाव होगा। सच्ची ब्रह्मात्माओं के लिए यह प्रियतम का सर्वथा योग्य उपहार है :—

जब ए इलम रूहों पाइया, इसक हो गया चौदे तबक।
और देखे न कछू नजरों, सब देखे इसक हक।।
सब दुनियां हक इसक हुआ, तो देखो अरस में होसी कहा।
ए आया इलम रूहन पर, हकें भेजया ए तोहफा।।

सिनगार, प्र. २/३३, ३९

यही ज्ञान अपने को जब विशिष्ट अनुभव से समृद्ध करता चलता है तो वह धर्मग्रंथों का अध्ययन या मनन किये बिना भी स्वयं को परमधाम के समस्त उत्कर्षों एवं उपादानों के बीच पाता है। यह अनुभव कुछ वैसा है, जैसा कि रूह अल्लाह के सम्पर्क में आकर उनके ढेर सारे उमी या अनपढ़ अनुयायी क़ुरानादि धर्मग्रंथों के अर्थ, आशय और आदेश को अपने मन, जीवन और चितवन में उतार सके—

इलम खुदाई लुदंनी, रूह अल्लाह ल्याये जित।
उमियों पट खोले बका मिने, बैठाये कर निसबत।।

सागर, प्र. १३/२८

महामति ने 'सनंध', 'खुलासा' और 'सागर' आदि ग्रंथों में वेद-कतेब, पुराण-क़ुरान आदि में समान एवं समकक्ष प्रतीत होनेवाले सभी हवालों या दृष्टांतों को इसी ज्ञान के आधार पर सूत्रबद्ध किया है और उनकी ग्राह्य व्याख्या की है। इस आत्म ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान को आतम साखी से पुष्टकर वे बड़े ही आत्मविश्वास से विपरीत या विषम जान पड़नेवाली धार्मिक अवधारणाओं और प्रमेयों की समानताओं और उद्देश्यों को निबद्ध करते हैं—

विष्णु अजाजील फरिश्ता, ब्रह्मा मैकाइल।
जबराइल जोस धनीय का रुद्र तामस अजराइल।।
मलकूत कह्या बैकुंठ को, मोह तत्त्व अंधेरी पाल।
अक्षर को नूर जलाल, अक्षरातीत नूर जमाल।।
ब्रह्म सृष्टि कहे मोमन को, कुमारका फरिश्ते नाम।
ठौर अक्षर सदर तल मुंतहा, अर्स अजीम सो धाम।।
सखियाँ रूहें दरगाह की, सुरत अक्षर फरिश्ते नाम।
बुध जी को असराफील, विजिया अभिनन्द इमाम ।।

खुलासा, प्र. १२/४५,५१-५४

धर्मों के बाह्य स्वरूप में चाहे जो भी भेद हो, उनके अंतःस्वरूप में कोई पार्थक्य नहीं होता—यही स्थापित करने के लिए महामति निरंतर अपनी वाणी का गायन करते रहे। वाणी का अर्थ ही है अंधकार में बर्हिप्रकाशन या बाह्याभिव्यक्ति, जो आत्म प्रेरित होती है। 'खुलासा' ग्रंथ में हिन्दू और सेमेटिक (इस्लाम, ईसाई तथा पारसी) धर्मों की धार्मिक परंपराओं, अवधारणाओं और सामाजिक रूढ़ियों तक में जो आधारभूत मान्यताएँ हैं, महामति ने उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है। महामति की विचार-यात्रा में सम्मिलित होनेवाले अध्येताओं को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि महामति ने वैदिक (वेद, पुराण, भागवत आदि) को सेमेटिक अवधारणाओं (क़ुरान, बाइबिल, हदीस आदि) से, जैसे-जैसे उनका परिचय प्रगाढ़ हुआ— व्यापक अर्थ प्रदान करते हुए, उन्हें परस्पर सम्बद्ध और सुसंहत किया। यह सारा उपक्रम सायास नहीं हुआ क्योंकि यह आधारभूत सत्य तो पहले से ही स्पष्ट हो चुका था कि परमात्मा की परम ज्योति ही विभिन्न धर्मों, संप्रदायों या विश्वासों में प्रज्ज्वलित होती रही है। विभिन्न जातियों, प्रजातियों ने इसे अपनी-अपनी आवश्यकता और आकांक्षाओं के अनुरूप प्राप्त किया है। महामति की परवर्ती वाणियों यथा, 'सनंध', 'खुलासा' और 'कियामतनामा' (छोटा एवं बड़ा) में दो विभिन्न और विषम प्रतीत होनेवाली संस्कृतियों की मूलभूत एकता को व्यावहारिकता के स्तर पर अपनाने का न केवल संदेश दिया, बल्कि उसे अपने कार्यजीवन में उतारा। 'वेद' और 'कतेब' के परम सत्य धर्म या हक़ीकी दीन इस्लाम को एक साथ-एक मंच प्रदान करना और विरोधियों का साहस के साथ मुक़ाबला करना भी महामति की चर्या का अपरिहार्य एवं अनिवार्य अंग था।

हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि इन तमाम अवधारणाओं और स्थापनाओं के बीच भी महामति प्राणनाथ के आराध्य श्रीकृष्ण सर्वगुण संपन्न शुद्ध साकार सरूप हैं और शुद्ध सगुणरूप में भक्ति सुलभ हैं। परब्रह्म परमात्मा की व्यापक परिभाषा के अंतर्गत ही उन्होंने सगुण और निर्गुण तथा स्थितियाँ विशेष कोटियों को स्वीकार किया। वे अपने ब्रह्म को अद्वैतवाद की मान्य अवधारणाओं के अंतर्गत व्यक्त तो करते हैं, लेकिन उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी गुणों से भी श्रीसम्पन्न करते हैं। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार से सर्वथा विशिष्ट शुद्ध साकार स्वरूपी, सर्वगुण संपन्न एवं चिन्मय परब्रह्म श्रीकृष्ण ही प्रणामी संप्रदाय में मान्य हैं।

क्षर-अक्षर और अक्षरातीत की मान्य या स्थापित कोटियों का उल्लेख श्रीमद्भगवत्गीता में भी हुआ है। वहाँ ब्रह्म को परात्पर पुरुषोत्तम की अपेक्षा न्यून और अपर प्रतिपादित किया गया है —'यस्मात्क्षर मतीतोऽहम क्षरादपि चोत्तमः।' श्रुतियों में इसीलिए अक्षर ब्रह्म को 'पारावार' और पूर्ण ब्रह्म को 'पूर्णात्पूर्ण' कहा गया। गीता में प्रोक्त उत्तम पुरुष या अक्षरातीत का आवेश ही, अखंड वृंदावन में रासलीला का उपलक्ष्य बना। लीला के समायोजन-संकल्प की रक्षा के लिए ही अक्षरातीत, सच्चिदानंद परमात्मा की आनंद सत्ता, प्रकृति एवं अर्द्धांगिनी के रूप में प्रकट हुई। महामति प्रणीत 'श्रीरास' में सच्चिदानंद आनंदघन की मूर्तिमान स्वरूपा किशोरी या श्यामाजी के रूप में अभिहित और अभिमंडित हुई। यों अंगस्वरूप और अंगी (अंगांगी) का भेद तो होता ही नहीं—यह तो लीलागत या सापेक्ष्य लीलाभेद—स्वरूपगत या 'अस्ति' रूप पार्थक्य नहीं। श्रीकृष्ण के अप्रतिमविग्रह को पधराकर सर्वश्रेष्ठ आसन प्रदान किया गया है—

निजनाम श्रीकृष्ण जी, अनादि अक्षरातीत।
सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत।।

....

जब ए सुख अंग में आवहीं तब छूट जाए विकार।
आयो आनंद अखंड घर को, श्री अक्षरातीत भरतार।।

वस्तुतः महामति ने क्षर, अक्षर और अक्षरातीत के रूपक द्वारा परा सत्ता या ब्राह्मी-सृष्टि को उनकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार द्योतित करने का प्रयास किया है। पूर्णब्रह्म, ब्रह्म से न्यारे, आनन्द अखंड, अपार। अक्षरातीत के रूप में उन्होंने इस सर्वोच्च सत्ता अधिष्ठान के भवति रूप और नित्य रूप का विवेचन किया है। भवति रूप लीला-अधिष्ठान है और अस्ति रूप है नित्य अधिष्ठान या रूप। अक्षरातीत सत्ता का अस्ति रूप या लीला रूप साकार में ही चरितार्थ होता है। लीला की अवधारणा साकार में ही संपन्न होती है। भवति अर्थात् लीला या फिर अस्ति अर्थात् नित्य के इस लीला-द्वंद्व को महामति ने 'स्वलीलाद्वैत' से परिभाषित किया है। लेकिन उनका यह सगुण लीलावपु दिव्य-स्वरूप समस्त दिव्य-गुणों से भूषित होता है—उसमें प्राकृतिक या भौतिक शरीर की उपस्थिति नहीं रहती। परमात्मा—सगुण लीला का आधान होते हुए भी—अपनी अर्द्धांगिनी जीवात्मा (प्रेयसी) के लिए पति या खसम होता है :

खसम जो न्यारा द्वैत से, और ठौर सब द्वैत ।
किने न कह्या ठौर नेहेचल, तो पाइये कैसी रीत।।

कलश हिन्दुस्तानी, २/२३

इस खसम (एक अर्थ ख =आकाश, सम=जैसा—अर्थात् आकाशवत्) को पाने के लिए महामति सरलतम भाषा में आत्मा (सच्चे साधक), मोमिन या सोहागिनों को प्रबोध देते हुए कहते हैं—

जोर कर तुम जागो जीव जी, नहीं सूते की एह जिमी जी।
ज्यों ज्यों सोइये त्यों त्यों बाढ़े विष विस्तार, पीछे दुख पावे जीव आदमी जी।

आत्मा को इतने निकट से पुकारने वाले महामति हमारे बीच अपनी महान तारतम वाणी में विराजमान हैं। ऐसा माना जाता रहा है कि महामति ने बुन्देला नरेश छत्रसाल को केवल विष या विकार उतारनेवाला तारतम मंत्र ही प्रदान नहीं किया, बल्कि समृद्धि और गौरव प्रदान करने के लिए हीरे की खान का संधान भी दिया। इस दृष्टि से जो लोग महामति वाङ्मय का अवगाहन करना चाहते हैं, उनके लिए सारा का सारा तारतम सागर ही अनमोल रत्नों से भरा है और यह पन्ना के हीरे की खान से कहीं महत्त्वपूर्ण, बहुमूल्य और उपयोगी है।



मानसी सेवा : अन्तर्यात्रा का पाथेय

डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, -पी. एच. डी., डी. लिट्.

ए-१/३४१, जनकपुरी,
नई दिल्ली ११००५८

यात्रा कोई भी हो—भौतिक अथवा आध्यात्मिक—पाथेय या अवलम्ब की सदा आवश्यकता बनी रहती है, चैतन्य के आधार शरीर को गन्तव्य तक पहुँचने के लिए अथवा चेतना के स्वस्थ बने रहने के लिए। 'यात्रा' एक क्रिया है, जिसमें गति विद्यमान है। गतिशीलता में जितनी पाथेय की अनिवार्यता रहती है उतनी ही यात्री में अपने को लघु अथवा भारहीन बनाए रखने की भी आवश्यकता बनी रहती है। कोई भी भार अथवा बोझ चाहे वह भौतिक हो अथवा काम-क्रोध-मोह-लोभ, छल-कपट या अहंकारादि के रूप में मानसिक हो, यात्रा को सरल-सुखद नहीं रहने देता, बल्कि दूभर बना देता है। महामति की चेतावनी है—

बेहद वाटें कपट चाले नहीं, रखिये नहीं रजमात्र। —**किरंतन**, ६७/८

लोक-यात्रा के किंचित् उदाहरण-साम्य से आध्यात्मिक यात्रा का एक हल्का-सा बिम्ब हमारे मानस पटल पर उभरता है। वैसे आध्यात्मिक यात्रा मानसी होने के कारण 'अगम'— बड़ी दुर्गम और दुष्कर मानी गई है, पर लक्ष्य-सिद्धि होने पर वह उतनी ही आनन्दमय भी है—

बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर संदेस।।[१]

मानसी सेवा [२] या पूजा उसी ऊर्ध्व साधना या अन्तर्यात्रा का पाथेय है। इस अन्तर्यात्रा का लक्ष्य 'शिखर घर' तक पहुँचना अर्थात् अध्यात्म की परम समता प्राप्त करना और

---

१. संत वानी संग्रह १, पृ० ३५

२. **टिप्पणी** : प्रणामी सम्प्रदाय में प्रतीक, चित्र, मूर्ति आदि की पूजा के स्थान पर मानसी सेवा महत्त्वपूर्ण है। लोग कुलजम स्वरूप के सम्मुख पूजा सामग्री रख कर मन से चिन्तन करते हैं अथवा यों ही ध्यान में परमधाम के पच्चीस पक्षों में रमण करते हुए अपनी दैनिक चर्या में परमात्मा को सम्मिलित करते हैं। स्नान, ध्यान, भोजन में प्रियतम के साथ तादात्म्य वनाए रखते हैं। शरीर के कार्य-कलाप, इन्द्रियों के गुण और स्वाद, मन के भाव, अपेक्षाएँ सब ब्रह्ममय हो जाँय, यही मानसी सेवा का लक्ष्य है। परिकरमा ग्रंथ में मानसी सेवा विधि है—

बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जागृत।
खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत।।
—परिक्रमा,४/१६

महाराग में जीना है। पर वहाँ तक पहुँचाने वाला मार्ग सन्त कबीर के अनुसार अत्यन्त झीना, दुर्गम और रपटीला है, जिस पर चींटी के पैर भी मुश्किल से टिक पाते हैं, फिर अधिक बोझ ले कर चढ़ पाना कितना कठिन है।[१] महामति का कहना है अपने सिर पर और आत्मा पर इतना भार या बोझ लेकर कौन पहुँच सकता है ? अन्तर्यात्रा पर अग्रसर होना शक्तिहीनों, कायरों या संकल्पहीनों का काम नहीं है। मानसी यात्रा पर चलने से पहले आत्मशक्ति एवं वीर्यवती मानसिकता का संबल अनिवार्य है। साथ ही समर्थ गुरु का निर्देशन भी ज़रूरी है।[२]

यहाँ संत कबीर का साक्ष्य इसलिए भी संगत है कि महामति ने कबीर को अक्षरोपासक माना है और उनका शुक-सनकादि संत के साथ बड़े सम्मान से नामोल्लेख किया है। इन साधकों, मुमुक्षुओं की अन्तर्यात्रा अक्षरोपासना तक की होती है, उसके आगे अक्षरातीत दशा तो लक्ष्य है, साधक की चरम दशा का जीवन है। कुछ संतों ने विशेषतः महामति प्राणनाथ ने उस दशा का बड़ा सूक्ष्म और विशद वर्णन किया है। कबीर के सम्बन्ध में महामति के विचार हैं—

सुकजी और सनकादिक दोए। कबीर भीं इत पहुँचाया सोए।।

— **प्रकाश**, प्र० ३४

शुकदेव और सनकादिक, कबीर शिव भगवान। — कलश,

इस दुर्गम पथ के बारे में साधकों को पहले ही सतर्क कर रखा है।

उपनिषद् का ऋषि कहता है— 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। अर्थात् शक्तिहीन आत्मसाक्षात्कार नहीं कर पाता। कबीर कहते हैं कि स्वयं अपने हाथ से अपना शीश काटने की क्षमता वाला ही हरिनाम लेने का अधिकारी है। कोई कायर या दुचित्ता, विभक्त मन से भक्ति-मार्ग पर नहीं चल सकता।[३] स्वयं महामति साधना-मार्ग को दुर्गम एवं भयानक बताते हैं—"वह मार्ग इतना ऊबड़-खाबड़ है कि हाथ-पाँव टिकाने तक ही जगह नहीं है, कोई सन्त सिपाही ही उस मार्ग की कठिनाइयों के प्रहारों को झेल सकता है। ऐसे संकल्पी साधक के मार्ग को विघ्न-बाधाएँ अवरुद्ध नहीं कर सकतीं। ऐसे साधक की जीवन यात्रा में उसका प्रेमास्पद = प्राप्तव्य दुलहा, उसके पथ का दिशा-निर्देश करते हुए आलोकित करता चलता है—

ओतड़ दीसै रे अति घणूं दोहेली, हाथ न थोभे रे पाए।
काम नहीं इहाँ कायर तणू, सूरे पूरे घायलें लेवाए।।'

किरंतन, ६७/४

बिरहा न छूटे बल्लभा, जो पड़े विघ्न अनेक।
पिंड न देखों ब्रह्मांड, देखों दुल्हा अपनो एक।।

कलश, ६/४

---

१. 'घाट अवघाट सिलपाट अति सलवली, तहाँ हाथ ना टिके पपील'

२. जन कवीर का सिषर घर, वाट सलैली सैल।
पाँव न टिके पपीलका, लोगनि लादे बैल।। — **कबीर ग्रं०, सा० १४/७**
पंथ दुहेला दूरि घरि संग न साथी कोई। — **संत वा० सं०, भा० १ दादू, पृ० ८०**

३. भगति दुहेली राम की, नहीं कायर का काम।
सीस उतारे हाथि करि, सो लेसी हरि नाम।। **कबीर ग्रंथावली, सा० ४५/२४**

यह अन्तर्यात्रा संसार-यात्रा की विरोधी नहीं है, पर लक्ष्य (गन्तव्य)-भेद में भिन्न है। संसार-प्रवाह अथवा 'धारा' अपने मूल स्रोत अथवा परमेश्वर से अलग होकर बहती चलती हुई अपने उद्‌गम से निरंतर दूर होती जाती है।

सामान्य प्राणी, जिसे साधना-साहित्य में प्रवाही-जीव कहते हैं, लोक-चाल, रूढ़ि और शास्त्र के सहारे बहता रहता है।[१]

सतगुरु साधो वाको कहिए, जो अगम को देवे गम।
हद बेहद सबे समझावै, भाने मन को भरम।।

—**किरंतन**, ५/१२

इस प्रवाही मनुष्य को साधु बनाने का प्रयत्न संत-गुरुओं ने किया है—

हद में रहे सो मानवी, बेहद रहे सो साध।
हद बेहद दोऊ तजै, ताको मता अगाध।।

—**संत बा० सं०**, भाग १, पृ० २३

मुमुक्षु-वृत्ति के परिणामस्वरूप साधक अथवा अन्तर्मुखी जीवन यापन करनेवाले जिज्ञासु को, जीवन-मार्ग में यात्रानुभवी निर्देशक अथवा समर्थ सतगुरु, जिन्होंने समता प्राप्त कर 'हद' की सीमाओं का अतिक्रमण कर लिया है,[१] मिल जाते हैं और वे निरुपाय, असहाय बने जिज्ञासु यात्री के हाथ में ज्ञान का, प्रेम का दीपक दे देते हैं, जिसके प्रकाश में उनकी अन्तर्मुखी यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।

पाछैं लागा जाइथा लोक वेद के साथ।
पैंडे में सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथ।।

—**कबीर ग्रं० १/१४**

परिणामतः अब तक जो 'धारा' अथवा संसार-प्रवाह उनके लिए प्रवृत्तिपरक या मोहमय था, वही फिर निवृत्तिपरक या वैराग्यमय बन जाता है और जो प्रवृत्ति 'धारा' थी, वही उलटकर निवृत्तिमयी 'राधा' बन जाती है। इस निवृत्तिमयी अन्तर्मुखी यात्रा में यात्री की वृत्ति लय-योगमय होकर महाराग में निमग्न बनी रहती है—

कबिरा धारा अगम की सतगुरु दई लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो स्वामी संग लगाय।।

—**संत बा० सं०** १, पृ० ७

महामति ने इसी निवृत्तिमयी अन्तर्मुखी वृत्ति को 'रस वैराग' कहा है। यही आराधक को अपने अन्तर्यात्रा के गन्तव्य रूप 'घर' तक पहुँचाने में सहायक होता है—

घर जालों घर ऊबरै, घर राखौ घर जाइ।

—क० ग्रं०, ४१/४

वास्तविकता तो यह है कि आराधना में मन को मारा नहीं जाता, और मारा जा भी नहीं सकता। उसकी दिशा बदली जा सकती है, उसका रूपान्तरण किया जाता है, उसकी असद् वृत्तियों को सद्‌वृत्तियों में ढाला जाता है। मानव-चेतना में मन बड़ा समर्थ और शक्तिशाली इन्द्रिय है। बहिर्मुखी बने रहने पर यह ईश्वर प्राप्ति में, समता

---

१. कनफूँका गुरु हद का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले, तब लहे ठिकाना ठौर।। - **संत बानी संग्रह १, पृ० ४**

के जीवन में बाधक बना-रहता है, क्योंकि गुण- इन्द्रियादि इसके अधीन बने रहते हैं और यह अपनी चंचलता के कारण बाहर भागता हुआ समझता है कि सांसारिक सुख के बराबर कोई सुख नहीं है। फलतः यह कुम्हार के 'चकरड़े' की तरह घूमता रहता है और अखंड आनन्द को खो बैठता है।

अब तोकों कहूँ चाक चकरडा चढ़ बैठा जीव के सिर।
तें खाली ऐसा फिराया, रह न सके क्यों ए थिर।।

— प्रकाश हि०, २०/८१

जो जानों घर पाइए अपना, तो राखियो रस वैराग जी।
सकल अंगों सुध सेवा कीजो, इन विध बैठो जाग जी।।

—प्रकाश हि०, ३०/४२

अध्यात्म-अन्तर्यात्रा का यात्री आराधक, जीव-सृष्टि अर्थात् लोक-यात्रा के साधकों से थोड़ा भिन्न स्वभाव का होता है। अन्तर्मुखी चेतना में उन्मन होने के कारण मन की दशा और दिशा ऊर्ध्वमुखी रहती है। जब मन की वृत्ति या स्वभाव ही बदल जाए, रूपान्तरण हो जाए, तब मन की समूची शक्ति ही 'उन्नयन मार्ग' पर अग्रसर होने लगती है। प्राणनाथ जी के परम लक्ष्य ब्रह्म-सृष्टि में 'प्रेम-साधना' का विशेष लक्ष्य प्रतिपादित हुआ है। उनका विश्वास है कि 'जीव-सृष्टि' में 'वजूदी बन्दगी' अर्थात् शरीर-शुद्धि, ईश्वर-आराधन, आरती, कीर्तन, उपवास आदि चर्या विशेष उपयोगी रहती है। किन्तु, आत्मा का परम रूप साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए शरीर को कृच्छ्र-साधना की आवश्यकता नहीं। नश्वर शरीर का सम्बन्ध नाशवान संसार से है, अविनश्वर परमात्मा का सम्बन्ध जीवात्मा से है।

परमधाम या परम लक्ष्य के लिए इतने शक्तिशाली इन्द्रिय 'मन' का दमन करना उचित नहीं। अपितु, सहज रूप में परमात्मोन्मुख करके अन्तर्यात्रा के सहयोगी के रूप में उससे बहुत बड़ा काम लेना लक्ष्य होना चाहिए।[१]

मन के दमन करने में अपनी शक्ति और समय ही नष्ट होंगे और फिर इच्छादि के दमित होते ही लक्ष्य-प्राप्ति, 'पिऊ मिलन' की इच्छादि भी उदासीनता में लय हो जायेगी।—

अब ममता आओ मेरे पिऊ में, तोको पहिले दई धिकार।
अब संघातन हो तूं मेरी, मोहे मिले धनी सिरदार।।'

— प्रकाश, प्र० २०

इसलिए महामति ने इस अन्तर्मुखी यात्रा में 'इन्द्रिय दमन' का आग्रह नहीं किया। आरोहण की इस साधना के मार्ग में प्रवृत्ति या प्रकृति को जब बलात् या हठात् रोका जाता है तो वह अन्यत्र फूट-फूट कर निकल पड़ती है और अवैध मार्ग का अनुसरण

---

१. 'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म।' —गीता, ६/३४

समर्थ मन तू बड़ा जोराबर, कहा कहूं तेरो विस्तार।
तुझ में फैल विध विध के, अलेखै अपार।।
अबतोसों काम बड़ा मेरा, मदमस्त मेंवार।
फिर तूँ पख पच्चीस माहिं, बलवन्त बेसुमार।।

— प्रकाश, २०/८३-८४

करने लगती है। भारतीय साधना के इतिहास में बौद्ध-सिद्ध एवं तंत्र-साहित्य में वामाचार या यौनाचार के अनेक विकृत उदाहरण मिलते हैं। महामति ने सम्पूर्ण इन्द्रिय-शक्ति को घेर कर, संगठित करके अन्तर्मुखी करने की बात कही है—

गुण पख अंग इन्द्री उल्टे, करत हैं सब जोर।
सो सब टेढ़े टाल के, कर देऊँ सीधे दोर।।

— कलश, प्र० २१/२४

जिन अंगों मिलिए पीऊ सों सोए दिए उलटाए।।

— किरंतन, प्र० ६०/१४

मानव चेतना का उन्नयन इसी अन्तर्यात्रा का परिणाम है। अन्तर्मुखी जीवन के लिए 'कहनी' से अधिक 'रहनी' अर्थात् 'वर्तमान' स्थिति में चेतना की निरन्तरता आवश्यक है। वहाँ मानने और जानने से अधिक पहचानने का महत्त्व है। महामति का कहना है कि रात [नासमझी] में लोग कह-सुनकर बैठ रहते हैं, करते कुछ नहीं। अब तो आचरण के दिन आए हैं। आचरण के बिना कथन किस काम का ? रहनी से ही परमात्मा के द्वार अनावृत होते हैं। रहनी आंत्मचेतना तक पहुँचने में सहायक होती हैं। कहनी 'चाम' तक अर्थात् भौतिक जीवन या शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र तक पहुँचाने में सहायक हो पाती है। देखिए—

कदी केहेनी कही मुख से, बिन रेहेनी न होवे काम।
रेहेनी रूह पोहोंचावहीं, केहेनी लग रही चाम।।
केहेनी सुननी गई रात में, आया रेहेनी का दिन।
बिन रेहेनी केहेनी कछुए नहीं, होए जाहेर अरस बका तन।।

—कियामत नामा छोटा, १/५५-५६

'मानसी सेवा' की अखण्डता या निरन्तरता बनाये रखना वृत्तियों या इन्द्रियों की अन्तर्मुखता के बिना संभव नहीं है, क्योंकि जिन इन्द्रियों से 'परम प्रिय' को मिलना है, उसका साक्षात्कार करना है, उनको आन्तरिक स्वत्व से पुष्ट करना, शक्तिशाली और असीम बनाना होगा, संकीर्णता और क्षुद्रता त्यागनी होगी। महामति के अनुसार,

हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।

प्रिय के अनुरूप बनना अथवा यों कहें कि इन्द्रियों को पात्रता प्रदान करना आवश्यक है, क्योंकि आधेय प्राप्ति के लिए योग्य आधार अपेक्षित रहता है?[१] और मानस सेवा के बिना 'भाव देह' के दोष प्रक्षालित नहीं हो पाते। बिना योग्य आधार के आधेय की सत्ता नहीं हो सकती। बिना विशुद्ध देह के भाव का उदय नहीं हो सकता। यह प्राकृत देह अशुद्धियों का आगार होने से नितांत मलिन, दोषपूर्ण तथा अशुद्ध होती है। इसमें भाव जैसे विशुद्ध पदार्थ के धारण करने का सामर्थ्य नहीं रहता। भाव देहांतर विशुद्ध देह होती है और बाह्य देह बाहरी अशुद्ध देह होती है। भाव देह के सिद्ध होने पर ही साधक के हृदय में भाव का उदय होता है और यही भाव नाना साधनों से विकसित होकर प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है। बिना प्रेम के उदय भगवान के अपरोक्ष ज्ञान का उदय नहीं होता।[२]

१. केसरी दूध न रहे रजमात्र। उत्तम कनक बिना जो पात्र।।
२. भागवत संप्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ १४३-४४

जोलों प्रेम न उपजे पीऊ सों, तोलों मन न छोड़े फेर।

—किरंतन, १५/५

इसके लिए आराधक की चेतना को 'मरजीवा' शक्ति अपनानी होगी। यह 'मरजीवा' तत्त्व है क्या ? मरजीवा का शाब्दिक अर्थ है जीते जी मर जाना या मृतकवत् हो जाना। यह भौतिक मृत्यु से भिन्न प्रकार का 'मरना' होता है। देखिए—

मर मर सब कोई जात है, चाहिए मोमनों मौत फरक।
दुनिया बीच गफलत के, मोमिन जागें दिल अरस हक।।

—कियामत नामा, छोटा १/६४

महामति की दृष्टि में 'हक़' की हक़ीक़त जानने, स्वामी की पहचान और आत्म साक्षात्कार के लिए अन्तर्मुखी यात्रा पर अग्रसर होने के लिए यह 'मरण' आवश्यक है। और इस मौत से ज़िन्दगी में सर्वत्र सुगन्धि ही सुगन्धि भर जाती है। देखिए—

पेहेले पी तू सरबत मौत का, कर तेहेकीक मुकर्रर।

—खिलवत, २/३१

जो तू ले हकीकत हक की, तो मौत का पी सरबत।
मुए पीछें हो मुकाबिल, तो कर मजकूर खिलवत।।
कौल फैल आए हाल आइया, तब मौत आयेगी तोहे।
तब रूह की नासिका को, आवेगी खुसबोए।।
पहिले आप मुर्दे हुए, पीछे दुनी करी मुरदार।

सिनगार, २५/६५,६७

वास्तव में यह मरजीवा साधक, सागर की गहराइयों से रत्न या बहुमूल्य पदार्थ खोज निकाल लानेवाले गोताखोर[१] की तरह एक संसार-सागर या हृदय-उदधि से विचार और विवेक का वेश पहनकर, धैर्य का अवलम्बन धारण करके, उल्टा गोता मारकर अन्तर्मुखी होकर, चेतना का मन्थन करते हुए ज्ञान और भाव रत्नों की प्राप्ति करता है। ऐसा करते हुए आराधक जब लौकिक, दैविक और मानसिक विघ्न-बाधाओं में भी अडिग बना-रहता है और तब काल की द्वन्द्वात्मक शक्तियाँ उसे विचलित नहीं कर पाती।[२] परमाराध्य के मार्ग अथवा **'राम कसौटी'** पर ऐसा कोई मरजीवा[३] ही टिक पाता है। ऐसा कालजयी विचारक 'स्व-राज्य' में जीता है और कार्य-कारण शृंखला से मुक्त हो 'स्वदेश' में 'स्वाधीन' बना रहकर विचरण करता है[४], परन्तु इस अन्तर्मुखी दशा में वह ऊर्ध्ववृत्ति होकर, लक्ष्यभेदी बाण साधे रहकर, ज्ञानोदय अथवा प्रेमोदय का मार्ग प्रशस्त करता हुआ अग्रसर बना रहता है।[५]

---

१. सो पावेगा लाल जाइके गोता मारे।
मरजीवा ह्वै जाइ लाल को तुरत निकारे।।
—पलटू० बा० भा० ३, पृ० ५३

२. मृतकहिं देखि डरानों काल। —सुन्दर ग्रं०, भा० २, अंग २२

३. खरी कसौटी राम की, खोटा टिकै न कोइ।

४. राम कसौटी सो टिकै, जो जीवित मृतक होइ।।' —कबीर ग्रं०, ४१/६

५. मृतक उठ्या धनक कर लीयै, काल अहेड़ी भागा।
उग्या सूर निसि किया पयांनां, सोवत थैं जब जागा।।— कबीर ग्रं०, पद ६

वास्तव में अर्न्तमुखी होने पर मन शक्तिमयी होकर सदा जीवन्त बना रहता है। बहिर्मुखी मन तो सांसारिकता के बोझ या वासना के दबाव के कारण मृतवत् ही होता है। ऐसे बोझिल मन की अन्तर्यात्रा या आराधना में कोई उपयोगिता नहीं होती। लेकिन, मृतक जीवित मन अन्तर्मुखी होकर सनातन हो जाता है।[१] और वैसा होने पर फिर कोई भी आकर्षण उसे बाहर खींचकर मार भी नहीं सकता।[२] मन की इस अन्तर्मुखी यात्रा के लिए महामति प्राणनाथ ने अनेक स्थलों पर अपना अभिमत दिया है। उन्होंने स्वयं 'मर्जिया' बन कर संसार यात्रा में मुहम्मद रूप मोती को पहचाना था—**'बीच मर्जिया होय काढ़ी सीप मिने मोती मुहम्मद पहचान।'** उनके द्वारा निर्दिष्ट 'मोमन' क़ुरान के अनुसार परमात्मा के प्रेम में भरकर, उसकी राह पर सब कुछ क़ुर्बान कर चलनेवाला यात्री 'मोमिन' कहा जाता है। गीता में यही स्थितप्रज्ञ या ब्रह्मनिष्ठ है। जब अध्यात्म-चेता अपनी अर्न्तयात्रा पर चल पड़ता है तो उसकी दुनियावी चाल बदल जाती है, क्योंकि उस यात्रा पर चलते ही उसका स्थानान्तरण सहज ही होने लगता है, रूह की आँखें खुलते ही चक्षुओं की बाहरी निगाह अवरुद्ध होकर सीमित हो जाती है।

जिन हरबराओं मोमनो, हुकुम करत आपे काम।
खोल देखो आखें रूह की, जिन देखो दृष्ट चाम।।'

—सिनगार, २६/६३

अन्तर्यात्रा में रूह दृष्टि से देखा हुआ सौन्दर्य और भी अनिर्वाच्य होता है—

महामत कहें मोमन की, मिट गई दुनियां चाल।
जागिए हक दिल अरस में, तो अबहीं बदले हाल।।

—सनंध, ३६/७४

जो जोत समूह रूप की, सो नैनों में न समाए।
जो रूह नैनों में न समावहीं, सो जुबां कह्यो क्यों जाए।।

—सागर, १०/५४

अध्यात्म की इस अन्तर्यात्रा में 'प्रपत्ति' अथवा भगवद् शरणागति, पूर्ण सहायक बनती है। इष्ट या परम के प्रति क्रियात्मक प्रेम अथवा श्रद्धा और प्रेम का समन्वित रूप ही 'भक्ति' कहलाता है। परन्तु 'प्रपत्ति' तो पूर्ण आत्मसमर्पण ही है। मानसी सेवा में प्रपन्न या शरणागत अपने उपास्य अथवा सेव्य की अहेतुक कृपा का आकांक्षी बना रहता है। जब कभी उसका अपनी यात्रा या आराधना का संबल चुकने लगता है, तो यह प्रपत्ति-भावना ही आराधक को पाथेय प्रदान करती है। भगवत् शरणागति पर तो सभी का पूर्ण अधिकार है। प्रपत्ति मार्ग पर अनुगमन करने के लिये वर्णाश्रमगत जाति, योनिगत भेद और समाजगत ऊँच-नीच या ग़रीब-अमीर की विभाजक रेखाएँ बाधक सिद्ध नहीं हो सकतीं।

राम सों बड़ौ है कौन मौ सों कौन छोटो।
राम सों खरौ है कौन मोसों कौन खोटो।

तुलसीदास, विनय पत्रिका

---

१. जब मन उलटि सनातन हुवा। तब जाना जब जीवत मूवा।।— **कवीर ग्रं०, पद १०**
२. जियतहिं जोरे मरै इक बारा। पुनि कत मीचु को मारै पारा।। — **पदमावत, २१६/६**

क्योंकि जिस बड़े के सामने अपने 'स्व' को अर्पित किया जाता है, उसका 'प्रसाद' ही हमारे 'प्रयास' को निरन्तर संबल प्रदान करता रहता है। उस परम की चेतना इस लघु के अहं को निरन्तर विगलित करते हुए आन्तरिक ऊर्जा को व्यापक और ऊर्ध्वमुखी बनाती रहती है। तब मानसी सेवा वाला आरोही सुख-दुःख के द्वन्द्व से ऊपर उठ जाता है और जब द्वन्द्व ही चेतना में नहीं रहता तो फिर चेतना, क्षमता को प्राप्त कर लेती है। यही समत्व चेतना आत्म-साक्षात्कार की मुक्त दशा है, 'वर्तमान' की स्थिति है। इस 'वर्तमान' में स्थित होने का अनुभव ही व्याप्ति का अनुभव है। इसमें जीना ही भगवान में जीना है। इस दशा को महामति प्राणनाथ ने 'हकदशा' कहा है। इस दशा में सदाचार आदि का भी महत्त्व नहीं रह जाता, क्योंकि दुराचार की वृत्ति ही लय हो जाती है। तब तो 'अहं' शब्द-शून्य में विलय हो जाता है। तब अखण्ड ध्यान उठते-बैठते, चलते-फिरते बना रहता है। यही 'मानसी सेवा' है—

खाते पीते उठते बैठते, सुपन सोवत जागत।
दम न छोड़े मासूक को, जाकी असल हक निसवत।।

मानसिक यात्रा की इस अवस्था तक पहुँचने पर, अध्यात्म जीवन जीने वाले यात्री की चेतना 'सहज' में डूब जाती है। तब उसके ऊपर किसी प्रकार की सेवा-भावना का आरोप नहीं किया जा सकता, तब तो वह हृदय में सहज ही उगती है, और भावमय फूट पड़ती है। ऐसा व्यक्ति साधना के लिए ही नहीं, समाज के लिए भी अत्यन्त विश्वसनीय बन जाता है। वास्तव में संसार में ऐसा कोई एकान्त स्थल नहीं, जहाँ मनुष्य छिपकर दुष्कर्म कर सकता हो, क्योंकि वह औरों से तो छिप सकता है, अपनी साक्षीभूता चेतना से स्वयं को नहीं छिपा सकता। यह जगत् जगदीश से प्रतिबिम्बित है, तो उसके प्रति उपेक्षा या घृणा क्यों ? समस्त उक्तियाँ उस परम की ही अभिव्यक्तियाँ हैं, फिर मनुष्य मनुष्य के प्रति अनादर और हीन भाव क्यों ? इसलिए इस अन्तर्यात्रा में प्रपत्तिमयी चेतना की स्थितिप्रज्ञता की अपेक्षा बनी रहती है। यह प्रपत्ति चेतना जीवन्मुक्ति के बाद की दशा है—

हम अरस परस हैं हक के, देखो मोमनो हिसाब।
हम हक में हक हम में, और हक बिना सब ख्वाब।।

— सिनगार, २/१२

क्योंकि इसमें जन्म-जन्मान्तर से कर्मों का रस पीकर बलवती हुई वासना-लता के अंकुर फूट नहीं पाते। अन्तर्यात्रा पर अग्रसर ऐसे संकल्पी यात्री-नौका का विपरीतमुखी संतरण-प्रवचन[१] बुद्धि सम्मत उपदेश अथवा वेदाध्ययन आदि यह कार्य नहीं कर पाते, स्वयं परमात्मा ही उनका कर्णधार बनता है, जो चेतना में ही उसे उपलब्ध हो पाता है।

मानसी-सेवा में आन्तरिक निर्मलता का विशेष महत्त्व बताया गया है—

'निर्मल जन मन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।। —मानस।

मन की निर्मलता चित्त की एकाग्रता के द्वारा ही संभव है। दिन-रात प्रियतम का स्मरण, दर्शन और रमण से बढ़कर कौन-सा तीर्थ हो सकता है ? अन्तर्यात्रा में यदि

---

१. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमैवेष वृणुते तेनलभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्।। **—कठोपनिषद्** १/२/२३

प्रवेश हो जाए, तो माया के दलदल में भी कमल के समान निःसंग रहा जा सकता है। आसक्ति के अभाव में अज्ञान, अंधकार का विनाश एवं गुण, अंग और इन्द्रियों की सहज मित्रता प्राप्त हो जाती है—

घर ही में न्यारे रहिए, कीजे अन्तर में वास।
तब गुण बस आपे होवहीं, गयो तिमर सब नास।।
—किरंतन, ३५/२७

बाहरी प्रक्षालन के स्थान पर हृदय की निर्मलता का होना आवश्यक है—

तीरथ तेजे एक चित कीजे, करम न बाँधिए कोए।
अहे निस प्रीतें प्रेमसूं रमिए, तीरथ एणी पेरे होए।।
— किरंतन, १२६/२३

कोटि करो बन्दगी, बाहिर हो निर्मल।
तोलों पीऊ न पाइये, जोलों न साधे दिल।।
— किरंतन, १३२/२

दिल पाक जोलों होए नहीं, कहा वजूद ऊपर से धोये।
धोए वजूद पाक दिल, कबहूं हुआ न कोए।।
— सनंध, २१/४०

अन्तर्यात्रा की समाप्ति से पूर्व तक बड़ी सावधानी, चित्त की एकाग्रता और क्षण-क्षण के सन्तुलन की आवश्यकता के साथ स्मरण और सुरति-आरोह की अनिवार्यता बनी रहती है।

जो न्यारा मांहि बाहेर से, तुम तासों करो पेहचान। — सनंध, २६/५

चौकस कर चित दीजिए, आतम को एह धन।
निमख एक न छोड़िए, कर मन वाचा करमन।।
— परिक्रमा, ५/६

साधक के लिए अखण्ड जाप, सुरति अथवा मानसी लय से पूर्व तक ही 'बंदगी' की आवश्यकता रहती है।

मोमन तब लग बंदगी, जो लों आया नहीं इसक।
इसक आये पीछे बंदगी, ए जाने मासूक या आसक।।
—सिनगार, २३/६७

फेर फेर सुरत साधिए, धनी चरित सुख चैन।
इस्क आए बेर कछु नहीं खुल जाते निज नैन।।
— परिक्रमा ४/२३

मानसी सेवा की दशा में और उसके आगे तो साधक या प्रिया को पूर्ण प्रेमोदय की दशा प्राप्त हो जाती है और तब उसको अपना एक 'दूल्हा' ही दिखाई देता है। आशिक़ की यह मानसी सेवा रूप बन्दगी बाहर नहीं दिखाई देती, स्वयं आशिक़ उस मानसी रूप में तदाकार बना रहता है—

आसिक की एही बंदगी, जाहिर न जाने कोए।
और आसिक भी न बूझही, एक होत दोउ से सोए।।
—सिनगार, २३/६८

इस अन्तर्यात्रा का परिणाम होता है सोते-जागते समाधिगत आनन्द, लयावस्था, सम्पूर्ण विषमताओं पर विजय, और बेहद घर के समस्त सुख और आनन्द की प्राप्ति—

बेहद सुख पार बेहद घर, बेहद पार श्रीराजजी।
अख्यरातीत सुख अखण्ड देने को, मैं जगाऊँ तुमारे काजजी।।

—प्रकाश हि०, ३०/१८

श्रीराज एवं श्यामाजी का आमना-सामना, युगल स्वरूप में स्थिति की यह दशा उपास्य और उपासक की एकाकार हुई आत्म-साक्षात्कार की स्थिति, उपासना के बाद की उपासना है अथवा 'पीउ मिलन' का जीवन है, जो पूर्ण लय की अवस्था का द्योतन है। इस अवस्था में प्राप्त आनन्द का कोई विपर्यय नहीं। इस मिलन या दर्शन का स्वाद जिसको एक बार मिल गया, वह कभी उससे छूटता नहीं। यह अन्तर्यात्रा रूप आध्यात्मिक जीवन अन्तर्मुखी होते ही, 'हदभूमि' से प्रारम्भ होकर 'बेहद भूमि' में अथवा अक्षरातीत अनुभव में स्थित हो जाता है। अखण्ड भूमि में पहुँचने तक ही मानसी सेवा की आवश्यकता रहती है। उसके बाद तो शरीर, संसार में रहते हुए भी, अखण्डानन्द सागर में निमग्न बना रहता है।

ओ खेले प्रेमें पार पिया सों, देखन को तन सागर माहिं।
परस भयो जाको पुरुषोतम सों, सो बाहेर न देवे देखाई।।

—किरंतन, ६/४

फलतः 'अहं' निःस्व हो जाता है, चेतना परमात्मा में विसर्जित हो जाती है, आराधक और आराध्य के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है। पुजारी पूज्य बन जाता है। पूजा या मानसी सेवा की यही एक परम उपलब्धि है। तब किसी प्रकार के नियमादि की सीमाएँ अवरोधक नहीं रहतीं। लेकिन, उस घाटी तक पहुँचने से पहले वहाँ तक चढ़ने की प्रक्रिया से गुज़रना भी महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा सब कथनी मात्र रह जाएगा—

जब चढ़िये घाटी प्रेम। तब न रहे कछु नेम।।
जब चढ़ें प्रेम के पुंज। तब नजरों आया निकुंज।।

उस निकुंज को दिखा देने के बाद महामति प्राणनाथ कहते हैं कि वह अखण्डावस्था तेरे भीतर ही है। तब तू उस परमप्रिय में ही है। परदा हटा ले, फिर देख, नूर बिखरा हुआ दिखाई देगा—

अहेनिस तूं भेली रहे, अपने पिउ के संग।।

— किरंतन, १३२/३

तूं आपे न्यारी होत है, पीउ नहीं तुझ से दूर।
परदा तूही करत है, अन्तर न आड़े नूर।।

— किरंतन, १३२/५

और तभी साधक-साध्य मिलकर एकरस हो जाते हैं। यह अखण्ड-भूमि विश्राम की दशा मानी गई है। कबीर का अनुभव भी यही कहता है—

हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनिजन महल न पावहीं, तहाँ किया विसराम।।'

—कबीर ग्रं०, ५/११

माला जपूँ न कर जपूँ, जिभ्या कहूँ न राम।
मेरा सुमिरन हरि करें, मैं पायौ विश्राम।।

—मलूकदास,

संत कबीर और मलूक दास की तरह महामति का अनुभव भी गा उठता है—

हक अरस परस सरस सब एक रस, वाहेदत्त खिलवत निसबत न्यामत।
महामत अलमस्त होय आवें उमत लिए, पीवत आवत हक हाथ सरबत।।

— किरंतन, ११७/४

सारांशतः 'मानसी सेवा' के परिणामस्वरूप प्राप्त अन्तर्यात्रा की परम-भूमि अथवा एकान्त साम्यावस्था की प्राप्ति कोई खिलवाड़ नहीं है, शब्दों में बोल देना भर नहीं है। इसके लिए ज्ञान-विरह की निरन्तरता चाहिए, आठों याम प्रेम-विरहिनी की चेतना चाहिए।

आठों जाम बिरहनी, साँस लिए हूक हूक।

— कलश ५/११

दुख बिना न होवे जागनी, जो करे कोट उपाय।।

— किरंतन, १८/१४

दुख से पीऊ जी मिलसी, सुखें न मिलिया कोए।

— किरंतन, १८/१०

दुख से विरहा उपजे, विरहा प्रेम इसक।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहचे मिलिए हक।।

— किरंतन, १८/१६

हँसि हँसि कंत न पाइए, जिन पाया तिनि रोइ।
जे हांसें ही हरि मिलै, तो नहीं दुहागनि कोइ।।

—कबीर ग्रं०, ३/२६

इस मानव (मानस) देह में ही, अखण्ड फल-प्राप्ति के लिए यह मानसी सेवारूप अन्तर्यात्रा जीव के लिए, जीवन के लिए अपरिहार्य है। इसके बिना बड़े भाग्य से प्राप्त यह मनुष्य-शरीर अपनी सीमाओं और, संकीर्णताओं में ही मर-खप जाता है और प्राप्त सुअवसर हाथ से निकल जाता है। इसके लिए साधक को सावधान करते हुए, महामति प्राणनाथ चेताते हुए कहते हैं—

मानखें देह अखण्ड फल पाइये।
सो क्यों पाए के बृथा गमाइये।।

— किरंतन, ४/२

यदि अन्तर्दृष्टि मिल गई, अन्दर का दृश्य देख लिया अर्थात् दृश्य वस्तु-पदार्थ की स्थूलता में निहित विचार-तत्त्व को समझ लिया, वस्तु में, विचार में, विवेक का अनुभव कर लिया तो अन्दर-बाहर अलौकिक यात्रा सफलकाम समझनी चाहिए। यदि अन्दर नहीं देखा गया, वस्तु में समाहित विचार को नहीं समझा गया तो बाहर का देखना 'देखना' नहीं कहा जा सकता। महामति की वाणी के मर्म को समझने के लिए उनके शब्दों में निहित मर्म को समझना आवश्यक है—

देत देखाई बाहेर भीतर, ना भीतर बाहेर भी नाहीं।
गुरु प्रसादें अन्तर पेख्या, सो सोभा बरनी न जाई।।

— किरंतन, ५/८



जनभाषा में कालजयी दस्तकें

डा. गंगाप्रसाद विमल
निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
रामकृष्ण पुरम, नयी दिल्ली

महामति प्राणनाथ का आविर्भाव भारत की एक अभूतपूर्व घटना इस रूप में स्वीकार की जायेगी कि उन्होंने प्रचलित धर्म-दर्शन के मतवादों का अंधानुकरण नहीं किया। अपने रास्ते अकेले चलने और उससे सबको लाभान्वित कराने का जो उनका 'मिशन' था, उसने धर्म-दर्शन के दूसरे अहंकारों को भी खंडित किया। उस समय भारत में सगुण और निर्गुण धाराओं के अनेक रूप विद्यमान थे, पश्चिमोत्तर क्षेत्रों से दूसरे धर्म का दबाव भी इस क्षेत्र पर था। एक दुस्सह, कठिन क्षेत्र होने के कारण जीवन-यापन भी असाधारण रूप से कठिन था, जो कि आज भी परिस्थितियों के कारण गुणात्मक रूप से बदल नहीं पाया है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में सामान्य जनों को उनके जीवन के लक्ष्य से परिचित कराने का कार्य महामति ने अत्यन्त सहज रूप से किया तथा ज्ञान के सामान्य रूप से अभासित स्वरूप को सरल और सुगम रूप में सामने रखा।

इस निबंध में सर्वप्रथम महामति के एक अभूतपूर्व योगदान की चर्चा आवश्यक है। महामति ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए जिस भाषा का आधार लिया वह जनभाषा थी। जनभाषा में एक गुह्य, रहस्यपूर्ण विषय को व्यक्त करना आसान काम नहीं है। इससे पूर्व भी उपलब्ध रहस्यवादी चिंतन अत्यन्त दुरूह भाषा में मिलता है फलतः जनता से उसकी दूरी बढ़ जाती है। जिज्ञासु इन विषयों को दूसरों के लिए छोड़ देता। दूसरे लोग, जो ज्ञान की इस सामग्री का अपने हित-स्वार्थों के लिए उपयोग करते हैं, इसे अधिक दुरूह बना डालते हैं और फिर अपनी व्याख्याएँ और व्यवस्थाएँ देते हैं। यही कारण है कि शास्त्रों में वर्णित मनुष्य की जीवगत अवस्था के बारे में भी भिन्न-भिन्न मतवाद भिन्न प्रकार की, अपार्थिव-सी बातें सामने रखते हैं। महामति ने संत परम्परा के अनुरूप ही जनता को उन्हीं की भाषा में संबोधित किया एवं उन्हें इस महत चिंतन में भागीदार बनाया। प्रस्तुत उदाहरण स्पष्ट करता है कि अध्यात्म ज्ञान में आत्मसत्ता के गहरे अनुराग की प्रतीति 'कृपा' की एक अद्‌भुत स्थिति है—

इन विध देने ईमान, उपजावने इसक।
सो इसक बिना न पाइए, ए जो नूर तजल्ला हक।।

—"सद्‌गुरु ने मेरे विश्वास को दृढ़ बनाने के निमित्त उस आधारभूत प्रेम को जन्म दिया, जिसकी गहनता के बिना ज्योतिस्वरूप अन्तर्यामी की पहचान असंभव है।" केवल इसी उदाहरण को आधार बनायें तो महामति ने इस पद में जनभाषाओं के प्रचलित

शब्दों का ही प्रयोग किया है। यहाँ तक कि उन्होंने छन्द और संगीत के सहज स्वरूप का अभूतपूर्व मिश्रण किया है।

मध्यकाल में जिस संपर्क भाषा का विकास हुआ है, वह षड्भाषा के रूप में पूरे देश में प्रयुक्त होती रही। यह संपर्क भाषा या जनभाषा धीरे-धीरे अन्य प्रांतीय भाषाओं के संपर्क में आकर परिव्राजकों, संतों और व्यावसायिक एककों द्वारा अधिक विस्तृति पाती रही और यही कारण है कि यह सतत परिवर्तनशील तत्त्वों से मिलकर अपना सर्वस्वीकृत रूप निर्मित करने की दिशा में भी इन्हीं सृजनात्मक कारकों से संपुष्ट होती रही। महामति प्राणनाथ का योगदान संभवतः इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने प्रचलित छंदों का परिष्कार कर, एक जनछंद के रूप में दोहे का रूप परिवर्तन कर उसे अधिक संवादी बनाया है। यहाँ यह ग़ौर करना अनिवार्य है कि मध्यकाल में दोहे की परिसीमा इस कदर संकीर्ण है कि उसमें उत्कृष्ट कहने का कौशल विषय को पीछे धकेल देता है और शब्द-चातुर्य को प्रमुख कर देता है। काव्य-विषयक संपूर्ण कौशल को देखें तो हमें शब्दों के शैल्पिक चमत्कार पर अधिक बल दिखाई देता है। सामान्य जन सूक्ति को तो स्वीकार कर लेते हैं किन्तु शब्दों की अलंकरणगत आवृति के प्रति उतने आकर्षित नहीं होते। कुल मिलाकर यह क्रिया का परिमात्र कुछ शैल्पिक चमत्कारियों के हाथ रह जाता है। महामति प्राणनाथ ने अपनी वाणी में इस अतिरिक्त कौशल को स्थान नहीं दिया। संभवतः यही कारण है कि तथाकथित साहित्य पारखी केवल चमत्कारोक्तियों को ही काव्य का शिखर मानकर उन्हें ही साहित्य की मूलधारा मानने के दुराग्रह से पीड़ित होकर उस वाङ्मय की उपेक्षा करते आये हैं जिसने न केवल विराट जन-पक्ष को आन्दोलित किया अपितु ज्ञान के अत्यन्त अगोचर पक्ष को गोचरत्व प्रदान किया। महामति की वाणी इसका साक्षात् प्रमाण है—

सो सुध वतन मोहे कर दियो, मेरो अक्षरातीत धनी।
ब्रह्म सृष्टि मिने सिरोमन, मैं भई सुहागनी।।

यदि हम प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के गुह्यान्तर में प्रवेश करें तो स्पष्ट होगा कि एक ही पद में तीन स्तरों पर महामति ने प्रज्ञा के अद्भुत परिदर्शन को सहज रूप में व्यक्त किया है। सामान्य स्तर पर वे लोगों को भूलोक में व्यक्ति के मूलस्थान की समता से परिचित कराते हुए स्पष्ट करते हैं कि उत्पत्तिकर्त्ता ने मुझे मेरे मूल स्थान का परिज्ञान दिया है। यही जन्मदात्री धरती मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि यहीं मैं पूर्ण हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति की सार्थकता का मुख्य सूत्र जुड़ाव को सार्थक करने से है। स्पष्ट रूप से महामति प्राणनाथ प्रत्येक नागरिक को उसके दायित्वों के प्रति सजग करते हैं। ये दायित्व उस सकारात्मक दृष्टि की अनुप्रेरणाएँ हैं जिनके क्रिया रूप सदैव दूसरों को, स्वयं को सुख पहुँचाते हैं। सामाजिकों के मत में समुदाय के प्रति जुड़ने का यह आग्रह ही उस वृत्ति की ओर संकेत है जो फलदायी है। परन्तु इसी पद में दूसरे स्तर पर प्रज्ञा से प्राप्त बोध की प्रतीति महामति कराते हैं। उनकी व्यवस्था है कि "जिसकी कीर्ति अक्षरों से संभव नहीं है उसने मुझे वह स्मृति दी है जिससे मैं अपने पूर्वानुराग को जान पाता हूँ।" यह पूर्वानुराग अनेक मायावी आवरणों से प्रच्छादित है, परन्तु स्मृति की सघनता और चेतना वह शक्ति देने में समर्थ है जिससे आत्म तत्त्व ब्रह्म-सृष्टि के रहस्यों से परिचित हो सकता है। इसी पद के तीसरे स्तर में एक उच्च कोटि की ब्रह्मात्मा के

ब्रह्म-साक्षात्कार का प्रमाण भी मिल जाता है। दीर्घ साधनाओं के उपरान्त समाधि में जिस स्मृति का अविर्भाव होता है वह बोध का अन्यतम और उच्चतम शिखर है। इस शिखर का संस्पर्श तभी संभव है जब अक्षरातीत प्रभु से साक्षात् हो। देखना चाहिए कि चेतना का प्रस्फुटन स्वयं व्यक्ति के हाथ है, उसके लिए योगचर्या के विधान हैं किन्तु परिपूर्ण सफलता नितान्त भिन्न स्थिति है। बोध का यह चरम सोपान सर्वशक्तिमान के इंगित पर ही निर्भर है, जहाँ एक ओर सामान्यजन के लिए 'स्वधर्म' अपनी भूमि के प्रति रागात्मकता से उत्पन्न दायित्व ही अर्थपूर्ण है, वहीं उच्चकोटि के संत की तपस्या का प्रतिफल है— आत्मरूप का परमात्म रूप में संतरण। वास्तव में जिसे साहित्य रसिक अटपटी वाणी समझ रहे हैं, वह जनभाषा में गोपनीय अनुभव को रूपान्तरण करने का सहज, मानवीय कौशल है। अतः आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्दों के भीतर उस दुनिया का आकलन करना जिसके बिन्दुरूप दृश्यजगत में हैं किन्तु जिसकी वास्तविकता उसकी गहनता में है।

महामति प्राणनाथ ने जनभाषा में अगोचरत्व को ही मूर्तिमन्त नहीं किया अपितु उन्होंने शब्दों के भीतरी 'झंकृत स्वरूप' को संगीत का वह संस्पर्श दिया जो अन्यत्र दुर्लभ है। महामति ने अपनी वाणी को जनभाषा में प्रकट करके भारत में व्याप्त जातीय सुषुप्ति को भी झकझोरा। उनका यह दृष्टि-विवेक कालान्तर में राजसत्ताओं को उनके द्वारा दिए गये मार्गदर्शन में भी झलकता है। वस्तुतः महामति प्राणनाथ की क्रान्तिदर्शी विचारधारा कुलीनों की भाषा के विपरीत जनभाषा में अभिव्यक्त हुई है। यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि महामति के वंशकुल में राजपरिवारों से जुड़े घनिष्ट संपर्कों ने भी उनमें ऐसे संस्कार नहीं डाले जो उनके क्रान्तिकारी विचारों में बाधा उत्पन्न करते। स्पष्टतः महामति अपने मार्ग के स्वयं नियन्ता थे।

यह सिद्ध करना कठिन होगा कि महामति उत्तर मध्यकाल के संत-मनीषियों से नितान्त भिन्न हैं किन्तु कुछ प्रमाण ऐसे हैं जो महामति को एक अलग ही भूमि पर खड़ा करते हैं। एक तो उन्होंने प्रचलित छन्द-पद्धति का अनुकरण नहीं किया, दूसरे अपनी अलग ही ढंग की पारिभाषिक अन्वितियाँ दीं हैं। उन्होंने शास्त्रों का पारम्परिक उपयोग भी नहीं किया, तथापि उनके विचार भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की ही श्रृंखला के अंग लगते हैं क्योंकि वे निरन्तर जिस परमात्म तत्त्व का अनुगायन करते हैं वह भारतीय परम्पराओं के ही निकट है। संतों के वाङ्मय में जो समन्वय का भाव है, ठीक वैसा ही महामति प्राणनाथ की वाणी में उपलब्ध है, परन्तु उन्होंने मध्यपूर्व और दक्षिणी एशिया के सम्मिलन की अनिवार्यता को समझते हुए मध्यपूर्व की धार्मिक-सांस्कृतिक परम्पराओं से सकारात्मक पक्ष लिये एवं उनका यशोगान किया। दृष्टव्य यह है कि अत्यन्त साहस से उन्होंने उस पक्ष की उपेक्षा भी की है जो उनकी दृष्टि से सकारात्मक और मानवोचित नहीं है। कुल मिलाकर, महामति ने 'मनुष्य' के सर्वांग विकास की परिकल्पना के लिए अपने विचारों में यत्र-तत्र पूर्वसम्मत अन्य विचारों को भी स्वीकार किया। ठीक यही स्थिति भाषा के बारे में भी है। मध्यकाल की षड्भाषा के अनुरूप महामति ने पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर क्षेत्रों की बोलियों से भी शब्द लिए। यह तो विशुद्ध भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन का विषय है कि महामति की वाणी में कितने कुल शब्द भिन्न-भिन्न भाषाओं से आये किन्तु उनकी वाणी में अरबी, सरायिकी, प्राचीन सिंधी के शब्द भी हैं, जो सिद्ध

करते हैं कि इन क्षेत्रों की किसी प्राचीनतम भाषा के ये प्रारूप अतीत से मनुष्य के अर्न्तसम्बद्धों में समन्वय भाव की उपस्थिति निरन्तर रही होगी। संभवतः जन बोलियों में, तद्भव रूपों की उपस्थिति, समय के साथ आने वाले परिवर्तनों के दबाव से बचकर जो रूप रह गये, उनका मुख्य कारण तो धर्म और विश्वास के तादात्म्यीकरण है, गौणरूप से काव्य रूपों में उनकी स्वीकृति भी एक कारण है। इस संदर्भ से यदि महामति के वाङ्मय का मूल्यांकन किया जाय तो हम पायेंगे कि उन्होंने प्रचलित और अल्प-प्रचलित दोनों प्रकार के उपलब्ध भाषा-साधनों का प्रयोग कर अपनी वाणी को अधिक जनोन्मुख बनाया है—

धिक धिक पड़ो मेरी बुध को,
मेरी सुध को, मेरे तन को, मेरे मन को, याद किया न धनी धाम
जेहर जिमी सों लग रही, भूली आठों जाम।।

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'रागश्री' में रचित हैं अर्थात् संगीतात्मक आधार तो उन्होंने प्रचलित विधि का लिया किन्तु वस्तु आधार एकदम अप्रचलित है। "अपनी बुद्धि को, अपने विवेक को अभिशप्त मानने" का प्रचलन मध्यकाल में केवल दास्यभाव को व्यक्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है, परन्तु जिस आत्मपीड़ा का अनुभव महामति की वाणी देती है वह अनुरक्ति की आत्म पीड़ा है। यह अनुरक्ति विछोह की अनुरक्ति नहीं है बल्कि 'सज्ञानता' की अनुभूति के आत्मदंश की अनुरक्ति है। यह आत्मपीड़ा सीधे-सीधे आत्म-ग्लानि या अपराध बोध की भी नहीं है। पश्चिम में आत्मग्लानि का कारण पाप बोध है। ईसाईयत इस पाप बोध के नीचे दबी हुई है। इस्लाम में यथार्थबोध के स्तर पर जो 'सज्ञानता' है वह भी महामति की आत्मपीड़ा से मेल नहीं खाती। बौद्ध धर्म में सतत क्षमाशीलता का मार्गदर्शन भी महामति के अनुबोध के निकट नहीं है। धर्मों की भिन्न-भिन्न इकाइयों में कहीं आत्मगौरव, आत्मवैभव का-सा अहंकार है तो कहीं निजता और सार्वजनिकता के द्वैत का असंतुलन है। महामति ने स्पष्ट रूप से एक मध्यम मार्ग का अन्वेषण कर भाषा, विषय, चिन्तन तथा कौशल का अपना अलग ही प्रारूप विकसित किया है।

महामति के भाषाई योगदान में केवल परम्पराओं का अनुकरण या उनकी उपेक्षा रेखांकित करनेवाली चीज़ नहीं है। जैसा हम पहले कह आये हैं महामति ने संगीत को काव्य शास्त्र से अधिक महत्त्व दिया है। मध्यकाल में अनेक संतों ने अपनी वाणी के प्रसार के लिए संगीत का माध्यम चुना था। असल में संगीत का गुण धर्म हमारी वाचिक परम्परा को दृढ़ता देता है। यही कारण है कि मध्यकाल की संत वाणी संगीत, नृत्य, चित्र तथा काव्य शैलियों में अपनी अभिव्यक्ति के पड़ाव पाती है। यह एक ऐसा आधार है जो एक साथ परम्परा और अपरम्परा का निर्वहन करता है। संगीत के लिए तैयार की गई सामग्री को राग में रूपान्तरित करना चाहे आसान हो किन्तु उसमें संगीत के अनुरूप आवृतिवाचकता का गुण बिना काव्यत्व को नष्ट किए अवश्य होना चाहिए। यह महामति प्राणनाथ की विलक्षणता ही कही जायेगी कि उन्होंने आवृतिवाचकता के साथ कोई संधि, कोई समझौता नहीं किया—

साथ जी ऐसा में तुमारी गुन्हेगार,
कर कर बानी सुनाई तुम को, किए खलक खुआर।
अनेक पख देखाए तुमको, छोड़ाए के परिवार।

राग मारू के गायन के समय चाह आवृतियाँ उपस्थित हों किन्तु कविता के मूल पाठ में उनकी कोई विवशता कभी दृष्टिगोचार नहीं होती। गेय गुणधर्म में भी रचना के सृजन का कोई अनिवार्य पक्ष स्वीकार नहीं किया गया। केवल 'गेयता' के द्वारा, आलाप या पक्षावरोध के जरिए, विचार के अभिव्यक्त रूप में कहीं भी ऐसा दबाव नहीं दीख पड़ता जिसे लेकर यह कहना पड़े कि निष्कर्षत : महामति का सृजन गये गुण धर्म से प्रभावित है। स्पष्टतः यह प्रतीत होता है कि लयात्मक स्वरूप को बनाए रखने के लिए समानान्तर शब्दों के पदान्तों की एकरूपता को बनाये रखने का उपक्रम तो किया गया है तथापि वह सर्वत्र नहीं है। दूसरे, पदान्तों में संचयित शब्द अधिकांशतः पारिभाषिक शब्द हैं जो पदान्तों की स्थिति से अलग शब्द हैं—वे पदान्तों की स्थिति से अलग या परे, वैसे ही प्रयोग में लाये जाते हैं एवं उसकी अर्थमयता का स्वरूप भी पूर्ववत बना रहता है। अतः यह परीक्षा अनिवार्य है कि विभिन्न भाषाओं से जिन शब्दों की स्वीकृति महामति ने अपनी वाणी में दी है वे शब्द बहुप्रचलित हैं या नहीं और दूसरे, वे एक दूसरे के धर्म अथवा मतावलम्ब के विपरीत तो नहीं हैं। एक साधारण आकलन भी यह सिद्ध करने में सक्षम है कि महामति ने अपने सृजन में अत्यन्त सचेत होकर भाषा की समन्वयपरक दृष्टि का विकास किया है और धर्मों के सकारात्मक पक्षों को मानव के अन्तःसंबंधों में भी उसी तरह समन्वयकारी पाया है।

महामति प्राणनाथ की भाषा अद्भुत रूप से उनके वैचारिक उन्मेष की अनुकूलता लिए हुए है। यह वैचारिक उन्मेष केवल मध्यकाल में ही प्रासांगिक नहीं था। उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। स्पष्ट है, महामति की विचार दृष्टि एक कालजयी सृजन की सृष्टि करती है। अब संदेह करना संभव नहीं है कि साधारण जनभाषा में जिस तरह कबीर कालजयी[१] साहित्य रच गये हैं उसी के समानुरूप महामति प्राणनाथ ने साधारण, बहुप्रचलित भाषा कौशल में कालजयी वाङ्मय प्रकट किया है। वह कालजयी वाणी साहित्य भाषा के द्वारा विषय की सघनता के संरक्षण के साथ-साथ काल के दूसरे द्वारों पर भी दस्तक देता है—

दोस विप्रों ने कोए मां देजो, ए कलजुगना ए धांण।
आगम भाख्यूं मले छे सरवे, वैराट वाणी प्रमाण।।

—'ब्राह्मणों को दोष मत दो। वे कलयुग की संततियाँ हैं........" बाह्याचार, आडम्बर पर यद्यपि दुर्धर्ष प्रहार अन्यत्र भी हुए हैं किन्तु महामति ने भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनाकर जनभाषा में एक प्रकार के समानान्तर एवं सार्वजनीन मार्ग की ओर इंगित किया है।

महामति ने इस दृष्टि से कालजयी वाङ्मय प्रकट किया — जिससे जनभाषा में एक प्रखर गुणधर्मी वाणी साहित्य का विकास हुआ।



---

१. कबीर जी के शब्दों में—
संसकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
महामति ने कहा—
ए जो कहीं संसकिरत, सो तो संसे ही की कृत।
सो हरफ दृढ़ क्यों होवहीं, जो ऐती तरफ फिरत।।

महामति प्राणनाथ और क़ुरान

मुहम्मद फ़ारूख ख़ां
जमायते इस्लामी हिंद जामा मस्जिद, दिल्ली

महामति प्राणनाथ ने संसार को प्रेम का संदेश दिया। उन्होंने कर्मकांड की अपेक्षा मनुष्य के आन्तरिक विकास की ओर अधिक ध्यान दिया। प्रेम से ही आन्तरिक विकास सम्भव है। प्रेम वह है जिससे मन और जीवन की सारी मलीनता धुल सकती है। प्रेम ही वह अमृत है जिसके पान के बिना मानव उच्च पद प्राप्त नहीं कर सकता। प्रेम ही अन्तिम विराम है जिसे पाकर जीवन के सारे कार्य फलीभूत होते हैं। जो मत या धर्म अपने आन्तरिक विकास पर ज़ोर नहीं देता— वह शुष्क और रसहीन हो जाता है।

महामति प्राथनाथ जी ने किसी विशेष धर्म को चलाने का प्रयास नहीं किया तो भी उनके माननेवाले आज 'प्रणामी धर्म' में दीक्षित हैं। वे परस्पर एक दूसरे को सुन्दर साथ के नाम से सम्बोधन करते हैं। मिलने पर 'प्रणाम' (परब्रह्म परमात्मा को नमन) करने के कारण ही इन्हें प्रणामी कहा गया।

महामति प्राणनाथ का जन्म का नाम मेहराज ठाकुर है। उनका जन्म जामनगर (गुजरात) १६१८ ई० में हुआ। उनके गुरु श्री देवचन्द्र जी उमरकोट (मारवाड़) में १५८१ में पैदा हुए। श्री देवचन्द्र जी को चालीस वर्ष की आयु में अक्षरातीत परमात्मा के दर्शन मिले। तत्पश्चात् उन्होंने ब्रह्मात्माओं को—जिन्हें ब्रह्म मुनि, ब्रह्म सृष्टि या अर्श अज़ीम की रूहें कहते हैं—जगाने का कार्य आरम्भ किया।

कुछ वर्ष उपरान्त उनकी मुलाकात मेहराज ठाकुर से हुई। उन्हें हक़ का दीदार और सत्य ज्ञान यहीं मिला। मेहराज को देखते ही वे पैहचान गए कि वे अर्श अज़ीम की विशेष आत्मा हैं। उन्होंने मेहराज से कहा कि वे अर्श अज़ीम की रूहों को जगाकर वापस परमाधाम की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करें।

उन्होंने यह भी बताया कि अर्श अज़ीम की रूहें मुसलमान तथा अन्य सभी सम्प्रदाओं में भी उतरी हैं। क़ुरान, अंज़ील, जंबूर और तौरात में भी परमधाम का उल्लेख है।

श्री देवचन्द्र जी के नश्वर शरीर त्याग देने पर मेहराज ठाकुर ने उनके द्वारा सौंपे गये कार्य करने का बीड़ा उठाया। वे भ्रमण करते हुए जामनगर से द्वीप बंदर, फिर पोरबन्दर फिर सूरत आए। कई आत्माएँ जिन्होंने उनसे ज्ञान पाया—अपना घर-बार छोड़कर उनके साथ चल पड़ीं। सूरत से जब वे मेरता पहुँचे तो वहाँ उन्होंने मार्ग में जाते हुए मस्जिद से अजान (नमाज़ के लिए पुकार) सुनी। नश्वर संसार से ऊपर अविनाशी ब्रह्म एक ही है। मुहम्मद उनके पैग़म्बर हैं। उनका मन आनन्द से भर उठा —मुहम्मद साहब अर्श अज़ीम से हमारे लिए पैग़ाम लाए हैं।

क़ुरान में भी उन्होंने अर्श अज़ीम की बातों के संकेत देखे। श्री प्राणनाथ जी के ज्ञान में क़ुरान और हदीसों के हवाले देकर मत को पुष्ट किया है। उनका उद्देश्य था कि हिन्दू मुस्लिम के बीच एकता का सम्बन्ध स्थापित करके मानव समाज में सच्चे दीन इस्लाम—आनन्द और शन्तिमय धर्म—का प्रचार किया जाए। इसीलिए उन्होंने अपने धर्म को दीन इस्लाम और निजानन्द सम्प्रदाय दोनों नाम दिए।

स्वामी प्राणनाथ जी ने औरंगज़ेब को भी एक बड़ी शक्ति माना। औरंगज़ेब के पास उन्होंने अपने बहुत-से साथियों को भेजा और उनके द्वारा उन्हें इस्लाम के तत्त्व ज्ञान को सही रूप में समझने का पैग़ाम दिया। परन्तु बीच में पड़े क़ाजी मुल्लाओं के विरोध के कारण उनकी बात स्पष्ट रूप से सम्राट तक न पहुँच सकी।

मेहराज ठाकुर ने अपने में इमाम और मेहदी होने का दावा भी किया। औरंगज़ेब के बाद उन्होंने राजा भावसिंह को आमंत्रण दिया। राजा उनका शिष्य बन गया परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाने से धर्म का कुछ भी कार्य न कर सका। बहुत-से मुस्लिम भी उनके शिष्य बन गये। इसके बाद मन्दसौर, उज्जैन होते हुए बुन्देलखंड के क्षेत्र पन्ना पहुँचे। १६८२-८३ ई० में राजा छत्रसाल वहाँ की प्रजासहित उनके अनुयायी बन गये।

उन्हें जो ज्ञान अवतरित हुआ, वह चौदह किताबों में है। उनके संकलन को उनके अनुयायी कुलजम स्वरूप भी कहते हैं और तारतम सागर भी। कुलजम में सभी धर्म ग्रन्थों के रहस्य खोले गये हैं। उसमें ईश्वर के आलोक का जो विभिन्न रूपों में व्यक्त हुए—उल्लेख किया गया है। ध्यान धारणाओं, पूजा धर्म, और कर्मकांड के आन्तरिक पहलुओं और अर्थों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ धर्म के बातिन और भावात्मक पक्ष पर अधिक बल देता है। कुलजम स्वरूप में क़ुरान और इस्लाम को मान्यता दी गयी है। कतेब (तोरात, जंबूर, अंज़ील, क़ुरान) में क़ुरान अन्तिम होने के कारण उसे प्रमाणित और अन्य सभी ग्रन्थों का सार माना है। तौहीद (एकेश्वरवाद) पर बल दिया है। पाखंडियों को स्पष्ट रूप से निन्दनीय ठहराया है।

प्रणामी मत के अनुसार एक समय ऐसा था, जब कुछ नहीं था। केवल अक्षरातीत अल्लाह था। उसका लोक़ परमधाम या अर्श अज़ीम था और उनकी बारह हज़ार रूहें थीं। यहाँ सब आलमे बका में थे। यह सब वास्तव में एक ही अल्लाह का नूर है। नूर जमाल का नूर आनन्द स्वरूप रूहों और अर्शे अज़ीम में प्रकट होता है उनका ही नूर सत् स्वरूप नूर जलाल में प्रकट है। यही सदरतुलमुंतहा है। इससे कई गुना तजल्ली अर्श अज़ीम में है। नूर के मुकाम (अक्षर धाम) को बैतेनूर और अर्श अज़ीम (परम धाम) को बैते मामूर भी कहा है।

बैते मामूर की रूहें हमेशा आनन्द में डूबी रहती हैं। इसी अर्श अज़ीम में हौज़ कौसर, जुए कौसर भी हैं। जुए कौसर (युमना नदी) के किनारे याकूत अल्मास आदि नूरी पत्थर जड़े हुए हैं। उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के नन्दन वन (सात घाट) हैं जिनमें केला, नीबू, अनार, आम, नारंगी और जामुन आदि नूरी फल लगे हुए हैं।

इस अर्श अज़ीम में रहनेवाले नूर जमाल के अभिवादन के लिए नूर जलाल नित्य आते हैं। उनकी प्रेरणा से ही वे नित्य कई आलम फ़ानी बनाकर मिटा देते हैं। नूर जलाल (ज्ञान का स्वरूप होने से) प्रेमानन्द को नहीं जानता और प्रेम में डूबी होने से रूहें हक़ की साहिबी और शक्तियों के ज्ञान से परिचित नहीं थीं तभी इन्हें एक दूसरे से परिचय कराने के लिए दुनिया में भेजा गया।

पहली बार नंद गाँव में कृष्ण और गोपी के रूप में दूसरी बार रास मंडल में कृष्ण और गोपियों (रूहों) के अनन्त मिलन में रूहों ने दुनिया को देखा। वही कृष्ण की शक्ति (परमात्मा के हुकम का स्वरूप) अरब देश में खुदा का पैग़ाम और इमाम मेहदी के लिए भविष्य वाणी सुनाने के लिए आया। उस समय अर्श की रूहें उतरी नहीं थी। मुहम्मद से ९९० वर्ष बाद श्री देवचन्द्र जी के रूप में रूहअल्लाह के साथ सभी रूहें दुनिया में उतरीं और उन्होंने खुदाई इल्म—ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया।

प्रणामी मतानुसार बशरी, मलकी और हक्की—तीनों सूरतें जब मेहराज ठाकुर में समावेश हो गयीं तो उन्हें महामति प्राणनाथ, और इमाम मेहदी का दर्जा मिला।

ऊपर संक्षेप में प्रणामी सम्प्रदाय के दर्शन का उल्लेख किया है। कुलजम और क़ुरान का साथ-साथ अध्ययन करने से बहुत-सी बातें स्पष्ट हो सकती हैं। क़ुरान को कुलजम में कसौटी और मुहम्मद साहब को मार्गदर्शक कहा गया है। यहाँ कुलजम के क़ुरान सम्बन्धी कुछ उदाहरण दिए गए हैं—

पाक न होइये इन पानिएँ, चाहिये अर्श का जल।
नहाइये हक के जमाल में, तब होइये निर्मल।।
पाक होना इन जिमिएँ, न कोई और उपाय।
लीजे राह रसूल इश्कें, तब रसूल दें पहुँचाय।।

सिनगार, २५/४५, ४६

पाक पानी से न होय, न कोई और उपाय।
होय पाक मदद तौहीद की, जो हकें लिख भेज्या बनाय।।

सिनगार, २४/६५

हज़रत मुहम्मद के लिए महामति प्राणनाथ के दिल में कितने उच्च विचार थे —

ऐसा हुआ न कोई होयसी, जो आवे छोड़ सरहद।
फुरमान ल्यावे नूर पार का, बिना एक मुहम्मद।।
पंथ पैंड़े दीन मजहब, कर कर गए रबद।
पर हुआ न कोई काम का, बिना एक महंमद।।

सनंध, २८/२८,६

परमात्मा के अद्वैतवाद के विषय में कहा है—

जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनिया, उड़ गई दूजी बात।।

सनंध, ३६/१७

कुलजम ने क़ुरान को कसौटी क़रार दिया है—

याही वास्ते गुझ रख्या, ए बात दिल में आन।
कसनी सेती परखिये, काज़ी कसौटी कुरान।

सनंध, ३६/२६

सो गुन अंग इन्द्री जलो, हाय हाय जलो सो बुध।
आकीन जिन आया नहीं, सुन के महमद बैन।।

सनंध, २६/१४,१५

सो जाहरे फरेब देत है हाय हाय कोई न चीन्हें ताय।
पीछे पछतावा क्या करे, जब लगी दोज़क आय।।

सनंध, २६/३२,३३

सब लोग जो परमात्मा और उनके पैग़ाम देनेवालों से विमुख हुए पश्चात्ताप करेंगे। अपने कर्मों के कारण यातनाएँ पायेंगे। वैसे खुदा तो मेहरबान हैं। किसी को दुख न हो इसलिए वे समय-समय पर पैग़म्बरों द्वारा सही मार्ग दुनिया को दिखाते हैं—

मेहेरबान न देवे दुःख किन को, पर मारै सबों तकसीर।
क्या राए राणे पातसाह, क्या मीर पीर फकीर।।

महामति प्राणनाथ के अनुसार कुरान हदीसों में यह व्यक्त है कि क़यामत के वक़्त खुदा काज़ी (न्यायाधीश) बनकर यहाँ आयेगा उसे पहचानने की कसौटी क़ुरान है। अर्थात् केवल वह ही क़ुरान के गूढ़ अर्थ खोलकर काजी का अवतरण प्रमाणित करेगा।

महामति प्राणनाथकालीन साथियों ने जब कई बार शरीयत के प्रमुख मुसलमानों को कुलज़म का पैग़ाम दिया किन्तु उन्होंने हक़ीक़त को दिल देकर न सुना तब से एक दूसरे का सम्पर्क मौन हो गया था।

मुसलमानों ने कुलजम स्वरूप की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह ग्रंथ उनके हाथ में आया नहीं। कुलजम पर रिसर्च होनी चाहिये। ज़रूरत इस बात की है कि प्रणामी धर्म के माननेवाले और मुसलमान एक दूसरे को समझ कर संसार के सभी लोगों के लिए अक्षरातीत (नूर जमाल) के मार्ग को सुगम बनायें। मानव में सत्य और प्रेम का शुभ सन्देश फैल सके और मानव जीवन सफल और सार्थक हो।

महामति की मधुरा भक्ति

डा. वीणा भगत,
६/४६३ *पचकूला, हरियाणा*

महामति ने साधना एवं उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्तिमार्ग को अधिक महत्त्व दिया है और सर्वश्रेष्ठ कहा है। भक्ति भावना उनके वाङ्मय का मूल स्वर रहा है। उनकी भक्ति भावना में आराध्य को रसरूप सगुण-निर्गुण से परे शुद्ध साकार, सविशेष एवं स्वलीलाद्वैत पूर्णब्रह्म माना गया है। सगुण ब्रह्म व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है। ब्रह्म का सगुण रूप भक्त का भावगृहीत रूप है जिसे भक्तजन प्रेम के अंजन से अनुरंजित कर विशिष्ट बनाकर देखा करते हैं। —ब्रह्मसंहिता के अनुसार

प्रेमांजनच्छुरित भक्ति त्रिलोचनेन। संतः सदैव हृदयेऽप्यवलोक यन्ति।।

महामति की वाणी भक्ति की आधारभूमि पर विकसित हुई। उनकी भक्ति एकान्ततः प्रेमप्रधान अथवा रागानुगा है जिसमें चित्तवृत्ति का निरोध और सांसारिक विकारों का नाश सहज है। उसमें मर्यादा का विशेष ध्यान रहा है। वस्तुतः मर्यादा भक्ति में भगवान के साथ वे ही भाव जुड़ते हैं जो लोक मर्यादा में संभव हैं परन्तु रागानुगा भक्ति में विधि निषेध का ध्यान नहीं रहता। महामति ने दोनों प्रकार की भक्ति का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। वे अपनी सभी गुण अंग इन्द्रियों को लौकिक वस्तु एवं व्यक्ति के संसर्ग से हटाकर परमात्मा की ओर मोड़ने का उपदेश देते हैं।[१] उनकी आँखें लोकरूप को छोड़कर नित्य लीला विशिष्ट परमात्मा की रूप माधुरी के लिए, कान उनकी मधुर वाणी व जिह्वा उनका गुणगान करने के लिए लालायित है। उन्होंने मन को अत्यन्त बलवान कह उसे परमधाम के पच्चीस पक्षों में विचरण करने को कहा है।[२]

समरथ मन तू बड़ा जोरावर, कहा कहूँ तेरो विस्तार।
तुझ में फैल बिध बिध के, बलवंता बेसुमार।।

सगुण उपासना के अन्तर्गत ब्रह्म के मुख्यतः दो भाव स्वीकार किये गए हैं— ऐश्वर्य या ईश्वरभाव और माधुर्य या मधुर भाव। ब्रह्म अपने ऐश्वर्य भाव में जगत के नियन्ता, सन्तों के परित्राणकर्त्ता, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के सृष्टि-स्थिति संहारकर्त्ता तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं। उनका वैभव मन और वाणी से अगोचर है क्योंकि वह परात्पर परतत्त्व हैं। उनके इशारे से अक्षर ब्रह्म अनेक ब्रह्माण्डों की सृष्टि करता है, नाश करता है।[३] उनकी शक्ति का एक-एक कण विश्व को उद्भासित करता है।[४] भगवान के इस ऐश्वर्य

१. प्रकाश हिन्दुस्तानी, प्र० २०, स्तुति कर गुणों को फिराये
२. वही, प्र० २० चौ० ८३, ८४
३. प्रकाश हिन्दुस्तानी, प्रगट वाणी - प्र० ३७, चौ० १०
४. वही, प्र० १२

रूप को देखकर भक्त हृदय में भय एवं संकोच की भावना सदा बनी रहती है। 'भय बिनु होई न प्रीति'—तुलसीदास का यह सूत्र ऐश्वर्य भाव की प्रीति का पोषक है।

ब्रह्म के इस ऐश्वर्य से ऊपर उठकर उनका मधुर रूप है, जिसमें आकर्षण है, खिंचाव है। वह रस रूप है और रस पाकर ही आनन्दित होता है।[५] रसों में भी रसतम है, रसघन है और आनन्द रूप है।[६] वह किसी भी अन्य वस्तु से प्रिय है, प्रियतम है और आनन्द घन है।[७] एक रूप ज्ञानाश्रित है और दूसरा भावाश्रित। भावाश्रित रूप का सम्बन्ध भक्त के हृदय से होता है। भावाश्रित होकर ब्रह्म भक्त के मनोवेगों के मधुर बंधन में आबद्ध रहता है। भक्त की मनोवृत्ति के अनुसार वह स्वामी, सखा, कान्त आदि कई रूपों में व्यक्त होता है। जो उसे ज्ञानमय समझते हैं, ब्रह्म समझते हैं, वे उसके एक अंश को जानते हैं पर जो उसे प्रेममय समझते हैं वे उसके सम्पूर्ण अंश को जानते हैं। उनके अनुसार मोक्ष परम पुरुषार्थ नहीं, प्रेम ही परम पुरुषार्थ है। प्रेम भाव के समाविष्ट हो जाने पर ब्रह्म का माधुर्य रूप इतना अधिक प्रभावशाली बन जाता है कि प्रेमी साधक प्रेम में प्रेमस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर धन्य हो उठते हैं। महामति ब्रह्म के इसी माधुर्य रूप की ओर ही अधिक आकर्षित हुए। उन्होंने श्रीराज-श्यामा जी एवं सखियों के शोभा सौन्दर्य तथा उनके शृंगारादि पर 'सागर' और 'सिनगार' ग्रन्थों में प्रकाश डाला। उनके परमधाम वर्णन में अवश्य ब्रह्म के ऐश्वर्य रूप की अनिवार्य स्वीकृति रही है किन्तु उसे भी उन्होंने प्रेममयी भूमिका ही माना है। वस्तुतः प्रेमाभक्ति अर्थात् मधुराभक्ति ही उनके वाङ्मय में प्रमुख रही है।

मधुरा भक्ति :

अपने इष्टदेव कृष्ण के प्रति जो राग (स्वारसिकी आविष्टता) ब्रजगोपिकाओं के हृदयों में था, उसी का अनुगमन करके मन में जो भावचिन्तन किया जाता है, वही मधुरा भक्ति में परिणत हो जाता है। वास्तव में यह वह स्थिति है जहाँ साधक की 'अस्मिता' और ईश्वर का 'अहंत्व' मिलकर एक हो जाता है तथा एक शुद्ध आनन्द, रसमयता की स्थिति आ जाती है। यही भगवद्विषयक शृंगार अथवा रति माधुर्य भाव है। इसमें भक्त और भगवान के बीच आध्यात्मिक दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे मर्यादा और संकोच के सभी भाव दूर हो जाते हैं तथा प्रिय की समीपता तथा आत्मीयता की भावना बराबर बनी रहती है। शान्त की निष्ठा, दास्य की अति सेवा, सख्य की प्रीति, वात्सल्य की ममता और लालन के साथ कान्ता भाव की देहातीत सेवा और प्रेम प्रगाढ़ता के कारण मधुरा भक्ति में सभी भावों का समाहार हो जाता है। अतः प्रेम भाव की यह सर्वोच्च अवस्था है। माधुर्य भाव का परम उत्कर्ष भगवान की कान्त भाव परक मधुर लीलाओं में ही देखा जा सकता है। माधुर्य भाव की मधुर लीला को महामति ने प्रेमाभक्ति के रूप में स्वीकार किया। इसी को माधुर्य भक्ति की संज्ञा दी गई।

महामति की समूची वाणी मधुर भक्ति से अनुप्रेरित रही है। ब्रह्म और जीव के बीच माधुर्य भाव की कल्पना करके उन्होंने परमात्म प्रेम को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। तप, तीर्थ, व्रत, संयम के फेर में न पड़ उन्होंने प्रेम की तीव्रता पर बल दिया

---

५. तैत्तिरीयोपनिषद् २/७
६. छान्दोग्य उपनिषद् १/१/३
७. बृहदारण्यक उपनिषद् १/४/८

है। एक ओर जहाँ वे तीव्र प्रेमान्तिकता की बात करते है, मधुर भाव सम्बन्धों, परिकर, धाम, लीला आदि का स्पष्टीकरण करते हैं तो दूसरी ओर भक्ति का नैतिक एवं सामाजिक पक्ष भी उनके वाङ्मय में अभिलक्षित होता है। यहाँ उनके मधुर भक्ति से सम्बन्धित तत्त्वों को ही लिया जा रहा है।

उपास्य-युगल का रूप वर्णन— मधुर लीला एक से सम्भव नहीं, अतः युगल की स्थिति अनिवार्य है। महामति के उपास्य श्री राज-राजेश्वर श्रीकृष्ण मूलतः अद्वैत हैं किन्तु लीला के समय द्वैत रूप धारण करते हैं। वे सर्व रसों के आश्रय हैं एवं एक ही में दो हैं।[८] उनकी आनन्द अंग श्यामा जी महारानी हैं, किशोर युगल का परस्पर प्रेम माधुर्य रूप का पूर्णतम विकास करनेवाला है—

खूबी जुगल किसोर की, प्रेम बचन इन रीत।
आसक इन मासूक की, भर भर प्याले पीत।।

सागर, ५/२५

उपास्य-युगल के रूप सौन्दर्य वर्णन में महामति ने उनके प्रत्येक अंगों की उज्ज्वलता, कोमलता, सुघरता एवं गुणों का अधिक वर्णन किया है। उनके वस्त्राभूषणों एवं उनसे झलकित रंगों की विविधता का वर्णन उनकी पैनी दृष्टि और भक्ति भावना का परिचायक है। उनके एक-एक अंग का सौन्दर्य ऐसा हृदयग्राही है, किसी एक अंग को देखते-देखते ही सारी आयु व्यतीत हो गई है तो पूरे स्वरूप का वर्णन क्यों कर संभव है—

एक अंग जो निरखिए, तो निकस जाए उमर।
एक अंग बरनन न होवही, तो होए सरूप वरनन क्यों कर।।

सिनगार, १२/६

श्री राजजी के नख शिख का वर्णन चरणों से आरम्भ किया गया है जिससे विविध रंग झलकित हो रहे हैं। चरणों के अँगूठे एवं अंगुलियों के नखों की लालिमा ज्योति आकाश तक पहुँच रही है। उन चरणों की तली से आसमान ज़मीन सब रोशन है।[९] जिस आत्मा के दिल पर वे चरण पड़े अर्थात् प्रभुकृपा हुई वही उनके सुखों का उनमें निहित अनन्त रसों का वर्णन करने मे समर्थ हो पाती है।[१०] चरणों के पश्चात् श्री राज जी की इजार का वर्णन है जिस पर विविध रंगों में बेल, पत्ते, फूल बूटियाँ कढ़ाई की हुई हैं।[११] इजार रेशम में जवाहरात के तारों से बुनी हुई नीले रंग की हैं और उसका नेफा कुसुंभी रंग का है। उनकी कटि कोमल है तथा अत्यन्त पतली है।[१२] पेट की पसलियाँ अत्यन्त कोमल तथा छाती उज्ज्वल गौरवर्णी है। उनका प्रत्येक अंग रस से परिपूर्ण और सुख प्रदायक है।[१३] महामति कहते है—

छाती मेरे खसम की, जिनका नाम सुभान।
जो नेक देखूँ गुन अंदर, तो तबही निकसें प्रान।।

सिनगार, ११/३५

---

८. सिनगार, प्र० ११/२४ चौ०
९. वही, प्र० ५, चौ० ९; प्र० ६, चौ० ३२
१०. वही, प्र० ६ चौ० १७, ५२, ५३
११. वही, प्र० १०, चौ० १-७
१२. वही, प्र० ११, चौ १०
१३. वही, प्र० ११, चौ० १८, १९, ३३

उस महबूब (परमात्मा) का मुख अति उज्ज्वल है जिस पर गुलाबी आभा दमक रही है। उनकी बाँहें अति सुन्दर हैं। महामति की दृष्टि श्री राज जी के रूप वर्णन में इतनी सूक्ष्म एवं अतलस्पर्शी रही है कि उन्होंने बाँहों की कोहनियों, कलाइयों, हथेलियों, अंगुलियों एवं नाखूनों आदि प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का विस्तार से वर्णन किया है।[१४] किन्तु उनके नखशिख वर्णन में उपमानों की भीड़ नहीं है।

महामति केवल मात्र श्रीराज जी के स्वरूप का, उनके समस्त अंगों का परिचयात्मक वर्णन करते हैं जिससे साधक उनके स्वरूप को हृदय में ग्रहण कर उनकी मानसी उपासना कर सके।

श्री राज जी का कंठ अति कोमल है, गौरवर्णी है। अधुर लाल हैं व जिह्वा भी लाल है। माथे पर उन्होंने तिलक लगा रखा है जिससे अनेक रंग झलकित होते हैं।[१५] उनके नेत्र रसभरे, रंगीले, चंचल, चपल हैं। नेत्रों के दोनों किनारे तीखे हैं वे जिस रूह को देख लेते हैं उसका मन हर लेते हैं।[१६] वे कानों में लाल मोती पहने हुए हैं। उनके बाल कंधों तक फैले हैं। उनके सिर पर मोर मुकुट न होकर पगड़ी सुशोभित है जिस पर दुगदुगी और कलंगी लगी हुई है।[१७] हिन्दी साहित्य में उपास्य के कानों का वर्णन प्रायः कम ही देखने में आया है किन्तु महामति ने उपास्य के श्रवणों की कोमलता एवं उनके अपार गुणों का वर्णन अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया है।[१८] उनके उपास्य का अंग-प्रत्यंग सदैव प्रफुल्लित रहता है—

हँसत नेत्र मुख नासिका, श्रवण हँसत चरन।
भौं भृकुटी गाल अधुर, हँसत सिनगार भूषण।।

परिक्रमा, ५/४०

प्रेम और माधुर्य को प्रधानता देनेवाले मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य में राधा या सीता का रूप सौन्दर्य ही अधिक अंकित हुआ है। श्याम का रूपचित्रण करनेवाले संकेत अपेक्षाकृत विरल हैं जबकि महामति ने श्रीकृष्ण (श्री राज) का रूप चित्रण अत्यन्त विस्तार से किया है। 'किरंतन' में भी परमात्मा के रूप सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहारी वर्णन मिलता है जिससे एक पूरा चित्र आँखों के समक्ष सजीव हो उठता है -

सरूप सुन्दर सनकूल सकोमल, रूह देख नैना खोल नूर जमाल।
फेर फेर मेहेबूब आवत हिरदे, किया किनने तेरा कौल फैल ए हाल।

किरंतन, ११२/१-५

श्यामाजी का रूप वर्णन महामति ने अपेक्षाकृत कम किया है। वे श्रीराज श्यामा जी में अन्तर नहीं मानते।[१९] दोनों का स्वरूप समान है। आन्तरिक दृष्टि खुलने पर दोनों एक ही नज़र आते हैं।[२०] श्यामाजी के चरणों में प्रणाम कर[२१] महामति ने उन चरणों के सौन्दर्य एवं एड़ियों की लालिमा का वर्णन करते हुए चरणों के आभूषणों का

---

१४. सिनगार - प्र० १२
१५. वही - प्र० १२ चौ० ३१
१६. वही - प्र० १२ चौ० ३३
१७. वही - प्र० १२ चौ० ४०
१८. वही - प्र० १३ चौ० २ - ४५
१९. नहीं जुदागी इनमें, जुगल किसोर परवान। सागर, ६/२९
२०. सागर - प्र० ६ चौ० ३१
२१. वही - प्र० ६ चौ० २

वर्णन किया है। श्यामा जी ने चरणों में अनवट और बिछुआ धारण किया हुआ है।[२२] जो कि भारतीय परंपरानुसार सुहाग का चिह्न माना गया है। श्यामा जी ने लाल रंग की कटावदार साड़ी पहनी है जो अनेक बेल बूटों की कशीदाकारी से युक्त है।[२३] उनकी चोली श्याम रंग की है वह बाँहों और गले से अनेक हीरे, मोती जवाहिरात से जड़ी हुई है।[२४] उनकी चुनरी नीले आसमानी रंग की है जिसके किनारे पर मानिक, मोती, हीरे, लसनी, पोखरे, कुंदन आदि लगे होने से विविध रंग परस्पर जंग करते से प्रतीत होते हैं।[२५] मोतियों की राखड़ी श्यामा जी का केश शृंगार करती है। राखड़ी पर लाल माणिक्य लगा है जिसकी ललाई से सारा जगत लाल दिखाई पड़ता है।[२६] श्यामा जी की वेणी (चोटी) तीन गोफेन में गुँथी हुई घुँघरियों से जड़ित है। ये वेणी गोरी पीठ पर साँपिन-सी डोलती है और महीन लाल साड़ी से स्पष्ट दीखती है।[२७] श्यामाजी ने नाक में मुरकी पहनी है जिसमें खसखस के दाने के समान छोटा नग लगा है। उस नग की प्रकीर्ण ज्योति से धरती और आकाश का प्रकाशित होना उनकी दिव्यता एवं अलौकिकता का ही प्रमाण कहा जा सकता है। निश्चय ही महामति के आराध्य युगल का रूप चित्रण भव्य, दिव्य, अलौकिक विस्तृत एवं हृदयहारी है जिसके विस्तार के मूल में सर्वत्र भक्ति भावना ही विद्यमान रही है। उनके सौन्दर्य की उपमा ढूँढ़ना व्यर्थ है। वे भक्ति रूप हैं और अपनी उपमा स्वयं आप हैं। साधक युगल किशोर के स्वरूप को अपनी आत्मा द्वारा ग्रहण करे, यही वास्तविक भक्ति है। महामति के शब्दों में —

सरूप ग्रहिए हक का, अपनी रूह के अंदर।
पूरन सरूप दिल आइया, तब दोऊ उठे बराबर।।

सिनगार, २५/६१

यह ध्यान ही शरीयत है और उसकी धारणा हक़ीक़त है-

ए सरियत अपनी मोमिनों और है हकीकत।
क्यों न विचार के लेवहीं हक हादी बैठे तखत।।

सिनगार, २६/६२

अपनी प्रत्येक गुण अंग इन्द्रियों को परमात्मा के स्वरूप की ओर उन्मुख करने का उपदेश देते हुए महामति कहते हैं कि नेत्रों से परमात्मा का दर्शन करते रहो, जिह्वा उसी का गुणगान करती रहे और कान उस परमात्मा की बातें सुनते रहें, कुछ इस प्रकार आत्मा के पट खोलो—

रूह नैनों दीदार कर, रूह जुबां हक सों बोल।
रूह कानों हक बातें सुन, एही पट रूह का खोल।

सिनगार, २६/६८

सखियाँ — माधुर्य भाव की भक्ति का आधार केवल इतना ही नहीं है कि उपास्य

---

२२. वही - प्र० ६ चौ० ६
२३. वही - प्र० ६ चौ० ३२
२४. वही - प्र० ६ चौ० ३६
२५. वही - प्र० ६ चौ० ४०
२६. वही - प्र० ६ चौ० ४५
२७. वही - प्र० ६ चौ० ५२

का स्वरूप युगल स्वरूप हो। युगल स्वरूप की उपासना तो दास्यादि भावों से भी हो सकती है। मधुर रस की उपासना के लिए एक मात्र सखी भाव ही उपासक का भाव होना चाहिए। महामति भक्ति क्षेत्र में सखी भाव को हो उपासना का आधार बनाते हुए कहते हैं—"सखी भाव भजिए भरतार।" मधुरा भक्ति के क्षेत्र में प्रिया- प्रियतम के केलिकुंज में केवल सखियों का ही प्रवेश संभव है। युगल केलि का वास्तविक रसास्वादन सखी ही करा सकती है। महामति स्वयं परमधाम की सखियों में से प्रधान सखी 'इन्द्रावती' थे। अतः सखियों की युगल-स्वरूप की सेवा का तथा अखण्ड लीलाओं में प्राप्त सुखों का वर्णन वे अत्यन्त विस्तार से करते हैं।

श्री राज श्यामा की इस केलि का रसास्वादन सखियाँ अर्थात्, रूहें ही करती हैं। प्रिया प्रियतम की नित्य लीला में व्यापक रीति से पूरक रहकर ये लीला सहकारिणी बनती हैं। श्यामा जी की अंशभूता [२८] इन बारह हज़ार सखियों में मन बुद्धि एवं प्रेम में परस्पर एकात्मता है जिसे 'एकदिली' भी कहा गया है। [२९] अंग-प्रत्यंग से प्रेम रस से भरी हुई वे जूथों में श्री राज जी के चरणों में आती हैं।[३०] श्री राज जी को वे कान्त ही समझती हैं उनको ब्रह्म भाव से वे नहीं देखती। इस प्रकार श्री राज जी में उनका भर्तृभाव है और श्यामा जी में उनका सखी भाव अथवा परिचारिका भाव है। श्यामा जी को जो सुख प्राप्त होता है वह स्वतः ही सखियों को भी प्राप्त हो जाता है—

जो सुख पावत बड़ी रूह, सब तिनके सुख अनुकूल।
ज्यों जल मूल में सींचिए, पोहोंचे पात फल फूल।।

परिक्रमा, ३८/७४

ये सखियाँ श्री राज-श्यामा की अंशभूता होने से नित्य परिकर हैं अर्थात् युगल की रुचि के अनुकूल हैं। इन सखियों के न माता पिता है, न सखा बन्धु, न पति पुत्र।[३१]

ये तो देशकाल से परे, स्वयं परमात्मा तत्त्व की अंशभूता हैं और उनके साथ नित्यलीला विहारिणी हैं प्रफुल्लित मन से ये सदा श्री राज श्यामा की सेवा में रत रहती हैं।[३२] प्रिया-प्रिय को स्नान कराती हैं उनके वस्त्र बदलती हैं। उनका शृंगार कर उन्हें भोजन आदि कराती हैं। उनका उत्साह देखते ही बनता है—

मिनों मिने सिनगार करावें। एक दूजी के आगे धावें।
उछरंगतियां आवें आगे। राज श्यामा जी के पांउ लागे।।

परिक्रमा, ३/१३५

प्रिय के भोजन के समय सखियों की तीव्रता उत्साह व एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ एक सजीव चित्र प्रस्तुत करती है—

सैंया दौड़ दौड़ के जावें। आरोगने की बस्तां ल्यावे।।
मेवा अनं ने साक मिठाई। कै विध सामग्री ले आई।।
एक ले चली साक कटोरी। तापें छीन ले चली दूसरी।।
तिनथें झोंट ले चली तीसरी। चौथी वापें थें ले दौरी।।

---

२८. सागर - प्र० ४, चौ. ३२
२९. वही - प्र० ४ चौ० ७
३०. परिक्रमा - प्र० ३८ चौ० ७४
३१. सागर - प्र० २
३२. परिक्रमा - प्र० ३ चौ० १०१, १०२

जो कदी छीन लेत हैं जिनपे। पर रोस न काहूं किनपे।।
इतथें जो फिर कर गैंया। तिन और कटोरी जाए लैंया।।

परिक्रमा, ३/११०-११२

जिससे छीनी जाती है उन्हें तनिक भी क्रोध नहीं आता। यह रूहों की एक दिली एवं एकात्मा का ही परिचय है।

भोजनोपरांत वे प्रिया प्रिय के सम्मुख नृत्य करती हैं, संगीत का आयोजन होता है। अनेक स्वरों में बाजे बजते हैं।[३३] संध्या समय श्री राज श्यामा जी शय्या पर पधारते है; नित्य विहार होता है। उनका प्रेम अकथनीय है।[३४] श्री राज जी अपनी रूहों को सदैव खुशहाल रखते हैं। रूहें उनके सन्मुख बैठ अमृत रस का पान करती हैं और सुख प्राप्त करती हैं।[३५] महामति ने सखी भाव से समस्त मधुर प्रसंगों का सखियों के सेवा भाव का सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन किया है। साधक श्री राज श्यामा जी के स्वरूप को दिव्य भाव के साथ अपने अन्तःपटल पर उतारता है और सखियों की गतिविधियों व सेवा तत्परता को आन्तरिक दृष्टि से देख किसी-न-किसी सखी का अनुगमन करता है। सखी भाव में मानसी सेवा में मानसी सेवा के अतिरिक्त और कोई भाव नहीं, केवल सेवा की ही वासना है।

परमधाम — परमधाम वह अधिष्ठान है जहाँ पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की दिव्य लीलाएँ सम्पन्न होती हैं और साधक का परम प्राप्तव्य स्थल भी वही है।[३६] बैकुण्ठ, गोलोक और अखण्ड वृन्दावन से आगे अक्षरधाम तथा उससे भी आगे अक्षरातीत का परमधाम है।[३७] आन्तरिक दृष्टि खुलने पर ही उस धाम की अखण्ड सुखकारी मोहोल सामग्री का अनुभव किया जा सकता है—

धाम के मोहलों सामग्री, माहें सुख कारी कई विध
अंदर आँखे खोलिए, आई है निज निध।।

किरंतन, ८०/११

सामान्यतः वैष्णव भक्ति साहित्य में ब्रह्म अथवा विष्णु के धाम के विभिन्न नाम मिलते हैं जैसे —ब्रह्मपुर[३८] ब्रह्म लोक[३९] अव्यक्त धाम[४०] अक्षरधाम[४१] त्रिपादविभूति[४२] आदि। सभी में प्रायः यही कहा गया है कि ब्रह्म का धाम त्रिगुण माया से परे है जहाँ पूर्णानन्द है, नित्य सुख है। वह स्थल असीम, अनन्त, अमेय और चिन्मय स्वरूप है। महामति इस सम्बन्ध में परम्परा का निर्वाह करते हुए भी भिन्न दृष्टिकोण रखते है। परमधाम का वर्णन करते हुए अनेक प्रकार के भवनों, मेहराबों, द्वारों, चौकियों, चबूतरों, वृक्षों, फल-फूल एवं उनकी सुगंधियों पशु-पक्षियों का उल्लेख उन्होंने किया

३३. परिक्रमा - प्र० ३. चौ० १४८
३४. वही, प्र० ३; चौ० १५५, १५७
३५. वही, प्र० ६; चौ० २८, २६ प्र० ११; चौ० ४६
३६. परिक्रमा, चौ० १-७ प्र० ३
३७. वही, प्र० २, चौ. २०
३८. छान्दोग्य उपनिषद् ८/१/१
३९. वही, ८/१२/१६
४०. श्रीं मद्भगवद्गीता ८/२१
४१. श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/८ ; गीता ८/२१
४२. ऋग्वेद - पुरुषसूक्त

है। वह उनके वास्तुकला के ज्ञान एवं प्रेममयी भक्ति का ही द्योतक है।

पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत की प्रेममयी अखण्ड भूमिका परमधाम के पच्चीस पक्ष हैं- रंगमहल (इसकी दस भूमिकाएँ है), यमुना जी के सात घाट, कुंजवन, हौज कौसर ताल, बड़ा वन, पुखराज पर्वत, मानिक पहाड़, जवेरों की नहरें, पश्चिम की चौगान, इन सबके इर्द गिर्द आठ महासागर और आठ भूमिखण्डों का वर्णन महामति ने किया है। परमधाम की समस्त सामग्री शोभा और प्रेम से परिपूर्ण है जिसका सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन करने का उद्देश्य कदापि यही हो सकता है कि इस संसार में भूली ब्रह्मात्माओं को अपने निजघर की सुधि कराना। आन्तरिक दृष्टि खुलने पर चिन्मय (भाव) देह की प्राप्ति करता हुआ साधक अनन्य प्रेम द्वारा परमधाम में प्रवेश पा सकता है। परमधाम में श्रीराज जी की नित्य प्रेममयी एवं रसमयी लीला निरंतर चल रही है जिसके आनन्द का आस्वादन करना ही आत्मा का परम उपजीव्य है। इस मायिक देह से, जिह्वा से उस अखण्ड धाम की वस्तुओं का उनके अपूर्व सुखों का वर्णन नहीं किया जा सकता–

क्यों कहे जुबां झूठी देह की, अखण्ड पार के पार जो सत।

परिक्रमा, ३८/२

वहाँ के एक वृक्षपात की शोभा का वर्णन संभव नहीं है तो पूरे वृक्ष का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है–

सोभा जाए न कही वृक्षपात की, तो क्यों कहूँ फल फूल बास।
क्यों होए बरनन सारे वृक्ष को, ए तो सुख साथ को उलास।।

परिक्रमा, ३८/४६

उपासक इस अखण्ड भूमि परमधाम में प्रेमभाव द्वारा ही पहुँच सकता है क्योंकि वहाँ सर्वत्र प्रेम का ही साम्राज्य है यहाँ तक कि वहाँ के वस्त्राभूषण, शरीर आदि भी प्रेम के रंग में पूर्णतः निमज्जित हैं। [४३]प्रेम की स्थिति भी तभी आएगी जब साधक को बाह्य देह (मायिक देह) से पृथक् भावदेह की प्राप्ति होगी। उसकी बाह्य दृष्टि पूर्णतः बन्द होकर आन्तरिक दृष्टि खुलेगी। [४४] यह आन्तरिक दृष्टि भी पूर्णब्रह्म परमात्मा की मेहर (कृपा) से ही खुलती है तब यह भगवदनुगृहीत भक्त यहीं बैठे परमधाम में प्रवेश पा लेता है–

उन अंतर आँखे तब खुले, जब हक देखें वह नजर।
अंदर चुभे जब रूह के, तब इतहीं बैठे बका घर।।

सागर, ३/३

धनी की कृपा प्राप्त होने पर प्रेम द्वारा महामति की आत्मा अपना वतन निजधाम देखती है, धनी के चरण तले बैठे उनकी प्रेम लीलाओं में विलास करती है–

अब आओ रे इस्क भानू हाम। देखूँ वतन अपना निजधाम।।
करुँ चरन तले विश्राम। बिलसों पिआजी सों प्रेम काम।।

परिक्रमा, ३/१

लीला :

महामति का सम्पूर्ण वाङ्मय लीला-रस से परिपूर्ण है तथा उनकी माधुर्य भक्ति का

४३. परिक्रमा, प्र० १.; चौ. ३३, ५२
४४. किरंतन, प्र. ७६ चौ. २२

विस्तार है। अक्षरातीत ब्रह्म ने अक्षर ब्रह्म को अपने स्वरूप की तथा ब्रह्मात्माओं को अक्षर की लीलाओं का ज्ञान करवाने के लिए लीलाओं का आयोजन किया [४५] जिसमें ब्रजलीला, रासलीला और जागनी लीला प्रमुख लीलाएँ हैं। [४६] अक्षर ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की 'प्रेम लीला' की ख़बर नहीं थी और ब्रह्मानन्द में निमग्न ब्रह्मात्माओं को इस दुःखपूर्ण नश्वर ब्रह्माण्ड का पता न था। अतएव दोनों को एक दूसरे से परिचित कराने के उद्देश्य से ही लीला हेतु अभावाश्रित कृत्रिम वातावरण की सृष्टि की गई। वह वातावरण कुछ इस प्रकार बना– अक्षर ब्रह्म की इच्छा पूर्ण ब्रह्म की किशोर लीला का आनन्द देखने की हुई, उधर जब पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ने सत की किरण आनन्दरूपिणी सखियों पर डाली तो उन सखियों को अक्षर ब्रह्म दिखलाई दिए जो कि पूर्ण ब्रह्म को प्रणाम करके जा रहे थे। सखियों के प्रश्न पूछने पर कि वह कौन पुरुष था, जिसे उन्होंने आज तक कभी नहीं देखा, परमात्मा ने उन्हें अक्षर के खेल से अवगत कराया [४७] जिसे देखने की इच्छा सखियों के मन में जागृत हुई। परमात्मा के अनेक बार मना करने पर भी सखियाँ टस से मस न हुई और माया रूपी खेल देखने की इच्छा व्यक्त की।[४८] इधर अक्षर के मन ने नये स्वप्नमय ब्रह्माण्ड की रचना की। [४९] जिसमें गोकुल ब्रज बना जहाँ कृष्ण की अखण्ड लीला हुई।[५०]

महामति ने ब्रजलीला को ब्रह्मलीला अर्थात् वास्तवी लीला भी कहा है। वह अखण्ड ब्रजलीला अक्षर ब्रह्म द्वारा रचित काल माया के ब्रह्माण्ड में आयोजित हुई। अक्षरब्रह्म की इस धामलीला का अनुभव ब्रह्मांगनाओं ने अक्षरातीत परमात्मा के संग रहकर लिया जिसमें उनकी चेतना पूर्णतः सुषुप्त कही गई है। [५१] अखण्ड बिहारी परमात्मा ने निज अंश (आवेश) द्वारा ही ब्रज में साक्षात् कृष्ण रूप धारण किया। इस ब्रजलीला वर्णन में लौकिक ब्रजलीलाओं को कहीं भी स्थान नहीं मिला है, अलौकिक लीलाएँ भी अपेक्षाकृत कम ही महामति वाङ्मय में वर्णित हुई हैं। गोकुल यमुना नदी वहाँ के ग्वालबाल, धेनु, नन्द, यशोदा आदि का मात्र परिचय ही उन्होंने दिया है।[५२] ब्रजलीला की अपेक्षा रासलीला का वर्णन उन्होंने अधिक विस्तार से किया है।

महामति कहते हैं कि ब्रजलीला का रस लेनेवाली गोपियाँ वही ब्रह्मांगनाएँ थीं जिन्होंने अक्षरब्रह्म की सुख दुःखमयी द्वन्द्वात्मक सृष्टि देखने की इच्छा व्यक्त की थी। ब्रज में आकर वे अपना स्वरूप तक भुला बैठीं और श्रीकृष्ण प्रेम में पूर्णतः निमग्न हो गईं। गोपियों को थोड़ा स्वरूप स्मरण दिलाने के लिए पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ने उनकी आधी निद्रा हटाकर उन्हें किशोर आनन्द प्रदान करने के लिए रासलीला का आयोजन किया। रासलीला इस ब्रह्माण्ड की लीला नहीं है अपितु उसे योगमाया द्वारा रचित ब्रह्माण्ड में सम्बन्ध किया गया जिसे अखण्ड वृन्दावन की संज्ञा दी गई।

---

४५. प्रकाश हिन्दुस्तानी, प्रगट वाणी - प्र० ३७ चौ० ६, १२
४६. वही, प्र० ३७ चौ० १०८
४७. वही, प्र० ३७; चौ० ६, १०,
४८ वही, प्र० ३७ चौ० १३, १४
४९. वही, प्र० ३७ चौ० १८
५०. कलस हिन्दुस्तानी, प्र० १६ चौः १२
५१. प्रकाश हिन्दुस्तानी, प्र० ३७, चौ० २६
५२.. कलस हिन्दुस्तानी, ५० १६ चौ० १-५३

ये बात धनी चित सों ल्याय। आधी नींद तब दई उड़ाय।
ग्यारह वर्ष और बावन दिन। ता पीछे पहुँचे वृन्दावन।।
कछु नींद कछु जागृत भये। जोगमाया के सिनगार जो कहे।
योगमाया में खेले जो रास। आनन्द मन आनी उलास।।

प्रकाश हिन्दुस्तानी ३७/२८, ३३

रासलीला वर्णन से पूर्व महामति ने श्यामा जी, उनकी सखियों तथा श्री राजजी के नखशिख शृंगार का सविस्तार वर्णन किया है।[५३] साथ ही उन्होंने चेतन वृन्दावन के सौन्दर्य का भी वर्णन किया हैं।[५४] राधावल्लभीय सम्प्रदाय में वृन्दावन वर्णन का एक निश्चित रूप था। जिसका अनुकरण उस सम्प्रदाय के सभी कवियों द्वारा किया गया। महामति ने प्रचलित धर्म सम्प्रदायों तथा तत्कालीन माधुर्य साधना परक पद्धतियों तथा निम्बार्क, चैतन्य एवं वल्लभ सम्प्रदाय में मान्य रास वैभव को ही अपने स्वभावानुसार प्रकट किया। इन सभी प्रचलित सम्प्रदायों के अनुसार उन्होंने श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी (दशम, अ० २९-३३) की वस्तु को ही आदर्श रूप में ग्रहण किया। उनमें भागवत का केवल मात्र अनुकरण न होकर नवीन स्थापनाओं की प्रस्तुति भी मिलती है। परीक्षित के प्रश्न पूछे जाने पर भागवत में जहाँ शुकदेव मुनि मौन धारण कर लेते हैं, उससे आगे की लीला का वर्णन महामति ने किया है। इस वर्णन में झीलना, भोग तथा अन्य क्रीड़ाएँ प्रमुख हैं। रास सज्जा, रास नृत्य शोभा, रासविधान आदि का सरस एवं सुन्दर वर्णन हुआ है। योगमाया द्वारा रचित इस रासमंडल में सभी कुछ प्रकाशमय है। ऐसा प्रतीत होता है मानों सहस्र कोटि सूर्य उदित हो गए हों जिनकी रोशनी ब्रह्माण्ड में समा पाने में असमर्थ हो—

कोटान कोट जाणे सूरज उदया, ब्रह्माण्ड न माए झलकार।
प्रघलपूर जाणे सायर उलटयो, एक रस थाई सरवे नार।।

श्री रास, ७/३

इस सौन्दर्य सागर में सभी रसों का एक होना रास की दिव्य क्रीड़ा का द्योतक है जहाँ एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त रस का रसास्वादन करें।

महामति ने रासलीला को तीन वर्गों में विभाजित किया है — वास्तवी, प्रतिभासिकी और व्यावहारिकी इनमें वास्तवी अखंड लीला ही उत्तम लीला है जो कि अक्षर ब्रह्म के हृदय में अखंड रूप से स्थित है। उसका प्रतिभास केवल ब्रह्म के महाकारण या गोलोक पर पड़ रहा है, इस कारण नित्य गोलोक में होनेवाली लीला को प्रतिभासिक या प्रतिबिम्ब लीला कहा गया है। नित्य गोलोक ब्रह्माण्ड से ऊपर है जहाँ किशोरावस्था में नित्यानन्द विग्रह श्रीकृष्ण का वास है। ब्रजमंडल में हुई लीला व्यावहारिकी लीला है। परात्पर तत्त्व की लीला का दर्शन, ज्ञान एवं आस्वादन उनका काम्य रहा है तथा इस लीला की प्रमुख प्रवृत्ति प्रेम रति या भक्ति का ही उन्होंने जयगान किया है। विषय वस्तु सम्बन्धित कुछ स्थलों पर भागवत का आधार लेते हुए भी महामति ने भावचित्रण में पर्याप्त स्वतंत्रता से काम लिया है। सखियों की भावमुद्राओं के साथ साथ हृदय के उद्गारों का भी वर्णन किया है जिनमें तन्मयता, अनन्यता एवं प्रेमातिरेकता है।

---

५३. श्रीरास, प्र० ६, ७, ८
५४. वही, प्र० १० चौ० १-३६

ब्रजलीला और रासलीला के पश्चात् महामति 'जागनी लीला' का महत्त्व मानते हैं जो कि इस ब्रह्माण्ड की लीला है। इसे पूर्णतः आत्म जागरण की स्थिति माना गया है—

ब्रजलीला लीला रास माहें, हम खेलें जान के जार।
जागनी लीला जाग पहिचान, पीउ सों जान विलसे करतार।।

किरन्तन, ५५/१५

आत्म विस्मरण, नींद, फ़रामोशी में पड़ी आत्माओं को तारतम ज्ञान के दिव्य प्रकाश द्वारा जगाकर परमधाम में उठाना जागनी लीला कही जाती है। जागनी लीला का प्रयोजन माया, स्वप्न व तथा आसक्ति को मिटाकर आत्मा को पूर्णतः जाग्रत और प्रबुद्ध करना है। आत्मा के जाग्रत होने पर इस ब्रह्माण्ड में ही परमधाम के नित्य, चिरंतन, चिरनूतन महामिलन का अखण्ड सुख प्राप्त किया जा सकता है, यही इसका महत्त्व है —

अब जागि देखो सुख जागनी, ये सुख सोहागिन जोग।
तीन लीला चौथी घर की, इन चारों को यामें भोग।।

कलस हिन्दुस्तानी, २३/१

ब्रजलीला और रासलीला दोनों स्वप्नवत होने से वहाँ परमधाम की सुधि और चेतना नहीं है। वहाँ सर्वत्र पूर्णब्रह्म के साथ होने से ब्रह्मांगनाओं को अखण्ड सुख की पहचान नहीं है जिसकी पहचान कराने के लिए जागनी ब्रह्माण्ड की रचना हुई जो कि मोह-माया-अहंकार से ग्रस्त है। दुःख द्वारा ही सुख की पहचान संभव है। संसार के दुःख अनुभव कर अर्थात् परमात्मा से बिछुड़कर ही आत्मा परमधाम के अखंड सुख प्राप्त कर हर्षित होती है —

सत सुख में सुख देयसी, इन जिमि के दुख जेह।
तुम हंसोगे हरख में, रस देसी दुखड़ा एह।।

कलस हिन्दु०, २३/१६

दुःखमय संसार में दुःख के चंगुल से निकलकर निज घर के सुखों का स्मरण अथवा मनन करने से आत्मा सुख प्राप्त करती है।[५५] महामति कहते हैं कि मुझे परमात्मा ने साक्षात् धनी देवचन्द्र जी के रूप में अवतरित होकर पूर्णतः जाग्रत किया है, अब मैं समस्त सुन्दर साथ को जगाऊँगी और इस दुःखमय संसार को परमधाम के अखण्ड सुखों की स्मृति दिला वहाँ जाने को प्रेरित करूँगी—

पीउ जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ये जिमि झूठी दुख की, सो कर देऊं सत सुख।।

कलस हिन्दु०, २३/४४

इस प्रकार मोहमाया से ग्रस्त, काम विकार से व्याकुल अधोगति में पड़े सांसारिक जीव को परमात्मा की प्रेम रसमयी लीला द्वारा उद्बोधित करने का प्रयास किया गया है। माधुर्योपासना के क्षेत्र में कृष्ण भक्तों की दो स्पष्ट परम्पराएँ मिलती हैं — एक ब्रज लीला गायकों की परम्परा, दूसरी शुद्ध वृन्दावन माधुरी या निकुंज लीला के गान की है जिसमें प्रवेश सखी भाव से ही हो सकता है। महामति वाङ्मय में ये दोनों परम्पराएँ

---

५५. कलस हिन्दु०, प्र० २३ चौं० २६

विचित्र भाव से गुँथी हुई है। इसके अतिरिक्त जागनी लीला का महत्त्व स्थापित कर जगत की प्रत्येक चर्या को लीला मानना उनका नवीन दृष्टिकोण है।

प्रेमलक्षणा भक्ति – माधुर्य भक्तिं का शाश्वत स्वरूप 'प्रेम' है जिसकी मधुर परिणति आत्मा परमात्मा के दाम्पत्य प्रेम सम्बन्ध में होती है, यही महामति वाङ्मय का मूलाधार है। वस्तुतः प्रेम और भक्ति उनके लिए पर्याय हो गए। उन्होंने उस प्रेम मार्ग को स्वीकार किया है जिसके लिए जप, तप, यज्ञ, पाठ, व्रत आदि किसी भी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं रहती। वह प्रेम लोक के प्रेम से सर्वथा विलक्षण तत्त्व है, नित्य एक रस, अखण्ड और सतत प्रवहमान। यह प्रेम ही सृष्टि का मूल कारण है। परमधाम में श्रीराज जी एंव सखियों के बीच परस्पर प्रेम संवाद हुआ। किसका प्रेम अधिक है। [५६] यह निर्णय करने के लिए पूर्णब्रह्म परमात्मा ने सखियों के मन में अक्षर ब्रह्म का खेल देखने की इच्छा जागृत की, फलतः तीन ब्रह्माण्डों की रचना हुई – ब्रज, रास और जागनी। जागनी अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में आकर सखियाँ परमात्मा के रूप में धूल, मिट्टी, आग, पानी–पत्थर की पूजा करने लगी। [५७] उन्हें अनन्य प्रेम की साधना के लिए प्रेरित करना महामति अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते हैं क्योंकि प्रेम के बिना यह समस्त सृष्टि शून्य है। साधक के लिए परमात्मा के प्रति 'प्रेम' अथवा 'इश्क़' ही सर्वस्व है। [५८] इसलिए उसे सदैव परमात्मा के प्रेम रस में डूबे रहना चाहिए–

प्रेमै में भीगे रहिए, पीउ सो आनन्द धन।

किरंतन, ३५/३२

निस दिन ग्रहिए प्रेम सों, जुगल स्वरूप के चरन।

किरंतन, १०६/२

प्रेम के ही कारण साधक पलमात्र में परमात्मा के पास पहुँच जाता है –

पंथ होवे कोटि कलप। प्रेम पहुँचावै मिने पलक।।

परिक्रमा, १/५३

कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि परमात्मा केवल प्रेम द्वारा ही वरेण्य है। [५९] महामति ने इस कलियुग में प्रेम को ही धर्म ध्वज बतलाया है[६०] क्योंकि प्रेम ही जहाँ जीवन की संजीवनी शक्ति है वहाँ मनुष्य या जीवात्माओं की भौतिक और आध्यात्मिक कर्म कौशल की प्रतिभा है तथा ब्रह्मात्माओं की दिव्य चेतना की स्फूर्ति भी इसी के द्वारा मनुष्य 'स्व' की क्षुद्र सीमा से बाहर निकलकर 'पर' की सीमा का अतिक्रमण करता हुआ 'सर्व' के निस्सीम लोक में पहुँच जाता है। इस विशिष्ट अवस्था में प्रेम आत्मा के रसमय अनुभव के रूप में सिद्ध होता है तथा जीवन की पूर्णता का परिचायक बन जाता है। विश्व को संगठित करनेवाला अलक्ष्य सूत्र भी प्रेम ही है–

---

५६. खिलवत, प्र.१५, चौ० ३१
५७. वही, प्र० १४ चौ० ५०
५८. कलस हिन्दु०, ५७ चौ० १
५९. नायमात्मा प्रवचनलभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन।
सवैवेष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूस्वाम्।। **कठोपनिषद्, १/२/२३**
६०. श्री रास, प्र० ३३, चौ २

इसक खेल हाँसी इसक, इसक फरामोस मोमिन।
इसकें रसूल होए आइया, वास्ते इसक न पाया किन।।

खिलवत, १२/४३

प्रेम में अनन्यता एवं एक निष्ठता — महामति ने अनन्य प्रेम का प्रतीक पतिव्रता को माना है। जिस प्रकार पतिव्रता का प्रेम एकनिष्ठ होता है उसी प्रकार साधक को भी अपने इष्ट में अनन्य भाव से रत रहना चाहिए।[६१] दाम्पत्य भाव के प्रेम में आत्म समर्पण अर्थात् 'तत्सुखे सुखित्वं' की भावना अपने चरम रूप में चरितार्थ होती है। अतः साधक को परमात्मा का ध्यान एकनिष्ठ प्रेमभाव से ही करना चाहिए। अनेक इष्टों या ईश्वरों की पूजा करनेवाले भक्त को महामति उस वेश्या के समान बतलाते हैं जो नित नये पुरुष से विलास करती है —

पतिव्रता पणे सेविए, नव थाए वेश्या जेम।
एक मेली ने अनेक कीजे, तेनी थाय धणीवट केम।।

किरंतन, १२८/४४

परमात्मा परम पुरुष है, बाकी आत्माएँ उनकी प्रियतमाएँ हैं—

पुरुष दूजा कोई काहू न कहावे,
सबों भजिया कर भरतार।

किरंतन, ५४/११

उस एक परम पुरुष परमात्मा श्री कृष्ण से ही प्रेम करके निश्चित हुआ जा सकता है—

नाम तत्त्व कह्यो श्री कृष्ण जी, जे रमें अखण्ड लीला रास।
होये नेहचल रंग कीजे ते पुरुष सों, दई प्रेम नो पास।।

किरंतन, ६४/७

श्री कृष्ण की भक्ति पुरुष भाव से नहीं अपितु नारी भाव और उसमें भी एकनिष्ठ पातिव्रत्य भाव से करनी चाहिए—

पुरुष पने ऐ दृश्टें न आवे, एह अबलापने लीजें अंग।
पुरुष न थी ऐह बिना कोई बीजो, जे रमे नेहचल लीला रंग।।

किरंतन, ६४/९

आत्मा की पवित्रता भी परमात्मा की प्रेम पूर्वक भक्ति द्वारा ही संभव है, तब संसार उसके लिए स्वप्नमय हो जाता है और सांसारिक विकार सदा के लिए छूट जाते हैं।[६२] परमात्मा के प्रेमानन्द से भरकर आत्मा अखण्ड ज्ञान को पा लेती है, मोह अहंकार आदि उससे दूर हो जाते हैं, वह श्याम-श्यामा बने स्वरूप को आत्मा द्वारा अनुभव करती हुई उसी लीला विलास में मस्त हो जाती है—

---

६१. किरंतन, प्र० ६४ चौ० १६

६२. उत्पन्न प्रेम पार ब्रह्म संग, वाको सुपन हो गयो संसार।
प्रेम बिना सुख पार को नाहीं, जो तुम अनेक करो आचार।।
छकियो साथ प्रेम रस मातो, छूटे अंग विकार।
परआत्म अंतस्करण उपज्यो, खेले संग आधार।। किरंतन, ८/६; ८३/६

मद चढ़यो महामत भई, देखो एह मस्ताई।
धाम श्याम श्यामा जी साथ, नख शिख रहे भराई।

किरंतन, ८३/१४

प्रेम रसायन का यह अनुपम आस्वाद 'मूकास्वादवत्' केवल अनिर्वचनीय है जिसे प्राप्त कर प्रेमी साधक प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है और प्रेम का ही चिन्तन और वर्णन करता है।[६३] महामति 'प्रेमी सुहागन' की इस दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

पीउ बातें खेले हंसै, गीत पिया के गाए।
रोवै उरझैं पीउ की, बातन सों मुरछाए ।।

कलस हिन्दु०, ११/१५

प्रेमाभक्ति की कठिनता– परमात्म-प्रेम गुण रहित, कामना रहित, प्रतिक्षण वर्द्धमान, अविच्छिन्न, अति सूक्ष्म तथा स्वानुभवैकगम्य है, जिसका मार्ग अन्य भक्त कवियों के समान महामति ने भी अत्यन्त कठिन माना है। पूर्वोक्त 'सुहागिन' की जिस दशा का वर्णन महामति ने किया है, उस दशा तक पहुँचना सर्वसुलभ नहीं। वह सुनने में जितनी मधुर, सरल प्रतीत होती है, उस मार्ग पर चलते समय वह उतनी ही तलवार की धार जैसी तेज है, अग्नि की ज्वाला से भी अधिक दाहक है, अनेक शूरवीर उस कठिन विकट घाटी तक पहुँचने में असमर्थ रह जाते हैं क्योंकि उस तलवार की धार जैसे कठिन मार्ग पर साधक रोम-रोम में प्रिय मिलन की व्यग्रता, व्याकुलता लिए ही चल सकता है–

कठिन निपट विकट घाटी प्रेम की, त्रिवंक बंको सूरों किनों न अगमाय।
धार तरवार पर सचर सिनगार कर, सामी अंग सांगां रोम रोम भराय।।

कलस हिन्दु०, ३/२

संत कबीर ने भी भक्तिमार्ग को खंडे की धार पर चलने के समान कठिन बताया है– भगति दुहेली राम की, जैसे खांडे की धार।[६४] मीरा तो पुकार-पुकार कर भक्ति मार्ग की कठिनता की ओर संकेत करती है– नगर ढिंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय।[६५] सूरदास ने इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने को स्वयं अपने गले पर छुरी मारने के सदृश बताया है– प्रीति करि दीन्ही गरैं छुरी।[६६] महामति के लिए यह प्रेम ही परमात्मा है। उनका भक्त हृदय सारुप्य न चाहकर प्रभु का सान्निध्य चाहता है अर्थात् ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित कर ब्रह्म बन जाने में आनन्द नहीं है अपितु आनन्द तो उनका सान्निध्य लाभ करने में है। इसीलिए वे केवल परमात्मा से अपना प्रेम देने की माँग करते हैं चाहे मार्ग की कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़े–

न चाहों मैं बुजरगी, न चाहों खिताब खुदाय।
इसक दीजे मोहे अपना, मेरा याही सों मुद्दाय।।

किरंतन, ६२/३

---

६३. नारद भक्ति, सूत्र - ५५
६४. कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७० दोहा २५
६५. मीरा बाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, नवाँ सं०, पृ० ११६
६६. सूर सरोवर, (सं०) हरवंशलाल शर्मा, पृ० १४६

प्रेम और विरह— प्रेमाभक्ति में विरह को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विरह ही भगवत् रति को प्रज्ज्वलित करके साधना को उत्कट बनाता हुआ साध्य की ओर ले चलता है। महामति ने परमात्मा से मिलन के लिए विरह को अनिवार्य माना है। वस्तुतः उनकी प्रेम साधना विरहमूलक है। उनके अनुसार आत्मा परमात्मा से विलग हो गई है इसी कारण दुःख झेल रही है—

पीउ वतन पाये बिना, **विरह न जाए निस दिन।**[६७]

यह विरहावस्था ही आत्मा को कलुष मुक्त करके प्रिय के मिलन की उपयुक्ता प्रदान करती है। महामति ने अनेक बार विरह की महत्ता का बखान कर परमात्म-मिलन का एकमात्र उपाय दुःख एवं विरह को माना है—

दुख से पीउ जी मिलसी, सुखें न मिलिया कोय।
अपने धनी का मिलना, सो दुखै से होय।।

किरंतन, १८/२३६

दुख बिना न होए जागनी, जो करे कोट उपाए।

किरंतन, १८/१४

दुःख से विरह वेदना उत्पन्न होती है, विरह से प्रेम उपजता है और प्रेम के उदित होने पर निश्चय ही प्रभु मिलन होता है क्योंकि प्रेम ही परमात्मा है—

दुःख ते विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक।।

किरंतन, १८/१६

दुःख विरह की ज्वाला में तपकर निखरता है, कुंदन बन जाता है। दुःख से अहं विगलित हो जाता है। दुःख स्वप्नभंजक है जबकि सुख स्वप्न का पोषक है। दुःख से परमात्मा के विरह की अनुभूति होती है। यह अनुभूति ज्यों-ज्यों गहरी होती जाएगी, परमात्मा के प्रति आकर्षण उसके प्रति प्रेम, मिलन की प्यास उतनी ही गहन होगी। अंततः आत्मा-परमात्मा का तादात्म्य हो जाएगा और आत्मा प्रेम के शाश्वत लक्ष्य-परमानंद को प्राप्त करेगी। इसीलिए वे बार बार परमात्मा से मांग करते हैं —

प्रेम दरद इसक तुम्हारा, मैं फेर फेर मांगू फेर।
प्यारे मिलूं प्यारे पिउ सों, प्यारी महामत कहें बेर बेर।।

किरंतन, ६२/२०

'नारद भक्ति-सूत्र' में भी विरह को भक्ति का आवश्यक और प्रधान अंग माना गया है।[६८] भागवतकार ने 'रास पंचाध्यायी' में रास के बीच कृष्ण के अन्तर्धान होने की बात कही है, इसका उद्देश्य गोपियों को विरह देना था ताकि उनके मन में उत्पन्न कृष्ण प्रेम का गर्व नष्ट हो जाए।[६९] सूफ़ी साधकों की प्रेमभावना में भी विरह की पीर का सर्वोपरि स्थान है।[७०] वहाँ प्रेम का उग्र रूप और उसकी आत्मचुम्बी उत्तेजना है, ऊहा की अधिकता है। महामति ने सूफ़ियों के प्रेम तत्त्व को पुनः भारतीय प्रेम के रंग में रँग दिया है। 'नारद भक्ति-सूत्र' के समान[७१] उन्होंने भी गोपियों के प्रेम को आदर्श

६७. कलस हिन्दु०, प्र० ११ चौ० १०
६८. नारदभक्ति-सूत्र, सं० १६०
६९. श्रीमद्भागवत पुराण, १०/३०/३६
७०. तसव्वुफ़ और सूफ़ीमत, चंद्रबली पांडेय, पृ० १११, १२५
७१. नारद भक्ति-सूत्र, २१

माना है वह श्रीमद्भागवत् के गोपी प्रेम की सराहना वे अनेक स्थलों पर करते हैं —

यामें प्रेमलक्षन एक पार ब्रह्म सों, एक गोपियों ए रस पाया।
तब भव सागर भया गोपद बछ, विहंगम पैंडा बताया ।।

किरंतन, ३३/९

महामति वाङ्मय में विरह का महत्त्व ही नहीं, विरह के सुन्दर चित्र भी मिलते हैं। विरह का दुःख दारुण है। उनके शब्दों में —

विरहा न देवै बैठने, उठने भी न देय।
लोट पोट भी न कर सकै, हूक हूक स्वांस लेय।।

कलस हिन्दु०, ५/१०

जिस प्रकार मछली पानी के बिना दुःख झेलती है, तड़पती है उसी प्रकार परमात्मा के विरह में प्रेम प्रेमी आत्मा तरस रही है।[७२] पानी के बिना सूखे पाट पर गोता लगाते चोट खाते उसकी उमर बीत रही है।[७३] परमात्मा के बिना एक-एक पल एक-एक युग की भाँति प्रतीत होता है, काटे नहीं कटता—

तम बिना जे घड़ी गई, अमें जाण्या जुग अनेक।
ए दुःख मारो साथ जाणे, के जाणे जीव वसेक।।

रास, ४७/४

प्रिय के बिना उसे कुछ नहीं सुहाता। प्रिय का एक वचन सुनने को आत्मा दिन रात तड़प रही है—

पिया बिन कछुये न भावहीं, जानों कब सुनों पिया बैन।
जोलों पिउ मुझे न मिले, तो लों तलफत हौं दिन रैन ।।

कलस हिन्दु०, ४/६

आत्मा परमात्मा के बिना कटी हुई लता के समान हो गई है। अब उसके बिना रहा नहीं जाता। बार-बार हृदय भर आता है, वाणी अवरुद्ध हो जाती है और संसार अग्नि के समान जलाता है —

अब हम रह्यो न जावही, मूल मिलावे बिन।
हिरदे चढ़ चढ़ आवही, संसार लगत अगिन।।

किरंतन, ६३/४

परमधाम में परमात्मा से मिलन सुख को आत्मा संसार में आकर पूर्णतः विस्मृत कर बैठी है। बार-बार उस सुख को याद करती है किन्तु स्मरण नहीं आता। हृदय वीरान हो गया हैं।[७४] प्रिय के दर्शन मात्र को तरस रही महामति की आत्मा परमात्मा से विनती करती है —

हे मेरे आत्मा के स्वामी ! प्रियतम को देख सकूँ, इसका कुछ उपाय कीजिए—

पिरी पस्सण जीं थिए, से तूं ही डिए उपाय।

सिंधी, १/४८

---

७२. मेरे दुलहा ! ज्यों मीन बिछुरी जल थे, या गत जाने सोय।
विरहिणी बिलखै तलफै तारुणी, तारुणी तलफै कलपैं कामिनी। **कलस हिन्दु०,** ५/१०

७३. गोता खंदे बेई उमर, पट सूखे रे पाणी। **सिंधी,** १/४६

७४. सिंधी, प्र० १ चौ० ११-१४

विरह वर्णन में ऊहात्मकता — किन्हीं स्थलों पर महामति का विरह वर्णन सूफ़ियों के समान ऊहात्मक भी हो गया है। साधक की विरह दशा में मरणावस्था का चित्रण द्रष्टव्य है—

सब तन विरहें खाइया, गल गया लोहू मांस।
ना आवे अन्दर बाहिर, या विध सूकत स्वांस।।

कलस हिन्दु०, ५/२

विरहिणी के समस्त तन बदन में विरह की ज्वाला भभक रही है, उसमें अनेक लपटें उठ रही हैं जिसमें उसकी आत्मा धू धू कर जल रही है और वह तड़प रही है। प्रिय बिना उसे तनिक भी आराम नहीं —

आग लगी झालां उठियां, जीवरा जले रे मांहि।
तलफ तलफ मैं तलफूँ, पर ठंडक न दारु क्यांहि।।

प्रकाश हिन्दु०, ८/१३

विरह की मर्मान्तक पीड़ा में विरहिणी अपना तन तलवार से काट देने को तत्पर हो जाती है—

काटूं तन तलवार सों, भूक करुं हड्डियाँ तोर।
खलड़ी उतारुं पहिले उलटी, जीव काटूं यों जोर।।

प्रकाश हिन्दु०, ८/१६

प्रत्येक अंग-प्रत्यंग को काटकर उनमें मिर्च और नमक अगर भरा जाए तो प्रिय विरह की पीड़ा के समान वह पीड़ा नहीं हो सकती—

सब अंग काट चीरा करूँ, माहें भरूँ मिर्च और लून।
कई कोट बेर ऐसी करूँ, तो भी न छूटे ए खून।।

किरंतन, ४२/६

नागमति के विरह वर्णन में सूफ़ी कवि जायसी ने कहा है कि वह तो प्रियतम की माला जपते-जपते माला के सदृश क्षीण हो गई है।[७५] महामति विरह दशा में पड़ी आत्मा की तुलना हवन कुंड से करते हैं जिसमें उनके शरीर के सभी अंग सामग्री के रूपों में अर्पित किये जा रहे हैं।

हाड़ हुए सब लकड़ी, सिर श्रीफल विरह अगिन।
मांस मीज लोहू रगा, या विध होत हवन।।
ये दरद तेरा कठिन, भूषण लगे ज्यों दाग।
हेम हीरा सेज पसमी, अंग लगावें आग।।

कलस हिन्दु०, ५/३, ६

विरह की आँधी तो इतनी तीव्र और प्रबल होती है कि समस्त ब्रह्माण्ड को उड़ा देने की सामर्थ्य रखती है—

आंधी आई विरह की, तिन दियो ब्रह्माण्ड उड़ाय।
विरहिन गिरी सो उठ न सकी, मूल अंकूर रही भराय।। कलस हिन्दु०, ६/६

---

७५. हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भई सब ताँति।
रोंव रोंव ते धुनि उठे, कहौं तिथा केहि भाँति ।। जायसी ग्रंथावली, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ९५६

षटऋतु और बारहमासा वर्णन — विरह व्यंजना के लिए प्रकृति का माध्यम ग्रहण कर महामति ने परभाक्त विरह की स्वाभाविक व्यंजना की है। हिन्दी साहित्य में सूफ़ियों का षट्ऋतु और बारहमासी वर्णन प्रसिद्ध है। सूफ़ी जहाँ स्त्री मात्र के माध्यम से प्रत्येक ऋतु का मनोहारी वर्णन कर विरहिणी की व्याकुलता का मार्मिक वर्णन करते हैं वहाँ महामति किसी पात्र के माध्यम से नहीं अपितु स्वयं परमात्मा की प्रिय अंगना 'इन्द्रावती' के रूप में गोपी भाव से तीव्रानुभूति को अनुभव करते हैं। उनका षट्ऋतु और बारहमासी वर्णन ज्ञान विरह न होकर भाव विरह तथा प्रेम विरह से आप्लावित है। प्रेम विरह में आत्मा परमात्मा के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती है और सान्निध्य प्राप्ति में विलम्ब होने पर वह व्याकुल हो जाती है तब उसे प्रत्येक ऋतु में अनुभूत पूर्व सुखों की सुखद स्मृति होती है। वह उद्वेलित होकर विरह की प्रचंड अग्नि में तपकर कुन्दन के समान निर्मल हो जाती है और प्रभु से परम मिलन के अनन्त सुखों को प्राप्त करती है।

पीड़ा की चरम अनुभूति पौष माह के वर्णन में पाई जाती है जबकि शीत की अधिकता विरहिणी के लिए असह्य हो उठती है। महामति कहते हैं कि यह ऋतु मानों अब मेरे शरीर को चीरकर उसमें नमक भरना चाहती है—

वेरीडो अम ऊपर आवी ने झंपाव्यो।
हां रे मारुं चीरी अंग मीठड़े भराव्यो।।

षट्रुती, दूसरा भाग, बारहमासी ३/३

नेत्रों से शीतल जल निकल गया। अब रोते-रोते नेत्र अत्यन्त लाल अग्नि के समान हो गये हैं। नासिका और मुख से धौंकनी के समान गर्म श्वास निकल रहे हैं। इस प्रकार जलता हुआ यह जीव आपको पुकार रहा है—

जल ने सीतल नैणे वही गया, हवे अगिन थई अति जोर।
निस्वासा जेम धमण धमें, बलतो जीव करे रे बकोर।।

षटरुती, ४/५

बसन्त ऋतु के आगमन से वन के सभी वृक्षों में नये-नये अंकुर फूट पड़े हैं। अनेक रंग-बिरंगी लताएँ पेड़ों के गले लिपट गई हैं।[७६] इस मादक ऋतु के फाल्गुन मास में होली उत्सव परम सुहावना और आनन्दकारी होता है। विरहिणी की उत्कट अभिलाषा है कि ऐसे अवसर पर प्रियतम के निकट रहकर अबीर गुलाल से खेले तथा चोआ चंदन आदि सुगंधित वस्तुओं से प्रियतम को लाल कर दे।[७७] किन्तु प्रियतम नहीं मिले और ग्रीष्म ऋतु के अति उद्दीपक वातावरण में जबकि कोयल मधुर ध्वनि में पीउ-पीउ पुकार रही है और तोते आनंद क्रीड़ा में मग्न हैं, विरहिणी प्रिय वियोग में निरन्तर रोकर नेत्र लाल कर रही है।[७८] उसका शरीर काँप रहा है और प्रतिक्षण ठंडी साँस निकल रही हैं। नेत्रों से जल ऐसे बह रहा है मानों कोई अथाह जल झरना के सदृश उमड़ रहा हो।[७९] ग्रीष्म ऋतु में बादलों की गर्जना सुनकर मयूर आनन्द से नृत्य करते बोल रहे हैं, कोयल भी ध्वनि कर रही है जिसको सुनकर मेरी आत्मा (स्वयं महामति) प्रिय

---

७६. षटरुती, प्र. ५/५ चौ.
७७. वही, प्र. ५/१५ चौ.
७८. वही, प्र. ६/५ चौ.
७६. वही, प्र. ६/१० चौ.

बिना अत्यन्त विह्वल हो रही है।[८०]

एक-एक करके महीने बीतते चले जाते हैं किन्तु प्रियतम लौट कर नहीं आते। विरहिणी के नेत्र प्रियतम के दर्शन मात्र के लिए लालायित हो रहे हैं, कान उनकी मधुर वाणी सुनने को व्याकुल हैं और जिह्वा उनसे मधुर संलाप करने को उत्कंठित है।[८१] उसकी दशा अत्यन्त विषम हो उठी है। अपने प्राणों की अंतिम अवस्था का अनुभव कर भाव विह्वल हो महामति कह उठते हैं – हे धनी ! ऐसे समय में मुझे अतिशीघ्र दर्शन दो, नहीं तो जीवात्मा निकल जाएगी और केवल शरीर पड़ा रह जाएगा। बाद में आकर ख़बर लेने से क्या लाभ हो सकेगा?[८२] सूफ़ियों की विरहिणी जहाँ विरहाग्नि की अतिशयता से उन्मत्त होकर वन-वन विलाप करती फिरती है। उसकी यह विरहाग्नि इतनी भयानक है कि वह जिस पक्षी या वृक्ष के पास जाकर उसे अपनी विरह व्यथा सुनाती है वही जलकर भस्म हो जाता है।[८३] किन्तु महामति प्रिय वियोग में वन-वन नहीं घूमते। न ही वे तुलसी के समान वन के पशु पक्षियों से पूछते फिरते हैं –"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नैनी।[८४] उन्हें अपने प्रियतम पर दृढ़ विश्वास है तभी तो वे अधिकार से कह उठते हैं –

जो एक पग भर राखूं तूने, तो हूं इन्द्रवती नार।
दिन घणां तूं छपियो मोसूं, पण हवे नहिं छपी सके निरधार।।
हवे जेम नचवूं तेम नाचों रे वाला, आव्या इन्द्रावती ने हाथ।
ते वशीकरणनी दोरीए बाँधू, जेम देखे सघलो साथ।।

षट्रुती, ८/२६, २७

कितने दावे के साथ महामति की आत्मा अपने प्रियतम से कहती है कि आपको एक पैर पर खड़ा रखूंगी तभी मेरा नाम इन्द्रावती सार्थक होगा। तुम बहुत दिनों तक मुझसे छिप रहे थे जब निश्चय ही अधिक दिन नहीं छिप सकोगे। मैं तुमको जिस प्रकार नचाऊँगी, आप को नाचना पड़ेगा। वशीकरण रूपी जादू की डोरी से मैं तुमको ऐसे बाँध दूँगी जिससे समस्त सुन्दर साथ भी तुम्हारे साक्षात् दर्शन कर सकेंगे। यहाँ महामति का विरह वर्णन पद्‌मावती एवं गोपियों के विरह वर्णन से कुछ आगे बढ़ा दिखाई देता है। उसमें समष्टि सुख की कामना है।

प्रेम और मर्यादा – महामति ने भावातिरेक में भी मर्यादा का विशेष ध्यान रखा है। वे कहते हैं कि 'हे सखियो, अब और भी कठिन कसौटी है, उसे सहन करते जाओ। ध्यान रहे कि घर संसार का सारा लोग व्यवहार बना रहे। क्योंकि यदि हम लोक-व्यवहार से निन्दित होंगे तो प्रियतम को भी हमारे लिए निन्दित होना पड़ेगा। प्रियतम के वियोग का कष्ट हमारे ऊपर है, अपने हृदय की पीड़ा को कभी किसी के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए–

सखियो ! हवे घरड़ां सहुए संभारों रखे कोई वाला जी ने दोष देवराओ।।

---

८०. वही, प्र. १, चौ. ६
८१. वही, प्र. ३, चौ. ४
८२. षटरुती, प्र. ४ चौ. १४
८३. जेहि पंखी के नियर होई, कहै विरह की बात।
सोई पंखी जाई जरि, तखिर होइ निपात।। जायसी ग्रन्थावली, पृ० १५८
८४. तुलसीदास, रामचरित मानस, अरण्य कांड, दोहा ३०/६

ए विरह माहें न माहेज मारो सखियो, एतो नहीं घर बार उघाड़ो- हो श्याम।।
विशेष वली राखो घर लोकाचारी, हवे एवी कठण कसौटी खमो नारी।
ए विरह बीजा केने म देखाड़ो, सखियो विना रखे केने बार घाड़ो।

षटरुती, बारहमासी १५/१३, १६

कबीर प्रेम के अन्य सामाजिक नियंत्रणों तथा लोक मर्यादाओं के सम्बन्ध में मौन हैं, जायसी ने भी लोक मर्यादा की चर्चा नहीं उठाई है किन्तु इनमें मर्यादा की झलक अवश्य मिलती है। सामाजिक मर्यादा ओर लोक लाज के प्रति मीरा और सूर में क्रान्ति मिलती है। यह स्वच्छन्द प्रेम की प्रतिक्रिया ही है वैयक्तिक साधना में सूर अपने को गोपी मानकर कृष्ण से प्रेम विलास करते थे। महामति में प्रेम और मर्यादा (जो कि संयम का प्रतीक है) का सफल संगुंफन हुआ है जो कि अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रेम उभय पक्षी — महामति के अनुसार प्रेम एकांगी कभी नहीं हो सकता। आत्मा यदि परमात्मा से प्रेम करती है, उसके विरह में जलती है तो परमात्मा भी उससे कहीं अधिक प्रेम करते हैं। परमात्मा तो प्रेम स्वरूप ही हैं। वह भी अपने प्रेमी भक्त के बिना एक पल नहीं रह सकते—

हे मूं दिल डिंनी साहेदी, तूं मूं रे रहे न दम।

सिंधी, ७/१

रूहों मैं रे तुमारा आसिक, मैं सुख सदा तुमें चाहों ।
वास्ते तुमारे कै विध के, इसक अंग उपजाओं।।
मैं लिख्या है तुम को, जो एक करो मोहे साद।
तो दस बेर मैं जी जी कहूं, कर कर तुमें याद।।

सिनगार, २६/१, २३

गीता में भी श्री कृष्ण ने कहा है कि "जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, न कभी मैं उसकी आँखों से ओझल होता हूँ, और न कभी वह मेरी आँखों से औझल होता है।" [८५] ऐसे भक्त की वृत्ति, हृदय, भाव, सर्वस्व प्रेममय हो जाते हैं। उसे सब ओर प्रेम के ही दर्शन होते हैं और सकल विश्व उसके लिए प्रेममय, आनन्दमय एवं कल्याणमय बन जाता है। उसके वचन, कर्म, हाल और शरीर के नवों अंग परमात्मा के हाथ में हो जाते हैं —'अस्सां जा आंजे हत्थ में, कोल फेल जे हाल।' [८६] महामति का भक्त हृदय मात्र समर्पण कर सकता है

परमात्मा ही कृपा कर पर्दा हटा उठा देते हैं—

जिन दया ए परदा उड़ाइया, मैं फेर फेर मांगों सो मेहेर।
इसक दीजे मोहे अपना, जासों लगे बुजरगी जेहेर।।

किरंतन, ६२/१३

तब आत्मा अपने स्वरूप को एवं परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को अनुभव करती है। उस पर परमात्म-प्रेम का रंग पल-पल चढ़ता जाता है—

सुनियों बानी सुहागिनी, दीदार दिया पिया जब।

---

८५. यो मां पश्यति सर्वत सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। गीता ६/३०

८६. सिंधी, प्र० ३, चौ० ३०

अन्दर पर्दा उड़ गया, हुआ उजाला सब।।
कर पकर बैठाए के, आवेस दियो मोहि अंग।
ता दिन थे पसरी दया, पल पल चढ़ते रंग।।

कलस हिन्दु० यो ६/२, ४,

महामति और अन्य भक्ति सम्प्रदायों की प्रेमाभक्ति

महामति प्रेमाभक्ति या माधुर्य भक्ति के संयोग- वियोग दोनों पक्षों का वर्णन करते समय कहीं पर भी संयम भाव का परित्याग नहीं करते। उन्होंने प्रेम को अपने प्रेमास्पद के प्रति अत्यन्त 'दृढ़ व्यक्तिगत अनुराग' के रूप में प्रदर्शित किया है। प्रेम के रसमय आनन्द से सिक्त उनकी आत्मा प्रिय चरणों में अपना सब कुछ न्योछावर कर देने को लालायित है—

मैं मेरे धनी की, चरण की रेनु पर।
कोट बेर वारुँ अपना, टूक टूक जुदा कर।।
अंग अंग सब उलसत, कुरबानी कारण।
जरे जरे पर वार हूँ, ऐह जो बीच जरे राह इन।।
जिन दिश मेरा पीउ बसे, तिन दिस पर होउँ कुरबान।
रोम रोम नख सिख लों, वार डारूँ जीव सों प्राण।।

किरंतन, ९०/२४-२६

अन्य भक्ति सम्प्रदायों (निर्गुण और सगुण) में भी प्रेम तत्त्व एवं प्रेमाभक्ति को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। 'शांडिल्य भक्ति-सूत्र' और नारद भक्ति-सूत्र में भक्ति की साधना में प्रेम के पक्ष को ही प्रधान माना गया है। रामानुजाचार्य ओर मध्वाचार्य के लक्षणों में भी 'स्नेह' को पूरा समर्थन दिया गया है।

संत मत और महामति — संत भक्तों ने चारों ओर के वातावरण से इसी प्रेम तत्त्व को प्राप्त किया। निर्गुण भक्ति एकमात्र भक्ति के आश्रय से साधना पूर्ण ना कर सकी, उसे ज्ञान और योग का सहारा लेना पड़ा। प्रेम मार्ग में ज्ञान और योग का सहारा नहीं है वरन् ये तत्त्व प्रेम की स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुत रूप में नियोजित हैं। संतों की भक्ति ज्ञान प्रधान है और उसमें मर्यादा का भाव बना हुआ है। उनका प्रेम आनन्द-प्रेम जैसे है जिस पर दास्य की छाया गहरी प्रतीत होती है। कबीर की दुलहन यद्यपि कहीं कहीं प्रेम-भाव से सिक्त हो वाचाल हो उठती है परन्तु उनके परवर्ती संतों की प्रेम भक्ति भावना का विरह पक्ष अधिक मधुर और मादक है। वास्तव में संतों का प्रेम एकान्तिक रहस्योन्मुख है जबकि महामति की प्रेमभावना गोपियों के समान सीधी, सरल, निश्छल है।, उनकी प्रेमाभक्ति में एकांगिता के स्थापन पर समष्टिगतता है तथा मानव प्रेम की अभिव्यक्ति है।

सूफ़ी साधना और महामति— सूफ़ियों की प्रेममूलक साधना ने भारतीय चिन्तन धारा को प्रभावित अवश्य किया किन्तु दोनों के भक्ति तत्त्वों में पर्याप्त अन्तर रहा। भारतीय प्रेम मूलाभक्ति में माधुर्य भाव की प्रधानता है जबकि सूफ़ी भक्ति मादन भाव की है।[८७] एक मधुर कोमल मंद है तो दूसरा उन्मत्त, भीषण और उग्र। सूफ़ियों का प्रेम कहीं कहीं कामजनित प्रतीत होता है। महामति जिस ईश्वरीय प्रेम का निरूपण

---

८७. तसव्वुफ़ अथवा सूफी मत, चंद्रबली पांडेय, पृ० ११४

करते हैं वह शुद्ध माधुर्य जनित एवं एकनिष्ठ है। सूफ़ियों के समान उनके विरह वर्णन में भी कहीं-कहीं ऊहात्मकता आ गई है किन्तु अंततः उनका प्रेम भारतीय परम्परानुसार आध्यात्मिक प्रेम है। सूफी लौकिक सौन्दर्य से परम सौन्दर्य की ओर अग्रसर होते हैं जबकि महामति ने आदि से अंत तक उसी परम सौन्दर्य का निरूपण किया है।

कृष्ण भक्ति और महामति— मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य में उच्च कोटि के प्रेम की स्थापना मिलती है किन्तु उसका निर्वाह सामाजिक मर्यादा से नहीं हो पाया। परकीय प्रेम को स्थान मिलने के कारण इसका व्यावहारिक रूप शुद्ध अथवा पवित्र नहीं रह सका। डा. विजयेन्द्र स्नातक इसका मुख्य कारण लौकिक शृंगार भावना का समावेश मानते हैं।[८८] लौकिक प्रीति होने पर प्रेम में जड़त्व की संभावना होती है। महामति ने भगवद्विषयक अथवा भक्तिमूलक शृंगार का ऐसा मधुरतम विन्यास मर्यादा के आवेष्टन में प्रस्तुत किया है जो कि अन्यत्र दुर्लभ है। उसमे परकीय प्रेम को कहीं भी स्थान नहीं मिला। प्रेमाभक्ति की पवित्रता, गाम्भीर्य और उदात्त भावना उनके वाङ्मय में विद्यमान है। लौकिक शब्दावली में उस उदात्त प्रेम का वर्णन संभव नहीं—

अब कहूं रे इसक की बात। इस्क सब्दातीत साख्यात।
जो कदी आवे मिने सब्द। तो चौदे तबक करे रद।। परिक्रमा, १/१

वैष्णव सम्प्रदाओं में भक्ति की विभिन्न व्याख्याएँ और स्वरूप देखने में आते हैं किन्तु भक्ति के साथ अनेक विधि विधानों की संहिताएँ भी देखी जाती हैं। नवधा भक्ति वैष्णवों का प्रधान साधन है जिसके आधार पर इष्टदेव की विविध सेवा पद्धतियों का वहाँ निर्माण हुआ। महामति की भक्ति अपने उच्चतम रूप में केवल विशुद्ध प्रेम है। वह नवधा से अलग इन चौदह भवनों से दूर गोपियों के प्रेम-सा अनन्य प्रेम है। स्वयं महामति के शब्दों में—

तो नवधा से न्यारा कहया, चौदे भवन में नांहि।
सो प्रेम कहां से पाइए, जो रहत गोपिका मांहि।।

परिक्रमा, ३६/५

महामति को श्रीमद्भागवत और वल्लभाचार्य द्वारा की गई उसकी टीका में उस प्रेम का प्रकाश दिखाई दिया[८९] जिसका प्रसार उन्होंने अपने वाणी साहित्य में किया। उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति में किसी प्रकार के बाह्य कर्मकाण्ड (व्रत, पूजन, अर्चनादि) के लिए स्थान नहीं, वहाँ तो सर्वत्र प्रेम ही प्रेम है। यही उनके वाङ्मय का महावाक्य भी है—

प्रेमैं में भीगे रहिए, पीउ सो आनन्द घन।।

किरंतन, ३५/३२

महामति की प्रेम भावना विरहमूलक अधिक है। आचार्यों द्वारा निर्देशिक प्रेमभाव के सभी रूप उनके वाङ्मय में उपलब्ध हैं। वस्तुतः महामति की भक्ति सर्वत्र माधुर्य भावना से अनुप्रेरित रही है। यह माधुर्य भाव अपनी सभी विशिष्टताओं सहित संयोग वियोग दोनों पक्षों में मुखरित हुआ है। इसमें वियोग की तीव्रता अधिक परिलक्षित होती है।



---

८८. राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साधना, डा. विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ३४
८९. किरंतन, प्र० ११, १३, १४, १२०

महामतिः धर्मसंकट-त्राता

डा. रामबहाल तिवारी एम.ए., पी-एच.डी.
रीडर, बाङ्ला विभाग, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

हम भारत की सन्तान बड़भागी एवं गौरवशाली हैं। पर आज हम अपने को, अपने ऐतिह्य को, देश तथा देशहित को भूल बैठे हैं। देश की आत्मा की गहराई से विश्व-प्रेम, विश्व मैत्री तथा विश्व मंगल की जो वाणी ध्वनित हुई थी, उसे हम खो चुके हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'विश्वं भवत्येक नीडम्' 'विश्वे सर्वन्तु अमृतस्य पुत्राः' जैसी कुछ सीखें बस याद भर हैं। इसी से आपस में ही हम कट-मर रहे हैं। इस जीवन से उबरने के लिए हमें भारत को बारीकी से समझना तथा भारतीयता को अपनाना पड़ेगा। इस सन्दर्भ में हमें प्रमुख मार्ग दर्शन करा सकते है महामति प्राणनाथ। क्योंकि उनका जीवन ही उनकी वाणी या सीख है, जिससे हमारे जीवन का हर पहलू उजागर तथा समृद्ध हो सकता है। उनका प्रारंभिक जीवन हमारे जैसा ही था। ज्ञान की खोज, भगवत्साधना एवं मानव प्रेम से उनका अभिषेक हुआ।

मेहराज (१६१८ ई० - १६९४ ई०) का जन्म जामनगर गुजरात में हुआ था। अत्यन्त प्रतिभाशाली अन्तर्मुखी बालक ने बारह वर्ष की उम्र में निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्र जी (१५८१ - १६५५ ई०) से दीक्षा ली। गुरु के कहने पर वे अरब गये और वहाँ इस्लाम धर्म तथा संस्कृति को देखने परखने का भी अवसर मिला। कठिनाइयों को झेलते हुए वापस आ—जामनगर के दीवान बने। पर ईर्ष्यालुओं ने षड्यन्त्र कर जेल भिजवाया। जेल में आत्मा कराह उठी, श्रीकृष्ण प्रेम में लीन हो गये। अनुभव-अनुभूति ने देशकालोपयोगी सच्ची वाणी उभारी। जिसका प्रवाह आजीवन चलता रहा। औरंगज़ेब का शासन था, गिरा हुआ था मानव-मन का स्तर। धर्मान्धिता, छुआछूत, पर्दा, सती-दाह, आदि बहुत-सी सामाजिक दुर्बलताओं का बोलबाला था। हिन्दू मुसलमान सबके सब शुद्धधर्म को भूल अंधविश्वासों तथा घिसी-पिटी रूढ़ियों को लेकर मस्त थे। अतः उस संकट काल में पवित्र धर्म के स्वरूप तथा सन्मार्ग को प्रकट करना परम आवश्यक था, महामति ने देश तथा विश्व में जागरण लाने का व्रत लिया। सामाजिक, राजनैतिक तथा आध्यात्मिक क्रान्ति घटित कर मनुष्य को सर्वांगीण विकास का संकल्प दिया, देश से देशवासियों के दुःख-सुख भरे जीवन से भली भाँति परिचित होने के लिए उन्होंने देशाटन शुरू किया। धनी-दरिद्र, साधु-व्यवसायी, अच्छे-बुरे, संत-तस्कर, परोपकारी-चोर आदि सब तरह के लोगों के संपर्क में आये। उन्हे तरह-तरह के शारीरिक तथा मानसिक कष्ट झेलने पड़े, पर असलियत सामने आ गई। मानव-मंगल की भावना से उद्बुद्ध मनीषी साधक अज्ञेय पथ पर आगे बढ़े जो लोग उनके साथी बनने लगे, वे दिशा पाने लगे।

मानव मंगल यज्ञ रूपायित होने लगा।

महामति ने अंध कुसंस्कारों तथा कुरीतियों का खुलकर विरोध किया। चमत्कारी विद्या तथा करामातों के धनी यति-योगियों को ध्वस्त किया। जात-पात, ऊँच-नीच परक भेद-भाव फैलानेवाले अहंमना ब्राह्मण-मुसलमान आदि के मुखौटे खोल दिये। दुष्टमना ब्राह्मण को दुत्कार, शुद्धमना चाण्डाल को सिरमौर बनाया। मनुष्यता की परख के लिए आत्मा, विवेक तथा मन की शुद्धता पर बल दिया। कई दलों में बँटे हिन्दू-सम्प्रदायों ने देश में धाँधली मचा रखी थी। शोषण, अत्याचार, झगड़े आदि से वातावरण परिदूषित था। अनाचार बढ़ते जा रहे थे। हरिद्वार के कुंभ मेले में हिन्दू धर्म के सभी संप्रदायों के लोग साध-संत, महात्मा, मनीषी, योगी, पंडित आदि एकत्रित हुए। सबके समक्ष महामति ने व्यक्तिपूजा, मूर्तिपूजा तथा असंख्य देवताओं की पूजा आदि को असार बताते हुए, सबका बहिष्कार किया और महती सत्ता परब्रह्म परमात्मा की वन्दना को प्रतिष्ठित किया। एक ओर ब्राह्मण समाज तथा दूसरे और पूरे देश को एक डोर में बाँधने का यही उपाय रह गया था। अवसर देख राजा, शूरवीर नेता, पंडित-मूर्ख, सुभट-सूरमा कट्टरपंथी कर्मकांडी ब्राह्मण तथा मौलवी सभी अस्मिता से मुक्ति पाने के लिए व्याकुल हो उठे। वे सब महामति से मिलने लगे। सारे भेद-भावों को भुलाकर महामति ने सबको 'सुन्दर साथ' में सम्मिलित कर लिया प्रारंभ हुई। मानव मंगल-यज्ञ की परम प्रत्याशित जय यात्रा। जिसके मोतियों को पाने तथा अपनाने के लिए 'तारतम सागर' एवं बीतक ग्रंथों में गोता लगाना चाहिए।

महामति प्राणनाथ जी के जीवन-पगडंडी के इन संकेत सूत्रों से पता चलता है—मनुष्य में निहित प्रभुदत्त शक्ति, समयानुकूल वातावरण, सुअवसर, यथार्थ मार्गदर्शन और चर्चा या अभ्यास का सुयोग पाकर सम्पर्क रूप से विकसित हो उठती है। आवश्यक गुण, शक्ति तथा मानसिकता का अधिकारी बनकर मनुष्य सार्वजनिक मंगल साधन को ही जीवन का लक्ष्य मानकर, देश तथा जाति का हित करते हुए, महानता की ओर बढ़ने लगता है। अन्त तक उपकृत जनगण और भक्तों के हृदय में मनुष्य से महापुरुष, फिर देवता और भगवान की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। मानव-समाज के इतिहास में इसके प्रमाण भरे पड़े हैं यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं है। एक ऐसा ही अनमोल व्यक्तित्व है—मेहराज ठाकुर का महामति प्राणनाथ में ऊर्ध्वायन या आरोहण।

जीवन के हर पहलू को झेलकर गहराई से उसे पढ़कर महामति जी के समक्ष संसार की रक्षा, उन्नति तथा सुख-शान्ति समता के जो मार्ग उभर आये थे; उनमें सर्वाधिक महत्त्व रखती है सर्वसमन्वय की साधना और उसमें सर्वधर्म समन्वय की भावना अपनी सानी नहीं रखती।

महामति ने अपनी करुणाघन मैत्रीपूर्ण विदग्ध वाणी में विविध धर्मों की मूल बातों तथा व्यावहारिक स्तर पर उनके स्वरूप प्रांजल चित्रण किये हैं। सर्वधर्म समन्वय की भावना के कार्यान्वयन में जिनका जानना और मानना अनिवार्य है। धर्म जैसी किसी वस्तु को यथार्थतः अपनाकर अपनी जीवन नैया को चलाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। हम तो हाथोहाथ लाभ उठाना चाहते हैं। क्षणिकता को ही यथार्थ और श्रेय समझ, दूसरी ओर ध्यान ही नहीं देते। अतः हमारा लक्ष्य तथा तपस्या दूरअस्त रह जाती है। भ्रम के सुख में मग्न हो स्वयं को धन्य मानने लगते हैं। झूठ को ही सच समझ लेते हैं। इस तरह से धर्म के निचोड़ तक न जाकर, न पाकर भूले-भटके पथिक की भाँति धर्म के दिखावे में उलझे रह जाते हैं। यह बात किसी भी धर्म के अनुयायियों

के लिए काफ़ी हद तक कही जा सकती है। प्राणनाथ जी ने युगोचित सतर्कता तथा सजगता के साथ इस सन्दर्भ में हमें सचेत किया है। हममें से कुछ प्राणनाथ वाङ्मय को पढ़ते हैं, कुछ हद तक समझते भी हैं, पर तुरन्त भुला देते हैं। अतः कुलजम स्वरूप अध्ययन भी दिखावे के स्तर तक ही रह जाता है। फिर भी निराश होना अनावश्यक है। कारण मनुष्य पर विश्वास खोना अगर पाप है तो अपने ऊपर विश्वास खोना महापाप है। अतः अगर हम महामति जी की सीख को अपना सकें तो अब भी आशा है। प्राणनाथ ने मनुष्य के धार्मिक दिखावेपन के बड़े ही रोचक तथा प्रभावी चित्र उतारे हैं। ये चित्र तब के हैं, आज के हैं और साथ ही आगामी कल के भी हैं।

मानव तथा समाज-जीवन की शाश्वत, सर्वोच्च, गहन-व्यापक तथा सूक्ष्म अनुभूति का नाम है धर्म। इस अनुभूति का अंकुश ही मानव-जीवन तथा मानव समाज को नियंत्रित कर जीने का सही मार्ग दर्शाता है, जीवन के ध्येय तथा प्रेम की दिशा बताता है। तभी तो उदास वृक्षों एवं उत्कृष्ट गुणों के पुष्प खिलकर अपने सौरभ तथा प्रकाश से हमारे संस्कार, विधि-विधान और आत्मोत्कर्ष आदि को रोचक, गतिशील तथा सुव्यवस्थित करते हैं। फिर भी व्यावहारिक एवं सीमित दृष्टिकोण के कारण हम संकीर्णता, अकारण दृढ़ता और कट्टरता के दास बने रहते हैं। पारस्परिक द्वेष तथा वैमनस्यता हम पर हावी रहती है। बाह्याडम्बर ही प्रमुख अवलंबन बन बैठता है। भक्ति-प्रेम तथा धर्म के सही मार्ग से हटकर अपनी झूठी बड़ाई करने लगते हैं। भूल जाते हैं कि वास्तव में सभी धर्म एक ही परमात्मा से मिलाते हैं। परमात्मा ही मूल पुरुष है, सभी जीवन उसी के कण या अंश हैं। इसी सत्य से गिरकर हम मनमाने ढंग से सब कुछ देखना तथा दिखाना चाहते हैं। अतः 'पहले आप पहचानो रे साधो, पहले आप पहचानो !' और इसके लिए परमावश्यक है प्राणनाथ जी का मार्ग ग्रहण। उनकी वाणी को अपनाने तथा लेकर चलने से मूल पुरुष, परमात्मा के स्वरूपों और पूजा-पद्धतियों, आरोही या अवतारी पुरुषों, धर्म ग्रंथों तथा अन्त में सिद्धान्तों आदि में एकता झलक उठेगी। सब धर्मों में सर्वांगीण ऐक्य परखने के अधिकारी बन जायेंगे। इस तरह से अगर मानव समाज में आन्तरिक सुधार हो जाये, तो जीवन, जगत् और ब्रह्माण्ड सुखी व आनन्दमय एवं परस्पर प्रेम-प्रीति-सौहार्द्र तथा सहानुभूतिमय परम आत्मीयता का वातावरण साकार हो उठे।

अपनी मनोभूमि तैयार कर के हम अगर महामति जी की ओर बढ़ना चाहें, उन्हें अपनाना चाहें तो पहले ही हमें मानना पड़ेगा कि परब्रह्म परमात्मा ही पूर्णब्रह्म हैं। वह सबके लिए एक एवं अद्वितीय है। पर यहाँ तो अनेक देव-देवियाँ हैं, उनमें से कुछ परमेश्वर भी कहलाने लगे हैं। अतः उन्हें पाने के मार्ग भी बहुत-से निकल आये हैं। उपासकों ने अपने-अपने ज्ञान-ग्रंथ अलग कर रखे हैं और अपने शास्त्र को ही सर्वोत्तम कहते हैं। दूसरे को सहने या मानने के लिए तैयार नहीं। पर 'जितनी चाहें, उतनी राहें' —मान लेने से ही तो समस्या हल हो जाती है। अपना रास्ता तय करके कोई भी परब्रह्म तक पहुँच सकता है—

प्राणनाथ जी का सन्देश हैः—

पार ब्रह्म तो पूरन एक है, ए तो अनेक परमेश्वर कहावें।
अनेक पंथ सब्द सब जुदे-जुदे, सब कोई सास्त्र बोलावें।।

किरंतन, ६/६

अनेक परमेश्वर कहलाने पर भी मूल में पूर्णपरब्रह्म एक ही है। उसी तरह अनेकों

शास्त्र रहने पर भी मूलतः धर्म और शास्त्र एक ही हैं। क्षुद्र मति मनुष्यों ने नाना मतों को उपजाकर वेश-भूषा-भाषा आदि को महत्त्व देकर ईश्वर को नाना नाम दे रखे हैं। प्राणनाथ जी ने हमें समझाते हुए ठीक ही कहा है—

जुदे जुदे नामे गावहीं, जुदे-जुदे भेष अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।।

सनंध, ८१/७२

विभिन्न नामों से पुकारने से ही परमात्मा विभिन्न नहीं होते। नामों में भी समता है— एक ही ब्रह्म की द्योतना है—

नाम सारों जुदे धरें, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।

खुलासा, १२/३८

जो दूसरों के लिए अपने को न्यौछावर करता है, सबके हित में अपना हित खोजता है, अपने स्नेह-प्रेम, उपदेश आदि से मानव-मंगल में लीन रहता है, वही आरोही या अवतारी पुरुष कहलाता है। गहराई से देखने पर इन अवतारी पुरुषों में कोई अन्तर नहीं रहता। देश-काल-भाषा आदि में अन्तर रहते हुए भी सब एक ही पवित्र पूर्णात्मा के प्रकाश हैं। अगर हम इन अवतारी पुरुषों के प्रति गहरी श्रद्धा और समान आदर-भाव रख सकें तो उनके आविर्भाव के ध्येय को समझकर उसे साकार देख सकते हैं। एक ही विष्णु के ही चौबीस अवतार माने गये हैं—

अवतार चौबीस विष्णु के, वैंकुंठ थें आवे जायें।

कलश, १८/६०

दशों दिशाओं में फैले ज्ञान-ग्रंथों और मोह सागर को मथ कर पाँच रत्न मिले हैं। वे हैं—शुकदेव जी, सनकादिक मुनि, कबीरदास, सदाशिव, तथा विष्णु भगवान। महामति जी की भाषा में:—

ए दसों दिसा लोक चौदे के, विचार देखे वचन
मोह सागर मथ के, काढ़े पाँच रतन।।
पहले कहे मैं साथ को, इन पाँचों के नाम।
सुखदेव और सनकादिक, कबीर सिव भगवान।।

कलश, १८/६-७

गीता में तो भगवान ने अपने अवतार की बात स्वयं कही है। क़ुरान के अनुसार प्रत्येक युग में समय-समय पर परब्रह्म स्वामी ब्रह्मात्माओं के लिए संकेत भेजा करते हैं। प्राणनाथ जी कहते हैं—

हक पैग़ाम भेजत हैं, सो देत सोहदी कुरान।
दे साहेदी खुदा खुदाय की, सो खुदा ही करे बयान।।

खिलवत, ३/५२

भगवत्वचन के आशय को भगवान के श्रीमुख से ही भली-भाँति सुना और समझा जा सकता है। क़ुरान में तो यहाँ तक कहा गया है कि परमात्मा का आदेश पाकर और समझकर जब सभी संप्रदायों के लोग हृदय तथा तन-मन-धन से यकसां या एकाकार हो उठेंगे तो सारे संसार में एक ही सत्यधर्म की स्थापना होगी—

कह्या फिरके नाजीअ को, होसी हक की हिदायत।
सब फिरके इनमें आवसी, होसी एक दीन आखरत।।

खुलासा, ७/१६

वेद-उपनिषद् आदि की भाँति क़ुरान, इंजील, तौरेत और ज़बूर आदि में भी एक ही उद्देश्य से एक ही मूल धर्म या मानवीय आचरण-विधि का निर्देश दिया गया है। महामति ने सब में एकता परख कर हमें बताया है—

वेद–कतेब एक बतावहीं, पर पावे न कोई विवेक।
जो कछु कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।।

खुलासा, १२/४१

वेद और कतेब की वाणियों का मूल तो एक ही है। पर हम समझते नहीं और आपस में अज्ञानवश लड़ते-झगड़ते हैं। अलग रहने में ही अहं का आनन्द मिलता है। उसी में उलझे रहकर मूल आराध्य को भूल बैठते हैं—

यों लड़ के लोग जुदे हुए, पर खसम न होवे दोए।
रब्ब आलम का न टरे, जो सिर पटके कोए।।

खुलासा, १३/८३

अतः अगर हम भलमनसाहत से उदार दृष्टिकोण अपनाकर सारे धर्मग्रंथों को पढ़ें तो सबमें एक ही पूर्णब्रह्म दिखाई देंगे। भगवतोपासना को भी लोगों ने अपने अपने रंगों में रँग कर दिखाने की कोशिश की है। अतः उपासना-विधियों में भी अन्तर आ गया है। पर बाहरी भेद रहते हुए भी उनमें साम्य है, एकता है। उपासना में सबसे बड़ी वस्तु है प्रेम या प्रेमतत्त्व। समस्त धर्मों की ईश्वरोपासना विशुद्ध हृदय-वृत्ति या प्रेम पर आधारित है—

इसक बड़ा रे सबन में, ना कोई इसक समान।
एक तेरे इसक बिना, उड़ गई सब जहान।।

कलश हि०, ६/६

अतः प्रेम को समझना, अपनाना और उसी के प्रकाश में सत्य की खोज करना हर धर्मार्थी का लक्ष्य होना चाहिए। प्रेम में पगी मानसिकता ही वातावरण को उपयोगी बनाकर अज्ञान-अंधकार का नाश तथा ज्ञान-प्रकाश की प्रतिष्ठा में सहायक होती है। 'छोटा कयामतनामा' में पाते हैं :—

जुदी जुदी जातें कहावहीं, फैल करते जुदे नाम धर।
सो रात भेट के दिन किया, हुई जाहेर सबों फजर।।

छोटा, क० १/७३

सत्य की खोज अज्ञान के अँधेरे में नहीं, ज्ञान के प्रकाश से ही संभव है। धर्म संसार की विविधता में एकता है। यद्यपि बाहरी भेद-भाव के कारण धार्मिक सिद्धान्तों में भी अन्तर दीखने लगता है। पर यथार्थ साधक इस बाहरी अलगाव के भुलावे में नहीं आता। महामति ने गहन साधना से धर्मों के महान सत्य को पाया है और हमें उपहार दिया है। वह धर्म संकीर्णता मिटाकर सबको एक करता है और सबको परब्रह्म परमेश्वर अद्वैत सत्ता के समीप ले जाता है—

जेते कोई फिरके कहे, सब छोड़ देसी कुफर।
आवसी दीन इस्लाम में, दिल साफ होय किर।।

खुलासा, १०/७५

मनुष्य सत्य संधानी या उत्साही होकर भी मार्ग-ज्ञान के अभाव से आगे नहीं बढ़ सकता। आवश्यकता पड़ती है सद्गुरु की, जो यथार्थ मार्ग दर्शाते हैं उनकी सहायता से ही जीवन के हर क्षण को सफल तथा उपयोगी बनाया जा सकता है—

सत गुरु सोई जो आप चिन्हावे, माया धनी और घर।
सब चीन्ह परे आखर की, ज्यों भूलिये नहीं अवसर।।

किरंतन,१५/११

इस तरह महामति प्राणनाथ ने कर्मकांड तथा धर्म के मूल तत्त्वों एवं लक्षणों में समानता की खोज हमारे लिए प्रस्तुत की है। उन्होंने असत्य, पर-पीड़न, चोरी, बेईमानी, अविचार-व्यभिचार आदि दुर्गुणों से बचकर, स्वाध्याय, न्याय, क्षमा, दया, प्रेम-प्रीति सहभागिता एवं सहानुभूति आदि सदुगुणों को अपनाकर, उन्हें ज़िन्दगी के अंग बनाकर चलने और श्रेष्ठ मानव बनने का सन्मार्ग दिखाया है। जीवन की वास्तविकता को मानकर, अनदेखी करके नहीं, उसके ऊपर उठने की सलाह दी है। सभी धर्म, सभी धर्मग्रंथ, सभी महापुरुष तथा सभी पवित्र स्थानों के प्रति आदर भाव, आपस में प्रेम-मैत्री आदि बनाये रखने की सीख देनी ही सच्चे धर्म की विशेषता है। अगर इसी धर्म-बोध ने हमें संचालित किया होता, हम इसे अपना सके होते तो आज संसार का रंग-रूप कुछ और ही होता। सर्वधर्म समन्वय तथा सत्यधर्म के स्पर्श से हमारी जीवन-चर्चा का क्षेत्र सुन्दर, मनोरम तथा हरियाली से लहराता नज़र आता पर हाय हम महामति को पाकर भी उन्हें अपना नहीं सके। उनकी राह पर चलकर अपने को उबार नहीं सके। हमने धर्म को भूल धर्मतन्त्र को अपनाया है। धर्म का दिखावा हम पर हावी है। तभी तो आज हमारी यह दयनीय अवस्था हुई है। इस शोचनीय परिस्थिति के पीछे सच्चाई क्या है, कारण क्या हैं, इनकी ओर संकेत करते हुए प्राणनाथ जी ने हमें बहुत पहले सजग किया था। फिर भी, वे अपनी वाणी किसी पर थोपना नहीं चाहते। वे कहते हैं—

ए माथे लेसे तेणे कहूँ छूँ, बीजा मां करजो दुख।
तमे तमारी माया मांहे, सहेजे भोगवजो सुख।।

किरंतन, १२६/३६

—मेरी वाणी जिन्हे रुचे, वही अपनायें। औरों को दुखी होने की ज़रूरत नहीं। जो माया के फन्दे में ही सानन्द हैं, वे उसी प्रकार सहज सुख भोगते रहें। उनके अनुसार 'चालाकी से कोई महती सिद्धि नहीं मिलती।' परमपिता को ठगा नहीं जा सकता। वह सब कुछ देख तथा सुन रहा है। मन में विकार रख वेशभूषा से साधु बनने से क्या लाभ ? पर मनुष्य उधर ही लुढ़का हुआ है! उसी में चरितार्थता ढूँढ़ता है। प्राणनाथ जी कहते हैं—

धनी न जाए किनको धूत्यो, जो कीजे अनेक धुतार।
तुम चेहेन ऊपर के कै करो, पर छूटे न क्यों ए विकार।।

किरंतन, १५/१

एक और अभिन्न परम सत्ता की पहचान न रहने के कारण भक्त मनमाने ढंग से,उनकी कथा कहते हैं। यहाँ तक कि अत्यल्प शास्त्र ज्ञान से परम ज्ञानी बन अपने भयंकर वचनों से वाग्-वितंडा खड़ा कर आपस में लड़ते-झगड़ते हैं—

कोई कहे पारब्रह्म बड़ा, कोई कहे पुरुषोत्तम।
वेद के वाद अंधकारे, करे लड़ाई सब धरम।।

सनंध, १५/१७

हमारी दृष्टि बाहरी वर्ण तथा वेश-भूषा में उलझी हुई है, भीतर जाने की फ़ुरसत कहाँ? कटे-बँटे इनलोगों में भी कोई 'ऊँच' तो कोई 'नीच' है। इसी तरह हम मूल सत्ता या सत्य से विमुख और दूर होकर कुमार्गी तथा दुष्कर्मी बनते जा रहे हैं। लेकिन ऐसा कब तक चलता रहेगा—

हवे वरण वेख थया जुजवा, एक उत्तम मधम।
वस्त खरी थी विमुख थया, पछे चलवे वे अधमा अधम।।

किरंतन, १२६/१८

मनुष्य के लिए आत्मा की पहचान परम आवश्यक है। जटाजूट बढ़ाने या केश मुड़वाने तथा बाल नुचवाने जैसे प्रपंच और वेश-भूषा से कुछ नहीं बनता-बिगड़ता पर गूदे को छोड़ वोकले से ही हम सन्तुष्ट हैं—

कोई बढ़ाओ कोई मुड़ाओं, कोई खेंच काढ़ो केस।
जो लों आत्म न ओलखे, कहा होए धरे बहु भेस।।

किरंतन, १५/२

प्रपंची-पाखंडी जन शास्त्र न पढ़ सकते हैं न समझ सकते हैं। फिर भी नाना मतों को अपनाने के अंहकार में डूबे रहते हैं। न वे स्वयं को पहचानते हैं, न अपने घर को। बेचारे अस्पष्ट ज्ञान के अँधेरे में हाथ-पाँव पटकते रह जाते हैं। दुष्ट कुकर्मी को तो 'नरक' में जाना ही है, पर जो साधु बन कर कुकर्म करते हैं, उनका क्या होगा ? उन्हें तो 'नरक' में भी स्थान नहीं मिलेगा।

दुष्ट थई अवगुण करे, ते जई जम पुरी रोय।
पण साध भई कुकरम करे, तेनू ठाम न देखूँ कोय।।

किरंतन, १२८/७

बाहरी शुद्धि से वैष्णव पर अन्धकाराच्छन्न हृदय वालों के लिए ये सारी बातें बेकार हैं। ऐसे भक्त उन धूर्त धोखेबाज़ों-से हैं, जो कौड़ीहीन होते हुए भी धनवान कहलाते हैं—

माँहें अंधरे और वैष्णव कहावो, ए तो बातें सब फोक।
ज्यों धूर्त नाम घरावे धनवंत, पासे नहीं दमड़ी रोक।।

किरंतन १३/१०

जो एक तरफ़ पूजा-उपासना आदि में मस्त रहते दीखते हैं और दूसरी ओर कुकर्मों से दूसरों को क्षति पहुँचाते हैं। उन्हें अन्त तक क्या सज़ा मिलेगी, कहाँ भेजे जायेंगे—कहना मुश्किल है। लेकिन वे तो बड़ी निश्चिन्तता से धोखाधड़ी चलाते हैं—कितने अबोध हैं सब?

बाहरे देखावें बंदगी, माहें करे कुकरम काम।
महामत पूछें ब्रह्मसृष्टि को, ए वैकुंठ जासी के धाम।।

किरंतन, १०५/१४

इसी तरह कतेब-क़ुरान आदि पढ़नेवाले मुल्ला 'आगेवान' बनते हैं— लेकिन उनमें कूट-कूट कर अहंकार भरा रहता है। क़ुरानी या क़ुरान के जानकार होने के नाते वे दूसरों को छोटी नज़रों से देखते हैं। अपनी कमी को नहीं समझते और दूसरों को 'काफ़िर' कहते हैं। दुर्गुणों की खान होते हुए भी सच्चा मुसलमान बनने का दावा करते हैं—

कुफर न काढ़े आपको, और देखें सब कुफरान।
अपना अवगुन न देख हीं, कहें हम मुसलमान।।
संनध, ४०/४३

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' सिद्धान्त के अनुयायियों को मार कर दबाव डालकर विधर्मी बनाकर धर्म कमाने का गर्व करते हैं कुछ लोग। दूसरे को दुख देकर रुलाकर क्या पुण्य कमाया जा सकता है ? पर उन्हें कौन समझाये ?

ओराजी एक भेष में, ताय मार छुड़ावे दाब।
ओ रोवे सिर पीट हीं, ए कहें हमें होत सवाब।।
सनंध, ४०/८

धर्म से बाह्य संपर्क रखनेवाले अपने धार्मिक दिखावे को बुलन्द करने के लिए मन्दिर-मसजिद आदि पवित्र स्थलों का भी विनाश करते नहीं हिचकिचाते। इस दुष्कर्म में भी उन्हें अघोरी तृप्ति मिलती है। सदियों से बने संस्कृति के धारक हिन्दुओं के पवित्र मन्दिर तथा मुसलमानों की मसजिदें ज़बरदस्ती ढहवा दी जाती हैं। प्राणनाथ जी ने इस अमानवीय कार्य के लिए हमारे देश के हिन्दू और मुसलमान दोनों को धिक्कारा है। आपसी प्रेम तथा सूझ-बूझ के अभाव से ही ऐसा होता है। उदारता-सहिष्णुता के रंक ही ऐसी मूढ़ता कर दिखाते हैं और पुण्य के नाम पर पाप कमाते हैं। महामति जी की वाणी से खींचे गये दो-एक चित्र देखिए—

चित दे एक चुनावहीं, हिन्दू जो आद के आद।
सो जोरा कर ढहावहीं, कहें हमें होत सवाब।।

हिन्दू मसीताँ ढहावहीं, मुसलमान सों वाद।
दे सोभा इस्टदीन को, कहे हमें होत सवाब।।

सुध इस्ट न दीन की, मोह माते उनमाद।
ज्यों-ज्यों वैर बढ़ावहीं, कहें हमें होत सवाब।।
सनंध, ४०/१८-२०

इन पाखंडियों को न इष्ट का पता है, न दीन का। मोह और अंहकार में रच-पच कर वे मूढ़ पागलों-सा आचरण करते हैं। वे सोचते हैं ऐसी वैर एवं विनाश बुद्धि से उनके पुण्य का कोष भरता जा रहा है ऐसे लोग अपकर्म में ही मग्न रहते हैं। अल्लाह या परमात्मा से नहीं डरते, मनमाने ढंग से चलते हैं, अपनी बातों को 'नबी' या गुरु की सीख कहकर लोगों को गुमराह करते हैं। फुर्मान या क़ुरान में लिखा है कुछ और ये बतलाते हैं कुछ। मूल से हटकर तरह-तरह के खेल रचाते हैं—

बदी न छोड़ें एक पल, डर न रखें सुभान।
फैल करें चित चाहते, कहें हम मुसलमान।।
राह बतावें दुनी को, कहें ए नबिएं कहेल।
लिख्या और फुरमान में, ए खेलें औरै खेले।।
सनंध, ४०/४५, ४६

अज्ञान के कारण नाना गुटों में बँटे लोग मानो विरोध और लड़ाई के लिए ही जीते हैं। उनमें आसुरिक वृत्ति का प्रकोप प्रभुत्व करता है। पशु-पक्षी, साधु-संत, छोटा-बड़ा कोई उनसे बच नहीं पाता। किसी की सुनवाई नहीं होती; उनकी उन्मत्तता न देखी जाती है, न सुनी जाती है—

कहावें धर्म पंथ रे लड़ें माहें वैर, अंग असुराई को अधिकार।
पसू पंखी साध न छूटे काहूँ, पुकार न काहू बहार।।
किरंतन, ५३/३

प्रकृत्या धार्मिक तो वे हैं जो छोटे-बड़े सब पर समदृष्टि तथा समस्नेह रखते हैं। सब जीवों का स्वामी एक है और सबमें विराजमान है—यह भी मानते हैं। महामति जी के अनुसार—

पर सवाब तो तिनको होवहीं, छोटा-बड़ा जो जीव।
एकै नजरों देख हीं, सबका खाविन्द पीव।।
सनंध, ४०/२३

'मान रे अज्ञानी, मैं सबसे बड़ा ज्ञानी' प्रचार करनेवाले तर्क-तकरार, वाद-विवाद करते हुए दूसरों की निन्दा करते हैं। ज्ञान की बात उठी तो अपना ही गुणगान छेड़ देते हैं। फलतः अकारण हल्ला-गुल्ला लगा रहता है—

रबद करे औरों को निंदे, आप को आप बढ़ावें।
ग्यान कथें गुन गायें आपके, हो होकार मचावें।।
किरंतन, ७/८

प्रभु के राज्य में देर है पर अँधेर नहीं। बेहद की राह पर कपटता नहीं चलती। कुछ भी छिपाव या दुराव नहीं है। इस विश्वास से आगे बढ़नेवाला ही प्रभु का प्रियपात्र बनता है—

बेहद बाटें रे कपट चाले नहीं, राखे नहीं रजमात्र।
जे ने आवो रे ते तो पहले आगमी, पछे ने करूँ प्रेम ना पात्र।।
किरंतन, ६७/८

ऐसी परिस्थिति में अगर हम धर्म के दिखावे से बचकर सच्चाई से आगे बढ़ें, शास्त्रानुशासन समझें और मानें तो मनुष्य बन सकते हैं। परमात्मा को पा सकते हैं। पाया हुआ सत्य हृदय में छिपा रखने की अनमोल सामग्री है—

सत चाहो तो सबदा चीन्हों, ओ आप न देवे देखाई।
जिन पाया तिन माहें समाया, राखत जोर छिपाई।।
किरंतन, ६/८

महामनीषियों के दर्शाये ऐसे सहज-सरल-सुगम मार्ग सामने रहते हुए भी आज हमारी क्या दुरावस्था है ! क्षणिक मस्ती और अहंकार में चूर होकर हम कुछ देखना ही नहीं चाहते। दीवाने महामति का सुझाव जो नहीं मानेगा, उस बेचारे को अन्त तक पछताना पड़ेगा। पलभर की मस्ती का क्या ठिकाना ?

अब तो कछुए न देखत मद में, पर ए मद है पलमात्र।
महामत दीवाने को कहा न माने, सो पीछे करसी पछताप।
किरंतन, २०/१९

आज हम जिस धर्म-संकट से गुज़र रहे हैं, उसके स्वरूप, कारण और कुफलों को चित्रित कर रखा है दूरदर्शी महामति प्राणनाथ ने। उनके तारतम सागर में ऐसी वाणी-मुक्ताएँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें पाकर तथा अपनाकर हम इस संकट से हमेशा के लिए उबर सकते हैं। अपने समय में उन्होंने साधना तथा साहित्य-संस्कृति के प्रकाश से देश का अंधकार मिटाया था। उनके पंथ को अपनाकर, उनके उपदेश को मानकर

हम सफलता पा सकते हैं। 'नान्य पंथा विद्यते अयनाय।' इस पूत तथा महान कार्य में व्रती होने तथा सफलता पाने के लिए हम 'गंगाजल से ही गंगापूजा' की भाँति महामति के शब्दों में ही उनकी स्तुतिकर, अपना श्रद्धार्घ्य समर्पित कर परम मंगलमय का शुभ आशीर्वाद एवं प्रार्थना कर सकते हैं—

तुम हो हमारे धनी, तो पूरी आसा लाख गुनी।
इन्द्रावती चरनो लागे, कृपा करो तो जागी जाने।।

प्रकाश, १८/६

हे सतगुरु! आप ही हमारे स्वामी हैं, नेता हैं, रक्षक तथा मोक्षक हैं। हमारी आशा-अभिलाषाओं को लाख गुणा करके पूर्ण कर रहे हैं। भारत की जनता 'इन्द्रावती' की भाँति आपके चरणों में आत्मसमर्पण करती है। आपकी कृपा से ही भारतवासियों का प्राणपण से जागना और आगे रहना संभव हो सकता है।

महामति ने प्रभु के चरणों में जिस तरह 'इन्द्रावती' के रूप में आत्मसमर्पण किया था उसी प्रकार धन-मान-यश-प्रतिष्ठा-प्रतिपत्ति सब कुछ भूल कर हमें भी आगे बढ़ना चाहिए। अहंशून्य होकर आत्म समर्पण का पाठ पढ़ना चाहिए। तभी जाकर हम यथार्थ साधना में व्रती एवं सेवक बन पायेंगे। इसके लिए चाहिए सद्गुरु तथा मूल पुरुष का सस्नेह आशीष।

हमारे व्रत तथा सेवा के क्षण विलंबित न हों—यही प्रभु से एकान्त प्रार्थना है। आस्था अडिग रही तो सफलता दूर नहीं रह सकती।

प्रणामी साहित्य की विपुल निधि

डा. नरेश पंड्या

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुरुकुल महिला महाविद्यालय, पोरबन्दर, गुजरात

भारत के धार्मिक इतिहास में महामति प्राणनाथ की विचारधारा और प्रणामी सम्प्रदाय ने अपनी विलक्षणता के कारण अलग स्थान बना लिया है। प्राणनाथ जी ने बचपन से ही भ्रमण का कार्य शुरू किया था और वयस्क होने पर गुरु आदेश से विविध भाषा-भाषी प्रजा समुदाय में जाने का अवसर मिला। अपने संपर्क से उन्होंने जनमानस के मानसिक क्षितिज को विस्तृत एवं अनुभव धरातल को उन्नत बनाते हुए विभिन्न सिद्धों और अवतारी पुरुषों के अनुभवों को आत्मसात् करने का आग्रह किया। उनकी इस अनुभवजन्य मिश्रित विचारधारा में अपनी एक मौलिकता का माधुर्य है। उनकी समन्वयवादी निष्ठापूर्ण प्रवृत्ति ने तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और सफलता पाई। उनके अहिंसावादी और मानवतावादी विचारों के लिए पारिवारिक संस्कार और परिवेश भी कारणरूप तत्त्व रहे। अपने धर्ममत की अभिव्यक्ति में भी वे अपने राष्ट्र और मनुष्यों को नहीं भूले बल्कि सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिकता को जीवित रखने का निष्ठापूर्ण प्रयत्न वे जीवन भर करते रहे।

तत्कालीन विषाक्त समाज को उन्होंने अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति से शुद्ध एवं प्रेमपूर्ण बनाना चाहा उनके उदारतापूर्ण विचारों को तत्कालीन समाज ने महत्त्वपूर्ण समझा और उनके विचारों को ग्रहण किया। उनकी समन्वयवादी विचारधारा को लोगों ने उत्साह से स्वीकृत किया। इसका प्रमाण यही है कि जामनगर से सूरत या सूरत से दिल्ली-पन्ना तक की यात्रा में हज़ारों की संख्या में लोग घर-बार त्याग कर उनके संग हो लिये। उन्होंने समाज के अंग स्वरूप मनुष्य को महानता की ओर समभाव सहअस्तित्व का मूल्यवान उपदेश देकर समाज को निर्मल एवं गतिशील बनाने का प्रयत्न किया।

महामति का वाणी संग्रह 'कुलजम स्वरूप' — तारतम वाणी के सोलह ग्रंथों की १८, ७५८ चौपाइयों में संकलित है। उनके साथ एक प्रबुद्ध जागरूक विद्वन्मंडली थी, जो उनके विचारों को अपनी भाषा में ढालकर विपुल साहित्य का सृजन कर रही थी। साहित्य ही नहीं, संगीत के क्षेत्र में उनका पर्याप्त सहयोग रहा। उनकी वाणियों को पूरे साज-बाज और राग-रागिनियों के साथ प्रस्तुत किया जाता था। उनके पट्टशिष्य मुकुन्द स्वामी संगीतमय काव्य-रचना के कारण 'नवरंग स्वामी' के नाम से ख्यात हुए। परवर्ती काल में भी प्रणामी समाज और संप्रदाय में इस परंपरा के संतों और विद्वानों का साहित्य सृजन में अपूर्व योगदान बना रहा।

प्रणामी साहित्य-निधि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. प्राणनाथ-पूर्व और प्राणनाथ साहित्य

२. प्राणनाथ-परवर्ती साहित्य

श्री देवचन्द्र, प्राणनाथ के गुरु के काल से जो मौखिक प्रवचन या अध्यात्मिक चर्चा होती रही, उसे लिपिबद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया। लिपिबद्ध करने की परम्परा श्री प्राणनाथ और उनके भाइयों सहित उनके अनुयायियों से शुरू हुई। इतना स्पष्ट है कि प्राणनाथ से ही अपनी साहित्य-निधि में सम्प्रदाय को निश्चित स्वरूप और दिशा मिली, जो महामति प्राणनाथ की उच्चरित वाणी के लिपिबद्ध होने से प्रारंभ हुई।

१. प्राणनाथ पूर्व और प्राणनाथ साहित्य

(क) गुरु देवचन्द जी द्वारा लिखित मूल तारतगवाणी

आज तक यही माना जा रहा है कि स्वामी प्राणनाथ से पूर्व प्रणामी सम्प्रदाय में कोई साहित्य नहीं लिखा गया। जब कभी प्रणामी सम्प्रदाय के साहित्य पर विचार होता है या किया गया है तो प्राणनाथ स्वामी या लालदास या नवरंग के नामों का संदर्भ ही लिया जाता है। इतना स्पष्ट है कि प्राणनाथ ने अपनी साहित्य निधि से सम्प्रदाय को निश्चित स्वरूप दिया। लेकिन उनसे पूर्व गुरु देवचन्द्र जी ने जो कुछ भी कहा, उसे महामति प्राणनाथ ने अपनी वाणी में उतारा। लिखने की परम्परा श्री प्राणनाथ के भाई ऊधव जी से शुरू हुई। उन्होंने सर्वप्रथम जेल की दीवारों पर कोयले से वाणी को लिखा। बाद में काग़ज़ पर उतारा। श्री प्राणनाथ के शिष्य वाणी को अवतरण के समय ही उतार लेते थे। देवचन्द्र जी मूल तारतम प्रणीत होना स्वाभाविक है, क्योंकि उन्हीं के उपदेशों का विस्तार प्राणनाथ ने 'कुलजम स्वरूप' में किया। कहा जाता है कि गुरु देवचन्द्र जी के कृष्णदर्शन का वर्णन ही मूल तारतम में हुआ है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार आश्विन कृष्ण चतुर्दशी सं० १६७८ के दिन उनको जामनगर के श्यामसुन्दर जी के मंदिर में ऐसा प्रतीत हुआ है कि एक महान अद्‌भूत तेजपुञ्ज उनके सामने उपस्थित है। कृष्ण के इस मूल स्वरूप ने इस प्रकार दर्शन दिया और बाद में कृष्ण देवचन्द्रजी के बीच ब्रह्म आदि के बारे में चर्चा हुई। अर्थात् तारतम की मूलवाणी सं० १६७८ के बाद ही कभी लिखी गई होगी।

(ख) स्वामी प्राणनाथ की जोशवाणी

'रास' नामक ग्रंथ का प्रारम्भ 'हवे मोहजलनी कहूँ बात' से होता है। यह मोहजल ही माया है, जो चारों ओर व्याप्त है। देवी-देवता तक इसके प्रलोभन में आने से न बचे। अतः प्रभु की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है। तदनन्तर प्रभु से वे प्रार्थना करते है कि कृपा करके हमारी बाँह पकड़कर हमें निकाल लीजिये। प्रार्थना के उपरान्त वे अपने आपको भी चेतावनी देते है और अन्ततः गोपियों के आदर्श को अपने सामने रखते हैं। श्री कृष्ण की बालक्रीड़ा, रासलीला, रासमंडल, अंतर्ध्यान लीला, भोग आदि का वे वर्णन करते हैं। ब्रज और रास की लीलाओं का वर्णन कर पूर्व स्मृति की जागृति एवं जगत के मोह-अज्ञान में विस्मृत आत्माओं को अपने आत्मस्वरूप और आनंद का ज्ञानानुभव कराना ही रास का मुख्य लक्ष्य है।

'प्रकाश हिन्दुस्तानी' और प्रकाश गुजराती में कतिपय चौपाइयों का ही अंतर है। प्रारंभ में श्रीप्राणनाथ की वाणी का अवतरण गुजराती भाषा में ही हुआ। तदुपरांत हिन्दी

भाषा-भाषी प्रदेशों में भ्रमण करते हुए उन्होंने प्रकाश और कलश ग्रंथ का हिन्दी रूपान्तरण स्वयं ही कर दिया।

'प्रकाश' (गुजराती) ग्रंथ में ब्रज और रासलीला के रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है और साम्प्रदायिक दर्शन के अनुसार तामस प्रकृति या ब्रह्मांगनाओं की इच्छापूर्ति हेतु जो तीन बार ब्रह्मलीला इस ब्रह्माण्ड में हुई है, उनमें एकसूत्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। सांसारिक माया के आवरण से ढँकी हुई आत्माओं को आत्मजागृति का ज्ञान देना ही इसका मुख्य भाव है। इस ग्रन्थ के प्रारंभ में ही कहा गया है कि, हे ब्रह्मांगनाओ ! तुम सब प्रथम बार दिव्य ब्रह्मधाम से इस मायापूर्ण जगत के दुःखों को देखने आयी थीं। अतः ब्रज और रासलीला खेलकर अनन्य प्रेममार्ग द्वारा पुनः स्वधाम को प्राप्त किया था। परन्तु उस समय दुःखानुभूति की जो इच्छा शेष रह गई थी उसकी पूर्ति के लिए परमेश्वर ने अनन्य कृपा से इस तृतीय ब्रह्मांड की रचना की और तीसरी बार ब्रह्मलीला अवतरित हुई। लेकिन कालमाया के समान इस समय भी ब्रह्मांगनाओं को माया की नींद ने इतना मदहोश कर दिया कि गुरु देवचन्द जी के बार-बार सावधान करने पर भी घोर निद्रा का प्रभाव कम नहीं हुआ। अतः गुरु प्राणनाथ के हृदय में अंतर्धान होकर तारतम ब्रह्मवाणी का दिव्य प्रकाश देकर आत्माओं को माया के अंधकार से ऊपर उठाकर परब्रह्म कृष्ण के प्रति अग्रसर करते हैं। कातनी का दृष्टांत, लक्ष्मी जी का दृष्टांत, शुकदेव-महिमा, बेहदवाणी, प्रगटवाणी जैसे महत्त्वपूर्ण प्रकरण या अंश इसी रचना के अंतर्गत आते हैं। 'बेहदवाणी' और 'प्रगटवाणी' — प्रकाश के महत्त्वपूर्ण प्रकरण है।

'षटऋतु' ग्रंथ में अपने परम प्रिय प्रभु से बिछड़ी हुई आत्मा ऋतु-ऋतु में अनुभूत पूर्वसुखों की सुखद स्मृति के द्वारा उद्दीपित हो जाती है और प्रियतम के विरह की अग्नि में अवगुणों को जलाकर निर्मल शुद्ध हृदय से यही कहती है कि हे प्रिय, अखंड परमधाम में तो तुम्हारे मधुर मिलन के आनंद का सदा अनुभव किया। लेकिन इस मायापूर्ण जगत में वैसा मिलन दुर्लभ है। अतः दर्शन देकर आप मेरी विरहाग्नि को शांत करें। अंततः प्रियतम भी पवित्र आत्मा की अनन्यता के वश हो जाते हैं। इसी रचनान्तर्गत बारहमासी का वर्णन है। इसमें देवचन्द्रजी का आरोप कृष्ण में करके और अपने आपको इन्द्रावती के रूप में चित्रित करके विरह व्यक्त किया है। इस प्रकार एक साथ गोपीकृष्ण का विरह और गुरुशिष्य का विरह चित्रित हुआ है। उद्धव-गोपी-संवाद में प्रेम की ज्ञान पर विजय चरितार्थ हुई है।

'कलश' (गुजराती) ग्रंथ में सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म की खोज, जगत, विविध धर्ममत, वेदानुरूप कर्मसाधना, पुरुष-प्रकृति, अवतारों की मीमांसा, श्री कृष्ण त्रिधालीला आदि तत्त्वों का विश्लेषण किया है। जागनी का प्रकरण इसमें विशेष महत्त्व रखता है। इसमें महामति कष्टकर साधनाओं से नहीं बल्कि विवेक और प्रेम से आत्मा को जगाने का उपाय बताते हैं। इसके कई प्रकरणों में इन्होंने यही उपदेश दिया है कि माया दुखदायी है। इसे पकड़ोगे तो दुःख ही पाओगे। उससे बचने का एकमात्र यही उपाय है कि अपने परमधाम के अखंड सुखों का स्मरण करो। दुःख स्वयं ही मिट जायेंगे।

'सनंध' वाणी में स्वामी प्राणनाथ ने श्री मद्तारतम के द्वारा इस्लाम के धर्मग्रंथ 'कुरान' की नवीन व्याख्या की है। कुरान के कई प्रकरणों (सूरा) की व्याख्या करते हुए शुद्ध सत्य इस्लाम का प्रतिपादन किया जो भागवत धर्म के अति निकट प्रतीत होता

है। उन्होंने आग्रहपूर्वक बताया कि सभी धर्मों का मूलतत्त्व एक ही है, लेकिन भिन्न-भिन्न भाषा के कारण झगड़े पैदा होते हैं—

हकीकत फुरमान की, कहूं सुनो सब मिल।
नूर अकल आगें त्याय के, साफ करूं तुम दिल।।
अब तो आखर आइया, उठ खड़े रहो मुस्लिम।
पाक करूँ नूर अकलें, खबर देऊँ खसम।।
सबको प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख।।
अब कहूँ भाषा मैं किनकी, यामें भाषा तो कै लाख।।
बोली जुदी सबनकी, और सबका जुदा चलन।
सब उरझे नाम जुदे धर, पर मेरे तो केहेना सबन।।
बिना हिसाबें बोलियां, मिने सकल जहान।
सबको सुगम जानके, कहूंगी हिन्दुस्तान।।
सनंध, ११-१५, प्र० १

संसार की सभी भाषाओं में उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा को सरल बताया, जिसकी सरलता और तरलता में मानव को अंतर बाहर से शुद्ध करने की क्षमता है।

इस सृष्टि में अवतरित होकर मोहमायावश और अज्ञान के कारण उस मूलतत्त्व को हम भूल जाते हैं। हम यह भी भूल जाते हैं कि हमारा मूल स्वामी कौन है और हम क्या हैं ? वस्तुतः सभी धर्मों ने प्रेमभक्ति का महत्त्व माना है—

मैं देखे सब खेल, पंथ पैंडे दरसन।
देखी इस्क बंदगी सबकी, जैसा आकीन सबन।।
सनंध, ५ / प्र० ३

महामति ने अपने आपको 'क़ुरान' द्वारा सप्रमाण 'इमाम मेहदी' और शास्त्रों के अनुसार 'विजयाभिनंद निष्कलंक बुध' भी घोषित किया। प्रस्तुत ग्रंथ तत्कालीन नीति का ज्वलन्त प्रतीक है। इस ग्रंथ में वर्णित विषय जहाँ दोनों धर्मों के बीच प्रचलित मिथ्याडंबरों का खंडन करता है वहाँ धर्म-धर्म के बीच उत्पन्न होनेवाले विवाद को नेस्तनाबूद कर धार्मिक भावना के बीच आध्यात्मिक सामंजस्य के पवित्र सोपान का निर्माण करता है।

'किरंतन' (कीर्तन) रचना के पद, भ्रमण के समय भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर लिखे गए हैं। उसमें विभिन्न मतवादियों के साथ चर्चा, पौराणिक मतवाद का स्पष्टीकरण और वेदान्त तत्त्वों को प्रतिपादित किया गया है। लेकिन वेदांत और पुराणों से पुष्ट 'किरंतन' का उपदेश सार्वदिशीय एवं सार्वजनिक है। 'सनंध' में सच्चे मुस्लिम की पहचान थी और 'किरंतन' में सच्चे हिन्दू वैष्णव की पहचान वे कराते हैं। इसी प्रकार, नम्रता, श्रद्धा, कायरता का परित्याग, आत्मबल प्राप्ति के संदर्भ में महामति ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

'खुलासा' ग्रंथ में स्वामी प्राणनाथ ने क़ुरान, जिसको वे खुदा का फ़रमान (आज्ञापत्र) मानते हैं, उसका स्पष्ट रूप प्रकट करते हुए संसार में धार्मिक वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया है।

पूर्वोक्त ग्रन्थों में माया, ब्रह्म, जीव आदि का जो विवेचन किया है, इन्हीं का सेमेटिक ग्रंथों के आधार पर इसमें विवेचन किया गया है। स्वामी प्राणनाथ के समन्वयवादी

विचारों की इसमें स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः सभी धर्मों का मुख्य उद्देश्य उस परम प्रेमरस को प्राप्त करना ही है। हिन्दू, इस्लाम, ईसाई आदि धर्मों के सिद्धांन्तों में भिन्नत्व नहीं है। जो कुछ वैदिक ग्रंथों में कहा गया है, वही कतेब ग्रंथों में भी है— जो जबूर, तौरेत, अंजील और क़ुरान की सम्मिलित संज्ञा हैं।

जो कुछ कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोउ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाये भेद।।
बोली सबों जुदा परी, नाम जुदे धरे सबन।
चलन जुदा कर लिया, तार्थे समझ न परी किन।।
तार्थे भई बड़ी उरझन, सो सुरझाऊँ दोय।
नाम निशान जाहिर करूँ, ज्यों समझे सब कोय।। खुलासा १२/४२-४४

'खिलवत' ग्रंथ में प्रेमी-प्रियतम संवाद है। अहंभाव का दमन, ब्रह्मज्ञान की महिमा, ब्रह्मसृष्टि (योगिनों) का सृष्टि में अवतीर्ण होने का कारण आदि बातों का इसमें समावेश किया है। परमधाम के दर्शन की आंतरिक चाह अभिव्यक्त हुई है। परमधाम की स्मृति दिलाते हुए वे कहते हैं कि वहाँ तो ज्ञान के सागर भरे हैं, ज्ञान के समान ही उसके प्रेम के सागर हैं। स्वयं साक़ी शराब उड़ेले जा रहे हैं। अपने प्याले ले-लेकर भरते और पीते जाइए— यह शराब ऐसी है, जिसमें बेहोशी नहीं, प्रेम की मस्ती और परम आनंद है—

साकी पिलावे शराब, रूहें प्याले लीजिए।
हक इश्क का आब, भर भर प्याले पीजिए।। खिलवत, ८/१

'परकरमा' (परिक्रमा) ग्रंथ में आत्मा के परमधाम विचरण का सांसारिक शब्दों में वर्णन किया है। बुद्धि, जोश, बल या ज्ञान वहाँ नहीं पहुँचा सकते क्योंकि वह प्रेम-भूमिका है। इसीलिए वे प्रेम को परमधाम की सैर करवा देने का आह्वान करते हैं—

अब आओ रे इस्क भानु हाम। देखूँ वतन अपना निजधाम।।
करुँ चरण तले विश्राम। विलसूं पियाजी सों प्रेमकाम।।
परिक्रमा, ३/१

प्रेम से यह विनती करने का कारण यही कि वे कहते है—

पंथ होवे कोट कलप। प्रेम पहुँचावे मिने पलक।। परिक्रमा १/५३

इस प्रकार परमधाम के पच्चीस पक्ष के अंतर्गत रंगमहल, फूलबाग, महान वन, पुखराज, यमुनाजी के सात घाट, अक्षर धाम, सुधा सरोवर— हौज़ कौसर, जवाहरों की नहरें और महल, चार हार हवेली, माणिक पहाड़, आठ सागर और आठ भूमि खंड का वर्णन किया गया हैं। परमधाम के परम सौंदर्य का वर्णन परिक्रमा ग्रंथ में दिया गया है। उन्होंने परमधाम के प्रेमियों के अपूर्व प्रेम का परिचय दिया है। आत्माओं के प्रेमभाव, स्नेह सेवा, एकता, अलौकिकता, आहार-विहार, गति-स्थिति आदि अपूर्व दिव्यता का विस्तार से वर्णन किया है। परमधाम की सभी सामग्री शोभा और प्रेम से परिपूर्ण हैं। प्रेममयी ब्रह्मसृष्टि को ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण परमधाम में विचरण करने का अधिकार है।

'सागर' ग्रंथ में 'परकरमा' में बताये गए आठों सागर का विस्तार से वर्णन है लेकिन सागरों के रूपक में पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद के अप्राकृत गुण और उनकी असीमता का वर्णन करते हुए अलौकिक दिव्यता की ही अभिव्यक्ति हुई है। पूर्ण पुरुषोत्तम युगल

स्वरूप का दिव्य शृंगार और जिस अंग का वर्णन करते हैं, आत्मा का वही अंग प्रभु मिलन के लिए छटपटाने लगता है—

नैन श्रवण मुख नासिका, मुख छवि अति सुंदर।
देखत ही आशिक अंगों, चुभ रहत हेयड़े अंदर।। सागर, ५/५१

इस प्रकार आठों सागर के गूढ़ार्थ का विवेचन हुआ है। नूर सागर का मूलस्वरूप में, नीर और क्षीर सागर का सखियों की शोभा और ऐक्य में, दधिसिन्धु का युगलस्वरूप राजश्यामा के शोभा शृंगार में, मधुसिन्धु का प्रेम के साथ, घृतार्णव ब्रह्मविद्या के साथ, रससागर के ब्रह्मांगनाओं के संबंध में और सर्वरस सागर को कृष्ण (श्रीराजजी) की दया के साथ अन्तरात्मक तुलना की है।

'सिनगार' (शृंगार) ग्रंथ में आत्मा के समक्ष सच्चिदानंद परब्रह्म का नखशिखांत शृंगार और अंग-उपांगों का पृथक्-पृथक् सौंदर्य, वस्त्रालंकारों की दिव्यता का विभिन्न रूपों में, प्रेम-प्रीति, कृपा-कोमलता, कला-कौशलता, नीति, बल-विद्वता और अपूर्वता का वर्णन किया है। ब्रह्मांगना (भक्तों) के धर्म, कर्म, लक्षण और अन्वेषण का भी प्रतिपादन करते हुए उन्हें संसार से परमधाम जाने के लिए प्रेरित किया है।

परब्रह्म के चरणों की शोभा, गुण कोमलता का वर्णन कैसे हो, जब आत्मा एक नख की ज्योति देखकर दंग रह गई, जहाँ तेज पुंज परमात्मा के सौंदर्य सागर में मानों नख की ज्योति जलधारा के समान बह रही है—

सखी री तेज भरो आकास में, नख जोत निकसी चीर।
ज्यों सागर छेद के आवत, नहरें निरमल का नीर।। सिनगर, ५/१

'सिन्धी' वाणी में पिया से बिछुड़ी आत्मा जब प्रयत्न करने पर भी प्रभु से मिल नहीं पाती, तब निराश होकर बैठ नहीं जाती वरन् प्रभु को सहायता के लिए पुकारती है, उनकी शक्ति और आज्ञा को चुनौती देती हैं। इतना तक कह डालती हैं कि मेरे प्रेम की कमी नहीं, आपके हुक्म की ही देर है, वरना मैं कब की जाग्रत हो चुकी होती। खेल का ब्यौरा, विनती, न्याय और फ़रियाद और हमारा अपराध-इन चार मुख्य बातों को लेकर इसकी रचना की गई है।

'मारफतसागर' ग्रंथ में शरीयत के बन्धनों में जकड़े हुए 'क़ुरान' के धार्मिक सिद्धान्तों का आध्यात्मिक विश्लेषण किया गया है। मारफ़त आत्मा की मुक्तावस्था का नाम हैं। 'क़ुरान' में आख़िरी ज़माने के सूचक सात निशानों का उल्लेख आया है, जो मशरक में प्रकाश और मगरब में सूरज, आजूज-माजूज, दाभतुल अर्ज, दज्ज़ाल नाम से हैं। धर्म की विभिन्नता के समन्वय की उच्च भावना उत्पन्न करना ही इस ग्रंथ का प्रधान उद्देश्य है। खिलवत की बातें, तारतम, फ़िरके, क़यामत के सात निशान, छः दिन की पैदाइश आदि बातों को इसमें विस्तार से लिया है।

श्री प्राणनाथ ने कहा है, जब से ब्रह्मांड बना है परमात्मा के अंश से उत्पन्न अवतार-पैग़म्बर ब्रह्मज्ञान को संकेतों में बताते रहे। गीता के उद्घोष 'संभवामि युगे-युगे' के समकक्ष उन्होंने मुहम्मद को परमात्मा का संदेश और ज्ञान-प्रदाता बनाकर कहा—

जमाना खाली नहीं, बिना महमदी कोय।
करत सबन में रोशन, चिराग नबी की सोय।। मारफत सागर, १४/७६

'कयामतनामा' (छोटा) में आत्मजागृति, तीन प्रकार के लोगों के आचरण, पैग़म्बरी आदि पर प्रकाश डाला गया है। उपदेश वाणी को पढ़-सुनकर भी जो आत्मा जागृत

न हो, वह मोमिन नहीं है और ऐसे लोगों से किनारा करना ही अच्छा है—

यों इल्म समझावते, जो कोई न समझत।
तिन मजाजी दिलको, जिन करो नसीहत।। कयामत नामा छोटा, १/८८

'कयामतनामा' (बड़ा) में क़ुरान के गुप्त भेदों को खोला गया है। दस दोज़ख़ों का विवरण देते हुए बताया है कि जीवात्मा ब्रह्मज्ञान के द्वारा अपने आचरण के अनुसार आठ प्रकार की मुक्ति के द्वारों से जीवन मुक्ति प्राप्त कर सकती है यही क़यामत का सही अर्थ है। इसमें भी इमाम मेहदी और निष्कलंक बुधावतार की स्पष्ट घोषणा की गई है।

प्राणनाथ के गद्य ग्रंथ क़ुरान के जवाब सवाल, शेखमीरांजी का संवाद, तीसरा कयामतनामा, कुरान की पत्रिकाएँ, जामिल मारफत, छत्रसाल प्रबोध, शेख सलेमान को पत्र आदि में मुख्यरूप से हिन्दू मुस्लिम धर्म की एकता, सर्वधर्मों का मूल रहस्य, क़ुरान पुराण के समान तत्त्वों जैसी बातों पर ही प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों में एक ही बात भिन्न-भिन्न ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः दार्शनिक विचारों को ही एक या अन्य ढंग से स्पष्ट करने के हेतु छोटी-छोटी रचनाएँ लिख ली गई हैं यहाँ जिनका विस्तृत वर्णन करना असंभव है।

करुणावती कृत तारतम्य सागर

इस 'तारतम्यसागर' ग्रन्थ के संदर्भ में आज साम्प्रदायिक विद्वान प्रायः मौन रहते हैं। कहीं पर इसका विस्तृत उल्लेख भी नहीं हुआ। श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी ने इस पर प्रकाश डालने की कोशिश की थी। फिर भी, इसके संदर्भ में विशेष जानकारी नहीं मिलती। श्री मंगलदासजी महाराज के अनुसार, कंसारा जयरामभाई ही करुणावतीजी के अवतार हैं, जिन्होंने सुन्दर ललित शब्दों में 'तारतम्य सागर' ग्रन्थ बनाया है। लेकिन उक्त ग्रंथ में 'प्रेमी तुलाराम बलिहारी' "तुलाराम पिया पर बारी" ऐसी भणिता बार-बार आती है— ऐसा श्री कृष्णाप्रियाचार्य का मत है। माना जाता है कि तुलाराम भट्ट सूरत के ब्राह्मण थे और बल्लभ संप्रदाय के पुरुषोत्तमदास के शिष्य थे। प्रारम्भ में वे पुष्टिमार्गी थे और बाद में गुरु देवचन्द्र के सिद्धान्तों को मानने लगे थे। उन्होंने अपनी रचना में घोषित किया है कि भूतल पर मेरे स्वरूप का नाम तुलजाराम है। अर्थात् इतना स्पष्ट है कि करुणावती कृत 'तारतम्य सागर' ग्रंथ स्वामी प्राणनाथ के समकाल में ही रचा गया है। इनकी रचनाओं में तारतम सागर, श्री परमधामना पच्चीस पक्ष और महाकारण की प्रश्नोत्तरी का उल्लेख मिलता है। अन्तिम दो रचनाओं में बल्लभ संप्रदाय और गुरु देवचन्द्रजी के दार्शनिक विचारों का समन्वयात्मक चित्रण किया गया है।

१. प्राणनाथ-परवर्ती साहित्य

स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के अतिरिक्त उनके कई शिष्यों एवं संप्रदाय के अन्य संतों एवं अनुयायियों की अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। विशेषतः इन सबकी रचनाओं में गुरु देवचन्द्र जी स्वामी प्राणनाथ के जीवन, कार्य एवं विचारों को अपने ढंग से प्रस्तुत किया गया है या कृष्ण-राधा के प्रति उत्पन्न भक्तिभावना की अभिव्यक्ति हुई है।

'बीतक' परम्परा—एक मौलिक देन

प्रणामी संप्रदाय की 'बीतक' परम्परा हिन्दी जीवनी साहित्य की विधा में एक मौलिक देन के समान है। साम्प्रदायिक साहित्य में इन बीतकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा. भोलानाथ

तिवारी के अनुसार, 'जीवन के लिए ख्यात, बात, वार्ता, परचई या स्वयं जीवनी के अतिरिक्त एक शब्द 'बीतक' भी है। 'बीतक' शब्द संस्कृत 'वृत्त' से बना ज्ञात होता है और सन्त साहित्य में जीवन-वृत्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी अर्थ में इसका प्रयोग प्रणामी साहित्य में किया गया है।' प्रणामी संप्रदाय के प्रवर्त्तक प्राणनाथ के तथा उनके गुरु देवचन्द्र के जीवन को लेकर प्रणामी साहित्य में लालदास, ब्रजभूषण, हंसराज, मुकुन्द या नौरंग स्वामी स्नेह सखी की बीतक, लल्लू महाराज, करुणावती की बीतक आदि सात बीतकें लिखी गई हैं। इनमें अन्तिम तो गुजराती में है, शेष हिन्दी में हैं। जीवनी की दृष्टि से लालदास की बीतक ही सबसे प्रामाणिक है, जो महामति के जीवन काल में ही लिखी गई। ऐसा माना जाता है कि मूल में यह बीतक बारह हज़ार चौपाइयों की थी। उसमें से चार हज़ार चौपाइयाँ संकलित कर प्रकाशित की गई हैं।

वस्तुतः 'बीतक' शब्द संस्कृत मूल से गुजराती के तद्भव 'बीतक' तक आया होगा। क्योंकि गुजराती में 'बीतक' का प्रयोग 'जो गुज़र चुका है या जिसका अनुभव हुआ है' के अर्थ में होता है। स्वामी प्राणनाथ, स्वामी लालदास, नवरंग स्वामी आदि कई महात्मा गुजराती ही थे और तदनुसार उन्होंने गुजराती 'बीतक' शब्द का उक्त अर्थ में प्रयोग किया हो।

स्वामी लालदास—

स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में स्वामी लालदास का नामोल्लेख अन्यत्र हो चुका है। ब्रह्मचारी मंगलदासजी ने उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि वे पोरबन्दर के लोहाणा जाति के कुलीन एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। ठट्ठानगर के बड़े व्यापारी थे और वे ९९ जलपोतों के मालिक लक्ष्मण सेठ के नाम से प्रख्यात थे। स्वामी प्राणनाथ धर्मप्रचार करते हुए, जिस समय ठट्ठानगर पहुँचे उस समय चतुरा नाम एक ब्राह्मण के द्वारा लालदास ने प्राणनाथ के दर्शन की प्रार्थना की। इसका उल्लेख स्वयं लालदास ने अपनी 'बीतक' में किया है—

चतुरें आए अरज करी, लाल चाहे करें दीदार।
लक्ष्मन उनका नाम है, है तालिब धनी निराधार।।

स्वामी प्राणनाथ से वहीं पर दीक्षित हो जाने पर इनका मन सांसारिक प्रवृत्तियों से हटता गया। जब स्वामी प्राणनाथ सूरत में थे, तब वे भी सब कुछ छोड़कर उनसे जा मिले—

लालदास संग चले, खाली लेकर हाथ।
निबाहें आखर लों, चले राज के साथ।।

स्वामी लालदास के नाम से सम्प्रदाय में इन रचनाओं का उल्लेख होता है— १. बड़ी वृत्त (पद्य) २. छोटी वृत्त (गद्य), ३. मोहमद साहब की बीतक अर्थात् माजजा, ४. बड़ा मसौदा (गद्य), ५. श्रीमद्भागवत की टीका—अनुवाद, ६. अन्य छन्द। वे सिंधी, कच्छी, गुजराती, मारवाड़ी हिन्दी, संस्कृत, अरबी-फ़ारसी भाषाओं के ज्ञाता थे। छोटी वृत्त और बड़ी वृत्त में उन्होंने परमधाम का वर्णन किया है। माजजा और बड़ा मसौदा रचनाओं में क़ुरान के रहस्यों का आयतों और हदीसों के आधार पर विवेचन किया है। लेकिन इन सबमें बीतक रचना ही अधिक आदरणीय रही है। स्वामी प्राणनाथ के 'कुलजस्वरूप' (तारतम सागर) की एक हस्तलिखित प्रति के साथ ही लालदास 'बीतक'

की एक हस्तलिखित प्रति भी प्रत्येक प्रणामी मन्दिर में प्रायः रहती है। 'बीतक' को तीनों स्वरूपों (श्री कृष्ण, गुरु देवचन्द्र, प्राणनाथ) की बीतक माना जाता है—

तीनों स्वरूपों की बीतक, जनम से लेकर।
सो कहुं आगे सैयन के, एह चरचा सब ऊपर।।

प्रथम दो प्रकरणों तक कृष्ण की बीतक है और बाद में दसवें प्रकरण तक गुरु देवचन्द्र जी का जीवन चित्रित किया गया है। ग्यारहवें प्रकरण से उनसठवें प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ के संपूर्ण जीवन और कार्य का वर्णन किया है अन्तिम बारह प्रकरणों में पन्ना में प्राणनाथ की आठों प्रहर की दिनचर्या रखी गई है। इस प्रकार बीतक में ७१ प्रकरण और ४३०० चौपाइयाँ हैं। स्वामी लालदास का उल्लेख करते हुए डॉ. माताबदल जायसवाल ने लिखा है, 'बीतक' हिन्दी में लिखा हुआ प्राणनाथ का जीवन-चरित संबंधी ग्रन्थ है। सन् १६८४ (सं० १७४१) में लिखित होने के कारण यह हिन्दवी (हिन्दी) का प्रथम जीवन-चरित कहा जा सकता है।

नवरंग स्वामी—

स्वामी प्राणनाथ के क़ुरान सम्बन्धी भावना के पक्षपातियों में से स्वामी लालदास प्रमुख थे, उसी प्रकार शास्त्र पक्ष में नवरंग स्वामी का प्रमुख रूप से नाम लिया जाता है। स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनका पूरा प्रेम और आदर भाव रहा ।

डा. श्यामसुन्दर शुक्ल ने नवरंग स्वामी के संदर्भ में 'स्वामी प्राणनाथ के शिष्य' और रचना को अन्तर्गत सिर्फ़ 'लीला प्रकाश' का उल्लेख किया है।[१] लेकिन उनका जीवन संबंधी परिचय सिर्फ़ सांप्रदायिक ग्रन्थों से ही मिलता है। मुकुन्द स्वामी 'नवरंग' का जन्म ज्येष्ठ कृष्णा नवमी बुधवार सं० १७०५ में सूरत (गुजरात) में हुआ था। उनके पिता राघवजी एक धनी व्यापारी थे। उनकी माता का नाम कुँवरबाई था। प्राणनाथ जी की सूरत-यात्रा के समय वे उनके उपदेश से मुग्ध हो गये थे और पच्चीस वर्ष की उम्र में प्राणनाथ का शिष्यत्व उन्होंने ग्रहण लिया था। बाइस वर्ष तक वे प्राणनाथ के साथ ही रहे और गुरुसेवा करते रहे। प्राणनाथ के देह विलय के बाद वे उदयपुर चले गये थे। उदयपुर का राजा इनका शिष्य हो गया था। इतना निश्चित है कि राजस्थान में प्रणामी सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार का श्रेय उन्हीं को मिलता है।

डा. रामकुमार गुप्त ने इनकी रचनाओं के संदर्भ में कहा है कि इनके (नवरंग स्वामी के) लिखे हुए क़रीब १६७ ग्रन्थ बताये जाते हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थ है— नवरंग सागर— जिसमें ३६००० चौपाइयाँ हैं। इनमें उल्लेखनीय ग्रंथ इस प्रकार हैं— १. मिहिराज चरित्र, २. सुन्दर सागर, ३. षट्शास्त्र, ४. लीला प्रकाश, ५. गीतारहस्य, ६. गुरुशिष्य संवाद ७. फुटकर पद। 'मिहिराज चरित्र' का उल्लेख कहीं नहीं भी नहीं मिलता। वस्तुतः 'श्री मेहराज चरित्र' बक्सी हंसराज द्वारा लिखित है, नवरंग स्वामी द्वारा नहीं।

निजानन्द सम्प्रदाय में इनके तीन ग्रंथों का ही प्रचार अधिक है।—१. बीतक, २. रस सागर, ३. सुन्दर सागर। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की समीक्षा करती रचना हुई, 'गुरु शिष्य संवाद' भी प्रसिद्ध है।

---

१. डा. श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० २६
२. गीता रहस्य (नवरंग स्वामी) पर आधारित 'द सेक्रेड डॉक्ट्रीन आव गीता' (सं० डॉ. बुद्धि प्रकाश वाजपेयी) अंग्रेज़ी में श्री प्राणनाथ मिशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है।

उनकी बीतक कब और कहां पर लिखी गयी है, इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता। इस बीतक में श्रीकृष्ण, गुरु देवचन्द्र जी और प्राणनाथ जी का जीवन चित्रित किया गया है। उनकी 'गुरु शिष्य संवाद' रचना में नवरंगजी के प्रश्न और स्वामी प्राणनाथ के उत्तरों का समावेश हुआ है। उस प्रश्नोत्तर में क्षर, अक्षर और अक्षरातीत पूर्णब्रह्म तीनों के स्वरूप स्थान, धाम-लीला आदि का निरूपण किया गया है। अखंड भूमिका में महारास लीला वर्णन करने के बाद रास समाप्ति इस प्रकार हुई—

नवल किशोर नागर, नवल किशोरी सखि संग।
बिहरे रास विलास निज, भजनानंद रंस रंग।
ब्रह्म रात्रि पूर्ण भई, भयो प्रातः प्रकाश।
यह देख श्री कृष्ण प्रिया, निवृत्त भई कर रास।।

'रससागर' में उनकी माधुर्योपासना का स्वरूप ही झलकता है। कृष्णवियोग से गोपिकाओं को दुःख हुआ है और यह गोपिका अपने प्रियतम कृष्ण से विनती करती हैं—

कब हम नैन मिलावसी, चरण तली सिद्ध सार।
दृष्ट शीलत सुख उपजे, मेरे आतम के आधार।।
कब हम नखमणि निरखेंगे, भूषण झल हलकार।
चरण तले कब बसेंगे, मेरे आतम के आधार।।

फिर भी, विरह उनको पसन्द है, क्योंकि उस विरह के कारण ही पिंड और ब्रह्मांड में खो जाने पर प्रियतम मिलन का सौभाग्य मिला है। नवरंग स्वामी के कुछ पदों का प्रकाशन प्रणामी धर्म पत्रिका (रस सागर अंक), खीजड़ा मंदिर, जामनगर (गुजरात) से हो चुका है।

ब्रजभूषण—

ब्रजभूषणकृत बीतक वृत्तान्तमुक्तावली का एक निराला स्थान है। महाराजा छत्रसाल ने बीतक की रचना नहीं की, लेकिन उनके शिष्य ब्रजभूषण ने बीतक की रचना की है। ब्रजभूषण को छत्रसाल के शिष्य के रूप में निःसंकोच भाव से स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि वृत्तान्तमुक्तावली में एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं—

एहि विधि खोज पर पथि मांहि, मत देवचन्द्र सतगुरुको गायो।
नाद पुत्र तेहि छत्रसाल नृप, तेहि शिष्य ब्रजभूषन कछु पायो।।

डा. भगवानदास ने छत्रसाल के आश्रित दरबारी कवि के अंतर्गत ब्रजभूषण का उल्लेख किया है। मिश्रबंधु ने ब्रजभूषण गोस्वामी का उल्लेख करते हुए, उनकी राधा बल्लभाचार्य का अनुयायी बताया है और रचनाकाल अनुमानतः १८०० वि० सं० दिया है। वहीं पर उन्होंने ब्रजराज बुन्देलखण्ड का भी उल्लेख किया है और इनका जन्मकाल १७७५ वि० सं० दिया है। लेकिन जीवन संबंधी कोई विवरण नहीं दिया गया। पं. कृष्णदत्त शर्मा कहते हैं कि श्री ब्रजभूषणजी के लौकिक संबंध के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि, अभी तक इनका कोई ऐसा ग्रंथ नहीं मिला जिससे इनके ग्राम, ठाम, जन्मादि का पता लगे। हाँ, इनकी रचना पर से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आप बुन्देलखंड प्रांत के निवासी थे। आपका रचनाकाल लगभग वि० सं० १७५५ के माना जा सकता है। यशवंतलाल सी. दलाल के अनुसार वे पं. बद्रीदास जी के पुत्र थे। स्वामी प्राणनाथ जब पन्ना आये तब वहाँ सुन्दर, बल्लभ और पं. बद्रीदासजी तीन

पंडित थे और वे तीनों शास्त्रार्थ में पराजित होने पर स्वामी प्राणनाथ के शिष्य हो गये। उन दिनों ब्रजभूषण काशी में विद्याभ्यास कर रहे थे। उन्होंने पिता की पराजय के बारे में जब सुना तब बदला लेने के लिए पन्ना आ गए। प्रारम्भ में छत्रसाल से ही इनका शास्त्रार्थ हुआ और उनसे पराजित हो जाने पर छत्रसाल का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। उनका जन्म पन्ना में ही हुआ था, इसके सन्दर्भ में एक उक्ति है—

भये पन्ना में कई भूषण, भूषण में भी कई भूषण।
ऐसे भये थे कुल भूषण, जो हो गये हैं ब्रजभूषण।।

इतना स्पष्ट है कि भूषण और ब्रजभूषण दो अलग-अलग कवि थे। साम्प्रदायिक मान्यता ग़लत है कि ब्रजभूषण की पालकी छत्रसाल ने अपने कंधों पर उठायी थी। यह घटना भूषण के साथ घटित अवश्य हुई थी। ब्रजभूषण की तीन रचनाएं बतायी जाती हैं—१. वृत्तान्त मुक्तावली, २. परात्पर दीपक (गद्य) और ३. श्री प्राणनाथ जी का जीवन चरित (संस्कृत में)। 'वृत्तान्तमुक्तावली' के प्रारंभिक भाग में, अर्थात् ३५ प्रकरणों तक गुरु देवचन्द्र जी का वर्णन है, ३६ वें प्रकरण से ६५ प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ का जीवन चरित्र, और ८० प्रकरण तक पन्ना, छत्रसाल एवं सांप्रदायिक तत्त्वों की चर्चा की गई है। परिशिष्ट के ११ प्रकरंण है। इस प्रकार वृत्तान्तमुक्तावली के प्र० ८० और ४६७५ चौपाइयाँ हैं। परिशिष्ट भाग में दी गई अष्ट प्रहर की बीतक की ९७० चौपाइयाँ जोड़ने से उक्त ग्रन्थ ५६४५ चौपाइयों का बनता है।[३] यह बीतक भी तीनों स्वरूप—श्री देवचन्द्र, श्री प्राणनाथ श्री छत्रसाल—की है।

ब्रजभूषण के संदर्भ में डा. श्यामनारायण पांडेय ने कहा है कि प्रणामी संप्रदाय में भूषणदासजी का नाम अत्यन्त आदर एवं श्रद्धा के साथ लिया जाता है। वे बहुत उच्चकोटि के विद्वान माने गये हैं। ब्रजभाषा में इनकी थोड़ी- सी रचनाएँ सांप्रदायिक सिद्धान्त संबंधी प्राप्त होती हैं। प्रणामी संप्रदाय की रसोपासना का स्वरूप और देवचन्द्र जी का नामोल्लेख उनके निम्नलिखित पद में मिलता है—

अखंड नित्य वृन्दावन भाख्यो। सो हरिदास चित में राख्यो।।
ताकी चरचा करें प्रेम सों। सेवे नित आचार नेम सों।।
निज शिक्षा गुरु और बताई। सो देवचन्द्र चित्त सों लाई।।
अपनो सखी भाव करि लीजै। पुरुषभाव अपनो तजि दीजै।।
श्रीकृष्णचन्द्र जानौ गुरु आपन। श्यामा निज उपासना थापन।।
सखी बिना इत पुरुष न पहुंचे। कोटि कष्ट करि जो मन शोचै।।
ताते सखी भाव करि लीजै। पुनि यह नाम मंत्र रस पीजै।।

बख्शी हंसराज—

प्रणामी संप्रदाय की बीतकों में भावुकता और कवित्व के दर्शन बख्शी हंसराज की बीतक श्री मिहराज चरित्र में होते हैं। मिश्रबंधु के अनुसार, बख्शी (हंसराज श्रीवास्तव, कायस्थ) सं० १७८९ में पन्ना में हुए। लेकिन उन्होंने हंसराज कायस्थ का अन्यत्र उल्लेख करते हुए कहा है कि बख्शी हंसराज और ये एक ही हों— यह मानना अनुचित होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका जन्म सं० १७९९

---

३. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली भूमिका, पृ० १२

में पन्ना में हुआ था। इनके पूर्वज बख्शी हरिकिशुनजी पन्ना राज्य के मंत्री थे। हंसराज जी पन्ना नरेश श्री अमान सिंह जी के दरबारियों में थे। ये ब्रज की व्यासगद्दी के विजय सखी नाम महात्मा के शिष्य थे, जिन्होंने इनका सांप्रदायिक नाम 'प्रेमसखी' रखा था। 'सखीभाव' के उपासक होने के कारण इन्होंने अत्यन्त प्रेम-माधुर्य-पूर्ण रचनाएँ की हैं। डा. भगवानदास गुप्त ने बख्शी हंसराज को छत्रसाल के समकालीन कवियों में बताते हुए कहा है कि उनकी जन्मभूमि पन्ना ही थी। छत्रसाल के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में हंसराज में जो कवि प्रविभा प्रस्फुटित हुई, वह छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् हिरदेशाह, सभासिंह और अमानसिंह के काल में उत्तरोत्तर विकसित हुई। बख्शी हंसराज इन सभी के कृपापात्र थे। डा. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने बख्शी हंसराज को हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों की नामावली में रखा है। वस्तुतः महाराज छत्रसाल के पौत्र सभासिंह ने बख्शी हंसराज के पूर्वज ओरछा निवासी मानकदास को दीवान पद दिया था और तब से उस परिवार में बख्शी नाम जुड़ गया था। माधवदास के दो पुत्र मुरलीधर ओर केशवराय में से दूसरे अर्थात् केशवराय हंसराज के पिता थे। पन्ना उनका जन्म स्थान था। उनका जन्म प्रायः वि० सं० १७४० लगभग माना जाता है।

मिश्रबंधु ने इनकी रचनाओं में सनेहसागर और प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट के आधार पर श्रीकृष्णजू की पाती, श्री जुगलस्वरूप विरह पत्रिका, फाग तरंगिनी तथा चुरिहारिन लीला नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने सनेह सागर, विरहविलास, राजचन्द्रिका और बारहमासा को ही इनकी रचनाओं के अन्तर्गत रखा है— पं. पन्नालाल मिश्र के अनुसार हंसराज जी की छः रचनाएँ हैं—१ मिहराज चरित, २. सनेह सागर, ३. श्रीकृष्णजूकी पाती, ४. श्री जुगलस्वरूप विरह पत्रिका, ५. फाग तरंगिनी और ६. चुरिहारिन लीला। गौरीशंकर द्विवेदी के अनुसार, चुरिहारिन लीला, मेहराज चरित, विरह विलास, राजचंद्रिका और बारहमासा नामक नौ ग्रंथ हंसराजजी ने लिखे थे। इन सबमें 'मेहराज चरित' ही अधिक प्रसिद्ध है। यह स्वामी प्राणनाथ का पद्यबद्ध जीवन चरित है और प्रणामी संप्रदाय के धर्मग्रंथों में अपना स्थान रखता है।

सनेह सागर के नौ तरंगों में कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया गया है। सनेह सागर का एक पद्य दृष्टव्य है—

इत तें चली राधिका गोरी, सौपनि अपनी गैया।
उत तें अति आतुर आनन्द सों, आए कुँअर कन्हैया।।
कसि भौहें, हँसि कुँवरि राधिका, कान्ह कुँवरसों बोली।
अंग अंग उमगि भरे आनन्द सों, दरकति जिन छिन चोली।।

हंसराज जी ने 'मेहराज चरित' लिखने में स्वामी लालदास की बीतक का ही सहारा लिया हो ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी कहीं-कहीं पर अन्तर अवश्य दीखता है। अन्य बीतकों की तरह इसमें भी गुरु देवचन्द्र जी और स्वामी प्राणनाथ के जीवन को चित्रित किया गया है। लेकिन जहाँ कवित्व शक्ति दिखाने का मौक़ा मिला है, वहाँ पर उन्होंने अपनी शक्ति को आज़माया भी है।

इस बीतक में प्रथम प्रकरण में चार युग के राजाओं का वर्णन, दूसरे प्रकरण से नौवें तक गुरु देवचंद्र का जीवन वृत्त और दस से छप्पन प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ के जीवन, भ्रमण आदि का वर्णन दिया गया है। अन्तिम छः प्रकरणों में ब्रज-वृन्दावन,

रासवर्णन, ब्रह्मसृष्टि आगमन आदि का वर्णन किया गया है। यह रचना ६१ प्रकरणों और ५२३३ चौपाइयों में पूर्ण हुई है।

लल्लूजी महाराज 'लालसखी'

चरोतर सर्व संग्रह के अनुसार, लल्लूजी महाराज अलिंद्रा के औदिच्य टोलकिया जाति के थे। उनका जन्म सं० १८६० के लगभग और सं० १९५४ में इनकी मृत्यु हुई थी। उन्होंने सूरत में श्रीलालजी महाराज से प्रणामी संप्रदाय का अभ्यास किया था। तत्पश्चात् गुजरात में प्रणामी संप्रदाय का उन्होंने प्रचार किया। उन्होंने आत्मबोध, वर्त्तमान दीपक, सुरति विवाह, कटकभेद आदि ग्रंथों की रचना की। उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय के 'कुलजम स्वरूप' का हिंदी से गुजराती में लिप्यंतरण किया। प्रणामी संप्रदाय के अनुयायियों में वे 'लालसखी' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विशेषतः बीतकें हिंदी मे ही लिखी गईं, लेकिन लल्लूजी भट्ट ने गुरु देवचन्द्र जी और स्वामी प्राणनाथ के जीवन को गुजराती में लिखी हुई बीतक 'वर्तमान दीपक' में अंकित किया है। उक्त ग्रंथ के मंगलाचरण से अनुमान किया जाता है कि सूरत के प्रणामी मंदिर के तत्कालीन महंत लालाजी के वे शिष्य थे। उन्होंने परम्परागत शिक्षा नौतनपुरी के तत्कालीन आचार्य श्री जीव रामदासजी महाराज से ली थी। अतः उनका जन्मकाल प्रायः सं० १८६० लगभग था। यह बीतक उन्होंने सं० १९३६ में शुरू की थी और सं० १९४४ वैशाख, शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन लिखना पूर्ण किया था। उनके अन्य ग्रंथों में 'जीव चेतावणी', 'ईश्वर बोध सागर', 'आत्मबोध' और 'सुरति विवाह' हैं।

'जीव चेतावणी' में कृष्ण-नारद के संवाद स्वरूप सद्गुरु सेवन की महिमा का वर्णन किया गया है। अन्तिम प्रकरण में परमधाम का संक्षिप्त में वर्णन दिया गया है और इस तरह प्रत्येक जीव को चेतावनी देकर परमधाम का मार्ग दिखाया है। 'ईश्वरबोध सागर' में गुरु और सद्गुरु के विभिन्न लक्षण बताते हुए, ब्रह्मनिष्ठ-सद्गुरु की शरण में जाने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। इस बात को समझाने के लिए उन्होंने शिव-पार्वती-संवाद की योजना की है। ब्रह्मप्रियाओं के लिए इंड रचना से विराट तक समग्र ब्रह्मांड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया हैं। 'आत्मबोध' के प्रारम्भ में भट्टाचार्यजी और उनकी पत्नी निर्भया के स्वामी प्राणनाथ से हुए संवाद-विवाद को रखा गया है। निर्भया स्वामी प्राणनाथ के प्रति श्रद्धा और प्रणामी सम्प्रदाय में विश्वास रखती थीं। लेकिन उनके पति भट्टाचार्य को कोई विश्वास पैदा नहीं हुआ था। अंततः पत्नी ने पति की स्वामी प्राणनाथ से मुलाकात करवायी और तब से भट्टाचार्य प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये थे। इसमें सच्चिदानंद आत्मस्वरूप का वर्णन है, तारतम का बोध कराया गया है। प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है। उन्होंने 'सुरति विवाह' रचना में बताया है कि श्रुति (सुरति) परमधाम से जगत् के दुःख सुख का अनुभव करने के लिए यहाँ उतर आई और परमधाम अपने स्वामी परब्रह्म-परमात्मा को भूल गई। सद्गुरु मिले और उपदेश दिया। सद्गुरु ने जगत् की नश्वरता दिखाई, कृष्ण भक्ति का मार्ग दिखाया और अन्ततः सुरता जागृत हुई। उसको अपने घर-परमधाम की याद आयी और सुरता अपने मूलस्वरूप में पहुँच गयी। यह तत्त्व इसके अन्तर्गत विस्तार से समझाया है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से पूर्ण और भक्तिपूर्ण भजन और गरबे भी उन्होंने लिखे और विशेष रूप से गुजराती भाषा का ही प्रयोग किया है।

महाराज छत्रसाल –

महाराज छत्रसाल स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में एक थे। उन्हीं की मदद से स्वामी प्राणनाथ के बाद प्रणामी संप्रदाय का प्रसार एवं प्रचार दूर-दूर के प्रदेशों में हो सका। छत्रसाल स्वयं कवि थे और इनके लिखे कई राजनीतिक पत्र भी हैं, जो कविता में लिखे गये हैं। मिश्रबंधु ने इनका पंचम छत्रसाल के पुत्र थे, ऐसी मान्यता भी है, के नाम से उल्लेख करते हुए लिखा है, आपका रचनाकाल सं० १७३० से माना जा सकता है। इन महाराज का स्वर्गवास सं० १७८८ में हुआ । डा. हीरालाल लिखते हैं, छत्रसाल वीर ही नहीं वरन् कविता रसिक और स्वयं कवि भी थे। बंगश-विपत्ति में फँसने पर भी उसने सहायता की प्रार्थना कविता में की और जब उसके घराने वालों ने ही एक बार उनकी हँसी की और लिख भेजा–

ओड़छे के राजा और दतिया के राई।
अपने मुँह छत्रसाल बने भनाबाई।।

तब उन्होंने इसका मुँहतोड़ उत्तर कविता में ही लिख भेजा–

सुदामा तन हेरे तब रंक हू ते राव कीन्हों,
बिदुर तन हेरे तब राज कियो चेरे तें।
कहत छत्रसाल प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी
हिरिनाकुश मारो नेक नजर न फेरे तें।
ए रे गुरु ज्ञानी अभिमानी भए कहा होत,
नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे तें।

महाराज छत्रसाल में साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। विशेषत: उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखित हैं। फिर भी उन पर अवधी, फ़ारसी और बुंदेलखंडी का प्रभाव अवश्य पड़ा है। श्री वियोगी हरि महाराज छत्रसाल को एक ऊँचा कवि मानते हैं– "प्रेम और भक्ति इनकी रचनाओं में कूट-कूट कर भरी है। इनकी रचना में तन्मयता विपुल मात्रा में है। इसकी दृष्टि निस्संदेह कवि दृष्टि थी। काव्यकला की ओर यद्यपि इन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं हैं। ब्रजभाषा के साहित्य में महाराज छत्रसाल की रचनाएँ प्रेम और आदर की दृष्टि से देखी जायेंगी।"[४] महाराज छत्रसाल की रचनाओं में श्री कृष्णकीर्तन, श्रीरामयशचन्द्रिका, हनुमद्‌विनय, अक्षर अनन्य जू के पत्र और तिनको उत्तर, नीति मंजरी और स्फुट कविताएँ तथा राजविनोद (गीतों का संग्रह) छत्रविलास, तथा महाराज छत्रसालजु का काव्य का भी उल्लेख है। एक स्थान पर उनके 'कृष्णचरित' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख है। भक्ति के आवेश में अपनी तुलना कृष्ण से करते हुए वे कहते हैं–

तुम घनश्याम हम जाचक मयूर मत्त, तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं।।
तुम गिरिधारी हम कृष्णव्रतधारी, तुम दनुज प्रहारो हम यवन प्रहारे हैं।।

उन्होंने प्रभु नाम का प्रभाव स्वीकार किया है–

जप तप संयम यम नियम, छता निगम नित गाव।
कोटिन अपराधी तरे, केवल नाम प्रभाव।।

---

४. संपा. वियोगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली, पृ. ७६

उन्होंने कहा है सच्चे साधक को कृष्ण प्रेम, भजन कीर्तन और आनन्द-निजानन्द में रहना चाहिए—

इसक सुराही प्रेम का प्याला, अन्दर आतम छकि रहिये।।
तन सोय रूह निसदिन जागे, धाम धनी के चरणों रहिये।।
अस्ट पहर दिन चौसठ घड़ियाँ, निस दिन पीऊ पीऊ पीऊ कहिये।।
छत्रसाल भजो धाम धनी जी को, और देवन सों कहा चहिए।।

कुल की प्रतिष्ठा छत्रसाल की दृष्टि में सर्वोपरि है और इसलिए वे गृहस्थों को सीख देते हैं—

लाख घटे कुल साख छांडिये, वस्त्र फटे प्रभु औरहूं दे हैं।
द्रव्य घटे घटना नहीं कीजिए, दे है न कोउ पै लोक हंसे हैं।।
भूप छता जल रासि को पैरिबो, कौन हू बेर किनारे लगे हैं।
हिम्मत छोड़े ते किमत जाएगी, जायो काल कलंक न जैहैं।।

पंचम सिंह—

स्वामी प्राणनाथ के शिष्य के रूप में पंचम सिंह का नामोल्लेख किया गया है और उनकी रचनाओं में सवैये का निर्देश किया है। प्रणामी सम्प्रदाय में एक परिक्रमा का उनके नाम से उल्लेख है—

जुगल सरूप रूप छबि छाजे। सिंहासन के ऊपर बिराजें।।
नाचत देत फिर आवत फेरी। हँसि हँसि लालन युक्तन हेरी।।
देत परिक्रमा करम सब छूटे। एसुख पंचम निसदिन लूटे।।

भट्टाचार्य जी—

काशीनिवासी भट्टाचार्य पन्नानिवासी परमानंद पंडित की निर्भया नामक पुत्री से विवाहित हुए थे। निर्भया द्वारा स्वामी प्राणनाथ से उनका परिचय हुआ। फिर भी प्राणनाथजी पर इतनी श्रद्धा नहीं थी। इस बीच एक शास्त्रार्थ में उनकी पराजय हुई और विद्वता के अभिमान का पतन हुआ । उन्होंने स्वामी प्राणनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। वे २५-३० वर्ष की उम्र में ही शिष्य हो गये थे। इससे लगता है कि उनका जन्म सं० १७२५ के लगभग में हुआ होगा। उनके ग्रंथों में 'निगमार्थप्रदीप' (प्रकाशित) और 'विद्वद्दमनी' हैं। लेकिन दो ग्रंथों के अतिरिक्त उनका अन्य साहित्य भी होना चाहिए ऐसा अनुमान किया जाता है। दोनों ही ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही लिखे हुए हैं, और उनकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी दो-तीन हैं। 'निगमार्थप्रदीप' में उन्होंने प्रेमलक्षणाभक्ति की पराकाष्ठा का प्रतिपादन किया है और उपनिषदों के प्रमाण द्वारा गुरु देवचन्द्र जी तथा प्राणनाथ का सद्गुरुरूपेण समर्थन किया है। ब्रह्मसृष्टियों, परमहंसों की ब्रह्मता बतायी है। बाद में वेदमन्त्रों से परमधाम की दिव्यता एवं अखंडता दिखाकर वहाँ के स्वलीलाद्वैत की सिद्धि की गई है। तदनंतर प्रसंगानुपात से ब्रजरासलीला का दिग्दर्शन कराते हुए परमहंसों की त्यागवृत्ति का लक्षण बताया है।

मुकुन्द स्वामी—

प्रणामी सम्प्रदाय में 'स्वामी त्रिपुटी' के नाम से स्वामी लालदास, नवरंग स्वामी

● डा. श्यामसुन्दर शुक्ल, हिंदीकाव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३०।

और मुकुन्द स्वामी को ही समझ लिया जाता है। डा. श्यामसुन्दर शुक्ल ने मुकुन्द स्वामी का नामोल्लेख करते हुए उनकी रचनाओं में 'साखियों' का निर्देश किया है।[५] उनकी दो-तीन रचनाओं के सिवा अन्य रचनाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। उन्होंने कई पद लिखे हैं और उन पदों में उनका भक्ति भाव झलकता है। वृन्दावन के प्रति उनका प्रेम निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

आली ! हम न भये वृन्दावन के द्रुम।
बिन गुरु सेवे पार न पइहो, ज्ञान कथो चाहे कितना।।

उनकी माधुर्य भावपूर्ण भक्ति उनसे यही कहलवाती है कि, "ब्रज की रीत प्रीत गति न्यारी।" अन्ततः उनको यही कहना पड़ता है—

तुम नन्दलाल सदा के कपटी।। टेक।।
मैं जमुना जल भरन जात रही, गगरी हमारी घाट पै पटकी।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, दधि मेरो खाय बांह मेरी झटकी।।
साथ की संगी पार उतर गई, नैया हमारी बीचहि अटकी।
कहत मुकुन्द रूप लोभानी, हमरी सुरति मूरति बीच अटकी।।

उनकी अन्य रचनाओं में अथज्ञानतिलक, अथ जागनी लीलावर्णन, परमधाम वर्णन, सुन्दरसागर, और बोधसागर हैं।

जुगलदास—

झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के गुरु स्वामी जुगलदास का नाम प्रणामी समाज में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उनको 'कमलावती' की वासना माना जाता है। जुगलदास की जन्मभूमि दतिया राज्य बतायी जाती है। दतिया के प्रतिष्ठित और श्रीमन्त कायस्थ परिवार में उनका जन्म हुआ था। गाँव के लोग उनको 'जिया महाराज' कहकर पुकारते थे। १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आप विद्यमान थे। उनकी समाधि 'भांडेर' में मिलती है। इनके रचे हुए कई ग्रंथ सुने जाते है, जिनमें परमधाम की बड़ी वृत्ति, मनमोहन रसानंद सागर, छोटी ओर बड़ी पत्री-तारत्तम की प्रणालिका, वैराट निरूपण, महाकारण इत्यादि है। 'रसानन्दसागर' उनकी गद्य में लिखित रचना है। इस रचना मे परमधाम के पदार्थों का वर्णन है और प्रणामी सम्प्रदाय का विश्लेषण है। तत्कालीन गद्य का उदाहरण दृष्टव्य है—

"हे सुन्दरसाथ जी ! ऐसे यहाँ आनन्द सुधा सिंधु में फिसल के सुरत तुमारी बीच अंधकूप दुख अग्नि आफत तूफान जम जाचना के गिर पड़ी है। सो तुमको फेर बीच सुधा सिंध के पोहोचाउने जगाने के कारन मासूक दुलहा तुमारे इस माया में माफिक तुमारे देहधर आए हैं।"[६]

उन्होंने तत्कालीन समाज को, विशेषतः गृहस्थाश्रमी के लिए जो आचार-विचार की बातें कही हैं विशेष द्रष्टव्य हैं—"आचार रीति भांति या दिनचर्या निजधाम पहुँचने की, पूर्णब्रह्म मिलने की, गृहस्थाश्रम में फ़क़ीरी (त्यागवृत्ति, वैराग) करने की जिस पद को त्याग से महात्मा लोग पहुँचते हैं तिस पद को गृहस्थाश्रम द्वारा पहुँचने की और लोक परलोक सुधारने की तथा श्यामाशामजी तथा सद्गुरु को सुन्दरसाथ के वश करने की विधि लिखी है वे अपनी आत्मा को चेतावनी देते हुए उस परमधाम का वर्णन देते हैं—

---

५. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति, पृ० ३०
६. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशांक, आश्विन, वि. सं. १९९९ पृ० ४७

आत्मा जीव जागी चलो परमधाम, दर्शन श्यामा श्याम।।

परमप्रिय कृष्ण, उनके प्राण के नाथ हैं और साथ ही स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनकी भक्ति द्रष्टव्य है–

कुर्बानी मेरे प्राण के नाथ, तुम पर कुर्बानी।।
भई अंग अंग तुमरी नार, तुम पर कुर्बानी।।
तुम प्राणन के हो नाथ, तुम पर कुर्बानी।।

प्रियदर्शन की कितनी व्याकुलता है–

रंचक नैन कटाच्छ में हमको, रोम रोम घायल करि डारे।।
भीतर तलफत अंतस चारों, बाहेर तलफत नैन हमारे।।
सकल कला गति निरत राग की, नवल-नवल छिनछिन पर ल्यारे।।

परमप्रिय कृष्ण की प्राप्ति के बाद तो भक्तहृदय यही कह उठेगा–

अब मोको को करे पग से न्यारो रे।

उनको कृष्ण की शोभा भी युगलस्वरूप में आकर्षित करती है।–

पूरन ब्रह्म ब्रह्मतें न्यारो, दिल मोहोल मेरे आये।
रंग रंगीली दुलहिन श्यामा, संग साथ सुहाये।।

चेतनदास–

जुगलदासजी महाराज के शिष्यों में चतुरदास, चेतनदास और जीवनदास के नाम लिये जाते है। इनमें चेतनदास ने प्रणामी साहित्य को अपने भावपूर्ण ओर उपदेशपूर्ण पदों से समृद्ध किया है। संसार के मायाजाल से दूर रहने के लिए वे कहते है–

बनी बहु मकडी की जाली, तामें मति फँसियो।

संसार के तत्त्वों से मन को हटाकर जब प्रिय में ही मन को केन्द्रित कर दिया जाए तो एक दिन मन खुद गा उठेगा–

परदेशी बलमुवां आए गए।

उस प्रियतम से प्रेमपूर्ण ढंग से कहा जा सकता है–

मोहन नाचो हमारे आगे। तुमरे नाच हमहीं नीक लागे।।
जग में नाच बहुत रंग होई। तुमरे नाच तुले ना कोई।।

लेकिन प्रियतम कृष्ण और उसकी बंशी का असर बहुत ही गहरा पड़ा–

श्याम रौरे मुरली में मारत बान।
सुतल रहलि चिहुकि उठि जागे, उडि गई नींद शब्द के तान।
मुरली के चोट औषध नहिं लागे, मन मतवाला फिरे बौरान।।[७]

प्रणामी-धारा के अन्य सन्तों मे केशवदास, भीमभाई, जीवन मस्तान, लच्छीदास, महन्त श्रीजीवराम, बिहारीदास, जीवनदास गोपालदास महन्त, परमहंस गोपालदास, आनन्द दास, छज्जूदास, चतुरदास, रतनदास, भवानीभाई, गोवर्द्धनदास, पीताम्बरदास आदि ने प्रणामी साहित्य में योगदान दिया है, किंतु उन संतों की जीवनियाँ पूर्णरूप से मिलती नहीं हैं। हां उनके पद यंत्र तंत्र हस्त लिखित रूप में उपलब्ध है।

---

७. श्री निजानन्द भजनमाला पृ० १७४ (१९१.९२)

जीवन मस्तान—

मिश्रबन्धु ने जीवन मस्ताना का नामोल्लेख किया है और विवरण दिया है, परन्तु जन्म समय नहीं दिया। उन्होंने उनका रचनाकाल सं० १७५७ माना है। मिश्रबन्धु ने उनके प्राणनाथ का शिष्य होने की बात को स्वीकार किया है, लेकिन कवित्व की दृष्टि से साधारण श्रेणी में रखा है। वस्तुतः जीवन मस्तान की रचनाओं में भी कवित्व की चमक दिखाई पड़ती है। उन्होंने निम्न पद्य द्वारा एकमात्र परमात्मा को सहायक बताया हैं और इसके सिवा और सब स्वप्नवत् झूठ दर्शाया है—

जीवन कलाम से जान लिया, एक साहिब साँचा यार है।
माता-पिता सहोदर तीरिया, ये सब पैसे की लार है।
इनको चाहिए खूब खजाना, तब ये करते प्यार हैं।
ताते दुनियां झूठी लगी, इसका क्या इतबार है।
जीवन कलाम से जान लिया, एक साहिब साँचा यार है।

स्वामी प्राणनाथ ने जैसे हिन्दू-मुसलमान एकता पर ज़ोर दिया था, वैसे ही जीवन-मस्तान भी कहते हैं—

पाप पुण्य को करती दुनियां, याही से उरझानी है।
हिन्दू मुसलमां दोउ फिरके, अपनी अपनी बानी है।
मुसलमान बेचून बतावे, यों निराकार कहे ज्ञानी है।
जीवन मस्ताने साँच कहे, ये सतगुरु से हम जानी है।।
हिन्दू अपनी हुए न जाने, मुस्लिम सरियत सारे की।
पंण्डित काजी बोल गुमागुम, मुलां बाँग विचारे की।
रहमत लिल्लिह सबसे न्यारा, यों निराकार कहे ज्ञानी है।
जीवन मस्तान कहै पुकारे, अक्षर ब्रह्म के पारे की।।[८]

अंततः उनको लगता है कि 'जीवन मस्ताने इश्क बिना, सब दुनिया गोते खाती है।' लेकिन इस जीवन को पार लगाने के लिए सतगुरु की भी आवश्यकता है। उन्होंने केवल सद्गुरु को ही संसार से पार लगाने वाला बताया है और उनकी महिमा गायी है—

जीवन मस्ताने सतगुरु बिन, को देवै पार लखाई है।
लखि कुदरत का ख्याल जगत, सब भूलि गया भरमाई है।
मूल वतन साहिब बिसराया, आपु न परत चिन्हाई है।
मृगजल देखिए मृगा ज्यों दौडत, प्यासा ही मर जाई है।।

उनकी रचनाओं की अन्य विशेषता है पंचक की। मिश्रबंधु ने उनके ग्रंथों में पंचक दहाई का भी उल्लेख किया है।

गोपालदास—

साम्प्रदायिक साहित्य में दो गोपालदास हुए हैं और इसलिए दोनों की रचनाओं को अलग करना मुश्किल हो जाता है। फिर भी भाषा के कारण परमहंस गोपालदास 'प्रेमसखी' और महन्त गोपालदास की रचनाएँ स्पष्ट रूप से अलग हो जाती हैं। गोपालदास 'प्रेमसखी' फूलपुर के निवासी थे। उनका जन्म गोरखपुर महामंडलान्तर्गत मधुबन नामक

---

८. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशांक, सं० १९९९ आश्विन, पृ० ८४

ग्राम में हुआ था। उनका जन्म सं० १८१६ के साल में अषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा रविवार के दिन हुआ था। उनके पिता पं. वेदमणि शर्मा और माता सुलक्षणादेवी थीं। गृहत्याग करके देश भ्रमण और धर्म अध्ययन करते हुए वे जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ से द्वारकापुरी में आ गए। सम्भवतः इन्होंने बाद में सूरत के प्रणामी मन्दिर की गद्दी ग्रहण की। अलौकिक ज्ञान एवं लाभप्रद चमत्कार दिखाते हुए वे सं० १९१८ के साल आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा के दिन परमधाम पहुँचे। इनकी मृत्यु के संदर्भ में 'वृत्तांतदीपिका' में श्री प्रयागदासजी ने लिखा है–

ओनइससे संवत सोई जाने। अष्टादश कहि साल बखाने।।
मास आषाढ़ कृष्ण परव आये। परिवा तिथि रविवार सोहाये।।[९]

साम्प्रदायिक साहित्य में 'प्रेमसखी' के पदों का ही अधिक महत्त्व हैं। संभवतः उन्होंने अन्य कोई रचना नहीं की। लेकिन, उनके पदों में मधुर भक्ति के दर्शन होते हैं। उससे लगता है कि उनके पद ही उनको योग्य स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त हैं। प्रियतम कृष्ण के विरह में व्याकुल भक्त का जी पुकार उठता है–

प्रिय मोहे पतिया पठाए। सुनि सुनि जिय अकुलाए।।

विरह को मिटाने के लिए प्रियतम से उसे यही कहना पड़ता है–

तुम जीते मैं हारी पिया मेरे, तुम जीते मैं हारी।
जो तुम कही भई सब सोई, अमरे इजन सवारी।
होत सोई जो करत करावत, होइहै सोई जो विचारी।

उन्होंने मोहमायापूर्ण संसार से छुटकारा पाने के लिए प्रियतमकृष्ण के त्वरित दर्शन की माँग की–

वेगि दरस मोहि दीजे पिया, ना तो तलफि जिअ जाये।
बिन जाने दुख भोग्या, जाने सही नहीं जाये।
जोलों न देखों नयन भर, तोलों अगिनि बराये।

विरह की व्याकुलता के कारण धीरज़ धरना मुश्किल हो गया है–

कैसे के धीर धरूँ पिया, पीर भई जिअ जोर।
तुमही विदेश मोहि डारी, जहाँ अन्धकार घोर।
तुम बिन अपना न कोई, ठग चोरों का शोर।।[१०]

मोहनदास की जीवनी संपूर्ण रूप से नहीं मिलती। लेकिन सूरत की गद्दी पर विराजित मोहनदास महन्त यही हों, तो इनका जन्मकाल सं० १९०० के आसपास में होगा। वे गोरखपुर के निवासी थे। उन्होंने अपने पदों में संसार की माया से छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त की है। क्योंकि –

मातु पिता सुत नारी प्यारी, बन्धु सहोदर भाई।
अंतकाल कोई काम न आई, हंसा अकेला रमि जाई।।

लेकिन सांसारिक मोहमाया के तत्त्वों से छुटकारा दिलाने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता रहती है–

---

९. प्रणामी धर्मपत्रिका (सं० १९१९ पौष) पृ० १५।
१०. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० ४७

बिन सतगुरु को भेद लखाई हो।
तात मात गुरु विद्या पढ़ाई हो, पुरोहित जो करम कराई हो।

जीवन में साधु सेवा और गुरुभक्ति का महत्त्व है—

जो जम कैद करेगा, पीछे समझ पड़ेगा भाई।

प्रियतम की निर्ममता भी देखिए—

ऐसे निपट निठुर श्यामरो। अजहु न लिख भेजे पतिया रे।।

कोई समाचार न मिलने पर शंका भी होती है—

पिया मोर बसे परदेश, संदेस नहि पठाओल रे कि।
दिन दिन बढे कलेस, अंदेसवा लागन रे कि।

जिस जगह इतना विरह सहना पड़ता हो, उस जगह को छोड़ देना ही उचित है। लेकिन जब प्रियतम के समाचार मिलते हैं तब खुशी का ठिकाना नहीं रहता—

सुन लेहु सखियाँ अनूप एक असिया, पतिआ पियाजी के आए।
चलहु सबेरिया अबेर भले रतिया, अगम देश गमि पाए।।

ज्ञानदास—

प्रियतम कृष्ण की स्मृतियाँ जहाँ जुड़ी हुई है, वह भूमि भी प्यारी लगती है। इसीलिए ज्ञानदास ने कहा हैं

जग से है वृन्दावन न्यारा।
देखे कोई वराह संहिता, सब लोकन के पारा।

महंत गोपालदास—

महंत गोपालदास ने प्रणामी मत के सिद्धान्तों को सरल और सुबोध करने के हेतु 'प्रदेशी समाचार' रचना में ब्रह्मांड की उत्पत्ति, ब्रह्म वासनाओं का संसार की माया में फँसना, मूल लीला और धाम की विस्मृत, अन्ततः मोहपीड़ित ब्रह्मप्रियाओं को जाग्रत कराना आदि का वर्णन किया है। पूर्वार्द्ध स्वयं गोपालदास का है, जबकि उत्तरार्द्ध हिस्सा जुगलदास के शिष्य चतुरदास की 'शब्दावली' का है। 'प्रदेशी समाचार' गुजराती भाषा में गोपालदास द्वारा भाषान्तरित हुआ। उन्होंने गोपालदास की बाराखड़ी, मुरलीधर के कवित्त, छत्रसाल के कवित्त ओर अर्जुनदास रचित दानलीला का वर्णन करते हुए इन पदों का संकलन 'कवितावली' की भूमिका में संकलित संतों के जीवन संक्षिप्त परिचय के साथ दिया है।

गुलाबदास—

गुलाबदास पन्ना के निवासी थे। उन्होंने बहुत से पदकीर्तन, ब्रजलीला, रासलीला तथा अन्य चेतावनी के पद हिन्दी तथा गुजराती भाषा में लिखे हैं। इनकी 'बाराखड़ी' में ४० पद हैं। इन पदों में सामाजिक एवं धार्मिक विषयों को —विशेषतः प्रणामी सम्प्रदाय के तत्त्वों को ले लिया है। उदाहरणार्थ—

नना नारी नागिर नाहरी, इनका एक सुझाव।
जीवत सोखे पींडको, मरे नर कलेजो खाय।।
मरे नर कलेजा खाय, नारीका ऐसा फन्दा।
नाहर भक्षन मांस, नारि कर राखे वन्दा।।
कहत 'गुलाबदास' यह नागिन का विष जाय।
नारीविष ना ऊतरे, कीजै कोट उपाय।।

अन्य रचनाकारों में मुरलीदास, अर्जुनदास, सुखलालदास, पुरुषोत्तम, निवाज, रतनेश, हरिकेश, हरिश्चन्द्र, गुलाबसिंह बख्शी, केशवराज, हिम्मतसिंह कायस्थ और प्रताप सिंह बंदीजन आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। लेकिन इनमें से अधिकांश रचनाओं की जानकारी उपलब्ध नहीं होती। कहा जाता है कि हरिकेश ने 'ब्रजलीला' नामक ग्रंथ लिखा। हृदयशाह ने 'हृदयप्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की। मिश्रबन्धु ने किसी रसरंगजी का उल्लेख करते हुए, इनका कविताकाल १७८० ई० दिया है। इसकी रचना ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में है। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है। इनका 'बानी' ग्रन्थ छतरपुर दरबार में उपलब्ध होता है। ये मुसलमान जाति के थे। प्रारंभ में धामी सम्प्रदाय के और बाद में वैष्णव सम्प्रदाय के शिष्य हो गए। इनका निम्नोद्धृत पद दृष्टव्य है—

तेरे महेबूब बाँके ने चसम की चोट मारी है।
खड़ा है सामने ही में जरा नहिं पलक टारी है।
जिलाया उन्हीं ने मुझको जिनों यह सांस डारी है।
तड़पता कदीना जीतो बिछोहा दर्द भारी है।।

शिवनाथ जगतराज के दरबार में थे। उनके रसरंजन ग्रन्थ का उल्लेख मिश्रबंधु ने किया है। अजरदास, ज्ञान चंद, नारायणदास, श्यामदास आत्मादास और लघुरामकृष्णजी की रचनाएँ प्राप्त नहीं हुई, लेकिन उन्होंने सम्प्रदायिक दर्शन को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। राजापुर, पटनानिवासी कृष्णदास—मिश्रबन्धु ने जिस कृष्णदास का उल्लेख किया है उससे संभवतः भिन्न है। कृष्णदास ने अपनी रचना 'संक्षिप्त प्रणालिका' में कहा है—

यह पद पाई गोपिका, कियो न जपतप।
प्रेम लच्छना भक्ति में, भई सदा संयोग।

पं. घनश्याम दत्त शर्मा दिनेश ने शीतलदास, छबीलदास और मेहरदासजी का उल्लेख किया है, लेकिन उनकी रचनाओं का कोई परिचय या कोई प्रमाण नहीं दिया।

आधुनिक युग में प्रणामी साहित्य गद्य और पद्य में समान परिमाण में लिखा जा रहा है। सदानन्द गोस्वामी ने 'पद्मावतीदर्शन' नामक खंड काव्य की रचना की है। दीन कृष्णभिखारी ने भी मध्यकालीन बीतक परंपरा को 'निजानंद सागर' से निभाया है। इसके अतिरिक्त उनके अनेकों भजन समाज में प्रचलित हैं। पं. मिश्रीलाल शास्त्री ने महाप्रभु प्राणनाथ 'मुक्तिपीठ' और मुक्तक पद भी लिखे हैं। साथ ही, प्राणनाथ जी की 'षटरितु' और सिन्धीवाणी का हिन्दी पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार, आचार्य धर्मदास जी ने भी कई पद लिखे हैं। परमधाम में कृष्ण-राधा के रासखेल को देखते हुए वे कहते हैं—

खेलत सब ही सब मिल होरी।।
सखी सहेली मिलकर आई, रंग बिरंगी गोरी।
नवरुत सजि सिनगार उमंगे, आई जुवतन जोरी।।
परमधाम में प्रथम ही खेले, राजश्याम की जोरी।।
खेले ब्रज अरु अखंड रास में, जागनी रंग में बोरी।
धरम दास जो जोरी।।

रामरतनदास 'रत्न' के प्रेमरत्नावली नामक पदों का संग्रह प्राप्त होता है। इसका एक पद द्रष्टव्य है—

मुरली मधुर बजाये सजनी मुरली मधुर बजाये।
भनक पड़ी कानन में जब ही तनमन सुधि बिसराये।।
शेष महेश शारदा भूलहि, ध्वनि में ध्यान लगावें।
देवलोक में देव निहारे, सुमन वृष्टि बरसायें।।
रतन प्राणवंसी में बस रहे, सुनत सुनत सुख पायें।।

पूजारी वृन्दावनदास, हरिशंकर पुराणी, ब्रह्मचारी पूर्णदास, पं. बालकृष्ण प्रणामी 'उदासी', पं. कुबेरदत्त उपाध्याय, मानिकलाल 'दोषी' राधाकृष्ण जी 'प्रणामी', पं. तिलकधारी मिश्र, श्यामबिहारी दुबे, स्वामी सदानंदजी, टीकादत्त शर्मा, ब्रह्मचारी पूर्णानंद शास्त्री आदि की गद्य पद रचनाएँ भी मिलती हैं। कन्हैया लाल भट्ट 'दीन सेवक' लिखित भक्तिपदों का संग्रह 'श्री राजनाम स्रोत' है। राम जी भाई कवि और कृष्णमणिजी की काव्य रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। रामजी भाई की 'प्रणामी गीता' उल्लेखनीय रचना है।

प्रणामी सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त करनेवाले गद्य लेखक और संशोधकों में महाराज आनन्द दासजी, श्री कृष्णप्रियाचार्यजी, पं. कृष्णदत्त शर्मा 'सूरि', पं. कृष्णदत्त शास्त्री, पं. श्यामशरणजी, बल्लभदासजी, पं. कृष्णदासजी, पं. प्यारेलाल, मोहनमुकुन्द संत, मंगलदास शर्मा, श्रीमती विमला मेहता, डॉ. रणजीत साहा, डॉ. माताबदल जायसवाल, मुरलीदास धामी, घनश्याम शर्मा, रणछोड़दास वीरजी, चंचलदास धामी, राजदास धामी, यशवंतलाल दलाल, डॉ. डी. जी. पाण्डेय, श्रीमती कृष्णादेवी, टीकानंदजी, देवकरन आदि ने उल्लेखनीय योगदान दिया है।

संप्रदाय के दार्शनिक मीमांसा ग्रंथों में 'ब्रह्म विज्ञान भास्कर' 'आनंद सागर', 'विज्ञान सरोवर', 'सृष्टिविज्ञान वर्णन', 'प्रणामी धर्मप्रकाश', 'विराट पट दर्शन' और 'परमधाम प्रणालिका' का महत्त्व है। 'ब्रह्म विज्ञान भास्कर' में महाराज आनन्द दास जी ने सृष्टि की उत्पत्ति, कर्मकाण्ड का निरूपण, उपासना कांड से स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ 'ब्रह्मबोध भास्कर' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। पं. कृष्णदत्त शर्मा 'सूरि' लिखित 'विराट पट दर्शन' में विराट के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन तथा विराट के चतुर्दशात्मक भुवनों का विवेचन एवं विराट के नाम के अनन्तर विश्व के सूक्ष्म कारण स्वरूप का प्रतिपादन किया है। 'निजानंद चरितामृत' उनकी एक उत्कृष्ट रचना है। रणछोड़दास वीरजी ने 'परमधाम प्रणालिका', 'सृष्टि विज्ञान वर्णन,'पातालथी परमधाम' में क्षर, अक्षर और अक्षरातीत की सूक्ष्म समीक्षा 'ब्रह्म बोध भास्कर' के आधार पर ही की है। श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज ने अनेक प्राचीन रचनाओं का संशोधन किया है। उनके 'श्रीमतारतम्यनी प्रणालिका' में इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति और लय का संक्षिप्त निरुपण किया है। महाराज मंगलदासजी की 'बीतक दर्शन', आत्मसोपन' और 'आत्मपरिचय' रचनाएँ उपदेशात्मक हैं। पं. प्यारेलाल ने 'भजन संग्रह' आदि में साम्प्रदायिक तत्त्वों को चित्रित किया है।



भारतीय समन्वयी संस्कृति के समर्थक महामति प्राणनाथ

डा. कैसर सुलताना

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़, (उ.प्र.)

महामति प्राणनाथ जी सभी धर्मों के प्रति उदार भावना रखते थे, फिर भी विशेष रूप से उनकी आस्था हिन्दू धर्म के प्रति ही थी। हिन्दू धर्म में भी उन्होंने सर्वेश्वर अक्षरातीत श्रीकृष्ण जी की उपासना का आग्रह किया। महामति जी ने (राधा और कृष्ण) श्री राजश्यामा के युगल स्वरूप की उपासना की। महामति जी की दृष्टि में सभी धर्म समान थे। किन्तु वे श्रीकृष्ण भक्त को ही सबसे बुद्धिमान समझते हैं। उनके विचार में एकमात्र आधार श्रीकृष्ण जी हैं :

बिना श्री कृष्ण जी जेती मत। सो तू जानियो सबे कुमत।।
कुमत सो कहिए किनको। सब थे बुरी जानिए तिनको।।

प्रकाश हि., २१/६

महामति प्राणनाथ जी ने किसी धर्म की आलोचना नहीं की है। वे मानवतावादी धर्म-भावना को लेकर चले हैं। हाँ, औरगज़ेब से विद्रोह के समय उनके मन में पीड़ित हिन्दू जाति के प्रति एक विशेष प्रकार से अनुराग की भावना दिखाई पड़ती है—

पन ने धारी रे पन इत ले चढ़या, कोई उपज्यो असुर घर अंस।
जुध ने करने उठया धरम सों, सब देखे खड़े राजवंस।।

किरंतन, ५८/५

महामति प्राणनाथ जी ने श्रीमद्भागवत को विशेष महत्त्व देकर अपनी वाणी के लिए प्रमाण माना है। शास्त्रों और पुराणों को उन्होंने कपोल-कल्पनाओं से युक्त ग्रंथ नहीं माना है। उसमें उन्होंने हिन्दू धर्म के सार को पाया है। पुराणों के प्रति भी उनमें गहरी आस्था थी—

जिन जानो सास्त्रों में नहीं, है सास्त्रों में सब कुछ।
पर जीव सृष्टि क्यों पावही, जिनकी अकल है तुछ।।

किरंतन, १३/२७

महामति प्राणनाथ जी को वेदों के कर्मकाण्ड के प्रति विशेष लगाव नहीं था। उन्होंने अपनी वाणी में वेदों के अध्यात्म पक्ष की महत्ता स्थापित की है।

महामति प्राणनाथ जी की सभी धर्मों के प्रति सहानुभूति थी। उन्होंने किसी धर्म

को बुरा नहीं माना है। वरन् सभी धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण करने का आग्रह किया और रहस्यमय संकेतों को स्पष्ट किया है। महामति प्राणनाथ जी की महानता इसी बात से प्रगट होती है कि हिन्दू-धर्म में उत्पन्न होकर भी इस्लाम धर्म के प्रति भी उन्हें लगाव था। उनकी धार्मिक भावना संकुचित नहीं थी।

'सनंध', 'खुलासा', 'मारफत सागर' तथा 'कियामतनामा' में उन्होंने कतेब, विशेष रूप से इस्लाम संबंधी धारणाओं, सिद्धांतों को स्पष्ट करके क़ुरान को ईश्वरीय ग्रंथ माना है। महामति प्राणनाथ जी ने इस्लाम-धर्म के धार्मिक ग्रंथ 'क़ुरान शरीफ़' को भी प्रमाण मानकर स्थान-स्थान पर उसका हवाला दिया है। उनकी दृष्टि में परमात्मा एक है। महामति प्राणनाथ जी ने कियामत का वर्णन किया है और कियामत में इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों को बताया है; परन्तु उनका आध्यात्मिक रूप लेकर उसके अर्थों को मौलिकता प्रदान की है। जन्नत (स्वर्ग), दोज़ख़ (नरक), मारिफत, हक़ीक़त, मोमिन, मुसलिम, काफ़िर आदि अनेकानेक शब्दों की उनकी व्याख्या को कट्टर शराअ वाले भले ही स्वीकार न करें, लेकिन उसे नकारा नहीं जा सकता।

श्री प्राणनाथ जी ने 'तारतम बानी' में हिन्दू और इस्लाम धर्म में एकता स्थापित करने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। महामति प्राणनाथ जी के समय में हिन्दू और मुस्लिम में आपस में वैर-भाव था। ज्ञान की ज्योति आ जाने पर इन्होंने निश्चयपूर्वक समझ लिया कि दोनों धर्मों में मौलिक एकता की बातें खोजी जा सकती हैं। महामति प्राणनाथ जी ने दोनों धर्मों के सार को ही ग्रहण करने का आग्रह किया है और सरल भाषा में, जिसमें हिन्दी शब्दों के साथ ही साथ अरबी-फ़ारसी के शब्दों को लेकर दोनों धर्मों में एकता स्थापित की है। आज जैसी स्थिति में महामति प्राणनाथ के समय में भी, दोनों धर्मों में एकता की बहुत आवश्यकता थी। दोनों धर्मों के लोग शब्दार्थ को लेकर बाह्याडम्बरों में लगे हुए थे। महामति ने धर्म की घोषणाओं और सिद्धान्तों को उनके आन्तरिक अर्थों में ग्रहण करने की प्रेरणा दी।

महामति प्राणानाथ जी के भीतर की दिव्य ज्योति ज्ञान की थी। उनका दृष्टिकोण उदार था। उनकी दृष्टि में क़ुरान शरीफ़ और पुराण दोनों एक ही सत्य को बतानेवाले हैं। सर्वप्रथम धार्मिक ग्रंथों की एकता पर बल दिया है—

या क़ुरान या पुरान। ए कागद दोऊ परवान।।
या के मगज मायने हम पास। अन्दर आए खोले प्राणनाथ।।

प्रकाश हि. ३७/९६

महामति प्राणनाथ जी ने अपनी दिव्य ज्ञान की ज्योति से दोनों धर्मों को समान रूप से देखा है। अन्तर्ज्ञान के आ जाने पर भेद-भावना का स्वतः ही अन्त हो जाता है। सभी मनुष्यों की आत्माएँ एक हैं। भाषा और बाह्य भेष-भूषा के कारण अन्तर दिखाई पड़ता है। आन्तरिक अर्थों को ही श्री प्राणनाथ जी ने मान्यता दी है। प्राणनाथ जी के समय में औरंगज़ेब का राज्य था। उसकी धार्मिक नीति कट्टर थी। दूसरी ओर कुछ हिन्दू भी क़ुरान शरीफ़ को असुरों का ग्रंथ समझते थे। महामति प्राणनाथ जी ने दोनों धर्मों के सत्यस्वरूप को समझा और जन-जन में एकता स्थापित करने का प्रयास किया।[1]

---

१. डा. नरेश पंड्या : प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य — पृ. २५६

प्राणनाथ जी का विचार था कि जब तक धर्मों का आन्तरिक स्वरूप नहीं देख लिया जायेगा, तब तक मैत्री-भाव नहीं हो सकता है—

लिए मायने ऊपर के, एते दिन इन जहान।
मूल मायने पाए बिना, सुध ना पड़ी व्रधहान।
करना सारा एकरस, हिन्दू मुसलमान।
धोखा सबका भान के, सबका कहूँगी ग्यान।।

सनंध, ३/२-३

हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियाँ एक हैं, क्योंकि परमेश्वर सबका एक ही है। सब उसी की आत्माएँ हैं, यह समझकर परस्पर भेद को दूर किया जाना चाहिए। धर्म के नाम पर जो द्वेष-भाव और संहार होता है, उसकी श्री प्राणनाथ जी ने अपनी वाणी में निन्दा की है। महामति प्राणनाथ ने 'सनंध' ग्रंथ में दोनों धर्मो में प्रचलित रूढ़ियों का विरोध किया और मुसलिम धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझाया। महामति प्राणनाथ जी कहते हैं कि अगर ज्ञान की ज्योति मनुष्य के अन्दर है और वह विचारपूर्वक देखे तो समझ सकता है कि आपस की शत्रुता कितनी मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि एक ही परमात्मा की समस्त आत्माएँ हैं—

भेष जुदे-जुदे खेलहीं, जाने खेल अखण्ड।
ए देत देखाई सब फना, मूल बिना ब्रह्मंड।।
खसम एक सबन का, नाहीं, दूसरा कोय।
ए विचार तो करै, जो आप साँचे होय।।

सनंध, ५/२१-२२

महामति प्राणनाथ जी ने धार्मिक एकता में सिद्धान्त पक्ष के साथ उसका व्यावहारिक पक्ष लिया है। जो कुछ उन्होंने कहा उन्होंने जीवन में करके दिखाया इस संबंध में डा. नरेश पंड्या जी का विचार है— "वास्तव में यह कहना उचित होगा कि सर्व-धर्म समभाव की बातों को साधारण रूप में श्री प्राणनाथ से पूर्व कबीरदास जैसे सन्त एवं भक्तों ने भी मान्यता दी थी, लेकिन सैद्धान्तिक एकता बताकर व्यावहारिक स्वरूप देने का श्रेय श्री प्राणनाथ जी को ही मिलता है। महामति प्राणनाथ जी ने 'खुलासा' ग्रंथ में शास्त्रों के कथानकों और मिथकों में भी एकता की घोषणा की है। क़ुरान शरीफ़ और पुराणों का सारांश बताया है। इसी ग्रंथ में महामति ने हिन्दू और मुसलिम धर्मों की एकता को स्थापित किया है। दोनों ही धर्मों के लोग एक-दूसरे को अपने से कम समझते थे। उन्होंने ऐसे लोगों के मिथ्या गर्व और घमंड को दूर किया। आपस में राग-द्वेष को दूर किया और प्रेममय मार्ग दिखलाया। महामति प्राणनाथ जी किसी भी धर्म विशेष को अधिक महत्त्व देने या छोटा-बड़ा कहने के विरोध में थे।"[२]

आपने मनुष्यों की संकीर्ण भावना का विरोध किया है—

हिन्दू कहे धनी आवसी, वेदों लिख्या आगम।
कह्या हमारा होयसी, साहेब आगे हम।
मुसलमान कहें आवसी, सो हमारा खसम।

---

२. डा. राजबाला सिडाना—प्राणनाथ और उनका साहित्य—पृ. २५६

लिख्या है कतेब में, आगे नबी हमारा हम।।
यों लड़के लोग जुदे हुए, पर खसम न होवे दोय।
रब्ब आलम का न टरे, जो सिर पटके कोय।।

खुलासा, १३/८१-८३

महामति प्राणनाथ जी ने धर्म को समझने के लिए सदगुरु का होना आवश्यक बताया है। बिना सद्गुरु के ज्ञान की ज्योति हृदय में प्रवेश नहीं करती है। उन्होंने कहा है कि धर्म के ऊपरी अर्थ लेने से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार दोनों धर्मों के लोगों को एक सत्य सनातन धर्म दिखाया है। महामति प्राणनाथ जी ने आन्तरिक अर्थों पर ही बल दिया है—

फिरके सबों ने यों कह्या, ए जो दुनियां चौदे तबक।
ढूँढ़-ढूँढ़ के सब थके, पर पाया नाहीं हक।।
वेद कतेब पढ़-पढ़ थके, केहे केहे थके इलम।
कह्या तिनों मुख अपने, ठौर कायम न पाया हम।।

खुलासा १६/२-३

महामति जैन और बौद्ध धर्म के अहिंसा तत्त्व के प्रशंसक रहे। वे पशु बलि और मानव बलि के विरोध में थे उन्होंने जीव-जन्तुओं पर दया को बड़ा महत्त्व दिया है। समस्त जीवों से प्रेम करना ही उनका लक्ष्य है—श्रीकृष्ण से प्रेम करनेवाला इन सबसे बड़ा है—

कोट करो नरमेध, अश्व मेध अनंत।
अनेक धरम धरा विषे, तीरथ वास वसंत।।
सिद्ध करो साधना, विप्र मुख वेद वदन्त।
सकल क्रिया सूं धरम पालतां, दया करो जीव जंत।।
पर न आवे तोले एकने, मुख श्री कृष्ण कहंत।।

किरंतन, १२७/२-३

महामति प्राणनाथ जी ने कबीर जी की बड़ी महिमा बताई है, भले ही कबीर दास ने निर्गुण की उपासना की परन्तु श्री प्राणनाथ जी ने ईश्वरीय प्रेम को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कबीरदास की भाँति ईश्वर को पाने के लिए बाह्याडम्बरों का विरोध किया। जाति-पाँति का भेदभाव, मूर्ति पूजा का विरोध इन सबमें श्री प्राणनाथ में और सन्त कबीरदास में समानता दिखलाई देती है। डा. राजबाला सिडाना का इस संबंध में यह मत है—"कबीर से प्राणनाथ जी का हिन्दू-मुसलिम एकता और दोनों की पाखंडपूर्ण रीतियों और सामाजिक कुरीतियों का विरोध करने में मतैक्य है। महामति प्राणनाथ जी ने कबीरदास जी की भाँति बाह्याडम्बरों का विरोध किया और ईश्वर को पाने के लिए सहज प्रेम को ही महत्त्व दिया"—

सात बेर अस्नान करो पेहनो ऊन उतम कामल।
उपजो उत्तम जात में, पर जीवड़ा न छोड़े बल।।
सौ माला वाओ गले में, द्वादस करो दस बेर।
जो लौं प्रेम न उपजे पीउसों, तोलों मन न छोड़े फेर।।

किरंतन, १५/४६

डा. नरेश पंड्या कहते हैं—"इस प्रकार, महामति स्पृश्य-अस्पृश्य- निर्मलता-सत्य

आदि के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। सिद्धान्त एवं साधना पक्ष की दृष्टि से श्री प्राणनाथ की दार्शनिक धारा वैष्णव मत के ही निकट है।"[3]

महामति प्राणनाथ जी किसी संप्रदाय के साथ संबद्ध नहीं थे। वे सभी संप्रदायों के मूल—एक सत्य धर्म की प्रतिष्ठा के आग्रही थे। प्राणनाथ जी ने परब्रह्म और उनकी आनन्द शक्ति राज-श्यामा के युगल-स्वरूप की उपासना को प्रतिष्ठित किया। भक्ति को ही उसे प्राप्त करने का साधन बताया। स्वलीलाद्वैत ब्रह्म की प्राणनाथ की वाणी में विशेष रूप से प्रतिष्ठा है।

कतिपय विद्वानों का कहना है कि श्री प्राणनाथ जी की वाणी में सूफ़ी संप्रदाय के इश्क़-हक़ीक़ी की झलक मिलती है। सूफ़ी प्रेम इश्क़े मज़ाजी—संसारी से आध्यात्म की ओर बढ़ता है। महामति वाणी में आध्यात्मिक प्रेम और संबंध को संसारी शब्द मिले हैं। महामति प्राणनाथ जी ने प्रेम को बहुत महत्त्व दिया है। वे प्रीतम का प्यार ही चाहते हैं। उन्हें किसी पद सम्मान की आवश्यकता नहीं है। प्रीतम का प्यार ही सबसे प्रिय और उच्च वस्तु है—

मेरे धनी तुमारी साहेबी, अपनी राखो आप।
इसक दीजे मोहे अपनी, मैं तासों करौं मिलाप।। किरंतन, ६२/२

युगपुरुष श्री प्राणनाथ :—

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है। इसमें अपनी बहुत-सी विशेषताएँ हैं। महामति प्राणनाथ जी के 'कुलजम स्वरूप' में भारतीय संस्कृति का अच्छा चित्रण हुआ है। श्री प्राणनाथ जी की वाणी का सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रीय महत्त्व भी है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक तीनों में ही संस्कृति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। श्री प्राणनाथ जी में राष्ट्रीय नवजागरण की भावना भी है। महामति प्राणनाथ जी समस्त भारतीय संस्कृति को अपने में समेटे एक युगपुरुष के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हुए थे।

महामति प्राणनाथ जी ने कुलजम स्वरूप में भारतीय संस्कृति और भारतवासियों के आचार-विचार, रीति-रिवाज़, उपासना-पद्धति, विविध विश्वासों, प्रथाओं आदि सभी अंगों पर दृष्टिपात किया है। श्रीकृष्ण को उन्होंने भारतीय संस्कृति का केंद्र बिन्दु माना और उनकी लालाओं को वाणी में स्थान दिया। परब्रह्म श्रीकृष्ण जी से संबंधित पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण जी की लीला को अनेक कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। चांडूर-मुष्टिक की कथा जो कि पुराणों में है, इसको श्री प्राणनाथ जी ने भी अपनी वाणी में स्थान दिया है। चाणूर और मुष्टिक दो पहलवान थे, जिनको श्रीकृष्ण जी ने पछाड़कर मार दिया था—

तोलों भेष जो पीऊ का, कुबला फील मारया।
चांडूल मुष्टक संघार के, जाए कंस पछाड़या।
प्रकाश हिन्दुस्तानी, ३१/५२

महामति प्राणनाथ ने श्रीकृष्ण जीं की विविध लीलाओं विशेष कर उन की ब्रज से मथुरा गमन की पौराणिक कथा का वर्णन किया—

खेले पिछले साथ में, सात दिन तांई।
अक्रूर चल्या बुलाए के, पौंहोंचे मथुरा माहीं ।।
प्रकाश हिन्दुस्तानी, ३१/५१

---

३. डा. नरेश पंड्याः प्राणनाथ साहित्य और सम्प्रदाय, पृ० ३०३

श्रीकृष्ण जी से संबंधित समस्त लीलाओं का वर्णन महामति प्राणनाथ जी ने किया है। भारतीय संस्कृति में सामाजिक संस्कारों की अति महत्ता रही है। जन्म-संस्कार, विवाह-संस्कार आदि पर गाने-बजाने का काम भी होता है। महामति प्राणनाथ जी भारतीय संस्कृति के पोषक हैं, उनकी वाणी में भारतीय संस्कारों का भी वर्णन है।

कृष्ण जी के जन्म समय का वर्णन महामति प्राणनाथ जी ने किया है। कृष्ण के जन्म के समय ब्रजवासियों का हर्ष और उल्लास दिखाया है। इस हर्ष और उल्लास का वर्णन बड़े ही मनमोहक रूप से किया है। किस प्रकार पुत्र-जन्म पर बधाई देते हैं और माता-पिता पुत्र के उत्पन्न होने पर प्रसन्न होते हैं। दूध-दही का भारतीय संस्कृति में बड़ा महत्त्व है। इसको पवित्र माना जाता है और शुभ कार्यों के समय इनका प्रयोग किया जाता है, इसका वर्णन भी है—

आज बधाई ब्रज घर-घर, प्रगट्या श्री नन्द कुमार।
दूध दधीए उमर धोए, तोरण बाँधे ब्रज नार।
एक बीजी ने छाटे नाचे, उमंग अंग न माए।
अनेक विधना बाजा रस बाजे, गृह गृह औछव थाए।।

किरंतन, ५१/१-२

महामति प्राणनाथ जी ने ब्रज के उत्सवों का भी वर्णन किया है। वहाँ पर प्रत्येक समय मनुष्य सुख और आनन्द में रहता है। बाजे और नाटक के साथ नृत्य आदि का वर्णन किया है। धन-धान्य के भंडार भरे हुए हैं। वहाँ की प्रसन्नता का और सुखों का पार नहीं है—

उलसे गोकल गाम आखूं, हरष हेत अपार।
धन धान वस्त्र भूषण, द्रव्य अखूट भंडार।।
विवाह जनम नित प्रते, आखे गाम अनेक होए।
थोड़ूक कारज कांइक थाए, तहाँ तेडावे सहू कोए।।
अनेक बाजंत्र नाटारंभ, धन खरचे अहीर उमंग।
साथ सहू सिनगार करी, अमें आवुं अति उछरंते।।

कलस/गु. ८/४३:४५

भारतीय संस्कृति में बाजा-बजाना, संगीत, नृत्य का प्राचीन काल से ही बहुत महत्त्व है। शुभ कार्यों पर गाना-बजाना होता है। मांगलिक और शुभ कार्यों को भारतीय संस्कृति में बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है—

ब्राह्मण भाट गुणीजन चारण, मलया ते मांगण हार।
निरत नटवा गंधर्व, राग संगीत थेई थेई कार।।

किरंतन, ५१/७

भारतीय संस्कृति में विविध विश्वासों को, महत्ताओं को मनुष्य ने अपने जीवन का अनिवार्य अंग माना है। महामति जी ने इन बातों को अधिक महत्त्व न देते हुए भी किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर इन बातों की ओर ध्यान दिया है कि विनाश या आपत्ति काल अथवा विशेष संयोग के समय कुछ चिह्न अवश्य प्रकट होते हैं। महामति प्राणनाथ जी ने धूम्रकेतु या पुच्छल तारे की ओर संकेत किया है—

प्रगट निसांन रे धूमरकेत खे मास, पर सुध न करै अजूं कोई इत।

बेगे ने पधारो रे बुध जी या समै, पुकार कहे महामत।।

किरंतन, ५८/२१

महामति प्राणनाथ जी ने कलियुग को शास्त्रों के अनुसार निकृष्ट माना है कि उस समय पाप बहुत बढ़ जायेंगे। इस प्रकार ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति में जो विधि प्रकार के विश्वास पाये जाते हैं, उन विश्वासों को महामति जी ने भी अपनी वाणी में स्थान दिया है–

सास्त्रे अवरदा कही कलियुग की, चार लाख बत्तीस हजार।
काटें दिन पापें लिख्या मांहे सास्त्रों, सो पाइये अर्थ अन्दर के विचार।।

किरंतन, ५८/१७

महामति प्राणनाथ जी ने सर्वप्रथम सत्रहवीं सदी में हिन्दू और मुसलिम में एकता स्थापित की, जिसमें सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों की प्रधानता थी। उन्होंने हृदय की पवित्रता और शुद्धता पर बल दिया है। डा. चन्द्रकान्त मेहता इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–"प्रत्येक धर्म की बाह्याचार की दीवारें थीं, जिनके कारण धर्म का अलगाव दिखाई देता था। महामति जी उन दीवारों को गिराकर धर्मों की मूलभूत एकता का दर्शन कराते हुए, हमें संकीर्ण पथ से हटाकर परम तत्त्व प्राप्ति के राजमार्ग पर ले आए।"

महामति प्राणनाथ जी के पूर्व हिन्दू समाज इस्लाम को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता था। वे लोग उसको अपने से अलग और विदेशी धर्म मानते थे। आपस में भेद-भाव की भावना थी। हिन्दू समाज इस्लाम धर्म को एक समान रूप में स्वीकार नहीं करता था और मुसलमान हिन्दुओं को काफ़िर मानता था। वैर-भाव दोनों के मन में था। इसका ज्ञान महामति जी की वाणी के द्वारा हो जाता है कि आपने दोनों धर्मों में आपस में एकता स्थापित करना आवश्यक समझकर धर्म समन्वय का उपदेश दिया है। वाणी के अध्ययन के-उपरान्त यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आपस में समानता की भावना कितनी आवश्यक है।

दोनों धर्मों के बीच वैर-भाव की दीवारें खड़ी थीं। दोनों धर्मों ने प्रेमपूर्वक एक दूसरे को नहीं समझा था। हिन्दू अपने को उत्तम और मुसलमान अपने को पाक मानता था–

ब्राह्मण कहें हम उत्तम, मुसलमान कहें हम पाक।
दोऊ मुट्ठी इक ठौर की, इक राख दूजी खाक।। सनंध, ४०/४२

महामति ने बाह्य रूप, जाति, वर्ग, संप्रदाय आदि पर नहीं मनुष्य को मन की स्वच्छता और आत्म जागृति के मानदंड से मापने का आग्रह किया।

महामति प्राणनाथ जी ने अपने ज्ञान के द्वारा एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जो समस्त मनुष्यों में एकता स्थापित कर सके। उनका धर्म-दर्शन नवीन था। किसी भी संप्रदाय का उन पर प्रभाव नहीं कहा जा सकता अपितु सबका समन्वयात्मक रूप दिखायी देता है। भक्ति काल के संप्रदायों के शुद्धाद्वैत, मुस्लिम एकेश्वरवाद, सूफ़ीमत, कबीर संप्रदाय तथा अनेक धर्म-ग्रंथों एवं सन्त वाणियों के गूढ़ ज्ञान का सार महामति जी की वाणी में देखने को मिलता है।

शुद्धाद्वैत के प्रवर्त्तक बल्लभाचार्य ने भक्ति में प्रेमलक्षणा भक्ति पर ही बल दिया है। महामति प्राणनाथ जी ने भी प्रेमलक्षणा भक्ति को ही महत्त्व दिया है और इसे

सर्वोपरि माना है। यह संप्रदाय भगवत्-प्रीति-आसक्ति और स्नेह और समर्पण पर बल देता है। कृष्णजी की लीला का इसमें महत्त्व है। महामति प्राणनाथ जी ने भी प्रेम के द्वारा ही सर्वेश्वर श्रीकृष्ण को पाने को कहा है। बल्लभाचार्य जी की प्रशंसा में वे कहते हैं—

जो सुख याथें उपज्यों, सो कह्यो न किनहूँ जाय।
पात्र होय पूरा प्रेम का, तिनका रस ताही में समाय।।
ए वतनी सों गुझ कीजिए, जो खेंचै तरफ वतन।
प्रेमें मैं भीगे रहिए, पीऊ सों आनन्द घन।।

किरंतन, ३५/३१-४२

महामति प्राणनाथ जी ने श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माना है और उनसे प्रेम करने को कहा है—

श्रीकृष्ण जी सों प्रेम करे बड़ी मत। सो पोहोंचावै अखंड घर जित।।
ताए आड़ो न आवै भवसागर। सो तो अखंड सुख पावै निज घर।।

प्रकाश हिन्दुस्तानी, २१/८

शृंगार वर्णन—

भारतीय संस्कृति में सदैव से ही शृंगार का बहुत ही महत्त्व रहा है। महामति प्राणनाथ जी ने भी प्रियतम श्रीकृष्ण, ब्रज वासियों, श्री राजश्यामा के शृंगार का अलौकिक वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति में शृंगार से पूर्व स्नान है। प्राणनाथ जी ने परमधाम के स्नान-वर्णन में यमुना नदी का स्नान बताया है—

उठके नहाइए जमुना जी, कीजै सकल सिनगार।
साथ सनमंधी मिलके, खेलिए संग भरतार।।

किरंतन, ८०/१४

महामति प्राणनाथ जी ने शृंगार में स्नान, वस्त्र, आभूषणों का मनमोहक एवं सटीक वर्णन किया है। श्री कृष्ण के शृंगार के साथ सखियों और ब्रज-वासियों के शृंगार का भी वर्णन महामति प्राणनाथ जी ने किया है कि उस समय शृंगार के आभूषणों की अधिकता भी थी। 'सिनगार' ग्रंथ में केवल परब्रह्म के शृंगार का वर्णन ही मिलता है—

कंठ हार सजे सिनगार, नेत्र समार सोभे मुखार।
संग आधार करे विहार, महामति काज सरै।। किरंतन, १२३/४

गुरु का महत्त्व—

महामति प्राणनाथ जी ने गुरु की बहुत महिमा गाई है। उनकी दृष्टि में परमात्मा का ज्ञान करानेवाले गुरु ही हैं। गुरु ही मन के विकारों को दूर करनेवाले हैं। महामति प्राणनाथ जी ने अपने सद्‌गुरु श्री देवचन्द्र को ब्रह्म के समान सम्मान दिया है। भारतीय संस्कृति में गुरु की महत्ता सदैव रही है। ब्रह्म को पाने की इच्छा हो तो सतगुरु के प्रति समर्पित हो जाने में ही कल्याण है—

सतगुरु संग करे आप ग्रही, वचने धमावे निसंक।
रस थई कस पूरे कसौटी, त्यारे आड़ो न आवै प्रपंच।।

किरंतन, ७०/६

महामति प्राणनाथ कठोर साधनाओं एवं यातनापूर्ण कसौटियों को अनावश्यक मानते थे। अपनी संगी आत्माओं को वे फूल की पांखुरी छूने जैसा कष्ट भी नहीं देना चाहते—

अब दुःख ना देऊँ फूल पाखंडी, देखूं शीतल नैन।
उपजाऊँ सुख सब अंगों, बोलाऊँ मीठे बैन।।

कलस हिन्दुस्तानी, २३/४

प्रकृति प्रेमी—

भारतीय संस्कृति का विकास ही प्रकृति की गोद में हुआ है। इसी कारण यहाँ के मानव आदि काल से प्रकृति को अधिक महत्त्व देते आए हैं। यहाँ पर नदी, वृक्ष, फूलों, वनों को बहुत अधिक महत्त्व मिला है। मनुष्य आरंभ से ही प्रकृति प्रेमी है। महामति प्राणनाथजी की वाणी में प्रकृति का चित्रण बहुत ही मनमोहक ढंग से हुआ है। उन्होंने अपनी प्रकृति प्रेम संबंधी भावना को उत्कृष्ट रूप दिया है—

आ समेना व्रंदावन, जुओ रे आ सोभा चन्द।
फूलड़े अनेक रंग, रमे साथ परवरी।
कोतर कोयल स्वर, कपोल घूमे चकोर।
मृग बांदर मोर, नाचत फेरा फेरी।।

श्री रास, १६/४-५

प्रार्थना—

भारतीय संस्कृति में ईश्वर प्रार्थना का बहुत अधिक महत्त्व है। महामति प्राणनाथ जी ने श्री राजश्यामा को पूर्ण व्रह्म माना है और उनकी ही प्रार्थना की है। उनकी परब्रह्म के प्रति अट्ट श्रद्धा और निष्ठा रही—

श्री स्यामा वर सत्य है, सदा सत सुख के दातार।
विनती एक जो वल्लभा, मों अंगना की अविधार।।

निजनाम मंत्र

समन्वय भावना—

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें समन्वय की भावना बहुत अधिक है। इस संस्कृति को समन्वय प्रधान संस्कृति कहा जाता है। महामति प्राणनाथ जी ने कर्म-ज्ञान और भक्ति का एक साथ समन्वय किया है। महामति जी ने तीनों का एक साथ समन्वय दिखाया है। उन्होंने तीनों को ही महत्त्व दिया है। महामति जी ने उपासना के लिए परब्रह्म के प्रेम को ही सबसे सबल साधन माना है।

वस्तुतः समग्र प्रणामी साहित्य अपनी समस्त मौलिक विशेषताओं के साथ किसी भी धारा विशेष में समाहित नहीं होता बल्कि सभी धाराओं को अपने में समेटते हुए सर्वथा नवीन, तात्त्विक एवं एकात्मक विचारधारा को स्पष्ट करता है। 'कुलजम स्वरूप' जैसे प्रसिद्ध और उच्च कोटि के ग्रन्थ के प्रणेता के सामने यही प्रमुख दृष्टिकोण था—संसार के समस्त भेद-भाव को मिटाकर सारी दुनिया को एक सूत्र में पिरोना तथा सभी प्रमुख धर्म-सिद्धातों को समन्वित रूप प्रदान करना। प्राणनाथ की वैचारिक उदारता तथा व्यापकता को स्पष्ट करने के लिए धर्म और दर्शन के क्षेत्रों को आधार मानना समीचीन है।

प्राणनाथ की धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना के स्पष्टीकरण के निमित्त यदि 'कुलजम स्वरूप' का गंभीर और निष्पक्ष अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि इस ग्रन्थ में धार्मिक एकीकरण की बात राम-कृष्ण-ईसा-मुहम्मद; वेद-कतेब (चार आसमानी

किताबें—जबूर, तौरेत, इंजील, कुरान शरीफ) की एकता के रूप में अनेक बार दोहराई हैं।

विश्व के प्रायः सभी धर्मों में निराकार अथवा साकार के रूप में इष्टदेव को स्वीकार किया गया है। चाहे उसे अनेक नाम दिये गए हों, किन्तु वास्तव में वह मूल पुरुष अथवा परमात्मा ही है। प्राणनाथ जी के अनुसार वह सभी धर्म-सम्प्रदायों में एक ही है। उसमें भेद देखना अज्ञानता का ही सूचक है—

नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।

खुलासा, ३८/१२

धार्मिक ग्रन्थों की दृष्टि से भी प्राणनाथ विभिन्न सम्प्रदाओं में मैत्री-भाव स्थापित करना चाहते हैं। पुराण हिन्दू-धर्म की आधार शिला माने जाते हैं और क़ुरान शरीफ़ इस्लाम धर्म का प्राणतत्त्व है। प्राणनाथ जी ने सर्वप्रथम पुराण और क़ुरान के मूल में विद्यमान समन्वय को खोज निकाला। यदि उस युग में उनके इस महत्त्वपूर्ण कृतित्व पर ध्यान दिया गया होता तो हिन्दू-मुस्लिम के बीच आज तक चले आने वाली वैर-विरोध की खाई को एक सीमा तक पाटा जा सकता था।

जहाँ तक उनकी साधना-पद्धति की एकता का प्रश्न है, प्राणनाथ यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म-प्राप्ति का मुख्य उपाय और साधना अनन्य प्रेम-लक्षणा भक्ति ही है। इसलिए उन्होंने ईश्वरीय प्रेम (इश्क़ हक़ीक़ी) को इष्ट देव की उपासना में सर्वप्रथम स्थान दिया और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि हिन्दू-यहूदी-ईसाई-इस्लाम आदि सभी धर्मों का ईश्वरोपासना प्रेम-तत्त्व पर ही आधारित है। इसलिए प्रेम-भाव की खोज प्रत्येक धर्म-साधक का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए।

प्रत्येक धर्म-दर्शन में देवी-देवता, फ़रिश्ते तथा पीर-पैग़म्बर आदि की परम्परा रही हे। इन देवी-देवताओं का नामकरण तथा स्थापना करते समय धार्मिक अनुयायियों ने भेद-बुद्धि से काम लिया है। मतभेद तथा विरोध की ऐसी स्थिति उत्पन्न की है कि एक धर्म के फ़रिश्ते तथा देवी-देवता दूसरे धर्म के फ़रिश्ते तथा पीर पैग़म्बर से मेल नहीं खाते। किन्तु यह स्थिति सतही ही अधिक है। यदि इन सब चरित्र-गुणों का तटस्थ और सूक्ष्म निरीक्षण किया जाए तो ये सभी दैवी सम्प्रदाओं से युक्त तथा मानव कल्याण की भावना से पूर्ण दिखाई देते हैं। वस्तुतः देवता तथा पैग़म्बर साधारण मनुष्य से ऊपर उठकर अर्थात् अति मानवीय स्थिति में लोक-कल्याण के लिए ही अवतरित होते हैं। यदि धर्म या सम्प्रदाय की संकीर्णता का चश्मा उतार कर देखा जाए तो उनमें मात्रात्मक भेद ही मिलेगा, गुणात्मक नहीं। इस तथ्य का संकेत प्राणनाथ ने अपनी वाणी में अनेक स्थलों पर किया है—

विस्नु अजाजील फिरस्ता, ब्रह्मा मैकाईल।।
जबराईल जोस धनीय का, रुद्र तामस अजराईल।।

खुलासा, १२/४।।

धार्मिक साधना के कर्म काण्ड पक्ष की एकता का स्पष्टीकरण भी प्राणनाथ के द्वारा किया गया है। कर्म-काण्ड की चार अवस्थाओं में से शरीयत अवस्था की दृष्टि से सभी धर्मों के कर्म काण्ड भिन्न-भिन्न हैं। इस भिन्नता से ऊपर उठकर सभी धर्मों के महापुरुषों के उपदेशों को प्रचारित करना तत्कालीन परिस्थितियों में एक ज़ोख़िम भरा काम था।

किन्तु प्राणनाथ ने यह सम्भव कर दिखाया। रास लीला को आध्यात्मिक दृष्टि देकर मुसलमानों के लिए ग्राह्य बनाना और क़ुरान शरीफ़ को दिव्य पुस्तक बताकर उसके सुन्दर उपदेशों को जनता में निर्भीक होकर प्रचारित करना—उन्हीं के बल बूते का काम था। उन्होंने कर्म-काण्ड के बाहरी पक्ष मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, जप-माला, तिलक आदि का विरोध किया और नाम को महत्त्व देते हुए परमात्मा के स्वरूप और परमधाम की लीलाओं का चिन्तन ही सर्वश्रेष्ठ पूजा माना, जो मनुष्य को अखण्ड मुक्ति-धाम ले जाती है। देवोपासना नाशवान देवलोक में ले जाती है, जहाँ मुक्ति सम्भव नहीं है। पुण्य-फल क्षीण होने पर पुनः मृत्युलोक में जन्म मरण के बन्धन को भोगना पड़ता है। कतेब ग्रंथ में परमात्मा के अलावा अन्य किसी को पूजना 'कुफ्र' माना है। प्राणनाथ ने भी अनन्य भाव से पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की उपासना पर ही बल दिया है।[४]

स्वामी प्राणनाथ जी ने सृष्टि को तीन प्रकार का माना है। ब्रह्म सृष्टि (मोमिन) ईश्वरीय सृष्टि (फ़रिश्ते) और जीव सृष्टि (आम खलक)। ब्रह्म-सृष्टि को सर्वोत्तम माना गया है। परमात्मा से प्रेम और अपना सब कुछ परमात्मा की प्राप्ति में बलिदान करने वाली ही ब्रह्म सृष्टि है। ईश्वरीय सृष्टि उपासना ज्ञान और संयम से पूर्ण जीवन व्यतीत करती है। जीव सृष्टि सांसारिक माया-मोह में लगी हुई है। महामति प्राणनाथ जी ने तीनों की उत्पत्ति, आचरण और मुक्ति में अन्तर बतलाया है। तीनों प्रकार की सृष्टि का अलग-अलग स्थान माना गया है। ब्रह्म सृष्टि परमधाम की स्वामिनी है। सामान्य (आम) जीव इस नाशवान संसार में ही रहते हैं—

जो नूरपार अरस—अजीम, ए जो बेबरा क्यामत का।
मोमन दुनी की तफावत, ए फना ओ बीच बका।।

छोटा कयामतनामा १/१

इसी प्रकार अपने 'कयामतनामा' में मोमिनों (ब्रह्म सृष्टि) और आम जीवों में अन्तर स्थापित किया है। ब्रह्म सृष्टि इस नश्वर संसार में रहते हुए भी परमात्मा और परमधाम का स्मरण करती है। ब्रह्म सृष्टि को संसार छोड़ने के उपरान्त परमधाम में निवास मिलता है।

मर मर सब कोई जात है, चाहिए मोमन मौत फरक।
दुनिया बीच गफलत के, मोमन जागें दिल अरस हक।।

छोटा कयामतनामा १/१

ब्रह्म से मिलन अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए जीवात्मा के जागरण की चर्चा प्रायः सभी प्रसिद्ध धर्मों और दर्शनों में की गई है। जब रूह (आत्मा) फ़रांमोश रहती है तो उसमें अहम् जाग्रत होता है और वह अपने विवेक से सत्य-झूठ, दुख-सुख का निर्णय नहीं कर पाती। सांसारिक मोह-माया, ज्ञान और अज्ञान के प्रति जागरूक होकर अपने नित्यस्वरूप अखंड परमधाम का ध्यान आना ही जागनी लीला का लक्ष्य हैं। संसार में जागनी के महत्त्व की चर्चा करते हुए महामति ने लिखा है—

अब जाग देखो सुख जागनी ए सुख सुहागिन जोग।
तीन लीला चौथी घर की चारों को यामे भोग।।

कलस १/२३

४. डा० राजकिशोर पाण्डेय : हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल—पृ० ३६६

जाग्रत ज्ञान और परमात्मा की कृपा से ही आत्म-मुक्ति सम्भव है। महामति प्राणनाथ जी ने रूह (आत्मा) की क़यामत मानी है। इस आत्मा का जाग जाना ही क़यामत है।

अब तुम निकसो नींद से, आए पोहोंची सरत।
कौल किया था हक ने, सो आई क़यामत।।

खुलासा, १८/१

प्रेम स्वरूपा ब्रह्म सृष्टि की फ़रामोशी तो प्रियतम के प्रेम में डूब कर ही दूर होती है। स्वामी प्राणनाथ के अनुसार विश्व के प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थों में ब्रह्म सृष्टि के सांसारिक अवतरणों और जागनी रास के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। माहेश्वर तन्त्र, भविष्यपुराण और श्री मद्भागवत में इसका उल्लेख विशेष तौर पर प्राप्त होता है। साथ ही, कतेब ग्रंथों में इस अन्तिम दिन (आख़िरत और क़यामत) का वर्णन करने आदि का संकेत इस जागनी लीला की ओर ही है।

क़यामत के संदर्भ में जागनी को समझना अपेक्षित है। क़यामत का अर्थ है—नश्वर शरीर में मृतक के समान सोई हुई आत्मा का फिर से जाग जाना तथा अहंकार एवं अज्ञान का समूल नष्ट हो जाना। जो रूहें जाग जाएंगी, मानो उनकी क़यामत हो गई। संसार उनकी नज़र में सारहीन हुआ। प्राणनाथ जी की इस क़यामत सम्बन्धी व्याख्या का मूल स्रोत कुरान शरीफ़ और हदीस होते हुए भी उनका अपना मौलिक दृष्टिकोण है। उनकी क़यामत सम्बन्धी अवधारणा भारतीय दर्शन में वर्णित जागनी से पर्याप्त मिलती-जुलती है। उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जो उठी कयामत को सो क्यों सौवे उगे दिन।
आया असल तन में बीच बका वतन।।

छोटा कयामतनामा, १/८६

"महामति प्राणनाथ जी ने सत्रहवीं सदी में जन्म लेकर अपने युग और समय से बहुत आगे का काम किया है। धर्म समन्वय की ऐसी भावना उनसे पहले किसी सन्त या फ़कीर में नहीं दिखाई देती है। भले ही इससे पूर्व कबीरदास जी जैसे सन्त ने भी इसका प्रयास किया था। जिस कार्य की ओर बीसवीं शताब्दी में गाँधी जी ने ध्यान दिलाया, उसको महामति सत्रहवीं शताब्दी में ही कर चुके थे। आपकी धार्मिक भावना संकीर्ण नहीं थी। आपने छुआछूत, ऊँच-नीच की दीवारों को तोड़कर, समता-प्रेम और सद्भावना का संदेश दिया। उपासना की रीतियों को समाप्त कर सहज-प्रेम, हृदय की शुद्धता और सदाचार की पवित्रता पर बल दिया।"[५]

मध्यकालीन इतिहास में स्वामी प्राणनाथ जी का नाम धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनकी भाषा की मौलिकता के कारण अवश्य याद किया जायेगा। सर्वप्रथम आपने ही हिन्दू-हिन्दुस्तानी के रूप को 'कुलजम स्वरूप' में प्रस्तुत किया है। भारतवर्ष सदैव ही उनका ऋणी रहेगा। आज के युग की समस्याओं के समाधान में महामति प्राणनाथ जी की वाणी का महत्त्व और भी बढ़ गया है।

---

५. प्रो. डा. विजयेन्द्र स्नातकः धर्म समन्वय के प्रणेता महामति प्राणनाथ शीर्षक लेख, जागनी, १९७५, प्राणनाथ मिशन, नई दिल्ली, पृ० ३

प्राणनाथजी की अरब देशों की यात्रा

डॉ. भगवानदास गुप्त

पी-एच.डी., डी. लिट्.

झाँसी, उ. प्र.

महामति प्राणनाथ उत्तरी भारत में ब्रह्मात्माओं को जगाने की अपनी प्रसिद्ध यात्राओं पर निकलने के पूर्व ही अरब और खाड़ी के देशों की यात्रा कर चुके थे। अपनी इन यात्राओं में वे इस्लाम और इस्लाम के अनुयायियों के संपर्क में आये थे, इसके साथ ही उन्हें वहाँ रहनेवाले भारतीयों की स्थिति की भी आँखों देखी जानकारी हुई थी। अरब और खाड़ी के देशों में जाने-आने और समय समय पर आवश्यकतानुसार कुछ अवधि तक वहाँ रहने से, उनमें इस्लाम और मुसलमानों के प्रति वे बहुत-से दुराग्रह नहीं रह गये थे, जो सामान्य धर्मभीरु कट्टर हिंदुओं को प्रभावित कर उनमें साम्प्रदायिकता पनपाते हैं। यही कारण है कि वे हिंदू-मुस्लिम ऐक्य तथा उनके विभिन्न दर्शनों में आपसी समता और समन्वय के दृढ़ समर्थक बन गये। कालान्तर में जैसे-जैसे वे ईसाइयों, कबीर पंथियों, नानक पंथियों और अन्य धर्मावलंबियों के सपर्क में आये, वैसे-वैसे धार्मिक मामलों में 'सुलह कुल' (सर्वसहनशीलता) की धारणा उनके हृदय में और गहरी पैठती गयी जिसके फलस्वरूप वे सत्रहवीं सदी में कबीर और नानक की परंपराओं को व्यवस्थित और स्पष्ट स्वरूप दे पाये।

स्वामी प्राणनाथ अपनी अरब यात्रा पर सन् १६४६ ई० में गये थे। तब वे अठाइस वर्ष के थे। यह यात्रा उन्होंने अपने 'सदगुरु' श्री देवचंद्र जी की आज्ञा पर की थी। श्री देवचंद्र जी के एक शिष्य गांग जी के भाई खेताजी, पचीस वर्ष पहले अरब गये थे। वे वहीं बस कर अपना व्यापार कर रहे थे। प्राणनाथ जी को उन्हें वापस स्वदेश लाने को भेजा गया था। खेता जी के पचीस वर्ष तक अरब में रहने और अपना व्यापार बढ़ा लेने से स्पष्ट है कि वहाँ बसे भारतीयों को शासन की ओर से विशेष अड़चनें न थीं, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें समुचित सुविधाएँ भी प्राप्त थीं, जिनके कारण ही खेता जी अपना व्यापार इस सीमा तक बढ़ा सके थे कि वहाँ उनकी दुकान, बखार आदि थे। उनका व्यापार इतना फैल गया था कि उसे समेटवाने में ही प्राणनाथ जी को पाँच वर्ष लग गये थे। अरब और खाड़ी के देशों में जाने के लिए तब पालदार बड़ी-बड़ी नावें चलती थीं। यह समुद्री यात्राएँ माघ-फागुन के महीनों में की जाती थीं, जबकि हवाओं का रुख़ पश्चिमी दिशा में अरब देशों की ओर होता था। उन दिनों अरब तट पहुँचने में लगभग चालीस दिन लग जाते थे।

स्वामी प्राणनाथ अरब पहुँच कर खेता जी से मिले। खेता जी उनके आग्रह पर स्वदेश लौटने पर राज़ी हो गये। पर व्यापार समेटने और लेन-देन निपटाने में प्रायः पाँच वर्ष लग गये। तब तक स्वामी प्राणनाथ को वहीं रुकना पड़ा। पर तभी खेता जी बीमार पड़ गये और शीघ्र ही उनका देहान्त हो गया।

स्थानीय मुस्लिम अरब अधिकारी की नज़र खेता जी की धन-सम्पत्ति पर थी ही। उनके मरते ही उसने मुस्लिम शासन में सभी जगह प्रचलित लावारिस मृतक की सम्पत्ति ज़ब्त कर लेने की प्रथा के अनुसार उनकी सम्पत्ति जब्त कर अपने अधिकार में ले ली। स्वामी प्राणनाथ बड़ी दौड़-धूप के पश्चात् वहाँ के सुल्तान के अनुग्रह से खेताजी की धन-सम्पत्ति वापस पा सके। अरब में भारत के बारे में जानने की कितनी जिज्ञासा रहती थी, इसका पता इस बात से चलता है कि जब स्वामी प्राणनाथ की सुल्तान से भेंट हुई तो उसने भारत संबंधी अनेकों बातों पर उनसे प्रश्न पूछे, वहाँ इस्लाम की स्थिति और प्रसार कैसा है, इसकी जानकारी भी हासिल की। लगता है स्वामी प्राणनाथ ने उसके प्रश्नों के संतोषजनक शिष्ट उत्तर देकर प्रभावित कर लिया, जिससे सुल्तान ने प्रसन्न होकर खेता जी की धन-संपत्ति श्री प्राणनाथ जी को तुरंत लौटा देने के लिखित आदेश दे दिये। इस बीच श्री देवचंद्र जी ने प्राणनाथ जी की सहायता के लिए बिहारी जी और श्याम जी को भेजा। खेता जी की धन-संपत्ति वापिस मिल ही चुकी थी, अतएव तीनों वापस जामनगर लौट आये।

स्वामी प्राणनाथ की खाड़ी के देशों की यात्रा का दूसरा दौर श्री देवचंद्र जी के धामगमन १५ सितंबर, १६५५ के पश्चात् शुरू हुआ। श्री देवचंद्र जी की हार्दिक इच्छा थी कि प्रणामी निजानन्द संप्रदाय का प्रचार सौराष्ट्र, कच्छ और गुजरात के बाहर भी हो। स्वामी प्राणनाथ उनके पट्ट शिष्य होने के नाते उनकी इस इच्छा की पूर्ति में प्राण पण से जुटे गये। वे सन् १६१५ ई० में गुजरात से दीव (पुर्तगालियों का ड्यू) बंदरगाह आये। दीव बंदरगाह तब पुर्तगालियों के अधिकार में थी। वहाँ जेसुइट पादरियों का बहुत ज़ोर था। वे ग़ैर ईसाई धर्मावलंबियों पर तरह-तरह के अत्याचार कर उनके धर्मपालन में रोड़े अटका कर, उन्हें ईसाई धर्म अपनाने के लिए विवश करते रहते थे। यह स्वामी प्राणनाथ जी का ही धैर्य और साहस था कि वे दीव में दो वर्ष तक रहकर प्रणामी दर्शन का प्रचार करते रहे और संप्रदाय में स्त्री-पुरुषों को दीक्षित करते रहे। पर द्वेषी चुग़लखोरों की वहाँ भी कमी न थी। श्री प्राणनाथ जी के दीव में होने की ख़बर वहाँ फैल गयी। पुर्तगाली अधिकारियों तक बात पहुँचने पर स्वामी जी और उनके अनुयायियों पर उनकी कोपदृष्टि पड़ने के भय से सभी त्रस्त हो उठे। अस्तु स्वामी प्राणनाथ ने यही उचित समझा कि सबकी सुरक्षा के लिए वे कुछ ठोस क़दम उठायें और अपना धर्म-प्रचार अन्य प्रदेशों में करें। वे जब यह सब सोच रहे थे, तभी अरबी समुद्री डाकुओं ने दीव बंदरगाह पर धावा बोल दिया। अरब सागर के व्यापार और जहाज़रानी लेकर अरबों और पुर्तगालियों में शुरू से ही शत्रुता और स्पर्धा चली आ रही थी। दोनों ही एक दूसरों के जहाज़ों, नौकाओं और बंदरगाहों पर आक्रमण करने और लूट-पाट करने की ताक लगाये रहते थे। ऐसा ही एक मौक़ा पाकर अरबी समुद्री डाकुओं ने दीव बंदरगाह पर हमला कर दिया और लूटपाट के सामान के साथ ही वे कुछ स्त्री-पुरुषों को बंदी बनाकर ले गये। दुर्भाग्य से इनमें स्वामी प्राणनाथ जी की पत्नी तेजकुँवरि भी थीं।

श्री प्राणनाथ जी तेजकुँवरि की खोज के लिए दीव बंदरगाह छोड़कर निकल पड़े।

उन्होंने सौराष्ट्र के पोरबंदर, पाटन आदि स्थानों में श्रीमती तेजकुँवरि जी की जाँच-पड़ताल की पर वहाँ उनका कोई सुराग़ न मिल सका। प्राणनाथ जी तब मांडवी होते हुए कच्छ आये। यहाँ भी तेजकुँवरि जी की कोई ख़बर नहीं मिली। तब वे भुजनगर नलिया होते हुए ठट्ठा पहुँचे और वहाँ दस-बारह दिन खोज-ख़बर लेने के बाद लाठी बंदरगाह चले आये। यहाँ संभवतः उन्हें बाई तेजकुँवरि जी के फ़ारस की खाड़ी के किसी प्रदेश में होने का अनुमान हुआ और वे उनकी खोज में अपने साथियों के साथ नाव पर चल दिये। लेकिन मौसम ख़राब होने के कारण वे सत्रह दिन तक समुद्र में भटकने के बाद लाठी आये। यहीं उन्हें अपने अनुयायी श्री नाथा जोशी जी से किसी के अरब डाकुओं के पास बंधकों से मिल आने की सूचना मिली। अरबों ने बंधकों को छुड़ाने के लिए बंधक राशि का भुगतान करने के लिए तिथि निश्चित कर दी। इससे कुछ आश्वस्त होकर वे ठट्ठा लौट आये, जहाँ उनकी भेंट सेठ लक्ष्मण दास से हुई, जो स्वामी जी के दीक्षित शिष्य बन जाने पर लालदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं के द्वारा विरचित लालदास बीतक, इस विवरण का मुख आधार ग्रंथ है।

प्राणनाथ जी ठट्ठा में लगभग दस महीने रहे। तभी समुद्र मौसम ठीक हो गया। और फ़ारस की खाड़ी की ओर समुद्री यात्रा के लिए अनुकूल हवाएँ चलने लगीं। स्वामी जी लाठी बंदरगाह आये और वहाँ से फ़ारस की खाड़ी के उत्तरी छोर पर स्थित मस्कत बंदरगाह पहुँचे। उनके संबंधी महावजी की तट पर ही दुकान थी। उनके सहयोग से तेजकुँवरि जी के बंधक में होने की पूछ-ताछ की गई और पता चला कि एक अन्य बंधक विश्वनाथ के संबंधियों के प्रयत्न से अन्य लोगों के साथ ही तेजकुँवरि जी भी मुक्त करा ली गई हैं। स्वामी प्राणनाथ जी को इससे बड़ी सांत्वना मिली। अब वे निश्चित होकर मस्कत में प्रणामी संप्रदाय के दर्शन का प्रचार बैठकों, प्रवचनों और कीर्तनों में करने लगे। वहाँ बसे कई भारतीय परिवार उनसे प्रभावित होकर प्रणामी संप्रदाय के अनुयायी बन गये। इनमें महावजी भाई, हीरजी भाटिया और नारायण जी कायस्थ के परिवार प्रमुख थे।

मस्कत तब अरबी समुद्री डाकुओं का बड़ा अड्डा था और स्थानीय प्रशासकीय अधिकरियों से उनकी अच्छी साँठ गाँठ थी। इन्हीं अधिकारियों के ज़रिये वे बंधकों के रिश्तेदारों से संपर्क स्थापित कर बंधक राशि की सूचना भेजते थे और उन्हीं के द्वारा यह राशि वसूल करते थे। लालदास बीतक में इसका उल्लेख है कि स्वामी प्राणनाथ जब मस्कत में ही थे तब अरब डाकू बंधक राशि ले लेकर बंदी लोगों को छोड़ रहे थे। मस्कत में बसे किसी भैरों सेठ ने इसी प्रकार डाकुओं के दारोग़ा से अपने जाति-भाइयों को छुड़ाने की बातचीत चलाई थी और डाकुओं ने सत्तर हजार लारी की माँग की थी। लारी तब मस्कत में चालू सिक्का था। बंधकों से बंधक राशि लेना ओर सौदेबाज़ी के लिए खुले रूप में उनके रिश्तेदारों को आमंत्रित करना अपराध न होकर सामान्य बात थी, जैसा कि इस उल्लेख से पता लगता है कि एक दारोग़ा क़ैद में पड़े बंदियों की बंधक राशि की माँग करता, रोज़ ही चिल्लाता हुआ निकलता था। इससे यह बात स्पष्ट है कि जो भारतीय मस्कत में स्थायी रूप से बस गये थे, और व्यापार आदि कर रहे थे, उन्हें वहाँ के शासन द्वारा सुरक्षा प्राप्त होने के साथ ही, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों की बहुत नहीं तो सहनीय सुविधाएँ प्राप्त थीं। यही कारण है कि महावजी, हीरजी भाटिया, मारायण जी कायस्थ, भैरों सेठ आदि वहाँ बस सके और स्वामी प्राणनाथ जी के नित्य

प्रति के उत्सवों, कीर्तनों, प्रीति भोज आदि में, बिना अपना धर्म परिवर्तन किये, भाग लेकर उनके सत्संग का लाभ उठा सके।

श्री स्वामी प्राणनाथ सन् १६७१ ई० तक मस्कत में रहे और फिर बंदर अब्बास चले आये जहाँ उनके जाति-बंधु भैरव ठाकुर रहते थे। सेठ भैरो ठाकुर के प्रयत्नों से प्राणनाथ जी के साथ के अन्य लोग भी, जिन्हें अरबी डाकू दीव से पकड़ ले गये थे, बंधक राशि चुका दिये जाने पर अब बंदर अब्बास आ गये। प्राणनाथ जी जब भैरो ठाकुर के यहाँ रहकर अपने प्रवचन-कथा वार्ता द्वारा उनके परिवार के सगे-संबंधियों को प्रभावित कर रहे थे तभी एक दिन दो मुल्तानी व्यापारी भैरो सेठ के पास आये। वे अपने साथ कबीर की साखियों का एक ग्रंथ भी लाये थे। उनकी प्राणनाथ जी से कबीर की साखियों पर भी चर्चा हुई। एक और महिला तेजबाई ने उन्हें नरसी भगत का एक कीर्तन भी गाकर सुनाया। इस सबसे विदित होता है कि भागवत और कृष्ण लीला के साथ ही कबीर और नरसी की उक्तियाँ भी बंदर अब्बास के भारतीयों में प्रचलित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी प्राणनाथ के प्रवचनों से प्रभावित होकर पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक आने लगीं थीं। इसका कारण अन्य कुछ न होकर उनका धर्मप्राण होना ही था। लेकिन कुछ ऐसे भी ईर्षालु पुरुष थे जिन्हें यह नहीं भाता था। भणसाली जाति के लोग तो भैरव ठाकुर को उलाहना देने लगे कि हमारे घर के लोग इनके पास भागे चले आ रहे हैं, हमारी स्त्रियाँ हमारे रोकने से भी नहीं रुकतीं। उन्होंने भैरो ठाकुर को धमकी भी दी कि, 'हमारा झगड़ा आपसे हो जायेगा।' सौभाग्य, से उनके परिवार की महिलाओं ने यह कर बात सँभाल ली कि 'हम वहाँ केवल भगवान की कथा ही सुनने जाती हैं। इस्लाम शासित इस प्रदेश में एक तो कभी कोई साधु चर्चा करने आता ही नहीं। यहाँ कौन कभी आया है ? यह तो हमारे सौभाग्य से ऐसी वाणी सुनानेवाले आजकल यहाँ आये हैं।' कहना नहीं होगा कि मुस्लिम शासन के अन्तर्गत जहाँ कट्टर उलेमा-मौलवियों का बोलबाला हो वहाँ, बसना या व्यापार करना कम साहस की बात नहीं थी, और फिर धर्म प्रचार करना तो और भी दुस्तर कार्य था। पर श्री प्राणनाथ में धैर्य, तार्किकता, और सहनशीलता के साथ ही जीवट की भी कमी नहीं थी, तभी वे विरोधियों के बीच भी अपना मत निडरता से प्रतिपादित कर लेते थे।

श्री लालदास के अनुसार बंदर अब्बास में स्वामी प्राणनाथ जी के बहुत-से स्त्री-पुरुष अनुयायी बन गये। वे वहाँ दो तीन महीने रहे। किंतु इसी समय बंदर अब्बास के एक उदार शासक को हटाये जाने और बदले में नये एक अनुदार मुसलमान शासक की नियुक्ति की चर्चा गर्म हो उठी। हिंदू रातों रात भाग कर इधर-उधर छिपने लगे। भैरो ठाकुर भी प्राणनाथ जी के लिए चिंतित हो उठे। अतएव प्राणनाथ जी बंदर अब्बास से अपने अनुयायियों सहित बसरा चले गये और वहाँ से समुद्री मार्ग से लाठी बंदर होते हुए ठट्ठा लौट आये।

श्री प्राणनाथ जी के अरब और फ़ारस की खाड़ी के नगरों में पाँच वर्ष के प्रवास से पता चलता है कि तब वहाँ गुजरात, कच्छ और सिंध के लोग, काफ़ी संख्या में बस चुके थे और समुद्री मार्ग से उनका संपर्क भारत से बराबर बना रहता था। हिंदुओं को इन प्रदेशों में सहन किया जाता था और उन्हें आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सुविधाएँ भी उदार इस्लामी दायरे में प्राप्त थीं। वैसे यह बात तो थी ही कि उनकी सुरक्षा और स्थिति बहुत कुछ स्थानीय मुसलिम अधिकारियों के रुख़ पर निर्भर करती थी जैसा कि इस बात से स्पष्ट होता है कि स्वामी प्राणनाथ जी चार वर्ष अरब में और लगभग दो

वर्ष मस्कत में रह सके। लेकिन बंदर अब्बास में-दो वे तीन माह ही ठहर पाये और फिर तुरंत ही उन्हें बसरा से सिंध लौट आना पड़ा।

फ़ारस की खाड़ी के नगरों में रहनेवाले हिंदुओं के रहन-सहन और खान-पान पर मुस्लिम प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। वे मांस-मछली, मदिरा और तम्बाकू का प्रयोग कुछ अधिकता से ही करने लगे थे, उनमें अन्य दुर्व्यसन भी आ गये थे, जिन्हें लक्ष्य कर स्वामी प्राणनाथ को भैरो ठाकुर को आदेश देने पड़े थे कि, 'एक तो तम्बाकू पीना छोड़ दो, दूसरे मांस-मछली युक्त सामिष भोजन। शराब एवं सभी दुर्व्यसनों को त्याग दो। पराई स्त्री एवं चोरी जैसे दुष्कर्मों के कभी निकट न जाओ।' भैरव सेठ ने जब उनके आज्ञा शिरोधार्य कर अपना हुक्का तोड़कर फेंक दिया और अपनी पाकशाला में मांस-मछली बनाना बंद करा दिया, जो उनके परिवार के लोगों को नहीं रुचा और भैरो सेठ बड़ी कठिनाई से उन्हें समझा-बुझाकर मना सके। इस प्रसंग से स्पष्ट है कि खाड़ी के नगर में बसे हिंदू परिवारों में मांस-मछली का भोजन में प्रयोग आम बात हो गई थी और यही कारण है कि भैरो सेठ के परिवार के लोग उसका सहजता से परित्याग नहीं कर सके।

श्री स्वामी प्राणनाथ जी के अरब और फ़ारस की खाड़ी में पाँच वर्ष रहने से उन्हें अरबी, फ़ारसी का ज्ञान सामान्य से अधिक हो गया होगा। यहाँ रहनेवाले भारतीय भी इन भाषाओं को लिख-पढ़ और बोल सकते होंगे। कहना नहीं होगा कि गुजराती, सिंधी, हिंदी के साथ ही अरबी और फ़ारसी में निष्णात हो जाने से स्वामी जी को विभिन्न धर्मावलंबी लोगों के बीच अपने विचार प्रकट करने एवं उनसे विचार विनिमय में सुगमता हुई होगी।

श्री स्वामी प्राणनाथ जी को इन यात्राओं के समय के आस-पास वेनिस (इटली) का प्रसिद्ध यात्री निकोलो मनूची सन् १६५२ ई० में ईरान में शीराज़ से बंदर अब्बास और वहाँ से लाठी बंदर होकर सिंध के प्रमुख नगर ठट्ठा पहुँचा था। उसने अपने सुप्रसिद्ध यात्रा विवरण में बंदर अब्बास, लाठी बंदर और ठट्ठा के उल्लेख किये हैं। ये समकालीन होने से सूचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। बंदर अब्बास के बारे में वह लिखता है—

"हम गोमोरम (गोम्ब्रू न) पहुँचे, जिसका दूसरा नाम है बदर अब्बासी, यानी शाह अब्बास का बंदरगाह। समुद्र पर होने से इसे बंदर कहा जाता है। इसे महान शाह अब्बास ने स्थापित किया था इसलिए इसे बंदर अब्बासी कहा जाता है।"

मनूची यहाँ कुछ दिन रहने के बाद एक अंग्रेज़ी जहाज़ पर, जो सूरत की ओर जानेवाला, इस मौसम का अंतिम जहाज़ था, चढ़कर 'सिंधी बंदरगाह' चला आया था। मनूची द्वारा उल्लिखित यह सिंधी बंदरगाह ही 'लारी बंदर' या लाठी बंदरगाह था। सिंध का मुख्य बंदरगाह होने के कारण यह विदेशियों में सिंधी बंदरगाह के नाम से विख्यात रहा होगा। यहाँ मनूची ने बहुत-से अरबी और ईरानी जहाज़ों पर अरब और खाड़ी के देशों से आने वाले खजूर, घोड़े, सीपियाँ, मोती, खूशबूदार चीज़ें आदि लदी देखी थीं। उसी के अनुसार ये जहाज़ वापसी यात्रा पर भारत से शक्कर, गुड़, घी, तेल, सूती कपड़े आदि ले जाते थे। इस नगर में तब अंग्रेज़ों, डचों और पुर्तगालियों की तीन व्यापारिक फैक्ट्रियाँ या व्यापारिक प्रतिष्ठान भी थे। मनूची के अनुसार तब सिंध का प्रमुख नगर ठठ्ठा था। अंत में कहा जा सकता है कि श्री प्राणनाथ की खाड़ी यात्राओं का अपना राजनैतिक और सांस्कृतिक महत्त्व है।



महाराजा छत्रसाल और महामति प्राणनाथ का ऐतिहासिक मिलन

डा. प्रताप सिंह मुखारिया
छत्रसाल शासकीय महाविद्यालय
पन्ना (म.प्र.)

महाराजा छत्रसाल की महामति प्राणनाथ से भेंट बुन्देलखण्ड के इतिहास में तो एक अहम् महत्त्व रखती ही है। भारतवर्ष के इतिहास में भी इसका अपना विशेष महत्त्व हैं। यह ऐतिहासिक महत्त्व की भेंट कब और कैसे हुई, यह विवादास्पद है। अनेक स्रोत इसके प्रमाण हैं जिनका अध्ययन करने पर ही यह हमारी धारणा स्पष्ट होगी।

महामति प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय :

महामति प्राणनाथ के गुरु देवचन्द्र ने सत्रहवीं शताब्दी में गुजरात में निजानन्द सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया था। इस सम्प्रदाय[१] को उत्तर और मध्य भारत में प्रचार करने का श्रेय श्री प्राणनाथ को है जो मध्यकालीन भारत की उस गौरवशाली परम्परा में थे। वे जामनगर राज्य के दीवान थे। लेकिन उन्होंने अपने गुरु श्री देवचन्द्र की इच्छानुसार सारे भारत में जाग्रति लाने के लिये उस पद को छोड़ दिया था। उन्होंने अरब देशों का दो बार १६४६ से ५१ और १६६८ से ७२ तक दौरा किया था और इस कारण वे इस्लाम धर्म के बारीक पहलुओं से परिचित थें। इन सबके परिणामस्वरूप उनका उन्मुक्त और उदार दृष्टिकोण था। वे अपने समय के भारत की राजनैतिक परिस्थितियों से अच्छी तरह से परिचित थे। यही कारण था कि वे सब धर्मों के समन्वय से भारत में राजनैतिक, सामाजिक और भाषाई एकता की राह तैयार करना चाहते थे।[२]

सम्राट औरंगज़ेब को समझाने का प्रयास :

महामति प्राणनाथ ने अपने उपदेशों में औरंगज़ेब की पक्षपातपूर्ण धार्मिक नीति की कटु भर्त्सना की। उन्होंने औरंगज़ेब से भेंट कर उसको सही रास्ते पर लाने का दृढ़ निश्चय किया, जिससे वह धर्मान्धता की नीति छोड़ दे। उनका यह प्रयत्न ख़तरे से ख़ाली नहीं था, तो भी वे उसकी घृणा और क्रोध को प्रेम और स्नेह से जीतने के लिए कटिबद्ध

१. यह संप्रदाय निजानन्द, प्रणामी, धामी और प्राणनाथी सम्प्रदायों के नाम से भी विख्यात है, इस सम्प्रदाय के अनुयायी पन्ना को धाम कहते हैं, इसलिए केवल पन्ना में रहनेवाले प्रणामियों को धामी कहा जाता है। भारत के अन्य भागों में यह सम्प्रदाय प्रणामी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है।

२. डॉ. मातावदल जायसवाल, राष्ट्रीय एकता और धार्मिक समन्वय में महामति प्राणनाथ का योगदान, जागनी स्मारिका (प्राणनाथ मिशन, दिल्ली, १९७४) पृ० १३-१४

थे। इन्होंने अपने बारह शिष्यों को औरंगज़ेब से मिलने के लिये भेजा किन्तु दिल्ली में सोलह माह के प्रवास के बावजूद वे स्वयं औरंगज़ेब से नहीं मिल सके। एक तो औरंगज़ेब शंकालु स्वभाव का था। दूसरे इसके दरबारियों ने इन लोगों के विरुद्ध उसके दिमाग़ में तरह-तरह की बातें भर दी थीं। तीसरे वह दक्षिण जाने की जल्दी में था। इस तरह औरंगज़ेब को समझाने का उनका प्रयत्न अधूरा रहा।

पन्ना की ओर :

स्वामी प्राणनाथजी अब एक ऐसे वीर और साहसी राजा की तलाश में थे जो औरंगज़ेब का सफलतापूर्वक विरोध कर सके। दिल्ली से वे अनूपशहर (उ.प्र.) आमेर, सांगानेर, उदयपुर (राजस्थान) बुरहानपुर, औरंगाबाद (खानदेश), देवगढ़, रामनगर (म.प्र.) आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए जनता को जागृत करने का प्रयास करते रहे। इस तरह उन्होंने उत्तर और मध्य भारत के अनेक राजाओं से सम्पर्क साधा कि वे औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता का सशक्त विरोध कर सकें लेकिन उन्हें अपने इस उद्देश्य में किसी से भी विशेष सहायता नहीं मिली।

इस समय बुन्देलखण्ड में छत्रसाल ने औरंगज़ेब के विरुद्ध स्वतंत्रता अभियान छेड़ दिया था। जिसके लिये न तो उनके पास युद्ध के पर्याप्त साधन थे और न ही शक्तिशाली सेना। साथ ही बुन्देलखण्ड के राज्य भी संगठित नहीं थे । लेकिन छत्रसाल में एक दृढ़ निश्चय था कि औरंगज़ेब के धार्मिक अत्याचारों से बुन्देलखण्ड को मुक्त कराया जाये। अन्त में, जब श्री प्राणनाथ की छत्रसाल से भेंट हुई तब उन्हें वह व्यक्ति मिल गया, जिनकी उन्हें बहुत दिनों से तलाश थी।[3]

छत्रसाल की श्री प्राणनाथ से भेंट : कुलजम स्वरूप की साखी

अपने ग्रन्थ 'कुलजम स्वरूप' (ज्ञान के अगाध समुद्र) में प्राणनाथ ने इस बात को स्पष्ट किया है कि वे औरंगज़ेब का विरोध क्यों कर रहे थे। वे मनुष्यों की समानता और धार्मिक सहिष्णुता पर बल देते थे। वास्तव में वे किसी धर्म के विरुद्ध नहीं थे लेकिन वे धार्मिक अत्याचार नहीं सह सकते थे और विरोध करना सबका प्रथम कर्तव्य समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने इस्लाम का धर्म के रूप में विरोध नहीं किया लेकिन औरंगज़ेब के धार्मिक अत्याचार की नीति के विरुद्ध वे हिन्दुओं को प्रोत्साहित और संगठित करने से पीछे नहीं रहे। उन्होंने अपने समय के हिन्दू राजाओं को इन पंक्तियों में प्रेरणा दी :

राजा ने मलो रे राणे राय तणो, धर्म जाता रे कोई दौड़ो।
जागो रे जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो।।
छूटत है रे खड्ग क्षत्रियों से, धरम जात हिन्दुआन।
सत न छोड़ो रे सतवादियो, जोर बढ़यो तुरकान।।
त्रैलोकी में उत्तम खण्ड भरत को, तामें उत्तम हिन्दू धरम।
ताके छत्रपतियों के सिर, आये रही इत सरम।।
असुरें लगाया रे हिन्दुओं पर जेजिया, वाको मिले नहीं खानपान।
जो गरीब न दे सके जेजिया, ताय मार करें मुसलमान।।

किरंतन, प्र० ५८

ओ राजा, राना और रावल, तुम्हारा धर्म अब ख़तरे में है। ओ योद्धाओ इसे बचाओ।

---

३. प्रो. कृष्णास्वामी अय्यर, लार्ड प्राणनाथ (अंग्रेज़ी में) पन्ना, १९७०, पृ० १२-२०

निगोड़ी नींद छोड़कर उठ खड़े हो। क्षत्रियों की तलवार छूट गई है। हिन्दुओं का धर्म ख़तरे में है। तुर्कों का ज़ोर बढ़ने पर भी अरे सच्चे धर्म के अनुयायियो, अपना धर्म न छोड़ो। तीनों लोकों में भारत देश सबसे उत्तम है लेकिन जिसके राजाओं के सिर शर्म से झुके हुए हैं। असुरों ने हिन्दुओं पर जज़िया लगा दिया है और उन्हें खाने-पीने को नहीं मिल रहा है। जो ग़रीब जज़िया नहीं दे पाते हैं उन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जा रहा है। ऐसे में :

बात ने सुनी बुंदेले छत्रसाल ने, आगे आय खड़ा ले तलवार।
सेवा ने लेई रे सारी सिर खेंच के, साईयें किया सेन्यापति सिरदार।।

किरंतन, प्र ५८

छत्रसाल बुन्देला ने यह बात सुनी और हाथ में तलवार ले कर आ खड़ा हुआ। यह सेवा उसने अपने सिर पर ली है। स्वामी ने उसे सेनापति और सरदार बनाया।

महाराजा छत्रसाल का श्री प्राणनाथ से भेंट सम्बन्धी पत्र :

: श्री :

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू के बाँचने येते श्री महाराज कोमार श्री दिमान जगतराज जू देव को आपर हम लड़ाई करके महेबा मऊ से आवत ज़ात रहत हते दस पाँच रोज रहे तो येक दिन सिकार खेलवे को गये। डांग में येक आदमी लंगोटी लगाये बैठो हमरे समझी कै जो भेष बनाये हमारे मारवे को आव है हमने उसे पूंछी के तै को है कहाँ आबो ना बोलो तलवार हमने ऊ को उजेइ बोलो कै बच्चा न मार मैं तुमारे अच्छे कै लाने आवो है। हम बैठ गये बोलो के बच्चा तुमारो नाम छत्रसाल है हमने कही कै हां बोले के बच्चा ते बड़ा प्राकरमी है और बड़ों परतापी भयो है हमने कहीं कै मोरे पास न धन आये लड़कन के लाने रियासत को उपाय करत फिरत हों जो कुछ-याव लड़ाई करे मिल जै है तो अछी है फिर कही कै बच्चा हम प्राननाथ हैं तोरे पास ऐसो धन है कै काहू के पास ना कड़ है हमने कही के महाराज मोरे पास कछू धन नहीं आये लूट मार में जो कुछ मिलो सो फौज को खवावत हों तब बोले के तै परना को चल हम तोकों धन बताइये उनके कहे सो हम परना को आये और प्राननाथ सोऊ आये परना में गोंड राजा हते परना के गियोंड़े आये हमने कही कै महाराज कहाँ रूपने है तब बोले परना से दखन तरफ हमको रूपने है ऊ जाघा पैं आये बोले के बच्चा हमई जाघा पै रूपने है और कही के ऊ जा जाघा खेजरा करके कही जाये ये ही जाघा पै तुम दसहरे को बीरा उठाइयो तोरी फतै हु है और चल मैं तोको धन बतावों सो परना से दो कोस लौ लुवा गये बोले कै यहाँ खोद सौ वहाँ सुपेत ककरा मिलो गोला हमने कही कै जो का आये तब बोले यही धन है जो हीरा है परना से सात आठ कोस लों लंबाई चौड़ाई में हीरा है हमने वनके पांव छुये परना में गोंड राजा हते वन को अपने सब में करौ उनको कछु जागीर लगा दई परना में दखल करो हमने कहीं कै महाराजा हुकुम होये तो मैं मऊ को जावों कही कै मैं राजा नहीं होत ना मोरे पिता राजा भये हैं ना मैं हूँ हों सो कही कै तोरे भाग में राज बदो है तै कैसे राजा ना हूहै तोरी उमर सौ बरस के नीचे की हैं पंती देख लै है तब हमने कही के महाराज कुंवर तो तौ है नहीं, आये पंती नाती को कौ चलावे कही कै तारे ऐसे कुँवर हू हैं के काहू के ना भये हू हैं और येक के बड़के येक कुंवर हूं हैं वा नाती पंती हूं है संवतु सतरा सै बत्तीस की साल

में महाराज पिराननाथ जू खीजरा में रूपे वा वो ही साल हम परना के राजा भये ऊ बखत पै हमने पचीस लाख की जाघा कमाई हती जितने हीरा मिलत गये महाराज पिराननाथ जू सब सामान बनबावत गये बनने हुकुम दवो कै बच्चा बहुत सामान हो गयी है फिर संवत संतरा सौ पैतीस की साल में मंदिर महाराज को बनवावौ इतरा का हाल महाराज प्राननाथ जू ने करो हतो बैसाख सदी १५ संवत १७१७ मुकाम महोबा।

यह ऐतिहासिक पत्र २१ अप्रैल १७३० को लिखा गया था। इसमें उन्होंने श्री प्राणनाथ जी से भेंट का उल्लेख संवत १७३२ याने सन् १६७५ में किया है। उनके दूसरे पुत्र जगतराज, उनसे उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी चाहते थे। अतः यह पत्र उन्होंने अपनी वृद्धावस्था में जगतराज के कहने पर लिखा था। श्री प्राणनाथ जी से भेंट के अलावा भी पत्र अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी से भरा हुआ है। इसमें इन बातों का उल्लेख है :

१. जब छत्रसाल मऊ महोबा के जंगल में शिकार खेलने गये थे तब श्री प्राणनाथजी से उनकी भेंट हुई थी।
२. इसमें उस वक़्त का उनकी स्थिति का ठीक-ठीक वर्णन है। उनके पास धन नहीं था और वे लड़ाई-झगड़ा करके अपने लड़कों के लिए रियासत का उपाय कर रहे थे।
३. जब उनको श्री प्राणनाथ ने पन्ना में हीरों की खानों की जानकारी दी तब उन्होंने उनका चरणस्पर्श किया। इससे उनकी आर्थिक और सैनिक स्थिति में सुधार हुआ।
४. पन्ना में उस समय एक गोंड राजा था। उन्होंने तब पन्ना पर अधिकार किया और गोंड राजा को एक जागीर प्रदान की। उसी साल वे पन्ना के राजा हुए।
५. पन्ना में जहाँ स्वामी प्राणनाथजी रुके थे, वह स्थान आज भी खीजरा मंदिर कहलाता है। वहाँ छत्रसाल ने दशहरे के दिन बीड़ा उठाया था। श्री प्राणनाथ ने उन्हें आशीर्वाद दिया था कि उनकी विजय होगी। दशहरे के दिन आज भी छत्रसाल के वंशजों द्वारा खीजरा मंदिर में बीड़ा उठाने की रस्म का परम्परा पूर्वक निबाह होता है।

छत्रप्रकाश :

लालकवि छत्रसाल के समकालीन थे और छत्रसाल के अनुरोध पर उन्होंने 'छत्रप्रकाश' काव्य की रचना की थी। इसमें छत्रसाल की छंदोबद्ध जीवनी है और उनके जीवन की १७१० तक की घटनाओं का वर्णन है।[४] स्वामी प्राणनाथ से उनकी भेंट का वर्णन उन्होंने उस समय किया है जब उन पर शेर अफ़गन का आक्रमण हुआ था। यह भेंट मऊ के निकट ही हुई थी। महामति प्राणनाथ के आशीर्वाद से छत्रसाल की शेर अफ़गन पर विजय हुई थी। लालकवि लिखते हैं—

कौंचि लौंचि कीने मनभाये। मऊ आनि निसान बजाये।।
त्योंही प्राननाथ प्रभु आये। दिल के कुल संदेह मिटाये।।
उन ऐसा कछू ज्ञान बखान्यो। अपनो करि जाते जग जान्यौ।।
परम धाम की लीला गाई। प्रेम लच्छना भक्ति दृढ़ाई।।

---

४. लालकवि, छत्रप्रकास, सं. डा० महेन्द्र प्रताप सिंह (दिल्ली, १९७३) तेईसवाँ अध्याय पृ० १८३

शेर अफ़गन ने जब क्रौंच छीन कर मनमानी की और मऊ जाकर लड़ाई का डंका बजाया, उस समय प्रभु प्राणनाथ छत्रसाल के पास आये और उनके हृदय के संदेहों को मिटाया। उन्होंने उनको अपना कर कुछ ऐसा ज्ञान दिया और परमधाम की लीला गाकर उनकी भक्ति को दृढ़ किया, जिससे उन्होंने सारी दुनिया को अपना जाना।

लालकवि फिर प्राणनाथ के छत्रसाल को वरदान का उल्लेख करते हैं कि उन्होंने सारे पुरान और कुरान का बखान कर छत्रसाल का ज्ञान बढ़ाया, जिससे छत्रसाल को यह जगत स्वप्नवत् लगने लगा। फिर हीरे की खानों का पता बता कर उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक राज्य करने का आशीर्वाद देकर उनका राजतिलक किया। वे लिखते हैं :

इहि विधि वह वरदान दै, कुल अखण्ड बल राखि।
राजतिलक छत्रसाल सिर, दयो साखि दर साखि।।

इस तरह यह वरदान है कि छत्रसाल का कुल बलशाली और अखण्ड रहेगा और उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक राज्य करने का आशीर्वाद देकर उन्होंने उनका राजतिलक किया।[५]

प्रणामी ग्रन्थों की साक्षी :

प्रणामी ग्रन्थों के अनुसार यह भेंट संवत १७४० या सन् १६८३ में हुई थी। जब छत्रसाल पर शेर अफ़गन का आक्रमण हुआ था। स्वामी लालदास महामति प्राणनाथ के परमप्रिय शिष्य थे और जिन्होंने उनकी बीतक लिखी है। यह एक प्रकार से उनकी छंदोबद्ध जीवनी है। वे भी इस भेंट के प्रत्यक्षदर्शी थे। वे लिखते हैं कि जब श्री प्राणनाथजी और उनका 'सुन्दरनाथ' गढ़-मंडला की राजधानी रामनगर में था तब छत्रसाल के भतीजे, देवकरन (अंगद के पुत्र), जो उनसे नाराज होकर रामनगर में बस गये थे, उनके संपर्क में आये और बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा कि अगर मैं यह समाचार छत्रसाल तक पहुँचा दूँगा तो वे बहुत प्रसन्न होंगे। उन्होंने ही दोनों की भेंट कराई।[५] उस समय छत्रसाल पर मऊ में शेर अफ़गन का आक्रमण हुआ था। अतः वे श्री प्राणनाथ से मिलने पन्ना नहीं आ सकते थे। इसलिये उन्होंने स्वामी प्राणनाथ को मऊ बुलाया। स्वामी प्राणनाथ जी सब लोगों को पन्ना में छोड़कर छत्रसाल से मिलने मऊ गये। मऊ के तिंदुनी दरवाज़े पर यह ऐतिहासिक भेंट हुई जब छत्रसाल शिकारी के वेश में थे। इसके पश्चात् उनके आर्शीवाद से छत्रसाल की शेर अफ़गन पर विजय हुई। वे लिखते हैं,

संवत् सत्रह सौ चालीस में[१] श्री जी पधारे परना में।
सेवा श्री महाराजें करी, क्यों कहों इन जुबां से।।

बीतक, प्र० ५८

संवत् सत्रह सौ चालीस में प्राणनाथ परना (पन्ना) में पधारे। उनकी महाराज छत्रसाल ने जो सेवा की उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। नवरंगदास कृत बीतक में इस घटना का इस तरह उल्लेख मिलता है :

विनती करी राजा ने तबही। पधारो आप निज परने माँही।।
संवत् सत्रासे चालीसे। माह मास सुक्ल पख दीसे।।५०।।
धनी परने पधारे यहाँ थे। थाणो थाप्यो परम निज तिहाँते।।
पीछे राजा परणा आये। बीच विधान भेद को पाये।।५१।।

प्रकरण १७

---

५. वही, पच्चीसवाँ अध्याय,

तब महाराजा छत्रसाल ने विनती की कि आप मेरे परने (पन्ना) में पधारिये। उसके अनुरोध पर संवत् सत्रह सौ चालीस के माघ मास के शुक्ल पक्ष में महामति प्राणनाथ पन्ना पधारे और यहाँ अपना स्थान स्थापित किया। तत्पश्चात् छत्रसाल पन्ना आये और उनसे इस दुनिया का ज्ञान प्राप्त किया।

ब्रजभूषण की वृत्तांत मुक्तावली' (प्र० ६४) में इस तरह का उल्लेख किया गया है कि संवत् सत्रह सौ चालीस के वर्ष में मधुमास में मऊ गाँव से चलकर प्राणनाथ प्रसन्नतापूर्वक पन्ना आये। बख्शी हंसराज कृत मेराज चरित्र (प्र० ६०) में,

आयो उत्तम मास मधु, चालीस के वर्ष।
मऊ गामतें कूच करि, परना आये हर्ष।।
संवत् सत्रह से कहे, अरु चालीस गिनाय।
तिह समय मिहराज प्रभु, परना पहुँचे आय।।२४।।

—संवत् सत्रह सौ चालीस में मिहराज (प्राणनाथ) परना (पन्ना) पहुँचे।

डा. भगवानदास गुप्त के अनुसार मुग़ल दस्तावेज़ों में भी इस बात की पुष्टि होती है कि बुन्देलखण्ड में १६७३ में शेर अफ़गन की नियुक्ति चंपत के पुत्रों का दमन करने के लिए की गई थी।

इस तरह हम यह कह सकते हैं कि यह ऐतिहासिक भेंट संवत् १७४० या सन् १६७३ में हुई थी। छत्रप्रकास, प्रणामी ग्रन्थ और मुग़ल अखबार सब इस बात की पुष्टि करते हैं। केवल छत्रसाल ने ही अपने पत्र में संवत् १७३२ या सन् १६७५ का उल्लेख किया है, जो इस भेंट के ५०-६० वर्ष बाद वृद्धावस्था में लिखा गया था। संभव है, इसी कारण तिथि सम्बन्धी भूल हो गयी हो। ऐसा भी कहा जाता है कि श्री प्राणनाथ जी एवं छत्रसाल की कहीं अनजाने भेंट हुई थी तब उन्होंने एक सिक्का (छाप का रुपया) उन्हें दिया था। गड़ा धन खोदकर निकालने का प्रसंग तभी का है।

इस समय छत्रसाल की उम्र ३४ वर्ष और प्राणनाथ की उम्र ६५ वर्ष की थी। छत्रसाल के अनुरोध पर श्री प्राणनाथ पन्ना में स्थायी तौर पर बस गये और उन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्ष बुन्देलखण्ड में बिताये। वे पन्ना में रहकर ही जीवन के अन्तिम समय तक सन् १६९४ तक वे निजानन्द या प्रणामी संप्रदाय का प्रचार करते रहे।

इस ऐतिहासिक भेंट का महत्त्व :

स्वामी प्राणनाथ जी और महाराजा छत्रसाल दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। दोनों व्यक्तियों का एक साथ अध्ययन कर ही इस युग के बुन्देलखण्ड का इतिहास लिखा जा सकता है, जो सही और विश्वसनीय होगा। दोनों एक दूसरे के पूरक थे। एक के बिना दूसरे का अध्ययन अधूरा है। अगर हम यह कहें तो अतिशियोक्ति नहीं होगी कि महामति प्राणनाथ ने विचार दिये थे और वीर छत्रसाल जी ने उन विचारों को कार्यान्वित किया था।

महामति प्राणनाथ जामनगर जैसे बड़े राज्य के दीवान रह चुके थे अतः उनमें उच्च कोटि की राजनैतिक समझ और कुशल प्रशासनिक क्षमता थी। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि वे सब प्रचलित धर्मों से अच्छी तरह परिचित थे। उनमें इस तरह राजनीति और धर्म का अद्भुत समन्वय था, जो छत्रसाल के लिए बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हुआ। इन दोनों ने मिलकर औरंगज़ेब की प्रतिक्रियावादी धार्मिक नीति का विरोध

ही नहीं किया था बल्कि उससे डटकर लोहा भी लिया था। उनकी इस कुशल नीतिज्ञता के कारण ही औरंगज़ेब एक बार दक्षिण गया तो फिर लौटा नहीं। उस युग में बुन्देलखण्ड में स्वतन्त्रता की लहर को तीव्र गति देने में श्री प्राणनाथ जी का विशिष्ट योगदान था।

श्री वियोगी हरि ने 'छत्रसाल ग्रंथावली' का सम्पादन करते हुए इसकी भूमिका (पृ० ६-७) में लिखा है कि महाराजा छत्रसाल की "सफलता प्राप्ति के मुख्य कारणों में स्वामी प्राणनाथ का सत्संग-लाभ भी एक था। इसमें संदेह नहीं कि स्वामी जी एक पहुँचे हुए संत थे। उन्होंने ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय सिद्ध किया है। क़ुरान और पुराण दोनों का मंथन उन्होंने किया था। स्वामी जी महाराजा से मऊ में मिले। महाराजा के हृदय में स्वामी जी के प्रति अगाध भक्ति उत्पन्न हो गई। स्वामीजी महाराज को बराबर उपदेश करते रहे। उनके वीरोचित उपदेश के कारण महाराजा को अपनी दिग्विजय में महती सफलता प्राप्त हुई। जिस प्रकार समर्थ रामदास जी ने छत्रपति शिवाजी को अपने अनुभवपूर्ण उपदेशों के द्वारा नैतिक बल प्राप्त कराया, उसी प्रकार महामति प्राणनाथ जी ने महाराज छत्रसाल को अमूल्य और सामयिक उपदेशों से बड़ी सहायता पहुँचाई।"[६]

डा. भगवानदास गुप्त ने भी इसी तरह लिखा है कि "छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ के सम्बन्ध शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास जैसे ही थे। श्री प्राणनाथ स्वामी ने छत्रसाल को नैतिक और आध्यात्मिक बल देकर उनके राजनैतिक उद्देश्यों का महत्त्व बुन्देलखण्डियों की दृष्टि में बहुत बढ़ा दिया। शिवाजी पर स्वामी रामदास का प्रभाव तो राजनैतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक ही अधिक था परन्तु श्री प्राणनाथ राजनैतिक क्षेत्र में भी छत्रसाल के बहुत बड़े सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने बुन्देलखण्ड में औरंगज़ेब की हिन्दू विरोधी प्रतिक्रियावादी धार्मिक नीति की अपने उपदेशों में स्पष्ट रूप से कठोर निन्दा कर छत्रसाल के पक्ष में सुदृढ़ जनमत का निर्माण किया और जनता को उनके स्वतंत्रता संग्राम में पूर्ण योग देने को सफलतापूर्वक उकसाया।"[७] (लालकवि)

जैसा कि महाराज छत्रसाल के स्वामी प्राणनाथ भेंट सम्बन्धी पत्र से विदित है कि प्राणनाथ ने ही छत्रसाल को हीरे की खानों की जानकारी देकर उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ कर दी थी। महामति प्राणनाथ ने तब छत्रसाल को अपनी राजधानी पन्ना को बनाने की सलाह दी थी और बुन्देलखण्ड में उनकी स्थिति अधिक सम्माननीय बनाने के लिए उनका राज्याभिषेक भी करा दिया था। इस प्रकार डा. गुप्त के शब्दों में "स्वामी प्राणनाथ छत्रसाल के लिए प्रेरणा तथा शक्ति के स्रोत होने के साथ ही उनके गुरु, मित्र और प्रधान सहायक सभी कुछ थे।"



६. गुप्त, पूर्व उद्धृत, पृ० ११३
७. गुप्त, पूर्व उद्धृत, पृ० १०७

स्वामी लालदास बीतक में

'जागनी' एवं 'कयामत' का स्वरूप

डॉ. पाण्डेय रामदास 'गम्भीर'

नारंग कालेज, वाल्टरगंज,
बस्ती (उ० प्र०)

बीतक स्वामी लालदास विरचित वृत्तान्त-सूचक ऐतिहासिक महाकाव्य ग्रंथ है, जिसमें ७३ प्रकरण और ४३७७ चौपाइयाँ संकलित हैं। बीतककार स्वामी लालदास मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब के समकालीन थे। औरंगज़ेब-युग के विशेषज्ञ इतिहासकार श्री जदुनाथ सरकार द्वारा वर्णित कतिपय स्थलों तथा स्वामी लालदास जी द्वारा वर्णित घटनाओं के साम्य के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है। औरंगज़ेब के धर्मांध और कठोर शासनकाल में मेहराज ठाकुर (महामति प्राणनाथ) तथा उनके सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रवर्तित 'सुन्दरसाथ' की स्थिति का आँखों देखा और तन-मन-भोगा जो विवरण स्वामी लालदास जी ने दिया है, वह वृत्त बहुविध ऐतिहासिक संदृष्टियों से प्रामाणिक है। बीतक के सारे वृत्तान्तों के पीछे 'जागनी' और 'क़यामत' की अर्न्तध्वनि गूँजती रहती है, जहाँ जागनी नहीं है वहाँ अत्याचार, हिंसा और बर्बरता देखी जाती है और जहाँ जागनी हो जाती है वहीं क़यामत का भय देखा जाता है।

बीतक में वर्णित जागनी :

बीतकों में वर्णित 'जागनी' का तात्पर्य वैयक्तिक-सामाजिक अन्तःजागृति से है। आसक्ति का परित्याग और सांसारिक अज्ञान निद्रा से जागरण—यही बीतककार को भी इष्ट है। जागनी को प्राप्त संयमी, सांसारिक मोह-मायादि की रात में सोता है जबकि अन्य सांसारिक लोग जागते हैं और जब जिस सत्यप्रेम तथा भगवत्प्राप्ति रूपी रात्रि में वह जागता है, अन्य विषय-वासनाओं में निमग्न लोग सोते हैं। महामति प्राणनाथ और उनका सुन्दर साथ जब 'जागनी' से आलोकित था, सम्राट् औरंगज़ेब और उसके प्रशासनिक अधिकारी अज्ञान की काली चादरों में लिपटे सो रहे थे। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित 'जागनी' से यहाँ साम्य है :

या निशा सर्वभूतानां तास्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतों मुनेः।।   गीता, २ : ६९

यहाँ इस बात को स्पष्टतया समझ लेना चाहिये कि बीतक में वर्णित 'जागनी' से आशय आत्मिक जागरण से ही है। इस जागृति की दशा में व्यक्ति अपने मूल रूप

(परमधाम-वासी) को सम्यक् जान लेता है और उसे जागतिक द्वन्द्वों अर्थात् उचित-अनुचित, कर्तव्य तथा धर्म-अधर्म के प्रति अस्तित्वात्मक संचेतना हो जाती है। वह मोह-आलस्य, अज्ञान, आतंक, अत्याचार, पर पीड़न और हिंसा की घोर तमिस्रा को भेदने में समर्थ सूर्य-सम तेजवाला व्यक्ति हो जाता है। उसे त्रिकाल के प्रति अभिज्ञा होती हैं। वह 'क़यामत' अर्थात् 'न्याय के दिन' के प्रति सावधान हो जाता है। उसकी कथनी और करनी में समानता आ जाती है।

बीतक में वर्णित जागनी और क़यामत परस्पर समवेत स्वरगर्भी शब्द है। जागनी तभी होगी जब क़यामत का विचार होगा। क़यामत के प्रति चिन्ता और सद्कर्मों के प्रति निष्ठा जागनी की ही शर्तें हैं। जागनी परमात्मा से ही होती हैं। यदि उसकी कृपा न हो तो क़यामत का भी विचार न उठेगा। जागनी नीर-क्षीर-विवेचन दृष्टि है। यह मायावी नश्वर सुख और परमधाम के अखंड-अविनाशी सुख में भेद प्रस्तुत करती है। परमात्मा के प्रति सर्वस्व समर्पण की मात्रा के अनुसार जीवात्मा की जागनी या जाग्रति होती है।[१]

बीतककार स्वामी लालदास जी के अनुसार 'जागनी' की उत्प्रेरणा परब्रह्म कृपा से ही संभव हैं। एक वृतान्त के माध्यम से वे जागनी को संकेतित करते हैं। श्री देवचन्द्र जी श्याम जी के मन्दिर में भागवत की कथा नित्य सुनने जाया करते थे। वहीं उन्हें तारतम मंत्र की प्राप्ति हुई। साक्षात् श्रीकृष्ण जी ने प्रकट होकर उनसे कहा कि तुम परमधाम से यहाँ आये हुए हो। इसी तारतम महामंत्र से क्षर, अक्षर और अक्षरातीत का बोध करके सर्वप्रथम अपनी आत्मा को जगा लो—

सुनत भागवत देहुरे, तहां कहा तारतम।
तुम आये हो अरस से, जगाओ अपनी आतम। बीतक, ७ : ८

जागनी की प्रक्रिया में आत्म-जागरण सर्वप्रथम आध्यात्मिक कार्य हैं। अध्यात्म-जगत् में प्रवेश के लिये जागनी अनिवार्य है। आत्म-जाग्रति में आसिक्त का परित्याग और सांसारिक विषय वासनादि जगत् से विमुखता होती है। सारा जगत् फ़रामोशी का शिकार है। विवेकी ऐसा अनुभव करते हैं कि सांसारिक लोग अज्ञान की गहरी निद्रा में सो रहे हैं। सभी ब्रह्मात्माएँ आत्म-विस्मृति में पड़ी हैं। उन्हें जगाने के लिए परब्रह्म श्री कृष्ण ने देवचन्द्र जी को जागनी महामंत्र प्रदान किया और उनके ऊपर यह दायित्व रख दिया कि वे भूली ब्रह्मात्माओं को जगायें ताकि वे संसार के सुख-दुखों का अनुभव प्राप्त कर परमधाम की ओर वापस लौटें। (बीतक ७ : ११)

यह संसार क्षणभंगुर और नानाविध कष्टों से परिपूर्ण है। इसमें संयोगतः दुःख विस्मृति के साथ ब्रह्मात्माएँ अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति करती हुई अपने को और संसार को जान लें इसलिये उन्हें प्रेमामृतमयी जागनी लीला दिखाने के लिये और उनसे प्रेम का व्यवहार करने के लिये श्री देवचंद्र जी को आदेश मिला—

तिनको बुलावने, मैं भेजे तुमको।
खेल में से जगाय के, प्यार करो इनसो।। बीतक, ७ : १४

आत्म-जागृति में सह-अस्तित्व और परस्पर प्रेम-भाव अन्तर्निहित है। आचरणगत परस्पर प्रेम का आदर्श ही बीतककार के लिये अनुकरणीय है न कि परस्पर प्रेम का

१. जागनी १९८०, 'जागनी एवं विश्व धर्म', पृ. ४६

कोरा संप्रत्ययन, अपने सुन्दर साथ से वे कहते हैं कि हे मेरे साथियो ! आत्म समर्पण करनेवाले ब्रह्ममुनियों का आचरण देखो। उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करके अपनी आत्मा को जगा लो—

महामति कहे ऐ मोमिनों, देखो साथ कदम।
अब इनको देखके, जगाओ अपनी आतम।। बीतक, ८ : २४

आत्मा को जगाने का आशय है कि आत्मा को यह बोध करा देना कि वह अपने प्रियतम परमात्मा के घर (परमधाम) से इस जगत् में आई है, उसका यहाँ विमोहित रहना श्रेयस्कर नहीं हैं। उसे चाहिये कि प्रियतम परमात्मा के संग जाने की प्रतियोगी ब्रह्मात्माओं के आचरण का अनुकरण करके आत्मोत्सर्ग करे। इसके लिये सांसारिक मोह-निद्रा से मुक्ति रूप 'जागनी' परमावश्यक है। बीतककार स्वामी लालदास जी का संदेश है :

श्री महामति कहे ए मोमिनो, धरो कदमों पर कदम।
तुम आय धाम धनी से, जगाओ अपनी आतम।। बीतक, ९ : २४

श्री मेहराज ठाकुर (महामति प्राणनाथ) ने अपनी आरंभिक आध्यात्मिक दीक्षा के समय अपने सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी के वचनों को आत्मनिष्ठतया (Subjectively) ग्रहण किया। इसके लिये उन्होंने आत्मानुशासन का दृढ़बंधन स्वीकार किया। मन को त्रुटियों के लिये ताड़ित किया तथा आवश्यकतानुसार अपनी देह को तपाया। स्वामी लालदास जी कहते हैं :

तिस वास्ते अपने पर, करते बड़ा जुलम।
कस्त अपने आकार कों, जगावे अपने आतम।। बीतक, १४ : १६

जब मेहराज ठाकुर की आत्मा जाग गयी तो उनके गुरु जी ने अन्य आत्माओं को जगाने का गुरुतर गंभीर कार्य उन्हें सौंप दिया। जैसे जलता हुआ प्रदीप समस्त दीपावलि को जलाने में समर्थ होता है वैसे ही महामति प्राणनाथ अन्य ब्रह्मात्माओं को जगाने में समर्थ हो गये थे। अपने शिष्यों, ब्रह्ममुनि साथियों को संदेश देते हुए महामति प्राणनाथ जी ने कहा कि जो लोग आपके पास आयें, आप उन्हें जगायें। जग जाने पर उनमें सच्चा ज्ञान उदित होगा और तब जाति, वर्ण, रंग, संप्रदाय भाषाई विभेदों से वे ऊपर उठकर विचार करेंगे। जब उन्हें आप तारतम ज्ञान प्रदान करेंगे, तब उसके प्रभाव से उन्हें दिव्य दृष्टि मिल जायेगी—

तिनको तुम वचन कहो, सब मिट जाय अन्तराए।
जाको होवे प्रकास, सो आपही जग जाए।। बीतक, ४७ : १३३

महामति प्राणनाथ जी की प्रवचन सभाओं में क़ुरान शरीफ़ और श्रीमद्भागवत को रखा जाता था। उन पर चर्चाएँ की जाती थीं। स्वामी लालदास और भवानीभट्ट क़ुरान और भागवत पढ़ते और प्राणनाथ जी उनमें अन्तर्निहित गूढ़ार्थों को स्पष्ट करते थे। जागनी को प्राप्त समस्त सुन्दर साथ इन चर्चाओं से आत्मीय आनंद प्राप्त करते थे।

एक तरफ लालदास, दूजी भवानी भट्ट।
चरचा कुरान भागवत की, होत है लटपट।। बीतक, ५३ : ६५

भगवान रेवादास ने श्री जी के चरणारविन्दों पर मस्तक झुकाकर कहा—"आप मेरी आत्मा को जागृत करें और परमात्मा की पहचान कराने की कृपा करें।"

तब अरज करी भगवान नें, लगा दोऊ कदम।
पर आतम पहिचान के, जगाओ मेरी आतम।। बीतक, ३३ : २२

भगवान रेवादास यह अच्छी तरह समझते थे कि बिना प्रबुद्ध आत्मा के परमात्मा की पहचान असंभव है और आत्मा का प्रबुद्ध होना जागनी से ही संभव है। स्वामी लालदास जी अपने साथियों से अनेक बार ऐसा कहते हैं कि संसार में रहते हुए आप लोग प्रियतम परमात्मा की संगति में रहिये। उसी का स्मरण कीजिये। परमधाम से परमात्मा की कृपा उतरकर यह सब जागनी का कार्य कर रही है— ऐसा विचार करके अपनी आत्मा को जगा लीजिये।

महामति कहें ऐ साथ जी, याद करो धनी तुम।
उतरी मेहर हक की, जगाओ अपनी आतम।। बीतक, ३४ : ५८

लालदास जी की जागनी से संतुष्ट होकर आशीर्वाद देते हुए श्री जी ने कहा कि मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी प्रसन्नता का कारण आपकी संतुष्टिदात्री जागनी ही है। वैयक्तिक जागनी के बाद आध्यात्मिक, सामूहिक जागनी अर्थात् क़यामत का अवसर आने को है, इसलिये आप धन्य हैं।

हमको बड़ा हरख हैं, सब सुख में रहियो कुम।
दिन जागनी के आए नजदीक, स्यावास लालबाई तुम।।
बीतक, ३८ : ८५

परस्पर जागरण सुन्दर साथ की अपनी विशेषता है। यही कारण है कि इसमें हिन्दुओं के साथ अनेक मुसलमान भी थे। जिनकी जागनी हुई वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और मुसलमान सभी सुन्दर साथ में सम्मिलित हो गये। महामति प्राणनाथ ने सत्य-पथ में अनेक बाधाओं का अनुभव किया था इसलिये वे सुन्दर साथ को भली-भाँति दीक्षित करना चाहते थे। जागनी लाने में कैसी कठिनाई आती है, इसका संकेत करते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा था कि मुसलमान क़ुरान की बातों को हिन्दुओं तक नहीं पहुँचने देना चाहते उसी प्रकार जैसे ब्राह्मण, शूद्र और चाण्डाल जाति को गायत्री मंत्र नहीं सुनने देना चाहते। इस प्रकार स्थिति यह आ जाती है कि हिन्दू केवल हिन्दू से बल्कि मुसलमान तथा इतर संप्रदायवाले लोगों से और इसी प्रकार मुसलमान हक़ीक़ी दीन इस्लाम तथा हिन्दू जाति और धर्म से बिल्कुल अलग-अलग रह जाते हैं— तब आपसी मेल-मुलाकात कैसे संभव है ? (**बीतक** ४८ :६-७)

स्वामी लालदास जी आन्तरिक शुचिता पर बहुत ज़ोर देते रहे। उनके विचार से इसके अभाव में काम-क्रोध-लोभ-मोहजनित हिंसा, प्रलोभन, धर्म-परिवर्तन प्रभृति सामाजिक व्याधियां उदित होती हैं। औरंगज़ेब एवं उसके अधिकारी जागनी के अभाव में धर्म-भ्रष्ट, बर्बर एवं हिंसक पशु-सम सिद्ध हुए। उदयपुर के राजा राणा राजसिंह के पास मथुरिया के द्वारा औरंगज़ेब ने यह संदेश भिजवाया कि तुम यदि मुसलमान बन जाओ तो पाँच परगने तुम्हें दिये जायेंगे। (**बीतक** ५० :५) जागनी होने पर धर्म परिवर्तन, का प्रश्न ही नहीं उठता है। यदि धर्म की सही जानकारी हो जाय तो कौन धर्म-परिवर्तन करायेगा और कौन धर्म-परिवर्तन करेगा ? जागनी के स्तर पर व्यक्तिं को पूजा, नमाज़, एवं प्रार्थना सबमें उसी एक परमात्मा की सुधि ही आती है। क़ुरान-पुरान, वेद-कतेब, उर्दू, अरबी, संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषा गत कोई भेद नहीं रह जाता है। जागनी के स्तर पर मानव सच्चा मानव बन जाता है। वह ब्रह्मात्मा, मोमिन और ईसाई सबको

प्यारा लगता हैं। क्योंकि वह सबका 'सुन्दरसाथ' होता है। उसका धर्म विश्व-मानव-धर्म होता है, जिससे सभी धर्म एवं सम्प्रदाय सरिताओं की भाँति आकर मिल जाते हैं। जैसे पहाड़ की ऊँचाई से देखने पर सारी तलहटी दिखाई देती है और नदियों के उद्गम का ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार महामति प्राणनाथ द्वारा प्रवर्तित जागनी और विश्वधर्म का बोध हो जाने पर जाति, धर्म, संप्रदाय, देश, भाषा प्रभृति भेदों में अभेद दिखाई पड़ने लगता है।

न केवल अज्ञानी पठानों ने अपितु अनेक हिन्दुओं ने महामति प्राणनाथ और सुन्दरसाथ की आलोचना की थी। कारण यह कि महामति प्राणनाथ जी गीता-पुराण, कुरान, बाइबिल इत्यादि सभी धर्म शास्त्रों को साथ लेकर चलते थे। वे अनेकता में एकता खोजा करते थे। पठानों ने उनसे पूछा था—'आप टीका, चन्दन, माला और संन्यासी का भेष धारण करते हैं, साथ ही क़ुरान भी पढ़ते हैं। यह कितनी विसंगत बात है। हमलोग यह नहीं चाहते कि हिन्दू क़ुरान पढ़ें अथवा उसकी चर्चा करें।" बीतक में इसका उल्लेख है :

तुम टीका माला पहिनत, और क्यों पढ़त कुरान।
एह रवा है नहीं, जो तुम कहो सुनो कान।। बीतक, ५३ : १२०

महामति प्राणनाथ जी द्वारा जब पठानों को हक़ीक़ी दीन इसलाम का ज्ञान कराया गया तो वे क्षमा माँगने लगे। उन्होंने कहा कि 'हमारा दिल साफ़ हो गया है, आप हमें क्षमा कर दें।' (बीतक ५३ : १२६) हालाँकि पठानों का दिल बहुत साफ़ तो नहीं था किन्तु महामति के दिव्य तेज से उनकी अज्ञानता कुछ क्षण के लिये जाती रही। जागनी का सतत् अभ्यास करनेवाले सुन्दर साथी दिव्य तेज से जगमगा रहे थे। उनके रहन-सहन, प्रेम और व्यापक दृष्टिकोण से प्रभावित अनेक मुसलमान उनके साथ महामति जी की सेवा करते थे, कुछ मुसलमान साथियों के नाम इस प्रकार हैं उनके नाम नहीं बदले जाते थे।

अव्वलखान, जहान मुहम्मद, मिहीनखाँ, फतेह मुहम्मद पठान, गाजीखाँ, फतूअल्ला, औरंगाबाद के क़ाजी हिदायतुल्ला, दीवान दलेल खान, शेखबदल, नूर मुहम्मद, मुफ्ती अब्दुल रहमान, दीवान अमानत खाँ, बहादुरखान, बूढ़ानपुर के मूसे खाँ पठान, शेख़ खिदर, हसन, बिहारीफराश, बिहारी रोशन, चाँद खाँ, रहमत खान, पुरदल खान, गुलाम मुहम्मद, महोबा बासी क़ाजी अब्दुल रसूल, गुल मुहम्मद, लालखान, मिहीन पठान, हकीकत खाँ, खोजी बाई (रई बाई) आदि।

जागनी के परमप्रदाता महामति प्राणनाथ अपने भक्तों को मोह-निद्रा से जगाते रहते हैं। उनका संदेश है कि सर्वप्रथम अपनी आत्मा को जगा लो—'जगाओ अपनी आतम'। अपनी आत्मिक जागृति के प्रभाव से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि ईसा रूह अल्लाह श्री देवचन्द्र जी ने जो जागनी-केन्द्रित ब्रह्मज्ञान प्रदान किया ठीक वैसा ही मुहम्मद साहब ने क़ुरान में कहा है। सत्य-संधता से समीक्षित किये जाने पर यह तथ्य उभरकर सम्मुख आ जाता है कि एक ही सत्य धर्म, हक़ीक़ी दीन इस्लाम, निजानंद धर्म ही अनेकता में एकता के रूप में प्रतिष्ठित है। स्वामी लालदास ही कहते है—

जो बात कही महम्मद ने, सोई रूह अल्ला कलाम।
मिलाय दिखाये दोनों इनों को, ए हुआ दीन एक इसलाम।।
बीतक, ३९ : ६३

महामति प्राणनाथ जी के व्यक्तित्व में ईसा रूह अल्लाह श्री देवचंद्र जी तथा रसूल मुहम्मद साहब की दिव्य जागनी संगुफित थी। क़ुरान-पुरान, वेद, गीता, उपनिषद् कलमा और तारतम इत्यादि का आरोपित भेद-भाव दूर करके वे अखंड सत्यज्ञान प्रदान करते हैं। जो उनकी उपासना करते हैं उनके दिल और दिमाग़ में अविश्वास और संदेह मिट जाता है उनकी आत्मा जागृत हो जाती हैं—

जब ईसा महम्मद मिल गये, कलमा और तारतम।
भागा दिल का कुफर, जाग देखी आतम।।

बीतक, ३६ : ६४

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि महामति जी में हजरत मुहम्मद, रूह अल्लाह—परमात्मा की आनंद अंग श्यामा श्री देवचन्द्र जी, मेहदी इमाम—सबका ज्ञान रूप एकाकार हुआ है। इनका सामूहिक स्वरूप ही हक़ीकी दीन इस्लाम, निजानंद धर्म में समर्पित करता है—

रसूल महम्मद रूह अल्ला, और मेहदी इमाम।
ऐ चारों एकै तन हैं, ताकों नाम इसलाम।। बीतक, ४५ : १६

जागनी महामति जी का दिव्य संदेश हैं। जो इसे नहीं सुनते, वे अहंकार के वश में हैं। उनके मन में शैतान का वास है। परवरदिगार परमात्मा ही इसे निकाल सकते हैं। जागनी परमात्मा से जुड़ने की प्रविधि के रूप में है। परमात्मा से जुड़कर आत्मा अपने मूल रूप को प्राप्त करती है। महामति प्राणनाथ की कृपा से सुन्दर साथ को यह अवसर मिला है।

स्वामी लालदास जी कहते है कि मुहम्मद साहब के साथ सबके मत की तुलना करनी चाहिये। और समस्त मतों के समन्वयक श्री प्राणनाथ जी की शरण में आकर आत्मिक लाभ लेना चाहिये।

तौलो मत सबन की, और महम्मद अलेह सलाम।
ज्यादा कम है किनकी, सब मिल बैठे इन ठाम।। बीतक, ४७ : ८८

महाराज छत्रसाल की जब जागनी हुई तो उन्हें महती आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव हुआ। उन्होंने तारतम का पट (नक़शा) देख-लिख लिया। जागनी-मूलित तारतम मंत्र का ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने कहा कि अब मेरी सांसारिकता क्षीण होती जा रही है। मेरी आत्मा जाग गयी है। स्वामी लालदास जी इस बात का बयान करते है—

फेर श्री महाराजें देखिया, पट जो तारतम।
अब बहेवार छुटत है मुझसे, जाग खड़ी आतम।। बीतक, ६० : ३६

महामति प्राणनाथ जी ने एक बार बिहारी जी को पत्र में लिखा था कि आप निजानंद स्वामी सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलिये। हमलोग जब इस मार्ग पर चलेंगे तो निजानन्द धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार होगा। ऐसा होने पर सभी सुन्दरसाथ जाग्रत एवं सद्धर्म पर प्रतिष्ठित होने की आशावाले होंगे।

तो ए राह चलसी, होए बड़ो प्रकास।
साथ सब दौड़सी, ले दिल जागनी की आस।। बीतक, २९ : ६२

संकुचित मानसिकता के कारण बिहारी जी इस पत्र को पढ़कर बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने अपने सम्बन्ध प्राणनाथ जी से तोड़ लिये। अहंकार के वशीभूत लोगों को जागने का अवसर न मिल सका। स्वामी लालदास जी कहते हैं कि जिसके मन में इबलीस

या शैतान बैठा हुआ है वह अहित को ही प्राप्त करेगा क्योंकि अहित प्रतीयमानतः हित ही होता है। शैतान या आसुरी वृत्ति का यही प्रकार्य है कि वह लोगों में सद्धर्म-विश्वास को खंडित करे।

जानबूझ आपको, बुरा न चाहे कोए।
पर ए काम अबलीस का, मारी राह इसलाम की सोए।। बीतक, ४६ : २३

पवित्र शास्त्र बाइबिल के अनुसार शैतान को बड़ी भारी सांसारिक शक्ति मिली है ताकि वह परमेश्वर के प्रत्येक वचन का विरोध करे। परमेश्वर के मार्ग में शैतान एक परीक्षक भूमिका अदा करता है। वह जागनी और क़यामत की ओर से लोगों को सर्वथा निश्चिन्त करने का षड्यंत्र करता है। वे लोग जो सद्धर्म पर चलते हैं उन्हें शैतान भाँति-भाँति के कष्ट पहुँचाता है और पथ भ्रष्ट करने की पूरी कोशिश करता है। शैतान इस पृथ्वी पर जागनी का सर्वाधिक शक्तिशाली शत्रु है। वह व्यक्ति को न्याय व क़यामत का उपहास करने को प्रेरित करता है। इस प्रकार वह मानव को चतुर किन्तु मदांध पशु के रूप में बदल देता है।

बीतक में 'क़यामत'

वैयक्तिक स्तर पर उदित जागनी सामाजिक स्तर पर 'कयामत' के प्रति अभिज्ञावान् बनाती है। क़यामत अरबी भाषा शब्द है। इसका अर्थ है आनेवाला एक समय, जिसमें प्राणियों के कृत कर्मों का हिसाब-किताब होगा। 'कयाम' का तात्पर्य अचानक उठ जाने का है। क़ुरान शरीफ़ में वर्णित क़यामत का अर्थ 'मुर्दों का अचानक उठ खड़ा होना' है। किन्तु महामति प्राणनाथ और उनके भक्त स्वामी लालदास जी इसकी प्रतीकात्मकतया स्वीकार करते हैं न कि तत्त्वतः। वे क़यामत के गूढ़ार्थ की खोज करते हैं। क़यामत में जजा और सज़ा का विधान होता है। इस दिन इसराफील सूर फूँकेगा और तब कयाम होगा। स्वामी लालदास जी का कयाम से तात्पर्य नश्वर शरीर (क़ब्र) से अचानक रूह (आत्मा) की जागनी से है। 'रूह का कयाम' अर्थात् क़ब्र के समान इस शरीर में दबी-सोयी आत्मा क़यामत की घड़ी में जग जायेगी और तब फिर वह सांसारिकता में न फँसेगी। संसार की मोह-माया उस जागनी को प्राप्त आत्मा को फिर न सुला सकेगी।

राम-कृपा भव-निसा सिंरानी, जागे फिर न डसैहौं।' तुलसीदास) क़यामत के समय सत्य का प्रकटीकरण होगा— इसी के लिये तेज़ धमाके से ज़मीन और आसमान का टूट जाना— परिणाम स्वरूप तारों का टूट-टूट कर गिर जाना, पहाड़ों का उड़ जाना इत्यादि प्रतीकतः वर्णित किया गया है। पल्लवग्राही अर्थ अनर्थ पैदा करता है इसलिये महामति प्राणनाथ जी ने प्रतीकों के भीतर छिपे मूलार्थ अर्थात् आध्यात्मिक अर्थ की खोज करने पर ज़ोर दिया है।

स्वामी लालदास जी के अनुसार क़यामत आध्यात्मिक तौर पर 'समूह-जागनी' है। जब ब्रह्मात्माओं को दिव्य परमधाम का ज्ञान मिल जायेगा तब वे जाग जायेंगी। इसी बात को क़ुरान में 'सूर-फूँकना' प्रतीक से कहा गया है। महामति प्राणनाथ जी का कहना है कि उनके सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी जो रूह-ए-अल्लाह हैं, वे इस शरीररूपी क़ब्र में सो रही रूह को जगा देंगे—

रूह अल्लाह मुरदे उठावत, हक का हुकम ले।
आखर अपने हुक्म उठावहीं, मोमन मुहम्मद के।।

छोटा कयामतनामा, २ : ४४

महामति प्राणनाथ जी क़ुरान शरीफ में वर्णित क़यामत के ऊपरी मायने नहीं लेते, वे तो शब्द की गहराई में उतरकर विचार करते हैं। उनका कहना है :

ऊपर माएने न होए पेहेचान।
ए तुम सुनियो दिल के कान।

बड़ा कयामतनामा १ : १६

बीतककार स्वामी लालदास जी ने अपने 'बीतक' में 'क़यामत' शब्द का वही अर्थ लिया है जो उन्होंने दिल के कान से सुना है। उनके विचार से समस्त ब्रह्म सृष्टि परस्पर अपनी धर्म-सेवाओं का पुण्य-लाभ क़यामत के समय ही पाती है। उसी समय अपनी त्रुटियों पर वह सचेत होकर पछताती भी है।

सेवे सब मोमिन को, पहिचान के निसबत।
भूल माने अपनी, बखत हुआ क्यामत।।

बीतक, १२ : १२

स्वामी लालदास जी उस समय का वृत्तान्त प्रस्तुत करते है जब सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी नवतनपुरी—जाम नगर में पधारे थे। वहाँ कुछ दिन तक उन्होंने निवास किया था। जामनगर में श्री गोवर्धन ठाकुर ने सद्गुरु की बड़ी सेवा की थी। जागनी आनेवाली थी—ऐसा संकेत मिलने लगा था।

श्री देवचन्द्र जी पुरी नवतन, आये यहाँ बसत।
सेवा गोवर्धन करें, पहुँचा नजीक बखत कयामत।।

बीतक १३ : ३८

क़यामत की चर्चा हिन्दुओं के मुख से सुनकर शरीयत-प्रधान और दज्जाल के वशीभूत मुग़ल अधिकारियों ने इसे हिन्दुओं की ही एक चाल समझा। वे यह न समझ सके कि क़यामत का असली अर्थ आध्यात्मिक जागृति होता है न कि शारीरिक मुर्दों का जी उठना। एक काज़ी ने 'साथियों' से पूछा कि आप लोग क़यामत के विषय में क्या जानते हैं ? यह किस सदी में होगा ? दसवीं, ग्यारहवीं या बारहवीं में—

अब लगा बातें पूछने, क्यों कहिए कयामत।
दसहीं अग्यारहवीं बारहीं लों, लिखी किन सरत।।

बीतक, ४३ : ८१

साथियों ने काजी को स्पष्ट बता दिया कि क़यामत का समय ग्यारहवीं, बारहवीं सदी मुहम्मद साहब के बाद आ पहुँचा है। अल्लाह— परमात्मा की ओर से ऐसा विधान है। जिनकी जागनी नहीं हुई है, वे लापरवाह, बेसुध, मदांध, अहंकारी दमनक, ईर्ष्यालु, द्वेषी और हिंसक लोग 'क़यामत' की तनिक भी चिन्ता नहीं करते हैं। उनके कुकर्मों और कुभावों के लिये उन्हें घोर यातना दी जायेगी। वे अर्श—परमधाम के पुण्यफल को न प्राप्त कर सकेंगे।

ए है हिकमत इलाही, करी पातसाह मसलहत।
जो गाफिल हुकुम पैगाम से, रद्द बीच कयामत।।

बीतक, ४४ : २७

क़यामत के समय इसके सत्यार्थ को न पहचान कर कर्म करनेवाले, शरीयत के नाम पर भेद-भाव रखनेवाले तथा परमात्मा की आज्ञाओं (क़ुरान में वर्णित) का ग़लत अर्थ लगाने वाले लोग फ़रिश्तों द्वारा फटकारे जायेंगे। सभी मोमिन—ब्रह्मात्माएँ उन्हें

बार-बार धिक्कारेंगी।

खुदा रानत है जिनको, तापर फिरस्ते फेरे लानत।
सब मोमिनों की लानत, हुई बखत कयामत।।

बीतक, ४६ ३

दज्जाल के वशीभूत मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब ने तथा उसके क़ाजी, कोतवाल तथा दीवान अधिकारियों ने महामति प्राणनाथ के बारह शिष्यों की बातों को अनसुना कर दिया, साथ ही उन्हें कठोर यंत्रणाएँ दी जब महामति ने यह सुना तो उन्होंने इसे परमेश्वर की इच्छा मान लिया। उन्होंने अपने साथियों के पास संदेश भिजवाया—कि परमात्मा तुम्हारी परीक्षा ले रहे हैं और क़यामत के दावे के लिये तैयार कर रहे हैं। इसीलिये तुम्हें दुःख मिले हैं कि तुम क़यामत के दिन खरे कुन्दन की भाँति चमक सको।

तिस वास्ते तुमको, अंजमावत हैं इत।
दिखाए बलाए कसाले, ए मुकदमा कयामत।।

बीतक, ४६ १८

सत्य का असत्य से विरोध स्वाभाविक है ही, इसलिये प्रत्येक सत्य-प्रेमी का सहजतः विरोध असत्य-प्रेमी करते ही हैं। अंधकार और प्रकाश साथ-साथ नहीं रहते। प्रकाश होगा तो अंधकार समाप्त हो जायेगा। शरा के अंधे लोग विवेकी से वैर रखेंगे ही। शराअ को ही सब कुछ मानने वाले कर्मकांड़ी लोग अंतःप्रज्ञा (Intuition) तथा आत्म-चेतना (Self Consciousness) की उपेक्षा करते हैं। क़यामत के समय उन लोगों का मुँह काला होगा। स्वामी लालदास जी कहते हैं कि अत्याचारी, अविवेकी और शरीयत-प्रधान लोग क़यामत के समय लज्जित होंगे।

महामति कहे ए मोमिनों, यह बीतक सरियत।
हुए स्याह मुंह सरमिंदे, हुआ दौर कयामत।।

बीतक, ४६ २८

मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब दज्जाल के वशीभूत होकर अत्याचार कर रहा था। उसके शासन काल में धार्मिक चापलूसी ज़ोरों पर थी। आध्यात्मिक चेतना और सद्धर्म की भावना मृत प्राय थी। सर्वत्र धार्मिक विसंगतियाँ (religious absurdities) बढ़ती जा रही थीं। क़यामत के सारे लक्षण एक-एक करके देखे जा रहे थे। जैसा क़ुरान में लिखा था, वैसा ही हुआ—

तैसा ही ए जुद्ध भया, और भी होएगा इत।
लिखे माफक होएगा, ए जानो मुकदमा कयामत।।

बीतक, ४७ २०

राणा भावसिंह हाड़ा महामति प्राणनाथ जी से हक़ीक़ी दीन इस्लाम, निजानन्द धर्म और क़यामत की चर्चा सुनकर बोला— "मेरे यहाँ चार मुसलमान नौकर हैं। आप उनसे क़यामत की चर्चा करें और उन्हें अपने अनुकूल बना लें। जब वे आप की बातों पर विश्वास कर लेंगे तो निश्चय ही मैं औरंगज़ेब से धर्म-युद्ध करने को तैयार हो जाऊँगा। मैं अपने आप को आपकी सेवा में न्यौछावर कर दूँगा।"

ए मुसलमान चार हैं, मेरे चाकर इत।
तिनको तुम समझाओ, मुकदमा जो कयामत।।
तब मैं औरंगजेब सों, बांध के कमर।

लड़ों वास्ते दीन के, सिर सौंपा इन बात पर।।

बीतक, ५३ : ४७ ४८

क़ुरान का 'फर्दा ए रोज़' महामति जी की जागनी के ही संबंध में चरितार्थ होता हैं। परब्रह्म परमात्मा ने अपनी प्रियात्माओं के कल्याणार्थ सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी तथा स्वामी प्राणनाथ जी को इस जगत् में भेजा ताकि जीवों की जागनी हो। क़यामत काल में लोगों की आत्माएँ जाग जायें।

ए मेहर मोमिनों पर, सबों पाई इनों सोहोबत।
एह समें हकें किया, फरदा रोज कयामत।।

बीतक, ५४ ११

(कल का रोज़। क़ुरान में दैवी दिन हज़ार साल का और रात सौ साल की कही गयी। मुहम्मद साहब के बाद ग्यारहवीं सदी में फर्दाए रोज़ जाहिर हुआ)।

स्वामी लालदास जी कहते हैं कि मुग़लसम्राट औरंगज़ेब ने सुन्दर साथ के सन्यासियों को पकड़कर लाने के लिये अपने दूत शेख़ खिदर को भेजा था, किन्तु दीवान भिखारीदास ने जब प्राणनाथ जी के आखिरुल-जमा रूप और आध्यात्मिक जागनी—क़यामत के बारे में बताया, तो उसने संन्यासियों को पकड़ने से साफ़-साफ़ इनकार कर दिया। दीवान भिखारीदास ने क़यामत की सातों निशानियों की स्पष्ट व्याख्या कर दी। दाभतुलअर्ज और दज्जाल के विषय में उसने ज्ञान कराया—

सातों निशान कयामत के, करी तिनकी चरचा जोर।
एक दाभतुल अरज, और दिखाया दज्जाल का सोर।।

बीतक, ५८ ६४

एक ओर औरंगज़ेब अपनी कट्टरता और धर्मांधता के बल पर इस्लाम का प्रचार-प्रसार कर रहा था और हिन्दुओं को ज़बर्दस्ती मुसलमान बना रहा था, दूसरी ओर महामति प्राणनाथ पोषित सुन्दरसाथ हक़ीक़ी दीन इस्लाम, निजानंद धर्म के प्रचार-प्रसार में अपना तन-मन धन सर्वस्व अर्पित कर रहा था। सुन्दरसाथ क़यामत की बात पर ज़ोर दे रहा था। उसका कहना था कि क़यामत का समय आ गया है।

क़यामत के सात निशान लक्षित हो रहे हैं, किन्तु मुसलमान लोग यक़ीन नहीं करते हैं। जहान मुहम्मद ने महामति प्राणनाथ जी से पूछा कि क़यामत के समय मुर्दे कब्रों से बाहर कैसे निकलेंगे ?

आया चरचा सुनने, सवाल किया एक इत।
मुरदे क्योंकर उठेंगे, बखत रोज कयामत।।

बीतक, ५३ ७४

महामति जी ने उसे क़यामत के प्रसंग को अत्यन्त स्पष्टता के साथ समझा दिया। उन्होंने बताया कि जो मोमिन अल्लाह—परमात्मा के प्रति निष्ठा रखते हैं, उन्हीं पर कृपा बरसाने के लिये हज़रत मुंहम्मद साहब (खुदाई हुक्म) अवतार लेते हैं। वे उन आत्माओं को जो फ़रामोशी में सो रही हैं और शरीर की क़ब्र में दफनाई-सी पड़ी हैं, जगाने और उठाने के लिये आते हैं। वह समय क़यामत का समय होता है।

यों उठेंगे मुरदे, कबरों से कयामत।
तिन समै की रामत, करी महम्मद इत।।

बीतक, ५३ ८६

क़यामत के सातों निशानों को वही देख पाता है, जिनकी जागनी हो गयी होती है अर्थात् जिनके दिल और दिमाग तारतम ज्ञान से जगमगा उठते हैं। स्वामी लालदास जी कहते है कि क़यामत को मोमिन ब्रह्मात्माएँ ही देखने में समर्थ होती है।

सातों निसान कयामत के, लिखे बीच बातुन।
मोमिन देखें जाहिर, हुए जिनके दिल रोसन।।

बीतक ५४ ४५

स्वामी लालदास जी कहते हैं कि तारतम ज्ञान समस्त धर्मशास्त्रों के गूढ़ार्थों को समझने की कुंजी है। महामति प्राणनाथ जी को सद्‌गुरु देवचन्द्र जी द्वारा यह ज्ञान मिला था। मोमिनों की जागनी इसी ज्ञान के द्वारा हुई।

हजरत ईसा आइया, ल्याया किल्ली गंज कलाम।
पहिचान भई मोमिन को, आए बीच इसलाम।।

बीतक ५४ ४६

महामति प्राणनाथ ने बेतुल्लाह—परमधाम की ओर अभिमुख होकर सुन्दर साथ की सहायता व सहनशीलता के लिये प्रार्थना की। परमात्मा ही एक मात्र अंतिम सत्ता है जो भक्तों की पुकार सुनकर असंभव कार्य को भी संभव बना देते है। क़यामत के समय की साक्षी के लिये वह समर्थ है।

परवरदिगारें देखिया, लड़ाई के बखत।
बुलाया बेतुल्लाह को, साहिदी बखत कयामत।।

बीतक, ५४ ६२

इस्लामी संदेश की उपेक्षा करनेवाले क़ाफ़िरों ने शरीयत के मूलोद्‌गम—मक्का की ओर भी तनिक ध्यान न दिया। वहाँ से चार वसीयतनामे मिले। उनमें हक़ीक़ी दीन इस्लाम के अनुसार कयामत की निशानियों का बयान था, किन्तु कट्टरपंथी लोगों ने उनकी परवाह न की।

सरियत के सिरे से, लिखे वसीयतनामे चार।
तिनमें खबर कयामत की, पर काफर करे ना विचार।।

बीतक, ५४ ६३

काज़ी और काज़ी के मित्रों ने जब महामति प्राणनाथ जी की क़यामती व्याख्या पर संदेह किया कि 'आप की व्याख्या अशुद्ध है' तब महामति जी ने कहा कि जो हमलोग कह रहे हैं, वह सब क़ुरान में लिखा है। आप जब क़ुरान पर ही संदेह कर रहे हैं तो हम आपसे क़यामत की बात क्या करें ?

हदीसा कुरान की, तुम नाम धरत इत।
तो हम तुमसों क्यों कहें, दावा रोज कयामत।। बीतक, ५५ ११

स्वामी लालदास जी ऐसा अनुभव करते हैं कि क़यामती राह का प्रधान शत्रु शैतान ही है। उसका ही प्रभुत्व सर्वत्र देखा जाता है। महामति प्राणनाथ जी अपने सुन्दर साथ को उससे सावधान रखते थे। जब उन्हें मुफ्ती के घर कुछ संशय हुआ और तत्काल उस स्थान को त्याग देने के लिए उन्होंने नारायणदास को पत्रवाहक बनाकर सुन्दर साथ के पास उनकी रक्षार्थ पत्र भेजा कि मुफ्ती के यहाँ आप पर हमला होने ही वाला था—

एतो लोग सरियत के, जिन तुम पर डारे तोहमत।
पोहोरा ऐ दज्जाल का, ए दुश्मन कयामत।। बीतक, ५५ ४०

जब दिल और दिमाग़ में से शैतान भाग खड़ा हुआ तो बुंदेलखंड में काजी ने बलादिवान से कहा— "हम क़ुरान—मुसाफ़ की सौगंध खाते है, यदि हम ग़लत कहें तो यह मुझे मार डाले। महामति प्राणनाथ निश्चय ही आखिरुल-जमां इमाम मेंहदी हैं। जैसा कि क़ुरान में हज़रत मुहम्मद साहब ने लिखा है वैसा ही क़यामत का समय आ गया है—यही असली जागनी का युग है"—

तब जबाब काजी दिया, मुसाफ सिर पर हमारे।
जो हम झूठ बोलें, तो एही हमको मारे।
ए तहकीक जमाने का खाविन्द, जो करी थी सरत।
सो सरत आए पहुँची, फरदा रोज कयामत।।

बीतक, ६० १११.११२

कालपी के पास जागनी की आवाज़ बुलंद होने पर अनेक मुल्ला, काज़ी और सैयदों ने महामति प्राणनाथ को आख़री ज़माने का खाविन्द घोषित कर दिया—यह बात महजरनामे से प्रमाणित होती है। (**बीतक** ६० : १५३) महामति प्राणनाथ जी में हजरत मुहम्मद साहब और श्री देवचंद्र जी एकाएक हुए। उनसे मोमिन—ब्रह्मात्माओं की रक्षा हुई। (**बीतक** ६० : १५९)

स्वामी लालदास जी कहते हैं कि महामति के समय में क़यामत की सारी निशानियाँ स्पष्ट हुईं। जैसे कि पश्चिम से सूरज का निकलना, (अरब देश में ईश्वरीय आदेश से वसीयत नामे उतरे किन्तु अविश्वास ने उसे प्रकट न होने दिया।) दाभतुल अर्ज अर्थात् आसुरी वृत्ति-प्रधान मनुष्य पशुओं का प्रकट होना, घातक काल-रूप आजूज-माजूज (व्याधि) का आना, असराफील—बुध निष्कलंक का आना, हजरत ईसा-रूह-अल्लाह श्री देवचन्द्र जी में प्रकट होना तथा महामति प्राणनाथ जी में सबका समन्वयीकरण होना। आध्यात्मिक जागरण से लोगों ने क़यामत की निशानियों को आँखों से देखा और विश्वास किया।

सात निसान बड़े कहे, होसी रोसन बखत कयामत।
कहया अग्यारह सौ के, सो आए पहुँची सरत।।

बीतक, ६४ ४०

संपूर्ण बीतक में क़यामत का प्रसंग ब्रह्मात्माओं—मोमिनों की संप्रेरणा के लिये ही आया। जागनी और क़यामत का अतिघनिष्ठ संबंध है। क़यामत के मुकदमे में मोमिन जीतता और काफ़िर पराजित होता है। शरीर रूपी क़ब्र में सोई आत्मा को जगाने के लिये महामति जी ने अवतार ग्रहण किया था।

मुकदमा क़यामत का, सो इनो वास्ते होए।
मुरदे किए जीवते, इनो वास्ते किया सोए।।

बीतक, ६६ ६९

आधुनिक प्रासंगिक मूल्यांकन :

बीतककार स्वामी लालदास जी ने जिस ऐतिहासिक तथ्य की प्रस्तुति की है, वह आधुनिक काल में भी हमें जागनी के लिये बराबर संप्रेरित करता रहता है। सांसारिक विषय-वासनाओं, ईर्ष्या-द्वेष-घृणा क्रोध प्रभृति संवेगों के वश में जो रहता है, निश्चय ही उसका अहित होता है। शैतान के वशीभूत और मदांध औरंगज़ेब का पतन इस बात

का दृष्टान्त है कि हमें शैतान से बचना चाहिये। महामति प्राणनाथ जी ने वेद, उपनिषद्, भागवत, गीता, क़ुरान, इंजील (बाइबिल), जबूर, तौरेत प्रभृति अनेकानेक धर्मग्रंथों का आदर किया और उनमें परस्पर मौलिक एकता ढूँढ़ने का अथक प्रयास किया। इस कार्य में उन्होंने महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। सुन्दर साथ में हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई सभी सम्मिलित थे। आधुनिक युग में यदि मानव महामति जी के उपदेशों पर चलें तो बहुत सारी साम्प्रादायिक विसंगतियों पर विजय पाई जा सकती है।



महामति वाङ्मय में प्रेम की अवधारणा

डा. विद्यावती मालविका

एफ. ३६, एम.पी.ई.बी कालोनी
मकरोनिया, सागर, (म. प्र.)

राष्ट्र के जीवन में कभी-कभी विषम परिस्थितियाँ आती हैं। यदि राष्ट्र सफलतापूर्वक संघर्ष करने की शक्ति उत्पन्न कर लेता है तो उसमें एक अपूर्व आभा और निखार के दर्शन होते हैं। उन विषम परिस्थितियों के प्रबल प्रभंजन के प्रवाह को लौटा देने की क्षमता उसके मनीषियों और चिन्तकों में होती है जो धर्म के वास्तविक स्वरूप को अवगत कराते हुए नव-जागरण का संदेश देते हैं। मध्ययुग राष्ट्र के लिये ऐसी ही विषम परिस्थितयों का समय था। धर्म, जिसे मनुस्मृति के रचयिता ने एक मात्र साथी, सहायक और रक्षक की संज्ञा दी थी, वही धर्म जो जोड़नेवाली शक्ति है, न कि तोड़नेवाली, फिर भी उसी धर्म के नाम पर विश्व में जितने भीषण रक्तपात, हिंसा और अत्याचार हुए उतने सम्भवतः किसी दूसरे नाम पर नहीं हुए। हमारा राष्ट्र भी इससे अछूता नहीं रहा। और सत्रहवीं शताब्दी, वह तो धार्मिक अराजकता की पर्यायवाची बन गयी थी। जैन-बौद्ध भिक्षुओं का समय बीत चुका था। ईसाई धर्म देश की देहरी पर क़दम रख चुका था। कट्‌टरपंथी शासक औरंगज़ेब का शासन काल था। इस्लाम के कट्‌टर पक्षपाती क्रूर राजकर्मचारी धर्म के नाम पर अत्याचार का तांडव कर रहे थे। हिन्दू अपने हिन्दुत्व में भ्रमित हो चले थे। छुआछूत, पर्दा सती आदि प्रथाओं का बोलबाला था। तत्कालीन दोनों प्रमुख धर्मावलम्बियों (हिन्दू और मुसलमान) को पाखंड, रूढ़िवाद, चमत्कार और अंधविश्वास ने बुरी तरह जकड़ लिया था। धर्म का सच्चा स्वरूप इन्हीं मायाजाल में अपनी अस्मिता खो बैठा था।

ऐसे भयावह त्रासद समय में जामनगर के दीवान केशव ठाकुरके पुत्र के रूप में महामनस्वी मेहराज ठाकुर का आविर्भाव हुआ, जो कोटि-कोटि प्राणों के स्वामी 'प्राणनाथ' के नाम से विख्यात हुए। महामति प्राणनाथ ने दयनीय एवं यंत्रणाग्रस्त जन-जीवन को निकट से देखा और अनुभव किया। इससे उनका करुणामय हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने तत्कालीन सभी धर्म-ग्रंथों, विशेष रूप से क़ुरान, पुरान, वेद, कतेब आदि का गहन विश्लेषण किया, गुरु निजानन्द स्वामी देवचन्द्र से परम तत्त्व के सम्बंध में समझा और मनन किया साथ ही पूर्ववर्ती विचारकों और संतों की विचार सरणी को परखा। इन सबको स्वानुभूति की कसौटी पर कसा और सर्व धर्मों की मूल प्रवृत्ति 'सत्य की खोज' को प्रमुखता प्रदान

की। इसी संदर्भ में उन्होंने प्रेममयी भक्ति की उपादेयता को उद्घाटित किया। उनकी प्रेमसिक्त सुधावर्षिणी वाणी ने मृतप्राय जनमानस में आत्मबल, नव चेतना और नव-जागरण का संचार किया जिसमें व्यक्ति का ही नहीं, प्रत्युत् समष्टि का सर्वतोमुखी उत्कर्ष समाहित था। इसी नवचेतना के बल पर सत्धर्म का प्रसाद धार्मिक वैमनस्य, सामाजिक-आर्थिक भेदभाव और अत्याचार के झंझावात तथा असनिपात को झेलने में सक्षम हो सका।

पावन प्रेम की उद्घोषणा :

सर्व धर्मों के ज्ञाता महामति इस तथ्य से पूर्णतः अवगत थे कि प्रेम पूरक साधना में अनेक बाधायें हैं। उन्हें तीखी फटकारों और शुष्क एवं कोरे उपदेशों से दूर नहीं किया जा सकता। इसके लिये तर्क या बुद्धि की अपेक्षा श्रद्धा-भक्ति ही सहज रूप से स्वीकार्य होगी। प्रेम का प्रादुर्भाव लौकिक और पारलौकिक दोनों स्थितियों में सुखद एवं शान्ति प्रदायक है। किन्तु इसके प्रबल अवरोध ऊँच-नीच की भावना, छुआछूत, पाखंड, अंध विश्वास आदि समाज में गहराई तक जड़ें जमा चुके हैं। इनसे जन-जन को मुक्त करने के लिये उनका जुझारू व्यक्तित्व नव संकल्प के साथ जुट गया।

मानव-मानव में ऊँच-नीच का जन्मगत भेद मानना, मानवता के लिये कलंक है। महामति ने इसे स्पष्ट रूप से समझाते हुए कहा था कि आप ही बताइये, किसे छूने से छूत लगेगी, आडम्बरधारी विप्र, जिसके मन में विकार हो या शुद्ध हृदय के प्रभुप्रेमी चांडाल के —

अब कहो काके छुए, अंग लागे छोत।
अधमतम विप्र अंगे, चंडाल अंग उद्योत।।

सनंध, १६/२३

इसी तरह एक प्राणी वेषधारी ब्राह्मण है तो दूसरे को लोग चांडाल कहते हैं। जिसके छूने से छूत लगती है। उसके लिये क्या कहा जाये! फिर उसका संग करनेवालों का क्या हो सकता है—

एक भेष जो विप्र का, दूजा भेष चंडाल।
जाके छुए छोत लागे, ताके संग कौन हवाल।।

सनंध, १६/१८

इस समस्या के समाधान के रूप में वे और अधिक स्पष्ट समझाते हैं कि सोच कर देखा जाये तो जात, वजूद, या अस्तित्व केवल एक परब्रह्म स्वामी का ही है और किसी की कोई सत्ता नहीं। एक स्वामी है और दूसरी उनकी बनाई हुई दुनिया। यही एक तथ्य है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी बात का कोई महत्त्व नहीं है—

जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनिया, और उड़ गई दूजी बात।।

सनंध, ३३/१७

लोग कई तरह के बनावटी भेष धारण करते हैं जो मात्र व्यर्थ की उलझने हैं। कोई भले ही अपनी जटा बढ़ा ले या केश मूड़ ले। चाहे कोई नोच कर बाल निकाल ले। जब तक आत्मा की पहचान नहीं होती जब तक प्रपंचपूर्ण भेष धारण से कुछ नहीं होता—

कोई बढ़ाओ कोई मुंड़ाओ, कोई खेंच काढ़ों केस।

जो लों आत्म न ओलखे, कहा होए धरे बहु भेस।।

किरंतन, १५/२

दिखावे के कर्मकाण्ड भी निरर्थक और समय गँवानेवाले ही हैं जैसे बाह्य शुद्धि को धर्म मानकार लोग बार-बार स्नान करते हैं, शरीर को शुद्ध करते हैं किन्तु इससे उनका मन शुद्ध नहीं होता। यदि कोई करोड़ों बार भी ऐसा कर लें, तो भी उन्हे सिरजनहार स्वामी मिलते नहीं हैं—

अंदर नाहीं निरमल, फेर फेर नहावें बाहेर।
कर देखाई कोट बेर, तोहे न मिलो करतार।।

किरंतन, ३२/१

एक ओर तो सब कहते हैं कि अन्न जल, कीट, पतंगे आदि में भी ब्रह्म का वास है। दूसरी ओर जीव हिंसा भी करते हैं। सब देखते जानते हुए भी अंधे हो रहे हैं। इसीलिए वे अनेक प्रकार के कर्म बंधनों में बँध जाते हैं।

अन उदक वाए कीट पतंग मा, सकल कहे छे ब्रह्म।
देखीतां आंधला थाए, पछे बाँधे अनेक पेरे करम।।

किरंतन, २६/१६

इसी तरह धर्म के नाम पर होने वाले अकारण वितंडावाद से जन-जन को अवगत कराते हुए उन्होंने स्वविवेक और मन की स्वच्छता को मनुष्य की परख का मापदंड बताया। साथ ही यह भी उद्‌घाटित किया कि स्वामी तो सबका एक है अतः धर्म या सम्प्रदायवाद में पड़कर झगड़ना तनिक भी उचित नहीं है—

जुदे-जुदे नामे गावहीं, जुदे जुदे भेष अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।।

सनंध ४१/७२

परब्रह्म स्वामी के अनेकों नाम रख दिये हैं। सब ने अपनी बुद्धि, परिस्थिति और समय के अनुसार अलग नियम और रीति-रिवाज़ बना लिये। सभी जाति, वर्ग के लोगों में श्रेष्ठ ओर साधारण दोनो तरह के लोग हैं जिसे वे खुदा या ब्रह्म कहते हैं, वह एक ही परम सत्ता की विविध उपाधियाँ और विशेषण मात्र हैं—

नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।

खुलासा, १२/३८

उनकी इन वाणियों, उनके हृदय को छूनेवाले उपदेशों से अलगाव की भावनाएँ शिथिल होने लगीं, सहज स्वाभाविक आपसी प्रेम की भावना का आलोक फैलने लगा, जो सामाजिक समानता के आदर्श का परिपोषक सिद्ध हुआ।

महामति ने मानव को कर्म के आधार पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया था। प्रथम कोटि में वे जन या आत्माएँ थीं जो माया-मोह के नितांत वशीभूत होती हैं। दूसरी श्रेणी में वे आत्माएँ होती हैं जो साधना पथ पर चलती हुई आदर्श जीवन व्यतीत करती हैं और तीसरी श्रेणी में उन आत्माओं को रखा गया है जो प्रिय परमात्मा के प्रेम में अनुरंजित रहती हैं वे परम धाम से इस संसार में यहाँ की लीला देखने आती हैं और जैसी आती हैं वैसी ही लौट जाती हैं। अहंकार, मोह, स्वार्थ या दिखावे के धर्म या पाखंड को त्याग कर मानव दूसरी कोटि तक पहुँच सकता है। इसी तरह साधना-पथ प्रियप्रेम

में अनुरंजित होकर चलते हुए उस ब्रह्मात्मा का रूप ऐसा होता है, वह संसार में उसी भाँति रहती है जैसे जल में कमल।

इनमें लक्ष्य को विस्मृत की हुई अर्थात् माया के वशीभूत आत्मा के मन से जगत का मोह त्यागना कठिन होता है। उन्हें इस पाश से मुक्त करने के लिये परब्रह्म स्वामी ही सद्गुरु का रूप धारण कर के उतर आये। माया-मोह से ग्रस्त आत्मा जब मोह-पाश से छूट कर देखती है कि संसार में अनेक देवी-देवता पीर-पैग़म्बर, मसीहा हैं, तब वह भ्रमित हो जाती है कि किसे मान्यता दे। यद्यपि सभी अवतारी पुरुषों में परब्रह्म परमात्मा की कला, आदेश आदि की शक्तियाँ काम करती हैं। महामति ने उनकी भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस समय जिसकी आवश्यकता होती है वह अवतरित होकर धनी द्वारा सौंपे गये कार्य को सम्पन्न कर के अपने उद्गम स्रोत में विलीन हो जाती है। महामति का आविर्भाव भी इस अपेक्षित कार्य की पूर्ति के लिये हुआ कि वे विश्व की समस्त धार्मिक मान्यताओं के सार को स्व-चिन्तन, स्व-अनुभूति से एक धर्म के रूप में निरूपित कर दें। उन्होंने अपने गहन अध्ययन के फल स्वरूप अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट कर दिया कि परमात्मा एक है। हिन्दू एवं मुस्लिम आदि सभी धर्म के लोग उस एक परमात्मा के जीव हैं इस तथ्य को ना समझ कर सभी अपना-अपना मत, धर्म बनाकर उलझते रहते हैं—

यों लड़ के लोग जुदे हुए, पर खसम न होने दोए।
रब्ब आलम का न टरे, जो सिर पटके कोए।।

खुलासा, १३/८३

भागवत एवं क़ुरान में मौलिक एकता और क्षमता दर्शाते हुए दो विपरीत ध्रुवों वाली संस्कृतियों की मूलभूत एकता को प्रस्तुत करना एक अनुपम, गुरुतर तथा कल्याणकारी कार्य था। 'सोई खुदा सोई ब्रह्म' ही अक्षरातीत ब्रह्म हैं, जो स्वलीला में अद्वैत से द्वैत रूप में दिखाई देते हैं। प्रिय और प्रेमिका, ब्रह्म और आत्मा दो रूप होकर भी एक ही हैं। इसी अद्वय स्वरूप न्यास को युगल किशोर दम्पति कहा गया क्योंकि दोनों एक ही स्वरूप हैं। परब्रह्म स्वामी प्रतिपल अपने नये परिवर्तित रूप में दृष्टिगत होते हैं तो श्यामा के रूप-रंग की शोभा भी हर पल नयी होती है—

जुगल किशोर तो कहे, आसिक मासूक एक अंग।
हक छिन में कई रूप बदले, याही भांत हादी रंग।।

सिनगार, २१/२१६

जिस तरह प्रेम लोक में भाईचारा, सुख-शान्ति का प्रदाता है उसी तरह ही नहीं बल्कि उससे भी कहीं अधिक पारलौकिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। प्रेम ही हृदय में उत्पन्न होकर अंतःकरण को प्रकाशमय बना देता है। और आत्मा ज्योतित हो उठती है। इसी प्रेम में विभोर होकर महामति के उद्गार थे कि हे स्वामी, जब आप मेरे अंतःकरण में विराजे तो मुझे सब कुछ मिल गया। मेरे समस्त दुख मिट गये। परमधाम का मूल सम्बन्ध अंकुरित हो गया। इस आनंद का कहाँ तक वर्णन करूँ—

तुम आये सब आइयां, दुख गयो सब दूर।
कहें महामत ए सुख क्यों कहूँ, जो उदया मूल अंकूर।।

कलश, ८/११

महामति इस परम सुख को सब में बाँट देना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने सारा वैभव त्याग दिया था और लोक कल्याण के लिये पूरे भारत ही नहीं वरन् अन्य देशों की भी यात्राएँ कीं। उनकी सहज वाणी और उनके संकल्प की प्रतीक उनकी पद-यात्राओं ने जन-मानस में उनके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न कर दिया। हज़ारों की संख्या में लोग उनकी शिक्षाओं के अनुसार प्रेममय सात्विक जीवन अपना लिये। कितने अपना घर-द्वार त्याग कर उनके साथ जाने में अपना अहोभाग्य माने। नव जागरण की इस लहर में यातायात के साधनों का अभाव बाधक नहीं बन पाया। उनके क्रान्तिकारी जत्थे में विभिन्न धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय के लोग यहाँ तक उपेक्षित और दलित समुदाय भी अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सम्मिलित हो गये। नव जागरण की इस लहर ने भावात्मक एकता का पथ प्रशस्त कर दिया।

भावात्मक एकता :

महामति ने मूल पुरुष की एकता को प्रमाणित कर एक नवीन जीवन दर्शन का सूत्रपात किया जिसमें भक्ति प्रेम-साधना के क्षेत्र में सर्व धर्म सम-भाव विद्यमान था। सैद्धांतिक रूप में संकीर्णता के अभेद्य घेरे को तोड़ते हुए एक ओर उन्होंने रास-लीला को आध्यात्मिक अर्थ प्रदान कर अन्य धर्मावलम्बियों के लिये ग्राह्य बना दिया। दूसरी ओर कुरान को इल्हामी किताब अर्थात् परमात्मा का उनके फ़रिश्ते द्वारा कहलाया गया ज्ञान माना। साथ ही, उन्होंने अपनी वाणी में 'हक़ीक़ी दीन इस्लाम' का प्रयोग सम्प्रदाय विशेष अर्थ में न कर अनादि सत्य सनातन धर्म के अर्थ में किया है। हक़ीक़ी दीन इस्लाम वह सत्य धर्म है जो संकीर्णता के पाश से मानव को मुक्त कर अद्वैत ब्रह्म के निकट ले जाता है और मन भावात्मक एकता के तार से जुड़ जाता है—

जेते कोई फिरके कहे, सब छोड़ देसी कुफर।
आवसी दीन इस्लाम में, दिल साफ होय कर।।

खुलासा, १०/७५

इतना ही नहीं, महामति ने अनेक धर्मों के आधारभूत नियमों और लक्षणों की समता को भी स्पष्ट किया। हरिद्वार के कुम्भ मेले (सन् १६७८) के अवसर पर उनके एक सनातन धर्म, 'विश्व धर्म' तथा एक ईश्वर की उद्घोषणा ने हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में असीम उत्साह का संचार कर दिया था। वहीं विद्वत् जनों से उनका शास्त्रार्थ हुआ। उनके समन्वय पूर्ण मानव धर्म के मौलिक सिद्धांतों से प्रभावित होकर विद्वत् जनों ने उन्हें 'विजयाभिनन्द निष्कलंक अवतार' की उपाधि से विभूषित किया। उन गरिमामय क्षणों की समृति को बनाये रखने के लिये महामति प्राणनाथ बुध जी के नाम का 'शाका' चलाया गया। यह अलगाववाद पर एकता की विजय, वैमनस्य पर प्रेम की विजय और साम्प्रदायिक वितंडावाद के तिमिर पर सत्य के आलोक के विजय की पावन घड़ी थी।

महामति के अनुयायियों ने अपने पथ प्रदर्शक, मुक्ति दाता को सूरत नगर में अपने प्राणों का नाथ 'प्राणनाथ' स्वीकार कर अपने आपको कृतार्थ माना था। तभी से वे 'प्राणनाथ' कहे जाने लगे थे। इन ब्रह्मात्माओं का समूह 'सुन्दर साथ' के नाम से जाना जाता था। वह उनके आदर्श समाज की परिकल्पना का साकार रूप था— जिसमें वर्ग, सम्प्रदाय की ओछी मान्यताओं को रंचमात्र स्थान नहीं था, यदि मूल रूप में जीवन्त था तो आत्मा से आत्मा का पावन प्रेम और आत्मा का परमात्मा से प्रेम। इसीलिये

यह शिवम् का पर्याय बन गया था।

महामति प्राणनाथ ने अपने विचारों से तत्कालीन शहंशाह औरंगज़ेब को अवगत कराने के लिये अपने बारह समर्पित शिष्यों को दिल्ली भेजा ताकि शासक और शासित भावात्मक एकता के सूत्र में बँध सकें। देश का दुर्भाग्य था कि पूरी वार्ता नहीं हो पायी और कुचक्रियों का षड्यंत्र सफल रहा अन्यथा देश का इतिहास अपने आप में एक अभिनव सुखद पृष्ठ जोड़ चुका होता। उन महान विभूति ने ऊपरी एकता, दिखावा का विरोध करते हुए इस तथ्य को उजागर कर दिया कि परब्रह्म स्वामी दिखावे से नहीं ठगे जा सकते—

धनी न जाय किनको धूत्यो, जो कीजे अनेक धुतार।
तुम चेहेन ऊपर के कै करो, पर छूटे ना क्यों ए विकार।।

किरंतन, १५/१

अतएव मनोविकारों से चित्त को निर्मल करो और अपने आप को पहचानो—

पेहेले आप पेहेचानो रे साधो, पेहेले आप पेहेचानो।
बिना आप चीन्हे पार ब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो।।

किरंतन, २/१

उनके ये कथन और चिन्तन जन-जन के लिये थे। अतः उन करुणा मूर्ति ने अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिये जन-भाषा को अपनाया। उनकी वाणियों को उनके जीवन काल में ही उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध कर लिया था जो चौदह ग्रंथों में समाहित है। इन सभी ग्रंथ रत्नों का संग्रहीत स्वरूप अर्थात् कुलजमा, पवित्र ग्रंथ 'कुलजम स्वरूप' है। इस ग्रंथ की भाषा खड़ी बोली, सिंधी, जाटी समेत प्रचलित हिन्दुस्तानी है। जिसमें अरबी, फारसी शब्दों का बाहुल्य है। भाषा की अनेकता होते हुए भी इसमें लिपि की एकता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और स्तुत्य है। यह महानतम ग्रंथ देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध है। भाषाई एकता और मातृभाषा के सम्मान का यह उदाहरण राष्ट्र के इतिहास में अनन्य है, अनुपम है और अनुकरणीय है। इससे भी भावात्मक एकता एक नवीन महिमा से मंडित हो उठी, वहीं आपसी प्रेम को बढ़ावा भी मिला। उन्हीं के शब्दों में-

बिना हिसाबे बोलियां, मिने सकल जहान।
सब को सुगम जान के, कहूँगी हिन्दुस्तान।।

सनंध १/१५

वही भाषा तो सब से भली है जो सब के समझ में आ सके-

बड़ी भाषा एही भली, जो सब में जाहेर।
करने पाक सबन को, अंतर माहें बाहेर।।

सनंध १/१६

उनका उद्देश्य भी यही था कि उनके विचारों को जन साधारण भी आसानी से समझ सके। उनके इस संकल्प को पूर्ण सफलता भी मिली। उस सहज भाषा हिन्दुस्तानी में प्रतीक योजना, ध्वनि सौंदर्य, सूक्तियाँ आदि स्वयं समाविष्ट हो गयी हैं जो त्रस्त पीड़ित मानवता को शान्ति दान करने के उद्देश्य को सक्षमता प्रदान करती हैं। जो ब्रह्मात्मा उस वाणी को आत्मसात कर लेती है वह तन-मन से पावन हो जाती है। महामति चाहते हैं सभी ब्रह्मात्माएँ माया के जंजाल से छुटकारा पा लें क्योंकि यह अशान्ति को उपजाने

वाली है। इस ब्रह्मांड को इसने किसी जन्मजात रोग की भाँति जकड़ लिया है। अंतर में आग की अथाह ऊँची-ऊँची लपटें चारों ओर उठ रही हैं। यह माया दुष्ट और साधु दोनों को पीड़ित किये हुए है। किसी को भी एक क्षण के लिये शान्ति नहीं है—

विस्व ने लागी जाने व्राध, माहें अगिन वले अगाध।
ते तां पीड़े दुष्ट ने साध, नहीं अधखिन नी समाया।।

श्री रास, १/२

इसका आदि -अंत कुछ नहीं है। रूप-रंग नहीं है। कहीं इसको रेखांकित या माप-जोख कर के इसका स्वरूप दिखाया नहीं जा सकता। इसके अंग नहीं, इंद्रिय नहीं, इसका कहीं कोई तेज नहीं है। इसकी कोई ज्योति भी तो नहीं-

आद अन्त याको नहीं, नहीं रूप रंग रेख।
अंग न इन्द्री तेज न जोत, ऐसी आप अलेख।।

किरंतन, २८/५

वे ब्रह्मात्माओं को सम्बोधित करते हुए इस समस्या से निपटने का समाधान प्रस्तुत करते हैं कि मायाजनित सारे गुण अंग इन्द्रियों को वश में कर लो। अपने प्राणनाथ, परब्रह्म स्वामी को पहचानो। अपनी आत्मा से इतना तो विचार करो कि हमारे आश्रय, हमारे स्वामी कौन है? वे कितने प्रेम और अनुग्रह भरे वचन कह कर हमें राह दिखा रहे हैं—

माया गुण सब करो हाथ। पेहेचानो प्राण को नाथ।।
अब एता आत्मा सो करो विचार। कौन वचन कहे आधार ।।

प्रकाश हि., २६/६८

महामति उन्हें साधना पथ पर बढ़ने के लिये साहस प्रदान करते हैं, उत्साहित करते हैं और विपत्ति के समय सदा आगे रहने का वचन देते हैं। कहते हैं कि मेरी साथी आत्माओ, अब यदि तुम्हें कोई दुख होगा तो वहाँ मैं (इन्द्रवती सखी की आत्मा) अपने आपको आगे कर दूँगी। तुम्हारा दुख मैं झेल जाऊँगी । चाहती हूँ तुम्हारे लिये निरंतर सुखों को प्रवाहित कर दूँ, वह भी इस प्रकार कि कभी वह तार टूटे नहीं और आत्माधार जुड़ा रहे—

अब दुख आवे तुमको, तहां आड़ा देऊं मेरा अंग।
सुख देऊँ भली भाँत सो, ज्यों होय न बीच में भंग।।

कलश हि., २३/३६

एकता, सहअस्तित्व एवं उत्कर्ष का ऐसा आदर्श स्वरूप अन्यत्र मिलना कठिन है। अलग-अलग जाति धर्म, सम्प्रदाय और इन सब से प्रबल माया के मोहजाल में फँसी आत्माओं को इन बन्धनों से मुक्त करने और मोह निद्रा से जगाने का गुरुतर कार्य महामति प्राणनाथ के रूप में परम प्रिय की प्रिया श्रेष्ठ सखी इन्द्रावती के द्वारा ही सम्भव था। उनकी सर्वांगपूर्ण स्नेहसिक्त शिक्षाएँ तत्कालीन देशव्यापी वैमनस्य को दूर कर करने, राष्ट्र की उदार परम्पराओं को विकसित करने तथा जन-मानस को एकता के सूत्र में बाँधने में पर्याप्त सफल रहीं।

ज्ञान विरह और विश्वबंधुत्व :

करुणामूर्त्ति महामति सभी ब्रह्मात्माओं को परमसुख प्राप्त कराना चाहते थे। इसके लिये हरसम्भव प्रयासरत थे किन्तु साधक को साधना तो स्वयं ही करनी पड़ती है। जो धर्म ग्रंथों की अंधभक्ति से प्राप्य नहीं है। इसके लिये धर्म ग्रंथों के वास्तविक अर्थ को

जानना और समझना ज़रूरी होता है। तभी अज्ञान रूपी 'तम' से तर कर अर्थात् पार उतर कर 'तारतम ज्ञान' को प्राप्त किया जा सकता है। इसी ज्ञान के आलोक में सत्य का दर्शन सम्भव है। उन विजयाभिनन्द बुध (महामत) बुधजी ईमाम मेहदी द्वारा प्रतिष्ठित धर्म में सभी धर्मावलम्बियों ने अपने-अपने धर्म का शुद्ध रूप देखा क्योंकि बुधजी ने वेद, वेदान्त, भागवत, गीता, जबूर, तौरत, कुरान आदि धर्म ग्रंथों के संकेत को और गुझ (गूढ़ रहस्यों) को खोलकर धर्म का सत्यस्वरूप सामने रख दिया—

वेदान्त गीता भागवत, दैयां इसारतां सब खोल।
मगज मायने जाहेर किये, माहे गुझ हते जो बोल।।

खुलासा, १३/६६

धर्म के इस सत्य स्वरूप में सर्व धर्म सम-भाव का स्वरूप भी निहित था, जिसमें परस्पर एक दूसरे के लिये सम्मान है न कि अहंकार आवेष्ठित वैमनस्य।

धर्म के गूढ़तम रहस्य को सरल सुबोध भाषा हिन्दुस्तानी में समझाना महामति जैसे महा मनीषी के ही सामर्थ्य की बात थी, जब कि उनकी मातृभाषा गुजराती थी। डा. भोलानाथ तिवारी का यह कथन समीचीन है— 'एक बात जो देखने मात्र से भारत को इनका ऋणी बना देती है वह यह है कि इतनी भाषाओं में कही गयी वाणी एक ही नागरी लिपि में लिखी गयी है।'

बाइबिल में उल्लेख है कि ईसा रूह अल्लाह या आखिरी ज़माने का खाविन्द पर्दे में आयेगा। हिन्दू धर्म में उनका अवतरित होना ही वह पर्दा था, इसीलिये ईसाई और मुस्लिम धर्मावलम्बी उन्हें नहीं समझ सके। महामति का ग्रंथ 'खुलासा' वास्तव में धार्मिक स्पष्टीकरण का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है—

परदा लिखया मुँह पर, वास्ते आवने हिन्दुओं माहें।
जाहेर परस्त जो आरब, सो इसारत समझत नाहिं।।

खुलासा, १३/१६

इसमें विशेष रूप से उन्होंने कुरान पुराण के समन्वयात्मक सत्य को उजागर कर भ्रम के आवरण को छिन्न-भिन्न कर दिया। 'खुलासा' में ही है कि निष्कलंक बुधावतार— इमाम मेहदी, श्री प्राणनाथ, 'तारतम ज्ञान' द्वारा अखण्ड परमधाम के आनंद और परब्रह्म के स्वरूप को प्रकट करेंगे। संसार के कर्म बंधन को काटेंगे—

अखंड वतन इत जाहेर, और जाहेर सुख ब्रह्म।
बुध विजयाभिनन्द जाहेर, जाहेर काटे दुनी के करम।।

खुलासा १२/३८

परब्रह्म श्री कृष्णरूप ही श्री राज हैं और उनका स्वरूप त्रिविध है। वे अक्षरातीत हैं, सत्ता से अक्षर हैं, और प्रतीति से क्षर भी हैं।

अक्षरातीत ही पूर्ण ब्रह्म हैं क्योंकि वे अक्षर वे परे हैं जिनके विषय में स्वयं साकुंडल सखी छत्रसाल ने पारिभाषित किया है— 'पूर्ण ब्रह्म' ब्रह्म से न्यारे, आनंद अखण्ड अपार' वे सत् चित् आनंद रूप हैं। पूर्ण परमात्मा का सत् अंश अक्षर ब्रह्म है वह अविनाशी एवं सर्व शक्तिमान हैं। वह सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठाता है और क्षरब्रह्म-इसे अखण्ड और नित्य नहीं माना गया है, इसे प्रलय में नाशवान कहा गया है।

पूर्ण ब्रह्म शुद्ध साकार- चिन्मय स्वरूप है और अद्वैत है किन्तु लीला के समय वे

द्वैत रूप धारण करते हैं ये रूप श्रीराज ओर उनकी आनन्द संगिनी श्यामा जी हैं किन्तु अन्तर्दृष्टि से देखने पर अद्वैत हैं। उन अद्वैत का 'आनन्द रूप' आल्हादिनी शक्तिश्यामा है। इसी से बारह हज़ार सखियों का विस्तार हुआ। वे अपनी सत्, चित्, आनन्द, त्रय शक्तियों से नित्य लीला विलास भी करते हैं।

श्रीराज के इस विविध स्वरूप की अभिव्यंजना महामति की आध्यात्मिक एवं मौलिक उद्भावना का शंखनाद है जो अपने आपमें विशिष्ट है। इसमें उस परम सत्य का शिवम् रूप झलकता है। उस परम प्रिय परब्रह्म का ध्यान करना एक महान अनुष्ठान है।

महामति ने अपने और विश्व के स्वामी की प्रेमसाधना में मधुरा भक्ति को उत्तम माना। मेहराज (महामति के स्वरूप का नाम) के गुरुवर श्रीदेवचन्द्र जी ने मेहराज में श्री श्यामा महारानी जी की प्रधान सखी इन्द्रावती की आत्मा को पहचान कर 'तारतम मंत्र' प्रदान किया था। साथ ही, विश्व में नव जागरण का स्वर मुखरित करने की प्रेरणा भी दी थी। आत्मा और परमात्मा के प्रेम से महामति जी की वाणी अनुप्राणित है। इंद्रावती की आत्मा के भाव-स्वरूप प्राणनाथ जी प्रेम की अनन्यता और एक निष्ठा का प्रतीक पतिव्रता के प्रेम को मानते हैं–

पतिव्रता नारी पति ने पूजे, सेवे ते अनेक पेरे।
पीउ पर वचन सुने जो वाकूं, तो देह त्याग त्यहाँ करे।।

किरंतन, ६४/१९

प्रिय मिलन का साधन प्रेम :–

उन परब्रह्म प्रिय से मिलन का परम आनंद बिना कष्ट उठाये नहीं मिलता। उन तक पहुँचने के लिये विस्तृत विरह सागर को पार करना पड़ता है। यह विरह-दुख जितना गहन होता है प्रेम की प्यास उतनी ही तीव्रतर होती जाती है और मिलन का आकर्षण बढ़ता जाता है। स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि साँस तक सूखने लगती है– 'ना आवे अंदर बाहिर, या विध सूकत सांस,' (कलश) फिर भी पल-पल प्रिय का स्मृतिदायी विरह उन्हें प्रिय है वे बार -बार उसे माँगते हैं–

प्रेम दरद इसक तुम्हारा, मैं फेर-फेर माँगूं फेर।
प्यारे मिलूं प्यारे पीउ सों, प्यारी महामत कहें बेर-बेर।।

किरंतन, ६२/२०

फिर चरमोत्कर्ष की स्थिति में प्रिय स्वामी अन्तःकरण में प्रकाश भर देते हैं और आत्मा ज्योतित हो उठती है–

अन्तस्करण में रोसनी, और रोसन करी आतम।
गुण पख इन्द्री रोसन, ऐसा बरस्या नूर खसम।।

परम आनन्द का वह क्षण आ जाता है जब आत्मा और परमात्मा एकरस होकर मिल गये। किन्तु महामति ने इस परम सुख को अकेले ही प्राप्त करना अभीष्ट नहीं माना। उन्होंने आनन्दामृत की वर्षा कर इसे सबके लिये उपभोग्य बनाने का निश्चय किया। उनके सद्प्रयास और सुधामयी वाणी का सुपरिणाम था कि ब्रह्मात्माएँ प्रिय के साथ हो गयीं। उन्हें भी वह परम सुख प्राप्त हुआ–

"मिली मासूक ...... प्रात पिउ संग।"

किरंतन, प्र. ११७

प्रेम मार्ग और उसमें भी मधुरा भक्ति, आत्म जागृति का सहज-सुगम पथ है। प्रेमाभक्ति की आधारशिला है— 'आस्तिकता।' प्रिय का सगुण स्वरूप अत्यंत मनोरम है। तारतम ज्ञान द्वारा ही उस दिव्य प्रकाश पुंज प्रिय से साक्षात्कार होता है। उससे मिलन होता है और परम सुख मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति होती हैं

लोक दृष्टि से देखा जाये तो वांछित वस्तु के पाने में सुख का अनुभव होता है । उससे अधिक प्रसन्नता प्रयास कर के पाने में होती है और, यदि प्रिय वस्तु मिलकर बिछुड़ गयी हो, उसके वियोग में तरसना और तड़पना पड़ा हो फिर उसकी प्राप्ति हुई हो, तो सर्वाधिक प्रसन्नता होती है। भक्ति मार्ग में ठीक ऐसा ही होता है। प्रिय परब्रह्म से उसकी अंशरूपा आत्माएँ जब बिछुड़ कर सांसारिक मायामोह में भटक जाती हैं और उसे पाने के लिये उसके वियोग में तड़पती हैं, अपने को अंधकार से मुक्त करने का प्रयास करती हैं तब विरह उनके प्रेम की कसौटी बन जाती है। इस कसौटी पर खरा उतरने पर प्रिय-मिलन का परम सुख प्राप्त होता है। वही भक्ति की चरम सीमा है— मुक्ति हैं। विरहविहीन परमानन्द मात्र आनन्द ही रह जाता है।

विरह :

महामति की प्रेमाभक्ति में सर्वत्र विरह का महत्त्व दृष्टिगत है। उनकी प्रेमाभक्ति दाम्पत्य की मधुरिमा से अनुप्राणित है। ब्रह्म और आत्मा के मध्य प्रिय के प्रति प्रिया का एकनिष्ठ प्रेम परिपूरित है। महामति के उपास्य प्रियतम राजराजेश्वर श्रीकृष्ण हैं जो अद्वैत हैं किन्तु लीला के समय स्वलीलाद्वैत हैं। श्रीराज और श्री श्यामा जी के स्वरूप में जब वे क्रीड़ा करते हैं तब क्रीड़ा-कुंज में मात्र सखियों का ही प्रवेश होता है। इन सखियों में इन्द्रावती एक प्रमुख सखी हैं। महामति के स्वरूप में सखी शिरोमणि इन्द्रावती का विरह भक्ति-मुक्ति में विरह के महत्त्व को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है। श्रीराज सच्चिदानन्द ब्रम्ह हैं। ब्रह्मात्माओं ने एक बार अपने उन परम प्रिय से जगत-लीला देखने की उत्कट लालसा प्रकट की। केलि-क्रीड़ा-कुंज विहारिणी उन आत्माओं को अभाव की कल्पना भी नहीं थी। वे परम धाम के ऐश्वर्य और सुखों का सतत उपभोग करती रहती थीं। अभाव कितना दुखद होता है। इसका अनुभव कराने के लिये उन सच्चिदानन्द ने माया की ओट लेकर संसार की रचना की। ब्रह्मांगनाएँ पूर्णता से छिटक कर संसार में आकर माया-मोह के वशीभूत हो जाती हैं। कभी-कभी उन्हें पूर्णता की, उस सुख की और उस परमधाम की सुधि आती है, तब वे प्रियतम के विरह में व्याकुल हो उठती हैं। किन्तु अब पछतावे के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं सूझता क्योंकि जगत्‌लीला देखने की इच्छा तो उन्होंने स्वयं ही प्रकट की थी—

ऐसा खेल दिखाइया, जो माँग लिया है हम।
अब कैसे अरज करूँ, कहोगे मांग्या तुम।।

खिलवत, १/१

वियोगिनी सखी इन्द्रावती कहती है, कितनी विवशता है जब हमने स्वयं ही माँगा है तो कैसे शिकायत करें, क्या शिकायत करें। अतः अब आत्म-जागृति का ही सम्बल है। यही संसार रूपी अंधकार से पार लगा सकता है। किन्तु, यह युग-युगांतर की यात्रा है। इसमें पीड़ा ही पीड़ा है, विरह में तड़पाने वाली पीड़ा। इस पीड़ा से वह अपनी सुध-बुध खो बैठी है और लता-वृक्षों से अपने प्रिय का पता पूछ रही है कि श्याम कहाँ हैं! हमारे प्राण हरनेवाले श्याम को कहीं देखा है—

विकल थै पूछे बेलड़ी, सखी क्या हें दीठा तमें स्याम।
जीव अमारा लई गया, मननी न पोहोती हाम।।

श्री रास, अंतर्धान लीला

विरह वेदना क्रमशः बढ़ती ही जाती है। झुलसाता ग्रीष्म आता है, उसके जाते-जाते रिमझिम बूँदों और काली घटाओं को साथ लिये आषाढ़, श्रावण और भाद्रपद आते हैं। चारों ओर मेघ-मल्हार के स्वर गूँजने लगते हैं। ये सब प्रिय के साथ कितने सुहावने लगते थे। पर आज, अपने कर्मों के कारण प्रिय से बिछुड़ गयी हैं, तब यही सोचती हुई प्रणयिनी इन्द्रावती तड़प उठती हैं और अदृश्य प्रियतम से करुण स्वर में विनय करती हैं। प्रिय, जितनी जल्दी हो सके, मेरी सुधि लीजिये, नहीं तो जीव इस देह को त्याग देगा। तब मेरी निर्जीव काया आप पर हँसेगी कि आपने मेरी सुधि नहीं ली। हे स्वामी, मेरी पुकार सुनकर मुझ इन्द्रावती को अपने पास बुला लीजिये—

मारी बेहेली ते लीजो सार, नहीं तो जीव चालसे रे।
पछी आवी ने लेजो सार, काया पड़ी हसे रे।।

षट्रुति, १/१०

हे प्रियतम, आप अपने नाम की लाज रखते हुए मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिये। आप तत्काल आकर मुझे बुला लीजिये। ताकि मैं अपने मन की तपन बुझा लूँ —

इन्द्रावती कहे वली मनोरथ पूरजो, जो तमे राखो पोतानी लाज।
ततख्यण आवी ने तेडी जाओ, जेम काढूँ मारा रूदयानी दाझ।।

षटरुति, ७/१०

शरद, हेमंत, शिशिर आदि ऋतुएँ भी आकर चली गईं किन्तु व्यथित हृदय को चैन कहां, उनका 'जीवडो रूए निस दिन पिउ बिना।' और शरीर, आँसुओं के सागर में डूबता जा रहा है— 'आँसूडा ते अंग न माये।'

फिर आ गया ऋतुराज बसंत। यह भी विरहिणी अंगनाओं के लिये नीरस हो गया है—

रूतड़ी आवी रे मारा बाला, बसंत रुत रलियामणी।
तम बिना मारा धनी धाम ना, लागे अलखामणी रे।।

षट्रुति, ५/१

होली, दीवाली, कृष्ण जन्माष्टमी, राधाष्टमी, शरदपूर्णिमा जैसे पर्व— त्यौहार भी आये। परिजन-पुरजन सभी आनन्दोल्लास में निमग्न हो गये। एक समय था जब परम धाम में हम सब अंगनाएँ प्रिय के साथ थीं। आनन्द विभोर थीं। किन्तु आज ये पर्व-त्यौहार हमारी विरहाग्नि को दीप्त कर रहे हैं—

बालाजी रे पूनम रात नो चाँदलो, कांई वन सोभे अपार।
रास नी रात नो ओच्छव, मूने कां न तेड़ी आधार।।

षट्रुति २/१४

इस विरह की गति को वही जान सकता है जो एक बार परब्रह्म प्रियतम से मिलकर बिछुड़ गया हो। अतः हे स्वामी (दूल्हा), हमारी हालत जल बिन मछली जैसी है। हम परम धाम की तरुणियाँ इस मिथ्या संसार में आकर तड़प रही हैं —

बिरहा गति रे जाने सोई, जो मिल के बिछुरी होय, मेरे दुलहा।
ज्यों मीन बिछुरी जल थें, या गति जाने सोए, मेरे दुलहा।।

विरहनी विलखे तलफे तारुनी, तारुनी तलफे कलपे कामिनी।।

कलश, ६/१

फिर भी प्रियतम के प्रति अपनत्व है, उन पर अधिकार है। इसीलिये उनकी शिकायत उन्हीं से है—

पीउ जी तमे पेहेली का प्रीतडी देखाडी।
माहेला मंदरियों दीधां रे उघाडी।।
पीउजी तमें अनेक रंगे रमाडी।
हवे तो लेई आसमान भोमे पछाडी।।
हो स्याम पीउ-पीउ करी रे पुकारूँ।।

षट्रुति, बारहमासी, ६/६

अर्थात् हे नाथ, आपने हमें कैसा प्रेम दिखाया ? हमारे मन मंदिर के द्वार खोल दिए। आपने हमें अनेक प्रकार से आनन्द प्रदान किये। परन्तु अब वियोग देकर आसमान से धरती पर ला पटका है। हे श्याम, मैं पिया पिया पुकारती चली जा रही हूँ।

विरहाश्रु जल से धुल कर चित्त कलुषों से मुक्त हो जाता है और मिलन की प्यास चरम सीमा तक पहुँच जाती है। इस प्रेम-पीड़ा में सुधियों का सुख निहित है। इससे यह दर्द भी प्रिय है, इसे फिर माँगती हूँ—

प्रेम दरद इसक तुम्हारा, मैं फेर फेर माँगूं फेर।
प्यार मिलूं प्यारे पिउ सों, प्यारी महामत कहें बेर बेर।।

किरंतन, ६२/२०

इस दर्द में डूबे रहने पर भी उन्हें अन्य आत्माओं का ध्यान है। वे उनसे कहती हैं कि जागने के लिये प्रयासरत रहो। और, वे स्वयं दैन्य की सीमा को लाँघती हुई विरह व्याकुल होकर पुकार उठती हैं कि मुख में तिनका पकड़ कर दया की याचना करती तरुणियाँ, ब्रम्हात्माएँ तड़प रही हैं। हे नाथ, इस विरहाग्नि में जलने से हमें बचाइये। यह कठिन कसौटी सहन नहीं होती। हमें अपने चरणों में स्थान दीजिये—

दंत तरणां लेइ तारुणी तलफियो, तमे वाहो दाहों दीन दातार।
खमाए नहीं कठण एवी कसनी, राखो चरण तले सरण आधार।।

किरंतन, ३७/३

अंततः परम प्रिय की कृपा होती हैं। प्रिय सद्‌गुरु रूप में उन्हें तारतम ज्ञान प्रदान करते हैं। आनंद अंगना राजेश्वरी श्यामा, इन्द्रावती की आत्मा को पहचान कर उन्हें जागरण का भार सौंप देती हैं। सद्‌गुरू मार्गदर्शन देकर अलग हो जाते हैं। इन्द्रावती सद्‌गुरू रूप प्रियतम को नहीं पहचान सकीं। इसका कितना दुख हुआ उन्हें, कुछ उन्हीं के शब्दों में—

मेरी सैयल रे, साह आये थे मेरे घर।
मैं पहचान न सकी, पिउ चले पुकार कर।।

प्रकाश हि., ७/१

वे अपने आप को समझाती हैं — 'परम धाम के स्वामी के आदेश के बिना किसी भी सत्ता का कोई महत्त्व नहीं हैं। यह माया जाल अस्तित्वहीन है।' इसी चिन्तन में आत्म जागृति होती है। वे प्रियतम से उनका प्रेम माँगती हैं, कहती हैं — 'हे प्रिय, कुछ ऐसा कीजिये कि मैं हँसते हुए आपके गले लग जाँऊ—

रे पिरीयम मंगा सो लाड करे।
हेडी किज का मुंदसे, खिलंदडी लगां गरे।।

सिंधी, ३/१

न पहचानने का दुख उनके हृदय में हमेशा कसकता रहा। विरह की ज्वाला में धूँधू जलती हुई व्यथिता पुनः पुकारती है कि तारतम ज्ञान ऐसा आया है कि दिल की सभी कामनाएँ पूर्ण कर देता है। यही प्रियतम से मिला देता है और अक्षर ब्रह्मधाम के पार मूल घर परमधाम में पहुँचा देता है—

हे इलम एहडो आइयो, सभ दिलजी पूरण करे।
डेइ इसक मूंजे कांध से, घर पुजाए नूर परे।।

सिंधी वाणी, ४/७

वह अश्रुधारा में डूबी हुई अनुरोध करती है कि हे प्रिय, आपने तारतम कुंजी तो भेज दी है, अब अपने अखण्ड धाम का द्वार खोल दीजिये —

तडे मूकियाँ रूह पांहिजी, जे अस्सां जी सिरदार।
कुंजी मूकियाँ अरस जी, उपटन बका द्वार।।

सिंधी वाणी, ६/७

तन्मयता बढ़ती जाती है। उन्हें कुछ कहने-सुनने की सुधि नहीं रह जाती। ऐहिक सम्बन्ध छूट जाते हैं और आत्मा अपनी नासिका से परमधाम का सुवास लेने लगती है। प्रेम बँधे प्रिय मन-मंदिर में विराज जाते हैं। उन्हें कहना पड़ता है कि तुम सब मेरी अंगरूपा हो। मैं भी तुम्हारे बिना एक पल नहीं रह सकता —

हूँ अलगो न थाऊँ रे सखियो, अपनी आत्मा एक।
रामत रमतां जुजवी, कांई दीसे छे अनेक।।

श्रीरास, ४७/८

यह हृदय ही परमात्मा का मंदिर है। यहीं वे असीम सीमा में बँध जाते हैं। आत्म-विरह की कसौटी पर कसी हुई कुन्दन-सी दीप्त अंगनाओं को मिलन का वही परमानन्द प्राप्त होता है जो बड़ी रूह अर्थात् आनन्द अंगना राजराजेश्वरी श्यामा को। प्रियतम से यही मिलन भक्ति-मुक्ति का साक्षात्कार है; साक्षात्कार है उस पूर्णता का, साक्षात्कार है अभाव के चिर अभाव का और साक्षात्कार है द्वैत के अद्वैतरूप का— जहाँ आत्मा और परमात्मा एकरस हो गये। अद्वैत स्वरूप अंगी एवं अंगना का संयोग हो गया।

अंगना ने अर्श की नियामतों का सुख प्राप्त कर लिया। प्रेम की माधुर्यमयी मादकता में विभोर इन्द्रावती (महामति) अपनी ब्रह्मात्मा समुदाय के साथ बढ़ी चली आ रही हैं। प्रियतम स्वयं साकी हैं उनके हाथ में मधुर प्रेमामृत भरा प्याला पी-पीकर वे सब रसमय हो रही हैं। किरंतन में इस दिव्यानुभूति की कितनी सटीक अभिव्यक्ति है —

हक अरस परस सरस सब एक रस।
वाहेदत खिलवत निसबत न्यामत।।
महामत अलमस्त होए आवे उमत लिये।
पीवत आवत हक हाथ सरबत।।

किरंतन, ११७/४

इस दिव्य अनुभूति का साधन प्रेम है और प्रेम की कसौटी विरह है। विरहरिक्त प्रेमाभक्ति में वह आनन्द कहाँ? उस अवर्णनीय आनन्द का अनुभव वही कर सकता

है जिसे लम्बे विरह में तपने-झुलसने के बाद मिलन की शीतलता प्राप्त हुई हो। यदि विरह-सिन्धु के पार करने में व्यष्टि के साथ समष्टि की भावना हो तो उसमें निहित अभिनव शान्ति की स्निग्ध ज्योत्स्ना भी प्रस्फुटित होती है। फिर इन्द्रावती का विरह तो युगों का विरह है जिसके एक-एक पल की असहनीय व्यथा महामति प्राणनाथ के स्वरूप में उनकी विरह वाणियों के रूप में व्यक्त है। इसमें अभिनव शान्ति की ज्योत्स्ना सर्वत्र उजागर है। उन्होंने क़दम-क़दम पर संगिनी आत्माओं का ध्यान रखा है। साथ ही लोक धर्म, राष्ट्र धर्म और लोक मर्यादा को भी विस्मृत नहीं किया है। उन्होंने इनका पालन करते हुए विरह की लम्बी अवधि को पार किया और मिलन का परम सुख प्राप्त किया। इसीलिये उनकी वाणी लौकिक एवं पारलौकिक दोनों पक्षों में कल्याणी है। महामति वाङ्मय में ज्ञान प्रेम, विरह-मिलन सभी को अपनी पराकाष्ठा में देखा जा सकता है। प्रेम और ज्ञान दोनों साधना के लिये आवश्यक हैं। ज्ञान से पहचान होती है पहचान से प्रेम जागता है। मिलन की इच्छा विरह से भर देती है जिसका चरमोत्कर्ष प्रियतम से एकाकार हो जाने का परम आनन्द है—

ए इलम ए इसक, दोऊ हक को चाहें।
पर जिनको हक जो देत हैं, लेवे सिर चढ़ाय।।

सागर, ५/१४०

महामति वाङ्मय में निहित प्रेम की अवधारणा त्रिशताब्दी से जहाँ आत्मा से आत्मा की भावात्मक एकता का अभिषेक कर विश्व बंधुत्व का पथ प्रशस्त करती आ रही है, वहीं आत्मा से परमात्मा के मिलन के मर्म को उजागर कर परम सुख प्राप्ति की प्रेरणा प्रदान करती है जो जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिये वह सार्वभौमिक है, कालजयी है और शाश्वत है।



श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म और सर्वधर्म समभाव

डॉ. अनुज प्रताप सिंह डी. लिट्. (हिन्दी)
रणबीर रणञ्जय स्नातकोतर महाविद्यालय
अमेठी, उ. प्र.

श्रीकृष्ण भक्ति का उद्गम और विकास सृष्टि की अवस्था का साथी है। समय-समय पर इसके रूप बदलते रहे हैं, और आगे कुछ और बदलेंगे। यही इसकी जीवन्तता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत और द्रविड़ भाषाओं से होती हुई यह धारा हिन्दी को मिली। यहाँ इसके क्रम को इस प्रकार रखा जा सकता है — १. प्रारंभिक युग वि० सं० ७००—१५५० तक। २. मध्ययुग वि० सं० १५५०-१६०० (पूर्वार्द्ध)। ३. मध्ययुग (उत्तरार्द्ध) वि० सं० १७०० से १८५० तक ४. आधुनिक युग वि० सं० १८५० से आज तक श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म उत्तर मध्यकालीन कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध है। यहाँ सन्तों और भक्तों का भेद नहीं है। समय की माँग पर सन्तों ने ऐसा किया। श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म 'कृष्ण प्रणमितुं शीलमस्येति कृष्ण प्रणामी' अथवा 'कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय' आदि सार्थक सूक्तियों को लेकर प्रादुर्भूत होता है।

प्रणामी सन्तों के सम्बन्ध में आज भी स्रोतों का अभाव है। इधर कुछ कार्य सामने आ रहे हैं। इस धर्म की हस्तलिखित पोथियों का भण्डार आज भी बहुत न्यून मात्रा में प्रकाशित हो सका है। ये पोथियाँ प्रणामियों की सेवा -पूजा में अधिक देखी जा सकती है। मन्दिरों और भक्तों के घर इनके मूल रक्षक और प्रचारक हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा पटना आदि के संग्रहालयों में भी कुछ साहित्य सुरक्षित हैं। उत्तर मध्यकालीन धार्मिक नवजागरण में इस धर्म का बड़ा महत्त्व है। इन सन्तों की वाणियों में युग-स्वर और जनमानस की आत्माभिव्यक्ति है। ये ग्रन्थ प्रबन्ध, मुक्तक और गीत प्रधान हैं इसमें व्यापक दृष्टि को अपनाया गया है, इसी से इसको हिन्दू-मुसलमान तथा विदेशी लोगों ने भी अपनाया है। किसी के प्रति घृणा नहीं है। सभी श्रीकृष्ण की अंगनाएँ हैं। ब्राह्मण धर्म, कर्मकाण्ड तथा पौरोहित्यवाद से इसको दूर रखा गया है। उपासना-पूजन भी मानसिक है। सन्तों के मूल स्वर इसमें सुरक्षित हैं। मिश्र बन्धु, डॉ. हीरालाल, डॉ. श्यामसुन्दर दास, डॉ. बड़थ्वाल, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. माताबदल जायसवाल, डॉ. रामकुमार वर्मा पं. परशुराम चतुर्वेदी ने, (उत्तरी भारत की सन्त परम्परा में) इन सन्तों के वाङ्मय पर काम किया है। प्रणामी संस्थानों और प्रो. माताबदल जायसवाल के कार्य विशेष सराहनीय हैं। सन्तबानी संग्रहों में जो

स्थान प्रणामी सन्तों को मिलना चाहिए था वह अभी तक नहीं मिल सका है। कुछ लोग इनको एक विशेष भक्त मानकर सन्त-धारा से अलग रखना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि यहाँ तक आते-आते चरित्रों और कथाओं की ओर सन्तों का भी रूझान होने लगा। कबीर आदि के समय ऐसा नहीं था। शैली की दृष्टि से वह नया प्रयोग है। पीछे आने वाले, सम्भवतः महामति प्राणनाथ और संत धरणीदास ने उक्त नवीन शैली को पहले पहल अपनाया और तब से यह भी प्रचलित हो चली है।[१] 'सन्त प्राणनाथ ने हिन्दू, मुसलिम एवं ईसाई धर्म के मौलिक एकता की आधार पर 'धामी' सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।'[२] परम पद एक मानसिक स्थिति में से प्रदेश रूप में परिणत हो गई। स्वामी प्राणनाथ ने इसे 'धर्म की संज्ञा दी जो किसी पावन या पवित्र स्थान को प्रत्यक्ष करता है, वहाँ तक पहुँचनेवाले धामी हैं। महामति प्राणनाथ ने सर्वधर्म समभाव की बात सप्रमाण प्रस्तुत की है, अन्य प्रणामी सन्तों ने भी ऐसा ही किया। सब धर्म एक ही मूल पुरुष की ओर संकेत करते है सब की परिणति अद्वैत में ही होती है। जो बीज ब्रज में अंकुरित हुआ, रास के बाद वही अरब में अवतरित हुआ, वही धनी देवचन्द्र फिर प्राणनाथ के रूप में आया। इनमें अंश-अंशी का भाव है।

इस धर्म के आद्यगुरु श्री देवचन्द्र जी हैं। बाद में उनके परम शिष्य महामति प्राणनाथ ने जागनी आन्दोलन का प्रवर्तन किया। श्री देवचन्द्र जी स्वयं निजानन्द स्वरूप थे। उनके द्वारा प्रतिपादित मार्ग होने के कारण इसको निजानन्द सम्प्रदाय कहा गया। निजानन्द स्वामी का जन्म वि० सं० १६३८ आश्विन शुक्ल चतुर्दशी के दिन मारवाड़ देश के उमर कोट नाम के गाँव (पाकिस्तान) में मत्तु मेहता और कुँवर बाई के घर हुआ। माता ने जन्म के पूर्व चन्द्रमा को मुख में प्रवेश करते हुए स्वप्न देखा था। इसी से देवचन्द्र नाम रखा। सोलह वर्ष की उम्र में देवचन्द्र परम तत्त्व की खोज में निकले 'कोऽहं कश्चास्ति संसारः' मैं कौन हूँ और यह संसार क्या है ? इसी खोज में वह विविध सम्प्रदाय के साधु संतों से मिले। पर कोई उनको संतुष्ट न कर सका। भुजनगर स्थित श्रीहरिदास जी मिलने के बाद उन्हें कुछ संतोष हुआ। दीक्षामंत्र ग्रहण कर श्री बाँके बिहारी के वस्त्र की सेवा करते रहे। बाद में नौतनपुरी—जिसको आज जामनगर कहा जाता है, पहुँचकर चौदह वर्ष तक श्री श्यामा जी के मन्दिर में कान जी भट्ट से निष्ठा पूर्वक भागवत की कथा सुनते रहे। उनको एक दिन श्री कृष्ण ने तारतम दिया। अपना परिचय दिया—"मेरा नाम श्री कृष्ण है। मैं अनादि और क्षर, अक्षर से परे अक्षरातीत उत्तम पुरुष हूँ। तुम परम धाम की आत्मा सुन्दरबाई सखी हो। उस दिव्य परम धाम से बारह हज़ार ब्रह्मसृष्टि मायावी नश्वर खेल देखने आयी हैं, उन्हें तारतम ज्ञान के द्वारा जागृत करना है।" तारतम जो उद्धार कर दे, संसार के कष्टों से दूर कर दे। देवचन्द्र जी ने नौतनपुरी धाम की स्थापना की। श्री देवचन्द्र जी ने मेहराज ठाकुर की आत्मा को परम धाम की इन्द्रावती सखी के रूप में देखा और जागनी का उनको पूर्ण उत्तरदायित्व दे दिया। अपने अरब-प्रवास के बाद जूनागढ़, दीववन्दर, ठट्ठानगर, नलिया, खंभालिया होते हुए प्राणनाथ जी ने जागनी का प्रचार प्रसार के दौरान सूरत पहुँचकर धर्मपीठ श्री महामंगलपुरी धाम की स्थापना

---

१. सन्त साहित्य की परख : परशुराम चतुर्वेदी, प्र० ११३
२. हिन्दी सन्त साहित्य : त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० ६०-६६

की। मेरता में मस्जिद से जब अज़ान सुनी तो उनको क़ुरान-पुरान की एकता की बात ध्यान में आई सम्वत् १६३५ में हरिद्वार के महाकुम्भ के मेले में उन्होंने निजानन्द सम्प्रदाय का परिचय दिया। विद्वानों ने उन्हें श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुधावतार की उपाधि से विभूषित किया। समवत् १७४० में बुन्देल केसरी छत्रसाल महाराज से मिलकर प्राणनाथ जी ने पन्ना (मध्यप्रदेश) में पद्मावतीपुरी की स्थापना की। ग्यारह वर्ष तक वहीं रहे। अठारह हज़ार चौपाइयों में उन पर चौदह ग्रन्थ अवतरित हुए जिनका संकलन 'कुलजम स्वरूप' या स्वरूप साहब या तारतम सागर नाम से हुआ। यही इस धर्म का उपास्य ग्रन्थ है। महामति प्राणनाथ ने जागनी का काम छत्रसाल जी को सौंपकर इहलीला संवरण की। छत्रसाल ने इसका प्रचार-प्रसार किया। आज देश-विदेश में इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं। नेपाल, भूटान में भी इसके अनुयायी हैं। इसमें जाति, भाषा का कोई बन्धन नहीं है। गाँधी जी को सर्वधर्म समन्वय का सूत्र यहीं से मिला था। मातृपक्ष से वह प्रणामी थे। प्रणामी धर्म का संदेश है—

पहले आप पहचानो	—	आत्म पहचान।
पारब्रह्म तो पूरन एक है	—	एक ब्रह्मोपासना।
हम तुम एक वतन के	—	विश्ववन्धुत्व।
सुख शीतल करूँ संसार	—	विश्व शांति।
सोई खुदा सोई ब्रह्म	—	विश्व धर्म।

निजानन्द सम्प्रदाय की पद्धति इस प्रकार है—

सद्गुरु ब्रह्मानन्द हमारो। अक्षर शिखा रूप निरधारो।।
चिद् अनूप इततें पर जोई। कहियत सूत्र हमारो सोई।।
सेवन सदा अक्षरातीतू। प्रान आधार हिये को मीतू।।
चिदानन्द निज गोत्र हमारो। को निहचे जग जानन हारो।।
परम किशोरी इष्ट अनूपा। साधन पतिव्रत शुद्ध स्वरूपा।।
युगल किशोर जाप नित जानो। तारतम्य निज मंत्र बखानो।।
विशद ब्रह्म विद्या है जोई। हमरे दिल में देवी सोई।।
नौतनपुरी पीढ़ी सुखदाता। तहे ते प्रकट भई यह बाता।।

'वृत्तान्त मुक्तावली' से यह स्पष्ट होता है कि देवचन्द्र जी ने कनफटा (नाथ) योगियों की संगति से हठयोग और अष्टांग योग की साधना की थी। पातञ्जल योग भी किया था। महामति प्राणनाथ कृष्ण की सखी इन्द्रावती की वासना के रूप में है। प्रेमलक्षणा भक्ति को ही उन्होंने कुलजमे शरीफ में मुक्ति की धारा बतायी। इसमें उनके १४ ग्रन्थ हैं संकलित— १. श्रीरास २. प्रकाश ३. षट्‌रुति ४. कलश ५. सनंध ६. किरंतन ७. खुलासा ८. खिलवत ९. परकरमा १०. सागर ११. सिंनगार १२. सिंधी १३. मारफत सागर १४. कयामतनामा (छोटा एवं बड़ा)। इसका लिपिकाल संवत १७१८-५८ तक है। इसके लिपिकार श्रीवीर जी की प्रति का आधार लेकर ही श्री प्राणनाथ वाणी प्रकाशित हुई है। अन्य प्रणामी सतों के संग्रह भी प्रकाशित हो रहे हैं।

प्रणामी धर्म में प्रेम को ही मूल माना गया है। प्रणामी ईश्वर के सामने सीधे अपनी बात करता है। प्रेम के बिना वह ज्ञान को निःसार बताता है। आत्मज्ञान को

---

१. मिहिरराज चरित! बकसी हंसराज महाराज, प्रथम संस्करण पृ० १८६-८८

बार-बार वरीयता दी गई है। जो स्थूल, व्यक्त या क्षर है—वही नाशवान है, वही प्रकृति पुरुष है—जो अव्यक्त या अक्षर रूप है, वही परमगति है। उसको प्राप्त कर जीव कभी नहीं लौटता, वही परम धाम है। उल्टा वृक्ष रूप संसार के पत्ते वेद के छन्द, शाखा गुन (निर्गुण), तना ईश्वर रूप, वैदिक कर्म पथ, फूल, फल है। जिसके स्वाद को पाने के लिए यह जीव संसार से बँधा रहता है— (गीता, १५/१-२)। अक्षर ही परम पुरुष है। योगी लोग इसी की आराधना करते हैं। वेदों में चौदह लोकों की चर्चा है, बाइबिल और क़ुरान में भी। वेद ब्रह्म को एक कहता है, बैकुण्ठ पर निराकार, निराकार पर अक्षरब्रह्म और अक्षर ब्रह्म पर अक्षरातीत है—'नूर पार नूर तजल्ला (अक्षरातीत) में तहाँ से लाया फुरमान, (सन्देश)। (खुलासा प्रकरण-२२) यही अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म है। योग माया से वह विविध रूप धारण करता है। रासलीला महामिलन का एक स्थल है। यहाँ ब्रह्मात्माएँ परब्रह्म के साथ आनन्द करती हैं। आत्मा एवं परमात्मा—श्याम श्यामा का एकीकरण है। एक मात्र परम सत्ता सम्पन्न ईश्वर की उपासना का विधान है। परम सत्य एक ही है। वही दिव्य ज्योति है। इन मतों के प्रमाण भागवत, मार्कण्डेय पुराण, ब्रह्मोपनिषद्, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्ग संहिता और गीता आदि हैं। रास दिव्य नृत्य है—जो परम ब्रह्म और ब्रह्मात्मा, के साथ सम्पन्न होता है।

महामति वाणी में धार्मिक कुरीतियों एवं कर्मकाण्ड का विरोध है। महाराजा छत्रसाल के सपुत्र हृदय शाह ने भक्ति-संस्कृति की स्थापना की। रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों का विरोध किया। इसमें एकनिष्ठ भाव से कृष्ण की उपासना का विधान है। आत्मा वियोगिनी है। भ्रम या माया के कारण वह प्रीतम को पहचान नहीं पाती है। फिर आत्मा पछताती है, वियोग में तड़पती है, वियोगिनी है। बिना आत्म पहचान के उसकी पहचान नहीं हो पाती है। वह सब का प्रीतम है। आध्यात्मिक दाम्पत्य भाव जो सिद्धों, सन्तों में चलता रहा—वह यहाँ भी है—

इन्द्रावती कहे तू सई मेरी, मुझे मिले धनी इत।
पिऊ ने सब पूरन करी, जो मैं करी उमेदां तित।।

प्रकाश हि., २७/१०

प्रेम से ही प्रीतम को पाया जा सकता है। सही विरहिणी वही है जो मिलकर बिछुड़ जाती है। वल्लभ का विरह नहीं छूटना चाहिए। पिण्ड, ब्रह्माण्ड न देखकर मात्र प्रीतम को देखना चाहिए। विरहिणी ही सुहागिनी है। जब अज्ञान और भ्रम की नींद टूट जाती है तो अपने घर की पहचान हो जाती है। वही स्थायी निवास है, उसके लिए सब कुछ छोड़ देना चाहिए—

महामत कहें इन दुल्हे पर, मैं वारी-वारी दुल्हिन।।

किरंतन, ४१/१६

मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। उसी में सब कुछ उपजता और लय होता है। मन से ही ब्रह्मानुभूति होती है। इससे उसको साधना चाहिए।

क्षर-अक्षर के पार चिन्मय यमुना नदी है। उसके पार अक्षरातीत या पूर्ण ब्रह्म का स्थान है। वहाँ पहुँचकर जीव मुक्त हो जाता है। सभी नामों का विलय कृष्ण नाम में होता है। सबका सार कृष्ण है। कृष्ण आकर्षण है, आनन्द है और व्यापकता है। भटकाव से सत्य ओझल हो जाता है। महामति ने श्रीकृष्ण नाम की महिमा खूब गाई है। अन्य प्रणामी सन्तों ने भी ऐसा ही किया है। भव से उबारने वाले कृष्ण हैं।

यस्मिन सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्व तेजा से।
तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतम् स्वयं।।

गर्ग संहिता, १/२८

योग, यज्ञ, हवन, तपस्या, व्रत आदि सभी चित्तशुद्धि के साधन मात्र हैं। परमात्मा की प्राप्ति कठिन है। श्री प्राणनाथ का अनुभव ज्ञान बड़ा ऊँचा है। उससे भ्रमजाल का नाश हो जाता है—

पिया हुकमें गावें महामत। उड़ाए असत थाप्यो सत।।
सब पर कलस हुओ आखरत। भई नई रे नवों खंडो आरती।।

किरंतन, ५६/१६

समग्र बानी परब्रह्म प्रीतम के उपदेश, निर्देश एवं आवेश से कही गयी है। नवों खण्डों की आरती में मूल रूप को देखा जा सकता है।

इसी से उन्होंने अपने को आख़िरी रसूल कहा है। वाणियों का मूल स्वर उपदेश मूलक और वैराग्यमूलक है। अन्त: राग की चर्चा है। उन्होंने हिन्दू धर्म को उत्तम बताया है—जिसमें सब कुछ निहित है। इसके साथ भारत देश को उत्तम बताया है। एक धार्मिक राज्य स्थापना के लिए ही प्राणनाथ ने छत्रसाल को जागृत किया और इस्लामी कट्टरता को उन्होंने चुनौती दी। धर्म की महत्ता के समझते हुए छत्रसाल अपनी तलवार लेकर सामने आये। सभी लोग क्षर, अक्षर तक की बात करके सगुण-निर्गुण में लग गये, पर महामति ने उसके आगे अक्षरातीत की बात कही। स्वप्नदेह में महामति सोई हुई आत्माओं को जगाने के लिए उसमें अपने को स्थापित करते हैं। लालदास, भावसिंह, छत्रसाल, मुकुन्द दास ऐसी ही आत्माएँ हैं। बीतकों में इनकी सूचियाँ दी गई हैं। एक औरंगज़ेब की आत्मा नहीं जाग सकी।

प्रणामी धर्म में श्री कृष्ण या राज जी की तीन लीलाओं को सर्वाधिक महत्त्व मिला है— १. ब्रजलीला २. रासलीला ३. जागनी लीला। आवेश का क्रम इस प्रकार बनता है—श्यामाजी—धनीदेवचन्द्र जी—प्राणनाथ जी। बारह हज़ार साखियों के मन में लीला को देखने की इच्छा हुई। ये तीनों लीलाएँ त्रिधा लीला हैं—

मूलधाम की सखिया जेह। तिन इत धरी सुपन की देह।।
ज्यों सुपने जानीए गए कहीं। त्यों आये सब बृजपुर माहीं।।
श्री श्यामा जी वृषभान के आई। ब्रह्म सृष्टि गोपी भई तांही।।

केवल ब्रह्म के ऊपर अक्षर ब्रह्म के मन रूप का अन्त:करण है—जिसे सत्यस्वरूप ब्रह्म भी कहते हैं। इसमें सच्चिदानन्द परमात्मा के सद् अंश का समावेश है। मन से ही सारा कार्य सम्पन्न होता है। अक्षरातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा का आनन्द अंश अक्षर ब्रह्म के मन पर ही आता है। मन से बुद्धि में, बुद्धि से चित्त में, चित्त से अहंकार में आकर सारे विश्व में आनन्द का प्रवेश हो जाता है। इसी अक्षर ब्रह्म के मन से उत्पन्न चौबीस हज़ार कुमारिकाओं ने ब्रजमण्डल में प्रकट होकर कात्यायनी व्रत किया था—जिसको श्री कृष्ण ने रासलीला में रास खेलाकर संसार बन्धनमुक्त कर दिया। श्रीकृष्ण परम ब्रह्म का दूसरा नाम है। अत: कृष्ण अवतारी नहीं; स्वयं परब्रह्म परमात्मा है। यह ब्रह्माण्ड उन्हीं से उत्पन्न हुआ है। ईश्वर, नारायण, विष्णु आदि देवता उनके अंश हैं। 'सनतकुमार संहिता' में लिखा है कि कंस आदि राक्षसों का वध करनेवाले नन्द पुत्र श्रीकृष्ण नहीं हैं, बल्कि उनमें ही विराजमान वासुदेव अंश हैं, क्योंकि पूर्ण ब्रह्म साक्षात् कृष्ण तो

केवल ब्रह्म में ही पूर्ण अंश से विहार करते हैं। मथुरा और द्वारिका में उनका छोटा-सा अंश जाकर अन्य लीलाएँ करता है।

प्रणामी धर्म में गुरु की बड़ी महत्ता है, उसकी गद्दी की भी सेवा-पूजा चलती है। मोक्ष का मूल गुरु कृपा है। वह माया-मोह से परे ज्ञान से युक्त और अज्ञान से मुक्त करता है, परमात्मा का मार्ग बताता है। जीव में विरह पैदा करता है। हर धामी एक विरहिणी है। वह विरह के दुःख में निद्रा, भोजन आदि को छोड़कर विरहाकुल रहता है। तब उसमें प्रेम उत्पन्न होता है और वह परमतत्त्व से मिलता है—

दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक।।

किरंतन, १७/१६

गुरु की महिमा के सम्बन्ध में बीतकों मे बहुत लिखा गया है। मोक्ष का मूल गुरु की कृपा ही है। श्याम जी को ही सतगुरु माना है। यह संसार मायालोक है, त्रिगुण का विस्तार है। इसका रहस्य इसका निर्माता पारब्रह्म ही समझ सकता है। वह प्रेम से प्रकाशित सबके ऊपर है। इसलिए श्री प्राणनाथ इसे धर्म का मूल कहते हैं—

सुंन निरगुण निरंजन, देखे बैकुंठ निराकार।
अक्षर पार अक्षरातीत, प्रेम प्रकास्यो पार के पार।।
पुरुष दूजा कोई काहूं न कहावे, सबों भजिया कर भरतार।।

किरंतन, ५३-५४/९-११

महामति प्राणनाथ का काल औरंगज़ेब का शासनकाल था। धर्म के नाम पर बादशाह द्वारा अत्याचार हो रहे थे, जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। हिन्दू जनता के लिए उन्होंने सत्याग्रह किया। अपने प्रमुख १२ शिष्यों को भेजकर औरंगज़ेब को समझाने का प्रयास किया, पर वह समझ न सका। हिन्दू राजाओं को एकत्र करते हुए प्राणनाथजी ने उदयपुर, उज्जैन, औरंगाबाद, (भावसिंह, फतेह सिंह), मथुरा-वृन्दावन, भरतपुर, सांगानेर, आमेर, गढ़ा, कालपी, बूँदी आदि के राजाओं को झकझोरा। कृष्ण ने जैसे कौरवों को समझाया था ; उन्होंने औरंगज़ेब तथा अन्य राजाओं को समझाया। छत्रसाल ने धर्म के लिए व्रत लिया। सूरत में अंग्रेज़ कोठियाँ बन रहे थे। प्राणनाथ ईसाई पादरियों से मिले, दोनों के बीच का मार्ग उन्होंने निकाला। औरंगज़ेब मास्जिदों को तोड़ रहा था, पादरी ईसाइयत का प्रचार रहे थे, मुल्ला इसलाम की कट्टरता में हिन्दू समाज को काफ़िर कह चुके थे। हिन्दू— मुसलमान बनाये जा रहे थे। उन्होंने भागवत-क़ुरान, तारतम-क़लमा के रहस्यों को खोला—ला=क्षर, इलाह=अक्षर, इल्लिलाह=अक्षरातीत बताया। औरंगज़ेब की आत्मा जाग गई होती तो उसको अन्तिम दिन में प्रायश्चित्त न करना पड़ता। 'मुझे मेरे गुनाहों का फल भोगना पड़ेगा। मैं अपने साथ कुछ नहीं ले जा रहा। मुझे नहीं मालूम मेरे जीवन का उद्देश्य क्या था ? मेरे घर स्वामी आये लेकिन मैंने अपनी आँखों पर पड़े पर्दे के कारण उन्हें पहचाना नहीं।' कवि भूषण और मथुरा दास ने ध्वस्त होते हुए मन्दिरों का बड़ा वास्तविक चित्रण किया है। इस समय के परिवेश के लिए बहुत लिखा गया है।[1]

1. The Religions Policy of Mughal Emperors, Page-1H1, 11 -History of Aurangzab. By J.N. Sarkar Vol. III P.P. 301-302 III-Auroangzeb and his times By Zahiruddin, page-247-251.

इनमें औरंगज़ेब से लेकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राज्यकाल तक की धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान हमें प्रणामी धर्म और चरनदास की रचनाओं से हो जाता है। कवि भूषण ने औरंगज़ेब के अत्याचारों का बड़ा सजीव वर्णन किया है—

कुम्भकरन असुर औतारी।
कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरि रब्ब की।
खोदि डारे देवी देव अनेक सोई
तैरवी निज प्रानन ते छूटी माल सबकी।।
भूषन भनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ
और क्या गिनाऊँ नाम गिनती में अबकी।।
दिल में डरन लागे चारो वर्ण वाही समे
शिवाजी न होतो तो कुगति होती सबकी।।

छत्रसाल की वीरता को देख उन्हीं कवि भूषण ने कहा था— 'शिवा को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को।'

ईस्वी की सत्रहवीं शताब्दी में महामति प्राणनाथ ने प्राणिमात्र के हित के लिए सर्वध ार्म समभाव को सबके सामने रखा। उन्होंने प्रणामी धर्म का प्रवर्तन इसी हेतु किया। 'तारतम वाणी' में विश्व में प्रचलित सभी धर्मग्रन्थों का सार निहित है। अठारह हज़ार चौपाइयों के संकलन में गुजराती, अरबी, सिंधी, जाटी भाषा के अतिरिक्त विविध भाषाओं के शब्दों का समावेश है। कुलजम में विश्व के अन्य धर्मों के साथ भारतीय शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सभी धर्मों का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। भक्तिकाल की चारों धाराओं का इसमें समन्वय है। व्यापक हिन्दू धर्म श्रीकृष्ण की भक्ति लेकर सामने आया। इसका अक्षरातीत = कबीर के राम, सूफ़ियों के खुदा, तुलसी के राम, सूर के कृष्ण से भिन्न हैं— जिसने व्रज में रास खेलकर अरब में धार्मिक जागरण किया। प्राणनाथ — कृष्ण, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद के प्रतीक हैं। अपने दर्शन में उन्होंने वेद, पुराण, वल्लभ, शंकर, भागवत, गीता और यामल ग्रन्थों को महत्त्व दिया है। उन्होंने वेद और कतेब के बीच अद्‌भुत साम्य दिखाया है। जब रासलीला के बाद नया ब्रह्माण्ड बना तो श्रीकृष्ण ही अरब देश में प्रकट हुए। उन्होंने असुरों को शराअ पर दृढ़ रहने के लिए कहा। कृष्ण ही मुहम्मद, ईसा, रूहअल्लाह और ईमाम मेंहदी हैं। श्री प्राणनाथ की रचना 'प्रकटवाणी' में बाइबिल की 'रिविलेशन' की भविष्यवाणी चारितार्थ हुई है। ईसामसीह अपनी जिन भेड़ों (आत्माओं) को लेने के लिए पुनः आनेवाले थे वे आत्माएँ ईसा रूह अल्लाह श्री देवचन्द्र (प्राणनाथ के गुरु) के साथ उतरीं। महामति ने 'क़ुरान' के आधार से, उसके प्रमाण देकर 'सनंध' ग्रन्थ के माध्यम से इसलाम धर्म का सर्वग्राह्य एवं सार्वभौम रूप दिखाया है। 'क़ुरान' को ब्रह्मात्माओं के नाम ईश्वरीय सन्देश कहा है। पर मुसलमानों ने 'क़ुरान' का संकुचित अर्थ लगाया है। 'खुलासा' ग्रन्थ में वेद और कतेब दोनों की उन्मुक्त परिभाषा देकर महामति ने उनके अवतार और पैग़म्बरों, पुरुषों, देवों और फ़रिश्तों को एक दूसरे के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। मानवता का मूल, खुदा और धर्म एक है। भाषा-भेद के कारण सभी आपस में लड़ रहे हैं—

बाकी तो वेद कतेब में, दोऊ देत है साख।
अन्दर दोउ के गफ़लत, लड़त वासते भाख।।

खुलासा, दोनामा।

१. मिहिरराज चरित : वक्सी हंसराज महाराज, प्रथम संस्करण पृ० १८६-८८

कतेब ग्रन्थों में नूह और हूद पैग़म्बर की कथा वासुदेव के बेटों और नन्दबाबा की कहानी से मेल खाती है। नूह पैग़म्बर चालीस साल क़ैद रहे। उनके पुत्रों को काफ़िरों ने मार डाला। आठवें के जन्म के समय फ़रिश्ते ने मकलूत से आकर कहा कि इन्हें हूद के घर पहुँचा दो क्योंकि यहाँ तूफ़ान आये। उसी ने उन्हें बन्धन से झुड़ाया। श्री कृष्ण ने देवकी-वसुदेव को कंस की क़ैद से मुक्त किया। रूमी के दीवान में लिखा है—

चे तदबीर ऐ मुसलमानों कि मन खुदरा नमी दानम्।
न तर्सा यहूदम् न मन गबररम् न मुसलमानम्।।

यानी ओ मुसलमानो ! मैं क्या करूँ, मैं नहीं समझ पाता कि मैं क्या वस्तु हूँ। न तो मैं ईसाई हूँ, न यहूदी, न फ़ारसी और न मुसलमान। वास्तव में सभी एक परवर दिगार के बन्दे हैं। श्रीकृष्ण की अंगी या अंगना हैं। प्राणनाथ ने कहा — मुसलमानो, —अब कोई और पैग़म्बर क़यामत के दिन नहीं आयेगा — वह आने वाला ईमाम मेहदी मैं ही हूँ। आत्म पहचान कर लेना ही क़यामत है। क़ब्र से कोई शव बाहर नहीं करेगा। सत्य की पहचान ही शरीर रूपी क़ब्र से आत्मा का उठना है। अज्ञान ही क़ब्र में सोना है। इससे सम्बन्धित कुछ प्रमाण उन्होंने प्रस्तुत किये थे। 'श्रीमद्‌भागवत' में व्यास जी ने लिखा है कि कलियुग में आनेवाला कल्कि अवतार ज्ञान की खड्ग से बाह्याचारों और आडम्बरों को दूर करके एक ही सत्य धर्म की स्थापना करेगा। महामति ने वही कार्य किया—

किया जमा सब शब्दों का, धोय हाथ और हथियार।
होसी नेहचल सुख चौदे लोकों, हम देखे खेल कारन इन बार।।

किरंतन, प्र. ५४/१८

सन्त कबीर, नानक, दादू आदि सन्तों के स्वर में राम-रहीम एकता का सन्देश अवश्य है, परन्तु भारत के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक एकता का स्वर महामति की वाणी से मुखरित हुआ। प्रणामी सन्तों के कारण धर्म समन्वय और समभाव की स्वर लहरी भारतीय वातावरण में गूँजने लगी। प्राणनाथ ने वेद, उपनिषद्, भागवत, क़ुरान, इंजील, यहूदियों के जंबूर तथा दाऊद पैगम्बर के धर्म ग्रन्थ तोरेत के सिद्धान्तों में साम्य एवं भविष्यवाणियों की ओर ध्यान दिलाकर मानव को विश्व धर्म समन्वय का मार्ग दिखलाया। महामति की वाणी में कहीं भी जड़ता नहीं है। धार्मिक देशानुराग की भावना भी इसमें सन्निहित है। तत्कालीन रूढ़िवादी शासक औरंगज़ेब का चरित्र है। छत्रसाल ने महामति से आशीष और प्रेरणा लेकर धार्मिक ध्वज को अपने हाथ में लिया, धर्मनिष्ठ सैनिक तैयार किये। श्री प्राणनाथ की मौलिक उद्‌भावनाएँ समसामायिकता में धर्म, दर्शन और भक्ति की स्थापना करने में सफल हैं। ये सबके आश्रय का परिचय हैं। आत्मगत सौन्दर्य में उनका लीला विस्तार है। उन्होंने मानवीय, ईश्वरीय, आदिम और समसामायिक तत्त्वों में एकता स्थापित की। यही क्रांतदर्शिता उन्हें आज भी प्रासंगिक बनाए हुए है। सन्तधारा को इनसे अभिनव शक्ति मिली। वैयक्तिक साधना और चिन्तन को महत्त्व दिया है। उसी के विरह के विविध रूप वार्णित हैं। सत्य की पहचान आवश्यक है। उन्होंने शास्त्र और समाज को एक जगह किया।

पारब्रह्म तो पूरन एक है। ए तो अनेक परमेस्वर कहावै।।
अनेक पंथ सबद सब जुदे-जुदे। और सब कोई सास्त्र बोलावे।।

किरंतन, ६/७

सास्त्र ले चले सतगुरु सोई।
बानी सकल को एक अर्थ होई।।
इतही वैकुण्ठ इतही सुन।
इतही प्रगट पूरण पारब्रह्म।।

किरंतन, ४/४,८

सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोहमाया और आप।
पार पुरुष जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।।

किरंतन, २०/६

महामति ने अज्ञानी गुरुओं से दूर रहने को कहा है। उन्होंने कहा है कि लोगों ने फेन को देखा है, दूध को नहीं। प्रणामी सम्प्रदाय के सर्वधर्म भाव को देखते हुए हक़ीक़ी—यथार्थ दीन इस्लाम भी कहा गया है। प्राणनाथ को जबराइल असराफील का जोश आता है। जागृत आत्माओं को मोमिन कहा गया है। मोमिन खुदा के वास्ते लड़ते हैं क्योंकि उन्हें जुल्म दूर करना है। पाँच साल तक प्राणनाथ जी अरब में रहे। वहाँ उनको इस्लामी धर्म, संस्कृति और दर्शन का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक परिचय मिला। ईसाइयों से भी उन्होंने सम्पर्क किया था। वह ईरान के नगरों में गये थे वहाँ के लोगों और बादशाह से मिले थे। वह दीवबन्दर में पुर्तगाली ईसाइयों के सम्पर्क में आये थे। संसार को देखकर उन्होंने कहा—

हमें सबमें प्रेम भाव रखना चाहिए। श्रद्धा तपस्या है—'श्रद्धातपः'। उपनिषदों और यहूदियों के धर्म में अनेक समानताएँ हैं। दोनों एकेश्वरवादी हैं, वह सबसे परे और सब में है, वही सबका उद्धारक है। सांख्य दर्शन में कहा गया है हर आत्मा में उच्चतम पुरुष विद्यमान है, उसको पाने के लिए बाहर जाने की ज़रूरत नहीं है ; अपने को ही जानना है। सारा ब्रह्मांड उसी की इच्छा का परिणाम है। उसी को बताने, प्राणनाथ जी आये—

साहेब आये इन जिमी, करज करने तीन।
सबका झगड़ा मेट के, या दुनिया या दीन।।

खुलासा, १३/८९

उन्होंने प्रेम का धर्म चलाया। बौद्ध धर्म को इसी से सफलता मिली थी। हिंसा भी इससे रुकती है। आत्मसंयम बढ़ता है—जो संन्यास का पर्याय है।

महामति प्राणनाथ युग के पारखी थे। उन्होंने अनुभव किया कि आज एक सार्वभौमिक एवं सहज धर्म की आवश्यकता है। उन्होंने जाति का ध्यान नहीं किया ; भाव को देखा। भाव के धनी चाण्डाल को वह भाव शून्य ब्राह्मण से अधिक महत्त्व देते थे। छोटी जातियों के ऊपर किये जाते हुए अत्याचारों का उन्होंने विरोध किया। जामनगर, पन्ना या कहीं प्रणामी मन्दिर के भण्डार में जाति-पाँति का ध्यान नहीं रखा जाता है। निर्मल आत्मा को उन्होंने वैष्णव कहा—

हो भाई मेरे वैष्णव कहिए वाको, निर्मल जाकी आतम।
नीच करम के निकट न जावे, जाय पहचान भई पारब्रह्म।।

किरंतन ८/१

वैष्णव वह है जिसको पवित्रता मिल जाती है—उसका स्पर्श पारब्रह्म से हो जाता है। पर वह बाहर नहीं—भीतर ही दिखाई देता है। प्रेम बिना उसका सुख नहीं मिल सकता है। सत्य से उसको पाया जा सकता है। तत्कालीन आडम्बरी वैष्णवों से महामति भिन्न हैं। प्राणनाथ ने वल्लभाचार्य को महत्त्व दिया है। धर्म और सम्प्रदाय के बाह्य चिह्नों को उन्होंने महत्त्व नहीं दिया। सहज प्रेम सूक्ष्म और आन्तरिक होता है। गुरु कृपा और आत्मसाधना ही काम आती है।

एक भेष जो विप्र का, दूजा भेष चण्डाल।
चण्डाल हिरदे निर्मल खेले संग भगवान।।
देखलावे नहीं काहू को, गोप राखे नाम।
विप्रभेष बाहिर दृष्टि, षट कर्म पाले वेद।
स्याम खिन सुपने नहीं, जाने नहीं ब्रह्म भेद।।

कलश, १६/१५-१८

ढोंगी गुरुओं और पेट के लिए भगवान् को बेचनेवालों की उन्होंने निन्दा की है। संसार और ईश्वर को एक साथ नहीं प्राप्त किया जा सकता है। बिना पारब्रह्म की पहचान के कोई पार नहीं जा सकता है, मुक्ति नहीं हो सकती है। कबीर ने कितने दरवाज़े पार किये तब प्रेम का सहारा लिया। उपासक घर में रहकर भी निर्लिप्त रहे। जल में रहकर भी कोरे रहे, यही जागरण है। श्री प्राणनाथ की साधना चित्त की साधना है। नाथों की काया साधना, मृत्यु को लाँघने की औपनिषदिक भावना, बौद्धों की निर्वाण भावना, भावात्मक मुक्ति-संगम शंकराचार्य में मिलता है। सबमें चित्ताग्रता की प्रतिष्ठा है। इसी से राग-विराग पैदा किया जाता है। महामति प्राणनाथ ने अपनी बानियों को ईश्वरीय सन्देश कहा—जो पारब्रह्म और उनकी आत्मा के संयोग से प्राप्त हुआ था। तभी तो उनको 'विजयाभिनन्द निष्कलंक बुध ज़ी की उपाधि मिली। उन्होंने सबका धनी एक और सभी धर्मों का मूल एक कहा और सभी धर्म ग्रन्थों की आन्तरिक एकता को उन्होंने सामने रखा।

प्राणनाथ में लोकनायक की पूर्ण क्षमता थी। यही कारण है कि प्रणामी धर्म का स्वर आज के धार्मिक और साम्प्रदायिक वातावरण में महान् उपयोगी है। आधुनिक धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जागरण में प्रणामी धर्म का योगदान रहा है। महात्मा गाँधी को सर्व धर्म समभाव की भावना इसी से मिली थी। उनकी माँ प्रणामी थी। वे बराबर उन्हें इसके सार को बताया करती थीं। पोरबंदर के प्रणामी मन्दिर में वह माँ के साथ जाया करते थे। गाँधी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात पोरबंदर स्थित श्रीकृष्ण प्रणामी मन्दिर से पाई थी। प्यारेलाल द्वारा सम्पादित गाँधी जी की जीवनी-डायरी से इस बात की पुष्टि होती है। गाँधी जी ने इसको सर्वधर्म समन्वयी धर्म बताया है— "संसार के समस्त धर्मों को मिलाने की प्रेरणा मुझे हिन्दू प्रणामी धर्म से मिली।" महामति शांति के कायल थे। तत्कालीन वातावरण से वह दुःखी थे। गुरु तेग़बहादुर जब शहीद हुए थे तो उसके बाद वह दिल्ली गये थे। वह सर्वोदय और मुक्ति का लाभ प्रणामी धर्म के माध्यम से सबको देते हैं। आज आत्मपरिचय, चरित्र निर्माण, स्वावलम्बन, एक तत्त्व की उपासना विश्वधर्म, विश्वशांति और अखण्डता की आवश्यकता है। महामति की वाणी में इस सारी समस्याओं का समाधान है।



प्रणामी साहित्य : आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि

पं. मिश्रीलाल शास्त्री
धाम., पन्ना., म.प्र.

प्रणामी धर्म प्रवर्तक महाप्रभु प्राणानाथ जी ने मानव की आध्यात्मिक उन्नति के लिए तत्कालीन प्रचलित विविध परम्पराओं में से तारतम्य-ज्ञान एवं उसके विवेचक जिस आध्यात्मिक साहित्य के सृजन को प्रेरित किया वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जिसके अध्ययन और मनन के द्वारा आत्मा को परम आध्यात्मिक प्रकाश मिलता है। आत्मा संसारिक मोह के बन्धनों से मुक्त होकर पूर्ण पर ब्रह्म सच्चिदानन्द घन ब्रह्म की पावन सन्निधि प्राप्त कर असीम आनन्द की चिन्मय लीलाओं में सम्मिलित हो ब्रह्मानन्द में विभोर हो जाती है।

अतएव प्रणामी साहित्य एवं उसका परम आध्यात्मिक दर्शन उन सभी भारतीय दर्शन की प्रणालियों से आलोकित, एवं समृद्ध है, जो सत्रहवीं शती तक प्रचलित थी तथा जिनका प्रचार तत्कालीन धर्माचार्य शंकर, रामानुज, माध्व एवं वल्लभाचार्य कर चुके थे। इन्हीं सम्प्रदायाचार्यों के द्वारा प्रचारित आधारों को लेकर प्रसिद्ध भक्त कवि सूर, तुलसी, कबीर आदि अपने पूर्व आचार्यों की संस्कृत भाषा की कठिन पद्धति को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए प्रान्तीय भाषाओं का सहारा लेकर आगे बढ़ रहे थे। इन भक्त कवियों को उस समय इसलिए सफलता मिली कि उनकी वाणी में लोक रंजन की भावना मुख्य रूप से विद्यमान थी।

सम्प्रदायवाद के कारण स्थिति इतनी विषम हो चली थी कि धर्म के वास्तविक तत्त्व को प्राप्त कर लेना साधारण व्यक्ति के लिये बड़ा कठिन था। वह ऐसा मार्ग था जिस पर चलकर साधारण मानव विचारों के बीहड़ जंगल में भटक जाता था। हिन्दू धर्म की यह सम्प्रदाय परम्परा जब अपने भयंकर रूप में थी, उसी समय मुग़ल शासन ने अपने इस्लाम को तलवार के बल पर राष्ट्र धर्म का रूप प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप सम्प्रदायवाद के वे गढ़ जिनके ऊपर पवित्र रंग-बिरंगी ध्वजाएँ फहराती थीं, उनकी धज्जियाँ उड़ा दी गयीं। सम्प्रदायों के सुप्रसिद्ध एवं पावन स्थलों को सुरंगों के धड़ाकों द्वारा नष्ट कर दिया गया। मूर्तियों की तो ऐसी दुर्दशा की गई जिसकी कोई मिसाल भी कहीं ढूँढने पर नहीं प्राप्त हो सकती। सम्प्रदायवाद के मोह पूर्ण दल-दल से ऊँचा उठाने के लिये प्रणामी धर्म के प्रवर्तक अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री निजानन्दाचार्य ने प्राणी मात्र के कल्याण की मंगलमय भावना से प्रभावित हो अपने जिस निजानन्द सम्प्रदाय की स्थापना की थी, उसमें उन तत्त्वों का ही मुख्य रूप से समावेश किया जो मानव मात्र को मोह से उत्पन्न अज्ञान के अन्धकार से दूर कर श्री तारतमज्ञान

के दिव्य प्रकाश में खड़ा कर दे, जिससे प्राणी स्वयं सचेत होकर यह ज्ञान सके कि मेरी आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है ? मुझे इस नश्वर जगत में क्यों जन्म धारण करना पड़ा ? इस संसार सागर से पार होने का साधन क्या है ? माया और ब्रह्म का क्या सम्बन्ध है ? जीव और जगत का नाता कहाँ तक है ? आत्मा का मूल निवास कहाँ है ? मेरी आत्मा अपने आदि स्वरूप को कैसे प्राप्त कर सकती है ? परमात्मा की प्राप्ति का साधन क्या है ? इस प्रकार ये अपार आध्यात्मिक जिज्ञासाएँ हैं, जिनके उचित समाधान के बिना आत्मा को जगत का मोह चारों तरफ़ से घेरे रहता है। श्री निजानदाचार्य ने सकल वेद उपनिषद्, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थों का मथन किया, तीर्थों का भ्रमण किया, समस्त पंथ-सम्प्रदायों की प्रचलित प्रणालियों का गहन चिन्तन किया, लेकिन उन्हें कहीं भी आत्मशान्ति प्राप्त न हुई। लेकिन जब पूर्णब्रह्म आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र ने प्रत्यक्ष होकर ब्रह्म एवं आत्मा का दिव्य साक्षात्कार कराया और श्री तारतम ज्ञान का उपदेश दिया तो उनकी वे समस्त आध्यात्मिक जिज्ञासाएँ शान्त हुईं, जिनके सम्यक् बोध के अभाव में प्राणी आवागमन के चक्कर काटता रहता है। तब श्री निजानन्दाचार्य ने अपने ब्रह्म साधना से जाग्रत होकर सकल प्राणी मात्र को मोक्ष प्रदान करने के लिए अपने जिस दिव्यतम ज्ञान का उपदेश प्रसारित किया, उस दिव्य ज्ञान को तारतम ज्ञान कहा गया है। यही तारतम ज्ञान प्रणामी धर्म का मूल मंत्र है। यही वह तारतम-ज्ञान है जिसके द्वारा प्राणी की समस्त लौकिक एवं अलौकिक जिज्ञासाओं को परम शान्ति प्राप्त होती है। अतएव श्रीमद् निजानन्दाचार्य ने अपने इस तारतम ज्ञान का सदुपदेश महामति प्राणनाथ जी को प्रदान किया। महाप्रभु ने इस तारतम ज्ञान के द्वारा सकल मानव को आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर करने के लिए १८,७५८ चौपाइयों में इसका महान विस्तार किया। अतएव इस परम दिव्य तारतम ज्ञान का जो विस्तार अनन्त श्री विभूषित महामति प्राणनाथ जी के द्वारा सम्पन्न हुआ वह विषय एवं अवतरण-क्रम के अनुसार चौदह ग्रन्थों में विभाजित हुआ। इन चौदह ग्रन्थों का आविर्भाव काल ईसवी सन् १६५७ से लेकर ईसवी सन् १६९१ तक एवं वि. सम्वत् १७१४ से वि. सम्वत् १७४८ तक माना गया है। इन चौदह ग्रन्थों का आविर्भाव भिन्न-भिन्न स्थानों एवं भिन्न-भिन्न कालों में हुआ। महाप्रभु के जीवन का महत्त्वपूर्ण काल मानव-कल्याण के हेतु धार्मिक उपदेशों से पूर्ण यात्राओं में ही व्यतीत हुआ। उनकी प्रथम यात्रा का समय वि. स. १७०३ है, जब कि वे जामनगर से प्रथम बार अरबस्तान पधारे और जहाँ उन्होंने प्रथम बार ही विदेशों में जाकर अरब की जनता को अपने भारतीय दर्शन, संस्कृति और भारतीय साधना के गौरव से प्रभावित किया था। लेकिन महाप्रभु की सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक यात्राओं का समय ई. सन् १६६५ वि. स. १७२२ है, जबकि उन्होंने जामनगर से दीव बन्दर की ओर प्रस्थान किया था, क्योंकि यह यात्रा ऐसी धर्म-यात्रा थी, जिस पर आगे बढ़ने के लिए महाप्रभु ने स्वयं जन्म-जाति और जन्मभूमि के मोह का त्याग कर प्रान्तीयवाद, सम्प्रदायवाद एवं भाषाओं के बन्धन की जटिल गाँठें छिन्न-भिन्न कर समस्त मानव मात्र के समन्वय का दृढ़ संकल्प लिया था एवं जिस दृढ़ धर्म संकल्प से अपनी धर्मपत्नी महारानी तेजकुँवरि के साथ ही अपनी समस्त अनुयायी सुंदरसाथ को दीक्षित किया था। इसके उपरान्त महाप्रभु अपने धर्मवीरों के उत्साह से ऐसे अनुप्राणित हुए अपने धर्म पथ पर ऐसे आगे बढ़े कि उन्हें अपनी जन्मभूमि के पुनः दर्शन का अवसर नहीं मिला।

महाप्रभु सदा आत्मचिन्तन में लीन रहते थे। इसी आत्मसाधना की तन्मय अवस्था में जो दिव्य बानी स्वयं आविर्भूत होती थी, उसके लिखने का कार्य महाप्रभु के अनुज एवं प्रिय शिष्य श्री उद्धवजी बड़ी निपुणता से दीवारों एवं भोजपत्रों पर किया करते थे। इसके अनन्तर अनेक शिष्यगण उसकी प्रतियाँ तैयार करते थे। जिनका नित्य पठन-पाठन, मनन और चिन्तन ईसवी सन् १६७१-वि. सं. १७२८ स्थान महा मंगलपुरी से प्रारम्भ हुआ था। महाप्रभु की इन महत्त्वपूर्ण यात्राओं का क्रम ईसवी सन् १६८२ विक्रम सं. १७३६ के अन्त तक चला। इसके पश्चात् महाप्रभु अपने सुन्दर साथ के विशाल संघ के साथ छत्रसाल के आमन्त्रण से प्रसन्न हो कर वि.सं. १७३६ माघ शुक्ल नवमी के दिवस पन्ना पधारे और माघ शुक्ल पूर्णिमा के शुभ दिन छत्रसाल भेंट की। छत्रसाल के अनन्य प्रेम एवं उनके आग्रह से पन्ना में ही महाप्रभु ने अपने धर्म का अखण्ड झंडा स्थापित किया और अपने महामहिम परम मोक्ष पीठ की श्री पद्यावती पुरी धाम के पुनीत नाम से प्रतिष्ठा की। इसी पुण्यस्थली में ११ वर्ष निवास कर महाप्रभु ने परम एवं दिव्यतम लीलाएँ कीं। यहीं उन्होंने छत्रसाल का राज्यभिषेक किया, यहीं वे स्वयं महाराजा छत्रसाल के धार्मिक अभियानों में सम्मिलित हुए, जिसके पुण्य प्रताप से महाराज छत्रसाल ने अपने बुन्देलखण्ड को मुग़लों के भय से तो मुक्त किया साथ ही महाप्रभु के आशीर्वाद की छत्र-छाया में अग्रसर होकर उन्होंने औरंगज़ेब के नाम-चीन मंसूबों को धूल में मिलाकर उसकी अत्याचार सम्पन्न शक्ति के तमाम स्रोत शुष्क कर निर्मूल कर दिए। इसी पुण्यस्थली में महाप्रभु की ब्रह्मवाणी का अपूर्व प्रवाह उमड़ा, जिसका क्रम अविरत रूप से ईसवी सन् १६९१ तथा वि. स. १७४८ तक चलता रहा। सबसे अन्तिम वाणी 'मारफत सागर' के रूप में आविर्भूत हुई। इसके अनन्तर दैनिक उपदेश और उसके मनन-चिन्तन का क्रम तो यथावत चालू ही रहा; लेकिन वि. स० १७४८ के पश्चात् श्री मुखवाणी का पुनः अवतरण नहीं हुआ।

श्री मुखवाणी विश्राम के अनन्तर जो दैनिक चर्चा उपदेश एवं प्रश्नोत्तर होते थे, उनका सम्पूर्ण विवरण दैनन्दिनी (वाकया) के रूप में तैयार किया जाता था, जिसका प्रणामी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान हैं। महाप्रभु की समस्त श्री मुखवाणी पृथक् ग्रन्थों में महाप्रभु के समक्ष ही उनकी आज्ञानुसार क्रमबद्ध हो चुकी थी अतएव श्री मुखवाणी का उस समय जो स्वरूप था उसको उसी रूप में महाप्रभु के अन्त के उपरान्त ही श्रावण वदी ४ वि. स. १७५१ एवं ईसवी सन् १६९४ में ही महाप्रभु के सिंहासन पर पधराया गया।

इस प्रकार महाप्रभु के द्वारा आविर्भूत संपूर्ण वाङ्मय सम्प्रदाय में श्री तारतम्य सागर के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ आत्मबोध का परम उत्प्रेरक एवं परम कल्याणकारी होने से 'स्वसंवेद' एवं आध्यात्मिक ज्ञान का अपार सागर होने से कुलजम सरूप कहलाता है। मध्य, युग में भाषा की उत्क्रान्ति के कारण आध्यात्मिक ज्ञान की महान उत्प्रेरक महाप्रभु की यह श्री मुखवाणी 'कुलजम स्वरूप' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।

महाप्रभु के संपूर्ण आध्यात्मिक वाङ्मय का प्रतिपादक यह श्री तारतम्य सागर नामक वृहत, विशाल ग्रंथ परम प्रभु के परम विज्ञानमय स्वरूप का ही प्रतीक होने के कारण सम्प्रदाय में अविरत श्रवण, मनन, चिंतन और निदिध्यासन के रूप में परम उपास्य माना गया है। अतएव सम्प्रदाय के मंदिरों में एवं प्रत्येक प्रणामी सद्ग्रहस्थ एवं विरक्त

जनों के लिए आत्मज्ञानोपलब्धि तथा ब्रह्म ज्ञान के द्वारा पूर्ण ब्रह्म आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र की प्राप्ति का यही परम विज्ञानमय साधन है।

अतएव इस बृहदाकार ग्रन्थ क्रम के अनुसार जिन सत्रह ग्रन्थों का संकलन हुआ है, उनका विवरण नीचे दिया है—

क्रम सं०	ग्रन्थों का नाम	भाषा	प्रकरण	चौपाइयाँ
१	रास	गुजराती	४७	६१३
२	प्रकाश	,,	३७	१०६४
३	षड्रुति	,,	१५	२३०
४	कलस	,,	१२	५०६
५	प्रकाश हिन्दुस्तानी	हिन्दुस्तांनी	३७	११८५
६	कलस हिन्दुस्तानी	,,	२४	७७१
७	सनंध (सनद)	,,	४२	१६६१
८	किरंतन	हिन्दी गुजराती और जाटी	१३३	२१०६
९	खुलासा	हिन्दी-खड़ी	१८	१०२०
१०	खिलवत	,,	१६	१०७४
११	परिक्रमा	,,	४३	२४८१
१२	सागर	,,	१५	११२८
१३	सिनगार	,,	२६	२२११
१४	सिन्धी	सिन्धी	१६	६००
१५	मारफत सागर	हिन्दुस्तानी	१४ (१७)	१०३४
१६	कयामतनामा (छोटा)	,,	२	२१७
१७	कयामतनामा (बड़ा)	,,	२४	५३१
	योग		५२७	१८,७५८

प्रस्तुत विवरण में प्रकाश, ग्रन्थ कलश ग्रंथों की मौलिक रचना गुजराती भाषा में दी हुई थी, परन्तु दिल्ली यात्रा के समय सर्व जनहित की मंगल-भावना से अनुप्राणित होकर वि० सं० १७३५ में अनूप शहर में उपरोक्त दोनों ग्रंथों का रूपान्तर स्वयं महाप्रभु ने हिन्दुस्तानी भाषा में तैयार किया। इससे इन दोनों ग्रंथों के गुजराती एवं हिन्दुस्तानी भाषाओं में दो-दो भाग हो गये। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आधुनिक हेन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दुस्तानी भाषा का जो स्वरूप पाया जाता है, महाप्रभु ने अपने ग्रंथों में हिन्दुस्तानी भाषा का जो प्रयोग ३५० वर्ष पूर्व किया था, वैसा सजीव प्रयोग तत्कालीन ग्रंथों में अन्यत्र प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

इसी प्रकार अन्तिम 'कयामतनामा' नामक ग्रन्थ एक होने पर भी उसमें वणित संदर्भ विषय के कारण (छोटा कयामतनामा एवं बड़ा कयामतनामा) नामक दो भाग गिने गये है। अस्तु, मूल ग्रंथ केवल चौदह ही हैं जिनका एक समन्वित स्वरूप श्रीमत्तारतम सागर है।

इस महान आध्यात्मिक परम विज्ञानमय ग्रंथ के संकलन कर्त्ता परमहस सम्राट महात्मा श्री केशवदासजी ने 'मारफत सागर' की पुष्पिका (मसौदा) में स्वयं लिखा है कि 'जो चौपाई हादी ने फुरमाइ थी, तिनमें एक हरफ जादा वा कम नहीं किए'। इस प्रकार यह वृहदाकार ग्रंथ सहस्रों प्रतिलिपियों में वर्तमान होने पर आज भी अपने मूल स्वरूप को पूर्ववत सुरक्षित रखने में पूर्ण समर्थ है।

ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय :

श्री मत्तारतम सागर—में समन्वित ग्रंथों का अध्ययन एवं उनकी समीक्षा तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ का ही विषय है। यहाँ तो केवल उन ग्रंथों अत्यन्त संक्षिप्त रूप में साधारण परिचय मात्र प्रस्तुत करने का प्रयास है क्योंकि जो इसके नित्य पाठक हैं, वे तो निरन्तर इसके मनन, चिन्तन और परिशीलन में अलौकिक ब्रह्मानन्द की अनुभूति करते ही है। किन्तु परम तत्त्व के अनुरागी जन भी यदि इसके मूल विषय वर्णन शैली एवं प्रतीकात्मक और रूपात्मक भाषा के माध्यम का समुचित बोध कर अध्ययन एवं चिन्तन करे तो उन्हें गूढ़ातिगूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वों के द्वारा उत्पन्न होने वाले ब्रह्मानन्द रसकी अनुभूति सहज ही हो सकती है।

श्री रास ग्रन्थ :

इस परम आध्यात्मिक ग्रन्थ में महाप्रभु-श्री प्राणनाथजी ने ब्रह्मात्माओं को आत्मबोध प्रदान करने के लिए साक्षात्पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम की 'ब्रजलीला एवं रास लीला' के उस मूलभूत रहस्य का उद्‌घाटन किया है, जिसमें पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम की नित्य आनन्द प्रसारिणी ब्रह्मांगनाएं दिव्य ब्रह्मपुर—परम धाम से अक्षरब्रह्म के द्वारा निर्मित नाना सुख-दुःखों से पूर्ण जगत् की अनुभूति के लिए अपने अनन्य प्रेम का प्रण लेकर अष्टविंशति चतुर्युगी के द्वापर में ध्यान रूप से ब्रह्मांगनाओं के रूप में होकर अवतरित हुई थी[१] एवं पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम के नित्य विहार की अनुभूति के हेतु पूर्णब्रह्म के ही बालस्वरूप अक्षरब्रह्म ने अक्षर धाम से अपनी आत्मा पर पूर्ण ब्रह्म का आवेश स्वरूप आरोपित कर द्विभुज स्वारूप गोपवेश में अवतरित होकर नन्द के यहाँ गृहप्रवेश किया था।[२] अतएव ब्रह्मांनाओं के हृदय में जिस अक्षर ब्रह्म के द्वारा निर्मित जगतरूपी सुखदुःखात्मक क्रीड़ा देखने की इच्छा उत्पन्न हुई थी[३] उसकी पूर्ति के हेतु ब्रह्मैश्वर्यपूर्ण ब्रजलीला हुई[४] लेकिन कालमाया (अज्ञानमयी घोर निद्रा) के कारण गहन नींद में देखे हुए स्वप्न की भांति इस लीला के वास्तविक रहस्य की अनुभूति गोपी-वेश में अवतरित ब्रह्मांनाओं को न हो सकी और न अक्षर ब्रह्म ही पूर्णब्रह्म, अभूतपूर्व आनन्द-लीला का रसपान कर सके। इसलिए पूर्णब्रह्म

---

१. जो आज्ञा भई हम पर। तब हम जान्या गोकुल घर।। प्रगटवाणी, १६

२. मूल सुरत अक्षर की जेहे। जिन चाह्या देखों प्रेम सनेह।।
सो सुरत धनी को ले आवेस। नन्द घर कियो प्रवेस।।
दो भुजास्वरूप जो स्याम। आतम अक्षर जोश धनी-धाम।। २१-२३ वही

३. तब सखियों मन उपजी एह। खेल देखें अक्षर का जेह।। वही

४. बालचरित्र लीला जोबन। कै विध सनेह किए सैयन।। वही

पुरुषोत्तम ने योगमाया के द्वारा दिव्यतम 'रास-मण्डल की' रचना की जिसमें अक्षर ब्रह्म की आकांक्षा की पूर्ति के हेतु योग माययिक वृन्दावन में पुनः ब्रह्मधाम के अलौकिक ऐश्वर्य का अवतारण कर रास-मण्डल में अप्राकृत शरीर धारिणी अनन्य प्रेमस्वरूपा ब्रह्मांगनाओं के साथ अनेक प्रकार की रसपूर्ण लीलाओं के द्वारा अक्षर-ब्रह्म को रसानुभूति प्रदान की और उसकी आत्मा में उपरोक्त दोनों ब्रह्मलीलाओं की पावन स्मृति को स्थिर किया। इसी प्रकार ब्रह्मांगनाओं को भी वृन्दावन सम्वाद में विविध लोक एवं वेद मर्यादाओं का महत्त्व बतलाते हुए एवं अन्तर्ध्यान लीलाओं के द्वारा उनकी मूल स्मृति को जाग्रत कर सुख दुःख की अनुभूति कराई। लेकिन इन ब्रह्मानन्दस्वरूपा ब्रह्मांगनाओं में जो राजस एवं सतोगुणी स्वभाव की थीं, उनको तो अक्षर ब्रह्म के इस दुःखात्मक जगत की अनुभति प्राप्त हुई, लेकिन तामस प्रकृति की ब्रह्मांङ्गना अपने प्रेमीधिक्य एवं अपनी मूल स्मृति के कारण इस भवसागर को 'गोवत्सपदवत्' समझ पार कर पूर्ण ब्रह्म की रासलीला में सहज ही सम्मिलित हुई और अनिर्वचनीय ब्रह्मानन्द रस पान कर पुनः अपने दिव्य परमधाम को प्राप्त हो गईं। उन्हें इस जगत के मोहजल की चंचल लहरें स्पर्श भी न कर सकीं। किन्तु उन्हें इस जगत के मिथ्या सुख दुःखों के अनुभव की जो आकांक्षा शेष रह गई थीं, उसकी पूर्ति के हेतु उन्हें पुनः इस ब्रह्माण्ड के कलिकाल में नाना देश, वेष और वर्गों में अवतरित होना पड़ा— यही इस ब्रह्माण्ड रचना का मुख्य कारण है।[५]

इसलिए ब्रह्मांगनाओं की अवतरण लीला के इस तृतीय ब्रह्मांड में पुनः अवतरित ब्रह्मात्माओं को उनके अनन्य-प्रेम का प्रण एवं उनको मूल आत्मबोध प्रदान करने के लिए ही महाप्रभु ने इस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक 'श्री रास' ग्रंथ की अवतारण की है।[६] जिसमें संक्षिप्त रूप से बृज ओर रास की लीलाओं का वर्णन कर पूर्व स्मृति की जाग्रति एवं जगत के मोह अज्ञान में विस्मृत आत्मस्वरूप का ज्ञान कराना ही मुख्य लक्ष्य है, यही इस ग्रंथ की पृष्ठभूमि है।

ग्रन्थ सार – इस ग्रंथ के आरम्भ में ही महाप्रभु ने निर्देश किया है कि यह भवसागर बहुत विशाल है। इसकी भयंकर लहरें चौदह भुवनों तक अपनी घनघोर गर्जन से सकल जीवों को भयभीत करती रहतीं है। इस क्षणिक जगत की माया का रूप बड़ा भयंकर है। यह माया छल से निर्मित अपने नाना रूपों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि ब्रह्माण्डधिपतियों को अपने इशारे पर नचाया करती है।[८] फिर साधारण जीवों का तो क्या कहना! इसलिए महाप्रभु ब्रह्मात्माओं और उनके संघाती सकल जीवों को सम्बोधित करते हैं कि हे अनन्य प्रेम मार्ग के प्रेमी पथिको, पूर्णब्रह्म स्वरूप सद्गुरुदेव के द्वारा

---

५. उमेदां तामसियों रही तिन वेर, सो हम देखन को आइयां फेर।

६. इस ब्रह्मांड को एह कारन।

७. ओलखाय वल्लभ तो, टले माया पास। एटला माटे प्रगट यथो रास।। प्रकाश, प्र० ४

८. ये माया छे अति बलवन्ती। उपनी छे मूल धणी थकी।।
मुनी जनने मनाव्या हार। शिव ब्रह्मादिक नव लहे पार।।
सुक सनकादिक के नवटली। लक्ष्मी नारायनने फरी वली।।
विस्नू वैकुंठ लीधा माँहे। सागर सिखर न मूक्या क्याहें।।
ऐ ऊपर हवे सूं कहूँ। बीजा नाम ते कहेना लेऊँ।।
रास, प्र० १ चौ० ४-६

श्री तारतम ज्ञान का अनन्त प्रकाश प्राप्त कर अपने मूल ब्रह्ममय स्वरूप की पहचान करो, जिससे माया के मिथ्या मोह से दूर होकर प्रेम का वही अनन्य प्रेम मार्ग तुम्हें उपलब्ध होगा, जिसको तुमने बृज और रासलीला के समय अपनाकर शब्द ब्रह्ममय वेणुनाद श्रवण के द्वारा इस दुर्गम भवसागर को गाय के बछड़े के खुर के समान तुच्छ मान पार करते हुए योगमाया के दिव्यातिदिव्य नित्य नूतन शृंगार धारण कर श्री श्यामाश्याम की युगल छवि के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया था। यहीं पूर्ण ब्रह्म ऐश्वर्य से पूर्ण वृन्दावन में अपने अनन्य प्रेम की कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो ब्रह्म के अलौकिक आनन्द रस से पूर्ण रासलीला के अनन्त सुख प्राप्त कर अपने मूल निवास श्री परमधाम को प्राप्त किया था। इसलिए इस तृतीय अवतरण में भी अपने जीवन को सफल बनाने के लिए अपने पूर्व प्रेम के अनन्य मार्ग का स्मरण कर उसी प्रेम के दिव्य पथ पर चल अपने परम प्रियतम सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु और अपने मूल निवास दिव्य ब्रह्मपुर-परमधाम को पुनः प्राप्त करो। यही रास ग्रंथ का मूलतत्त्व है। इस ग्रंथ की भाषा गुजराती है। इस ग्रंथ में वर्णित पद्य विविध राग-रागिनियों में निबद्ध होने के कारण गेय है। इस ग्रंथ में ४७ प्रकरण और ९०७ चौपाइयाँ हैं। किसी किसी प्रति में ९१३ चौपाई भी मिलती है। इस ग्रंथ का आविर्भाव काल वि० सं० १७१४-१५ है।

श्री प्रकाश (गुजराती)—प्रस्तुत ग्रंथ सांसारिक माया के आवरण से ढँकी हुई आत्मा को सावधान कर आत्मा के वास्तविक स्वरूप की पहिचान कराने में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। पूर्ववर्णित रास ग्रंथ के मुख्य विषय ब्रज और रासलीला के अन्तरंग रहस्यों पर प्रकाश डालते हुए ब्रह्मांङ्गनाओं की इच्छा पूर्ति हेतु जो ब्रह्मलीला इस तृतीय ब्रह्माण्ड में अवतरित हुई; उसमें पूर्व वर्णित लीलाओं के आनन्द की प्राप्ति करवा कर आत्मजागृति कराना ही इसकी मुख्य भावभूमि है।

अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ आरम्भ करते हुए महाप्रभु स्वयं श्रीमुख से निर्देश करते हैं। हे ब्रह्मात्माओ ! तुम सब प्रथम बार दिव्य ब्रह्मपुर परम धाम से मायिक जगत के दुःख को देखने आई थी इसलिए ब्रज और रासलीला खेलकर अनन्य प्रेम मार्ग द्वारा पुनः निजधाम को प्राप्त किया था, परतु उस समय दुःखानुभूति की जो चाह शेष रह गई थी, उसकी पूर्ति के हेतु पूर्ण परमेश की अनन्य कृपा से अक्षर ब्रह्म ने अनुप्राणित हो पुनः इस तृतीय ब्रह्माण्ड की रचना की, जिसमें तीसरी बार फिर ये ब्रह्मलीला अवतरित हुई। लेकिन ब्रह्मात्मा परम धाम से बिछुड़कर जगत की मोह माया के अज्ञानजनित नाना बन्धनों में पड़कर जब अपने मूल स्वरूप को भूल बैठी, तब उनको पुनः जाग्रत करने के लिए 'सद्‌गुरु' के माध्यम से स्वयं पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम प्रभु श्री तारतम् ज्ञान रूपी अलौकिक प्रकाश द्वारा उन्हें उसी प्रेम के अनन्य मार्ग पर निरन्तर चलने के लिए बारम्बार उपदेश करते है ; जिस पर चलकर ब्रज एवं रास लीला के समय ब्रह्मांगनाओं ने अपने प्रियतम प्रभु एवं अपने दिव्य ब्रह्मपुर परमधाम को सहज ही प्राप्त कर लिया था। अतएव इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु जिस प्रकार रास के समय प्रभु ने अन्तर्धान होकर गोपी रूप ब्रह्मांङ्गनाओं को जगत के दुःसह दुःखों का ज्ञान कराया था उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में भी अवतरित ब्रह्मात्माओं को आत्मप्रबोध कराने के लिए साक्षात् श्री श्यामा महारानी के अवतार श्री सद्‌गुरु देवचन्द्र जी महाराज श्री तारतम-ज्ञान लेकर स्वयं पधारे। लेकिन कालमाया के समान इस समय भी ब्रह्मात्माओं को माया की नींद ने इतना मदहोश कर दिया कि सद्‌गुरु के बारम्बार सावधान करने पर भी घोर निद्रा

का प्रभाव कम नहीं हुआ।[९] अतएव इस बार भी अन्तर्धान के द्वारा[१०] सदगुरु महाप्रभु प्राणनाथ जी के हृदयधाम में विराजमान हो।,[११] इस तारतम वाणी का दिव्य प्रकाश प्रदान कर आत्माओं को माया के अज्ञानान्धकार से ऊपर उठा परम प्रभु के मिलन पथ पर अग्रसर करते हैं। यही इस ग्रन्थ का संक्षित सार है। इस ग्रन्थ की भाषा सरल गुजराती है मध्य में कुछ प्रकरण जाटी भाषा में हैं। इस ग्रन्थ का आविर्भाव काल वि० स० १७१५ हैं। इसमें ३७ प्रकरण और १०६४ चौपाइयाँ हैं।

षटरुति—करुणा रस से ओतप्रोत आत्मा के आध्यात्मिक विरह मिलन के अलौकिक गीतों से पूर्ण यह ग्रंथ हृदय को द्रवित करने में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। साधारण कवियों द्वारा वर्णित षट्ऋतु वर्णन हृदय को तो प्रभावित करता ही है, लेकिन इस परम आध्यात्मिक ग्रंथ में अपने परम प्रियतम प्रभु से बिछुड़ी हुई आत्मा प्रत्येक ऋतु में अनुभूत पूर्व सुखों की सुखद स्मृति के द्वारा उद्दीपित हो प्रियतम के विरह की प्रचण्ड अग्नि में अपने अवगुणों को भस्म कर कुन्दन की भाँति निर्मल हृदय एवं अनन्त तेज से मण्डित मुखमण्डल को लेकर प्रभु प्रियतम के सन्मुख उपस्थित हो जब कह बैठती है कि हे प्रिय अखण्ड परमधाम में तो तुम्हारे मधुर मिलन के आनन्द का अनुभव सदा करती हूँ; लेकिन इस मायिक जगत में तुम्हारे मिलन का सुख प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए हे प्रियतम, मुझे शीघ्र अपने दर्शन देकर मेरी विरह तपन को शान्त करो। लेकिन इतनी विनय करने पर भी जब प्रियतम को पसीजते न देखा ; तब पुनः सब लोक लाज के बंधन तोड़-फेंक अपने प्रेम में उन्मत हो, बावली-सी बातें करने लगी, जिनकी सरलता, सौम्यता और पावन प्रेम की अनन्यता के वशीभूत हो प्रियतम स्वयं अपना सिंहासन छोड़ कर मिलन के लिए आतुर हो उठते हैं। अतएव इस लघु ग्रंथ के एक-एक शब्द में विरह से विह्वल आत्मा को द्रवित कर देनेवाली वह करुण पुकार है जिससे प्रभु का सिंहासन सहज ही डोल उठता है। वे अपनी बिछुड़ी आत्मा को परम मिलन का अनन्त सुख प्रदान करने के लिए स्वयं विवश हो जाते हैं। इस ग्रंथ के अन्त में बारामासी का वर्णन किय गया है। जिसमें महाप्रभु ने व्रज-रासलीला का इस तृतीय ब्रह्माण्ड की लीला से सामञ्जस्य करने अर्थात् दोनों लीलाओं की एकरूपता प्रतिपादन हेतु सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी का आरोप श्री कृष्ण में कर एवं अपने आपको भी इन्द्रावती के रूप में ढाल अपूर्व विरह किया है। जिसमें श्लेषात्मक रूप से एकपक्ष श्री कृष्ण के साथ गोपी विरह चलता है और दूसरी तरफ़ श्री इन्द्रावती के रूप में हो महाप्रभु सद्गुरु विरह से परम अभिभूत हैं। करुणा रस की चरमावस्था का स्वरूप जैसा इस ग्रंथ में आविर्भूत हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस ग्रंथ की गुजराती अत्यन्त सरल माधुर्य प्रसाद एवं ओज तीनों गुणों से इतनी पूर्ण है कि साधारण पाठक भी इसका अपूर्व आनंद प्राप्त कर सकता है इसका आविर्भाव काल वि० सं० १७१५ है। इसमें १५ प्रकरण और २३० चौपाइयाँ हैं।

कलश गुजराती— यह ग्रन्थ प्रणामी धर्म के दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादक बड़ा ही अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें 'ब्रह्म की खोज, जगत की वास्तविकता का स्वरूप, नाना मत-मतान्तरों का प्राकृतिक विस्तार वेदों की कर्मसाधना, पुरुष प्रकृति के प्रतिपादक सिद्धांतों का शास्त्रीय संघर्ष, अवतारों की मीमांसा, श्रीमद्भागवत का नवनीत, श्रीकृष्ण,

---

९. कै विध कह्या आप आशुं आन। पर या समें हमको सुध न सौंन।। प्रकाश, प्र० ५१३

१०. तब हमसे अदृष्ट भये। प्रकाश, प्र० १० चौ० ८

११. इन्द्रावती पर दयापूरन। हिरदे बैठे कहे बचन।।

की त्रिधालीला और आत्मा की जाग्रति का दिव्य पथ' आदि ऐसे दार्शनिक विषयों का महत्वपूर्ण प्रतिपादन है जो प्रणामी धर्म के सिद्धान्तों पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। इस ग्रन्थ का आरम्भ यद्यपि वि० स० १७१५ में केवल दो चौपाई के रूप में जामनगर श्री नवतनपुरी में हुआ था, परन्तु इसकी समाप्ति वि० सं० १७०८ में सूरत मंगलपुरी में हुई। इसकी भाषा भी गुजराती है। इसकी शैली बड़ी ओजपूर्ण है। इसमें १२ प्रकरण तथा ५०६ चौपाइयाँ है।

प्रकाश (हिन्दुस्तानी):— इस ग्रन्थ का परिचय पूर्व दिया जा चुका है क्योंकि यह उसी ग्रन्थ का ही हिन्दुस्तानी भाषा में अनुवाद है। यह ग्रन्थ आत्म-साधना के हेतु अत्यन्त लोकोपयोगी होने के कारण दिल्ली अभियान के समय अनूप शहर में इस ग्रन्थ की मूल गजराती भाषा से हिन्दुस्तानी भाषा का रूप स्वयं महाप्रभु ने प्रदान किया था। इसका रूपान्तर काल वि० स० १७३५ हैं। इस ग्रन्थ में भाष्य विस्तार के कारण मूल से कुछ अधिक चौपाइयाँ बढ़ गई हैं। इसमें भी ३७ प्रकरण एवं ११८५ चौपाइयाँ है।

कलश (हिन्दुस्तानी)— यह ग्रंथ भी पूर्व उल्लिखित ग्रंथ का हिन्दुस्तानी रूपान्तर है। इसका रूपांतरकाल भी वि० सं० १७३५ स्थान अनूप शहर है। इसमें कुछ प्रकरण विषय विस्तार के कारण अधिक बढ़ गये हैं। अतएव प्रकरणों की संख्या २४ तथा कुल चौपाइयाँ ७७१ है। इन दोनों ग्रन्थों में हिन्दुस्तानी भाषा का बड़ा ही शुद्ध एवं स्पष्ट रूप प्रगट हुआ है।

सनंध (सनद)— यह ग्रंथ महाप्रभु श्री प्रणनाथजी की मौलिक व्याख्याओं के कारण अपना विशेष गौरव रखता है। यह अद्वितीय ग्रंथ तत्कालीन धर्म और राजनीति में क्रान्ति का महान उत्प्रेरक हैं। यह वही ग्रन्थ है, जिसके द्वारा इस्लाम के सुप्रसिद्ध ग्रंथ क़ुरान शरीफ़ के उन तत्त्वों की विशुद्ध व्याख्या दी गयी है, जिनके आधार पर सुलतान औरंगज़ेब अपने अमानवीय अत्याचारों से शक्तिहीन अत्यन्त दीन हिन्दुओं के धर्म का मूलोच्छेदन करने पर तुला हुआ था। अवएव महाप्रभु ने क़ुरानशरीफ़ के उन सिपारों—अध्यायों का भागवत, पुराण, उपनिषद् और शास्त्रों के समकक्ष एक नवीन आध्यात्मिक भाष्य (तपसीर) हिन्दी भाषा में तैयार किया जिनको इस्लाम धर्म के गुमराह क़ाज़ी और मुल्ला अपनी अज्ञानतावश 'मुकैयत' याने 'गोपनीय' कहकर उनके सही अर्थों को अपनी स्वार्थ सिद्धि के कारण पलट चुके थे और शरीयत की दुहाई देकर इस्लाम के नाम पर हिंसात्मक भावनाओं को बढ़ावा देने में ही अपना (सवाब) श्रेय मानते थे। अतएव मध्यकाल में जब कि औरंगज़ेब की हिन्दू धर्म विध्वंसक दुर्नीति अपनी पराकाष्ठा पार कर चुकी थी। हिन्दुओं का मुँह देखना और हिंदी भाषा को कानों से सुनना भी जब सुलतान औरंगज़ेब बहुत बड़ा गुनाह समझता था। ऐसे भीषण संक्रांति काल में भी महाप्रभु श्री प्राणनाथजी ने औरंगज़ेब की राजधानी दिल्ली में ही सुलतान की उस भेदपूर्ण नीति की कड़ी भर्त्सना की, जो धर्म-धर्म की विघातक एवं परस्पर मानव-मानव में फूट पैदा करनेवाली थी। यहाँ तक कि उन्होंने अपने इस ग्रंथ के द्वारा क़ुरान की वारसी (उत्तराधिकार) उनसे छीन कर अपने आपको क़ुरान द्वारा सप्रमाण इमाम मेंहदी का अवतार घोषित कर पूर्ण इमामत का दावा सुलतान औरंगज़ेब के दरबारे आम में दाख़िल किया। इसके साथ ही साथ औरंगज़ेब की क्रूर तानाशाही के समक्ष इसी ग्रंथ के बल पर सत्य धर्म का रहस्य प्रतिपादन कर सन्मार्ग पर लाने के कई प्रयास किए। इस ग्रंथ के चुने हुए प्रकरणों को महाप्रभु के धर्मवीर शिष्यों ने सिर में क़फ़न बाँध कर औरंगज़ेब और उसके अत्यन्त

समीपस्थ अमीर-उमराव और उसके क्रूर शासन अधिकारियों को अपनी बुलंद आवाज़ों से बार-बार सुनाने के प्रयत्न इसलिए किये जिससे 'इस्लाम परस्तों' को धर्मों का सच्चा प्रकाश मिले और दुनिया में अमन कायम हो। अतएव प्रस्तुत ग्रंथ तत्कालीन धार्मिक नीति का एक ज्वलंत प्रतीक है। इस ग्रंथ में वर्णित विषय जहाँ दोनों धर्मो के बीच प्रचलित मिथ्या आडम्बर का खण्डन करता है, वहाँ धर्म-धर्म के बीच उत्पन्न होनेवाले विषमवाद को नेस्त नाबूद कर धार्मिक भावना के बीच आध्यात्मिक सामंजस्य के पवित्र सोपान का भी निर्माण करता है। क़ुरान के अनेक विषयों से सम्बधित होने के कारण एवं औरंगज़ेब की शासकीय राजभाषा उर्दू और फ़ारसी होने के कारण इस ग्रंथ की भाषा स्वाभाविक रूप से हिन्दुस्तानी है जिसमें उर्दू, फ़ारसी और अरबी के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। एक दो प्रकरण तो शुद्ध अरबी भाषा में दिये हैं जिनका भाष्य हिन्दी भाषा में किया गया है। इस ग्रन्थ में ४५ प्रकरण एवं १६६१ चौपाइयाँ हैं। इसका आविर्भाव काल वि० सं० १७३५ स्थान अनूप शहर है।[१२]

कीर्तन— इस ग्रंथ की मुक्तक वाणी महाप्रभुकी सम्पूर्ण यात्रा के विभिन्न प्रसंगों पर अवतरित हुई। जिसमें सामयिक सदुपदेश, विभिन्न मतवादी एवं धर्माचार्यों के साथ होनेवाले सैद्धान्तिक विचार-विमर्श, पौराणिक मतों का स्पष्टीकरण एवं वेदान्त के ब्रह्म सम्बन्धी जटिल प्रश्नों का सरल प्रतिपादन है। इस ग्रंथ में संकलित दार्शनिक पद विभिन्न विषयों के प्रतिपादक होने पर भी आत्मा को दिव्य प्रकाश प्रदान करते हैं एवं ब्रह्म प्राप्ति के अनन्य प्रेम मार्ग को प्रशस्त करते हैं। इसमें वेदांत और पुराणों से सम्बन्धित कीर्तन पद अत्यन्त ही प्रभावशाली हैं। जिनमें शास्त्रीय तत्त्वों के आध्यात्मिक रहस्यों का स्पष्टीकरण बड़ी सरलता से किया गया है। हिन्दू सम्प्रदायों मै फैली कुरीतियाँ एवं विषमताओं को दूर करने का उपाय और हिन्दू संगठन के लिये आह्वान जिस प्रकार क़ुरान के मतानुसार सनंध में महाप्रभु ने अपने आपको आख़िरी इमाम मेंहदी घोषित किया उसी प्रकार किरंतन में शास्त्रों के अनुसार अपने आपको विजयाभिनंद निष्कलंक बुध भी घोषित किया। इस ग्रंथ की भाषा हिन्दी, ब्रज, गुजराती और जाटी है। अधिकांश में हिन्दी और गुजराती भाषा के पदों का बाहुल्य है। इस ग्रंथ में कुल प्रकरण १३३ और चौपाइयाँ (२१०३) हैं। इसका आविर्भाव काल वि० सं० १७२२ से लेकर वि० सं० १७४८ तक माना गया है।

श्री खुलासा— महाप्रभु श्री प्राणनाथ जी ने जिस प्रकार अपने पूर्व ग्रन्थों में ब्रह्म, माया, जीव का विवेचन कर ब्रह्मैश्वर्य ब्रह्मधाम की अनन्त, माया की प्रचण्डता जीवों के त्रिविध भेद एवं आचरण का शास्त्रीय शैली से प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार अवैदिक ग्रंथ कुरान आदि में जिस शैली से उपरोक्त विषयों का उल्लेख किया गया है उनका परस्पर समन्वय इस ग्रंथ में बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया। इसका उद्देश्य केवल यही था कि महाप्रभु तत्कालीन नाना मतवाद की दीवार को तोड़कर एकेश्वरवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा कर धर्म-धर्म एवं मानव-मानव के बीच उत्पन्न विषमता को समाप्त कर समस्त धर्मों के बीच एकता की स्थापना करना चाहते थे। अतएव यह ग्रंथ वैदिक एवं अवैदिक ग्रंथों में भाषा भेद के घेरे को छिन्न-भिन्न कर सैद्धांतिक तत्त्वों में सामंजस्य की मंगल भावना का महान उत्प्रेरक है। इस ग्रंथ की भाषा खड़ी हिन्दी है, जिसमें उर्दू

---

१२ इस ग्रन्थ का नाम सनद है ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। श्री नवरंग स्वामी ने इसी ग्रन्थ को षषम वेद माना है, जिसका अर्थ छठा वेद होता है और जिसे स्वसंवेद भी कहा जाता है।

का पुट है। इसका आविर्भाव काल वि सं १७४० स्थान श्री पद्मावतीपुरी धाम पन्ना है।

खिलवत— इस क्षभंगुर जगत् में अवतरित होकर ब्रह्मात्मा जगत् के झूठे मोहजाल में उलझ कर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाती है साथ ही अपने परम प्रियतम प्रभु के अनन्त धाम, तेज और उसके परम ऐश्वर्य को भी भूल बैठती है। इसलिए जब तक वह अपने मिथ्या 'अहं' —अभिमान को त्याग कर विनम्रता और ग़रीबी नहीं धारण करती; तब तक उसे परम प्राणेश्वर प्राण वल्लभ के अनन्त मिलन का मधुर सुख प्राप्त नहीं हो पाता क्योंकि जहां द्वैत-भिन्नता का भाव रहता है वहाँ एक रूपात्मकता से प्राप्त होनेवाले असीम आनन्द की मधुर अनुभूति कैसे प्राप्त हो सकती है ? इसलिए जब हृदय में श्री तारतम-ज्ञान का दिव्य प्रकाश उदय होता है, तब अंतर में अनन्य प्रेम के सागर की लहरें अपने प्रियतम प्रभु से मिलन के लिए एवं प्रभु की आनन्द पूर्ण भूमिकाओं में विहार करने के लिए स्वतः ज्वार लेकर उछलने लगती हैं। जिससे आत्मा अपने लौकिक एवं अलौकिक अहं-भावों से शुद्ध बुद्ध हो जब अपने उस अहंपने के हठ का स्मरण करती है, जिस हठ की प्रचंण्डता से प्रेरित होकर उसे अखण्ड परमधाम से पृथक इस नश्वर जगत् में अवतरित होना पड़ा तब वह अपनी महान भूल स्वीकार कर लज्जित होती है एवं परम प्रभु की करुणा और प्रेम के सागर को जब तरंगित देखती है तब उसमें उन्मुक्त विहार करने के लिए अपने आपको उसमें लीन कर देती है। यही इस ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय है। यह ब्रह्म एवं उसके ऐश्वर्य का परम उद्‌बोधक है। इस ग्रंथ में १६ प्रकरण और १०७४ चौपाइयाँ हैं। इसकी भाषा खड़ी हिन्दी है। इसका आविर्भाव काल वि० सं० १७४०-४१ श्री पद्मावती पुरी पन्ना है।

परिकरमा — अनन्य प्रेम के मार्ग द्वारा चिन्तन से आत्मा को जिस पूर्णात्पूर्ण परब्रह्म परमात्मा एवं उसके परमधाम की प्राप्ति होती है, उस पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म का असीम वैभव और उसके ब्रह्मधाम की अनन्त चिन्मय नूरानी भूमिकाओं, अनन्त सरोवरों, अनन्त वनों-उपवनों; अनन्त कुंज-निकुजों, अपूर्व प्रवाह से पूर्ण जमुनाजी; विपुल मणि माणिक्यादि रत्नों की दिव्य ज्योतियों से जगमगाते महल-मंदिर उज्ज्वल शिखरों से शोभायमान पर्वत, हरी-भरी द्रुमालि, विविध ज्योतियों से चमचमाते पत्र-दल, रंग-रंग की सौरभमयी पुष्पावलि, पशु-पक्षी और अनंत ऐश्वर्य से पूर्ण असीम दिव्य चरित्रों का अलौकिक वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है जिसका सदैव मनन-चिंतन एवं पुनः पुनः ध्यान कर आत्मा को परम आनंद की अनुभूति होती है और यही परम पावन अनुभूति जाग्रत करना ही इस ग्रंथ का मुख्य लक्ष्य है। इस ग्रंथ में परमधाम की सात परिक्रमाओं का वर्णन किया गया है। इसीलिये इस ग्रन्थ का नाम भी परिकरमा है। इसकी भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। इसमें ४३ प्रकरण तथा चौपाइयाँ २४८१ हैं। इसका आविर्भाव काल भी वि० सं० १७४४-४५ और लेखन स्थान श्री पद्मावतीपुरी, पन्ना है।

सागर—प्रस्तुत ग्रंथ में आठ प्रकार के सागरों के रूपक में श्री पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द श्री राजश्यामाजी के अप्राकृत गुणों नूर, नीर, क्षीर, दधि घृत, मधु, रस, सर्वरस के श्री राजश्यामा जी के रूप में तेज, आर्द्रता, एकात्म सौंदर्य, प्रेम, ज्ञान, सम्बन्ध एवं दया के लहराते तरंगित सागर हैं। उनकी असीमता का वर्णन करते हुए ब्रह्म और ब्रह्म धाम की सामग्री की अलौकिक दिव्यता दर्शाई गई है। पूर्ण पुरुषोत्तम युगल स्वरूप के दिव्य शृंगार का वर्णन आत्म विस्मृत आत्मा को बारम्बार सचेत कर उस ओर आकर्षित करता

है, जिस ओर परब्रह्म स्वामी के प्रेम का सागर, दया का सागर आत्मा को आत्मसात करने के लिए तरंगित हो रहा है। यही इस ग्रन्थ का सार अल्प परिचय है। इसकी भाषा खड़ी बोली है। इसमें १५ प्रकरण और ११२८ चौपाइयाँ हैं। इसका आविर्भाव काल वि० सं० १७४४-४५ और लेखन-स्थान श्री पद्मावती पुरी धाम है।

सिनगार — आत्मा को जाग्रत अवस्था में खड़ा कर उसके समक्ष पूर्णपुरुषोत्तम सच्चिदानन्द श्री राजजी का नख-शिखान्त शृंगार एवं अंग और उपांगों का पृथक्-पृथक् सौन्दर्य, उनकी बेशुमार खूबियाँ वस्त्रालंकारों की दिव्यता का विभिन्न रूपों में वर्णन इसलिए किया गया है कि जिससे आत्मा अपने परम प्रियतम के दिव्यातिदिव्य स्वरूप का दर्शन कर विरहाग्नि में कुन्दन की भाँति अपने को शुद्ध कर अपने हृदयधाम के सिंहासन पर स्वामी को पधराने में समर्थ हो सके।

इस ग्रन्थ की भाषा खड़ी बोली है। इसमें प्रकरण ३० एवं २२ १० चौपाइयाँ है। इसका आविर्भाव काल वि० सं० १७४५ और लेखन स्थान श्री पद्मावतीपुरी धाम है।

सिन्धी— इस जगत के नाना रूपों में, नाना वेषों में अनेक जाति और वर्णों में जन्म धारण कर नाना प्रकार के सांसारिक दुराग्रह दुःखों की अनुभूति के बाद आत्मा जब सद्गुरुदेव की अनन्य कृपा से प्राप्त तारतम ज्ञान के द्वारा अपनी भूल का अहसास करके परम प्रभु के दरबार में उपस्थित होती है तब वह अत्यन्त विह्वल होकर प्रियतम की कचहरी से इस बात का निर्णय चाहती है कि हे प्रभो ! वास्तव में मुझसे जो भूलें हुई, जिनके कारण मुझे नाना प्रकार के दुःखों को भोगना पड़ा उसका सम्पूर्ण दायित्व हमारे ऊपर नहीं है। हम तो आपकी ही आज्ञा के वशीभूत है। क्योंकि लोकेषणाओं के वशीभूत हो अनेक सांसारिक दुःखों के मार्गों पर भटकनेवाली आत्मा के ऊपर जब आपकी कृपा दृष्टि होती है, तब मायिक अज्ञान का मद चूर होते क्षण की देर नहीं लगती।

लेकिन अन्त में आत्मा अपने अहं से निर्मुक्त होकर यह स्वीकार कर लेती है कि वास्तव में ये सब भूलें उसी की तो हैं, जिनके मोहिक जाल में फँसकर वह स्वयं को भुला बैठी है। प्रभु तो परम कृपालु है। वे किसी भी दशा में अपने प्रिय अनुरागी जनों को अपने से पल भर के लिए भी अलग नहीं करते। इस प्रकार विरह और अनन्य प्रेम की सर्वोच्च भावना के दर्शन जिस प्रकार इस ग्रंथ में होते हैं, वे अनुपमेय हैं। इस ग्रन्थ की 'भाषा सिन्धी' है। सिन्धी भाषा महामति प्राणनाथजी की मातृमाषा थी। अतएव उन्होंने सिन्धी भाषा में जो अपनी आध्यात्मिक विरह व्यथा का चित्र उपस्थित किया है उसका उद्देश्य जगत् के मोहजाल में पड़ी उसकी असंख्य आत्माओं को जाग्रत करना है। महाप्रभु ने अपने आपको भी सिन्धी नाम से सम्बोधित किया है। इसलिए इस ग्रन्थ का नाम सिन्धी बहुत सार्थक बन पड़ा है। इसमें प्रकरण १६ और ६०१ चौपाइयाँ है। वि. सं० १७४५ इसका आविर्भाव काल है और लेखन-स्थान श्री पद्मावतीपुरी धाम है।

मारफत सागर-यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ शरियत के बन्धनों से जकड़े हुए क़ुरान के धार्मिक सिद्धान्तों का आध्यात्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। क़ुरान शरीफ़ में आखिरी ज़माने के सूचक सात निशानों का उल्लेख आया है जो मगरब सूरज, आजूज आजूज, दाभ तुल अर्ज, गधा, बड़ा दज्जाल और झण्डा, क़ब्रों से मुर्दों का उठना के नामसे मशहूर हैं। लेकिन शरीयतपरस्त लोग इनके उस अर्थको समझने में समर्थ नहीं हो पाते जिसके सन्दर्भ में इन सातों निशानों का उल्लेख किया है। अतएव इन निशानों की जो आध्यात्मिक व्याख्या है उसी का प्रतिपादन कर वैदिक ग्रंथों में वर्णित अंतिम युग के प्रसंगों से संगति और धर्म

की विभिन्नता में समन्वय की उच्च भावना उत्पन्न करना इस ग्रंथ का प्रधान उद्देश्य है। इसकी भाषा उर्दू का पुट लिए हुए खड़ी बोली है। इसमें १४ प्रकरण और १०३४ चौपाइयाँ हैं। इसका आविर्भाव काल वि० स० १७४८ और लेखन- स्थान श्री पद्मावतीपुरी है।

कयामतनामा (छोटा)—इस ग्रंथ में जीवों के भेद उन के लक्षण एवं उनकी आत्म-जागृति के आध्यात्मिक उपायों का उल्लेख है इस लघु ग्रंथ में २ प्रकरण हैं और २०७ चौपाइयाँ हैं। किसी प्रति में २१७ चौपाइयाँ मिलती हैं इसकी भाषा उर्दू मिश्रित खड़ी बोली है। इसका अवतरण काल वि० सं० १७४३ और लेखन-स्थान चित्रकूट है।

कयामतनामा (बड़ा)—महाप्रभु श्री प्राणनाथजी ने हरिद्वार में सर्व धर्म परिषद् का आयोजन कर समस्त धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों का मंथन करते हुए जिस प्रकार शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रमाणानुसार अपने आपको विजयाभिनन्द निष्कलंक बुधावतार के रूप में घोषित कर अपने धार्मिक सिद्धान्तों की सार्वभौमिक विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार उन्होंने सुलतान औरंगज़ेब के दरबारे-आम में क़ुरानशरीफ़ के प्रमाणों के अनुसार अपने आपको आख़िरी इमाम मेंहदी के नाम से जो इमामत के दावे पेश किये थे, प्रस्तुत ग्रंथ में उन दोनों घोषणाओं का समर्थन वैदिक एवं इस्लामी ग्रंथों के आधार पर बड़े ही ओजपूर्ण ढंग से किया गया है। इसमें इमामत के लक्षणों का उल्लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। दस दोज़खों का विवरण देते हुए जीवात्मा ब्रह्मज्ञान के द्वारा अपने आचरण के अनुसार आठ प्रकार की मुक्ति के द्वारों से जीवन मुक्ति प्राप्त कर सकती है, यही क़यामत का सही अर्थ है। इस ग्रंथ की भाषा भी उर्दू मिश्रित खड़ी बोली है। इसका अवतरण काल वि० सं० १७४३ स्थान चित्रकूट है। इसमें कुल प्रकरण २४ तथा ५३१ चौपाइयाँ हैं।

इस प्रकार महाप्रभु श्री प्राणनाथजी द्वारा आविर्भूत यह सम्पूर्ण वाङ्मय मूल चौदह ग्रंथों का समन्वित स्वरूप होने से श्रीमत्तारतम सागर, श्री मुखवाणी और श्री कुलजम स्वरूप के नाम से प्रसिद्ध है इसके प्रकरणों का महायोग ५२७ तथा चौपाइयों का महायोग १८, ७५८ है। महाप्रभु ने अपने दिव्य वाङ्मय का प्रकाश संसार के जीवों को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिए ही किया था जिसे उन्होंने मानव कल्याण की सिद्धि का सर्वोत्कृष्ट साधन माना है। अतएव जनकल्याण की भावना से प्रभावित हो उन्होंने अपने उपदेश जनता की सीधी-सादी सरल भाषा में प्रदान किए। क्योंकि उनके उपदेश केवल उपदेश के ही लिए न थे अपितु उनको अपने आचरण के द्वारा जीवन में उतरवाना, यह उनका मुख्य लक्ष्य हुआ करता था।

भाषा पर एक दृष्टि— महाप्रभु जी भाषा के प्रति बहुत ही सावधान थे। क्योंकि वे अपने जन कल्याणकारी उपदेशों को पहेली नहीं बनाना चाहते थे। प्रसाद गुण से संयुक्त सरल भाषा के द्वारा वे मानव हृदय मात्र को अनुप्राणित करना चाहते थे। उन्होंने आरम्भ में अपनी प्रान्तीय भाषा गुजराती को अपनाया, लेकिन वे जब अपने धर्म का प्रचार करते हुए उत्तर भारत में आये, तब उन्होंने ऐसी भाषा को आदर्श रूप में स्वीकार किया, जिस भाषा को औरंगज़ेब जैसा मज़हबपरस्त सुलतान कानों से सुनना भी मज़हबी गुनाह समझता था। वह भाषा थी हिन्दी हिन्दवी, जिसे महामति ने ३५० वर्ष पूर्व ही अपने आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति प्रदान कर उसे वह गौरव प्रदान किया था, जिसके फलस्वरूप ही वह आज राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर विराजमान हो सकी। यद्यपि उनकी वाणी में गुजराती, सिन्धी, संस्कृत, जाटी, अर्बी, और फ़ारसी आदि विविध भाषाएँ देश कालानुसार स्थान पा चुकी थीं, लेकिन हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में उनके विचार अत्यन्त

उदार एवं मौलिक थे। उन्होंने स्वयं श्री मुख से कहा है—

सबको प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख।
अब मैं कहूँ भाषा किनकी, यामें तो भाषा कै लाख।।
बोली जुदी सबन की, और सबका जुदा चलन।
सब उरझे नाम जुदे धर, पर मेरे तो कहना सबन।।
हिन्दू कहें हम उत्तम, मुसलमान कहें हम पाक।
ये दोऊ मुट्ठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक।।

इसलिए महाप्रभु ने भाषा के व्यामोह में न पड़कर मध्ययुग में भी हिन्दवी की या हिन्दुस्तानी के नाम से हिन्दी भाषा का पूर्ण समर्थन किया। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की—

बिना हिसाबें बोलियाँ, मिने सकल जहान।
सबको सुगम जानके, कहूँगी हिन्दुस्तान।।
बड़ी भाषा ये ही भली, जो सबमें जाहेर।
करने पाक सबन को, अन्तर माँहे बाहेर।।

इस प्रकार महाप्रभु ने हिन्दी भाषा को जो राष्ट्रीय रूप प्रदान किया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

तथापि महाप्रभु की वाणी को समझने में साधारण पाठक को जो कठिनाई होती है उसका मुख्य कारण मध्य युग से प्रभावित हिन्दुस्तानी भाषा का यह प्रतीकात्मक तथा रूपात्मक रूप है। जिसमें धर्म समन्वय की भावना से महामति ने अपने लिए तथा अपने धर्म अनुयायियों के लिए उन शब्दों का भी प्रयोग किया है जो इस्लाम धर्म में भी अधिक प्रचलित हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने लिए कई प्रसंगों में हक़, इमाम, मेंहदी, महबूब आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग किया उन्होंने अपने धर्म को कई प्रसंगों में 'दीन इस्लाम' से भी सम्बोधित किया है। अपने अनुयायियों को मोमिन, आत्मा को रूह आदि ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे आरम्भिक पाठक कभी-कभी अतएव इन समस्त अंगों पर सतर्क रहकर कोई भी पाठक महामति के सभी दृष्टिबिन्दुओं का सही मूल्यांकन कर उसके वास्तविक महत्त्व को अपने हृदय में उतार सकता है। यह हर्ष और गौरव का विषय है कि महामति की वाणी रचनाओं को हिन्दी एवं अंग्रेज़ी में प्रामाणिक अर्थ, व्याख्या और टिप्पणियों के साथ कम मूल्य पर पाठकों के लिए प्रस्तुत एवं सुलभ कराया है।



प्रकाश ग्रंथ में जागनी लीला

डा. कमला शर्मा
१४८ / जी २३ सैक्टर ७ रोहिणी,
नयी दिल्ली, ११००८५

महामति प्राणनाथ ने सृष्टि की रचना का मूल कारण यह बताया है कि परब्रह्म परमात्मा ब्रह्मात्माओं को सुख-दुख के मिश्रित अनुभव कराना चाहते थे। जगत में ब्रह्मात्माओं का तीन बार अवतरण हुआ। ब्रज लीला के समय गोकुल गाँव में गोपियों के रूप में ब्रह्मात्माओं का अपने प्रियतम श्याम सुंदर से अनजाने से सहज स्नेह था। रास लीला में वृन्दावन के चिन्मय ब्रह्माण्ड में आत्माओं और परमात्मा के अद्वैत सम्बंध का आनंद था। जागनी के इस ब्रह्माण्ड में दुख और अज्ञान के गहन अंधकार में ब्रह्मात्माओं ने तारतम ज्ञान के प्रकाश में प्रियतम को पहचाना। इसी जगत में पुनः ब्रज रास और परमधाम के अखण्ड आनन्द का अनुभव किया।

जागनी लीला इसी ब्रह्माण्ड की लीला है। ब्रजलीला मानो नींद में स्वप्न की भाँति खेली गई लीला है, अर्थात् तन्द्रिल अवस्था है और जागनी लीला पूर्णतः जागृत होकर परमात्मा के साथ आत्माओं का नित्य विहार का आनंद लेना है। जागनी लीला में तीनों लीलाओं—ब्रज, रास और जागनी एवं परमधाम का आनंद प्राप्त होता है। महामति प्राणनाथ इसे पूर्णतः आत्म जागृति की स्थिति मानते है। रासलीला के उपरान्त ब्रह्मात्माएँ परमधाम से गोपियों के रूप में (आवेश द्वारा) जगत लीला देख रही थीं। वे सबकी सब अपने आवेश को गोपियों से हटाकर निजधाम लौट आई। इसके पश्चात् उन्हें लीला दिखानेवाले श्रीराज जी ने भी अपने आवेश को श्रीकृष्ण के स्वरूप से हटा लिया। परमधाम लौटने पर परब्रह्म परमात्मा ने देखा कि इनकी दुख देखने की अभिलाषा अभी भी शेष है, तो उन्होंने ब्रह्मात्माओं की सुरत को पुनः सांसारिक जीवों में उतार दिया।

ऐसा ही चिन्तन लेकर सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी का मारवाड़ के उमरकोट गाँव में अवतरण हुआ। उनके भीतर सात्विक प्रवृत्ति की आत्मा 'सुन्दरबाई' का आवेश था—

रास खेलते उमेदाँ रहिया तित। सो ब्रह्मसृष्ट सब आईयाँ इत।
यामें सुरत आइ स्यामाजी की सार। मतू मेहता घर अवतार।।
कुँवरबाई माता को नाम। उतम काइथ उमरकोट गाम।।
आए श्री देवचंद्र जी नौतनपुरी। सुख सबों को देने देह धरी।।

प्रकाश हिन्दु०, ३७/६०, ६१

उन्होंने ब्रह्मात्माओं को अखण्ड आनंद देने के लिए शरीर धारण किया। उमरकोट, भोजनगर, कच्छ आदि में आने वाले साधु-संतों के साथ बैठकर परब्रह्म परमात्मा की

खोज की। उन्होंने अनेक शास्त्रों एवं मत-मतान्तरों में गहरे पैठकर कठिन साधनाएँ की। जामनगर पहुँचकर चौदह वर्षों तक श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण की और उसके सारगर्भित वचनों को आत्मसात किया। ब्रह्मसृष्टि को जगाने के लिए श्री देवचन्द्र जी ने वर्षों तक निरन्तर व्रत, तप, जाप, नियम, संयम किए तथा मन प्राणों से साधु-संतों की सेवा की—

चौदे बरस लों नेष्ठा बंध। वचन ग्रहे सारी सनंध।।
कै जप तप किए व्रत नेम। सेवा सरुप सनेह अति प्रेम।।
कै कसनी कसी अति अंग। प्रेम सेवा में ना कियो भंग।।
कै कसौटी करी दुलहिन। सो कारन हम सब सैयन।।

प्रकाश हिन्दु., ३७/६३, ६४

परब्रह्म की अंगना आनंद अंग श्यामा ने उनके कलेवर में स्वयं को कई कसौटियाँ पर कसा और परखा। पूर्ण प्रेम और सेवा से अपने प्रियतम परमात्मा को प्रसन्न किया। परब्रह्म परमात्मा ने उन्हें तीन बार दर्शन दिए तथा तारतम ज्ञान देकर उनकी आत्मदृष्टि खोल दी। परमधाम की चर्चा करते हुए उनकी आत्मा का स्वरूप बताया और निजनाम 'श्रीकृष्ण' कहकर अपना परिचय दिया। परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण ने श्री देवचन्द्र जी की परात्मा का नाम 'सुंदरबाई' बताकर उनको परम धाम के दर्शन कराए तथा उनकी अन्तर आत्मा में विराजमान हुए। परब्रह्म परमात्मा ने अपना आवेश देकर परमधाम के द्वार खोल दिए। चौदह लोकों से परे शून्य निराकार के पार अक्षरब्रह्म से भी आगे अक्षरातीत ब्रह्म की लीला दिखा दी। परमधाम की अद्वैत लीला, नित्य बैकुण्ठ अक्षरधाम की अखण्ड लीला, ब्रज एवं रास की चिन्मय लीला के सभी लोक निजानन्द स्वामी के हृदय पटल पर अंकित हो गए। उनकी आत्मा में नित्य नए अनुभव होने लगे—

दियो जोस खोले दरबार। देखाया सुँन के पार के पार।।
ब्रह्म सृष्ट मिने सुंदरबाई। ताको धनी जी ऐं दई बड़ाई।।
श्री धाम लीला बैकुंठ अखंड। ब्रज रास लीला दोऊ ब्रह्मांड ।।
ए सब हिरदे में चढ़ आए। ज्यों आतम अनभव होत सदाए।।

प्रकाश हिन्दु० ३७/६७, ६६

महामति प्राणनाथ के अनुसार इस रहस्यमयी लीला के विषय में ब्रह्मात्माओं के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। ब्रह्मात्माएँ अपने प्रियतम परमात्मा से कभी अलग नहीं हो सकतीं। परमधाम की इस अलौकिक निधि को ब्रह्मस्वरूपा आत्माएँ ही इस संसार में लायी हैं।

जब निजानंद स्वामी ने उस चिन्मय अविनाशी लीला की बात कही तो जनसाधारण ने उस पर विश्वास नहीं किया। उन्हीं के एक शिष्य गांग जी भाई ने उनकी बातों को दत्तचित्त होकर हृदयगंम किया और कई प्रश्न पूछे। जब श्री देवचंद्रजी ने क्षर अक्षर से पार परमधाम की बात कही तो गांगजी भाई ने सद्गुरु में प्रकट परमात्मा को पहचान लिया। उन्होंने गांगजी भाई को बताया कि परब्रह्म परमात्मा ने मुझे अपनी अंगरूपा आत्माओं को खोज निकालने और उन्हें जागृत करने का दायित्व सौंपा है। वे इस मायावी संसार की लीला को देखने आई ब्रह्मात्माओं को ले जाने आए हैं—

तब श्रीमुख वचन कहे प्राणनाथ। ढूँढ काढना अपना साथ।।
माया मिने आई सृष्ट ब्रह्म। सो बुलावन आए हम।।

प्रकाश हिन्दु०., ३७/७६

तब गांगजी भाई ने प्रश्न किया कि आपको ब्रह्मात्माएँ कहाँ और कैसे मिलेंगी। मायावी जगत का आकर्षण तथा भवसागर का प्रवाह इतना प्रबल है कि साधारणतः जीव माया के वश होकर अपना स्वरूप भूल जाते हैं। इस विशाल मोह सागर में मेरु पर्वत के सामान ऊँची लहरें उठा करती हैं। इन आकर्षणों की लहरों के ऊपर मन के विकारों की लहरें प्रहार करती हैं। इनमें फँसी आत्मा को वे भँवरों में फँसा देती हैं। ऊँची, तिरछी आड़ी टेढ़ी तूफ़ानी लहरों के बीच अपने ही काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार, राग-विकारों एवं ईर्ष्या, डाह, वैर वैमनस्य, हिंसा आदि के अजेय भयंकर जीव-जन्तु संसार में उसे मृत्यु की ओर घसीटते हैं। निपट दुख के इस महासागर का कोई किनारा नहीं मिलता। इसमें पैठ जाने पर कुछ भी नहीं सूझता। इस घोर गहन अज्ञान अंधकार भरे विश्व से आत्मा का निकलना नहीं हो पाता।

आड़े टेढ़े माहें बेहेवट। विक्राल जीव माहें विकट।।
दुख रूपी सागर निपट। किनार बेट न काहूँ निकट।।
ऊँचा नीचा गेहरा गिरदवाए। कठन समया इत पोहोंचा आए।।
हाथ ना सूझे सिर ना पाए। इन अँधेरी से निकस्या ना जाए।।

प्रकाश हिन्दु० ३७/८०, ८१

जगत जीवों के बारे में क्या कहें, जबकि ब्रह्मात्माओं को ही माया का ऐसा उन्माद चढ़ा है कि वे स्वयं के स्वरूप और मूलघर परम धाम को भी भूल चुकी हैं। श्री देवचन्द्र जी ने कहा कि साथी आत्माओं को जाग्रत और प्रेरित करने के लिए स्वयं श्री कृष्ण प्रकट होंगे और चारों ओर ज्ञान का प्रकाश फैलाएँगे—जिन आत्माओं को प्रियतम परमात्मा के दर्शन होंगे वे दूसरों को भी प्रियतम का साक्षात्कार करा सकेंगी। अखण्ड परमधाम का वर्णन करनेवाली ब्रह्मवाणी से शास्त्रों के रहस्य प्रकट होंगे। तब उन संकेतों को स्पष्ट प्रत्यक्ष होते देखकर ब्रह्मात्माएँ जागृत होंगी। 'आड़िका' अथवा रहस्यमयी लीला का आकर्षण आत्माओं को एकत्र कर देगा, परन्तु जागृत न कर सकेगा। परमधाम की वास्तविक निधि तो तारतम ज्ञान है। तारतम ज्ञान से आत्मा के स्वरूप और परमात्मा से अपने सम्बंध की पहचान होती है और परमधाम के सभी संकेत स्मृति में उभर आते हैं।

महामति प्राणनाथ कहते हैं कि इस प्रकार इस संसार में तारतम ज्ञान का प्रकाश आया। सद्गुरु ने परमधाम की आत्माओं में मेरी आत्मा का नाम 'इन्द्रावती' परखा और मुझपर निजानंद स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। परमधाम के मूल वचनों की निधि प्रदान करते हुए तारतम ज्ञान की सूझ दी। उन्होंने बताया कि आज तक आदि ज्ञान ग्रंथों के रहस्य एवं परमधाम का प्रवेश द्वार किसी ने नहीं खोला। उन्हें खोलने की तारतम ज्ञान रूपी कुंजी दी और कहा कि ब्रह्मात्माओं को परब्रह्म परमात्मा की सुधि भी नहीं रही है। नश्वर जगत के पार अविनाशी यथार्थ सत्ता है और उससे भी परे निजघर परमधाम है। इसकी सत्यता को जगत के जीव भला कैसे समझ पाएँगे। सत्, रज और तम के प्रतीक देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी माया मोह और अहंकार से युक्त है, तो साधारण जीव इससे कैसे बच सकते हैं ? ब्रह्मसृष्टि ने भी इस संसार में आकर मोह जनित नश्वर शरीर धारण किए हैं। तीन गुणों के बंधन में पड़ीं वे आत्माएँ भी उनसे मुक्त नहीं हो पा रही हैं। तब सतुगुरु ने कहा कि कुछ काल तक बाह्य दृष्टि को आकर्षित एवं प्रभावित करने के लिए रहस्यमयी आड़िका लीला होगी। ब्रह्मात्माओं को एक सूत्र में पिरो देनेवाली

जागनी लीला का यह विधि विधान इतना प्रबल और प्रखर होगा कि अज्ञान निशा को समाप्त करके संसार में ज्ञान का प्रकाश फैला देगा। जो भी आत्माएँ इस लीला का ध्यान, चिंतन एवं मनन करेंगी, उन्हें श्रीकृष्ण तथा परमधाम के साक्षात् दर्शन होंगे।

महामति प्राणनाथ कहते हैं कि निजानन्द स्वामी ने तारतम ज्ञान की निधि मुझे सौंपते हुए कहा कि 'अपनी संगी साथिन आत्माओं को फ़रामोशी की नींद से जगाओ।' हम सब ब्रह्मात्माओं का संताप हरने के लिए उन्होंने मुझे अपनी चेतन शक्ति प्रदान करते हुए अपने जैसा बना दिया। मेरी आत्मा में उनकी जागृत बुद्धि का प्रवेश हुआ और स्वप्नवत् संसार में मृतक के समान सोई हुई आत्मा को जगाकर ज्ञान दिया—

कहयो ताको इंद्रावती नाम। ब्रह्मसृष्ट मिने घर धाम।।
मो पर धनी हुए प्रसन। सौंपे धाम के मूल वचन।।
आद के द्वार न खुले आज दिन। ऐसा हुआ ना कोई खोले हम बिन।।
सो कुंजी दई मेरे हाथ। तूं खोल कारन अपने साथ।।
मोहे करी सरीखी आप। टालने हम सबों की ताप।।
आतम संग भई जाग्रत बुध। सुपन थे जगाए करी मोहे सुध।।

प्रकाश हिन्दु., ३७/९५ - ९७

महामति प्राणनाथ ने सुंदरसाथ को समझाते हुए कहा है कि आत्मा में परब्रह्म परमात्मा का आवेश, आनंद अंग श्यामा की आत्मशक्ति, अक्षरब्रह्म का नूर, स्वामी का आदेश एवं निजधाम की जागृत बुद्धि का समावेश हुआ।

इन पाँचों शक्तियों को प्राप्तकर इन्द्रावती 'महामति' हुई। वेद, शास्त्र, पुराण एवं कतेब ग्रंथों में परब्रह्म सत्ता के आने की घोषणाएँ की गई हैं। अब उनकी भविष्यवाणी के सत्य होने का समय आ गया है। क़ुरान हो अथवा पुराण दोनों ही उस सत्ता इमाम मेंहदी व आख़री ज़माने के स्वामी, निष्कलंक बुध के आगमन एवं संसार को एक धर्मसूत्र में पिरोनेवाले ज्ञान के प्रमाण ग्रंथ हैं। इनके आंतरिक एवं सांकेतिक अर्थ हमारे पास हैं। मेरी आत्मा में विराजे परब्रह्म स्वामी उन अभिप्रेत बातिन गूढ़ार्थों को खोल रहे हैं। निजानन्द स्वामी ने उन अर्थों को स्वयं स्पष्ट नहीं किया बल्कि मुझसे स्पष्ट कराकर इस तारतम वाणी के द्वारा उनका विस्तार कराया। मुझे तारतम ज्ञान प्रदानकर भवसागर रूपी संसार से पार उतरने का रास्ता सुझाया तथा शास्त्र ग्रंथों के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों को खोलने का मार्ग दिखाया। स्वामी ने मेरे मन के सभी संशयों का निवारण किया। माया और ब्रह्म के विषय में कोई शंका शेष न रही। अब मुझे तारतम ज्ञान के प्रकाश से संसार को प्रकाशित कर ब्रह्मात्माओं और संसार के जीवों को मोहमाया और भ्रम निद्रा से जगाना है।

महामति प्राणनाथ कहते हैं कि अभी तो प्रायश्चित्त करके क्षमा प्राप्त करने का अवसर है और परम धाम का द्वार खुला है। बाद में संसार के सभी लोगों को भी जगाया जाएगा और फिर उन को नरकाग्नि में जलाकर शुद्ध किया जाएगा। एक सौ दस वर्ष (जागनी लीला) के बाद वह द्वार मूँद दिया जाएगा। अब अज्ञान रात्रि का समापन हो गया है। मारफत ज्ञान की भोर हो चुकी है। अब तारतम वाणी सबका दिग्दर्शन करेगी—

द्वार तौबा के खुले हैं अब। पीछे तो दुनिया मिलसी सब।।
जब द्वार तौबा के मूंदयो। रैन गयी भोर जो भयो।।

प्रकाश हिन्दु०, ३७/९९

सबकी करनी का फल और भले बुरे कर्मों का लेखा-जोखा सामने आ जाएगा। जिसने जैसा किया है उसे वैसा परिणाम भोगना ही पड़ेगा। इस जागनी लीला की घड़ी में जो नहीं जागेगा उसका फिर कोई संगी-साथी नहीं होगा। अपने सुख-दुख स्वयं ही भोगने पड़ेंगे। अब जब अखण्ड ज्ञान का सूर्य उदय हो ही चुका है तो मुझे उसके प्रकाश में ब्रह्मात्माओं को एकत्र कर लेना है। संसार के सभी वर्ण एवं वर्ग के लोग निष्कलंक बुध इमाम मेहदी के दर्शन करने के लिए एकत्र हुए हैं। ब्रह्मात्माओं को प्रियतम मिलन का आनंद प्राप्त होगा—

या भली या बुरी । जिनहूँ जैसी फैल जो करी।
तब आगूँ आई सबों की करनी । जिन जैसी करी आप अपनी।।
तब कोई नहीं किसी के संग। दुख सुख लेवे अपने अंग।
करुँ ब्रह्मसृष्ट को मिलाप । अखंड सूर उदय भयो आप।।

प्रकाश हिन्दु., ३७/१००, १०१

महामति प्राणनाथ के मतानुसार ब्रह्मसृष्टि का ऐसा तेज है कि नश्वर सृष्टि के जिन जीवों का अंकुर परम धाम में नहीं था, उन्हें भी नये अंकुर प्रदान किए गए। परब्रह्म परमात्मा ने उन्हें अपनी दया दृष्टि से निहार कर अमर कर दिया। मुक्तिधामों अथवा बहिश्तों में उन्हें अखण्ड सुख मिले। परब्रह्म परमात्मा के अवतरण-हक़ी स्वरूप के दर्शन पाकर विभिन्न वर्गों में विभाजित दुनिया एक हो गई। सभी के मन से क्रोध वैर और वैमनस्य मिट गए। सभी वर्णों एवं जातियों के लोग जागृत हुए। सभी ने स्वीकार किया कि सबका परमात्मा एक है। ब्रह्मात्माओं को विरह का दुख देकर उनके मन पर चढ़ा माया का कलुष धो डाला। तदुपरान्त सबको अखण्ड आनंद प्राप्त हुआ।

कालमाया के इस जागनी ब्रह्माण्ड में जो ब्रह्म-लीला हुई वह पहले कभी नहीं हुई थी और न ही भविष्य में होने की सम्भावना है। वैसे अक्षर ब्रह्म की कल्पना मात्र से अनेक ब्रह्माण्ड बनते रहे हैं और भविष्य में भी बनते रहेंगे। कालमाया और योगमाया से बने ये तीनों ब्रह्माण्ड अति विशिष्ट हैं क्योंकि इनमें ब्रह्मात्माओं की लीलाएँ हुईं। इन तीनों ब्रह्माण्डों में क्रम से ब्रज, रास और जागनी लीलाएँ सम्पन्न हुईं। जिस प्रकार निद्रावस्था में स्वप्न देखा जाता है उसी प्रकार गोकुल गाँव में गोपियों के रूप में ब्रह्मात्माओं ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का सुख प्राप्त किया। योगमाया के रास मंडल की अर्द्ध जागृतावस्था में श्रीकृष्ण को अपने प्रियतम के रूप में स्वीकार कर उनकी किशोरावस्था की रासलीला में रमण किया। ब्रह्मात्माओं को रासलीला में पूर्णब्रह्म परमात्मा की पहचान नहीं थी, परन्तु थोड़ी-सी समझ अवश्य थी। इसलिए उन्हें संयोग वियोग दोनों प्रकार की सुखानुभूति हुई। परब्रह्म परमात्मा की पूर्ण पहचान हो जाने तथा उनसे अपने सम्बंध का बोध हो जाने पर ब्रह्मात्माओं को अपार सुख मिला।

जागनी में लीला धाम जाहेर। निसान हिरदें लिए चित धर।।
जब उपज्यों आनंद सबों करार। ले नजरों लीला नित विहार।।

प्रकाश हिन्दु., ३७/११

तारतम के प्रकाश में जागृत होते ही ब्रह्मात्माओं को परम धाम की लीला स्मरण हो आई। परम धाम के सभी पक्षों के संकेत मन में स्पष्ट होने लगे। उन्हें असीम आनंद और परम शान्ति की सुखानुभूति हुई। परम धाम के लीलाविहार दृष्टि गोचर हुए। संसार में बैठे बैठाए इन्हीं नश्वर शरीरों में सुप्तात्माएँ जागृत हो गईं। वे सुख-दुखमयी लीला

को देखने का भाव मन में लेकर अवतरित हुईं थीं। उनका मनोरथ पूर्ण हुआ।

जागनी लीला की पृष्ठभूमि में दुख, दाह, ताप, अनुताप है और इसका लक्ष्य जीव के चित्त को उदात्तकर प्रियतम परमात्मा के योग्य बनाना है। महामति प्राणनाथ की जागनी लीला की अवधारणा में स्वबोध, आत्मानुसंधान, आत्मज्ञान, स्वरूप उपलब्धि पर सर्वाधिक बल दिया गया है। परम सत्य की अनुभूति और परमधाम की प्राप्ति ही मानव शरीर धारण करने की सार्थकता है। आत्मबोध अथवा आत्म जागृति के परम लक्ष्य से जीव के पतन का कारण उसका ब्राह्माण्डम्बरों में लिप्त हो जाना है। वह अपने आत्मबल का उपयोग उदात्त धरातल की प्राप्ति के लिए नहीं अपितु उसके उल्लंघन हेतु करता है। अतः उसे बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फँसना पड़ता है। उसका सारा देहात्म संघर्ष मिथ्या प्रपंच बनकर रह जाता है। बाह्य और आन्तरिक दवाब, ताप, तनाव और अनुताप से भरे इस संसार में व्यक्ति का जीवन अभिशप्त बनकर रह जाता है और वही उसे युक्तियुक्त यथार्थ और स्वाभाविक प्रतीत होता है। महामति प्राणनाथ जीवात्मा परमात्मा के बोध के बीच की विडम्बना को अनादि संघर्ष मानते हैं। इसकी इति जीवात्मा के परमात्मा के सम्मुख आत्मसमर्पण और आत्मविसर्जन से ही हो सकती है।

आत्म-विस्मरण, नींद, फ़रामोशी में पड़ी आत्माओं को जगाकर परमधाम में उठाना ही जागनी लीला कही जाती है। जागतिक अज्ञानावरण दूर होते ही आत्मा दिव्य तारतम ज्ञान के प्रकाश में परमात्मा का सम्यक् बोध प्राप्त करती है तब उसमें प्रेम का आवेश जागता है। अहं विसर्जित हो जाता है तो आत्माएँ परमात्मा से मिलन का मार्ग पा जाती हैं। जागनी लीला का प्रयोजन माया के आवरण को हटाकर और आसक्ति को मिटाकर आत्मा को पूर्णतः जागृत और प्रबुद्ध करना है। इस आत्म जागरण में आत्मा प्रेम विभोर होकर प्रियतम परमात्मा के रंग में रँगकर उनके संग अनन्त विहार के रस में रसमग्न हो जाती हे। इस महामिलन के आयोजन और पूर्ण जागरण एवं सच्चिदानंद स्थिति को जागनी रास की संज्ञा दी गई है।

महामति प्राणनाथ ने जागनी लीला में ब्रह्म और ईश्वरीय आत्माओं को उदबुद्ध और सजग रखने तथा मुमुक्षु जीवों को प्रबोध देने का दायित्व बड़ी लग्न दक्षता और कुशलता से निभाया है। इसके लिए उन्होंने अनन्य तपश्चर्या निष्ठा तथा सहानुभूति रखते हुए अन्य आत्माओं को सम्मिलित करके उन्हें प्रिय निकटता प्रदान करने के लिए स्वयं परमात्मा के एकांत मिलन के सुख संयोग की भी अवहेलना की है। महामति प्राणनाथ स्वयं जग गए हैं और परा सत्य से परिचित हैं। इसलिए सुंदरसाथ को अज्ञानाधंकार में भटकते हुए देखकर उनके हृदय में पीड़ा और करुणा उपजती है। अतएव सर्वमुक्ति और मानव कल्याण, मानव मात्र की निद्रा भंजन करने के लिए उन्होंने जागनी का संकल्प लिया है। ज्ञान से अज्ञान जनित पीड़ा का शमन सम्भव है। वे मानते हैं कि उन्हें शान्ति, मुक्ति और आनंद की प्राप्ति तभी होगी जब वे मानव के दुख का निराकरण करने में सक्षम होंगे और मोहमायां रूपी निद्रा से जगा देगें। उन्होंने जागनी लीला को जीवन मुक्ति प्रदान करनेवाली लीला कहा है। उन्होंने जागनी के ब्रह्माण्ड में ब्रह्म और ईश्वरीय सृष्टि को जगाने और जगत के जीवों को मोक्ष दिलाने का भार अपने ऊपर लिया है।

'तृतीय अवतरण' में संसार की अनन्त यातनाओं की अनुभूतियों के लिए ब्रह्मात्माओं को पृथक्-पृथक् परिवेशों तथा देशों और भिन्न-भिन्न रूपों में इसलिए अवतरित किया गया ताकि वे परस्पर मिलकर संगठित न हो सकें और एक दूसरे को पहचान न सकें। परिणाम यह हुआ कि जिन ब्रज वधुओं के रूप में गोपियों ने अपने परम प्रिय कृष्ण के एक पल के वियोग को सहन नहीं किया, वे ही आत्माएँ जब इस संसार में त्रिविध ताप दुखों में आकंठ डूब गई और अपने मूल निवास परमधाम और अपने प्रियतम परमात्मा को विस्मृत कर नाना देवों की उपासना द्वारा अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होकर इस संसार रूपी अरण्य में विलाप करने लगीं, तब उनकी आत्मिक पीड़ा से परमात्मा का सिंहासन पुनः डोला और उन्होंने दया से द्रवित होकर अपनी आनंदस्वरूपा श्री श्यामा महारानी की आत्मा को सतगुरु श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप के माध्यम से अपना परम अलौकिक तारतम ज्ञान प्रदान कर प्रकट किया।

ब्रह्म से मिलन अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए जीवात्मा के जागरण की चर्चा प्रायः सभी धर्मों और दर्शनों में की गई है। जब आत्मा निद्रावस्था में होती है तो उसमें 'अहं' जागृत होता है और वह अपने विवेक से सत्य-असत्य, सुख-दुख का निर्णय नहीं कर पाती। सांसारिक मोह माया ज्ञान और अज्ञान के प्रति जागरूक होकर अपने नित्य स्वरूप अखण्ड परमधाम का ध्यान आना ही जागनी लीला का लक्ष्य है। जागृत अवस्था और परमात्मा की अनुकम्पा से ही आत्म मुक्ति सम्भव है। आत्मा का जागृत होना ही जगत की क़यामत माना जा सकता है। प्रेमस्वरूपा ब्रह्मसृष्टि की यह फ़रामोशी तो प्रियतम परमात्मा के प्रेम में डूबकर ही दूर होती है। विश्व के प्रायः सभी धर्म ग्रंथों में ब्रह्मात्माओं के सांसारिक अवतरणों और जागनी के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। माहेश्वरतंत्र, भविष्य पुराण तथा श्रीमद्भागवत में इसका विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। कतेब ग्रंथों में इस अन्तिम दिन का वर्णन करने का संकेत इस जागनी लीला की ओर ही है।

क़यामत के सन्दर्भ में जागनी को समझना अपेक्षित और औचित्यपूर्ण है। क़यामत का अर्थ नश्वर शरीर में मृतक के समान सोयी हुई आत्मा का जागकर परमात्मा को नमन करना है। जो रुहें जाग जाएँगी मानों उनकी क़यामत हो गयी। उनकी दृष्टि में संसार सारहीन हो जाता है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है, परन्तु जगत में आने के पश्चात् वह माया के वश में हो जाती है तथा उसके ईश्वरीय गुण विलुप्त होने लगते हैं। आध्यात्मिक स्तर पर यह प्रयास किया जाता है कि आत्मा वास्तविकता से परिचित हो जाए। लौकिक सुख निद्रा के समान है। संसार में पूर्ण आसक्ति को अज्ञान कहा जाता है। अपने औचित्य का चिन्तन करके ईश्वर की स्मृति जागृति कहलाती है। महामति प्राणनाथ ब्रह्मात्माओं की केवल आध्यात्मिक जागनी के पक्ष में नहीं थे। वे केवल आत्मा परमात्मा और परमधाम की निजानंदमयी भूमिकाओं के कोरे ज्ञान को ही पूर्ण नहीं मानते थे। वे इसी पंच भौतिक देह की दृष्टि से उस अखण्ड ब्रह्म स्वरूप का दर्शन कराना चाहते थे। वे अपने अवगुणों और अहंकार से मुक्त होकर इसी संसार में अपने प्रियतम परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन एवं उनके परमधाम के अनिर्वचनीय, अक्षय और अनन्त सुख को केवल स्वयं ही प्राप्त नहीं करना चाहते थे, बल्कि उनका संकल्प था कि जब तक जीव मात्र की जागनी का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता तब तक परमधाम का द्वार खुला रहने पर भी उसमें प्रवेश करने के लिए उनके क़दम आगे नहीं बढ़ेंगे। महामति प्राणनाथ की जागनी भौतिक सुख प्राप्त करने अथवा अलौकिक पद पाने की महत्त्वाकांक्षाओं से

प्रेरित नहीं थी। उनके अनुसार जब तक ब्रह्मात्माओं को इसी संसार में परम दिव्य परमधाम और परब्रह्म के दर्शन न हो जाएंगे, तब तक उन्हें एक पल के लिए, भी चैन नहीं मिलेगा—

अब तारुं तुमें या विध, ज्यों लगे न लहर लगार।
बैठाए सुखपाल में सुखें, घर पोहोंचाऊँ निरधार।।

कलश हिन्दु., २३/३५

इस जागनी की राह पर चलते हुए यदि ब्रह्मात्माओं को लेशमात्र भी कष्ट होता है तो यह महामति प्राणनाथ को सहन नहीं होता। वे ब्रह्मात्माओं को सुखपूर्वक सुखपालों (दिव्य विमानों) में बैठाकर परमधाम पहुँचाना चाहते हैं—

सब साथ करुँ आपसा, तो मैं जागी परमान।
जगाए सुख देऊँ धाम के, मिलाए मूल निसान।।

कलाश हिन्दु., २३/४५

सतगुरु स्वामी निजानंद जी ने तारतम ज्ञान प्रदान कर केवल महामति प्राणनाथ की आत्मा को जागृत किया, परन्तु वे जब तक सकल जीवों को अपने समान प्रबुद्ध नहीं बना लेते तब तक स्वयं को परमधाम का अधिकारी नहीं समझते।

अनेक आचार्यों, तपस्वियों, संतों भक्तों आदि ने केवल व्यक्तिगत मोक्ष प्राप्ति का प्रयास किया, लेकिन महामति प्राणनाथ की वाणी में अपने समस्त सुंदरसाथ और सकल जीवों के मोक्ष की एक तड़प थी। उनमें सबके लिए एक व्यापक पीड़ा तथा कसक देखने को मिलती है। उनकी यह आत्मिक कसक भारतीय दर्शन एवं संस्कृति को एक ऐसी अद्वितीय देन है जिसे आध्यात्मिक प्रेम का मूल आधार कहा जा सकता है। उनकी जागनी का परम लक्ष्य समस्त सुंदरसाथ तथा सकल जीवों का आध्यात्मिक और मानसिक जागरण ही था।

महामति प्राणंनाथ बार-बार जिस नींद से जाग जाने की बात कहते हैं वह नींद मोह, अज्ञान और भ्रम की है—

मोह अज्ञान भरमना, करम काल और सुंन।
ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन।।

कलश हिन्दु., २४/१९

आत्मिक जागृति के लिये आसक्ति का परित्याग और सांसारिक विषय वासना से विमुखता का होना अनिवार्य है। महामति प्राणनाथ जीव को अज्ञान की गहन निद्रा से जगाने का प्रयास करते हैं। सारा संसार फ़रामोशी में है। सभी गुण अंग और इन्द्रियों के वशीभूत होकर विषयों के भोग में लिप्त हैं। उन्हें अपने मूल घर की भी सुधि नहीं है। वे कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? उनके आने का उद्देश्य क्या है ? उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं है। ब्रह्मात्माएँ प्रमत्त हैं। महामति प्राणनाथ उन्हें इस अवस्था से उबारने का प्रयत्न करते हैं—

तोको कहूँ अभागी अकरमी, जो जागा न ऐते सोर।
सात बेर तोको कहूँ सोहागी, जो तू उठे अंग मरोर।।

प्रकाश हिन्दु, १५/१३

वे अपने सुंदरसाथ को सांसारिक भोग ऐश्वर्यों सुख के आकर्षणों एवं मोहमाया आदि के प्रपंचों से ऊपर उठाकर जगाने के लिए प्रेरित करते हैं जिससे वे इसी देह में संसार के भौतिक सुखों की अनुभूति के साथ परमात्मा को भी पहचान लें। वे संसार

के हर पल मिटते सुखों की अर्थहीनता बताना चाहते हैं।

जब आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल हो जाती है तो उसे संसार से वैराग्य हो जाता है। आसक्ति का परित्याग किए बिना जागरण सम्भव नहीं। वैराग्य आसक्ति का परित्याग ही तो है। बाह्य वस्तुओं से अपने मन मस्तिष्क और इन्द्रियों को उसी प्रकार मोड़ लेना चाहिए जिस प्रकार कच्छप अपने सभी अंगों को अपने भीतर समेट लेता है। यह स्थितप्रज्ञता की स्थिति है। यही जागनी की वास्तविक अवस्था है।

महामति प्राणनाथ के वैराग्य का अर्थ सांसारिक विरक्ति से कदापि नहीं था। उन्होंने तो भक्ति और प्रेम के रस से सींचकर बाहर भटकने की अपेक्षा घर में ही जागने की प्रवृत्ति पर बल दिया। अपने अंग-प्रत्यंगों को प्रेम में भरकर परमात्मा की सुधि ली जाती है। उनकी लोक जागनी का स्वर उनकी वाणी में कई स्थानों पर मुखरित हुआ है, जिसमें सामूहिक जागनी तारतम ज्ञान के प्रकाश का चतुर्दिक् विस्तार, परमधाम की अखण्ड निधियों से अटूट सम्बंध और तारतम ज्ञान द्वारा समस्त संसार के वैमनस्य को मिटाकर एक रस करने की बात कही है—

पीउ जगाई मोहे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ए जिमी झूठी दुख की, सो कर देऊँ सततसुख।।

कलश हिन्दु., २३/४४

तारतम ज्ञान मानव को जागृत करता है। जागृत अवस्था में सब संशयों का छेदन हो जाता है। यही ब्राह्मी स्थिति है। महामति प्राणनाथ कहते हैं कि मैं जब तक सकल संसार को जगा न लूँ और परब्रह्म परमात्मा से मिलन न करा दूँ तो मेरा जन्म लेना सफल न होगा। वे जीव को मोह, माया, विकार वाली निद्रा से जाग जाने के लिए प्रेरित करते हैं—

सूता होए सो जागियो, जागा सो बैठा होए।
बैठा ठाड़ा होइयो, ठाड़ा पाउँ भरे आगे सोए।।

किरंतन, ८६/१८

जागो जगाऊँ जुगत सों, छोड़ो नींद विकार।
पेहेचान कराऊँ पीउ सो, सुफल करूँ अवतार।।

कलश हिन्दु, २२/१६

परमधाम के दिव्य उपादानों की प्राप्ति के पूर्व साधक की योग्यता और पात्रता को महामति ने बार-बार परिरेखित किया है। कहनी रहनी और आचरण की उच्चत्तम कसौटी को वैयक्तिक, सामाजिक और सांसारिक उत्कर्ष से जोड़कर ही जागनी का वृहत्तर लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति, इकाई अथवा व्यष्टि की चेतना समूह या समष्टि की व्यापक चेतना में किस प्रकार समाहित हो सकती है। एक पुण्यात्मा किस प्रकार सुधि आत्माओं को साथ लेकर मिथ्या जगत के सारे अभिशापों को परमधाम के सच्चे सुख में परिणत करने को आतुर है। इसे महामति प्राणनाथ के सार्वजनिक संकल्प में सहज ही देखा जा सकता है। उन्होंने समग्रता की खोज को जागनी का नाम दिया। उनकी लीला ब्रह्मात्माओं के जागरण का साधन है। जागरण प्रेमा भक्ति के अंकुर रूप में होता है। जो उत्कट विरहानुभूति द्वारा ब्रह्मभाव जागृत कराता है। यह जागरण एक का भी होता है और यूथ का भी।

जागृत जीव कौन है, इसके उत्तर में उन्होंने कहा है कि जब तब आत्मा सुप्तावस्था

में रहती है तब तक उसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता। वह मन की प्रेरणा से उसके अनुरूप कार्य करती है। वह स्वयं अच्छाई बुराई का निर्णय नहीं कर पाती। आत्मा की इसी सुप्तावस्था को जीव कहते है। जब यही जीव मन का साथ छोड़कर परमात्मा की ओर उन्मुख होता है तो जागृत जीव अथवा आत्मा कहलाता है। उन्होंने मन और जीव की अपेक्षा आत्मा की श्रेष्ठता को महत्त्व दिया है। उन्होंने विभिन्न प्रकार से ब्रह्मात्माओं को जगाने का प्रयास किया है। उनके मतानुसार ब्रह्मात्माओं के कारण ही सतगुरु स्वामी इस मोह माया रूपी संसार में आए, किन्तु ब्रह्मात्माएँ अभी भी नींद में डूबी हुई हैं—

सोई नसीहत देत सजन, खैंचत तरफ वतन।
पीउ पुकारें बेर दूसरी, अब क्यों होए पीछे आपन।।
तुम सयाने मेरे साथ जी, जिन रहो विषे रस जाग।
पाउं पकड़ कहे इंद्रावती, उठ खड़े रहो जाग।।

प्रकाश हिन्दु., १७/३, २१

उन्होंने सुंदरसाथ को प्रेम से जगाया लेकिन स्वयं की आत्मा को झिंझोड़ा और धिक्कारा है—

धिक-धिक परो मेरी पाँचों इन्द्री, धिक धिक परो मेरी देह।
श्री स्याम सुंदर वर छोड़ के, संसार सों कियो सनेह।।

प्रकाश हिन्दु., २२/६

उन्होंने सुंदर साथ को प्रेमपूर्वक जगाया है किन्तु स्वयं अपने गुण अंग इन्द्रियों की कड़ी भर्त्सना की है। आत्मिक उत्थान और संगी साथी आत्माओं की समवेत जागनी के लिए वे बड़े सक्रिय आश्वस्त और ईश्वरीय शक्ति के स्रोत प्रतीत होते हैं। इस गहन आत्मविश्वास और संगी साथी अंगनाओं की उन पर अटूट आस्था से नये परिमंडल और विस्तृत दिगंत का निर्माण हुआ। जागनी के प्रति संगी साथी आत्माओं के आग्रह और समर्पण भाव से महामति प्राणनाथ का संकल्प सार्थक हुआ।



निजानन्द (प्रणामी) संप्रदाय सम्बन्धी वक्तव्य

वेद प्रकाश गर्ग

१४, खटीकान, मुजफ्फरनगर, उ० प्र०

निजानन्द या प्रणामी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक सद्‌गुरु देवचंद्र जी थे, किंतु उसका प्रचार-प्रसार श्री प्राणनाथ जी ने किया। साहित्य और समाज में प्रणामी संप्रदाय को निजानन्द संप्रदाय, प्राणनाथी, धामी पंथ आदि नामों से अभिहित किया जाता है। बीतक साहित्य पद्धति के अनुसार आरम्भ से ही इस सम्प्रदाय का नाम निजानन्द संप्रदाय रहा। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार से अलग शुद्ध साकार स्वरूप सर्वगुण सम्पन्न अधिप्रेरक स्रोत और चिन्मय परब्रह्म श्री कृष्ण ही इस संप्रदाय के इष्टदेव हैं। तारतम मन्त्र प्रदाता सद्‌गुरु देवचन्द्र जी तथा महामति प्राणनाथ जी इसी स्वरूप के आदेशावतार हैं। नैतिकता की शुद्धि, सहिष्णुता, कल्याण, एवं मानवतावादी प्रेम की नींव पर यह संप्रदाय अधिष्ठित किया गया था। श्री देवचन्द्र जी को संप्रदाय में 'निजानन्द स्वामी' कहा जाता है। वे 'निजानन्द' इसलिए कहलाये कि उन्हें 'तारतम मंत्र' की प्राप्ति हुई थी और इस मंत्र के द्वारा ही उन्हें 'निजबोध' अथवा 'आत्म बोध' हुआ था। इसके बाद ही उनका देवचन्दत्व– 'निजानन्दत्व' में विलीन हो गया और तबसे ही देवचन्द्र, 'निजानन्द' कहलाने लगे। शास्त्रों में भी 'निज' शब्द स्वयं के अर्थ में व्यवहृत हुआ है और आनन्द शब्द 'परमात्मा' का बोधक माना गया है। चूँकि देवचन्द्र जी श्यामा जी के अवतार स्वरूप हैं और 'निज' अक्षरातीत का आवेश और श्यामा जी के अवतार के संयोग से वह निजानन्द कहलाते हैं और इनके द्वारा संस्थापित संप्रदाय 'निजानन्द संप्रदाय' कहलाता है। इस संप्रदाय की साधना पद्धति विभिन्न साधनाओं की ऐसी रसवन्ती है, जिसमें सभी धाराएँ समरस होकर समाहित हो गई हैं, जो सबको अपने में समाए हुए हैं।

इन्हीं देवचन्द्र जी और इनके द्वारा प्रवर्तित निजानन्द संप्रदाय के संबंध में कुछ महानुभावों साहित्यकारों एवं विद्वानों ने ग़लत तथ्य एवं व्याख्या प्रस्तुत कर भारी भ्रम की स्थिति उत्पन्न करने की चेष्टा की है। विद्वानों को ऐतिहासिक तथ्यों से अवगत कराना, जिज्ञासा का समाधान करना और भ्रम का निराकरण करना ही इस लेख का उद्देश्य है।

वैष्णव संप्रदायों में निम्बार्क संप्रदाय का प्रमुख स्थान है। उसी के अनुगतों का यह प्रयास है। उनका कहना है कि प्रणामी संप्रदाय भी निम्बार्क संप्रदायान्तर्गत हैं। देवचन्द्र जी, निम्बार्क संप्रदाय के स्वामी हरिदास जी के शाखा संप्रदाय (हरिदासी संप्रदाय) के शिष्य थे। उदाहरणार्थ–

निम्बार्क शोध मंडल, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित 'सिद्धान्त रत्नाकर' भूमिकान्तर्गत उसके लेखक श्री गोविन्द शर्मा द्वारा ऐसे ही विचार व्यक्त किए गए हैं। डा. नारायण दत्त शर्मा, जिन्होंने निम्बार्क संप्रदाय के हिन्दी कवियों पर शोध-कार्य सम्पन्न किया है, अपने शोध-प्रबंध में कुछ ऐसा ही उल्लेख किया है। वृन्दावन से प्रकाशित होने वाली निम्बार्क संप्रदाय की मुख पत्रिका 'श्री सर्वेश्वर'[१] के अंकों में भी यत्र-तत्र इसी प्रकार के कथन देखने में आये हैं। उक्त सभी में एक ही बात को कि 'प्रणामी संप्रदाय' भी निम्बार्क संप्रदाय की ही एक शाखा है सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है और अपने कथन की पुष्टि में जो तथ्य और प्रमाण दिये हैं, उन्हें तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। उनका यह प्रयास सत्यशोध-कार्य के विरुद्ध है और उससे भ्रम की ही व्याप्ति होती है, जिसे उचित नहीं कहा जा सकता।

'सिद्धान्त रत्नाकर' की भूमिका में उल्लेख है कि काठियावाड़ में प्राणनाथ जी का एक प्रणामी संप्रदाय है। इस संप्रदाय के आदि प्रवर्त्तक श्री देवचन्द्र जी स्वामी हरिदास जी के कृपापात्र दयालदास जी के शिष्य थे। स्वामी जी ने उन्हें श्री बाँके बिहारी का वस्त्र सेवार्थ प्रदान किया था, जिसे लेकर वे काठियावाड़ लौट गए थे। स्वामी जी का इस शिष्य-संप्रदाय का निम्बार्क मतान्तर्तगत होने का उल्लेख मिलता है।[२]

आगे प्रणामी संप्रदाय के श्री नौरंग स्वामी द्वारा रचित 'मत-मारग-भेद' नामक ग्रन्थ से परम्परा संबंधी कुछ पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप उद्‌धृत कर अपने कथन की पुष्टि की गयी है। आवश्यक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं[३]—

द्वारा श्री हरिदास की नियमानन्द (निम्बार्क) मतमाँहिं।
स्यामा स्याम उपासना प्रगटी कछू इन पाहि।।

(प्रकरण २२, चौ० १५-१६ तक)

इसमें कई बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो प्राणनाथ जी के शिष्य नौरंग स्वामी द्वारा रचित ग्रंथों में उक्त 'मतमारग-भेद' नामक रचना का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। फिर भी एक बार को यदि यह मान लिया जाए कि यह उनकी ही रचना है (संभव है, किसी बड़े ग्रन्थ का अंश हो) तो उससे उद्‌धृत पंक्ति में 'नियमानन्द' के स्थान पर निश्चय ही 'निजानन्द' का उल्लेख होगा, जिसे भ्रमवश या जान-बूझ कर 'निजानन्द' (निम्बार्क) मान लिया गया है। दूसरे, यह भी ग़लत है कि श्री देवचन्द्र जी, स्वामी हरिदास के कृपापात्र 'दयालदास' के शिष्य थे। ऐसा कोई उल्लेख कहीं भी उनके प्रामाणिक जीवन-वृत्तों में नहीं मिलता। तीसरे, नौरंग स्वामी द्वारा रचित तथा कथित 'मतमारग-भेद' नामक ग्रन्थ कितना प्रामाणिक है, इसकी सत्यता भी उसकी उद्‌धृत पंक्तियों से स्वतः प्रकट हो जाती है। उक्त ग्रन्थ से 'सिद्धान्त-रत्नाकर' के पृष्ठ २१ पर पाद-टिप्पणी में उद्‌धृत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

गुरु धणी देवचन्द्र स्वामी श्री हरिदास।
सो पुनि शिष्य इनही के गृही वस्तु इन पास।
बारह वर्ष ब्रज में रहे, अपने गुरु के पास।

---

१. श्री सर्वेश्वर, वर्ष ४ अंक २, आवरण पृष्ठ ३
२. वही, पृष्ठ २०
३. वही, सर्वेश्वर, पृष्ठ २१

षोडषों बत्तीस में कियो देश निज वास।।

(प्रकरण २२)

आगे लिखा है कि "इनसे आभास होता है कि सं० १६३२ में स्वामी जी के तिरोधान के अनन्तर ही देवचन्द्र जी अपने देश लौटे होंगे।"

'सिद्धान्त-रत्नाकर' की भूमिका में वृन्दावन के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास जी का तिरोधान सं० १६३२ में होना माना गया है।[४] और प्रणामी संप्रदाय के ग्रन्थों में देवचन्द्र जी का जन्म सं० १६३८ में होना लिखा है।[५] जब देवचन्द्र जी का जन्म ही वृन्दावनीय स्वामी हरिदास जी के तिरोधान के ६ वर्ष बाद हुआ था, तो ऐसी स्थिति में उनका स्वामी हरिदास जी से शिष्यत्व ग्रहण करना कैसे संभव है ? और न ही देवचन्द जी का वृन्दावन में निवासोल्लेख ही प्रामाणिक है। निम्बार्क संप्रदायानुयायियों की यह धारणा कि देवचन्द्र जी, वृन्दावन के अनन्य रसिक राजस्वामी श्री हरिदास जी के शिष्य थे, भ्रमात्मक ही है। प्रणामी संप्रदाय के प्रामाणिक ग्रंथों से इसकी पुष्टि नहीं होती, अपितु इसका खंडन ही होता है। वास्तव में यह शिष्यत्व की धारणा मनगढ़न्त एवं भ्रामक है।

डॉ. नारायण दत्त शर्मा ने भी अपने शोध-प्रबंध में अपनी अधूरी सूचना के आधार पर यह लिखा है कि विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में प्रणामी पंथ के संस्थापक स्वामी श्री प्राणनाथ जी निम्बार्की थे। डॉ. शर्मा ने यह उल्लेख 'कल्याण' में प्रकाशित लेख के आधार पर किया है। पाद-टिप्पणी में उद्धृत अंश में उल्लिखित है कि "प्राणनाथ जी के गुरु श्री देवचन्द्र जी, हरिदास स्वामी जी के शाखा संप्रदाय के शिष्य थे।" इस अंश में यह स्पष्ट कहीं नहीं लिखा कि ये हरिदास, वृन्दावन के प्रसिद्ध हरिदास ही हैं, केवल प्रसिद्धि के आधार पर इन्हें वृन्दावन के हरिदास स्वामी समझ लिया गया है, जो भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संभवतः यह भ्रम 'बाँके बिहारी' नाम से हुआ जान पड़ता है। क्योंकि श्री देवचन्द्र जी के जीवन प्रसंग में बाँके बिहारी का नाम आता है और वृन्दावन के स्वामी हरिदास जी के इष्ट-विग्रह का नाम 'बाँके बिहारी' प्रसिद्ध ही है। यह उल्लेखनीय है कि उस समय तक प्रणामी साहित्य विशेष प्रकाश में नहीं आ पाया था और न ही उसका समुचित रूप से अध्ययन हुआ था।

डॉ. शर्मा ने शोध-प्रबंध में ही एक स्थान पर यह लिखा है कि "प्रनामी (प्रणामी) शाखा स्वभूराम द्वारे के अन्तर्गत हैं। इस शाखा का प्रचार प्रधानतः पन्ना, जूनागढ़, जामनगर, काठियावाड़, बुन्देलखण्ड के आसपास हैं। विरक्त परनामी सन्त अब अपने को निम्बार्क संप्रदायान्तर्गत हरिदासी शाखा के अन्तर्गत मानते है।" यह उल्लेख डा. शर्मा ने पं. किशोर दासकृत 'आचार्य परम्परा परिचय' (पृ० २२) के आधार पर किया है। किंतु प्रणामी-संत न तो अपने को निम्बार्क संप्रदाय की हरिदासी शाखा के अन्तर्गत मानते हैं और न ही यह पंथ स्वभूराम द्वारे (निम्बार्क संप्रदायी) के अन्तर्गत है। यह सब मिथ्या एवं कपोल कल्पित है। निम्बार्कियों और उनके संप्रदाय एवं साहित्य पर शोध-कार्य सम्पन्न करनेवाले डा. शर्मा के उल्लेख कितने प्रामाणिक हैं, यह स्वतः सिद्ध है। वे केवल भ्रम की सृष्टि करनेवाले है। वास्तविकता क्या है, यह आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

---

४. सि० रत्नाकर पृ० ३२।
५. कुलजम सरूप पृष्ठ १५/६।

निजानन्द अर्थात् प्रणामी संप्रदाय की 'बीतक' परम्परा हिन्दी-जीवनी-साहित्य की विधा में एक विशिष्ट देन हैं। सांप्रदायिक साहित्य में इन बीतकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्री देवचन्द्र जी तथा उनके शिष्य महामति प्राणनाथ जी के जीवन को लेकर प्रणामी-साहित्य में कितनी ही बीतकें लिखी गयी हैं, जिनमें सात मुख्य मानी जाती है। इनमें भी स्वामी लालदास कृत 'बीतक' प्राचीनतम, प्रामाणिक एवं आदरणीय मानी जाती हैं। श्री प्राणनाथ जी के 'कुलजम स्वरूप' (तारतम सागर) की हस्तलिखित प्रति के साथ ही लालदास जी की 'बीतक' की हस्तलिखित प्रति भी प्रत्येक प्रणामी मंदिर में प्रायः रहती है। स्वामी लालदास, महामति प्राणनाथ जी के प्रमुख शिष्य थे। उनके द्वारा विरचित वृत्तान्त-सूचक— 'बीतक' एक प्रकार से ऐतिहासिक महाकाव्य ग्रंथ है, जिसमें ७३ प्रकरण और ४३७७ चौपाइयाँ हैं। यह बीतक देवचन्द्र जी एवं प्राणनाथ जी का जीवन-वृत्त और संप्रदाय की सैद्धान्तिक व्याख्या ही नहीं, अपितु तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियों का प्रमाणिक दस्तावेज़ भी है। इस प्रकार बीतक का ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है। लालदास कृत बीतक में वर्णित तथ्यों एवं विवरणों की पुष्टि अन्य 'बीतकों' से भी होती है। श्री देवचन्द्र जी के जीवन-विषयक आवश्यक उल्लेख लालदास कृत 'बीतक' में भी दिया गया है।[६]

मानवीय जीवन के आध्यात्मिक गुरु, आत्म चेतना के संवाहक और निजानन्द संप्रदाय के आद्य संस्थापक श्री देवचन्द्र जी का जन्म आश्विन शुक्ल चतुर्दशी सं० १६३८ में मारवाड़ के अन्तर्गत उमरकोट (अमर कोट) में कायस्थ-कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री मतु मेहता और माता का नाम कुँवरबाई था—

सम्वत सोलह सै अड़तीसे, आसौज सुदी चौदस को।
जन्म दिन श्री देवचन्द्र जी, आए प्रगटे मारवाड़ मों।। १६।।
तामें गाम उमर कोट, मत्तू मेहता घर अवतार।
माता जो कुँवर बाई, ताको कहों विस्तार।।१७।।

प्रकरण २,

श्री देवचन्द्र जी के गुरु के रूप में जिन हरिदास जी का उल्लेख प्रणामी ग्रंथों में मिलता है, वे भुजनगर (भोज नगर, कच्छ प्रदेश)—निवासी, राधावल्लभ संप्रदायानुयायी और सद्गृहस्थ थे। उनसे ही देवचन्द्र जी ने मंत्र-दीक्षा ली थी। हरिदास जी सखीभाव से बाँके बिहारी जी की सेवा करते थे। यह उनके विग्रह का नाम था। वृन्दावन के बाँके बिहारी जी से इसका कोई संबंध नहीं है। दीक्षोपरान्त हरिदास जी ने पहले श्री बालमुकुन्द जी की मूर्ति पूजार्थ देवचन्द्र जी को देने की बात की थी किन्तु बाद में बाँके बिहारी जी का जामा-वस्त्र सेवार्थ प्रदान किया था—

फिरते भुज नगर आए, तिन सहर में।
तहाँ हरिदास जी रहें, भई सोहबत तिनसे।।१३।।
वे थे राधा वल्लभी, सेवत कारज आतम।
सेवा बांके बिहारी की, करे सखी भाव धरम।।१४।।

प्रकरण ३,

---

६. वृजभूषण कृत 'वृत्तान्त मुक्तावली' बक्शी हंसराज, नवरंग मुकुन्द दास, करुणावती एवं स्नेह सखी प्रणीत अन्य बीतकें।

सुन ऐसी बात हरिदास जी, बड़ो जो पायो सुख।
दियो नाम सुमरन, देखो सरूप सनमुख।।२५।।
भज मन श्री वृन्दावन, कुञ्ज विहारी नित बिलास।
एही राखो तुम दिल में, सुमरो कर विश्वास।।३६।।

प्रकरण ३

तब हरिदास जी कह्या, मैं तुम्हें देऊँ बालमुकुन्द।
तिनकी सेवा तुम करो, ज्यों पावो आनन्द।।६८।।

प्रकरण ३

जामा बाँके बिहारी जी का, दिया सेवने को।
श्री देवचन्द्र जी सिर चढ़ाय के, ल्याए अपने घर मो।।३०।।

प्रकरण ४

बाँके बिहारी के जामा सेवा करते हुए श्री देवचन्द्र जी को श्रीकृष्णके गोपाल वेश में दर्शन हुए श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप को हरिदास जी ने पहचान लिया था। वे स्वयं उन्हें गुरु भाव से प्रणाम करने लगे थे। कुछ दिन उपरान्त श्री देवचन्द्र जी नवतनपुरी (जामनगर) आ गये थे। वहाँ उन्होंने श्याम जी के मन्दिर में श्री कान्ह जी भट्ट से चौदह वर्ष तक निष्ठापूर्वक बड़ी तन्मयता के साथ श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण किया था—

हरबंस जी हरिदास, रहे कोइक दिन
ता पीछे नौतनपुरी, सुना भागवत होय मगन।।६।।
चौदह वर्ष लों निस्ठाबन्ध, बचन गहे सब सार।
चालीस वर्ष की उमर में, हकें दिया दीदार।।७।।

प्रकरण ७

चालीस वर्ष की अवस्था में देवचन्द्र जी को स्वयं श्री कृष्ण द्वारा तारतम-मंत्र की प्राप्ति होने पर तत्पश्चात् उन्होंने स्वतंत्र रूप से धर्मोपदेश का कार्य आरम्भ किया था— एवं स्वयं हरिदास स्वामी ने उनके शिष्यत्व ग्रहण किया—

प्रथम कहौं हरिदास की, राधा बल्लभी नाम।
उनकी पहले खिजमत, श्री देवचन्द्र जी किये काम।।
जब इन्हें भई पहचान, तब फेर गहे कदम।
सुख दिया सेवा मिने, सौंप दई आतम।।

लालदास बीतक १०/१, १०

सं० १६८७ में उन्होंने द्वादशवर्षीय मेहराज ठाकुर (प्राणनाथ जी) को शिष्यत्व प्रदान किया था। तिरोधान पर्यन्त धर्म-प्रचार कर अपने जागनी-संदेश और तारतम-ज्ञान से सबकी आत्मा को जाग्रत करके ७४ वर्ष की अवस्था मे श्री देवचन्द्र जी ने इस धरा-धाम से परलोक-गमन किया—

सम्बत् सोलह तो सतासिया, मागसर सुदि नवम।
मिलाप श्री देवचन्द्र जी सों, हुए दाखिल कौम।।४८।।

प्रकरण १३

सम्बत सत्तरह सौ बारोत्तरे, भादों मास उजाला पख।
चतुर्दसी बुधवार को, हुए दृष्टें अलख।।७३।।

प्रकरण १३

इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेखों से पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि निजानन्द संप्रदाय, न तो राधावल्लभ संप्रदाय की शाखा सिद्ध होता है, न ही निम्बार्क संप्रदायान्तर्गत हरिदासी शाखा की शाखा, जैसा कि निम्बार्कियों द्वारा प्रचारित किया जा रहा है और जो प्रमाण-पुष्ट न होने के कारण भ्रम मात्र है। प्रणामी संप्रदाय का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। आधार एवं प्रमाण के लिए प्रणामी बीतकों का अध्ययन अति आवश्यक हैं।

श्री देवचन्द्र जी ने अपनी प्रारम्भिक साधना यात्रा में हिन्दू सम्प्रदाय के अनेक संतों, मनीषियों एवं साधकों के मंत्र ग्रहण कर कठोर साधनाएँ की थीं। हरिदास जी से मंत्र लिया। भट्ट जी से श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण की। किन्तु जब परब्रह्म श्री कृष्ण ने स्वयं को अक्षरातीत कृष्ण बताकर निजनाम मंत्र दिया तो उनकी साधना समाप्त हो गयी। निजानन्द स्वामी के रूप में उन्होंने निजानन्द सम्प्रदाय चलाया, जो कालान्तर में प्रणामी धर्म के नाम से विख्यात हुआ।

'मिश्र बन्धु विनोद'[७] में महामति :

मिश्र बन्धुओं द्वारा लिखित 'मिश्र बन्धु विनोद' किसी भारतीय द्वारा मूल रूप से हिन्दी में लिखा गया हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण संवत् १९७० (सन् १९१३) में खंडवा व प्रयाग की 'हिन्दी-ग्रन्थ प्रसारक मण्डली' द्वारा प्रयाग के इण्डियन प्रेस में छपवाकर प्रकाशित कराया गया था। तब इसका प्रकाशन तीन भागों में हुआ था। तत्पश्चात् इसका दूसरा संस्करण 'सुकविमाधुरीमाला' के तृतीय पुष्प[८] के रूप में गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से सं० १९८३ वि० में उसी प्रकाशक द्वारा प्रकाशित किया गया। इस इतिहास-ग्रन्थ का उपयोग यद्यपि दोनों प्रबन्धकारों ने किया है, किन्तु इनमें से डा. सिडाना ने 'विनोद' का सिर्फ़ नाममात्र का उपयोग किया है। उन्होंने अपने शोध-प्रबन्ध में केवल एक स्थान पर 'विनोद' का नामल्लेख मात्र किया है, और वह भी कुछ अशुद्ध रूप में। पाद-टिप्पणी में 'भाग २' के स्थान पर 'भाग ३' का उल्लेख किया गया है[९] जबकि 'भाग ३' में प्राणनाथ शीर्षक से कोई विवरण नहीं है।

श्री प्राणनाथ जी का 'प्राणनाथ' के अतिरिक्त 'मिहिराज' (मेहराज), 'इन्द्रावती', 'महामति' 'बुध निष्कलंकावतार', 'विजयाभिनन्दन' आदि विभिन्न नामों से उल्लेख प्राप्त होता है। उनके इन विभिन्न नामों को लेकर विद्वानों में भ्रामक स्थिति बनी हुई है। उन्होंने इनका पृथक्-पृथक् व्यक्ति के रूप में उल्लेख किया है, जबकि उक्त सभी नाम प्राणनाथ जी से अभिन्न हैं। मिश्र बन्धुओं ने 'प्राणनाथ' के अतिरिक्त 'विजयाभिन्दन', 'महामति' और 'इन्द्रामती' नामों से उनका पृथक् व्यक्ति के रूप में भी उल्लेख किया है। डा. पंड्या ने इनमें से 'प्राणनाथ', 'महामति' और 'विजयाभिन्दन' शीर्षक से प्राप्त विवरणोल्लेख पर तो विचार किया है, लेकिन 'इन्द्रामती' शीर्षक को पूर्णतया छोड़ ही दिया है, जबकि इनके साथ ही, उस पर भी विचार अपेक्षित था। डा. सिडाना ने तो इस ग्रन्थ में केवल 'प्राणनाथ जी' का ही उल्लेख होना लिखा है, शेष शीर्षकों की कोई चर्चा उन्होंने नहीं की है।

---

७. सर्वश्री गणेश बिहारी, मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र। (विशेष रूप से श्याम बिहारी मिश्र तथा शुकदेव बिहारी मिश्र को माना जाता है)।

८. तृतीय पुष्प के रूप में प्रथम भाग का प्रकाशन हुआ था। शेष भागों का अलग-अलग पुष्प के रूप में आगे के वर्षों में प्रकाशन हुआ। 'विनोद' के आगे भी कई संस्करण हुए हैं।

९. श्री प्राणनाथ जी और उनका साहित्य, पृ० ४६

मिश्र बन्धुओं ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में प्राणनाथ जी को पूर्वालिंकृत हिन्दी (सं० १६८१ से १७६० तक) प्रकरण के अन्तर्गत 'बिहारी-काल' में रखते हुए इनका विवरण कवि संख्या ३५४ पर दिया है।[१०] इस विवरण में इनका सं० १७०७ दिया गया समय इनका उपस्थिति काल है। यद्यपि मिश्र बन्धुओं ने इनके द्वारा १४ ग्रन्थ बनाए जाने का उल्लेख किया है, किन्तु नामोल्लेख केवल सात का किया है।[११] प्रामाणिकता की दृष्टि इन पर विचार आवश्यक है।

प्राणनाथ जी का समस्त वाङ्मय जोश वाणी के रूप में प्रकटित है। 'कुलजम स्वरूप' (तारतम वाणी) में संगृहीत रचनाएँ, जिनकी सं० १४ है, जोश वाणी मानी जाती हैं और उपेदश के रूप में कही गई वाणी 'होश वाणी' मानी जाती है, जिसकी संख्या अल्प है।

उपर्युक्त 'वाणी' के अतिरिक्त प्राणनाथ जी के नाम से प्राप्त कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं, जिनमें प्राणनाथ जी की विभिन्न रचनाओं के एक या एक से अधिक प्रकरण संगृहीत हैं। अतः ऐसी रचनाएँ स्वतंत्र रचनाएँ न होकर संग्रह मात्र हैं। साथ ही, प्राणनाथ जैसे शिष्यों की रचनाएँ भी उनके नाम से प्राप्त होती हैं, जिनकी गणना 'दास वाणी' के अन्तर्गत होती है।

इस दृष्टि से जब हम प्राणनाथजी की वाणियों के रूप में 'विनोद' में उल्लिखित रचनाओं पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि उनमें उक्त सभी की रचनाओं का घालमेल है। उनमें कुछ तो प्रकाश, कलश एवं परिक्रमा आदि के ही प्रकरण हैं और कुछ 'दास वाणी' के प्रकरण हैं। उल्लिखित सभी रचनाओं में से अलग-अलग प्रत्येक रचना पर विचार कर उसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में तब तक अधिकृत रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, जब तक कि प्राणनाथ जी की 'सम्पूर्ण वाणी' का अवलोकन ठीक प्रकार से न किया जाय। लेकिन उनके सम्पूर्ण वाङ्मय पर विचार के अभाव में ऐसा सम्भव नहीं है। यही स्थिति 'विनोद' में इनकी कविता के उदाहरण रूप में उद्धृत 'कवित्त' के सम्बन्ध में की जा सकती है। विचारणार्थ उक्त कवित्त यहाँ उद्धृत किया जाता है—

चंद बिन रजनी सरोज बिन सरवर,
तेज बिन तुरंग मतंग बिन मद को।
बिनु सुत सदन नितंबिनी सुपति बिन
धन बिन धरम नृपति बिन पद को।
बिनु हरि भजन जगत सो है जन कौन,
नोन बिनु भोजन विटप बिना छंद को ,
प्राणनाथ सरस सभा न सोहै कवि बिनु,
बिद्या बिन बात न नगर बिना नद को।।

---

१०. पृ० ४३६, भाग २ (द्वि० सं०)।

११. वही, (१) कयामतनामा, (२) राज विनोद, (३) ब्रह्मवाणी, (४) कीर्तन, (२ प्रगटवानी, (६) बीस गिरोहों का वाब, (७) पदावली (इसका नाम काशी ना० प्रा० सभी की प्र० त्रै० खोज-रिपोर्ट के आधार पर किए जाने का उल्लेख है, जो अशुद्ध है। 'पदावली' का प्राप्ति उल्लेख सर्वप्रथम द्वि० त्रै० खोज-रिपोर्ट में हुआ है। हाँ, 'कयामतनामा' को छोड़ कर शेष ५ रचनाओं का विवरण अवश्य प्र० त्रै० दि० में किया गया है। प्रायः ग्रंथों में नाम भी अशुद्ध ही हैं।

उपर्युक्त कवित्त में 'प्राणनाथ' की छाप तो है, किन्तु उसकी प्रामाणिकता के प्रश्न का समाधान उनकी 'वाणी' का ठीक प्रकार से अवलोकन किए बिना सम्भव नहीं है। यह कवित्त उनके प्रमाणित रूप से प्रकाशित ग्रंथों में नहीं है। उनका 'प्राणनाथ' नाम सुन्दर साथ प्रदत्त है। इसके पूर्व उतना प्रारम्भिक नाम 'मेहराज' (मिहिरराज) था।

'विनोद' में सं० ३५४/१ पर प्राणनाथ की पत्नी 'इन्द्रमती बाई' का उल्लेख है और उनकी कविता का सभा की द्वि० त्रै० खोज रिपोर्ट (सन् १९०९-११ ई०) में प्राप्त प्राणनाथ जी की 'पदावली' में होना लिखा है। साथ ही इन्हें हिन्दी में लिखनेवाली दूसरी स्त्री कवि भी बतलाया है।[१२] लेकिन ऐसा लिखना भ्रमात्मक है। वस्तुतः आवश्यक जानकारी के अभाव में यह ग़लतफ़हमी पैदा हुई है।

यह सही है कि प्राणनाथ रचित 'कुलजम स्वरूप' ग्रन्थ की रचनाओं में कुछ पद 'इन्द्रावती' की छाप के मिलते हैं और क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग भी है और बस इन्हीं दो तथ्यों के सहारे भ्रमवश यह कल्पना भी कर ली गई कि 'इन्द्रावती' प्राणनाथ जी की पत्नी थी, किन्तु वास्तविकता यह है कि सखी सम्प्रदाय के साधकों ने अपने उपनाम स्त्री वाचक रखे थे और कविता में उक्त छाप का प्रयोग भी स्त्रीलिंग क्रिया पदों के साथ किया है, जो साम्प्रदायिक भावना के अनुरूप है। प्रणामी-सम्प्रदाय में सिद्धान्तानुसार प्राणनाथ जी को ब्रह्मप्रिया 'इन्द्रावती' का स्वरूप माना जाता है। गुरु देवचन्द्र जी ने 'दीक्षा-मन्त्र देकर उनके शरीर में 'इन्द्रावती स्वरूप' का प्रवेश बताया था। इसीलिए वे सम्प्रदाय में तारतम स्वरूप सखी इन्द्रावती की वासना रूप है। अतः 'इन्द्रावती' प्राणनाथ जी की पत्नी न होकर उनका ही साधना-परक उपनाम है और 'पदावली' को प्राणनाथ-दम्पति की संयुक्त रचना मानना या लिखना ग़लत है। उसमें 'इन्द्रावती' छाप वाले पद भी उन्हीं के हैं।

'विनोद' के तृतीय भाग में कवि सं० १५५४ पर 'प्रेमनाथ इन्द्रावती' नामक कवि का उल्लेख हुआ है।[१३] उनके विवरण में 'पदावली' ग्रंथ का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि उनकी समाधि रियासत पन्ना में है। इससे प्रतीत होता है कि यह उल्लेख प्राणनाथ जी के सम्बन्ध में ही है, जिसमें भ्रमवश 'प्राणनाथ' के स्थान पर 'प्रेमनाम' नाम लिख दिया गया है। 'इन्द्रावती' के बारे में विचार किया ही जा चुका है यहाँ इनका उल्लेख 'अज्ञात-कालिक प्रकरण' में किया गया है, इसीलिए कोई समय नहीं दिया गया है।

'विनोद' में कवि सं० ७६० पर 'विजयाभिनन्द' बुंदेलखण्डी का विवरण दिया गया है।[१४] यहाँ इनका रचना काल सं० १७८७ का उल्लेख है, जो अशुद्ध है; क्योंकि सं० १७५१ में ही इनका धाम-गमन हो गया था। 'विजयाभिनन्द' प्राणनाथ जी का उपाधि रूप में उपनाम है। प्राणनाथ जी का अपने योग बल द्वारा इन्द्रियों को वशीभूत करने से अथवा तारतम ज्ञान रूपी तलवार से अज्ञान रूप असुरों के छेदन के विजय कृत्य से उनका नाम 'विजयाभिनन्द' भी है। इसी नाम से उन्होंने सं० १७३५ में अपना 'शाका' भी चलाया था, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने 'किरंतन' ग्रंथ में किया है। प्राणनाथ जी छत्रसाल के

---

१२. द्रष्टव्य भाग २, पृष्ठ ६८४
१३. किरंतन, प्रकरण ५७
१४. दे० भाग २, पृ० ८८७१

आश्रित कवि न होकर धर्माचार्य के रूप में उनके गुरु थे। ये मूलतः बुंदेलखण्ड के रहनेवाले भी नहीं थे, बल्कि वहाँ आकर रहने अवश्य लगे थे।

प्राणनाथ जी के 'विजयाभिनन्दन' उपाधि नाम से अनभिज्ञ होने के कारण कुछ लेखक महानुभावों ने इन्हें छत्रसाल का राज-कवि होना लिख दिया है, जो उचित नहीं है।

'विनोद' में ही कवि सं० ११६३/१ पर 'महामति' नाम से एक पृथक् कवि का विवरण और दिया गया है। यह भी प्राणनाथ जी से अभिन्न है। 'महामति' प्राणनाथ जी की साम्प्रदायिक साधनावस्था प्राप्ति की अवस्था का नाम है। बुद्धि, आवेश, तारतम, आज्ञा और कृपा के समाहित हो जाने पर उनका वह स्वरूप 'महामति' कहलाता है। वस्तुतः इन पंच शक्तियों को पाकर ही 'इन्द्रावती', महामति' में एक हो गई। 'कलश' से बाद वाली रचनाओं में 'महामति' की ही छाप मिलती है। उनके ग्रन्थों में 'महामति' की छाप के पदों के क्रिया रूपों में भी स्त्रीलिंग का प्रयोग किया गया मिलता है, लेकिन इससे 'इन्द्रावती' की तरह की 'महामति' नामक किसी स्त्री (पत्नी) का अनुमान कर लेना नितान्त अनुचित होगा। वास्तव में उनकी प्रारम्भिक वाणी अपने नाम से, मध्यवर्ती वाणी इन्द्रावती के नाम से और बाद में अवतरित वाणी 'महामति' नाम से है। उनकी वाणियों में अन्तिम दो छाप ही अधिक मिलती हैं। अतः उक्त सभी नाम प्राणनाथ जी से अभिन्न हैं।

मिश्र बन्धुओं ने महामति के विवरण में उनके नाम पर चार ग्रंथों का उल्लेख चतुर्थ त्रै० खोज रिपोर्ट (सन् १६१७-१६) के आधार पर किया है।[१५] ये रचनाएँ भी प्रामाणिकता की दृष्टि से प्राणनाथ जी के नाम से प्राप्त सभी प्रकार की रचनाओं का मिला-जुला रूप है। अतः इनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं है। उक्त खोज रिपोर्ट के आधार से ही इनका रचना-काल सं० १८६६ के पूर्व होना लिखा गया है, जो अस्पष्टता के कारण उचित और शुद्ध नहीं है।

इस प्रकार, समग्र रूप से गम्भीरतापूर्वक देखा जाए तो मिश्र बन्धुओं की सूचनाएँ भ्रमात्मक हैं। उन्होंने प्राणनाथ, इन्द्रावती, विजयाभिनन्द, महामति आदि का न तो ठीक प्रकार से भेद-अभेद ही समझा है और न ही अपनी सूचनाओं की परीक्षा की है, जिससे कि अशुद्धियों और भ्रान्तियों का निराकरण सम्भव होता।

ग्रियसन के इतिहास ग्रंथ में महामति प्राणनाथ

डा. ग्रियर्सन वृत्त 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' विदेशी भाषा में लिखा हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १८८८ ई० के 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के जर्नल के प्रथम भाग में हुआ था। तदुपरान्त सन् १८८६ ई० में उसी सोसायटी की ओर से स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में यह प्रकाशित हुआ था।[१६] इस इतिहास ग्रंथ का उपयोग दोनों प्रबन्धकारों ने किया है, किंतु इनमे से डॉ. सिडाना ने ग्रियर्सन के इतिहास-ग्रंथ का नाम 'मॉडर्न लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ

---

१५. (१) परिक्रमा, (२) प्रकट बानी, (३) सम्बन्ध सागर, (४) वेदान्त कीर्तन।
१६. डा. किशोरी लाल ने इसका अनुवाद हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास नाम से किया है।

हिन्दुस्थान' लिखा है,[१७] जो अशुद्ध एवं भ्रामक है। मालूम नहीं उन्होंने ग्रियर्सन कृत इस नाम से किस इतिहास-ग्रंथ का उपयोग किया है, जबकि उनका इस नाम का कोई इतिहास-ग्रंथ नहीं मिलता है।

श्री प्राणनाथजी का 'प्राणनाथ' के अतिरिक्त 'मिहिरराज' (मेहराज), 'इन्द्रवती', 'महामती', बुध निष्कलंकावतार', 'विजयाभिनन्दन' आदि विभिन्न नामों से उल्लेख प्राप्त होता है। उनके इन विभिन्न नामों को लेकर विद्वानों में भ्रामक स्थिति बनी हुई है। उन्होंने इनका पृथक्-पृथक् व्यक्ति के रूप में उल्लेख किया है, जबकि उक्त सभी नाम प्राणनाथ जी से अभिन्न हैं। ग्रियर्सन साहब ने प्राणनाथ के अतिरिक्त 'विजयाभिनन्द' नाम से उनका पृथक् व्यक्ति के रूप में भी उल्लेख किया है। डॉ. पंड्या ने इनमें से केवल 'प्राणनाथ' शीर्षक से प्राप्त विवरणोल्लेख पर ही विचार किया है, जबकि उन्हें उसके साथ ही 'विजयाभिनन्दन' शीर्षक पर भी विचार करना चाहिए था। डॉ. सिडाना ने भी इस ग्रंथ में प्राणनाथ जी का ही उल्लेख होना लिखा है। 'विजयाभिनन्दन' की कोई चर्चा उन्होंने नहीं की है।

'ग्रियर्सन' साहब ने अपने इतिहास-ग्रंथ में 'प्राणनाथजी' का विवरण सं० १६७ पर किया है[१८] और उसका आधार 'जर्नल ऑफ़ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' में प्रकाशित एफ. एस. ग्राउस साहब का लेख है। इस विवरण में इनका सन् १६५० ई० (सं० १७०७ वि०) दिया गया समय इनका उपस्थिति काल है, किन्तु छत्रसाल के जीवनकाल सं० १७०५-८८ वि० को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ग्रियर्सन द्वारा छत्रसाल का दिया गया समय[१९] अशुद्ध है। प्राणनाथ जी छत्रसाल के दरबारी कवि नहीं थे बल्कि धर्माचार्य के रूप में उनके गुरु थे। जैसा कि बताया गया ये मूलतः बुंदेलखंड के रहनेवाले भी नहीं थे, अपितु वहाँ आकर रहने अवश्य लगे थे। 'प्राणनाथ' इनका सुन्दरसाथ-प्रदत्त नाम था।

ग्रियर्सन ने अपने इतिहास-ग्रंथ में अन्यत्र इनका परिचय 'विजयाभिनन्दन' नाम से भी एक स्वतंत्र कवि के रूप में पृ० सं० २०१ पर भी दिया है।[२०] 'विजयाभिनन्दन' प्राणनाथजी का उपाधि रूप में उपनाम है। जैसा पहले ही लिखा जा चुका है कि प्राणनाथजी छत्रसाल के आश्रित कवि न होकर उनके धर्म-गुरु थे। उनका ग्रियर्सन द्वारा दिया सन् १६५० (सं० १७०७) उपस्थिति-काल होने के कारण सही है। डॉ. किशोरीलाल गुप्त का अपनी टिप्पणी में यह लिखना कि 'विजयाभिनन्दन का भी समय अशुद्ध है' ग़लत है।

वस्तुतः प्राणनाथजी पर शोध-कार्य करते समय या अध्ययन की आधारभूत सामग्री के विवेचन के समय, विभिन्न नामों के साथ प्राप्य सभी तथ्यों पर विचार कर लेने की आवश्यकता है, छोड़ने की नहीं। आशा है, विद्वान इस तथ्य की ओर ध्यान देंगे।



---

१७. श्री प्राणनाथ जी और उनका साहित्य, पृ० ४६।
१८. द्र० उक्त इतिहास-ग्रंथ, पृ० १६६
१९. ग्रियर्सन ने सन् १६५८ में छत्रसाल की मृत्यु होना लिखा है।
२०. द्र० उक्त इतिहास-ग्रंथ, पृ० १७८

भारतीय चेतना के ध्वज-वाहक स्वामी प्राणनाथ

डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'
१२ एम. आई. जी. हाउसिंग बोर्ड कालोनी, छतरपुर, म.प्र.

भारतीय जीवन पद्वति अन्तश्चेतना से उत्प्रेरित है जहाँ व्यक्ति-सीमा को अनन्त विस्तार दिया गया। यह वह दृष्टि है जो व्यक्ति को विश्व और विश्व को व्यक्ति में समाहित करती है। भारतीय दर्शन का लक्ष्य और संस्कृति का मूल प्रतिपाद्य यही है, जहाँ विवेकवान प्राणी न अपने आप में सिमटकर जीता है और न केवल वर्तमान के कलेवर में बँधता है। वह अपने से अधिक पराये की, आज से अधिक कल की और यहाँ से अधिक वहाँ की चिंता करता है। वह यह मानता है कि पराये का हित तभी संभव है जब हम अपने को उतनी ऊँचाई पर प्रतिष्ठित कर लें। परहित भावना ही धर्म है, दर्शन है, संस्कृति और मनुष्यता है। परहित में सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग आदि सभी निहित है। धर्मधारक ही भगवान है, शक्तिमान है और अन्ततः भगवान है। जिसने इस चेतना को सिद्ध कर लिया है वही कह सकता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सोहं ब्रह्म।' लेकिन जिस प्रकार चेतना की सिद्धि से साधक स्वयं चेतना नहीं बन जाता बल्कि चेतनामय होता है, उसी प्रकार ब्रह्म की सिद्धिवाला स्वयं ब्रह्म नहीं हो सकता, ब्रह्ममय बनता है। इसलिये संतों ने बार-बार कहा है कि उसका रहस्य अलग है जिसे स्वामी प्राणनाथ ने अक्षरातीत, परमधाम निवासी, शब्दातीत परमब्रह्म कहा, जो माया से निर्बंध, चौदह लोक, निर्गुण-निराकार से अतीत आनन्द स्वरूप है। जो ब्रह्मात्माओं में समाहित होकर अखण्ड रासलीला के द्वारा शब्दातीत आनन्द की सतत निरंतर वर्षा करता है। इस रहस्य को समझने के लिये सभी प्रकार के विवाद, स्वार्थों, अहंकारों और वासनाओं से ऊपर उठकर निष्कलंक बनना होगा। इसी अखंड परमधामी परब्रह्म श्रीकृष्ण की रासलीला का अंग बनना ही साधना की चरम सिद्धि है जिसका रहस्य स्वामी प्राणनाथ ने अपनी तारतम्य् वाणी में उद्घाटित किया है। इस तथ्य को प्रत्यक्षानुभूति के लिए साधक को निष्कलंक बनकर प्रियाभाव से प्रियतम के चरणों में समर्पित होना पहली शर्त है।

जनचेतना के उद्‌बोधक :

स्वामी प्राणनाथ का युग विदेशी शासन, धार्मिक आडम्बर और विवाद तथा सामाजिक विभेद और विसंगतियों का युग था। शासक और संत का मेल नहीं हो पाता। शासक अपने को शासक बनाये रखने के लिये ऐसे अनेक कार्य करता है जो जनजीवन के लिये कष्टकर होते हैं। शासक की नियति यह है कि शोषण ही शासन है जबकि संत शासितों

को शोषण मुक्त करने का उपदेश और आह्वान करता है। परिणामतः शासक का स्वार्थ और संत का लक्ष्य टकराकर एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। इस टकराहट के कारण संत-समुदाय एकांत साधना की ओर पलायन करता है। भारतीय संत परम्परा में दो प्रकार के साधक हुए हैं — एक तो वे जो एकांत साधना कर आत्मोत्थान अथवा आत्ममुक्ति में लगे रहे और जीवनानुभवों को लिखकर या सुनाकर जनकल्याण का प्रयास करते रहे। दूसरे प्रकार के संत वे हैं जो अपने चिन्तन, मनन, अध्ययन, साधना, सिद्धि और उपलब्धियों को समाज के लिये समर्पित करते रहे ताकि जनकल्याण हो। भले ही इसके लिये कष्ट, यातना और संघर्ष का शिकार होना पड़ा हो। दूसरी धारा में भी दो प्रकार के संत हुए — एक तो वे जो समाज में रहकर उपदेशक की भूमिका निभाते रहे और दूसरे वे जो जगह-जगह जाकर जनजागरण का कार्य करते रहे। स्वामी प्राणनाथ ने अपनी साधना से जहाँ ब्रह्मशक्ति को आत्मसात कर उस परब्रह्म के दर्शन किये, ब्रह्ममय बने, वहीं संघर्ष की चुनौतियों को स्वीकार कर जनचेतना को प्रबुद्ध भी करते रहे। फलतः एक ओर जहाँ छत्रसाल जैसे शूरवीर को धर्म क़ी रक्षा के लिये तैयार कर अपना आशीष देते हुए मार्गदर्शन किया, वहीं भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में प्रचलित धर्म-सम्प्रदायों के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उजागर कर उनके मर्म से परिचित कराया।

स्वामी जी ने अपने सामने फैले समाज में देखा कि एक ओर तो शासकों का मनमाना अत्याचार, दुराग्रह और सुख-विलास है, अधिकारियों और कर्मचारियों के असह्य पीड़ा दायक व्यवहार हैं तो दूसरी ओर धर्म के नाम पर अनेक पाखंड और आडम्बरों की भरमार है। सम्प्रदाय और जाति के नाम पर लोगों को बाँटकर आपस में लड़ाया जा रहा है ताकि उनकी महत्ता और सर्वोपरिता बनी रहे। उनके छलछद्म पर कोई उँगली न उठा सके। ईश्वर के नाम पर उल्टी-सीधी व्याख्या तथा तर्क-वितर्क किये जा रहे थे। राष्ट्र कमज़ोर, समाज विखंडित और जनता प्रताड़ित हो रही थी। ऐसी विद्रूप परिस्थितियों के बीच महामति प्राणनाथ जी ने धर्माचार्यों, शासकों और शोषकों को समझाने की चेष्टा की किन्तु दुराग्रही और स्वार्थी भावनाओं से भरे लोग जनहित की ओर तनिक भी ध्यान न देकर अपने में ही डूबे रहे। वे भली प्रकार जानते थे। कि स्वामी प्राणनाथ के सुझाये मार्ग से जनहित तो होगा किन्तु उनकी ओढ़ी हुई महानता पर चोट लगेगी। अंततः महामति ने जन-जन के मध्य पहुँचकर तथ्यों से अवगत कराने, उन्हें जागृत एवं, संगठित कर संघर्ष करने के लिए तैयार करने का अभियान प्रारम्भ किया जिससे सारे देश में चेतना की लहर फैल गई। गद्दीधारियों को अपने सिंहासन हिलते से अनुभव हुए। फलतः उन्होंने स्वामी जी का विरोध भी किया, परन्तु वे रुके नहीं। वे आगे बढ़ते रहे। जनमानस उनसे जुड़ता गया। अपने अनुभव और ज्ञान से उन्होंने ऐसा समन्वित मार्ग सुझाया, जिसने सभी का समाधान किया। किसी भी प्रकार के भेदभाव के लिए कोई स्थान न रहा। हितकारी तथ्यों को स्वीकार, बुराइयों का पर्दाफ़ाश कर उनसे बचने की सलाह दी। तभी उन्होंने कहा कि तमाम पथ, नियम, बाह्याचार, वेषभूषा आदि सब बेकार हैं। मूल सबका एक है। इसे समझना बहुत ज़रूरी है—

जीवनानुभवों के प्रस्तोता :

स्वामी प्राणनाथ का ज्ञान कोरा शास्त्रीय ज्ञान नहीं था। किताबी तथ्यों को उन्होंने जीवनानुभवों की प्रयोगशाला में डालकर परखा और जो उनकी अन्तरात्मा को छू सके। उन्हें स्वीकारने की उन्होंने सिफ़ारिश की। संत तो भूमिपुत्र होता है। भूमि का हर कोना

उसका होता है। स्वामी प्राणनाथ भारत की सीमाओं को लाँघकर दूर-दराज विदेशों की धार्मिक एवं मानवी भूमिकाओं को प्रत्यक्ष देख चुके थे। एक स्थान पर रहकर विश्व को समझना और विश्व भ्रमण कर उसे निकट से जानना और उसके प्रति आश्वस्त होना, दोनों में बहुत अंतर है। प्राणनाथ जी ने शास्त्रीय, धार्मिक एंव मानवीय विश्व को बखूबी समझा था। इसलिए उनकी उक्तियों, स्थापनाओं में गहरा आत्मविश्वास है। उनमें द्वन्द्व, भ्रम और अस्ति-नास्ति जैसी बातें नहीं हैं। वेद-कतेब की समान बातें इतनी बुलन्दी से शायद पहिले किसी और ने नहीं कहीं।

प्राणनाथ जी ने तत्कालीन सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के गूढ़ रहस्यों को समझा। उन पर विमर्श और विवेचन किया। तुलनात्मक और कल्याणक भूमिकाएँ देखीं। उनके सारभूत तत्त्वों को संकलित किया। संतों की भावनाओं और उपलब्धियों, उनके प्रदेयों और प्रभावों का विश्लेषण किया। रूपों एवं स्वरूपों को समझा। उनकी ऊँचाई और प्रसार तथा नियति को नापा। इन तमाम ज्ञान भंडारों के दावेदारों से संपर्क कर 'तारतम वाणी' के रूप में ऐसे कोश की स्थापना की जो आनन्द की अखण्ड लीलाभूमि है। जहाँ कृष्ण-मुहम्मद, ब्रह्म और ब्रह्मात्माओं में कोई भेद नहीं है। वेद-कतेब की अंतरात्मा में निहित प्रकाश एक ही होता है। देखने की दृष्टि और व्याख्याएँ अथवा वर्णन दोषपूर्ण और भ्रमपूर्ण होते हैं। जब वर्णन अथवा व्याख्या ही भ्रमपूर्ण हो तो सत्य से साक्षात्कार कैसे संभव है ? तभी तो उन्होंने कहा था कि जहाँ ये धर्माचार्य बताते हैं, वहाँ वह नहीं है। साधु-संत, कर्मकांड, मठ-मन्दिर, जीव-जगत, मन ब्रह्मांड कहीं नहीं है लेकिन इन सबसे अलग भी नहीं है, बेहद निकट है—

रे हूँ नाही, रे हूँ नाहीं।
सिध साध संतरी भगत, ना हूँ वैस्नव अप्रस आचार।
जात कुटुम्ब कुल ऊंच न नीच में, ना हूँ बरन अठार।
रे हूँ नाहीं व्रत दया संज्ञा, न अगिन कुंड ना हूँ जीव जगन।
तंत्र न मंत्र भेख न पंथ, ना हूँ तीरथ तरपन।।
रे हूँ नाही नवधा में मुक्ति में ही नाहीं ना हूँ आवागमन।
वेद कतेब हिसाब में नाहीं ना मांहें बाहेर न सुन।।
रे हूँ नाही न्यारा जहाँ हूँ तहाँ नजीक में, ना हूँ उनमुन आकार।।

किरंतन, प्रक. १२

सबके संग इसक :

मुख्य बात है प्रेम। दूसरों का हित। निषिद्ध वस्तुओं का परित्याग, अहंकार से मुक्ति, कबीर के ढाई आखर प्रेम की तरह वे भी ईश्वर और मनुष्यता से 'इश्क़' करने की बात करते हैं—

कोई देत कसाला तुम को, तुम भला चाहियो तिन।
सब अंग इसक लेयके, निकसो ब्रह्माण्ड फोड़।

किरंतन ८६/१६, १६

लुत्फ़ मेहरबान पाओ भेद। छूटो तिनसे जो है निषेद।।

कि. ब. ३/२४

जब तक अहंकार का परित्याग नहीं होता तब तक संतत्व की सिद्धि नहीं होती। 'मैं' को विलीन करना ही ब्रह्मत्व की प्राप्ति का लक्षण है—

बका चाहे सो फना होय। बिना फना बका न पावे कोय।।

किं. ब., ३/२६

दुख के मार्ग से ही प्रिय की प्राप्ति हो सकती है। दुख और दुखियों को अपनाओ तो सांसारिक सुख का भ्रम समाप्त हो जावेगा। सत्य ब्रह्म प्रत्यक्ष होगा। दुख मिलाता है, सुख भुलाता है।

दुख से पीउ जी मिलसी, सुखे न मिलिया कोय।

कि. ब., १८/१०

हिन्दू कौन ? मुसलमान कौन ?

महामति ने जाति-पाँति से ऊपर उठकर सही हिन्दू और मुसलमान को परिभाषित किया। वैष्णव वह है जो अन्तरात्मा से निर्मल और निर्विकार है। ऐसे वैष्णव किसी का अहित नहीं करते। बिना प्रदर्शन के सद्‌कार्यों में लगे रहते हैं—

हो भाई मेरे वैष्णव कहिये वाको, निर्मल जाकी आतम।
नीच करम के निकट न जावे, जाए पेहेचान भई पारब्रह्म।।

किरं., ६/१

दान दया सेवा सर्वे अंगे, कीजै ते सर्वे गोप।

किरं., १२६/२

इसी प्रकार जो दूसरों को दुख देते हैं वे मुसलमान नहीं कहे जा सकते। नबी ने मेहरबान, कृपालु को ही मुसलमान कहा है। पवित्र हृदय, पवित्र आत्मा, दीन-दुखियों की मदद करनेवाला, सबको माननेवाला, द्रोहियों और हिंसकों से दूर रहनेवाला ही सच्चा मुसलमान है—

जो दुख देवे किनको, सो नाहीं मुसलमान।
नबियें मुसलमान का, नाम धराया मेहरबान।
पाक दिल रूह पाक दम, या दीन मुसलमान।
सोहोबत खूनी की न करे, या दीन मुसलमान।

सनंध, २१/११, २२

सोई खुदा सोई ब्रह्म :

श्री प्राणनाथ जी का दृढ़ मत है कि शास्त्रों में, धर्मों में किसी भेदभाव को स्थान नहीं दिया। भेदभाव पैदा किया अवसरवादी व्याख्याकारों ने ! ब्रह्म और खुदा एक है। मूल बात को समझना ज़रूरी है :

वेद आया देवन पे, असुरन पे कुरान।
मूल मायने उलटाय के, जाहेर किये तोफान।

खुलासा, ३/२६

कलाम अल्ला या हदीसें, सास्त्र पुरान या वेद।
ए सब सुख लेवे मोमिन, हक रसना के भेद।

सिनगार, १६/१६

व्यक्ति-स्वार्थ केन्द्रित साधना अज्ञान को दूर करने के लिए ही तारतम का अवतरण हुआ। तारतम ज्ञान का बोध होते ही सारे भेद समाप्त हो जाते है। तारतम का आशय है समान, समन्वय, सतत, संतुलन, तालमेल। दुराग्रहों और पूर्वाग्रहों से मुक्त तारतम ज्ञान ही स्वामी जी की साधना का सार है। यही तारतम ज्ञान परब्रह्म पहचान की कुंजी

है। इसको जाननेवाली आत्मा स्वयं जागृत होकर दूसरों को भी जागृत और अमर बनाती है :—

ए कुंजी बल अपार है, जासों पाया अपार।
लिया हक दिल गुझ इसक, जिनको कहूँ न सुमार।।

सागर., ३/२६

ए इलम लिये ऐसा होत है, आप बेसक होत हैयात।
और कायम हुए देखे सबको, पावै दीदार बातुन हक जात।।

सिनगार, ३/२६

इलम एकै विध का, दोऊ की एक सरत :

महामति ने वेदान्त, गीता, भागवत आदि हिन्दू धर्मग्रंथों तथा बाइबिल, जंबूर, तोरेत और कुरान की गूढ़ बातों को उजागर कर इस तथ्य को स्पष्ट किया कि सभी का मूल अभिप्रेत एक ही है :

वेदान्त गीता भागवत, दैंया इसारतां सब खोल।
मगज मायने जाहेर किये, माहें गुझ हते जो बोल।

खुलासा, १३/६६

ए बेवरा वेद कतेब का, दोनों की हकीकत।
इलम एकै विद्या का, दोऊ की एक सरत।

खुलासा, १२/२३

एक ही स्वामी के अलग अलग नाम हो गए हैं। साधना की अलग रीतियाँ भले हों, साध्य एक महामति का ही है। उद्देश्य मानव का कल्याण ही रहा। विश्व के सारे मनुष्य एक-से हैं, उनमें भेद-भाव नहीं किया जा सकता। भेद-भाव धर्मविरुद्ध हैं। संसार के सारे धर्म पूज्य ईश्वर नाम और वाणी से अलग प्रतीत होते हैं, वस्तुतः वे सब एक हैं। यही नहीं, सारे सच्चे धर्मग्रंथ भी एक ही परमात्मा की बात कहते हैं। इसीलिये उन्होंने चार धर्मग्रन्थों—ज़बूर, तौरेत, इंजील और क़ुरानशरीफ़ तथा वेद-पुराण को लेकर ब्रह्म की एकता तथा मानवमात्र के लिये एक धर्म का सिद्धांत प्रतिपादित किया। उन्होंने ६ ार्मग्रंथों की सभी प्रमुख बातों का अलग-अलग विश्लेषण कर उनकी एकता को संकेतित किया। कृष्ण और मुहम्मद में एकता स्थापित की। उन्होंने तार्किक ढंग से यह सिद्ध किया कि हिंदू, इस्लाम तथा अन्य दर्शनों के देवों और फ़रिश्तों में कोई अन्तर नहीं।

विस्नु अजाजील फिरस्ता, ब्रह्मा मेकाईल।
जबराइल जोस धनीय का, रुद्र तामस अजराइल।

खुलासा, १२/४५

चारों किताबों के मायने, और मायने चारों वेद।
लिख्या सबमें जुदा जुदा, क्यामत एकै भेद।
अंजीर जंबूर तौरेत, चौथी जो फुरकान।
ए मायने मगज गुझ थे, सो जाहिर किये बयान।।

खुलासा, १३/६७

ब्रह्म सृष्टि कहे मोमिन को, कुमारका फिरस्ते नाम।
श्री ठकुरानी जी रुह अल्ला, मुहम्मद श्रीकृष्ण जी स्याम।।

खुलासा, १२/५२,५३

जो कुछ कहा कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहब के, पर लड़त बिन पाये भेद।।
खुलासा, १२/४२

लोक चौदे कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक।
वेद कहे ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक।।
खुलासा, १२/३६

नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सब में उम्मत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।
खुलासा, १२/३८

महामति ने क़यामत को आत्म जागरण का अर्थ देकर, उसे जागनी लीला के साथ जोड़कर दोनों को एक कर दिया। सुषुप्त और दलित आत्माओं को जगाकर सत्य से एकाकार करना ही असत्य जगत की क़यामत है और वही लक्ष्य 'जागनी' का भी है। भेद वहाँ नहीं है। भेद तो पंडितों-महंतों तथा पदप्रतिष्ठाधारी स्वार्थी धर्मप्रचारकों में है जो दूसरों को लड़ाकर अपने को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। उन्होंने हिंदुओं एवं मुसलमानों को इन स्वार्थियों के प्रति सचेत करते हुए उनको उनके पाखंड और अज्ञान के लिये ललकारा भी और फटकारा भी—

जो अंदर झूठी बन्दगी, देखलावें बाहेर।
तिनको मुसलिम जिन कहो, वह ख्वाबी दम जाहेर।।
विप्र भेष बाहेर दृष्टि, षट् करम पाले वेद।
स्याम खिन सुपने नहीं, जाने नहीं ब्रह्म भेद।।
अब कहो काके छुए, अंग लागे छोत।
अधम तम विप्र अंगे, चांडाल अंग उद्योत ।।
कुफ्र न काढ़े आपको, और देखे सब कुफरान।
अपना औगुन न देखहीं, कहें हम मुसलमान।।
सनंध २१/३५, ४०/२४,४३

कहलावें मुहंमद के, चले न मुहमद साथ।
डारें जुदागी दीन में, कहें हम सुनत जमात।
खुलासा, १/४४

उन्होंने स्पष्ट कहा कि धर्म के मार्ग पर चलनेवाला हिंदू हो या मुसलमान अथवा कोई अन्य —वह कभी भी दूसरों को पीड़ित और दुखी नहीं करेगा। हिंसा, रक्तपात, दुराचार, पाखंड धार्मिक लोगों के कार्य नहीं हैं। सच्चा धार्मिक वही है जिसकी आत्मा पवित्र है और आचरण शुद्ध है—

साफ रखे सबों अंगों, ज्यों छींट न लगे गुमान।
बाँधे दिल गरीबी सों, या दीन मुसलमान।
सनंध, २१/२८

हो भाई मेरे वैष्णव कहिये वाको, निर्मल जाकी आतम।
नीच करम के निकट न जावे, जाये पहेचान भई पारब्रह्म।।
किरंतन, ६/१

इस उदार मानवी भाव के लिये हर व्यक्ति में पवित्र मन की आवश्यकता है। जिसका मन पवित्र है, वही ब्रह्म के गूढ़ रहस्य को समझ सकता है, सत्य को पा सकता है और धर्माचरण का दावा कर सकता है। पवित्र मन में आडम्बरों तथा भेद भावों के लिये कोई स्थान नहीं होता। इसीलिये स्वामी प्राणनाथ जी ने कर्मकांड और शास्त्र-अहंकार का तिरस्कार किया था। उनकी धारणा थी कि पवित्रता के अभाव में यही सारे साधन अहंकार के कारण हैं—

अस्नान करी छापा तिलक देओ, कंठ आरोपो तुलसी माल।
गिनानी कहाओ साध मंडली, पण चालो छो केही चाल।।
किरंतन १२८/१२

चार बेर चौका देओ, लड़की जलाओ धोये जल।
अपरस करो बाहेर अंग को, पर मन ना होय निर्मल।।
किरंतन, १५/३

दिल पाक जोलों होय नहीं, कहा होए वजूद ऊपर से धोय।
धोय वजूद पाक दिल, कबहूँ हुआ न कोय।
सनंध २१/४०

कोटि करो बंदगी, बाहिर हो निरमल।
तो लों न पीउ पाइये, जो लों न साधे दिल।।
किरंतन, १३२/२

सब कोई देखे शास्त्र को, सास्त्र तो गोरखधंध।
मूल कड़ी पाये बिना, तो लों देखीता ही अंध।।
कलस, २/४८

शास्त्र सबे जो ग्रंथ, ताके करते थे अनरथ।
बिना इमाम न कोई समरथ, जो पट खोल के करे अरथ।।
खुलासा, ११/४

इसीलिये सबसे अच्छा है कि ज्ञान-गुमान से दूर रहकर सच्ची मानवी सेवा की जाये—

छोड़ो रे मान-गुमान ज्ञान को, एहि खाड़ बड़ी है भाई।
किरंतन, ६/६

कर्मकांड, आडम्बर तथा पोथी-ज्ञान के अहंकार से मुक्त होकर व्यक्ति को चाहिये कि वह पवित्र मन से ईश्वर के प्रति समर्पित होकर मानव सेवा करे। त्याग, करुणा और सेवा से बढ़कर संसार में कोई बड़ा पुण्य-धर्म नहीं है। समता के भाव से जनमानस के कल्याण-कार्यों में हाथ बँटाना ही सच्चा धर्म है। यह भावना तभी आ सकती है जब व्यक्ति के भीतर परमात्मा और मानव धर्म के प्रति सच्चा प्रेम हो। जहाँ प्रेम नहीं, वहाँ पवित्र आत्मा और पवित्र मन का निवास हो ही नहीं सकता। इसीलिये प्रेम की महिमा का बखान प्राणनाथ जी ने बार-बार किया है—

इस्क बड़ा रे सबन में, ना कोई इस्क समान।
एक तेरे इस्क बिना, उड़ गई सब जहान।।
कलस, ७/१

प्रेम खोल देवें सब द्वार, पार के पार जो पार।
प्रेमधाम धनी को विचार, प्रेम सब अंगों सिरदार।।
परिक्रमा १/६४

महामति ने इस सत्य को अच्छी तरह से परख लिया था कि धर्म और समाज की एकता पर मानवीय कल्याण निहित है। यदि इस अलगाव, आतंक और विखंडन की अहंकारी रीति-नीतियों से जनमानस को नहीं बचाया गया तो मानवता का सर्वनाश सुनिश्चित है। इसलिये उन्होंने देशी-विदेशी सभी धर्मों को मिलाकर एकत्व की सदाशयी धवल पीठिका पर मानव धर्म को प्रतिष्ठित करने की निष्कलुष एवं निरहंकारी योजना का सूत्रपात किया।

उन्होंने देखा कि न केवल हिन्दू-मुसलान ही आपस में लड़ रहे हैं अपितु हिन्दू-हिन्दू और मुसलमान-मुसलमानों में भी भेद हैं। यही नहीं, सभी धर्म प्रतिद्वन्दिता में अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को हेय कहकर अपना-अपना वर्चस्व और श्रेष्ठत्व स्थापित करने में ही सारी शक्ति लगा रहे हैं तो उनकी संवेदनशील आत्मा चीत्कार कर उठी। उनका पौरुष उन्हें आगे आने के लिये ललकारने लगा। अव्यवस्था और दुराग्रहों के उस वातावरण में कोई किसी की सुननेवाला नहीं था—

हिन्दू तुरक दोउ ने गाये। तिन मिल के दोय पंथ चलाये।।
खेंचाखेंच जगत में होई । एक अरथ मिलि कहत न कोई।।
ब्राह्मण कहें हम उत्तम, मुसलमान कहें हम पाक।
दोउ मुठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक।
सनंध, ४०/२०

कोई कहे दान बड़ा, कोई कहे ज्ञान।
कोई कहे विज्ञान बड़ा, यों लड़ें सब उनमान।।
कलश, प्र० १५/१

कोई कहे आकार बड़ा, कोई कहे निराकार।
कोई कहे तेज बड़ा, यो लड़ें लिये विकार।।
कलश, प्र० १५/१४

इस विग्रही दुर्दशा ने सबको भयभीत कर अर्न्तमुखी, स्वाभिमानशून्य और पलायनवादी बना दिया था। अधिकांश अंतरात्माएँ जीवित होकर भी निष्प्राण थीं। अतः जनजीवन की रक्षा तथा स्वाभिमान जागरण के लिये स्वामी प्राणनाथ ने तीन प्रकार के प्रयत्न किया—

१. उन्होंने मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब से मानवीय धर्म की सर्वकल्याणकारी राह पर चलने का आग्रह किया जो दरबारी चाटुकारों और अहंकारी मुल्ला-मौलवियों के कारण कारगर न हुआ।

२. जनजीवन, धर्म और समाज की सुरक्षा के लिए पौरुषवान योद्धाओं को अन्याय के प्रतिकार के लिये आगे आने का आह्वान किया—

राजा ने मलो रे राने राय तणों, धरम जाता रे कोई दोड़ो।
जागो रे जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो।
किरंतन, प्र० ५८/१

फलतः अनेक सेठ-साहूकार, अनुयायी कार्यकर्त्ता, और महाराज छत्रसाल जैसे

योद्धाओं ने सामाजिक जीवन तथा राष्ट्रधर्म की रक्षा का संकल्प किया।

३. तीसरा और बड़ा कार्य उन्होंने जन-समुदाय को जागृत कर संगठित बनाया ताकि वह स्वयं न्याय-अन्याय को समझकर अपने दायित्व का निर्वाह कर सके।

शब्दातीत ब्रह्म के पारखी :

स्वामी प्राणनाथ जी ने शब्दातीत ब्रह्म की बड़ी गंभीर, तार्किक और विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार शब्दातीत ब्रह्म को समझना ज़रूरी है। यह तो स्वयंसिद्ध और स्वानुभूत सत्य है कि जिसका हमने अनुभव किया है अथवा देखा है उसका यथावत वर्णन वाणी अथवा शब्दों से संभव नहीं है। बहुत कुछ छूट जाता है। हमारी अपनी आत्मा ही कहने लगती है कि यह वैसा नहीं है, अथवा इतना ही नहीं है। अभी बहुत क़सर है। इसी प्रकार परमधाम में चिन्मय स्वरूप परात्म को जो सुख मिलता है वह आत्मा को नहीं। जो आत्मा को अनुभव होता है वह जीव को नहीं। जो जीव को अनुभव होता है वह अन्तःकरण को नहीं। जो अंतःकरण को सुख मिलता है वही इन्द्रियों के माध्यम से मन तक पहुँचता है। अतः मन को उतना भी मिलना संभव नहीं। मन के सुख का वर्णन जिह्वा करती है। परात्म का जो सुख इतने सोपानों से होता हुआ जिह्वा तक आया वह भला वही सुख कैसे हो सकता है? वही रूप कैसे हो सकता है? वैसा ही वर्णन नहीं हो सकता। इसीलिये वह शब्दातीत अथवा वर्णनातीत है। तभी तो उसे 'नेति नेति' कहा गया है। वहाँ शब्द, मन, बुद्धि का प्रवेश ही नहीं हो सकता। सारा वर्णन ब्रह्मांड और पिंड के बीच का है, जो नश्वर है। भ्रमवश वर्णन अलग-अलग होते हैं। टकराहटें होती हैं। अहंकार और झूठी प्रतिष्ठा के लिये सम्प्रदायों के प्रमुख अपने-अपने को महान् सिद्ध करने में लग जाते हैं और अन्ततः स्वयं को ब्रह्म बताने लगते हैं। इसी अहंकार के कारण धर्म और धर्म स्थापनाएँ विकृत एवं दूषित हो गई। फलतः जो धर्म सर्व कल्याण की प्रेरणा से उद्‌भूत हुआ था, वह आत्मकल्याण के घेरे में घिर गया। इसलिये हिंसा हुई, अनर्थ हुए। यही सब देखकर स्वामी प्राणनाथ कहते हैं कि जितने धर्माचार्य और धर्म अपने को ब्रह्म बताते हैं उन्होंने न ब्रह्म को देखा और न समझा। वे पिंड से ब्रह्मांड तक ही रह गये जो नाशवान और असत्य है। परब्रह्म तो ब्रह्मांड से बहुत परे हैं। उस द्वार को खोलनेवाले ही ब्रह्म के ज्ञाता हो सकते हैं। उस द्वार को खोले बिना अक्षरातीत सत्य की अखंडलीला जानी ही नहीं जा सकती। अज्ञान के कारण ही विकारों का जन्म होता है जो दुराचरण के कारण बनते हैं । उनका कहना है कि प्रभुकृपा से मैंने उस परमधाम की अखंड लीला को देखा है— जो श्रीमद्‌भागवत में वर्णित है। उसे समझने के लिये स्वामी वल्लभाचार्य की सुबोधिनी टीका को आत्मसात करना चाहिये। श्रीमद्‌भागवत का लीलाधारी बालकृष्ण ही परब्रह्म है जो अपनी अखंड लीला से सबको सुख प्रदान करता है। यह लीला अविनाशी है, चिरन्तन और निरन्तर है। यही तारतम-वाणी का सार है।

स्वामी प्राणनाथ का दृष्टिकोण पूर्ववर्तियों से अधिक स्पष्ट है। पूर्ववर्ती संतों ने भी प्रचलित विवादों, संघर्षों से बचने और लोगों को बचाने का प्रयास किया था। सगुण-निर्गुण, शैव-वैष्णव, शाक्त, इस्लाम, ईसाई, द्वैत अद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि कितने ही मार्ग और विचार तथा दर्शन उस युग के विवाद और भ्रम के कारण थे। सभी ब्रह्म को जानने, ब्रह्ममय होने, ब्रह्म बनने और ब्रह्म से एकाकार कराने का दावा कर रहे थे। परिणामतः परस्पर दोषारोपण और शत्रुभाव के कारण जनकल्याण तो नहीं, अकल्याण

ही अधिक हुआ। स्वामी प्राणनाथ ने स्पष्ट कहा है कि सत्य को जानने के लिये शास्त्र को नकारने के बदले उन्हें समझना आवश्यक है। शास्त्र का समूह ज्ञान ही सत्य को उजागर कर सकता है —

शास्त्र ले चले सतगुर सोई। बानी सकल एक अर्थ होई।।
सब सयानो कर एक मत पाई। पर अजान देखे रे जुदाई।।

किरंतन, ४/४

प्रगतिशील व्यावहारिक दृष्टि :

संत कबीर और तुलसीदास जी ने समाज को सुधारने का प्रयास किया। कबीर की दृष्टि प्रखर और प्रहारक थी। वे हर विसंगति पर तीखा प्रहार करते थे। वहाँ खंडन और नकार भाव अधिक है जबकि तुलसीदास में स्वीकृति भावना की प्रधानता। वे प्रखर आलोचना अथवा खंडनात्मक प्रवृत्ति के पक्षधर नहीं थे। वे सगुणरूप के प्रेमी राम-भक्ति शाखा के संत थे। अतः नाना पुराण निगमागम के साथ जो सूझा वह 'क्वचिदतोऽन्यपि' भी प्रस्तुत कर दिया। किसी से बुराई नहीं। किसी से संघर्ष नहीं। इसलिये उनमें कहीं कहीं कुछ प्रश्नचिह्न खड़े हो जाते हैं। महामति ने बीच का मार्ग अपनाया। यही कारण है कि एक ओर जहाँ दिल्ली के शासक को समझाकर सद्‌मार्ग पर लाने का प्रयास किया, वहीं उनकी मनोवृत्ति और व्यवस्था की आलोचना भी की। वे एक ओर जहाँ स्पष्टवादी थे, वहीं उदारवादी भी। भारत भूमि को पवित्र और हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ कहकर भी उसकी विसंगतियों को उघाड़ते थे। साथ ही अन्य धर्मों की अच्छाइयों को लेकर वे वेद कतेब की एकता का सबल प्रतिपादन करते थे। मुहम्मद और कृष्ण को जिन तर्कों और परम्पराओं से एकाकार करते हैं वह उनकी मौलिक और साहसिक सूझबूझ ही मानी जायेगी। अथर्वन वाणी को सबका सार और मूल बताकर सारे धर्मों और धर्माचार्यों की दुर्बलताओं पर सीधा तक-वितर्क करते हैं। उनकी तर्कदृष्टि और स्थापनाएँ उनके समर्थ प्रगतिशील व्यक्तित्व तथा गंभीर, उदार किन्तु सजग व्यावहारिक दृष्टि की परिचायक हैं।

महामति ने अपने पूर्ववर्ती तमाम सद्‌ग्रंथों को अपनी वाणी में समेटा। वे ऐसे जीवंतधर्म के हिमायती थे जिसमें वे सारे गुण और अच्छाइयाँ हों जिसमें मनुष्य का बिना किसी भेदभाव के कल्याण हो सके। इसीलिये पूर्ववर्ती संतों, साधकों, तथा शास्त्रों से महत्त्वपूर्ण तथ्य लेकर उनके कल्याणकारी रसायन को अपनी अंतरात्मा की प्रयोगशाला में सिद्ध कर तारतमवाणी के रूप में प्रस्तुत किया। जिसका सेवन करने से व्यक्ति के सारे भवरोग दूर हो सकते हैं। इसके लिये उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों का विधिवत उल्लेख करते हुए उनके प्रति सदभावनाएँ व्यक्ति की हैं। यह कम उल्लेखनीय नहीं है कि उनके किरंतन में अनेक संतों, साधकों, धर्मों और धर्माचार्यों के नाम सम्मिलित हैं। कई पंक्तियाँ तो कबीर जैसे पूर्ववर्ती संतों की पंक्तियों से एकदम मिलती है। वस्तुतः सच्चे साधक संतों के दृष्टिकोणों, जीवनरूपों, ब्रह्मानुभूतियों और सत्-चिद्-आनन्द की प्रस्तुतियों एवं व्याख्याओं में ज़्यादा अन्तर हो भी कैसे सकता है?

साधना सुख का मार्ग नहीं हैं बल्कि अनेक कष्टों, बाधाओं और विपदाओं से भरा है। ब्रह्म की प्राप्ति सुख से संभव नही है। कबीर जैसे पूर्ववर्ती संतों ने भी कहा था कि 'हँसि हँसि कंत न पाइये, जिन पाया तिन रोय'। एक बार प्रिय से विमुक्त होने का ज्ञान होने पर प्रियतमा ब्रह्मात्मा का प्रिय से मिलने के लिये आतुर होना स्वाभाविक

ही है। इस आतुरता में हर पल भारी लगता है। वियोग की व्यथा तो निराली ही है। बिना एकाकार हुए, प्रियमिलन का सुख प्राप्त किये बिना चैन कहाँ! दुलहिन का सबसे बड़ा सुख है पति से मिलन, अन्यथा सुख का क्या अर्थ! लेकिन इसी दुख में सुख छिपा है। सुख इस दुख के पीछे-पीछे चलता है। यही दुख आगे चलकर दो प्रकार से सुख का कारण बनता है : एक तो दुख की तीव्रता के कारण प्रियमिलन की आतुर उत्कंठा और निरंतर उसका स्मरण, चिंतन। दूसरा — दुख की तीव्रता के कारण जल्दी मिलकर एकाकार होने पर चिरंतन सुख की प्राप्ति। स्वामी प्राणनाथ भी मानते हैं कि प्रिय मिलन दुख से सम्भव है इसलिये उन्हें दुख अत्यधिक प्रिय है। साधुजनों के लिये यह दुख मिलन की आशा लेकर आता है तभी तो सुख का लक्षण है।

प्राणनाथ जी दुख का आह्वान करते हुए कहते हैं :

जिन सुख पीउ जी ना मिले, सो सुख देऊँ जलाय।
जिन दुख मेरा पीउ मिले, मैं सो दुख लेऊँ बुलाय।। किरंतन, १७/३

दुख साधक को माँजता और निखारता है। ज्ञान-बोध प्रदान करता है। तभी तो स्वामी जी लोगों को सलाह देते हैं कि जिस दुख से तुम्हारे जीवन का परिष्कार हो, ईश्वर के एकांत मिलन की संभावना हो, मानवी दृष्टि का विस्तार हो, उस दुख से डरने की आवश्यकता नहीं है :-

इस सुपने के दुख से जिन डरो, दुख बदले सत सुख।
अपने मासूक सों नेहड़ा, तोको देयगो बनाएके दुख।।
ता सुख को कहा कीजिए, जो देखलावे धरमराये।
मैं वह दुख माँगू पीउ पे, जो पीउ सों पलषल रंग चढ़ाये।।

किरंतन, १७/१०, ११

सिद्ध संतों की तरह दुख सुख की इस गूढ़ भावना को समझने और अक्षरातीत से परिचित होने के लिये स्वामी जी ने भी गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। यह कम विचारणीय तथ्य नहीं है कि जो प्राणनाथ स्वयं सभी के गुरु थे वे अंत तक गुरु की महत्ता प्रतिपादित करते रहे। सत्य की पहचान और अखंड लीलानुभूति के लिये गुरु की कृपा आवश्यक है—

सतगुरु सोई मिले जब सांचा, तब सिंध बिंद परचावे।
प्रगट प्रकास करे पारब्रह्म सों, तब बिंद अनेक उड़ावे।।

किरंतन, ३/६

प्राणनाथ जी का कहना है कि ब्रह्म से उत्पन्न इस माया का भी कोई आदि अंत नहीं है। वह इतनी शक्तिमती है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी नचाती है। वे भी उसे नहीं पहचान पाते क्योंकि बिन्दु माया में सिंधु परमात्मा की व्याप्ति है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि ब्रह्ममयी माया का विस्तृत संसार नश्वर है। आशंका होना स्वाभाविक है कि अविनश्वर ब्रह्म की शक्ति युक्त माया का संसार नश्वर क्यों है ? जब ब्रह्म अविनाशी है तो फिर ब्रह्ममयी एवं ब्रह्माण्डव्यापी माया को भी विनाशी नहीं होना चाहिये। माया तिलिस्मी शक्ति है जो स्वप्न और कल्पना अथवा सत्य का अभाव दिखाने के लिये विस्तृत की गयी है। इसकी शक्ति का परिचय केवल गुरु ही बता सकते हैं। असत्य संसार ने सत्य को ढँक लिया है। माया-जन्य जीवन स्वयं असत होने के कारण सत्य को नहीं देख पाता। सत्य मार्ग तो कोई तत्त्वज्ञानी ही जान सकता है। अतः आराधक को तो किसी

तत्त्वदर्शी साधु की शरण में जाकर ही सत्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहये।

भरम की बाजी रची विस्तारी, भरम सो भरम भरमाना।
साध सोई तुम देखो साधो, जिनका पार पयाना।।

किरंतन, ३/६

स्वामी प्राणनाथ ने अपने किरंतन के १२२ प्रकरणों में प्रायः सर्वत्र ब्रह्म, माया, जीव, आत्मा-परमात्मा, संसार, साधना, गुरु, धर्म एवं धर्माचार्यों आदि के बारे में विस्तार से चर्चा की है। ब्रह्म, माया, जीव आदि के तो अनेक प्रकरण हैं। कई पद एवं प्रकरण प्रश्नोत्तर शैली में हैं। अथवा तर्क और आशंका प्रस्तुत कर उसका समाधान दिया गया है। कई विश्लेषण तो बड़े मौलिक हैं। गंभीर चिंतन और विस्तृत अध्ययन के बिना इन तथ्यों को पूरी तरह से जान पाना संभव नहीं है।

ब्रह्म और माया के उलझावों को स्वामी जी ने अनेक प्रसंगों में तार्किक और व्यावहारिक भूमिका पर स्पष्ट किया है।

यह मानते हुए भी कि मानव शरीर ही ईश्वर प्राप्ति का माध्यम है वे 'मानखे देह अखंड फल पाइये—सो क्यों पायके वृथा गमाइये'—यह चेतावनी भी देते हैं वस्तुतः देह एक लुभावना महल है, एक जंगल है, भूलभुलैया और अंधेरी गुफा है, जाल है, अविश्वसनीय है— इसके प्रलोभन से बचो।

किरंतन प्रकरण ३४-३५ (चौपाई) देह के संबंध में विस्तृत प्रकाश डालते हैं—

ए अंधेरी है विकट, जाहेर रची जमजाल।
ए पहले देखावे सुख सीतल, पीछे जाले अगिन की झाल।
ए धुतारी को न धीरिये जो पलटे रंग परवान।
ए विस्व वंदे वैराट को, सो भी निगलसी निरवान।

किरंतन, ३४/१९,२०

संसार की विकृत राहों का परित्याग कर नये पथ के पथिक स्वामी प्राथनाथ जी स्पष्ट कहते हैं कि मैंने संसार छोड़ दिया है। मेरे निकट मत आओ अन्यथा तुम भी बिगड़ जाओगे। मैंने मान-मर्यादा, लोक-लाज छोड़कर निर्लज्जता ओढ़ ली है। (प्र.१६) मैं दुनिया की बनाई राहों के विपरीत चल रहा हूँ इसलिये पतित और भ्रष्ट हूँ। (प्र. १६)। संसार की विकृत परम्पराओं के विरुद्ध चलनेवाला यह साधक पतित सिद्ध संत ही समाज के आध्यात्मिक, सामाजिक उत्थान का प्रेरणा स्रोत बना। यह वही कर सकता है जो अपने भीतर के मायावी शैतान को पराजित कर सके क्योंकि वही सांसारिक कुकर्मों का कारण है। (प्र. ४१.)।

अपने लिये प्रायश्चित्त का कठोर मार्ग निश्चित करते हुए स्वामी जी कहते हैं:-

सब अंग काट चीरा करूं, माहें भरों मिरच और लून।
कै कोट बेर ऐसी करूं, तो भी न छूटे ए खून।।
हैड़े में ऐसी उठत, सब अंग करूं टूक टूक।
हड्डियां सब जुदा करूं, भान करूं भूक भूक।।

किरंतन, ४२/६,७

गुरु कृपा से श्याम से सगाई होने पर ही ब्रह्मात्माएँ अक्षरातीत की अंखड लीला की सहभागिनी हो सकती हैं। बुध जी की कृपा से वह सुयोग मिला। इसका सत्य बोध होने पर ही हम जान सकते हैं कि कर्मकांड पर आधारित ज्ञानपंथ और धर्माचरण सारहीन

है। सत्यज्ञान के वाहक प्राणनाथ जी हैं जिनके प्रकाश से सारा अज्ञान समाप्त हो जाता है। ऐसे प्रकाशपीठों की स्थापना कई स्थानों पर हुई। उन्हीं में से पन्ना भी है जिसे सभी 'प्रणाम' करते हैं। बुध जी की कृपा से सबको मुक्ति मिलती है। बुध जी के उसी प्रकाश से परिचय कराने का प्रयास प्राणनाथ जी ने किया है। (प्र. ७६) जिसे 'तारतम का तेज' कहा गया है। आवश्यकता है आंतरिक प्रेम की। यह प्रेमभाव बहुत व्यापक है। इस प्रेम से ही अखंड लीला का आनन्द प्राप्त होता है। प्रेम के द्वारा ही जागनी लीला पहचानी जा सकती है। जागंनी लीला ही साधना की चरम उपलब्धि है— इसे समझो (प्रक. ८५/८६)। जागनी का आनन्द परमधाम में ही संभव है (प्र. ८८/८६)। वही हमारा अपना स्थायी और सच्चा मूल वतन है जहाँ श्याम श्यामा लीलामग्न हैं। वह आनन्द रूप सचमुच शब्दातीत है। किन्तु आत्मदान के बिना यह संभव नहीं। प्र. ६०-६१ उनकी मान्यता है कि देवचन्द की आत्मांगना सुन्दरबाई तारतम ज्ञान के माध्यम से संसार को प्रकाश से भरने और लोगों को जगाने आई हैं। श्री देवचन्द जी की कृपा से ही मेरे द्वारा यह संभव हुआ। कुरान और बाइबिल सब उसी के अंग है। मूल आत्मा में कोई अंतर नहीं है (प्र. ६४/६६)। जागृत आत्मा ही उस सुख और स्वरूप का अनुभव कर सकती है जिसकी चर्चा किरंतन के प्रकरण ११२ से ११७ में की गई है।

आध्यात्मिक उत्थान के लिये मार्ग दर्शन करते हुए महामति ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की अनदेखी नहीं की। समाज के बीच रहकर उन्होंने सामाजिकों के लिये संघर्ष किया, अनेकों कष्ट उठाये। उनका उद्देश्य आत्मोत्थान के साथ ही सर्वजनोत्थान भी था। उनके ग्रंथों में तत्कालीन स्थितियों के चित्रण के साथ उनके खोखलेपन और आडम्बरों का पर्दाफ़ाश किया गया है। वे स्पष्ट कहते हैं कि आज जो धर्म और सम्प्रदाय तथा जातियाँ हैं वे परस्पर क्रोध और द्वेष का ही कारण है। नाम मात्र के धार्मियों का कर्म और आचरण अमानवीय और अधार्मिक है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, होदी-बोदी, जैन कोई भी इन दोषों से मुक्त नहीं है—

हिन्दू मुसलमान रे फिरंगी कै जातें, होदी बोदी जैन अपार।
वादे सो क्रोध बधारिया, करी अगनी उदेकार।।
कहावै धरम पंथ रे लड़े माहें बैर, अंग असुराई को अधिकार।
पसू पंखी साधू न छूटे काहूँ, पुकार न काहूँ बहार।।

किरंतन, ५३/२,३

परिणामतः लोग वेद, पुरान, कुरान आदि का मनमाना अर्थ करते रहे जिसका परिष्कार बुध जी ने तारतम ज्ञान से किया।

किरंतन पढ़ने से ज्ञात होता है कि स्वामी प्राणनाथ समाज की इस विषम स्थिति से बहुत व्यथित थे। धर्म प्रधान देश की पुण्यभूमि के धर्माचार्य बातें तो धर्म और एकता की करते हैं किन्तु आचरण सभी के विभेदकारी हैं। फलतः जाति-पाँति, धर्म-कर्म, साधु संत सभी परस्पर विरोधी हो गये तथा अपने अपने कर्तव्य और दायित्वों के विपरीत चल रहे हैं। धर्म विनष्ट हो रहा है। रक्षक क्षत्रिय निष्क्रिय और निकम्मे हो रहे हैं, अधर्मी शासक नाना प्रकार के अत्याचार कर रहे हैं, आसुरी वृत्तियाँ बढ़ रही हैं। संसार का सर्वश्रेष्ठ देश भारत आज लज्जित हो रहा है—

छूटत है रे खड़ग छत्रियों से, धरम जात हिंदुआन।
सत न छोड़ो सतवादियों, जोर बढ़यो तुरकान।।

त्रिलोकी में उत्तम खंड भरत को, तामें उत्तम हिन्दू धरम।
ताकी छात्रपतियों के सिर, आए रही इस सरम।।
पन ने धारी रे पन इत ले चढ़या, कोई उपज्यों असुर घर अंस।
जुधने करने उठया धरम सो, सब देखें खड़े राजवंश।।

किरंतन, ५८/२,४,५

उन्होंने पण्डितों, पुजारियों, धर्माचार्यों, राजाओं, क्षत्रियों, विद्वानों, साधु, संतों, महंतों सभी को मिलकर लड़ने के लिये ललकारा। उन्होंने कहा कि यदि आप अधर्म के विरुद्ध नहीं लड़ते तो आपको सुर कहलाने का कोई हक़ नहीं है। जब तुम्हारे मंदिर, साधनास्थल गिरा दिये गये, तुम्हें अपमानित किया गया, फिर भी खड़े नहीं हुए तो ऐसा जीवन किस काम का ? मुग़ल शासक मूर्तियाँ तोड़ रहे हैं, जज़िया कर लगा रहे हैं, गायों का वध कर रहे हैं, धर्म परिवर्तन करा रहे हैं। और तुम सब आपस में लड़ते हुए तमाशा देख रहे हो। ऐसा कब तक होता रहेगा ?

राजकुली रे रखन रजवट, जो न आया इन अवसर।
धरम जाते न दौड़िया, ताए सुर कहिये क्यों कर।।
वेद व्याकरणी रे पंडित पढ़वैयों, गछ दीन इष्ट आचार।
पीछे रे बल कब करोगे, होत है एकाकार।।
सिध ने साधो रे संतो महंतो, वैस्नव भेष दरसन।
धरम उछेदे रे असुरें सबन के, पीछे परचा देओगे किस दिन।।
लसकर असुरों का चहुँ दिस फैलया, बाढ़यो अति विस्तार।
वन रे जंगल रे हिन्दू रहे परवतों, और कर लिये सब धुंधुकार।।
हरद्वार ढहाये उठाये तपसी तीरथ, गोवध कैयों विधन।
ऐसा जुलम हुआ जग में जाहेर, पर कमर न बाँधी रे किन। ।

किरंतन, ५८/८-१३

ऐसी ही विषम स्थिति में स्वामी जी ने वीर बुन्देला छत्रसाल को प्रेरित किया जिसने धर्म और मानवता की रक्षा के लिये उनके मार्गदर्शन में सेवा करने का संकल्प लिया—

बात ने सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने, आगे आए खड़ा ले तलवार।
सेवा ने लेई रे सारी सिर खेंच के, सांइएं किया सैन्यापति सिरदार।।

किरंतन, ५८/२०

हिन्दू धर्म तथा अन्य सम्प्रदायों में व्याप्त दुराचरणों तथा प्रतिष्ठा के लिये फैले अहंकारों पर भी उन्होंने सीधा प्रहार किया। परहित भाव से परिचालित धर्माचरण में प्रतिष्ठा का अहंकार धातक है। वह साधक को नष्ट कर देता है। (पृ. १०२) प्रतिष्ठा के अहंकार में कितने ही साधक पतित होकर नष्ट हो गये। प्रतिष्ठा तो विकृतियों का रसायन है—

बुजुरगी मारे रे साथ जी, बुजरगी मारे।
जिन बुजरगी लई दिल पर, तिनको कोई न उबारे।।

किरंतन, १०२/१

पापियों और क़ाफ़िरों ने इसी बड़ाई के लिये ईश्वर के प्रति लोगों के विश्वास को दूषित कर दिया। बड़े-बड़े साधक भी इससे मुक्त नहीं हो पाते। यह तो साक्षात शैतान है। स्वामी जी कहते हैं कि इसलिये मैं ऐसी प्रतिष्ठा को जूतों से ठुकराता हूँ—

मार प्रतिष्ठा पैजारों, जो आए दग़ा देत बीच ध्यान।
एही सरूप दज्जाल को, उड़ाए दे इने पेहेचान।।

किरंतन, १०३/२

हिन्दू धर्म में व्याप्त आडम्बरों पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि शरीर का शृंगार करने से कुछ होनेवाला नहीं है जब तक कि आंतरिक पवित्रता और सदाचार नहीं आता। आप रोज़ नहायें और साबुन लगायें तो भी मन साफ़ नहीं होगा जब तक कि आंतरिक निर्मलता न हो—

बली जो साध पुरुष कोय कहावे, ते कामस टालवा जाए।
सौ मन साबू घसी पछाड़े, निरमल तोहे न थाए।।

किरंतन, १२६/५५

अन्दर नाही निरमल, फेर फेर नहावे बाहेर।
कर देखाई कोट बेर, तोहे ना मिलो करतार।
कोट करो बन्दगी, बाहेर हो निरमल।
तो लो ना पीउ पाइये, जो लों ना साधे दिल।

किरंतन, १३२/१,२

होता यह है कि साधक धर्माचार्य के अवसान के बाद उनके अनुयायी के अपने अहंकार के कारण धर्म के साथ सामाजिक पतन हो जाता है। जैन धर्म का उल्लेख करते हुए प्राणनाथ जी ने कहा था कि ऋषभदेव के बाद लोगों ने उस धर्म को खण्डित कर दिया—

तमे जैन महेसरी सहुये सुण जो, आदे धरम छे एक।
रिषभदेव चाल्या पछी मारग, वेहेचाणा विवेक।।

किरंतन, १२६/६५

इसीलिये स्वामी प्राणनाथ ने सबका आह्वान करते हुए कहा कि यदि अज्ञान के अहंकारी सागर से पार होना चाहते हो तो तारतम वाणी का सहारा लेकर अहंकार शून्य हो जाओ—

काया बेड़ी समझ समर, सायर लख संसार।
मालम जीव जगाये साथी, मेहेराज पुनो पार।

किरंतन, १३३/२४

सबसे अच्छा है कि भेदभाव, पाखंड और अहंकार का दिखावा छोड़कर स्वयं को पहचान का प्रयास किया जाये। स्वयं की पहचान के बाद ही सत्य की पहचान होगी—

पहेले आप पहचानो रे साधो, पहेले आप पहचानो।
बिना आप चीन्हे पारब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो।।

किरंतन, २/१

जनहित में ही अपना हित निहित है। सत्य और परहित का मार्ग त्याग से संभव है। इसे ही धर्म कहा है जिसमें दूसरों के लिए कष्ट उठाना पड़ता है।

धरम तणों सुख भोगवो, पाप तणो लेओ दुख।
अगिन चोरासी लाख भोगवी, अंते आव्या मनुख।।

किरंतन, १२५/३८

महामति प्राणनाथ ने भारतीयता, राष्ट्रीयता, हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के प्रति

भी गहरी निष्ठा व्यक्त की है। वे भारतवर्ष में जन्म पाना सौभाग्य की बात मानते हैं। यह उनकी राष्ट्र प्रेम की भावना का परिचायक है।

वृथा का निगमों रे, पामी पदारथ चार।
देह मानखो खंड भरत नो, श्रेष्ठ कुली सिरदार।।

किरंतन, १२५/१

महामति जनभाषा को अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन मानते हैं। विद्यापति की 'देसिल बऊना सब जन मिट्ठा' और कबीर का 'संसकिरत है कूप जल भाषा बहता नीर" वाला भाव उनमें भी है। उनका कहना है कि सबकी मिली-जुली भाषा हिन्दुस्तानी ही है। इसी का प्रयोग किया जाना चाहिए :

बिना हिसाबें बोलियाँ, मिने सकल जहान।
सबसे सुगम जानके, कहूँगी हिन्दुस्तान।।
बड़ी भाषा एही भली, जो सबमें जाहेर।
करने पाक सबन को, अंतर माहे बाहेर।।

सनंध, १/१५,१६

भारतीय संस्कृति के सौभाग्य :

भारतीय देवभूमि में विभूतियों का अवतरण सदा से होता रहा है। इसी यशस्वी परम्परा में स्वामी प्राणनाथ का आगमन भारतीय आध्यात्मिक चिंतन और संस्कृति के पल्लवन के लिये सौभाग्य की बात थी। उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी वेद कतेब का विश्लेषण कर एकता की प्रगतिशील मिसाल क़ायम की। खुली आँखों से सब कुछ देखकर अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा तो उन्होंने कहा ही, लोगों को अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों के प्रति सजग और सक्रिय भी बनाया। बुन्देलखण्ड का सौभाग्य है कि ऐसी दिव्य विभूति ने पन्ना को अपना साधना स्थल बनाया और 'जागनी लीला' का बोध देकर निराश, अभिशप्त तथा सोई मानवात्मा को जागृत और प्रबुद्ध किया।

स्वामी प्राणनाथ के ग्रंथों का पूर्ण मनोयोग से विस्तृत विश्लेषण अभी शेष है। जिस दिन यह पूरा होगा उस दिन सम्पूर्ण समाज को नये अखंड आलोक की प्राप्ति होगी।



महामति की दार्शनिक अवधारणा

डा. शकुन्तला गुप्ता, एम.ए.,पी-एच.डी.
प्रयाग विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

महामति प्राणनाथ औपचारिक रूप से किसी विशेष दार्शनिक पद्धति को लेकर नहीं चले। उनके दर्शन में रांसार के सभी दर्शन, धर्म पद्धतियों का समावेश एवं स्पष्टीकरण हुआ है। सर्व धर्म, जाति, समाज एवं भाषा के समभाव का संदेश देनेवाली उनकी जागनी लीला ही उनके समभावी दर्शन का प्रत्यक्षस्वरूप है।

महामति प्राणनाथ का आयाम जितना व्यापक है उतना ही गम्भीर है। इसके लिये 'कुलजम स्वरूप' में संगृहीत सत्रह ग्रंथों का विश्लेषण आवश्यक है। सब ग्रंथों में गुँथी दार्शनिक विचारधारा के अनुसार उनका कथन है।

यह सृष्टि अक्षरातीत ब्रह्म की कल्पना पर आधारित नश्वर है। उस एक अद्वैत ब्रह्म की अविनाशी सता अक्षर ब्रह्म है और यह सृष्टि क्षर है। क्षर अक्षर से तीत अक्षरातीत ही परम उपास्य इष्ट हैं। वे सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अनन्त और मूल सत्य हैं।

क्षर-अक्षर और अक्षरातीत की तीन भूमियाँ जगत्, अक्षरधाम एवं परमधाम मानी गयी हैं। अक्षरधाम परमधाम का ही अंग है और क्षर जगत् अक्षर ब्रह्म के कल्पना लोक, अव्याकृत में से सूर्य किरणों में तैरते अणुओं की भाँति प्रतीत हो रहा है। इस प्रतीति का आधार अक्षर ब्रह्म की माया या मूल प्रकृति है जो अपनी सम्मोहक शक्ति से सत्य को ढँक कर असत्य के विस्तार द्वारा जीवात्माओं को मोहित या भ्रमित करती है।

जब जल पृथ्वी, अग्नि, वायु आदि तत्त्वों का विकास नहीं हुआ था, अक्षर ने निराकार, निरंजन अवस्थाओं को विस्तृत नहीं किया था तब भी माया या मूल प्रकृति का अस्तित्व अक्षर ब्रह्म के मन में बीजरूप से स्थित था। उस समय परमधाम में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की दिव्य लीलाएँ सम्पन्न हो रही थीं। परमधाम में नूरमयी, चिन्मय अखंड ऐश्वर्य युक्त, उन्नत, असीम उच्च अट्टालिकाओं, महलों के समान विस्तृत वृक्षावली, सागर, द्वीपादि का वर्णन परिक्रमा ग्रंथ में किया गया है। महामति कहते हैं कि शब्दातीत लीला को इसलिये शब्द दिये गये कि मन की उड़ान रुके और आत्मा को ध्यान का आधार मिल जाय। श्री राज श्यामा जी की क्रीड़ा स्थली परमधाम चिन्मय है और शाश्वत आनन्द साधनों से भरपूर है। परब्रह्म की आनन्द अंग श्री श्यामा की अंग और कलास्वरूप आत्माएँ उस परमधाम में ब़िहार करती है। उन ब्रह्मात्माओं को सत्, चेतन और आनन्द की अनुभूति दिलाने के लिये उन्हें क्षर जगत की सुख-दुख पूर्ण लीला दिखाई गयी।

सम्पूर्ण प्रकृति का सूत्रधार अक्षर ब्रह्म है। जगत् रचना के लिये सम्मोहनी माया को विच्छुरित किया गया तो उसने आवरण से सच्चिदानंद स्वरूप को ओझल कर दिया। जब कुछ भी दिखायी न देने की स्थिति रह गयी तो उसका नाम निराकार, निरंजन और शून्य पड़ा। अक्षर ब्रह्म और ब्रह्मात्माओं ने उस शून्य अवस्था में मूल परमधाम में देखी वस्तुओं की कल्पना की, उन्हें स्वप्न में देखी वस्तुओं के समान जो कुछ भी देखा वही यह क्षर जगत् बना जो पल-पल मिटता चला जा रहा है।

अक्षर ब्रह्म और ब्रह्मात्माओं की सम्मोहित स्वप्निल अवस्था का नाम मोह सागर या नींद है। उसमें स्वप्न में खड़े अपने स्वरूप की तरह अक्षर ब्रह्म नारायण रूप में प्रकट हुए। मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ यह विचार आते ही उनके अपने ही अंग शेष जी ने उनके लिये शय्या बनाई और महाविष्णु (लक्ष्मी सहित) उस पर विराजमान हुए इन शेषशायी नारायण की नाभि से कमल सदृश सिंहासन प्रकट हुआ। उस पर ब्रह्मा, विष्णु महेश का प्रादुर्भाव हुआ जो रज सत् और तम गुणों के प्रतीक और सृष्टा बने। पाँच तत्त्वों का उद्गम हुआ तीन गुण और पाँच तत्त्वों के संघर्षण और मिश्रण से चौदह लोक सृष्टि अस्तित्व में आई। उसमें जल कणों में सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह असंख्य देवों ने प्रकट होकर सृष्टि-संचालन किया। ब्रह्म की शक्तियों के प्रतिबिम्बित रूप होने के कारण वे सब ब्रह्म ही कहलाये। ब्रह्म के उत्कर्ष को धारण करके वे पूज्य बन गये।

जिस परमात्मा की माया है, वही इसे जानते है। निष्कलंक बुध महामति रूप में प्रकट होकर अपनी आत्माओं को माया का खेल दिखाकर लौटा ले जाने के लिये अवतरित हुए हैं। वही बुद्ध जी ब्रह्मात्माओं की पहचान बताकर जगत के बार-बार जन्मते-मरते जीवों को मुक्ति धामों—बहिश्तों में अनन्त जीवन और परम सुख प्रदान करेंगे।

जब जीव जगत् और शरीर का मोह त्याग देता है तो वह इनके बन्धन से मुक्त हो जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये महामति जाग्रत गुरु की शरण में जाने का आग्रह करते हैं।

महामत कहे गुर सोई कीजे, अलख की देवे लख।
इन उलटी से उलटाय के, पिया प्रेमे करे सनमुख।।

महामति सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी में श्यामा जी का और स्वयं में इन्द्रावती सखी का अवतरण मानते हैं। श्री देवचन्द्र जी के शरीर त्याग देने पर श्यामा अक्षरातीत का आवेश, नूर, हुक्म (मुहमद) और तारतम (बुद्धि), लेकर इन्द्रावती में समाहित हुई तो वे महामति कहलाये। महामति ही सभी अवतारी पुरुषों, पीर, पैग़म्बरों के समूह अवतार हैं, जो समस्त जगत् को तारतम ज्योति से जगाने प्रकट हुए है :—

भई सोभा संसार में, अति बड़ी खूबी अपार।
दुनिया उठाइ पाककर, न जरा रहया विकार।।
महामत कहें कोई दिल दे, ए देखेगा मजकूर।
तिन रूह पर इमाम का, बरसे वतनी नूर।

किरंतन, १२२/८

महामति कहते हैं जो अपना हृदय समर्पित कर इस चर्चा में रहेंगे उन आत्माओं पर परमधाम से अवतरित इमाम मेहदी निष्कलंक बुध जी का नूर बरसेगा।

सब लोग अपनी बुद्धि द्वारा क़ुरान, पुरान, वेद, कतेब सबके मनमाने काल्पनिक

अर्थ कर रहे थे। महामति ने सबके स्पष्ट निर्धारित अर्थ किये। चौदह लोकों की उलझनें मिटाई। अनादि काल से मन में व्याप्त संशयों को सुलझाकर मोह अहंकार को दूर किया— मानव खंड-खंड होकर द्वैत एवं दुनिया की पीड़ा सहन कर रहे थे। ऐसे जटिल समय में महामति ने तारतम के बन्धन सूत्र से सब को एक कर दिया।

महामति कहते हैं कि वेद कतेब ग्रंथों में उद्घोषित कियामत, जागरण की घड़ी आ गयी है। मुहम्मद साहब के बाद ग्यारहवीं सदी में आकर इमाम मेहदी बुध निष्कलंक जी ने आकर सबके हिसाब बेबाक कर दिये—

अब सो समया आय पोहोंचिया, मेरे तो लेना सिर।
धनियें बानी करता मुझे किया, सो मैं मुख फेरूँ क्यों कर।।

किरंतन, ६८/४

अपने मुख से उच्चारित ज्ञान के शब्दों को जीवन में उतार लेने एवं तदनुसार आचरण करने का समय आ गया है, अब मैं पीछे नहीं हट सकता।

हदीसों में लिखा है कि क़यामत के दिन इसराफील इमाम मेंहदी के अन्दर बैठकर दो बार सूर फूँकेगा। पहली बार में पहाड़ रूई की तरह उड़ जायेंगे, दूसरे सूर में सबको क़ायम किया जायेगा। महामति ने ज्ञान का बिगुल बजाकर थोथे धर्मकांड, अज्ञान, अहंकार के पहाड़ उड़ाकर तारतम ज्ञान से सबकों अखंड बहिश्तों में क़ायम किया। ब्रज, रास के अक्षरातीत कृष्ण, हुकुम लानेवाले मुहम्मद, तारतम लानेवाले श्री देवचन्द्र और जागनी — क़यामत के मालिक श्री प्राणनाथ जी को पहचान कर बंदगी करनेवाले क़यामत के दिन उठा लिये जायेंगे। उस दिन उनके कामों का बड़ा भारी बदला मिलेगा। वे लोग फ़ज्र या भोर के उजाले में परमधाम में उठेंगे। महामति ने वर्ग, वर्ण, लिंग और जाति के भेद मिटाकर सबको परमगति दिलाने के लिये जागनी का संदेश दिया। पीड़ित हिन्दू वर्ग में स्वधर्म चेतना जगाकर उन्हें संगठित होकर अधर्म का सामना करने का आदेश दिया तो अत्याचारी मुसलिम शासकों को मुहम्मद साहब के क़ुरान की दुहाई देकर कहा कि रसूल ने मेहर से भरे दिल वाले को मुसलमान कहा है। अपने धर्म के सत्यस्वरूप को पहचानों और जुल्म न करो—

मुसलिम को मुसलिम की, हिन्दुओं हिन्दुअन की तर।
ए समझे सब अपनी मिने, जब आये इमाम आखर।।

सनंध, ३३/२०

महामति ने बताया कि मुहम्मद साहब ने जिस हक़ीक़ी दीन इस्लाम की ओर संकेत किया था, उसे स्वयं इस्लाम और कुरान को मानने वालों ने नहीं समझा। उन्होंने कुरान को हिन्दू धर्म ग्रंथों के साथ मान्यता दी और उसके गुह्य शब्द संकेत सारी मानवता के लिये स्पष्ट कर दिये। उन्होंने गीता के अनुरूप सत्रहवीं शती में कृष्ण के व्यापक स्वरूप की अवतारणा की।

महामति श्री प्राणनाथ द्वारा प्रतिपादित कृष्ण पुष्टि मार्ग, हरिदास, चैतन्य महा प्रभु प्रेरित वैष्णव संप्रदायों से भी अधिक व्यापक हैं। गीता के पुरुषोत्तम कृष्ण ही उनके अक्षरातीत कृष्ण है। जो अंश रूप से सभी अवतारों में प्रतिबिम्बित होते हुए भी उनसे भिन्न अन्य हैं। उन्होंने रसेश्वर कृष्ण को लोक रंजक, धर्म रक्षक रूप में भी देखा। लोकरंजक रूप में वे बृज रास के स्वरूप हैं और धर्म रक्षक रूप में सत्य धर्म के प्रतिष्ठापक—

साहेब आए इन जिमी, कारज करने तीन।
सबका झगड़ा मेट के, या दुनिया या दीन।।

खुलासा, प्र० १३

वे मानते हैं कि जिस श्री कृष्ण ने ब्रज और रास लीला की, वही पैगम्बर ईसा-मूसा के ज्ञान को समाहित करनेवाला मुहम्मद हुआ। वही अब आखिरुल जमा इमाम मेहदी, निष्कलंक बुध रूप में प्रकट होकर, धर्म ग्रंथों की कड़ियाँ मिलाकर सत्य धर्म की प्रतिष्ठा कर रहा है।

महामति प्राणनाथ ने जिस गहनता से पुराण व कुरान का समन्वय किया वह उनकी अपनी धार्मिक आस्था थी। इसी समन्वयता के आधार पर साहित्यकारों ने उनकी वाणी को भक्तिकाल साहित्य की पाँचवीं धारा स्वीकार किया है। इसमें उस समय की चारों धाराओं सूफ़ी, राम, कृष्ण और निर्गुण के कुछ न कुछ तत्त्व तो हैं ही, उनके साथ कुल अलगाव और वैचारिक वैशिष्ट्य भी मिलता है जो इनमें से किसी धारा में समाहित नहीं हो पाता। उनकी समन्वयवादी प्रवृत्ति ने धर्म का व्यापक परिष्कृत रूप प्रकट किया है। महामति की जागनी का स्वरूप उसी व्यापक स्वरूप पर केन्द्रित है। श्री प्राणनाथ ने श्री राज श्यामा के जिस युगलस्वरूप की आराधना प्रतिपादित की, स्वयं देवी-देवता उसका ध्यान करते हैं, उसके संकेतों पर चलकर मृष्टि संचालन करते हैं।

महामति प्राणनाथ आत्मा को परब्रह्म की अर्द्धांगिनी या सखी मानकर, परात्पर ब्रह्म की मानसिक उपासना करने का आग्रह करते हैं। ब्रह्म, ईश्वरी और जीव सृष्टि में ब्रह्म नित्य मुक्त, ईश्वरी मुमुक्षु और जीव सृष्टि बद्धमुक्त है। इनके आचरण, साधनों एवं पूर्वाग्रहों से इन्हें पहचाना जा सकता है। यह सारा संसार चौदह लोक के अधिकारी देवताओं की पूजा करता है, इतने लोगों को तो यह भी पता नहीं कि इनसे ऊपर भी कोई परम सत्ता विद्यमान है—

चौदह भवन के जो धनी, ए विश्व पूजत सब ताय।
ए सुध नहीं काहू को, कोई और है इप्तदाय।।

किरंतन, ७४/२२

अखंड परमधाम में श्याम-श्यामा अपनी अंगनाओं सहित विराजमान हैं। लीला के लिये परमधाम के पच्चीस पक्ष बताये गये, रंग महल, फूलबाग़, नूर बाग़, पश्चिम चौगान। महान बन, पुखराजी पहाड़, यमुना सात घाट सहित, हौज कौसर, मानिक पहाड़, जवेरों की नहरें, आठ सागर और आठ भूमि खंड—

धाम तलाब कुंज बन सोहे, पुखराजी यमुना जी लहिये।
आठों सागर आठ जिमी के, ए पच्चीस पख धाम धनी के।।

इसी परम धाम में परब्रह्म की दिव्य लीलाएँ सम्पन्न होती हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म अद्वैत स्वरूप हैं, आत्माएँ उनके अंग हैं, समस्त परमधाम, वस्त्राभूषण आदि उनके नूर का विस्तार है। नित्य नवीन नूरमय यौवन के तेज से उनका अंग-प्रत्यंग देदीप्यमान है। लीला सगुण रूप से सम्भव है इसलिये परब्रह्म को सगुण, शुद्ध साकार चिन्मय स्वरूप कहा गया है। और उसको पाने और आनन्द प्राप्त करने का मार्ग प्रेमाभक्ति है।

महामति ने उपासना में बाह्याडम्बरों को महत्त्व नहीं दिया। बाह्याचरण से अन्तर शुद्धि नहीं होती। मन पवित्र हो तो आचरण स्वयं ही शुद्ध हो जाता है। मन की शुद्धि ओर मन को समर्पित किये बिना ब्रह्म को पाना असम्भव है।

जैसा बाहर होत है, जो होए ऐसा दिल।
तो अधखिन पीउ न्यारा नहीं, माहें रहो हिलमिल।।

किरंतन, १०८/३३

जो जिस भावना से जैसी अराधना करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है—

जिन जैसा किबला सेइया, आंगू आया तैसा तिन।
दुनी कारन खोवें दीन को, तो आखर कही जलन।।

किरंतन, १०८/३३,

महामति का जागनी आंदोलन आध्यात्मिक जागरण के लिये था परन्तु आत्म जागृति के लिये सभी स्तरों पर सजग होना पड़ता है। इसलिये उन्होंने विश्व देश, समाज और मानव की कमियों की ओर भी ध्यान दिया और सुधार लाने का प्रयास किया। महामति रूढ़िग्रस्थ वर्ण-वर्ग व्यवस्था को जन्म पर आधारित नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में मनुष्य तीन तरह के हैं। परमात्मा के प्रेमी, साधना से जीवन सुधारनेवाले और कर्मों के अनुसार बार-बार जन्म लेनेवाले साधारण जीव। जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था ने हिन्दू जाति को कुण्ठित कर दिया है। धार्मिक संकीर्णता, ओछे कर्मकांड एवं अनावश्यक रूढ़ियों को चलाते जाने का उन्होंने विरोध किया। औरंगज़ेब जैसे शक्तिशाली से भी उन्होंने टक्कर ली। अपने जागनी आंदोलन में वे अनेक राजाओं के सम्पर्क में आए लेकिन कहीं भी उन राजाओं को धार्मिक संकीर्णता से बँधने नहीं दिया।

औरंगज़ेब की धर्म विरोधी नीति के विरुद्ध उन्होंने राजाओं को संगठित किया।

महाराज छत्रसाल ने इनके आह्वान को सुना। उसे उन्होंने आर्थिक सहायता, मनोबल एवं आत्मिक शक्ति प्रदान कर एक विशाल राज्य का स्वामी बना दिया। छत्रसाल ने भी अनेक मनस्वी प्रचारकों को भेजकर महामति का संदेश भारत एवं आसपास के देशों में पहुँचाने का प्रयास किया।



निजानन्द स्वामी का जीवन-दर्शन

पं. आनन्द दास शर्मा

धाम, पन्ना (म. प्र.)

सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म परमात्मा ने अपने विचित्र एवं विशिष्ट सृष्टि सृजन में मानव में उन सम्पूर्ण शक्तियों को समाविष्ट किया है, जिनका आधार लेकर वह लघु से प्रभु, नर से नारायण एवं पुरुष से पुरुषोत्तम बन सकता है। केवल प्रश्न है उन अन्तर्निहित आत्म शक्तियों को पहचानने एवं उन्हें विकसित करने का।

पेहेले आप पेहेचानों रे साधो, पेहेले आप पेहेचानो।
बिना आप चीन्हे पारब्रह्म को, कौन कहे मैं जान्यो।।

किरंतन, प्र० २/१

प्रणामी इतिहास (बीतक साहित्य) के अनुसार सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी महाराज (सन् १५८१-१६६६) के अन्तर में बाल्य-काल से उठे प्रश्न कि 'हौं मैं कौन? कहाँ से आयो ? कहाँ कंत? मैं खोज न पायो' का समाधान इस जगत के लोग कभी भी नहीं कर पाये। यद्यपि आपने अपनी जन्मभूमि (उमरकोट) के प्रायः समस्त साधु-सन्तों से उपरोक्त प्रश्नों के समाधान हेतु सम्पर्क स्थापित किया।

'चारों तरफ भेष सब त्रटके। बिन प्रीतम मम नेक न अटके?' किन्तु वहाँ कहीं भी समाधान नहीं मिला और न ही अशान्त मन को शान्ति प्राप्त हो सकी।

तत्कालीन कच्छ प्रदेशान्तर्गत भोजनगर सभी धर्मों का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। वे भोजनगर की ख्याति भी सुन चुके थे। अतः उन्होंने भोजनगर जाने का दृढ़ संकल्प किया। संयोगवश कुछ ही समय उपरान्त उमर कोट के वजीर के लड़के की बारात भोजनगर प्रस्थान कर रही थी। उसका पीछा करते हुए वे कच्छ-रन में भटक रहे थे, तब प्रभु ने सिपाही भेष में दर्शन दिया एवं जटिल दुर्गम मार्ग को अपनी विशिष्ट कृपा प्रदर्शित कर शीघ्रगामी बना दिया और पथ प्रदर्शन कर अन्तर्धान हो गए। उस समय की उनकी मनःस्थिति एवं सुदृढ़ विचारों को देखिए—

यह परतीत करत हिय हेरे। है साहिब सिर ऊपर मेरे।।
कैसे कर अब छोड़े सोई। जिहिं आतम दर्शन है धोई।।

मेहराज चरित, प्र० २/८६

और अपने मानस को दृढ़तर करते हुए चिन्तन करने लगते हैं कि—

कितहूं चित तैं जान न दैहों। हिये खोज जाहिर कर लैहों।।
यह दृढ़ता उर अन्तर आई। सहजहिं चले जात निधि पाई।।

मे० च० , प्र० २/८७

इस प्रकार अन्तर में तो अनेक प्रश्न उद्वेलित हो रहे थे। अब अपने परम प्रियतम को हृदय में ही खोजने की अभिलाषा दृढ़तर होती गई। जैसे ही वे धर्म प्राण नगरी भोजनगर में पहुँचे तो वहाँ कितने ही सन्यासी, कापालिक, वैरागी, फकीर, मुल्ला एवं काज़ी के पास भी गए। उनसे अपने प्रश्नों का समाधान चाहा किन्तु अन्तराल में गूँजते प्रश्नों का कहीं भी समाधान न मिल सका। अन्ततः भक्त शिरोमणि परम वैष्णव ज्ञानी गृहस्थ संत श्री हरिदास जी की शरण में गए। उनकी सेवा करने में तल्लीन रहने लगे। श्री देवचन्द्र जी की भक्ति से प्रसन्न होकर श्री हरिदास जी ने उनको राधावल्लभी सम्प्रदाय में दीक्षित करने का विचार किया। हरिदास जी ने कहा, हे देवचन्द्र, इससे पूर्व जो भी मंत्र प्राप्त किया हो, उसे लिखकर एक रोटी में रखकर विसर्जन कर दीजिए। देवचन्द्र ने कहा आपका मंत्र सबल एवं प्रभावशाली होगा तो अवश्य ही वह मंत्र क्षीण होकर हृदय से आप ही निकल जायेगा। इस विवेकमय उत्तर को श्रवण कर श्री गुसांई जी बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने एक दिन निश्चित कर 'भजमन श्री वृन्दावन चन्द्र, कुञ्ज बिहारी नित्य बिलास' मंत्र प्रदान किया। संयोगवश, उसी दिन को उनके पिता श्री मतू मेहता जी ने उनके ब्याह का दिन नियत कर रखा था। पिता-पुत्र में अनेकानेक मतभेद होते हुए भी श्री मतू मेहता जी ने उनका विवाह कर दिया।

सांसारिक लिप्सा तो उनकी थी ही नहीं। अतः श्री हरिदास जी की सेवा सत्संग में आप अपना समय और अधिक लगाने लगे। भक्ति-रस में इतने निमग्न हो गए कि रात्रि को उठ-उठकर नित्यप्रति श्री हरिदास जी के गृह मंदिर की परिक्रमा करते। प्रातः से सायं तक भजन-पूजन में ही सम्पूर्ण समय व्यतीत होने लगा।

एक दिन एक व्यक्ति को अति विषैली बिच्छी ने डंक मारी। व्यक्ति बेहोश होकर मृतक अवस्था में श्री गुसाईं जी के श्री चरणों मे लाकर रखा गया। श्री गुसाईं ने अपने प्रभावशाली मंत्र द्वारा क्षणमात्र में बिच्छी का ज़हर उलट दिया। व्यक्ति हँसता हुआ घर चला गया। पास ही बैठे श्री देवचन्द्र जी से श्री हरिदास जी ने परोपकारी मंत्र सीख लेने का आग्रह किया। किन्तु परम तत्त्वदर्शी श्री देवचन्द्र जी ने नम्रतापूर्वक टाल दिया कि—

हमको बड़ो मंत्र तुम दीन्हों। सो हम हिरदे में रख लीन्हों।।
हमकों मंत्र दियो तुम सोई। तिन समान दूजो न कोई।।

मे० च०, प्र० २/१३७

श्री देवचन्द्र जी यह उत्तर पाकर हरिदास जी गद्‌गद् हो गये—

जब हरिदास बचन सुनि पावा। रीझ रीझ तब शीश डुलावा।।
लागे करन सिफत बहुतेरी। प्रेम दृष्टि सब फिरत न फेरी।।

मे० च०, प्र० २-१३८

आगे तो गुरुदेव ने यह भी कह दिया कि—

जे बातें तुम सहज उचारी। पहुँचे तहाँ नहिं बुद्धि हमारी।।

यथार्थतः जबसे श्री देवचन्द्र ने गुरुमंत्र प्राप्त किया था, तभी से गुरु मंदिर की सेवा दिन-रात तन्मयता से करने लगे थे। प्रातः से सायं तक गुरु-सेवा अथवा गुरु-मंदिर का कोई न कोई कार्य करते रहना— आपने अपना नियम बना लिया था। अनेक बार श्री हरिदास जी ने उनको आधी रात्रि को टोका और मना भी किया। आपका अथक परिश्रम, सेवा-भाव देखकर एक दिन श्री गुसाईं जी ने कहा—

बालमकुन्द ठाकुर मोरे। चाहत हौ तो लेहु सबेरे।।

मे० च०, प्र० २/१४४

आप अपने घर में ही ठाकुर जी को ले जाकर सेवा करें।

श्री देदचन्द्र जी के मन की मुराद पूरी हो रही थी। अतः अत्यन्त प्रसन्न हुए। श्री गुसाईं जी ने ब्राह्म मुहूर्त में आपको बुलाया था। यहाँ एक अलौकिक घटना घटी। प्रातः मंदिर में श्री ठाकुर जी के उठापन हेतु प्रवेश किया तो देखते हैं कि ठाकुर श्री बालमकुन्द जी सिंहासन से ग़ायब हैं।

यह देखकर गुरु शिष्य दोनों अपार दुःख एवं निराशा के सागर में डूब गए। सारा दिन व्यतीत हो गया। घर में सभी की एकादशी हो गई। किसी ने भी भोजन नहीं किया। हरिदास जी तो एक ही आसन पर बैठे रह गए। छः प्रहर तक आशा-निराशा लिये ध्यान मग्न हो कुछ जाग्रत कुछ स्वप्नावस्था में बैठे रहने पर देखते हैं कि ठाकुर जी तो अपने उसी सिंहासन पर विराजमान हैं। श्री हरिदास जी ने बड़े कातर स्वर में विनम्र हो विनय किया—कि प्रभो, आप कहाँ थे? मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि आप रुष्ट हो गए और मैं दिन भर आज दर्शनों से वंचित रह गया। श्री ठाकुर जी ने कहा—

देवचन्द्र को सेव हमारी। जब ही दिल में देन बिचारी।
तबहीं उठ हम अनत सिधारे। आये नहीं दृष्टि तुम्हारे।।
श्री देवचन्द्र की अकथ कहानी। सो तो तुमने नेक न जानी।
ये तो परमधाम के वासी। जिनके ठाकुर हैं अविनासी।।

मे० च०, ३/१८-१०

जैसे ही तन्द्रा भंग हुई, तो सामने अपने पूर्व नियत स्थान पर ही ठाकुर जी विराजमान थे। श्री हरिदास जी का मुखकमल खिल गया। वे यह शुभ सन्देश देने हेतु अविलम्ब श्री देवचन्द्र जी के घर की ओर दौड़े। रास्ते ही में ब्रह्ममुनि श्री देवचन्द्र जी से भेंट हो गई और पारसमणि से स्पर्श करते ही सोना बन गए और बोले कि आपके कारण ही मेरा श्री ठाकुर जी से साक्षात्कार हुआ है एवं मुझे उनसे संवाद करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। क्षण भर में सम्पूर्ण घटना कह सुना—

मिले बीच मारग में आई। प्रीत रीत कछु बरनी न जाई।।
श्री हरिदास प्रेम अनुरागे। शीश नवाय दौरि पग लागे।।

मे० च०, प्र० ३/२५

इस प्रकार, पारसमणि स्वरूप श्री देवचन्द्र जी महाराज को जब अपने अन्तर के प्रश्नों का समाधान श्री हरिदास जी के सान्निध्य से भी अप्राप्त रहा तो अन्ततः आप धर्म-केन्द्र नगरी जामनगर पहुँचे। वहाँ भी दीर्घ काल तक नाना धर्मों के आचार्यों, विद्वानों एवं संत महन्तों से सम्पर्क स्थापित किया किन्तु कहीं भी तृप्ति नहीं मिल सकी। अन्ततोगत्वा उनका मिलन श्री कान्ह जी भट्ट, भागवत-रहस्य-प्रकाण्ड सुयोग्य, प्रवीण कथाकार से हुआ और उन्होंने भी भट्ट जी से निष्ठापूर्वक निरन्तर चौदह वर्ष तक श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण, चिन्तन एवं मनन किया। यहाँ भी पारस को पाकर श्री भट्ट जी आत्म विभोर हो जाते। श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रस्तुत अनूठे प्रश्नों को सुनकर श्री भट्ट जी हैरान थे। अनेक अवसर ऐसे भी आए कि अन्य श्रोतागण भी श्री देवचन्द्र जी के प्रश्नोत्तर सुनकर अवाक् रह जाते। चौदह वर्ष निरन्तर कथा श्रवण करने पर भी 'मैं कौन? कहाँ से आईया ? कहाँ है मेरा ठौर?' आदि प्रश्नों का समाधान जब श्री भट्ट जी भी न कर सके, तब उनके मानस में

खलबली मच गई। फलतः चिन्तन में तीव्रगति पैदा होने लगी एवं स्वयं में निहित परम सत्ता का निरन्तर आत्म चिन्तन द्वारा पहचानने का प्रयास करने लगे।

वास्तव में यदि दार्शनिक तत्त्वों को कसौटी पर कसा जाय तो यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा में परमात्मा का अंश होता है और अंश ज्ञातव्य हो जाने से अंशी का बोध हो जाता है। अंश का रूप यदि ज्ञात हो जाय तो विस्तृत परमसत्ता का रहस्य सामने उभर आता है।

निरन्तर आत्म-चिन्तन द्वारा ही श्री देवचन्द्र जी ने अपने अन्तर में लुप्त शक्तियों को विकसित किया। उनके अनुरूप अपने को ढाला, कठिन साधनाओं से शरीर तपाया और अनन्य प्रेमलक्षणा पराभक्ति, जिससे प्रसन्न होकर अनादि अक्षरातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण जी ने स्वयं प्रकट होकर आपको दर्शन दिया— 'तहाँ आय दीदार दिया तुमको है मेरी पहिचान। वय किशोर अति सुन्दर, स्वरूप खेला जो वृन्दावन'' और अपने नाम, धाम का परिचय दिया। साथ ही श्री देवचन्द्र जी से जानना चाहा कि—

तूँ कौन आई इत क्योंकर, कहाँ है तेरा वतन।
नार तूं कौन खसम की, दृढ़कर कहो वचन।।
तूँ जागत है के नींद में, करके देख विचार।
विधि सारी याकी कहो, इन जिमी के परकार।।

कलश, प्र० १/६, ७

श्री देवचन्द्रजी के समक्ष अभी तो तीन ही प्रश्न थे, जो आपको बाल्य-काल से ही यत्र-तत्र भटका रहे थे। किन्तु अब और तीन नवीन प्रश्न पुंज ज्योतिप्रदाता दिव्य स्वरूप ने उनके समक्ष रख दिये। फिर भी सम्पूर्ण साहस एकत्रित कर उन्होंने दिव्य-स्वरूप के समक्ष निवेदन किया—

मैं न पहचानो आपको, न सुध अपना घर।
पिऊ पहचान भी नींद में, मैं जागत हों या पर।।

कलश, प्र० १/१०

और देवचन्द्र जी ने नवीन प्रश्नों का प्रत्युत्तर निवेदन किया कि—

मूल बिना ये मण्डल, नहीं नेहचल निरधार।
निकसन कोई न पावहीं वार न काहू पार।।

कलश, प्र० १/२८

देवचन्द्र जी ने अपने गत-जीवन के अनुभव जो अब तक प्राप्त किए थे, उनको आधार मानकर इस नश्वर जगत, माया और इस खेल में खेले जा रहे अनेक खेलों का ब्यौरा उत्तर के रूप में किस प्रकार प्रस्तुत किया, देखिये—

यामें ज्यों ज्यों खोजिए, त्यों त्यों बंध पड़ते जायें।
कई उद्यम जो कीजिए, तो भी तिमर न छोड़े तायें।।
पंथ पेड़े कई चलहीं, कई भेष दरसन।
ता बीच अन्धेरी ज्ञान की, पावे न कोई निकसन।।

कलश हि, १/२९,३०

धरे नाम खसम के, जुदे जुदे आप अनेक।
अनेकं रंगे संगे ढंगे, विधि विधि करे विवेक।।
खसम एक सबन का, नाही दूसरा कोय।

ये विचार तो करे, जो आप सांचे होय।।

कलश हि. १४/३३,३४

ये सुध अजूं किन न पड़ी, बढ़त जात विवाद।
खेल तो एक खिन का, पर जाने सदा अनाद।।

वही, १/३२

ये देखी बाजी छल की, छल की तो उल्टी रीत।
इसमें सीधा दौड़ के, कोई न निकस्या जीत।।

वही, २/६

इत जुध किए कई सूरमें, पहन टोप सिले पाखर।
बचन बड़े रन बोल के, उलट पड़े आखर।।

वही, १/३१

इस प्रकार अस्थिर और बेसहारे टिकी हुई धरती और उसमें माया के भ्रम-जाल से बचने के लिए जितने प्रयत्न किए जाते हैं, उतनी ही उलझनें उत्पन्न होती हैं। इस विश्व में प्रचलित धर्म-मार्गों की तो एक विचित्र विडम्बना है। इनके स्वरूप और शास्त्रों में निहित संशयात्मक ज्ञान के जाल से निकलना और भी टेढ़ी खीर है। क्योंकि इन शास्त्रों में परमात्मा के विभिन्न नाम रखे हैं, जिनके अनुरूप साधना करना बड़ा कठिन है। इतना ही नहीं, लोग तो इसी नश्वर जगत को शाश्वत मानते हैं। यथार्थतः सम्पूर्ण जगत एक छल है, जिससे निकलना सत्पुरुषों के बस के परे की बात है। इस प्रकार अन्त में विश्व चरित्र-चित्रण करते हैं—

यह तो कही इन इण्ड की, पिया पूछयो जो प्रश्न।
कहूं और अजूं बहुत हैं, वे भी सुनो बचन।

कलश, प्र० १/३७

इसके पश्चात् ही श्री कृष्ण पूर्णब्रह्म परमात्मा ने श्याम जी के मन्दिर में ही आपके प्रश्नों का इस प्रकार समाधान किया—

तुम आये अरस से, जगाओ अपनी आतम।
नाम तुम्हारा बाई सुन्दर, खेले तुम ब्रज रास में।
मनोरथ पूरन न भए, ये तीसरा हुआ तिन से।।
अब सब साथ बुलाय के, आओ अपने धाम।

लालदास बीतक, प्र० ६/३०, ३१

श्री देवचन्द्र जी ने चौदह वर्ष तक सततं निष्ठाबंध श्रीमद्भागवत श्रवण की थी। कितनी ही शारीरिक व्याधियों, माता-पिता द्वारा प्रस्तुत अवरोधों ने कथा श्रवण में व्यवधान उपस्थित किए। किन्तु उनके दृढ़ आत्म विश्वास ने सभी परिस्थितियों का सामना किया। प्रकाशपुंज श्री कृष्णचन्द्र ने आप पर महती कृपा की और 'हुक्में वेद, कतेब में लाखों लिखे निशान' की पूर्व ही से परिपुष्टि करते हुए बोले—

यह भागवत कागद तुम्हारा, ये तुम्हें खुले कलाम।
और कोई न खोल सके, ए जो खलक आम।।

ला० बी०, प्र० ६/३२

अपना सम्बन्ध और जगत् में आने का कारण बताते हुए स्वामी ने कहा—

हम दुल्हा तुम दुल्हिन मेरी। तिह कारन माया में हेरी।।
श्री भागवत पुराण तुम्हारा। तुम बिन कोई न खोलन हारा।।

मेह० चरि०, प्र० ५/६८

और बोले—

'अब तुम्हें पूछना होय, सो पूछ लेओ तुम।
फेर के ऐसी तरह से, दृष्टें न आवें हम।।

लालदास बी०, प्र० ६/३३

श्री देवचन्द्र जी विनत हो पूछने लगे कि हे प्राणधन, आखिर आप इसके पश्चात् कहाँ गमन करेंगे?

प्रभु बोले—

तुम्हारे अन्दर आकार में, आयके बैठें हम।

अब क्या था, भागवत ही क्या, सभी वेद, कतेब की रहस्यमयी गुत्थियाँ अपने आप अन्तर से ही सुलझने लगीं। यथा—

श्री भागवत शास्त्र की, सब खुल गई नजर।
विवेक सारी वस्तु का, हो गई आतम फजर।।

ला० बी०, प्र० ६/३७

अन्तर में विराजे अपने सर्वेश्वर को पाकर आपको परमान्द प्राप्त हुआ और निजानन्द की अनुभूति प्रतिपल प्रतिक्षण होने लगी। और—

जो स्वरूप प्रगट है देख्यो। सो स्वरुप हृदय अब रेख्यो।।
नितप्रति रहें करत तिन बातें। देवचन्द्र इमि प्रभु सों बातें।।

अब देवचन्द्रजी के मुख कमल पर दिव्य आभा बिखरने लगी। आपकी वाणी में विशेष प्रकार का आकर्षण, करुणा, प्रेम, सौहार्द्र एक साथ प्रादुर्भूत होने लगे। ब्रज, रास, अक्षर, अक्षरातीत धाम-परम धाम का सम्पूर्ण परम ज्योर्तमयी ज्ञान का प्रकाश अन्तर से छलकने लगा। वे उन तरंगों को अनुबन्धित नहीं कर सके। क्योंकि वह अखंड ज्ञान विश्व में बिखरी हुई, विभिन्न जातियों में अवतरित ब्रह्मात्माओं को मोह निद्रा से जाग्रत करने हेतु समाहित था।

सर्वप्रथम, उनके परम मित्र श्री भाई गांग जी, जो कान्हजी भट्ट की कथा सुनने साथ-साथ जाते थे, उन्हें मन से उठती तरंगों का रस पान प्रतिदिन कराने लगे। श्री गांगजी भाई उनके श्री मुख से अलौकिक रहस्यमयी प्रसंग और उनके समाधान श्रवण कर विस्मित हो जाते और विचारमग्न हो सोचने लगते—

करत अगाध वचन ये जैसे। अवलग श्रवननि सुने न तैसे।।
बेद कतेब सुने हम दोऊ। ऐसे बचन कहत नहिं कोऊ।।

अतः अपनी मनःस्थिति का भ्रम मिटाने हेतु वे श्री निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्र जी से बोले—

हम तुम सुन्यो भागवत साथा। आदि अंत प्रभु की गाथा।।
कठिन प्रश्न ये कहां ते ल्यावत। ताको पंडित सोध न पावत।।

प्रति-उत्तर में आपने नवानगर (जामनगर) में कृष्ण दर्शन की घटना को अद्योपान्त स्पष्ट कर दिया— यथा

फेर नए नगर में, ज्योंकर भया दीदार।
सो सारी बताय दयी, जो मेहर परवर दिगार।।

ला० बी०, प्र० ६/५०

श्री गांगजी भाई का प्रतिष्ठित वृहत परिवार था। अपने सभी परिजनों सहित श्री निजानन्द स्वामी की चर्चा श्रवण करने— नित्यप्रति उपस्थित होने लगे। अलौकिक कथा प्रसंग सुनने अब तो पास-पड़ोस, रिश्तेदारों के परिवारों के लोग उपस्थित लगे।

तहां मण्डान होने लगा, बात पसर चली योंकर।
एक से सुने दूसरे, तहां से मिला साथ।।

अब क्या था, भवसागर की तल से मोती निकाले जाने लगे। सच्चे ब्रह्म ज्ञान रस-पान करने वाली शुद्ध आत्माओं की परख निजानन्द स्वामी करने लगे जिनकी परात्माएँ मूल परम धाम में विराजी थीं। श्री गोवर्धन ठाकुर भी इन्हीं दिव्य आत्माओं में से थे। आपकी कथा में उपस्थित रहकर हमेशा ब्रह्म-रस पान करते और अपने भाइयों में बैठ कर अपने सद्गुरु महाराज के निजानन्द दर्शन की प्रशंसा करते। श्री मेहराज ठाकुर आपके अनुज़ थे, जो बाल्य-काल से ही धर्म मयी एवं जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। इस समय आप किशोरावस्था में पदार्पण कर चुके थे। आपके मानस में श्री निजानन्द स्वामी के दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा जाग्रत हुई। एक दिन अग्रज श्री गोवर्धन भाई से सद्गुरु के श्री चरणों में ले चलने की बाल हठ की। भाई के बहुत समझाने पर भी आप न माने और पीछे-पीछे दर्शन हेतु चल दिए। पीछे आते देख श्री गोवर्धन जी ने सद्गुरु महाराज से बहुत ही विनम्र स्वर में अपने अनुज की दर्शन अभिलाषा को निवेदन किया। शुभ-मिलन की बेला आ चुकी थी। अतः आज्ञा प्राप्त हो गई। अविलम्ब ही श्री मेहराज निजानन्द स्वामी के श्री चरणों में नतमस्तक हो गए। अब क्या था, मन की मुराद पूरी हो रही थी। दरश-परस हुए—और सद्गुरु महाराज बोले—

हर्षित हियहीं बचन फुरमायऊ। अब लग क्यों न दरश हित आयऊ।।
मोहसृष्टि कछु तुमहि न जाने। ब्रह्म सृष्टि नीके पहिचाने।।
हो तुम परमधाम के वासी। करन हार लीला अविनासी।।

प्रथम मुलाकात में ही श्री निजानन्द स्वामी ने आपकी दिव्यात्मा को परखा और परमधाम में विराजी श्री इन्द्रावती की वासना कहा, जो सचिदानन्द ब्रह्म श्री राज जी महाराज की परम श्रेष्ठ हजूरी जुथपत्नी सिरदार के रूपमें अधिष्ठित हैं। इसके पश्चात् ही परम मोक्षदायी बीज मंत्र तारतम आपने प्रदान किया।

आय के चरणों लगे, तबहीं दई निद्धि।
ततक्षिन हृदय मिने, आय बैठी जाग्रत बुद्धि।।

ला० बी०, प्र० १८-५०

इतना ही नहीं, भावी गुरुतर धार्मिक कार्यों की रूपरेखा का संकेत देकर ब्रह्मधाम से अवतरित ब्रह्म-सृष्टियों को, जो भवसागर की लहरों की चपेट में निद्रामग्न हैं और जो अपने सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म प्रीतम को पूर्णतया विस्मृत कर चुकी हैं, उन्हें खोज निकालने की बात कही।

इस प्रकार, संवत् १६८४, माघ शुक्ल नमवीं के दिन, बारह वर्ष दो माह दस दिन की अल्पायु में आपका निजानन्द स्वामी से प्रथम दिव्य मिलन हुआ। तत्पश्चात् निरन्तर

संवत १७१२ तक अपने सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर अपनी आत्मा में दिव्य आलोक सँजोते रहे।

अन्त में सद्गुरु श्री निजानन्द स्वामी ने धर्मप्राण श्री मेहराज ठाकुर को बुलवाया और जीवन भर की अर्जित परम– आध्यात्मिक अखंड ज्ञानमयी सम्पत्ति आपको सौंपी और विश्व जागनी का गुरुतर भार का उत्तरदायी बनाया । लगातार बाईस दिवस तक आध्यात्मिक गुह्य तत्त्व एवं भावी योजनाओं का मार्ग प्रशस्त किया और फिर श्री मेहराज की परम पवित्र आत्मा में ५ अक्टूबर, १६५५ ई० को, अपना नश्वर कलेवर त्याग कर, अन्तर्हित हो गए।

बरस चौहत्तर में, न्यून भया एक मास।
तब सौंप चले श्री मेहराज को, उतम खासलखास।।

लाο बीο, प्रο ७-१४

केशव ठाकुर पिता कहियत माता बाईधन।
श्री इन्द्रावती जी की वासना, सौंपा धन, तन, मन।।

लाο बीο, प्रο ११-२३



प्राणनाथ निर्दिष्ट साधना-सोपान

डा. राम सुरेश
देहरादून, उ.प्र.

महामति प्राणनाथ प्रदत्त साधना पद्धति को समझने के लिये उनकी जीवनी और वाणी को साथ-साथ देखना आवश्यक है। उनकी जीवनी और वाणी को देखने पर पता चलता है कि उन्होंने कोई बँधी बँधाई रूढ़ियुक्त साधना हमें प्रदान नहीं की अपितु प्रत्येक व्यक्ति के गुण, स्वभाव या कर्म के अनुसार साधना शुरु करने का ढंग बताया।

उनके सतुरु श्री देवचन्द्र जी थे। श्री देवचन्द्र जी ने बाल्यकाल से ही पूजा-पाठ, जप, तप, यम, नियम में ध्यान लगाया और अनेक सन्तों की सेवा की थी। उन्होंने लगभग सभी हिन्दू धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया और अन्त में पूर्ण एकाग्रता, निष्ठा तथा अनन्य प्रेम से परमात्मा का साक्षात्कार किया था। उनका प्रभाव महामति प्राणनाथ पर भी पड़ा था। उन्होंने गृहस्थी का मोह छोड़कर मन को संयमपूर्वक वश में किया। तन-मन को पूर्ण - पावन बनाकर उसे ब्रह्म के साक्षात्कार तथा ब्रह्म ज्ञान के योग्य बनाया।

महामति प्राणनाथ जी ने अपने शिष्यों को शरीर को कष्ट देकर अत्यधिक संयम में रहने की मनाही कर दी थी। ज्ञानी जनों में अनुराग पैदा किया, प्रेमियों को प्रेम में झूम जाने की मस्ती दी और सेवकों में तन-मन-धन से सेवा करने एवं समर्पण की भावना जाग्रत की।

आराध्य : अक्षरातीत ब्रह्म :

श्री प्राणनाथ जी ने जिन्हें श्री राज कहा है और गीता में जो 'उत्तम पुरुष' है वही अक्षरातीत ब्रह्म श्री प्राणनाथ जी के आराध्य हैं। श्री श्यामा जी श्री राज जी का आनन्द अंग हैं। युगलस्वरूप श्री राजश्यामा जी की आराधना करने का आग्रह श्री प्राणनाथ जी ने किया है।

'आतम चाहे वर्णन करूँ, जुगल किशोर विध दोए'— इस आराध्य स्वरूप के अतिरिक्त अन्य जो आराध्य हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारायण, इन्द्र आदि त्रिदेव निराकार, शून्य तथा निरंजन तथा नारायण आदि को उन्होंने जीवसृष्टि के उपास्य देव माना है; ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि के नहीं। यद्यपि पानी, पत्थर, आग (वरुण, अग्नि आदि देवताओं) की पूजा ब्रह्म-सृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि ने की है, किन्तु केवल अज्ञानावस्था में ही। अतः अज्ञानावस्था में ब्रह्म-सृष्टि और ईश्वरीसृष्टि ने जो उपासना की थी, वह अस्थायी थी, उस 'क्षर' की उपासना को छोड़कर बाद में उन्होंने 'अक्षरातीत' की उपासना की। 'क्षर' की स्थायी उपासिका तो 'जीवसृष्टि' ही है। इनकी पूजा से मिलनेवाली चार प्रकार की मुक्ति भी क्षर जगत् के प्रलय तक सीमित है।

इनके अतिरिक्त प्राणनाथ जी ने श्री कृष्ण, ईसा तथा मुहम्मद को भी सम्मान दिया है, किन्तु इनका वही रूप आराध्य है जो पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की शक्ति से युक्त है। उन्होंने ग्यारह वर्ष और बावन दिन की वय वाले कृष्ण तथा रासलीला करनेवाले स्वरूप को ही पूज्य कहा है एवं परवर्ती लीलाएँ करनेवाले कृष्ण को श्री हरि विष्णु के अवतार बताया जिस स्वरूप को (रासलीला वाला स्वरूप) उन्होंने मान्य ठहराया है वह पूर्णब्रह्म की शक्ति से युक्त था और द्वारिका के राजा श्री कृष्ण विष्णु के अवतार हैं, पूर्णब्रह्म के नहीं।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यहाँ उल्लेखनीय है कि प्राणनाथ जी के अनुसार ईसा और मुहम्मद भी इसीलिए पूज्य हैं कि वे कृष्ण ही कालांतर से ईसा (रूहअल्लाह) और आख़िरी मुहम्मद (इमाम मेंहदी) के रूप में प्रकट हुए थे।

अर्थात् तीनों स्वरूप एक ही शक्ति (पूर्णब्रह्म की आदेश शक्ति) संयुक्त हैं, इसीलिए पूजनीय हुए—

श्री ठकुरानी जी रूह अल्लाह, महम्मद श्री कृष्ण जी स्याम।
सखियां रूहें दरगाह की, सूरत अक्षर फरिश्ते नाम।। (खुलासा, दोनामा)
महम्मद आया इसे मिने, तब अहमद हुआ स्याम
अहमद मिल्या मेहदी मिने, ऐ तीन मिल हुए इमाम।।

(खुलासा, प्र० १)

श्री प्राणनाथ जी आराध्य और आराधक का विभाजन 'सृष्टि' के आधार पर ही करते हैं। उन्होंने तीन सृष्टियों का उल्लेख किया है— १. ब्रह्मसृष्टि (ख़ासुल ख़ास)— २. ईश्वरीसृष्टि (खास) और ३. जीवसृष्टि (आमखलक)।

जीवसृष्टि के आराध्य 'क्षरपुरुष' है, जिनमें त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), नारायण, ३३ करोड़ देवता तथा महाविष्णु आदि हैं। इनमें से भी त्रिदेव की उपासना ही प्रायः की जाती है। जीवसृष्टि पूर्णब्रह्म परमात्मा की आराधना कर सकती है किन्तु हद के ये जीव बेहद का समाचार प्राप्त कर सकने में असमर्थ हैं। विशेष प्रयत्न के बाद ही बहुत कम जीव पूर्ण ब्रह्म तक पहुँच सकते हैं।

बेहद के साथी सुनो, बोली बेहद बानी।
बड़े बड़े रे हो गए, पर काहू न जानी।। (प्रकाश हि. 'बेहदबानी')

प्राणनाथ के अनुसार आराध्य के आधार पर आराधक भी तीन कोटियों के हैं— १. ब्रह्मसृष्टि—अक्षरातीत उपासक, २. ईश्वरीसृष्टि—अक्षर उपासक, ३-जीवसृष्टि—क्षर ईश उपासक।

जीवोपासक जिनके आराध्य 'क्षर' पुरुष के विभिन्न स्वरूप हैं, इक्यासी श्रेणियों में रखे जा सकते हैं—

प्रथमशः तीन प्रकार के कुल जीव हैं—पुष्टि, प्रवाही— मर्यादी और इनमें से प्रत्येक वर्ग के जीव नौ तरह से ईश्वर की आराधना करते हैं, जिसे नवधा भक्ति कहा गया है। इस तरह तीन गुण के प्रभाव से पुनः तीन से गुणा करने पर ९x३x३ = ८१ तरह के उपासक त्रिदेव उपासक हुए। इन्हें देवलोकों में सारूप्य, सायुज्य, सामीप्य और सालोक्य चार प्रकार की मुक्ति मिलती है। महाप्रलय तक वे उसी लोक में रहते हैं।

पुष्ट मर्यादा ने पर्वाह पख। याको सार बताऊँ लख।।
ताके हिस्से किए नौ। चढ़ें सीढ़ी भगत जल भौ।।

ताके वाटे किए सत्ताईस। ऊँचे चढ़ें सुरत बाँधी जगदीश।।
ताके बाटे किए अस्सी और एक। पहुंचे बैकुण्ठ चढ़े इन विवेक।।
प्रकाश, प्र० ३४

बयासीवें तरह के उपासक कृष्ण के भक्त 'बल्लभाचार्य' हैं और ८३ वीं तरह के उपासक पंचवासनाओं— कबीर, शिवभगवान्, शुकदेव मुनि अैर सनकादिक (सनत कुमार) की पूजा करनेवाले अक्षरोपासक हैं।

पख व्यासीमा जो कहया। बल्लभाचारज तहाँ पहुँचाया।।
तेरासीवां पख परवान। जो वासना पाँचो लिया निरवान।।
एक भगवन जी बैकुण्ठ का नाथ। महादेव जी भी तिन के साथ।।
सुक जी और सनकादिक दोए। कबीर भी इत पहुँचया सोए।।
प्रकाश हि०, प्र० ३४

प्राणनाथ जी के अनुसार माला में जो एक सौ आठ मोती रखे गए हैं, उनका अभिप्राय इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम ८३ 'पख' उपर्युक्त ८३ उपासकों और उपासनाओं की याद दिलाते हैं और शेष २५ पख परमधाम के २५ पक्षों का स्मरण दिलाते हैं।

पख पच्चीस या ऊपर होए। तारतम के वचन है सोए।।
इन वचनों में अखरातीत। श्री धाम धनी साथ सहित।।
प्रकाश हि., प्र. ३४

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि महामति प्राणनाथ जी के अनुसार उपासना के १०८ स्तर हैं, जिनका संकेत माला के १०८ पक्षों या पखों से भी मिल जाता है।

स्वामी जी कहते हैं कि शरीर को कष्ट देने से वह निर्बल हो जाता है और आत्म-साधना के पथ पर चलने योग्य नहीं रह जाता। शरीर तो मात्र यंत्र है उसे साधने से अधिक तो मन, गुण इन्द्रियों की साधना आवश्यक है। वही शरीर को ग़लत मार्गों पर ले जाते हैं। शरीर को कष्ट देने से कोई नहीं-

दुःख न दीजे देह को, सुखें छोड़िये शरीर।
एह सिद्‌ध इन विध होवही, जो जोश इसक करें भीर।।
किरंतन, ८५/१५

अर्थात् जोश हृष्ट-पुष्ट शरीर में ही संभव है तो इश्क़ (प्रेम) सधे हुए मन में। अतः वे अपने सुन्दर साथ, अपनी संगिनी आत्माओं को जोश और प्रेम पैदा करने की सलाह देते हैं। साधक को त्याग, तपस्या, हठ योग के दुःखों के बीच अन्यथा तपते देखना वे सहन नहीं कर पाते—

मुख करमाने नव सहूँ, तो केम करावूँ वकोर। कलस-जागनी

आपको साधना (तपस्या) करने के लिए मैं कैसे कहूँ जब तुम्हारे कुम्हलाए मुख ही मैं सहन नहीं कर पाता। उनका विचार है मन कुम्हार के चाक (चकरड़े) की तरह फिरनेवाला है। यही सबसे बड़ी बाधा है। जो ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में आती है। वे मन की इसी चंचल प्रवृत्ति को सामने रखते हुए कहते हैं :—

अब तोको कहूँ चाक चकरड़ा, चढ़ बैठा जीव के सिर।
तें खाली ऐसा फिराया, रह न सके क्यों ए थिर।।
प्रकाश हि. २०/८१

कुम्हार की तरह सधे हाथों से ही उसे वश में करके लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

अंध अभागी हुआ क्यों ऐसा, सुने नहीं धनी के वचन।
धनी मिले तूँ थिर न हुआ, फिट फिट भूंडे मन।।

प्रकाश हि., २०/८२

मन जीव को अपने अधीन कर लेता है। गुण, अंग, इन्द्रिय सब पर अधिकार कर लेता है। यह स्वयं तो संसार में भटकता फिरता है, गुण, अंग और इन्द्रियों को भी गुमराह करता है। झूठे सांसारिक सुख के पीछे सच्चे अखण्ड सुख को खो बैठता है।

श्री प्राणनाथ जी यह मानते हैं कि परमधाम के अखण्ड सुख की प्राप्ति तभी हो सकती है जब हम गुण, अंग, इन्द्रियों का दमन न करके, उन्हें सखा बना कर परमात्मोन्मुख करें। यदि लोभ, मोह, इच्छा इत्यादि का दमन कर दिया जाएगा। तो परमात्मा प्राप्ति की इच्छा कहाँ से आयेगी ? इसी प्रकार यदि हम मोह का दमन कर देंगे तो उसके अभाव में ईश्वर से अनुराग भी कहाँ हो पायेगा ? और यदि परमात्मा से अनुराग ही नहीं होगा तो उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कैसे किया जायेगा ?

इस प्रकार मानव परमात्मा को प्राप्त करने में असमर्थ रहेगा। इसलिए श्री प्राणनाथ जी इन्द्रिय-दमन के पक्ष में न होकर विवेकपूर्वक इन्द्रिय-निग्रह के पक्ष में थे।

इन्द्रिय-निग्रह के भी प्राणनाथ जी ने कई उपाय बताये हैं, जिनसे साधना के भी कई प्रकार हो जाते हैं। जिस प्रकार उन्होंने आराध्य और आराधक का वर्गीकरण 'सृष्टि' के आधार पर किया है, उसी प्रकार, आराधना का वर्गीकरण भी 'सृष्टि' के ही आधार पर किया है। यह वर्गीकरण इस प्रकार है—जीव सृष्टि की साधना का मार्ग कर्मकांड उपासना (नवधा भक्ति), ईश्वरीय सृष्टि की साधना उपासना और ज्ञान, और ब्रह्म सृष्टि की साधना तुरीयातीत ध्यान और प्रेमाभक्ति है।

उपर्युक्त वर्गीकरण में यह भी ध्यान देने की बात है कि ब्रह्मसृष्टि की साधना में उपासना, वैराग, शुभ कर्म आदि का भी स्थान है, वहाँ भी इनका महत्त्व है, पर विशिष्ट अर्थ में मन को शुद्ध रखना, झूठ आदि न बोलना ही शुभ कर्म है। विभिन्न साधनों से ईश्वर की आराधना 'उपासना' है और गेरुए वस्त्र धारण करना, गृहत्याग कर जंगल में जाना ही वैराग्य है।

परन्तु ब्रह्मसृष्टि के लिए— शुभकर्म— धर्म-कार्य करना, उपासना— गुण, अंग, इन्द्रिय पर नियंत्रण रखना, वैराग— दुनिया से वैर और परमात्मा से प्रेम करना, ज्ञान— परमात्मा और उसके स्थानादि का ज्ञान रखना, जीवन-मुक्ति— संसार में रहते हुए भी सांसारिक वस्तुओं से लगाव न रखना, काम, क्रोध, लोभ-मोह आदि से दूर रहना, विज्ञान— परमात्मा और उसके स्थानादि का जो ज्ञान प्राप्त किया हो, उसी में लीन रहना, तुरिया— खाते - पीते, उठते - बैठते (हर समय) परमात्मा का ध्यान रखना। तुरीयातीत— यह प्रेम भक्ति है और उपरोक्त साधनाओं की अन्तिम उपलब्धि है। मन को साध लेने से अन्य साधन स्वयं ही सध जाते हैं।

उनके द्वारा निर्देशित ये साधन इस प्रकार हैं— १. शास्त्र-श्रवण, २. सत्संग, ३. अखण्ड भजन, और ४. विषयों से विरक्ति आवश्यक है।

इन्द्रिय-निग्रह उसी स्थिति में संभव है जब इनके सरदार 'मन' पर नियंत्रण कर लिया जाय।

मन को सोचने के लिए जिन साधनों को अपनाया जाय वे ही साधना के विविध प्रकार हैं। इन साधनों में से एक साधन 'ज्ञान' भी है। इस 'ज्ञान' (विवेक) से मन को नियंत्रण में कर इन्द्रिय निग्रह संभव हो सकता है। इसे ही ज्ञान-साधना कहा जाता है।

मन पर नियंत्रण करने का एकमात्र साधन यही है कि भजन करते समय मन को सांसारिक कार्य-कलापों से मुक्त रखना चाहिए। जब हम भजन करते समय जो एक सौ आठ पखों की माला फेरते हैं तब हम उन एक सौ आठ पखों को ध्यान में रखें। ऐसा करने पर जब हमारा मन सांसारिक कार्य-कलापों से मुक्त हो जायेगा तब उसमें जो रिक्तता होगी, उसकी पूर्ति अक्षर और अक्षरातीत के धाम वर्णन से हो सकती है।

समरथ मन तू बड़ा जोरावर, कहा कहूँ तेरो विस्तार।
फिर तू पख पच्चीस में, बलवंता वे सुभार।।

प्रकाश हि० २०/८३,८४

इस पद्धति में जाप करते समय मन को जब इन विभिन्न पक्षों का ध्यान करना पड़ेगा एक-एक करके, एक के बाद एक सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ेंगी तो उसे माया में भटकने का अवसर नहीं मिलेगा। उस प्रक्रिया में उसे इसका अवकाश ही नहीं मिलेगा। प्राणनाथ जी मानते हैं कि इस तरह मन पर नियंत्रण करके यदि ढाई घड़ी भी भजन कर लिया जाये तो परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

इस साधना में ज्ञान की मुख्य भूमिका है। मन को जब उन एक सौ आठ पखों में लगाना पड़ेगा, तब निश्चित रूप से उनका ज्ञान भी होना चाहिए। क्षर-अक्षर और अक्षरातीत के ज्ञान से ही तो उस रिक्तता की पूर्ति करनी है। यह ज्ञान कहाँ से मिलेगा ? इसके लिए प्राणनाथ जी ने गुरु - सान्निध्य और शास्त्र-ज्ञान का पारायण महत्त्वपूर्ण बताया है

गुरु-सान्निध्य— प्राणनाथ जी के प्रथम ग्रंथ 'रास' में माया का बड़ा ही यथार्थ चित्रण है। माया 'प्रभु' की ही शक्ति है। उनकी प्रेरणा ही इस दुःख - सुख - पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करती है। यह माया बड़ी शक्तिशाली और आकर्षक है। अनेक प्रलोभनों से मानव को वश में करने का प्रयास करती है। यह तभी संभव होता है जब वह उसके मन से परमात्मा की याद सर्वथा भुला देती है। जब मानव पूरी तरह उसके चंगुल में फँस जाता है तो यह सहारा देती है। जब बेख़बर इन्सान औंधे मुँह गिर जाता है तो यह छलनी एक ओर खड़ी अपनी सफलता पर हँसती है। इस माया से लोहा लेना कोई आसान काम नहीं। दुनिया भर की साधनाओं को इसने विफल बना दिया। सभी गुण, अंग, इन्द्रियाँ, यह शरीर इसी माया से बने होने के कारण इसी की ओर आकर्षित होते हैं। इनको सही दिशा में मोड़ने के लिए सच्चे तत्त्वदर्शी आत्मज्ञानी गुरु की आवश्यकता होती है। वही गुरु माया से अधिक शक्तिशाली तथा आकर्षक परमात्मा के स्वरूप के निकट लाकर माया के गुरुत्व आकर्षण से मानव को मुक्त करता है।

इन्द्रियाँ माया से विमुख होकर रिक्त हो जाती हैं, इस रिक्तता की सम्पूर्त्ति यदि न की जाये तो वे पुनः विषय वासनाओं की ओर उन्मुख हो सकती हैं। अतः ऐसा प्रयत्न आवश्यक है कि ये इन्द्रियाँ उन विषय-वासनाओं की ओर न जाकर परमात्मा की ओर उन्मुख हो सकें। इस पूर्ति के लिए शास्त्र-श्रवण एक साधन है जिसकी ओर प्राणनाथ जी ने पहले संकेत किया है।

सौंदर्य, शक्ति, प्रेम, दया आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जो इन्द्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। यदि कोई ऐसी वस्तु हो जो इन वस्तुओं की अपेक्षा इन्द्रियों को अपनी ओर अकर्षित कर सकें, तो गुण, अंग इन्द्रियाँ इन सभी आकर्षणों से मुक्त हो सकेंगी। इन सांसारिक वस्तुओं से अधिक आकर्षक वस्तुएँ 'हदभूमि' से परे 'बेहदभूमि' और 'अखण्ड भूमि' है। इनका वर्णन वेदों और शास्त्रों में मिलता है।

वेदों और शास्त्रों का अध्ययन किया जाय तो सहज रूप से इन अनुपम अलौकिक वस्तुओं को देखने की प्रबल इच्छा मन में उठती है। तब जीव उन्हें पाने का प्रयत्न भी करता है। इस तरह जीव का मोह सांसारिक वस्तुओं से हट जाता है और परमधाम की ओर उन्मुख होता है।

इन अपूर्व, अलौकिक, अनुपम वस्तुओं का आकर्षक वर्णन 'सुसमवेद' और 'भागवत शास्त्र' नामक धर्मग्रन्थों में है। तारतम सागर ही सुसमवेद (स्वसंवेद्य) है जिसमें आत्मा को आकर्षित करने की उपर्युक्त समस्त वस्तुएँ मिलती हैं। गुण, अंग, इन्द्रियों और इन सबके सरदार मन को वश में करने के लिए इन्हीं 'पच्चीस पक्षों' का ध्यान करना चाहिए।

—पच्चीस पख छे आपना, तेमा कीजे रंग विलास।

इनके अध्ययन - मनन पर जीव स्वतः ही यह अनुभव करने लगता है कि इन अलौकिक वस्तुओं की तुलना में सभी सांसारिक वस्तुएँ तुच्छ हैं, चरकीन हैं इसलिये त्याज्य हैं। उसे इन लौकिक वस्तुओं से वितृष्णा होने लगती है।

इसके अतिरिक्त स्वसंवेद (तारतम वाणी) में युगलस्वरूप के शृंगार और स्वरूप का भी वर्णन मिलता है। 'पच्चीस पखों' की 'परिक्रमा' करने पर जब आत्मा युगलस्वरूप के अनुपम, अद्‌भुत, आलौकिक सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाती है तो उसके लौकिक प्रेम का स्थान अलौकिक प्रेम ले लेता है।

इसमें वर्णित परमात्मा का एक और भी महत्त्वपूर्ण गुण यहाँ उल्लेखनीय है, जो आराधक को अपनी ओर आकर्षित करने की अनुपम शक्ति रखता है, वह गुण है दया। प्रियतम की अपरम्पार दया—

अब तो मेरे पिया की, दया न समावे इण्ड।
ए गुण मुझे क्यों बिसरे, मोसों हुये सब अखण्ड।।
पल पल आवे पसरती, न पाइए दया को पार।
दूजा तो सब मैं मापिया, पर होय न दया को निर्वार।।

भागवत महिमा : भागवत में स्कन्धों की संख्या बारह है। भागवत के दशमस्कन्ध में प्रेमलक्षणा भक्ति का उल्लेख मिलता है। प्राणनाथ जी ने इस दशमस्कन्ध को विशेष महत्त्व दिया है। दशम स्कन्ध के नब्बे अध्याय हैं। जिसमें प्रथम तीस अध्यायों में भगवान कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन किया गया है और पाँच अध्यायों में रासलीला का वर्णन है। प्राणनाथ जी ने इसी पंचाध्यायी को भागवत का सार माना है। इसका कारण है कि इसमें चौदह भवन में दुर्लभ प्रेम गोपियों के रूप में साकार हुआ है और यह प्रेम ही ईश्वर प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है—

नवधा से न्यारा कहया, चौदह भवन में नांही।
सो प्रेम कहाँ से पाइए, जो बसत गोपिका माहिं।।
सुक व्यास कहें भागवत में, प्रेम न त्रिगुण पास।
प्रेम बसत ब्रह्म सृष्टि में, जो खेलत स्वरूप ब्रज रास।।

सभी साधनाओं का योग का, नियम का, तपस्या का उद्देश्य तो मन, गुण, अंग इन्द्रियों को वश में करना है। इसके लिए आरंभ में कुछ संयमित - नियंत्रित जीवन जीने की आवश्यकता तो होती ही है किन्तु उग्र तपस्या की आवश्यकता नहीं। अल्प संयम, निःस्वार्थ त्याग और नियमबद्ध जीवन। परन्तु इन सबके साथ आवश्यक है पूर्ण विवेक। विवेक ज्ञान पर आधारित होता है। अपने जीवन के प्रतिपल के कार्यों पर समीक्षक की-सी दृष्टि की आवश्यकता रहती है। इस विवेक से जागरूक बनकर बड़ी सूक्ष्मता से अपने गुणों, अवगुणों, अंगों एवं इन्द्रियों को कुशल मल्लाह की भाँति ठोक-बजाकर भवसागर में उतारना है। एक भी गुण इधर-उधर भटक गया तो यात्रा में रुकावट आ सकती है—

देखो दिल सों दसों दिश, किन तरफ है हक।
ए विचार देखों दिल को, तो जरा न रहे सक।
कौन तरफ वजूद है, कौन तरफ है कौल।
हाल कौन तरफ है, कौन तरफ है फैल।।
ए सब एक तरफ हैं, कि जुदे जुदे दौड़त।
देखों सहूर करके, है कौन तरफ निसबत।।
खिलवत, १५/५८-६०

प्राणनाथ जी कहते हैं है कि परमात्मा के समक्ष मन की स्थिति क्या है ? वह नगण्य है। यह आक के तूल का 'कोटिवाँ' भाग भी नहीं है। मन को तिनके या चींटी के बराबर ही कहा जा सकता है। वे कहते हैं कि कितने आश्चर्य की बात है कि तिनके ने पर्वत परमात्मा को ढँक रखा है। इस चींटी ने हाथी को निगल लिया है।

एक बचन इत यूँ सुनाए, चींटी पग कुंजर बंधाए।
तिनके पर्वत ढाँपया, सो तो कहूँ न देखया।
चींटीं हस्ती को बैठी निगल, ताकी पड़ी न काहूँ कल।
प्रकाश हि., ३२/३,४
कोटि करो बन्दगी, बाहिर हो निर्मल।
तो लों पीऊ न पाइए, जो लों न साधे दिल।।
किरंतन, १३२/२

ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए यह आवश्यक है कि इस मन पर नियंत्रण किया जाए। मनपर यदि नियंत्रण न हुआ तो जीव प्रबुद्ध नहीं हो सकता, यह प्रबुद्धता मन को नियंत्रित करने के बाद ही आ सकती है। प्रबुद्ध जीव ही आत्मा कहलाती है और आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। कहने का अर्थ यह कि परमात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रबुद्ध होकर जीव को प्रेम में ढालकर परमात्मा की ओर लगाना है। क्योंकि योग्य आधार के अभाव में आधेय की सत्ता संदिग्ध है।

केसरी दूध न रहे रज मात्र। उत्तम कनक बिना जो पात्र।।

प्राणनाथ जी का उपर्युक्त मत वैष्णव साधना के अनुरूप ही है। वैष्णव साधना में भी देह की शुद्धता पर बल दिया गया है और इसी आधार पर भाव-देह और बाह्य देह, के भेद किये गये हैं। बाह्य देह मलीन-दोषपूर्ण तथा अशुद्ध मानी जाती है और भाव-देह इन दोषों से सर्वथा रहित शुद्ध देह है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि प्राणनाथ जी की साधना में देह को साधन माना है। इसी मानव देह में परब्रह्म से मिलन सम्भव है।

वे बाह्यशुचिता अथवा कर्मकाण्ड को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं। वस्तुतः कर्मकाण्ड से मन शुद्धध नहीं होता। उसके लिये स्नान-वजू आदि सब अनावश्यक हैं— सत्य का पालन करना, आपसी वैमनस्य समाप्त करना, सत्संग करना आदि शुभ कर्म करना है। ज्ञान से सारे कर्म बन्धन क्षय हो जाते हैं।

महामति का साधना पथ कर्म, योग, यम नियम साधनों में रमें बिना सीधा परब्रह्म की शरणागति की ओर ले जाता है। कर्म-कर्मफल बन्धन का कारण बनते हैं और बदलते रहते हैं। योग साधन, प्राणायाम, इन्द्रिय निग्रह, नियम, व्रत शरीर मन और इन्द्रियों को संसार से निवृत्त करने में सहायक बन सकते हैं। लेकिन परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पित प्रेम इन सबकी अवहेलना करके सीधा लक्ष्य तक पहुँचा देता है। श्री लालदास बीतक के हरिद्वार प्रसंग में इन विचारों को देखा जा सकता है—

मन पहुँचे नहीं ब्रह्म को, कर्म तहां क्यों सोई।
अहंकार मन जीव में, तेहि ते कर्मी होई।।

जब ज्ञानी के पूर्व संचित कर्म भी भस्म हो जाते हैं तो हृदय से वासना का नाश होता है। आत्मा में अखंड ज्योति प्रकाशित हो जाय तो कर्म से प्रयोजन नहीं रहता। कर्म प्रभु आज्ञा संचालित, निष्काम भाव से हों तो बन्धन का कारण नहीं बनते। परमात्मा कार्य-कारण से परे हैं। कर्म को सर्वश्रेष्ठ माननेवालों को भी वे कर्म ही बाँधते हैं।

योग का लक्ष्य आत्मा परमात्मा का योग या उन्हें मिला देना है। परमात्मा से अलग होकर आत्मा उनके विरह वियोग में तपकर शुद्ध हो जाती हे तो योग उसके लिये अनावश्यक हो जाता है। गोपी ऊधव संवाद में इस बात को लक्षित किया गया— 'हे ऊधव, तू अपनी मति साथ ले जा' (षट्रितु, बारहमासी)।

साधना की राह में दुख का बड़ा महत्त्व है।

जो दुःख तुमही बिछुड़े, मोहे लगा जो तासों प्यार ।
एता सुख तेरे विरह में, तो कौन सुख हो सी बिहार।।

कलश हि. ७/११

वियोग का दुःख सहते-सहते परमात्मा की भक्ति के अतिरिक्त सब कुछ भूल जाता है। भक्त के समस्त गुण, अंग, इन्द्रिय शिथिल हो जाते हैं। प्रियतम परमात्मा के अतिरिक्त किसी वस्तु का ध्यान नहीं रहता। समाधि की इस अवस्था में केवल ध्येय ही रह जाता है, साधक उससे एकाकार हो जाता है। यही मारफ़त या अध्यात्म की परम अवस्था है। ऐसे योगियों या आत्म रोगियों का शरीर संसार में रहता है, मन परमात्मा के चरणों में, ऐसे साधक जीवित होते हुए भी संसार वालों की दृष्टि में मृतक समान होता है। यही मानसी पूजा और प्रेमलक्षणा भक्ति है, जिनका लक्ष्य परमानन्द है।



प्रणामी सन्तों की मानवतावादी दृष्टि

डॉ. सुचितनारायण प्रसाद

भागलपुर विश्वविद्यालय स्नातकोतर केन्द्र
आर. डी. एल. कालेज, मुंगेर, बिहार

प्रणामी वाणी साहित्य का सम्बन्ध निजानन्द स्वामी देवचन्द्र द्वारा स्थापित निजानन्द सम्प्रदाय से है। उत्तर भारत के मध्ययुगीन सन्त कवियों में महामति प्राणनाथ (सन् १६१८-१६९४ ई०) का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। सन्त कबीर, नानक, दादू प्रभुति के स्वरों में राम-रहीम एकता का सन्देश अवश्य मिला, किन्तु भारत के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की मौलिक एवं सैद्धान्तिक एकता तथा मानवतावादी धर्मदृष्टि का स्वर प्रणामी सन्तों की वाणी में ही मुखरित हुआ है। इन सन्तों के कारण ही सर्वधर्म समन्वय की स्वर लहरी भारतीय वातावरण में गूँजी है।

महामति प्राणनाथ ने हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ वेद, उपनिषद्, श्री मद्भागवत, मुसलमानों के धर्मग्रन्थ क़ुरान, ईसाइयों के इंजील, यहूदियों के ज़बूर तथा दाउद पैग़म्बर के धर्मग्रन्थ तोरेत के सिद्धान्तों में साम्य निरूपण कर जनमानस को विश्वधर्म समन्वय का मार्ग दिखलाया और धर्म के मूल अर्थ मानव प्रेम का मन्त्र दिया। उनकी वाणी में साम्प्रदायिक भावना एवं विषाक्त प्रवृत्ति से पीड़ित जनों को शान्ति मिली। उन्होंने जातिगत विद्वेष की भावना को दूर कर समस्त मानव-जाति को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया।

साम्प्रदायिक एवं राजनीतिक कारणों से ये साहित्यिक निधियाँ विद्वानों की दृष्टि से अबतक ओझल रही हैं। निखिल विश्व के साथ एकत्व स्थापना का मांगलिक स्तर ही सम्पूर्ण प्रणामी वाङ्मय का एकमात्र अक्षय और अक्षुण्ण मधुमय स्वर है। महामति प्राणनाथ प्रेरित समस्त प्रणामी वाङ्मय आर्ष साहित्य का सबसे महान ग्रन्थ है। विषय और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से इसकी महत्ता सर्वमान्य है। इसमें समग्र विश्व की मानवी संस्कृति और प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। यह एक जाज्वल्यमान नक्षत्र है, यह सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, धर्मशास्त्र, क़ुरान, इंजील, तौरैत आदि का एकमात्र प्रतिनिधि युग स्वर है और मांगलिक साहित्य-साधना है।[१]

१. एते दिन इन हुकुमें जुदे जुदे खेलाय।
अब ए हुकम इमाम का, लेत सबों मिलाय।। सनंध, ३/७

प्रणामी वाङ्मय भारत का गौरव है और समग्र विश्व के समक्ष मानवता का दिव्य सन्देश है। ऐसा सुयोग विश्व में भारत को ही प्राप्त हुआ है-- 'यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्' अर्थात् जो भारत में है, वही नाना रूपों में सर्वत्र है, जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। विश्व की विविध भाषाओं में प्रणामी वाङ्मय ही है, जिसमें मानव प्रेम की विराट् उद्घोषणा हुई है।[२] रंग, जाति, धर्म आदि का भेदभाव वहाँ लुप्त हो गया है और एक अखण्ड चिन्मय ज्योति प्रस्फुटित हुई है। इन सन्तों की वाणी एक अक्षय कालजयी स्वर है।

महामति प्राणानाथ प्रणीत महान् ग्रन्थ 'तारतम सागर' भारत की अखण्डता, भारतीय आत्मा की मुक्ति और समग्र मानव समाज के नैतिक एवं आध्यात्मिक आदर्श की अभिव्यंजना है। महामति प्राणनाथ के लीलामय जीवनव्रत, समस्त कर्म और सम्पूर्ण चेष्टाओं का एकमात्र लक्ष्य महामानव का महामिलन है। कबीर ने ढाई अक्षर प्रेम को आत्मा की स्फुरणात्मक दिव्य शक्ति कहा है जो समस्त प्राणियों को एक सूत्र में बाँधता है। संत कवि तुलसी ने भी जप-तप से श्रेष्ठ प्रेम तत्त्व को ही कहा है। स्वामीजी ने भी अपनी तारतम वाणी में प्रेम की अलौकिकता की व्याख्या की है—

इसक बड़ा रे सबन में, ना कोई इसक समान।
एक तेरे इसक बिना, उड़ गई सब जहान।।

कलश, ६/१

ईश्वर-प्रेम तत्त्व अनिर्वचनीय है। प्रेम की प्राप्ति ही ईश्वर की प्राप्ति है। उनकी प्रेमधर्म-वाणी उनका ऐक्य और साम्य आदर्श, उनकी अखण्ड भारत की कल्पना और आध्यात्मिक स्वर समस्त मानव जाति का आत्मिक वैभव है। उनकी वाणी में आध्यात्मिक नींव पर राष्ट्र और समाज के प्रासाद निर्माण का संकल्प मिलता है।

प्रणामी वाङ्मय विशाल विनय-भाव की विराट् अभिव्यक्ति है। समग्र मानव जीवन को सौन्दर्य प्रदान करना ही इसकी वाणी की उपलब्धि है। इस अभिव्यक्ति की अखण्ड यात्रा अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष की प्राप्ति में है। स्थूलता से ऊपर सूक्ष्म सौन्दर्य निरूपण के स्वर, परमात्मा मिलन का आकुल विरह और मानवता के ढहते-टूटते स्वरूप की रक्षा के निमित्त वीर-पुरुषों की बलवती भावनाओं का आह्वान ही इसकी विशेषता है। राष्ट्रीय जागरण की हुंकार-भावना इसकी जयध्वनि है। महामति वाणी का स्वर आध्यात्मिक जागरण, राष्ट्रीय चेतना और सर्वोपरि समस्त धरती पर मानवीय समन्वय की विराट् मानव कल्पना के भाव हैं। प्रेम, सौन्दर्य, आध्यात्मिक और शौर्य का अनुपम एवं अद्भुत संयोग प्रणामी वाङ्मय में मिलता है।

प्रणामी सन्तों की वाणी में वीरों का सिंहनाद है और प्रेम-वीणा की मधुर रागिनी भी है। प्रणामी सन्तों की वाणी वीर रसात्मक स्वरों में देशभक्ति की उद्घोषणा है और अध्यात्म स्फुरणात्मक शब्दों में परम तत्त्व विस्मृत आत्मा को जागरण का चिन्मय दिव्य-सन्देश है। प्रणामी वाङ्मय राष्ट्र-चेतना का आह्वान है, युग-चेतना का आमन्त्रण है और समग्र मानवीय भाव स्थापना का विराट् चेष्टा-स्वर है।

---

२. **जो कुछ कहा कतेब ने, सोई कह्या वेद।**
दोऊ बन्दे एक साहब के, पर लड़त बिना पाये भेद।। खुलासा, १२/४२

श्रीकृष्ण सर्वथा एवं सर्वदा प्रणम्य हैं। वह साक्षात् अक्षरातीत ब्रह्म हैं। उनका रूप अप्राकृत है।[३] श्रीभाष्य में रामानुजाचार्य ने श्रुति और स्मृति के आधार पर भगवान् के अप्राकृतिक रूप की प्रतिष्ठा की है। महाभारत के उद्योग पर्व में भक्तों के प्रति श्रीकृष्ण के आत्मीय भाव का उल्लेख मिलता है। इसी पर्व में श्रीकृष्ण के भगवत स्वरूप का वर्णन मिलता है। उसमें श्रीकृष्ण नाम की निरुक्ति इस प्रकार की गई है :

कृषिर्मवाचकः शब्दों पाश्च निर्वति वाचकः।
विष्णु एतद्भाव योगा च कृष्णों भवति शाश्वतः।।
(महाभारत, उद्योग पर्व)

अर्थात् 'कृष' नाम है सत्ता और 'ण' आनन्द का वाचक है। सत्ता तथा आनन्द दोनों के योग से सनातन परमेश्वर कृष्ण कहलाते हैं। श्रीकृष्ण ही पुराण पुरुष परमात्मा हैं।[३] वही जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले स्नातक परमेश्वर है। वह सम्पूर्ण प्राणियों के माता-पिता हैं।[४]

भारतवर्ष सम्पूर्ण मानव जगत् की आध्यात्मिक केन्द्र भूमि रही है और श्रीकृष्ण प्रणामी वाङ्मय ही विश्व मानव की जीवन धारा में महान् एकता और कल्याणमयी शान्ति स्थापित कर सकता है। अखिल प्रेमामृत सिन्धु सर्वजीवप्राण श्रीभागवत प्रकट विग्रह वासुदेव श्रीकृष्ण स्वभावतः ही प्रेम-घन मूर्ति हैं। मानव जीवन के प्रति उनका निर्मल प्रेम ही अखण्ड शक्ति है। उनकी स्निग्ध दृष्टि कोई भेद-भाव नहीं जानती है।[५] यही 'श्रीकृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय' की सार्थकता है।[६] विश्व मानव की विविध विचित्रताओं में एक महामिलन सूत्र का आविष्कार करना ही प्रणामी साहित्य की सिद्धि है। महामति प्राणनाथ की विशाल बुद्धि महाकल्पना-शक्ति, अदम्य कर्म-शक्ति और विलक्षण तप-शक्ति मानवीय महामिलन की साकार चेष्टा है। उनकी वाणी समन्वय की विराट् भूमि है और मानवीय महासम्मेलन की ऊर्जा है, जहाँ प्राण से प्राण का मिलन हुआ है। राष्ट्रीय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक महामिलन की कल्पना ही उनकी वाणी का मुख्य स्वर है।

---

३. **महाभारतेऽपि अवतार रूप स्थाप्य प्राकृतत्वमुच्यते।**
नभूत-संघ-संस्थापना दोहेऽस्य परमात्मनः इति।।

४. **स एष कृष्णों वार्ष्णयः पुराण पुरुषो विभुः।**
एष धातः विधाता च संहर्ता चैव शाश्वतः।।
दुष्टेम तृष्णिप्रवर स्मतिभीमिभागत।
सर्वेभा मेव भूतानापितामाता च माधवः।। महाभारत, वन पर्व

५. **भगवान वसुदेवश्य कीर्त्येतऽत्र सनातनः।**
सहि सत्यमृतंचैव पवित्र प्रण्यमेव।।
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनः।।
यत्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिण :।
असच्य सद सम्भैव यस्माद् विश्वं प्रर्वतते।।
यतद्यता विरा झुका प्यत योगे बलान्वितः।
प्रतिबिम्बमितादर्श पश्नात्त्यासन्वस्थिम। महाभारत, आदिपर्व

६. **एकोपि कृष्णास्यकृतः प्रणामो दशाश्वमेधा मुर्धन तुल्यः।**
दशाश्वमेधा पुनरेतिजन्म कृष्ण न पुनर्भवाय।। महाभारत, शांतिपर्व ४७/९१

समस्त प्रणामी साहित्य में विशाल भारत के विविध समाज, जाति, सम्प्रदाय और धर्म को समन्वित किया गया है। मानव समाज में धर्म, प्रेम, शक्ति और एकता का स्वर सन्धान ही प्रणामी सन्तों की वाणी का काव्य-सौन्दर्य है।

प्रणामी सन्तों की भक्ति का मूल तत्त्व निर्गुण-सगुण, क्षर-अक्षर से परे-अक्षरातीत अनादि अनन्त ब्रह्म का ध्यान-स्मरण है। अक्षर पुरुष को अक्षर ब्रह्म और कूटस्थ अक्षर ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। यह वेद 'मुंडक' के विचारों के अनुसार ही है। शास्त्र एवं पुराणों ने असंख्य ब्रह्मांडों के उदय एवं लय होने का कारण एकमात्र अविनाशी अक्षर को ही माना है। अक्षर ब्रह्म के स्वरूप में असंख्य ब्रह्मांडों का प्रतिक्षण उदय-लय होता रहता है। अतः ब्रह्मानन्द लीला-रस का उदय हो पाता है और अक्षरातीत ब्रह्ममाया रहित और सच्चिदानन्द स्वरूप में सृष्टि का विजम्भृन (उदय) नहीं होता है। प्रणामी वाङ्मय एक विलक्षण और विचक्षण आर्ष-काव्य और सन्तवाणी-सौरभ कुंज है। हिन्दी-साहित्येतिहास का नामोलिखित उत्तर मध्य-काल अर्थात् रीतिकाल प्रणामी सन्तों की वाणी से गौरवान्वित और दिव्य-भाव मण्डित है। कालसीमा की दृष्टि से रीति-काल ही प्रणामी वाङ्मय के उद्भव, सृजन और विकास का काल है। रीतिकाल की पंकिल भावधारा में प्रणामी काव्यवाणी कमल-प्रसून-सौन्दर्य प्रस्फुटन गरिमा से पुष्पित एवं सुरभित है।

रीतिकालीन काव्यधारा को आध्यात्मिक मोड़ देनेवाले प्रणामी सन्तों का स्वर आध्यात्मिक ज्योति का स्फुरण काल है यह दिव्य प्रेम की अकथ कहानी है। पति-प्रेम-लक्षणा-भक्ति ही इस वाणी का प्रधान स्वर है। मानसी पूजा ही इस वाणी की श्रेष्ठता है। इसमें प्रेम साधन है और अक्षरातीत ब्रह्म ही साध्य है। अनन्य भाव से प्रेमार्पण ही इसकी विशिष्टता है।

महान कलाकार सामंजस्य सौन्दर्य की सृष्टि करता है। प्रणामी सन्तवाणी हिन्दी-साहित्य की सार्वमांगलिक सारस्वत साधना है, जिसकी सार्वदेशिकता अक्षुण्ण है। लोक-कल्याण का मंगल स्वर, राष्ट्रीय चेतना की अमरवाणी और अध्यात्म पल्लवित दिव्य ज्ञान का चिरन्तन प्रेमाह्वान इसका स्वरूप है। सर्वधर्म समन्वय की विराट् साधन भूमि पर अनुष्ठित मानवतावाद की उद्घोषणा इस साहित्य की विलक्षण उपलब्धि है। धरती के जन-जन में परमसाध्य अक्षरातीत परब्रह्म की अमर झाँकी का दिव्य दर्शन करना इसकी दार्शनिकता है।

हिन्दुओं के सामाजिक धरातल पर सामाजिक धर्मान्धता को नया प्रकाश देनेवाली प्रणामी सन्तों की वाणी प्रेम, भक्ति और दिव्य-दर्शन की अक्षय निधि है। ऊँच-नीच की कलुषित भावना एवं विषाक्त प्रवृत्ति से पीड़ित जनों को इन सन्तों की वाणी शीतलता प्रदान करती है। इसमें जातिगत विद्वेष की भावना को दूर कर समस्त मानवजाति को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया गया है। चित्त की पवित्रता ही भक्ति की अमूल्य रत्न राशि है। प्रेम-तत्त्व ही ईश्वर की परम विभूति है। प्रेमी चाण्डाल अंहकारी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। प्रेम एक दिव्य ज्योति है और अहंकार एक आवरण है, जो आत्मा को ईश्वर से पृथक् कर देता है।

साहित्य जनचेतना की साकार और मूर्त्त अभिव्यक्ति है। आत्म-अनात्म भावों का सन्निवेश साहित्य में होता है। सन्त साहित्य एक अविरल स्रोत, जीवन मरूस्थल में प्रवाहित

होनेवाली पीयूष धारा है, जिसका पान कर मृण्मय जगत् चिन्मय विभूति को प्राप्त कर आनन्दमय अनुभव प्राप्त कर लेता है। सन्तों की वाणी में ही मृण्मय जगत् के प्राणियों को इस अमृत तत्त्व की प्राप्ति की क्षमता, चेतना और सामर्थ्य प्राप्त होती है। सत्य, शिव और सुन्दर की मूर्त अभिव्यक्ति का नाम ही साहित्य है। भारत के सन्तों ने सूर्य-किरणों में परमनियंता के अमृत तत्त्व का प्रस्फुटन देखा है, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योति में आत्म प्रकाश का आभास पाया है और पवन के शीतल चन्दन में चिर व्याकुल विरही मन का मिलन स्वर सुना है।

मध्य युग में प्रणामी सन्तों ने चेतना के इस स्वर को ही अपनी अमृत वाणी में उतारा ओर जन-जन की अध्यात्म चेतना और कर्त्तव्य एवं दायित्व बोध का ज्ञान कराया है। प्रणामी सन्तों के स्वर में आत्म परीक्षण, आत्म परिष्करण की चेतना के शब्द मिलते हैं। समन्वयात्मक चेतना का जागरण स्वर भारतीय इतिहास में ही नहीं, विश्व इतिहास में सर्वप्रथम महामति प्राणनाथ की वाणी में ही प्रस्फुटित हुआ है।

दार्शनिक पण्डितों से स्वामी प्राणनाथ का शास्त्रार्थ लोक संकेत है। न्याय, वेदान्त, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, सांख्य और पातंजल (योगदर्शन) सैद्धान्तिक सत्य ही उनकी वाणी 'किरंतन' में प्रकट हुआ है—

वृथा का निगमो रे, पामी पदारथ चार।
उत्तम मानखो खण्ड भरथनों, श्रेष्ठ कुली सरदार।
किरंतन, १२५/१

मनुष्य शरीर पाकर भी यह जीवन व्यर्थ न बीत जाय, यही जागरण है, यही चेतना है और यही आत्मबोध है। अध्यात्म चेतना का यह स्वर मोहनिशा को नष्ट करता है—

सूता होय सो जागियो, जागा सो बैठा होय।
बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पांव भरे आगे सोय।।
किरंतन, प्र० ८६/८

अर्थात् मोह अविद्या रूप निद्रा में सोनेवालो, आत्मज्ञान से जाग्रत होकर ज्ञान भक्ति के सत्संग में बैठ जाओ, जिसे आत्मज्ञान मिल गया हो, वह खड़ा होकर ज्ञान, वैराग्य भक्ति में पाँव भरो, आगे बढ़ो। यही भावना समाज, देश और विश्व कल्याण के लिए जाग्रत होनी चाहिए।

वस्तुतः ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग दुर्गम और दुष्कर है। श्रुति भी यह स्वीकारती है, 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथ सतकवायों वदन्ति।' अर्थात्, आत्म पथ-भक्तिमार्ग क्षुर यानी तलवार की धार के समान तीक्ष्ण है। महामति जी की वाणी में—

पुलसरात कही खांडे की धार। गिरे कटे नहीं पावे पार।।

ईशावास्योपनिषद् कहता है कि धर्म-आचरण और अनुसरण करना ही देवता है। आध्यात्मिक चेतना विहीन मनुष्य का जीवन अन्धकारमय है—

पुराण बिना प्रकाश न होइ, शास्त्र बिना कौन माने।
किरंतन, ३३/५
पर जीव सृष्टि क्यो पावहीं, जिनकी अकल है तुछ।।
किरंतन, ७३/२६

प्रणामी सन्तों ने परस्पर लड़नेवालों को स्पष्ट शब्दों में जाग्रत किया है :

शास्त्र ले चले सतगुरु सोई। वाणी सकल को एक अर्थ होई।।
सब सयानों की एक मत पाई। पर अजान देखे रे जुदाई।।
किरंतन, ४/४

समन्वय की विराट् भावभूमि स्वामीजी के इन शब्दों में उतर आई है :

वेदांत-गीता भागवत, दैयां इसारतां सब खोल।
मगज माइने जाहेर किए, माहें गुझ हते जो बोल।।
खुलासा, १३/९६

जो कछु कहया वेद ने, सोइ कहा कतेब।
दोउ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाए भेद।।
खुलासा, १२/४२

यही आज का युग स्वर है। यही आज की आवश्यकता है। यही जीवन की परम यात्रा की चरमोपलब्धि है। यही जीवन की कैलाश यात्रा है और यही अखण्ड आनन्द-लोक है। यही विश्वधर्म की नींव है। धर्म के मर्म को जानना ही मानवता है। मानव-प्रेम ही सर्वोपरि प्रेम है। यही सच्चा धर्म ज्ञान है—

करना सारा एक रस, हिन्दू मुसलमान।
धोखा सबका भानके, कहूँगी सबका ज्ञान।
सनंध ३/३

स्वामी प्राणानाथ ने चुनौती के स्वर में समस्त जीवों को जगाया है। ब्रह्मसृष्टि संसार में आ चुकी है। समस्त साधारण जीवों को भी मोक्ष मिलेगा। नरक एवं दोज़ख़ की कल्पना में नाम रूप का अन्तर है— मूल भाव जीवात्मा की शुद्धि और जागृति का है—

जो किन जीवें संग किया, ताको करूं न मेलो भंग।
रंगे मेलूं वासना, वासना सत को अंग।। कलश, २३/६४

सांसारिक जीवों में भी अक्षर का आवेश प्रविष्ट होकर उन्हें उत्तम गति प्रदान करेगा। इस कार्य के लिए इमाम मेहदी आ गये है—

हिन्दुओं को हिन्दुओं की, मुसलिम मुसलिम की तर।
ए समझे सब अपनी मिने, जब आये इमाम आखर।।
सनंध, ३२/२०

आत्मबोध और आत्म जागरण प्राप्त करना ही सच्ची साधना है :

पेहेले आप पेहेचानो रे साधो, पेहेले आप पेहेचानो।
बिना आप चीन्हें पार ब्रह्म को, कौन कहे में जान्यो।।
किरंतन, प्र० २/१

परमात्मा तीर्थस्थानों में नहीं है। मुमुक्षजनों को आत्मतत्व प्राप्ति का दिव्य सन्देश श्रीमुखवाणी में स्पष्ट शब्दों में मिलता है—

सत चाहो तो सब्दा चीन्हों, वह आप न देवे देखाई।
जिन पाया तिन माहे समाया, राखत जोर छिपाई।।
किरंतन, ४/४

परमात्मा स्वयं मनुष्य-शरीर में प्रविष्ट होकर मुमुक्षुओं को मानव कल्याणार्थ कह रहा है। परमात्मा के शब्दों की पहचान करो। वाणी द्वारा ही उसकी पहचान हो सकती है।

सुध सब पाइए शब्दों से, जो होवे मूल सगाई।
क्षण एक विलम्ब न कीजे तब तो, लीजै जीव जगाई।।
किरंतन, ६/९

रूढ़िवाद, अन्धश्रद्धा, पारस्परिक फूट की भावना को प्रताड़ित कर स्वामी जी ने तारतम प्रकाश द्वारा सभी धर्मग्रन्थों का वास्तविक स्वरूप निर्धारित किया है। मानवीय भावनाओं का विराट् प्रदर्शन स्वामीजी की इस प्रेम वाणी में हुआ है—

जुदे जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेष अनेक।
जिन कोई झगड़ो आपमें, धनी सबों का एक।।
सनंध, ४७/७२

प्रेम ही ईश्वर है। प्रेम की महिमा अपार है। हे इश्क़, तू आ मुझे अपनी वतन की सैर करवा दे। वहाँ मैं अपने प्रिय के चरणों तले बैठकर अखण्डानन्द प्राप्त करूँ। प्रेमी ही प्रेम की पहचान कर सकता है। प्रेमी के मन में ही प्रियतम एवं उसके धाम की झाँकी अंकित हो सकती है। अपने प्रियतम और परमधाम को भूलकर संसार में भ्रमित होना ही दुर्भाग्य है—

मेरे अंध अभागी जीव, तू क्यो सूता इत।
विध विध धनिए जगाईया, अजहूँ ना घर सूझत।।
प्रकाश हिन्दुस्तानी, १४/१
आगे उल्टा हुआ अकरमी, अजहूँ ना करे कुछु सुध।
जागत नहीं क्यों जोरकर, ले हिरदे मूल बुध।
प्रकाश हिन्दुस्तानी, १४/६

सुन्दर और निर्मल चित्त में ही ब्रह्म का निवास है। बाह्याडम्बरों में फँसे ब्राह्मण से उत्तम चाण्डाल है जो सदाचारी है—

एक भेष जो विप्र का, दूजा भेष चाण्डाल।
जाके छूए छोत लागे, ताके संग कौन हवाल।।
चाण्डाल हिरदे निर्मल, खेले संग भगवान।
देखलावे नहीं काहू को, गोप राखे नाम।
सनंध, १६/१८, १९

शूद्र के प्रति परम्परागत ईर्ष्याभावना को झकझोर कर मानव जीवन के शाश्वत सौन्दर्य की परिकल्पना इन वाणियों में मिलती है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इन शब्दों में दिव्य ज्ञान प्राप्त करते हैं —

ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहें हम पाक।
दोउ मुट्ठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक।।
सनंध, ४०/४२

धर्मान्धिता और आडम्बर के मोहजाल को तोड़ने में ये वाणियाँ पूर्णतः समर्थ हैं। मृण्मय जगत् को अपनी अमृत वाणी से चिन्मय स्वरूप प्रदान करनेवाली पंक्तियाँ नित्य नयी दिशा देती हैं।

साथ सकल तुम याद करो, जिन जाओ वचन विसरजी।
धनी मिले आपन को माया में, जिन भूलो ए अवसरजी।।
प्रकाश हिन्दु., ३/११

मानवीय भावभूमि पर राष्ट्र चेतना और राष्ट्र उद्बोधन के स्वरों का आह्वान महामति प्राणनाथ की वाणी की विशेषता है। समस्त हिन्दी-साहित्य में यह स्वर निश्चय ही विरल है –

सद्गुरु ब्राह्मनन्द है, सूत्र है अक्षर रूप।
शिखा सदा तिनसे परे, चैतन्य चिद जो अनूप।।

प्रणामी परम्परा कवि जीवन मस्तान, अन्धविश्वास ओर रूढ़िवादिता को दुतकारते और आत्मबोध की दुहाई देते हैं –

पारब्रह्म घर चीन्हें नाहीं, मरे कहाँ फिरि जावेगा।
मुल्ला पढ़े कुरान मगज नहि पावें, कहो भिस्त कस पावेगा।।

आत्मचेतना की सशक्त भावाभिव्यक्ति संत कवि चेतनदास की इन पंक्तियों में हुई है –

खान पान में जग सब भूला, पर आतम बिसराई।
बिना सत गुरू मरसे चौरासी, परे इक्यासी खाई।।
समशब्द संतोष बिना, सब धोखे रहे भुलाई।
सतगुरू चरण परम बिन चेतन, अब तुम सुधि न पाई।।

वस्तुतः प्रणामी सन्तों की प्रेम साधना का यह मार्ग सर्वथा ही क्रान्तिप्रेरक है। इन सन्तों ने विश्व प्रेम के माध्यम से कर्मकाण्ड की अनपेक्षित जटिलताओं एवं रूढ़िवादिता को झटके से दुत्कारा है। ये सन्त विश्व धर्म चेतना के अग्रदूत हैं। इन्होंने धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक अन्धविश्वासों, वर्णाश्रम की घिनौनी प्रथाओं, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि कुत्सित प्रवृत्तियों का खण्डन कर, मानव जीवन के शाश्वत नवीन मार्ग और नूतन विश्वास का पथ प्रशस्त किया है।

प्रणामी सन्त साहित्य आत्मविश्वास, आशावाद और मानवीय आस्था स्थापित करनेवाली जीवन्त वाणी है। यह जीवन शक्ति का स्रोत है। त्रस्त-सन्त्रस्त, उपेक्षित, एवं प्रताड़ित मानव जीवन को अमृत शब्द रसपान कराना ही इसका अभीष्ट है। यह जन-चेतना का शाश्वत राग और युगबोध की चिन्मय अभिव्यक्ति है। इनकी वाणी जीवन सत्य की व्याख्या है। यह मानव जीवन के चिरन्तन मूल्य का निरूपण और समग्र विश्व के एकात्म एकनिष्ठ प्रेम की अमर उद्घोषणा है। आज के युग में ये सन्त और इनकी वाणियाँ वस्तुतः प्रणम्य हैं।



वेद-कतेब में वर्णित मुक्ति के आठ प्रकार

डा. बुद्धिप्रकाश वाजपेयी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर
खपरा मोहाल, कानपुर

इस संसार में चार प्रकार के दुःख बताये गये हैं - जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि। जन्म के समय से हमारे दुःख चालू हो जाते हैं। बड़ी परेशानियाँ उठाकर बच्चा बड़ा होता है। लेकिन बड़ा होते ही तमाम प्रकार की व्याधियाँ और सामाजिक अपमान के दुःख उसको घेर लेते हैं। इन्हें हल करने में वह पूरा जीवन लगा देता है। अन्त में बुढ़ापे का दुःख सामने आ जाता है और फिर आती है मृत्यु। इसी दुष्चक्र से छूटने का नाम है मुक्ति।

परन्तु यह मुक्ति कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो किसी दूसरे से पायी जा सके। महामति कहते हैं कि यह हमारे अंकुरित होने की संभावना है, किसी के द्वारा प्राप्त होनेवाली वस्तु नहीं। यद्यपि उन्होंने प्रभु कृपा की बात जगह-जगह की है और वह भी साधक के पुरुषार्थ अनुसार— 'कृपा करनी माफक, कृपा माफक करनी।' परन्तु अंत में यह भी कहा है कि 'ये दोऊ माफक अंकुर के, कै कृपा जात न गिनी।' अर्थात् साधक की इच्छानुसार और कर्मानुसार परमात्मा की कृपा होती है और उनकी कृपानुसार इच्छा होती है, लेकिन इन दोनों की सीमा निर्धारित करता है जीव का अस्तित्व के साथ मूल संबंध। यदि उसका संबंध परब्रह्म से है तो उसकी प्यास भी परब्रह्म की होगी, और यदि उसका संबंध ब्रह्म से है तो उसका लक्ष्य ब्रह्मप्राप्ति ही होगा। यदि वह किसी अन्य देवलोक की आत्मा है, तो उसके मन-प्राण उस देव के लिए पुलकित होंगे। रामकृष्ण, मीरा, चैतन्य आदि इन सबके साथ यही स्थिति थी।

इसलिए, महामति की खोज है कि किसी गुरु के पास जाना अथवा किस शास्त्र को मानना, सवाल इस बात का नहीं है : असली सवाल सीखने की क्षमता का है। और जिसके पास सीखने की क्षमता है, वह कौन गुरु है कौन शास्त्र है या कौन विधि है— इसके फेर में नहीं पड़ता। वह तो बस सीखता ही चला जाता है ? क्योंकि उसे पता है कि सत्य कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो किसी एक व्यक्ति से ही प्रवाहित होता हो। अगर हम सीखने को उत्सुक हों, तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है। अन्यथा गुरु और शास्त्र लाख समझाएँ कि यह संसार दुःख है, जीवन अनिश्चित है, कल मौत आ जाएगी। यदि हमारे भीतर सीखने की क्षमता न होगी, तो ये सारी आवाज़ें पहले तो कान में सुनायी ही न पड़ेंगी और पड़ भी गयीं तो समाप्त हो जायेंगी। और यदि वह सीख सकता है

तो वृक्ष के गिरते हुए एक पत्ते से भी उसे याद आ जायेगी कि कल यह हरा-भरा था और सूखकर मर गया है, और आज जो हरा-भरा दीख रहा है, वह कल हमसे छिन जाएगा, क्योंकि यहाँ इस नश्वरता में कुछ भी हमारा नहीं है। उस केन्द्र की याद आ जाना और उस ओर यात्रा पर निकल जाना ही मुक्ति के फूल का खिलना है।

सभी जीवात्माओं की रुचि और बौद्धिक स्थिति एक जैसी नहीं है। इसलिए जब वे मुक्त होते हैं तो उनकी मुक्तावस्था की भी कई कोटियाँ होती हैं। लोगों का चित्त किसी न किसी संप्रदाय में बँधा होने से, प्रायः वे यही सोचते हैं कि मुक्तावस्था हर जीवात्मा की एक समान होती है और वे सब अपनी विशेष कल्पना को ही सबकी मुक्ति मानते हैं। पर इस विषय में भी महामति का स्पष्टीकरण बहुत सरल-सा है। उनका कहना है कि हर जीवात्मा का एक केन्द्र है और जब भी वह मुक्त होता है अर्थात् ग़लत स्वरूप से हटकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होता है तो वह अपने को समस्त अस्तित्व के साथ एक विशेष ढंग से जुड़ा हुआ अनुभव करता है। उसकी वह अनुभूति ही उसकी मुक्ति है। वह आत्मा एक दिन अपने को विराट चैतन्य के एक विशेष आयाम में पाती है और देखती है कि अनन्तानन्त आत्माएँ अस्तित्व में एक-दूसरे से परस्पर संबंधित होकर परम अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई हैं, जैसे कि असंख्य लहरें सागर के अन्तस्थल से जुड़ी रहती हैं। इस तथ्य को इस्लामी ग्रंथों में बड़ी सरल ढंग से समझाया गया है—

'कुल आठ बहिश्त हैं, सात तो लोगों के रहने के लिए और आठवीं अल्ला के दीदार के लिए। और बहिश्तों के नाम यह हैं— १. जन्नत-उल-मादा, २. दारुल मकाम, ३. जन्नत-उल-खिल्द, ४. दारुल सल्लाम, ५. जन्नत अलन-नयीन, ६. जन्नत-उल-फिरदौस, ७. जन्नत-उल-अदन, ८. और सबों में उमदा है और जन्नत-उल-फ़िरदौस के ऊपर का तबका जन्नत-उल-अदन है जिसमें हर रात अल्ला ताला जलवा दिखाया करता है और तरह-तरह की नई बेशुमार चीज़ें पैदा किए चला जाता है और अंबार लगा दिया करता है। और आठवीं जन्नत के नाम में इख्तलाफ़ है। इबन अब्बास ने कहा है कि उसका नाम अल्लीय्यन है और कुरान शरीफ़ में आया है कि अल्लीय्यन जन्नतियों का दफ़्तर है, और बड़े-बड़े फ़रिश्ते व अच्छे-अच्छे लोगों के आने-जाने की जगह है, जन्नत का तबका नहीं है। .. ... तबकों (लोकों) का यह हाल है कि कोई तबका किसी तबके की ओर नहीं है। घर की छतों की तरह खुले हुए हैं, बल्कि अल्ला का अर्स सबों की छत है। यह सब पाए बाग़ और बुलंद बाग़ की तरह हैं। एक जन्नत दूसरी जन्नत की गोद में है और तीसरी जन्नत को घेरे हुए है। अल्ला ताला के सिवाए कोई इसकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं जानता, और नीचे के रहनेवालों को ऊपर के तबके के लोग ऐसे मालूम होंगे, जैसे कोई सिवाए पूर्व या पश्चिम किनारे पर।'[१]

कतेब ग्रंथों में आठ प्रकार की मुक्त आत्माओं की स्थिति का यह बड़ा ही सरल और रोचक वर्णन है। इसे वैदिक ग्रंथों के वर्णन से मिलान कर महामति ने और अधिक गहराई से समझाने का प्रयत्न किया है। वेदों में ब्रह्म और परब्रह्म करके दो शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिसकी प्रायः लोग उपेक्षा कर देते हैं। उनका कहना है कि जब तक इन दो शब्दों की सूक्ष्मता को अच्छी तरह न समझा जाए तब तक वैदिक ग्रंथों की तमाम गुत्थियाँ और उससे भी अधिक कतेब ग्रंथों की गुत्थियाँ सुलझ न पाएँगी।

---

१. अलामते कयामत, कुतुबख़ाना, दिल्ली पृ. ४२.४३

और न ही विविध संप्रदायों के मोक्ष की अवधारणा को हम यथावत समझ पायेंगे।

और बात भी यही हुई। सभी संप्रदाय अपने मोक्ष वर्णन को सही मानकर दूसरे को ग़लत बतलाते हैं? क्यों ? इसलिए कि वे ब्रह्म और परब्रह्म इन दो वैदिक शब्दों के मर्म को नहीं समझ पाते। ब्रह्म को वेदों ने अक्षर ब्रह्म कहा है। अक्षरमबरान्त धृते सा च प्रशासनात। (ब्रह्म सूत्र) उसके चार पाद गिनाए गये हैं, जिनका विस्तृत वर्णन त्रिपाद-विभूति उपनिषद् में दिया गया है और मुण्डक उपनिषद् तथा श्रीमद्भगवतगीता ने अक्षर से परे पर पुरुष पुरुषोत्तम का वर्णन किया है। यदि इन सबका सूक्ष्म भेद हमें हृदयंगम हो जाए तो हम कतेब ग्रंथों की तथा वैदिक परम्परा में अनेक संप्रदायों द्वारा प्रतिपादित भिन्न-भिन्न मुक्ति की स्थिति से भली-भाँति परिचित हो सकते हैं।

बात बड़ी गहरी है। लेकिन महामति प्राणनाथ हैं जो उसे हर प्रकार से सुगम बनाने का प्रयास कर रहे हैं। वे कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा की लीला जिन तमाम रूपों में होती हैं, उन नाना रूपों में एक स्वरूप अक्षर ब्रह्म का है। यह अक्षर ब्रह्म अपने चार पादों अर्थात् चार आयामों द्वारा नाना प्रकार की लीलाएँ करता है। उसके अन्तिम चौथे पाद में सदैव नई-नई सृष्टि रचने और बिगाड़ने की लीला किया करते हैं। हमारी सृष्टि का जितना लम्बा समय युगों का होता है, वह अक्षर ब्रह्म का एक पल भर है। यदि एक पल में एक सृष्टि हुई तो उसके हज़ारों पल में असंख्य सृष्टियाँ बनी और बिगड़ीं। इनमें से यदि कोई सृष्टि बड़े महत्त्व की हुई जैसे कि अपनी यह वर्तमान सृष्टि, तो इसे नूर जलाल —अक्षर ब्रह्म अपने दूसरे पाद (चेतना-आयाम) में अखंड कर लेते हैं। वह उनकी स्मृति का सनातन हिस्सा बन जाती है, जिस प्रकार कि हमारे जीवन का कोई महत्त्वपूर्ण स्वप्न सदैव के लिए हमें स्मरण रह जाता है।[२]

त्रिपाद-विभूति उपनिषद् ने अक्षर ब्रह्म के द्वारा सृष्टि रचना करनेवाले भाग को अविद्यापाद कहा है, क्योंकि इस भाग में अक्षर ब्रह्म अपनी ही अविद्या शक्ति से ढँकता है और माया-उपाधित कार्य ब्रह्म होकर सृष्टि रचना करता है। लेकिन उसके अन्य तीन पादों को उपनिषद् नित्य विष्णु का परम बैकुंठ धाम कहती है, जिसका मतलब हुआ कि ये तीनों पाद किसी प्रकार के दुःख से कुंठित नहीं होते। इन्हीं तीन पादों में ऊपर गिनाई गई सातों बहिश्तें हैं, और अक्षर ब्रह्म के इन चार पादों में ही आठ प्रकार की मुक्तियाँ होती हैं। इन आठ प्रकार की मुक्तियों में वे सभी मुक्तियाँ आ जाती हैं, जिनका वर्णन किसी न किसी संप्रदाय में हुआ हो। कहने का तात्पर्य है कि हर संप्रदाय मुक्ति का जो भी विशेष वर्णन करता है, वह ग़लत नहीं है और न ही वह कल्पना है, क्योंकि वह वर्णन चेतना की विशुद्ध अवस्था में अनुभव कर कहा गया है। लेकिन, महामति का कथन है कि उन सबका आयाम अस्तित्व में अलग-अलग है। जिस निर्वाण स्थिति को

---

२. तबक (लोक) (बैंकुठ) से, ऐसे पल थे कई पैदास।
ऐसी बुजरक कुदरत, नूर जलाल (अक्षर) के पास।।
ऐसे पल में पैदा करे, पल में करें फनाए (नष्ट)
ऐसा बल रखे कुद्‌रत, नूर जलाल के।।
इनमें कोई काएम (अखंड) करे, जो दिल आए चढ़त।
सो इंड सारा नूर से जो दिल दीदों देखत।।
काएम होत जो नूर से सो आवे न सबद माहें।
सो रोसनी नूर-मकान (अक्षर धाम) की, क्यों आवे इन जुबाएं।। (खुलासा, ६/५-८)

बुद्ध प्राप्त हुए हैं, वह उस स्थिति से भिन्न है, जिसे मुहम्मद और ईसा प्राप्त हुए हैं। शंकराचार्य की ब्रह्म-मुक्ति अन्य वैष्णव आचार्यों से भिन्न है।

इसका कारण है समस्त अस्तित्व की विराट चेतना अनेक आयामों में बिखरी हुई है, जिसे वेद-शास्त्र परब्रह्म के सत्-चित्-आनंद का बहुमुखी लीला-विलास कहते हैं, रस-सागर का अनन्त ढंग से उल्लसित होना समझते हैं। इसलिए मुक्ति भेद से सत्य में भेद हुआ, ऐसा नहीं समझना चाहिए। सत्य का फूल अनेक पंखुरियों में खिला हुआ है। सत्य एक ही है, उसके चेतना-स्तर बहुमुखी हैं, अनन्त-आयाम हैं। इस गूढ़तत्त्व को महामति बिल्कुल इस प्रकार समझा रहे हैं कि जैसे शिक्षक बच्चे को कबूतर और ख़रगोश का नाम लेकर क, ख, ग समझा रहा हो। महामति ही क्या? हिन्दु शास्त्र ! तौरेत, जबूर, बाइबल, क़ुरान-पुराण, सभी में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है।

महामति कहते हैं कि चार प्रकार की मुक्ति या बहिश्तों का वर्णन हम पढ़ते आए हैं कि जो लोग देवताओं की उपासना करते हैं वे अन्त में सर्वश्रेष्ठ देवलोक बैकुंठ-मलकूत तक पहुँच सकते है। दूसरा मुक्ति का स्थान नित्य गोलोक और तीसरा नित्य वृन्दावन वैष्णवों के द्वारा माना जाता है। इसका इस्लाम के ग्रंथों में लैलतुल कदर की प्रथम दो रातों की बहिश्त करके वर्णन मिलता है। चौथे प्रकार का मुक्ति-स्थल है : नूरी बहिश्त, हुकुम के स्वरूप की। यही वह स्थल है, जहाँ परमेश्वर का नूर सदैव वास़ करता है और जब भी सृष्टि-रचना होती है, उसमें दिव्य संदेश पहुँचाने का कार्य उनके हुक्म से होता है। यह वस्तुतः परमात्मा के असली हुकम-स्वरूप नूरे मुहम्मद का एक प्रकार से प्रतिबिम्ब है। अरब में पैग़म्बर मुस्तफ़ा ने पैग़ाम दिया तो मुहम्मद खिताब पाया

उक्त चार प्रकार के बहिश्तों— मुक्ति-स्थलों को सदैव अखंड माना गया है, क्योंकि जब भी सृष्टि बनती रही है, उसमें से तमाम जीव मुक्त होकर चार प्रकार के मुक्ति-स्थलों में पहुँचते रहे हैं।[४] परन्तु, महामति के अनुसार, इस सृश्टि-लीला के लिए चार अन्य बहिश्तें नयी बनी हैं, क्योंकि यह सृष्टि-लीला परमात्मा ने एक विशेष कारण से नियोजित की है और इसका स्वयं उसने अपनी बारह हज़ार चिद्-वृत्तियों द्वारा रसास्वादन किया है।

---

४. भिस्त हाल चार कुरान में, कह्या आठ होसी आखर।
ये भी सुनो तुम बेवरा, देखो मोमनों सहूर कर।।
तिन भिस्त हाल चार का बेवरा, एक मलकूती भिस्त।
दो भिस्त अव्वल लैल में, चौथी महमद आए जित।।
(खुलासा, ५/११/१२)

५. आखर भिस्तों का बेवरा, जो नइयां होसी चार।
जो होसी बखत कयामत के, तिनका कहूं निरवार।।
भिस्त अव्वल रूहों अकस, जो होसी भिस्त नई।
भिस्त होसी दूजी फिरस्तों, जो गिरो जबरुत से कही।।
पैगंबरों भिस्त तीसरी, जिनो दिए हक पैगाम।
चौथी भिस्त जो होएसी, पावे खलक जो आम।।
जिन किन राह हक की, लई साँच से सरियत।
भिस्त होसी तिनों तीसरी, सांचे ना जलें कयामत।।
जो सरियत पकड़ के, चल्या नहीं सांच ले।
सो आखर दोज़ख जल के, भिस्त चौथी पावे ये।। (खुलासा, ५/१३-१७)

परमात्मा की उन चिद्-वृत्तियों ने भी यह सृष्टि-लीला देखी है। इस कारण जब वे इस लीला को देखने के बाद जहाँ पहुँचेगी, वह दूसरा नया मुक्ति-स्थल फ़रिश्तों की बहिश्त का होगा। और जो एक लाख चौबीस हज़ार पैग़म्बर दिव्य संदेश लेकर पृथ्वी पर आए हैं, उनकी तथा उनके सही अनुयायियों की तीसरी पैग़म्बरी बहिश्त नयी बनी है। साथ ही एक चौथी बहिश्त नई बनी है उन सभी जीवों के लिए जो इस सृष्टि-लीला के अन्त में अपने-अपने विकास-क्रम को पूरा करके मुक्त होंगे। यह मुक्ति सभी जीवों को अन्त में प्राप्त होगी।

कतेब ग्रंथों में ऐसा बतलाया गया है कि क़ियामत के समय जब परमेश्वर जीव के पूर्व कर्मों पर विचार करेंगे, तो उन जीवों में से अनेकों को कुकर्मों के कारण नरक में डालेंगे। इस तथ्य को समझाते हुए महामति कहते हैं कि जो लोग अपने धर्मगुरुओं की आज्ञाओं को नहीं मानते हैं तथा बुरे कर्म करते हैं, वह सब पहले दस प्रकार की दोज़ख़ों की यातना पृथ्वी पर अथवा अधोलोकों में पूरी कर अन्त में शुद्ध होकर चौथी बहिश्त को प्राप्त होंगे। कारण चाहे जो भी हों। जितने भी 'कुन' कहने से जीव उत्पन्न हुए अर्थात् जो भी जीव 'एकोऽहं बहुस्याम्' – 'मैं एक हूँ– बहुत हो जाऊँ, कार्यब्रह्म के इस संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, वे सब इस सृष्टि लीला को चलानेवाले पाद हैं। उनका विकास क्रम तब तक चलेगा, जब तक सृष्टि चलेगी और अन्त में सब उस कार्यब्रह्म की महती चेतना में अखंड होकर चौथी मुक्ति को अक्षर ब्रह्म के चौथे पाद में प्राप्त होंगे।



प्रणामी साहित्य का ऐतिहासिक वैशिष्ट्य

डा. महेन्द्र प्रताप सिंह,
५१ बी, पाकेट ३, डी.डी.ए
मयूर विहार, दिल्ली

हिन्दी भाषा और साहित्य के अन्तर्गत अध्यात्म-चिंतन, धर्म-साधना तथा सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर मानवीय सद्भाव को आगे बढ़ाने में जो सचेतना रही है, उसकी चर्चा में ही हमारी आलोचना दृष्टि का अधिकांश सीमित रह गया है। ये सब ऐसे विषय क्षेत्र हैं— जिनके साथ राज्य का टकराव नहीं होता। राज्य की अर्थ व्यवस्था, कर प्रणाली और उसकी राजनैतिक सत्ता आदि के साथ सामाजिक आलोचना और परलोग चिंतन आदि विषय चुनौतियाँ नहीं उपस्थित करते। अतः साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी व्यवस्थाएँ भी ऐसे साहित्य के प्रचार-प्रसार के मार्ग में विशेष बाधाएँ नहीं उपस्थित करती।

हिन्दी-साहित्य का एक ऐसा पक्ष भी है, जो राज्य व्यवस्था के साथ टकराता रहा है। दुर्भाग्य से इस पक्ष की ओर हमारे विद्वानों का ध्यान बहुत देर से गया है। दूसरे हमारी इतिहास दृष्टि को विदेशी चिंतन ने बहुत ही प्रभावित किया है। ये विद्वान चाहे कितने ही समर्थ क्यों न हों, किन्तु उनके लिए यहाँ के लोगों की चित्त-वृत्ति और लोक-परम्परा को समझ पाना बहुत ही कठिन है। इसके अतिरिक्त इनमें से बहुतों की दृष्टि सम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी हितों से प्रेरित रही है। अतः उन पर निर्भर बने रहने की मोह ग्रंथि से हमें ऊपर उठाना होगा। यह कार्य अपने ही देश के साहित्य एवं साधनों द्वारा प्राप्त इतिहास बोध के द्वारा पूरा किया जा सकता है।

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए लोक-भाषा और मौलिक लोक-परम्पराओं में लिखित और अलिखित रूप से जो स्रोत विद्यमान हैं, उनमें प्रणामी साहित्य का विशेष महत्त्व है। महामति श्री प्राणनाथ तथा उनके अनुयायियों ने समय-समय पर जिस साहित्य की रचना की है, उसी को हम प्रणामी साहित्य कह रहे हैं। इसका मुख्य भाग महामति प्राणनाथ और छत्रसाल की प्रशस्ति में रचा गया है। इसी काल में साहित्य से ऐतिहासिक दृष्टि को विकसित करने में विशेष मदद मिल सकती है। उक्त साहित्य किसी संप्रदाय विशेष की संकुचित दृष्टि से ही नहीं, बल्कि हिन्दी-साहित्य और समूचे देश के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से भी अपनी उपादेयता सिद्ध करता है।

प्रणामी साहित्य-धारा को ध्यान में रख कर हम कह सकते हैं कि इसके अन्तर्गत ऐसी क्षमता और सभावनाएँ निहित हैं कि वह हमारे इतिहास का नया आयाम उपस्थित

कर सकती है। नवीन तथ्यों की जानकारी ही नहीं—वरन् इनके प्रकाश में ज्ञात तथ्यों में कई अर्थ-छवियाँ भी उत्पन्न होती है।

प्रणामी साहित्य की रचनात्मक पृष्ठभूमि पर किंचित् रूप में विचार कर लेने से उसके महत्त्व का अनुमान करने में सुगमता होगी। इस साहित्य-धारा की वर्चस्विता का बिंदु भी प्राणनाथ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में ही समाहित है। उनके गुरु श्री देवचन्द्र जी मुख्यतः ज्ञान की एकांत साधना में ही निमग्न रहे हैं। उन्होंने रचना-धार्मिता की दिशा में स्वयं को संलग्न नहीं किया था। ज्ञान की परिपूर्णता तभी सिद्ध होती है, जब उसे लोक-जीवन की प्रयोगशाला में अच्छी तरह जाँच लिया जाता है। पाश्चात्य देशों में प्रचलित 'फिलासफी' और भारतीय 'दर्शन' शब्दों में वस्तुतः इसी मूल दृष्टि के कारण अर्थगत धारणाओं में भेद स्थापित होता है। लोकोन्मुखी चिंतन के कारण ही देवचन्द्र जी ने सम्पूर्ण जीवन में अर्जित की गई एकांगी ज्ञान-ज्योति को लोक के पास ले जाने एवं उसके सहयोग से ज्ञान को माँजने निखारने का काम अपने सुयोग्य शिष्य श्री प्राणनाथ के हाथों में सौंप दिया था। इस तथ्य के अनुसार प्रणामी साहित्य के निर्माण में दो समर्पित व्यक्तित्वों की दीर्घकालीन साधना विद्यमान है।

श्री प्राणनाथ और श्री देवचन्द्र जी के व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक रूप में ही मूल्यांकित किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए इस्लाम (तत्कालीन राज-धर्म) के अध्ययन की ही बात ली जा सकती है। देवचन्द्र जी की प्रेरणा और दृष्टि लेकर ही प्राणनाथ जी उक्त धर्म के ठेठ केन्द्र अरब देशों की यात्रा पर गये थे। राज्य तथा हज से लौटते रहनेवाले मध्यस्थों की दृष्टि से मूलधर्म और धर्म के प्रचलित रूपों में जो दूरी आ गई थी, उसे पकड़ने में इसीलिए उन्होंने विशेष सफलता पाई है। अनेक अवसरों पर बड़ी दृढ़ता के साथ प्राणनाथ जी ने बार-बार यह उद्घोषणा की है। इस्लाम के पवित्र ग्रंथ में शब्दों के तात्पर्य और अभिप्रायों तक अधिकांश लोग नहीं पहुँच पा रहे हैं। भ्रामक अर्थों को ही लोग सत्य मान बैठते हैं। इस तरह उन्होंने अपनी साहसपूर्ण टिप्पणियों से यह स्थापित करने का प्रयत्न किया कि वैदिक वाङ्मय और 'कुरान शरीफ़' में तात्त्विक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। भारत के निवासी जिसे कृष्ण नाम से पुकारते हैं, उसी की शक्ति को अरब देश के निवासी अपनी भाषा में मुहम्मद नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने युग के लोगों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि झगड़े की जड़ धर्म में नहीं, बल्कि भाषा-भेद में ही निहित है। शास्त्रों में किसी प्रकार की कमी नहीं है, बल्कि वह कमी मनुष्य की अपनी अक्षमता और अज्ञान के कारण ही उत्पन्न हुआ करती है—

उरझे सब भाषा मिने, वास्ते जुदे नाम।
अन्दर दोउ के गफ़लत, लड़त वास्ते भाख।।

अगला उदाहरण शास्त्रों के ज्ञान की परम्परा के समर्थन में है—

'जिन जानो शास्त्रों में नहीं हैं शास्त्रों में सब कुछ।
पर जीव सृष्टि क्या जानही, जिनकी अक्ल है तुच्छ।'

प्राणनाथ जी ने सत्रहवीं शताब्दी के उग्र एवं तनावों से भरे वातावरण में दो धर्म-सम्प्रदायों को जोड़कर इन्हें एक राष्ट्रीय जाति के रूप में एकात्म करने का प्रयत्न किया था। वैदिक-धर्म की खोई हुई शक्ति तथा उसके लचीलेपन को उभारने का प्रयत्न किया1 अपने क्रांतिकारी चिंतन द्वारा उन्होंने धार्मिक कर्म-कांड को हटा कर, उसके मानवतावादी रूप को इस तरह उभारने का प्रयत्न किया था कि इस्लाम की उपासना

पद्धति के साथ उसका सामंजस्य स्थापित हो जाय—

चार बरन अरु दुहू दीन के, झगरे जिन निरवारे।
एक बुद्धि अरु एक धर्म ह्वै, भजन एक का होई।
दूट जाई नानात्व मति, वेद पक्ष लें दोइ।

इतिहास की इस गहरी अर्न्तदृष्टि को उजागर करने वाले प्राणनाथ जी के युग में भारत का इतिहास चिंतन मर गया था। इसे किस न्याय से ठीक मान लिया जाय?

उन्होंने अपने इस मौलिक चिंतन को युग-धर्म एवं राष्ट्र-धर्म के रूप में विकसित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये थे। तत्कालीन राजे-महाराजे, बादशाह और उसके मुसाहिबों के साथ उन्हों धर्माचार्यों एवं मठाधीशों से भी सम्पर्क स्थापित किया था। वे ऐसे सन्त थे, जो राज्य-सत्ता की अपेक्षा करने के स्थान पर लोक सहयोग से अपने विचारों का प्रचार करवाने की अभिलाषा रखते हैं। एक ओर जहाँ वे राज्य के सहयोग की उपेक्षा कर रहे थे, वहाँ उन्होंने जनता को इस रूप में जाग्रत और सन्नद्ध करना चाहा था कि वह राज्य पर सदैव हावी बनी रहे। इस आशय की पुष्टि करने वाले उदाहरण इस प्रकार हैं—

यह कुरान को अर्थ जो, असर करत है आन।
गहि के नौरंग साहि को, कहिए मूल प्रमान।।
साहि सदन ठहराई जब, होइ प्रगट सब ठौर ।
ना माने नरनाह जो, मारौ यवननि दौर।।

वृत्तांत मुक्तावली., ५७/५८, प्र० ५०

महामति प्राणनाथ के विशाल ग्रंथ 'कुलजम स्वरूप' के नाम-प्रतीक पर भी किंचित् विचार कर लेना उचित होगा। प्रणामी लोग बहुधा इसके लिए 'स्वरूप साहब' नाम का व्यवहार किया करते हैं। वस्तुतः 'स्वरूप साहब' नाम ही उपयुक्त है। कुलजम शब्द उस स्वरूप का विश्लेषण मात्र है। रचनाकार अपने स्वरूप को अपने शब्दों में उतारने में सफल हुआ है। उसका यह व्यक्तित्व उस समुद्र के समान है, जो दो महाद्वीपों की संधि कराकर उन्हें आपस में जोड़े देता है। जिस तरह, समुद्र में अनेक नदियाँ और अनेक देशों का पानी अलग-अलग दिशाओं से आकर समाहित हो जाता है, उसी प्रकार चिंतन की अनेक धाराओं का महामति के व्यक्तित्व में समवेश हुआ है।

समुद्र के लिए रत्नाकर नाम का भी व्यवहार किया जाता है। वह नाम तभी सार्थक होता है जब हम समुद्र से रत्नों की प्राप्ति कर लेते हैं। प्राणनाथजी ने अपने 'कुलजम' को किस प्रकार रत्नमय बना दिया है, इसका उदाहरण देना उचित होगा। उन्होंने एक मर्जिया बनकर विश्व की अनेक विचारधाराओं में से मोती ढूँढ़कर उन्हें 'कुलजम' की माला में पिरो दिया।



तारतम ज्योति में 'क़यामत' का रूप

श्रीमती आशा प्रसाद
आँगन बाड़ी प्रशिक्षण केन्द्र
अरिया, धनबाद, बिहार

भारतीय संस्कृति में मंत्र साधना का महत्त्व सर्वोपरि है। विश्व की शायद ही ऐसी कोई संस्कृति हो, जिसमें मंत्र का ऐसा वैशिष्ट्य प्रतिपादन हुआ हो। भारतीय योगसाधना, हठयोग, मंत्र योग आदि प्राचीन काल से ही अपने पारंपरिक रूप में भारतीय धर्म और संस्कृति की धारा में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहमान है, और देश के समस्त जनमानस को आप्लावित निमज्जित करती रही है। भक्तिज्ञान और कर्म में भक्ति की श्रेष्ठता को सिद्ध करते हुए भारतीय मनीषियों ने नामजाप को परमात्म-प्राप्ति का साधन माना। मानव मन हमेशा विचारों से परिवेष्ठित रहा है, फलतः भगवतद् भक्ति में उसका चलायमान चित् नहीं रमता है। किन्तु जब धीरे-धीरे चिंताओं की उर्जा मंत्र में लीन हो जाती है, तब अन्तः भावना जागृत होती है, यही जागनी कहलाती है। मनुष्य में इच्छाओं का उदय और अस्त होता है, अवधान और तिरोधान होता है। क्रम-क्रम से दोनों स्थितियों के बीच का अन्तर दृश्यमान होता है। यही अन्तर जागनी की चेतना का सौन्दर्य होता है। इस सौन्दर्य में मन जितना अधिक रमता-ठहरता है, उतना ही उसका प्रकाश प्रखर होता है। और मनुष्य आत्म जगत के निकट पहुँचता है। आत्म जगत के निकट पहुँचाने की साधना का पहला सोपान तारतम, तारतम सिद्धि और तारतम मंत्र है।

प्रणामी धर्म, जो महामति दर्शन का सार तत्त्व है, तारतम मंत्र की नींव पर खड़ा है तारतम श्री निजानन्द स्वामी का आत्मानुभव है, जिसकी प्राप्ति इन्हें परम ब्रह्म परमात्मा अक्षरातीत कृष्ण के सीधे साक्षात्कार से हुई। यह किसी भी शास्त्रीय विधि-विधान और बंधन से परे है।

महामति प्राणनाथ की वाणी में तारतम का बड़ा ही विस्तृत और व्यापक अर्थ है। सामान्यतः तर और तम के भाव से तारतम 'तमसो माँ ज्योतिर्गमय' का वाहक है, किन्तु महामति की वाणी में इसका गूढ़ार्थ है। 'परब्रह्म की माया लीला रूपों से परे चिन्मय स्वरूप का अवलोकन कराना'—

बोहोत धन ल्याये धनी धाम से, विध-विध के परकार।
सो ऐ धन में तोलिया, तारतम सबमें सार।।

तारतम को बल कोई न जाने, एक जाने मूल स्वरूप।
मूल स्वरूप के चित की बातें, तारतम में कई रूप।।

कलश, २३, ५४, ५६

महामति के अनुसार तारतम ही वह मन्त्र है, जो धर्म के मर्म तक पहुँचा सकता है। लोगों के मन से घृणा, वैमनस्य, द्वेष, अहंकार हिंसा की भावनाओं को मिटाकर वहां सद्संस्कार की जाग्रति कर सकता है। सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि सच्चे मन से इसे ग्रहण करनेवाला व्यक्ति किसी प्रकार के दुरूह पथ का अवगाहन कर सकता है

तारतम जोत उद्योत है, तिनसे कहा होय।
एक सुपन दूजा वतन, जीव देखे दोय।।

प्रकाश कि. ३१/१२८

तारतम के उजाले कर, रोसन कियो इन सूल जी।
के कोट ब्रह्मांड देखाई माया, पाया अंकूर पेड़ मूलजी।।

प्रकाश हि. ३०/३५

श्रीमद्भागवत में विश्व की क्षणभंगुरता की अवधारणा का कथन किया गया है तथा ब्रह्मांड को शून्य निराकार माया से लिप्त माना गया है किन्तु जब माया के सम्मोहन का पर्दा हटता है तभी परमधाम और चिन्मय स्वरूप के दर्शन होते हैं। संसार में जीवात्माओं को जाग्रत करने, उन्हें अखंड सुख की प्राप्ति कराने का उपाय महामति की वाणी में द्रष्टव्य है—

तारतम रस वाणीकर, पिलाइये जाको।
जेहेर चढ़ा होय जिमि का। सुख होय ताको।।
ए रस श्रवणों जाके झरे, ताको कहा करे जेहेर।
सुपन न होवे जागते, देखी ता बेर।।
जहर उतारने साथ को, ल्याये तारतम।।
बेहद का रस श्रवणों, पिलावे हम।।
एही रस तारतम का, चढ़या जेहेर उतारे।
निरविषी काया करे, जीव जागे करारे।।

प्रकाश हि०, ३१/१३७, १३६, १४०

महामति का तारतम आत्मा को जाग्रत कर इस नश्वर संसार से उस पार, जहां अविनाशी सत्ता अक्षर ब्रह्म है, परमधाम है, उसकी सुधि दिलाता है—

हद के पार बेहद है, बेहद के पार अख्यर।।
अख्यर पार वतन है, जागिये इन घर।।

तारतम ही वह ज्ञान-पुंज है, जो मन से संसार की तुष्ट न होने वाली चाह को मिटा सकता है, तथा संजीवनी शक्ति बन कर जन्म जन्मान्तर के कष्टों से मुक्ति प्रदान कर सकता है।

महामति कहते हैं कि मानव शरीर एक सुन्दर सुहावना मंदिर है, तथा इसकी समस्त इन्द्रयाँ उसके द्वार हैं, जिसके द्वारा मृगतृष्णा के विभिन्न-आकर्षक साधन भीतर प्रवेश कर आत्मा को आवेष्टित कर लेते हैं और जीव को नैराश्य के सागर में निमज्जित कर देते हैं—

रे जीव सरीर मंदिर सोहमनो, चौदह खूने रे आवास।
इनके भरोसे जे रहे, ते निकस चले निरास।।

किरंतन, ३४/३

परमतपः ज्ञानी मनीषियों ने इस मुक्ति के मार्ग का अन्वेषण किया, किन्तु कोई भी पूर्ण रूप से सक्षम नहीं हुए, किन्तु प्राणनाथ ने तारतम ज्ञान की कुंजी खोज निकाली। जब जीवात्मा अपने प्रियतम को पहचान लेगी तो उसे ब्रह्म से मिलने से कोई बाधा उसी प्रकार रोक नहीं सकती जिस प्रकार ब्रह्मप्रियाओं के रूप में ब्रजमंडल में फैली गोपियों को कृष्ण की बंशी के स्वर पर भव-बाधा रोक नहीं सकी।

समस्त वैदिक पौराणिक एवं शास्त्रीय मतवाद के अनुसार परमात्मा की प्राप्ति तथा परम तत्त्व की सिद्धि के मूल में प्रेम तत्त्व की ही प्रधानता होती है वह प्रेम चाहे वैयक्तिक हो या निर्वैयक्तिक। प्रभु प्रेमी अपने मन में परब्रह्म स्वामी के सिवा अन्य किसी भी सत्ता का ध्यान नहीं करता है। प्रेम और तारतम मंत्र ही वह संयंत्र है जो गुरुवाणी की तरह मन के भीतर प्रवेश कर चेतना को जाग्रत करता है। एक परमात्मा, एक धर्म और एक मानवात्म बोध से अद्वैत ब्रह्म से एककार करता है। द्वैत को मिटाता है। रूह अल्लाह या श्यामा के प्रतिरूप श्री देवचन्द्र जी ने समस्त शंकाओं का समाधान करने वाला तारतम ज्ञान दिया जो विश्व के सभी प्राणियों को अमर पद दिला सकता है, बार-बार मरते हुए को आवागमन के बन्धन से अखण्ड मुक्ति प्रदान करा सकता है—

ए इल्में सब विध समझे, साँचा इलम जो हक।
सब मर-मर जाते हुए, किए इल्में बका मुतलक।।

सागर, १३/२१

विश्व के प्रमुख धर्म ग्रंथों में अवतारवाद की अवधारणा को स्वीकार किया गया है तथा तदनुरूप इसकी घोषणा की गई, किन्तु ब्रह्मात्माओं के अवतरित हुए बिना ब्रह्म को कौन पहचान सकता है और तारतम ज्ञान के बिना उसकी पारस्परिक पहचान कौन करा सकता है ? सत्य तो यह है कि तारतम ज्ञान ही क्षर-अक्षर-अक्षरातीत, नासूत और लाहूत सभी अर्शों की जानकारी प्रदान करता है—

चौदे तबक बेसक हुए, इन बानी के रोसन।
सो ले इलम कायम हुए, सुख भिस्त पाई सबन।।
एता मता तुमको दिया, सो जानत है तुम दिल।
बेसक इल्में न समझो, तो सहूर करो सब मिल।।

सिनगार, २७/५४.१

तारतम ज्ञान की शक्ति असीम है इसमें वह चमत्कारिक बल है। जिसके द्वारा भाषा, धर्म, वर्ग, वर्ण, देश का भेद मिट जाता है। प्राणनाथ ने तारतम मंत्र द्वारा समस्त लोक में समन्वय की दुन्दुभि बजायी। यहाँ तक कि कट्टर औरंगज़ेब को उन्होंने सही दिशा दी और सन्मार्ग पर आरूढ़ किया। तारतम मंत्र के कारण ही—

सब दुनिया हक इसक हुआ, तो देखो अरस में होसी कहा।
ए आया इलम रूहन पर, हकें भेज्या ए तोहफा।।

सिनगार, २-३९

छिपी बातें बीच अरस के, कोई रही न माहें सक।
पाई ऐसी बेसकी, जो लई दिल की बातें हक।।

खिलवत, ७-३०

श्री प्राणनाथ कहते हैं कि इस मायावी संसार में पहुँचते ही जीव का निर्मल मन कलुषित हो जाता है, और ब्रह्म से अपने शाश्वत संबंध को भुला बैठता है। परमात्मा की परख की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। किन्तु ऐसे समय में तारतम मंत्र आत्मा और परमात्मा के अभिन्नत्व का बोध करा कर आत्मा को परमधाम ले जाता है। महामति कहते हैं— ऐ मेमिनो! ब्रह्मात्माओ! यह तारतम कुंजी अनोखी है, यह परम ब्रह्मज्ञान है, जो पर ब्रह्म के द्वारा ही अपने प्रियजनों को प्रदत्त है—

महामत कहे ए मोमिनो, ए ऐसी कुंजी इलम।
ए मेहर देखो मेहबूब की, तुमको पढ़ाय आप खसम।।

सागर, १३/५३

तारतम ज्ञान से पूर्णब्रह्म की पहचान होती है। करुणासखी लिखते हैं—

भोगता भोग दोऊ एक है, केवलानंद विलास।
देखो देह निज पीऊ को, तारतम तेज प्रकाश।।
श्री तारतम निज तेज प्रकासा। तिमिर घोर को करे विनासा।
क्षीर नीर न्याये समझावे। ब्रह्म अरू माया दोऊ चिन्हावे।।
इतहीं थे ब्रह्माण्ड दिखावे। उत्पत प्रलय द्रष्टें आवें।
मूल स्वरूप में सुरत मिलावे। परम धाम लीला परचावे।।

तारतमे सागर, ५/१-३

महामति प्राणनाथ ने तारतम के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार युद्धभूमि में कृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट रूप का दर्शन कराकर कर्म में प्रवृत्त किया था, उसकी प्रकार तारतम ज्ञान की कुंजी जीव को अनंत ब्रह्माण्ड की क्षणभंगुरता एवं अल्प समयता का बोध कराकर अविनाशी अखंड ब्रह्मांड की ओर बिना रोक-टोक जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, अध्यात्मिक क्लेषों को दूर करने वाली औषधि तारतम मंत्र है—

याद आवे सारे सुख, जीव नैनो भी देखे।
तारतम सब सुख देबही, विध-विध अलेखे।।
तारतम रस बेहद का, सब जाहेर किया।
बोहोत विधे सुख साथ को, खेल देखते दिया।।

प्रकाश हि. ३१/१३०, १३६

जिस प्रकार चिकनी मिट्टी के घड़े पर पानी की बूँदे नहीं ठहर सकती है, 'ज्यों छीट न लागे घड़े चीकटे' उसी प्रकार विकार युक्त मन पर ज्ञानामृत नहीं ठहर सकता है। मनुष्य को अपने शत्रुओं-गुण अंग-इन्द्रियों, मान, मोह मद पर विजय प्राप्त करने के लिए तारतम ज्ञान आवश्यक है, जिससे चित्त के सारे विकार दूर हो जाते हैं।

महामति प्राणनाथ जी ने सद्गुरु के रूप में तारतम ज्ञान की ज्योति जलाकर भटकती हुई रूहों को सही राह दिखायी। धर्म ग्रंथों के शब्दार्थ और धर्म के बाह्य रूप को लेकर ही संसार में मतभेद एवं कलह है। महामति ने तारतम मंत्र एवं तारतम ज्ञान के द्वारा

धार्मिक शब्दों, घोषणाओं एवं मान्यताओं की अभिप्रेत व्याख्या की और उन्हें एक दूसरे के निकट लाकर जन-जन के लिये ग्राह्य बना दिया। पूजा की विधियों एवं बाह्य कर्मकांड को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया— तो भी नमाज़-पूजा, ज़कात-दान, ज़ियारत-परिक्रमा, हज-तीर्थ रोज़ा-उपवास आदि पर्यायवाची शब्दों को सामने लाकर उन्होंने धर्म सम्प्रदायों की कट्टरता को दूर करने का प्रयास किया।

सारा ईसाई और मुस्लिम जगत् अन्तिम दिन के न्याय और क़यामत के समय कब्रों के से मुर्दों के उठने की प्रतीक्षा कर रहा है। महामति ने क़यामत के मुख्य लक्षणों को भी नये अर्थ में प्रस्तुत किया ।

कब्रों से मुर्दे उठने का आशय उन्होंने यह बताया कि मानव शरीर रूप कब्र में सोई आतमा का जागना ही अन्तिम दिन के ज्ञान की उपलब्धि है। कज़ा के रूप में पूजा के लक्ष्यों, देवी-देवताओं की भूमियां और स्तरों की व्याख्या ही अन्तिम दिन का न्याय है। जो जिस देव स्थान की उपासना करेगा, मृत्योपरान्त उस जीव का गन्तव्य वही होगा।

दाभ तल अर्ज के लिये लिखा गया है कि मुर्गे की गर्दन, सूअर की आंखें शेर की छाती और गीदड़ की पीठ लिये कोई जीव पैदा होगा। महामति ने दज्जाल या माया से प्रभावित मानवों को ही वह जीव बताया। इसी तरह तारतम ने क़यामत के अन्य लक्षणों की भी बड़ी सार गर्भित व्याख्या की है।

क़यामत के बाद नये युग का आरम्भ होगा। ईश्वरीय राज्य स्थापित होगा ऐसा माना जाता है। महामति द्वारा प्रदत्त तारतम ज्ञान के प्रकाश में महाराजा छत्रसाल ने संसार को ईश्वरीय राज्य की झलक दिखा दी। जहाँ सभी धर्मों का आदर सभी धर्म ग्रंथों का पठन एवं सभी जाति वर्ग एवं वर्ण के लोगों को स्नेह और सम्मान मिलता था। यह नया युग कैसा होगा और कैसे उसे लाया जा सकता है इसका उपाय बताया।

महामति ने क़यामतनामा ग्रंथ में वेद-कतेब के आधार पर अन्तिम युग में प्रकट होने वाली सत्ता के आगमन की सूचना दी है-

जोतिष कहें विजयाभिनंद । कलयुग को करसी निकंद।
अंजीर कहें ईसा बुजरक । सो आय के कारसी हक।।
यों उरझे नाम जुदेघर । रब आलम का आया आखर।
अपनी अपनी में समझें सब । ए जुदा न रह्या कोई अब ।।

१/२८,३०

ए इलम ले रूह अल्ला आया। खोल मायने इमाम केहेलाया।

वही, १२/३

क्या हिन्दू क्या मुसलमान । एक ठौर ल्यावें इमान।

वही, १/६

ईसा रूह अल्लाह ने पुनः श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप में प्रकट होकर तारतम ज्ञान से गर्व भरे थोथे ज्ञान के पर्वतों को रूई के समान उड़ाकर सत्य धर्म की प्रतिष्ठा की। सत्य, को सम्मुख देखकर भी न मानने वाले काफ़िरों के लिये कुरान ने दस प्रकार की दाज़ख बतायी है- जहाँ उन्हें शुद्ध करके मुक्त किया जायेगा।

जिन पाई राह रोज़ क़यामत, सो उठे फजर के नूर वकत।
फजर पीछे जब उग्या दिन, तब तो तोबा तोबा हुई तन वतन ।।

वही, २/४३

जागनी के एक सौ दस वर्षोपरान्त एक के बदले हज़ार बन्दगी- उपासना का फल मिलना बन्द हो जायेगा। फिर सबको कर्मफल भोगकर ही मुक्ति मिलेगी। तारतम तारक मंत्र है जो अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले जाता है। तारतम तर और तम का द्योतक होने से क्षर-अक्षर के पार का ज्ञान देता है और संसार में अक्षरातीत, उत्तम पुरुष, इल्लुलाह, एकेश्वर परब्रह्म की प्रतिष्ठा करता है और उसी की ओर नमन करने का आदेश देता है।

कुलजम स्वरूप तारतम वाणी संसार के वाङ्मय को महामति की अनूठी देन है। वे सर्वधर्म समन्वयक थे। उन्होंने तत्कालीन भारतीय संस्कृति में धर्मों में फैले विद्वेष के बीच अस्तित्व के संकट को दूर करने का प्रयास किया।



धर्म समन्वय के बढ़ते क़दम

परमधामवासी भगत कश्मीरी लाल, *एम. एस. सी.*

श्री प्राणनाथ जी के जीवन और साहित्य पर लेखमाला छपी है यह प्रसन्नता की बात है। श्री प्राणनाथ मिशन के उत्साही सदस्य बधाई के पात्र हैं कि तीन सौ वर्ष पूर्व आई एक महान सत्ता के उपयोगी सुझावों को आज जन मानस के सामने रखने का प्रयास कर रहे हैं। देश तथा विदेश के कुछ लोगों ने उनके जीवन पर प्रकाश डाला है। परन्तु वह पर्याप्त नहीं।

उनके जीवन के अध्ययन से पता चलता है कि उनके सदगुरु श्री देवचन्द्र जी महाराज बाल्यकाल से ही आध्यात्मिकता की खोज में रहे। सोलह वर्ष की आयु में घर बार त्याग चालीस वर्ष की आयु तक अनेकों सन्तों, संन्यासियों, तीर्थकरों के पास रह कर अनेक मत-मतान्तरों का अध्ययन किया। कई जप, तप व्रत नेम किए। अन्त में चौदह वर्ष तक निष्ठापूर्वक भागवत का श्रवण करते रहे। इसके पश्चात् परमात्मा का साक्षात्कार हुआ। परमानन्द की प्राप्ति हुई और उन्होंने अपना शेष जीवन जनता को निजानन्द की प्राप्ति कराने में लगा दिया।

श्रीमद्भागवत की महिमा का वर्णन करते हुए महर्षि वेदव्यास ने स्वयं कहा कि अनेक वेद शास्त्र दर्शनों को रच कर भी मेरा मन संतुष्ट नहीं हुआ। अंत में ज्ञान का भंडार भक्ति के चरणों में लोट पड़ा। श्री कृष्ण भक्ति से पूर्ण श्रीमद्भागवत ग्रंथ ही उनकी आत्मा को आनन्दित कर सका। स्वामी जी ने अपने प्रचार में इसी भागवत ग्रंथ को प्रमाण माना क्योंकि इसमें भक्तिप्रधान होते हुए भी अन्य सभी हिन्दू धर्म ग्रंथों का ज्ञान निहित हैं। स्वामी जी ने इसके विषय में कहा—

हदियों का कोहेड़ा, बेहदी समाचार।
दाझ न मिटी तिन व्यास की,
पीछे उदयो भागवत सार।।

संसार के कई बुद्धिवादी लोग भागवत को मात्र कहानियों का संग्रह मानते हैं परन्तु उसमें तो बेहद का ज्ञान और अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति का संदेश है।

श्री प्राणनाथ जी का जन्म वि० सं० १६७५ (सन १६१८ ई०) में श्री केशव राय ठाकुर तथा श्रीमती धनबाई के घर जामनगर में हुआ। बारह वर्ष की उम्र में अपने बड़े भाई गोवर्धन ठाकुर के साथ श्री देवचन्द्र जी की शरण में गए। उनके सम्पर्क में उनके अनुभवों का लाभ उठाते हुए परम ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दू धर्म ग्रंथों के आधार पर सच्चिदानन्द के निजानन्द मत का प्रचार करते हुए जब वे मेरता पहुँचे तो मस्जिद के मुनारे पर मुल्ला को 'अजान' देते सुना। उन शब्दों में परमात्मा एक है वही क्षर

अक्षर से परे अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है—इस पुकार को सुना। उसी समय से उनका ध्यान क़ुरान की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने पाया कि उसमें तौरात, जबूर और अंजील का भी सार है। बस उन्होंने श्रीमद्भागवत तथा क़ुरान को आधार मान कर अपने ज्ञान की इमारत बनाई। उनके ग्रंथों में स्थान-स्थान पर वेद और कतेब का नाम आता है। लगभग सभी धर्म ग्रंथों के संदर्भ उसमें मिलते हैं।

उनकी वाणी में वेद-कतेब पर आधारित प्रकृति, आत्मा, पिण्ड, ब्रह्मांड, सद्गुरु, तीन सृष्टि, धाम, परमधाम, तथा परमात्मा के स्वरूप तक का बड़ा स्पष्ट वर्णन मिलता है। आत्म साक्षात्कार और परमधाम प्राप्ति के साधन बताए हैं। महान अध्यात्म ज्ञान के साथ-साथ उस समय की समस्याओं को इस ढंग से सुलझाया कि उनके सुझाव युग-युगान्तर के लिए आदर्श बन गए। उन्होंने उस समय के अन्यायी, अत्याचारी तथा पक्षपात पूर्ण शासक के विरुद्ध जनता को खड़ा किया। ज्ञानी, सन्त, पंडित वर्ग को सहयोग तथा प्रेरणा देने की पुकार लगाई और हिन्दू शासक वर्ग को उस अभियान का नेतृत्व करने का आदेश दिया। उनके ज्ञान को महाराजा छत्रसाल ने सही रूप में समझा। वे उनकी पुकार पर खड़े हो गये। इनके आशीर्वाद तथा अपनी शारीरिक और आत्म-शक्ति के बल पर छत्रसाल इतने प्रबल सम्राट औरंगज़ेब का सामना कर सके और उन्होंने विन्ध्याचल के इस भूभाग—बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र कर लिया।

छत्रसाल जी स्वयं एक महान साहित्यकार और कवि थे। छत्रसाल कवित आदि ग्रन्थों में उनकी भक्तिरस पूर्ण कविताएँ जन मानस में भक्ति और शक्ति का भाव भर देती हैं। उनके अन्तर में प्रेम और भक्ति की निर्मल सलिला बहती थी तो बाहर ओज और शक्ति का ओर छोर नहीं था। अस्सी वर्ष की उम्र में इलाहाबाद के शासक बंगश खां के साथ उन्होंने महान युद्ध किया। उसके दो वर्ष के पश्चात् नश्वर शरीर का त्याग किया।

स्वामी श्री प्राणनाथ जी की वाणी विश्व धर्म समन्वय की जीती-जागती तस्वीर है। इसमें हर धर्म ग्रन्थ, ऋषि-मुनि और पैग़म्बर को यथायोग्य स्थान प्राप्त है। इस एक ग्रन्थ में संसार के सभी धर्म ग्रन्थों के संदर्भ मिलते हैं।

इस युग में जब कि विद्या का इतना प्रचार प्रसार हो रहा है, विज्ञान की उन्नति के साथ युवा वर्ग धर्म के सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखना चाहते हैं। धर्म प्रचारकों के लिए आवश्यक है कि वे इस दिशा में कोई ठोस क़दम उठायें। संसार के सभी सम्प्रदायों के विषय में जिस प्रकार की निष्पक्ष जानकारी की नींव महामति प्राणनाथ ने रखी थी उस ओर अधिकाधिक शोध होना अभी बाक़ी है। सभी धर्माधिकारियों को धर्म समन्वयात्मक विचारों का दृढ़ता से प्रचार करना चाहिए।

मेरे जीवन की यह साध रही है कि सभी धर्मों के माननेवालों के सुन्दर लेखों का संग्रह किया जाय जिनमें उनके धार्मिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं की पूर्ण जानकारी हो। उसका विश्व की अधिक-से-अधिक भाषाओं में अनुवाद हो। सभी धर्म स्थानों और मन्दिरों पुस्तकालयों में सभी धर्मों के ग्रंथ रखे जायें और जिज्ञासु वर्ग को पढ़ने को दिए जाएं। इस प्रकार सभी धर्म ग्रंथों का निष्पक्ष अध्ययन हो। समय-समय पर साहित्यिक गोष्ठियों की तरह धर्म गोष्ठियाँ हों, धर्म समन्वय के लिये बढ़ते हमारे कदमों को परमात्मा बल दें तथा लोगों में विरोध भरने के बदले मिलकर चलने का भाव पैदा करें।



Mahamati; The Pioneer of Comparative Religion

Prof. Dr. Harendra Prasad Verma

P.G. Deptt. of Philosophy,
Bhagalpur University

Comparative Religion is "the comparative study of Religions."[1] According to the Encylopedia of Religion and Religions, `it is the scientific and hence impartial study of the religions of the world with a view to find out their similarities and dissimilarities as well as the common religious concepts.' Hence Comparative Religion, as understood in the West, is a positive science. It is the neutral and secular study of religions, its approach is objective, rational and scientific. It is, religions coming to mutual understanding of themselves.

In the West, Comparative Religions originated in the latter part of the 19th century. According to E.O. James, "From the time when religions mingled in the Greeco-Roman world, thinkers have been compelled to evaluate their own beliefs and practices in relation to those of other people and races but it was not until the latter part of the nineteenth century of our era that a serious attempt was made to apply scientific principle to the comparative and historical study of the subject."[2]

Max Muller might be regarded as the precursor of Comparative Religion in the West, whose article, "Essay on Comparative Religion" (which was collected in the Oxford Essays and published in 1856) was perhaps, the first article on the subject. However, in India, it was Mahamati Prannath (1618-1694) who, for the first time, made venture in this field as early as the 17th century and, hence, he deserves to be acknowledged as the pioneer of Comparative Religions in Mediavel India. Mahamati Prannath is not very much known in the Philosophical circle because his works did not come into light until recently when Shri Prannath Mission published the Kuljam Swaroop in 1972. However, Mahamati has made his valuable contribution to Philosophy and Comparative Religion and the Meeting of Religions. He propounded `Shuddh Sakarvada' or `Swaliladvaitavada' in philosophy and gave birth to the

1. Comparative Religion, George Allen & Unwin Ltd. London, 1962, p-11.
2. E.O. James, Comparative Religion. Methuen, London, 1961, p-15.

idea of One World Religion.

Mahamati Prannath was born in August, 1618 in Jamnagar, (Saurashtra). His initial name was Sri Mehraj Thakur. His father, Sri Keshav Thakur, was a Minister in the Jam State. He belonged to a Kshatriya family which was held in high esteem in Gujrat those days. Prannath, from the very beginning, had a religious bent of mind. He was initiated by Sri Dev Chandraji who was the founder of the Nijanand or Pranami sect. Prannath got an opportunity to be ingrained in the ancient Indian Wisdom—the Vedas, the Upanishads and the Puranas, specially, Srimad Bhagvat, at the feet of his Guru. He also travelled far and wide. He was sent to the Arabian countries by his Master, Sri Dev Chandraji, with the veiled mission to get him acquainted with the Semitic religions too. He stayed there for about 5 years and could get the opportunity to learn the Arabic Language and became at home in the Islamic thought as well as in the wisdom of the Jewish-Christian traditions. Thus being ingrained both in the Puranic and the Quranic traditions, Mahamati felt that different religions speak about the same truth in different languages. His conviction was all the more strengthened when, on one evening, in Merta, he heard the "Azan" of a Mulla. All of a sudden, it was revealed to him that "La illaha ill Illah" of the Quran means the same as the 'क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर: उच्यते। उत्तम पुरुषस्तवन्य: परमात्मेत्युदाहृत!' of the Bhagvat Gita, 'La illaha ill Illah' means, `There is no God but Allah.' Here `La' means `nothing' which has been termed as `Ksara', `Illaha' means `God' which has been termed as `Aksara', and `Illullah' means the Supreme which has been termed as `Aksharatit'—UTTAM PURUSH by the Gita.

Hence both the Quran and the Gita point to the same Supreme Reality (Aksharatit Parmatma) which is beyond the Perishable (Kshara) and the Imperishable (Akhsara). Moroever, both the Quran and the Gita maintain that there is the Absolute which transcends both the trancient and the permanent and that alone is worth adoration. Prannath was thus attracted towards the comparative study of religions and he worked a good deal for the meeting of religions. This was also the demand of the age, because, at that time, there was the reign of the Moghul Emperor, Aurangzeb, who, out of his religious fanaticism and dogmatism, had turned the country into a veritable hell of persecution specially, for the non-Muslims and the Shias. There was a great tension between the Hindus and the Muslims resulting in frequent riots and blood-shed. This also necessitated the imminent understanding of Religions. Mahamati brought out the essential meanings of both the Puran and the Quran and taught, "Whatever has been said in the Ved has also been said in the Kateb. Both enjoin the worship of the same Lord. But as the adherents do not know the basic meaning, they quarrel among themselves."[3]

---

3. जो कछु कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
बंदे एक साहेब के, पर लड़त विना पाए भेद।।

खुलासा, १२/४२

Mahamati's 18000 verses are compiled in 17 books, the collection whereof is known as the 'Kuljam Swaroop' or Tartam Vani. In Sri Rasa, Shat-Ritu, Prakash, Kalsh, Kirantan etc. he has explained the essential teachings of Hindu Shastras and in Sanandh, Marfat etc., he has presented the quint-essence of the Semitic religions specially of Islam. Khulasa is devoted to the comparative study of Hinduism and Islam and has sought a compromise between the two.

Comprative Religion, in the West, is only theoretical in its approach, but for Prananath, it is not only theoretical, rather it has also the practical end in view, i.e., of mitigating the religious conflict by the understanding of the essential unity among religions and thus establishing world-solidarity. According to him, the comparative study of Religions is only a methodology whereby the essence of religions is grasped and agreement is achieved in the domain of religions. Hence, comparative Religion is only the means, whereas meeting of religions is the end. By Comparative Religion, Mahamati intended to remove the errors and confusions prevalent in religions and to provide the real wisdom which may lead to the essential unity of all religions, specially, the Hindu-Muslim untity.

Prannath's Approach Towards Comparative Religion

The approach of Mahamati Prannath was critical, comparative, revelatory, synthetic, interpretative and creative. He criticized the religious fanaticism, dogmatism and formalism of both the Hindus and the Muslims. He cleared many confusions and revealed the true meaning of both the Ved and the Kateb. At places, he gave new interpretations to the texts of the Puran and the Quran. He did not reject the scriptures but he denounced the hair-splitting of the Shastras, for that increases vanity more than providing knowledge.

He maintained that truth is a matter of personal-realization, it is the flight of the alone to the Alone'. The interpretations of various scriptures, at times, create much confusion. In the words of Prannath, "The preachings of the (saints) are like the prattling of the child who laughs at one moment and weeps at the next. The interpretors of many scriptures also, in the same manner, do not have any fixed opinion. Their opinions vary from moment to moment. In this situation, how can one have a definite conviction ?[4]

However, in criticising the scriptures, Mahamati criticized only the wrong attitude towards the revealed texts, and not the scriptures, as such. For, he held, that the scriptures contain the hints of Truth, and those who could catch them, could also realize the Truth. However, the correct appraisal of the scriptures requires some personal experience. Of what use is the mirror to a blind man ? Those who do not have personal experience, condemn the scriptures as a bad workman quarrels with his tools. But if any one has

---

4. जैसे बालक बावरा, खेले हँसता रोय।
तैसे साधु सास्त्र में, दृढ़ न सबदा कोय। कलश, २/३०

knowledge, he can understand the true meaning of the Scriptures and can also remove the riddles.

In the interpretation of the Scriptures, Prannath condemned the literalists and accepted the Biblical maxim : "While the letter killeth : the spirit saveth." Religious language is generally symbolic, and hence it is the essential meaning that is to be accepted. Moreover, while interpreting the Scriptures, one should take a holistic view. For, generally, we consider the Scriptures in the piece-meal fashion and thus miss the mark. According to Prannath, "Just as the garland can be had only when the pearls are interlinked, the intended meaning of the Scriptures can also be attained only when the statements of the Scriptures are linked together."[5]

Mahamati Prannath adopted the method of textual comparison also and drew a parallel between the Hindu and the Semitic concepts. According to him, what is termed as the `Brahman' in the Veda, has been termed as the `Khuda' in the Semitic religions. Moreover, both these traditions maintain that God is one and one alone. According to Veda, there are three kinds of Souls—Brahm Srishti, Ishvariya Srishti and Jiva Sristhi. According to the Kateb also, the souls (Ummat) are of three kinds. 'People of Spirit' (Hak-ul-akin), `People of water' (Immam-ul-akin), and `People of clay' (Enul-akin). In the Vedas, it has been said that below the transcient universe (Martya loka), there are seven spheres (Lokas). Above the transcient world, there is the kingdom of Spirits (Deva loka) where Indra, Rudra, Brahma, etc., reside. Above the Deva loka, there is the Dham which is the abode of the Akshar Brahman (The Immortal Being). The highest is the Supreme abode (Paramdham) of the Aksharatita Paramatman.

Divine Synthesis

In the Semitic tradition also, there are parallel conceptions. It is believed that below the earth, there are seven spheres. The earth is called "Nasoot" which is parallel to Martyaloka. Above Nasoot, there is the abode of the Spirits or the Firishtas. Above that, there is `Malkoot'. Above Malkoot, there is La-Hava and beyond that, there is Noor-Tajjalli. Martyaloka, has been termed as `Nasoot', Vaikuntha as `Malkoot', Aksharadham as `Jabroot' and Paramdham as `Lahoot, Kshara is called as `La', Akshara as `Noor-Jalal' and Aksharatit as `Noor-Jamal'. Lord Vishnu is nothing but the Firishta Azazil,[7] Lord Brahma is Mechaiel, and Lord Rudra is Izrail. The bliss element of the Aksharatita Brahman (i.e., Shyamaji) is 'Rooh-Allah' or the Holy Spirit. Lord

5. जंजीरां मुसाफ की, मोतियों में पिरोइये जब।
जिन्सों जिन्स मिलाइये, पाइये मगज़ माइने तब।। —किरंतन, ७२/१
6. लोक चौदे कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक।
वेद कहे ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक।।
7. विस्नु अजाजील फरिस्ता, ब्रह्मा मैकाइल।।
जबराइल जोस धनी का, रुद्र तामस अज्राइल।। खुलासा १२/३६,
मलकूत कह्या बैकुंठ को, मोहतत्त्व अंधेरी पाल। अक्षर को नूर जलाल, अक्षरातीत नूर जमाल।

Krishna or the Light of God is Mohammad; the twelve thousand maidens of Shyamaji are the souls of the Dargah of the Noor-Jamal and the Firishtas are the `Surita' of the Akshara Brahman.[8]

In this way, the Ved and the Kateb run parallel to each other. They differ only in names. There is the basic unity in them. Both the Ved and the Kateb speak the same truth in different languages. Their wisdom as well as the codes of conduct, are the same. Those who do not know the secret of the scriptures, struggle among themselves. In fact, the wisdom of Isa Ruh Allah, Mohammad and Imam Mehdi is the same; only their languages differ.

Mahamati Prannath found that not only the philsophical wisdom of the Hindu and Semitic tradition is the same, rather there is also the remarkable similarity in their myths and mythologies. In the Puranas, we have the notions of Brajlila, Raslila and Jagnilila; the corresponding notions whereof can be traced in the Semitic tradition also. The parallel to the story of the birth of Shyam (Lord Krishna) in the Hindu tradition is also found in the story of the birth of Shem in the Semitic one. According to the Bhagavat Puran, when Kansa heard the heavenly voice saying, "You will be killed by the son of Vasudeo and Devaki", he imprisoned them for many years and killed their issues till at last Lord Krishna was born. Then Lord Vishnu appeared in the prison house and advised Vasudeo to shift Sri Krishna to the place of Nanda Baba. Correspondingly, in the Semitic mythology, it has been said that the tyrants kept Noah in the prison for forty years and killed his sons. Then the spirit descended from the Malkoot and advised Noah to remove Shem to a safe place.[9]

The story of dissolution (Pralaya) is common to both the Hindu and the Semitic traditions. The story of Noah's ark is well known. Mahamati compares it with Govardhan lila. There is also a parallel story in the Bhavishya Purana.

In order to establish the unity between the Semitic and the Hemitic (Hindu) religions, Prannath has tried to show that these two races have a bond of kinship. When after dissolution, the new world was created, Noah propagated his race. He had three sons Shem, Ham and Japheth (Genesis, 9/18) The entire human race owes its existence to Shem and Ham. The descendants of Shem constituted the Semitic and of Ham, the Hemitic races

---

8. ब्रह्मसृष्टि कहे मोमन को, कुमारका फरिस्ते नाम।
ठौर अक्षर सदरतुल मुंहता, अरसुलअजीम सो धाम।। खुलासा, १२/५१, ५२

9. कंसे काला गृह में, किये वसुदेव देवकी बंध।
भानेज मारे अपने, ऐसा राजमद अंध।।
नूह काफर की बंध में, रहे साल चालीस।
बेटे मारे कै दुख दिये, तो भी काफरें न छोड़ी रीस।।
कहे वेद बैकुंठ से, आए चतुरभुज दिया दीदार।
वसुदेव तिन सिखापन, स्याम पोहाँचाया नंद द्वार।।
मलकूत से फरिस्ता, नूह समझाया आय।
नसीहत कर पीछा फिरया, नूहें स्याम दिया पार्होचाय।। खुलासा, १३/१-४२

respectively. Now, according to Semitic Religious books and Prannath after the deluse, the power which played Raslila as Krishna, went to Arab, as Sem his counterpart Ham, as Haldhar, came to India. Both preached ritualistic knowledge in the world. The Semitic ones are the descendants of Sem and the Hindus are the descendants of Ham. The Sumaritan story of the dissolution is the oldest one. Hence, Sumaria might be regarded as the place of Noah from where Sem and Ham migrated to the eastern and western parts respectively. On this hypothesis, it may be assumed that the Aryans migrated into India from Sumeria. This hypothesis carries some weight even from the historian's point of view, for it is one of the hypothesis that the Aryans had migrated into India from Sumaria. However, Mahamati's intention, behind this innovation, is only to link up these two races by blood-relationship, so that their conflicts might be removed and the brotherhood of mankind and essential unity between them might be established.

Moreover, he has attempted to unravel the mysteries of these myths to bring out their metaphysical and religious significance.

`Rasa', `Qyamat' and `Jagani' may be regarded as the three cues of the religious philosophy of Mahamati Prannath. `Rasa' stands as a symbol for the Hindus, specially the Puranic tradition, and `Qyamat' represents the semitic tradition. Mahamati by synthesizing these notions, has tried to reconcile both the Semitic and the Vedic traditions.

By adopting a myth of the Purana Samhita, Mahamati explains how the souls by the slumber of ignorance (Faramoshi) have been separated from the Supreme Spirit (Aksharatit Paramatma) and by following the Srimad Bhagvat, he explains how the Lord has tried to bring the souls back to His Supreme abode (Paramadhama) time to time. In this connection he talks of the three Lilas (sports) of the Supreme viz., Braja Lila, Rasa Lila and Jagani Lila.

In the supreme adode (Paramadhama), the souls were enjoying the heavenly bliss in the communion of the Lord. There was bliss all around, and there was no trace of sorrow and the pangs of separation. The souls were above the dualities of pleasure and pain, good and evil, union and separation. That state was the state of perfect homogenity and unity (Vahedat or Advaita). Naturally the souls had no separative consciousness and the experience of duality and difference[2]. Moreover, they were also very much proud of their love. Hence the Supreme Spirit wanted, on the one hand, to remove the egoism (Mana) of the souls, and on the other, to make them aware of the world of pleasure and pain, so that they may realize the real worth of the bliss they were enjoying. With the result, that on one occasion, the souls requested the

---

1- चारों किताबों के मायने, और मायने चारों वेद।
लिख्या सबों में जुदा-जुदा, कयामत एकै भेद।। मारफत सागर १४/७०

2. Prakash Hindustani, 37/9-19.

Supreme Spirit to show them the world of pleasure and pain of the Immutable Person (Akshara Brahman). Incidently in the meantime, the Immutable Person (Akshara Brahman) also wanted to behold the internal Lila of the Supreme Braham, which He eternally plays with His maidens. However, the Supreme Lord forbade the souls thrice from seeing the world of Aksara Purusa, because He knew that the souls would forget themselves and even the Lord Himself.[1] But the souls were insistent on their demand, and hence the Lord spread His Maya; there was the creation of the world; the souls forgot their real nature and began to see the multiple world of duality and distinctions. As we see dreams and visit different places during sleep, likewise the souls of the Supreme abode, appeared on this earth as the maidens of Braja. Although the Gopis had lost their self-consciousness, yet they had earnest love for God.[2]

In Braja, Krishna performed several Lilas like, Dana lila, Gocharana lila, etc. When Krishna used to go to forest with his cows, the Gopis were lost in his reminiscence and their attention was always fixed on Him. They were mad after Krishna, and had no consciousness of their mundane existence. Love had made a gipsy out of them. Braja Lila is thus characterized as the Lila of the perfect slumber in which there is no self-consciousness.

In order to awaken the souls, the Lord partially removed the veil of the ignorance of these souls, and granted them some consciousness. With the result, the world of Braja Lila was dissolved, and the Lord conjured up another world through his power of Yoga maya. In the world of Yogamaya, everything was made of consciousness (chit). In the winter season, on the full moon night, Krishna played his flute and invoked the maidens of Braja. On listening to the sweet melody of the flute, the Gopis were enchanted and they left their homes unconcerned of their bodies—without caring to the least for their earthly relations. They went near Krishna immediately. Krishna, however, advised them to go back to their homes because it was both against the social convention (Loka) and the vedic tradition (Veda Maryada) to renounce one's husband and to love another person. But the Gopis pleaded that they knew Lord Krishna alone to be their husband, because He was their eternal companion of birth and death, master of the soul. When Krishna was convinced that the Gopis were above earthly attachments, He gave them His love, did dance (Rasalila) with them and gave pleasure to the Gopis in numerous ways during the different sports. And ultimately he brought back the souls who had become awakened, by his grace, to his Supreme Abode, which is termed as Param Dham. The world of Rasa Lila remained permenantly in the mind of Aksara.

However, some of the souls, specially the *Tamasi* ones, could not get rid of their ignorance and, as such, they could not enjoy the communion of

---

१. तो मने करत हैं हम, हम को भी भूलोगे तुम।
२. ज्यों नींद में देखिए सुपन, यों उपजे हम ब्रज बधू जन।
उपजत ही मन आसा घनी, हम कब मिलसी अपने धनी।। प्रकाश—प्रकट वाणी

God in the supreme abode. They wanted to suffer the pangs of separation. Thus the Lord created another world for Jagani lila.

The aim of Jagani lila is universal emancipation. During Braja lila and Rasa lila, the souls were together in the form of Gopis, but in the world of Jagani they are scattered. Hence God sends forth either Himself or his messengers from time to time, to awaken the souls and to work for world-solidarity. The Buddha and Jesus, Mahavira and Moses, Mohammad and Mahamati are the different links in this very chain. Mahamati believes that `there is no age when the order and message of God, symbolized by order of the Lord is not present. The light of the prophet is all pervasive[1].

The souls may forget Lord but God never forgets His souls. He is always in search of the lost souls, attempting to bring them back to the celestial abode. Jesus had rightly said, "It is not man-seeking God; it is God seeking man." The Old Testament also says, "Thus said the Lord, "Behold I myself will seek my sheep and will visit them out of all the places where they have been scattered in the cloudy and dark day. And I will bring them out from the people and will gather them out of the countries and will bring them to their own Land."[2] In the New Testament also, there is the parable of the lost sheep, and it has been said by Jesus Christ that he had come to save those who were lost.[3] —to bring back the lost sheep to their real home. The lost sheep here symbolise the souls who, out of ignorance, are separated from God, and are lost in the world of delusion. As a matter of fact, this episode pertains to the story of the 'Fall of Adam'[4]. Adam, who lived in the paradise, like the Brahma-srishtis, ate the fruit of the forbidden tree i.e., the Tree of knowledge, and became subject to sufferings and afflictions. They became forgetful of the Supreme Abode and became conscious of the mundane pleasure and pain. His paradise was lost. The different prophets in the Jewish and the Christian traditions, particularly Moses and Jesus, came to awaken the ignorant and forgetful souls represented by Adam, so that the paradise may be regained. They, as a matter of fact, worked for 'Jagani' in the phraseology of Mahamati Prananath.

Qyamat and Jagani

The notion of `Qyamat', `Dissolution' or `Pralaya' is one of the common beliefs shared by almost all religions with minor variations. In the Semitic tradition, the notion of Qyamat is that one day the world will come to an end, and there will be the final Day of Judgement, when the merit and demerit of the deeds of the souls will be evaluated by God and reward and punishment will be accorded to them according to their deserts. The virtuous will be

1. जमाना खाली नहीं विना महम्मदी कोय।
   करत सबन में रोसन, चिराग नबी की सोय।। मांरफत सागर, १४/७६
2. Ezekiel, 34/11.
3. Matthew, 18/11
4. Old Testatment, Genesis, 6-9.

sent to the heaven, where they will enjoy all sorts of bliss in the communion of God, whereas the vicious ones will be sent to the hell where they will suffer all sorts of pangs and pains. In the Old Testament, the `Parable of Noah' relates to the story of dissolution.[1] In the Gospels also there is the frequent mention of the dissolution of the world and the Day of Judgement. On the mount Olives, the disciples of Jesus asked him as to what shall be the sign of his coming and the end of the world. "And Jesus answered and said unto them, Take heed that no man deceive you. For many shall come in my name, saying. I am Christ; and shall deceive many. And ye shall hear of wars and rumours of wars; see that ye be not troubled: for all these things must come to pass, but the end is not yet. For nation shall rise against nation, and kingdom against kingdom; and there shall be famines, and pestilences, and earthquakes, in diverse places. All these are the beginning of sorrows.........Immediately after the tribulations of those days shall the sun be darkened, and the moon shall not give her light, and the stars shall fall from heavens, and the powers of the heavens shall be shaken; And then shall appear the sign of the son of man in heaven; and there shall all the tribes of the earth mourn, and they shall see the Son of man coming in clouds of heavens with power and great glory. And he shall send his angels with a great sound of a trumpet, they shall gather together his elect from the four winds, from one end of heaven to the other."

The Quran also warns of the `Qyamat' and of the Day of Judgement'. It gives a detailed account and signs of Qyamat, some of which are as follows[2]:-

1. At the time of Qyamat, `Dabhatularza' will be born who will have the chest of the lion, back of the jackal, the eyes of the hog, the neck of the cock and the face of the human being. (man with animal instincts)
2. There will be the sway of `Dajjal' who will be ferocious and one-eyed. He will sit on a huge ass so much so that the waters of seven seas will pass through his legs, and will not touch even his knee. He will be killed by Jesus Christ[2]. Imam Mehdi will guide souls in their prayers (Namaj).
3. The graves will be opened, the dead will be brought to life, and the souls will be awakened who will bow down before God. Mohammad will sit on the right side of God and will plead for his nation.
4. The wall of eight-metals (human body) erected by Julquarnen which is licked by Yajuz and Mazuz along with their four lakhs of people, which grows thin in the night like a piece of paper and resumes its width, during day hours, will fall down on the day of Qyamat.
5. The sun will rise in the west but it will have no light.
6. Ills and evils will be rampant, and Imam Mehdi will re-establish the

1. Matthew, 24/4-8, 29-31,
2. पहले लिख्या कुरान में, आवसी इमाम ईसा हजरत।
मारेगा दज्जाल को, करसी एक दीन आखरत।।

Quranic wisdom.

7. Israfil will blow his trumpet twice. On the first sound, the mountains will float into air like the pieces of cotton. On the second sound, there will be fresh creation and new religion.

In Hinduism also, creation and dissolution (Pralaya) of the world are conceived as a cyclic order. The Puranas offer a vivid description of Pralaya i.e., the end of the world, which is awe-inspiring. In the Visnupurana[1], there is the mention of four kinds of Pralaya[2].

1. **Naimittika Pralaya**—It is said that one day of Brahma is equivalent to 4320000000 years in human measure. After the expiry of this vast span of time, Brahma goes to sleep, with the result that creation also stops, and there is Naimittika Pralaya. After this Kal Ratri, Brahman again creates the world.
2. **Prakrit Pralaya**—In the Purana, Brahma is said to live for hundred years which is 4320000 times greater than that of the human year. After the expiry of this period, there is Prakrit Pralaya. It is called `Prakrit Pralaya', because during this period, all the evolutes of Prakriti again merge into the primal matter i.e., Prakriti.
3. **Nitya Pralaya**—`Nitya Pralaya' is the destruction which takes place every moment. It is the destruction of living beings happening day and night.

   नित्यः सदैव भूतानां यो विनाशो दिवानिशम्।
   नित्यो यः प्राणिना लयः सदा विनाशो जातानाम्।
4. **Atyantika Pralaya**—Atyantika Pralaya is the transcendence of the order of time. It is going beyond the cyclic-order of creation and destruction. Those who attain salvation (moksa), for them, the world ceases to be.

The myths and symbols employed in religion do not refer to any historical fact. They point to the real and as such they have the universal meaning and they contain the eternal truth. The language of myth, no doubt, employs the historical similies and metaphors, but, in reality, the historical is the symbol of the eternal. Hence the myths are not to be interpreted in the literal sense शब्दार्थ; they have their implicative meaning लक्ष्यार्थ. Qyamat does not refer to any particular historical event; it is the eternal truth of life. Mahamati views Qyamat in both the universal and the individual aspects. In the universal aspect, it means the end of an age and the beginning of a new era. It refers to degeneration and

---

1-2 Vishnu 1/7/41-43
3. Agni Purana, 368/1

renaissance. Througnout the religious literature, it has been said that whenever there is moral degeneration, there is the incarnation of God, who restores the moral balance. Thus an age comes to an end and there is the beginning of a new era.

In the individual aspect, Qyamat means death, for it is with death that the world of the individual comes to an end. When Mahamati proclaims `Arise O Momins, for the Qymat has come',[1] he cannot be said to refer to the cosmic dissolution, for the world is still in existence even after Mahamati's departure. As a matter of fact, he means to say only this that the time for renaissance (spiritual awakening) has come, for whenever there is moral and spiritual degeneration, there is also moral and spiritual awakening. Moreover, he always reminds the individual of death, because death is the most significant event of life, which, when threatens our existence, we begin to think and live in a way quite different from our common rut. Death shakes our existence to the core, and compels us to think and live existentially. Heidegger has rightly observed that the dread of death is a key-word of great significance. The threat of death alters the entire course of life and behaviour of man. It obliges him to live existentially with a sense of his own personal destiny, its duties and responsibilities. It pulls him up into authentic existence out of the state of `self-estrangement' and self-forgetfulness. i.e., his unauthentic, self-forgetful, common existence of the ordinary man.[2] Mahamati therefore reminds man of the uncertainty of life and inevitability of death. One who takes death seriously, cannot indulge in the world; his entire life is bound to change. The source of true religiosity lies in the realization of the impendence and inevitability of death. That is why Mahamati reminds one of Qyamat or Death. Kabir has also said ;

Do the duty of tomorrow, today,
And of today, to this instant
For dissolution (Pralaya) may
happen in the twinklling of an eye
when will you do your duty, then ?[3]

Thus Pralaya or Qyamat here means Nitya Pralaya which is taking place every moment. One who is conscious of it, cannot remain indolent and busy in the vain pursuit of sensuous pleasures. One is bound to ask, `who he is; `where from his being is', `whereto the being ends', `for whom it is'. He realises his self-forgetful life, and resolves to awake to his authentic existence. Obviously, the rememberance of Qyamat plays a significant role in the life

---

1. खास उमत सों कहियो जाई, उठो मोमनो कयामत आई।
2. vide Heideger, Existence and being, Vision Press ltd. London 1949, p. 56.
3. काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
   पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।।

of man, and it makes man truly religious. `Qyamat' and `Jagani' are co-related like two sides of the same coin. The serious awareness of Qyamat prepares one for Jagani (englightenment). In other words, Qyamat leads to Jagani. Contrarywise, Jagani also causes Qyamat, for when one wakes up, the world, for him, comes to an end. For the englightened the world ceases to be. The Prapanch (delusion of "multiplicity) is dissolved, for the wise has the vision of `Subspecie eternities" : He finds God in everything and beings (सर्व खल्विंद ब्रह्म). When Mahamati talks of Qyamat, he does not mean to say that the world is approaching its end. He on the one hand, reminds one of death, with the advent of which the world of the individual comes to an end, and he also invites one, to have enlightenment when the Qyamat really happens and the world of multiplicity and change dissolves. While talking of Qyamat or Pralaya, Mahamati talks of Nitya Pralaya as well as Atyantic Pralaya. He exhorts man to go beyond the order of time with its cyclic order of creation and destruction—birth and death. In fact, birth and death are the two aspects of life. The real life—the life eternal—is beyond the extremes of birth and death and as such pair of opposites. Mahamati invites man to attain this very life which is eternal, and to which death cannot touch. However, paradoxical it may seem but this life is to be attained only by death. One who is not ready to die, cannot attain the real life. Jesus has rightly said, "He that loves his life shall lose it; and he that sacrifices his life in this world shall keep it unto life eternal."[2] Mahamati also accepts the Christian maxim ; "Die to live". He is also convinced that unless one dies, one cannot live[3]. This is the secret of Qyamat and Jagani. Jesus had said, "verily, verily, I say unto thee, unless a man be born again, he cannot see the kingdom of God."[4] In Hindusim also there is the concept of 'Dvija' or twice born. `Dvija' is so called because his first birth is on the physical plane and the second birth on the spiritual plane. When one dies his psychological death, there is resurrection in the spirit. In other words, without Qyamat, there can be no Jagani. The ego has to be crucified on the cross of the body in order that there is resurrection into the spirit. Qyamat is Crucifixion and Jagani is Resurrection When Jesus was crucified, he was also resurrected. The entire thing is highly significant, important and symbolic in character. In Islam also, it is said that during Qyamat, there will be the rise of the dead from the grave. As a matter of fact, the body is the grave in which spirit lies asleep. Jagani or Resurrection is the rise of the spirit from the grave of the body. This does not refer to any historical fact but to the universal and eternal truth.

---

1. क्षीणे संसरणे नरे.[4] अष्टावक्र गीता
2. John, 12/25.
3. पेहेले पी तू सरबत मौत का, कर तेहेकीक मुकर्रर।
   एक जरा जिन सक रखे, पीछे रोहो जीवत या मर। खिलवत, २/३१
4. John, 3/3

`Jagani', for Mahamati, stands not only for individual salvation but for the universal emancipation. And he feels that the time for universal salvation has come, because the signs, as narrated in the Quran, are beginning to appear. For example, the modern man is like Dabha-tul-arj who roars like a lion but in the moment of crisis shows his back like a jackal. He takes delight in finding fault in others like the hog whose attention is always on dirty and filthy things. He is delicate like a cock, for the slight pressure takes away his life. Modern man, 'though has the face of a human being, but the body of a beast, because he is beastly in his pursuit. Again, 'Dajjal' symbolizes our own mind which is one-eyed, because it sees only the external world, and cannot see God. It is riding on an ass viz., the ego which is infinite in size. This Dajjal or the ego is to be killed by Jesus—the son of God or the Spirit in us, and Imam Mehdi—the Spiritual guide—Mahamati—will help the humanity in this endeavour. Yajuz and Mazuz' symbolise Day and Night, which are continuously eating up the body of man made up of the eight elements (five tattvas and three gunas). During sleep, the body, consciousness weakens, but as the day comes, it again becomes strong, and man has verity of his body. But at the time of Qyamat the veil of the body will disappear i.e., the body-consciousness and the attachment for the body will grow weak, and will have the knowledge of the spirit. The time has come when there will be resurrection (Jagani), and the spirit will rise from the grave of the body. The sun will rise in the West but will not have "light"—symbolizes that the wisdom of Quran will appear in the West but It's light will be dim. The advent of Imam Mehdi in the East is guessed from the fact that when Mohammad was asked about his coming, he had said that he was feeling that the cold breeze was coming from the East.This means that the comforter will appear in the East. Mahamati claims that he is Imam Mehdi for he has brought light of Tartamya from the heaven to the world to salvage the entire humanity.[1] About the mountains floating into the air like the pieces of cotton, Mahamati says that the formalism and hypocrisy, in the name of religion, will lose its weight and will disappear. Mahamati, as a matter of fact, opposed externality and ritualism of religion and emphasized on subjectivity[2]; for God is the indweller of heart. He sees the heart, and not the external actions. Mahamati feels that Israfil is blowing the trumpet of the religious renaissance and appropriate time for Jagani (spiritual enlightenment) has come.

The night preceeding the Day of Qyamat is termed as `Lailat-ul-Qadra[3] in the Quran. This night had occurred in three phases. The first phase took

---

1. ए लीला जाहिर करी, महम्मद ईसा बुध आए।
तीनों सरूपों मिलके, सबको दिया जगाए।।
2. अन्दर नाहीं निर्मल, फेर-फेर नहावे बाहेर। कर देखाई कोट वेर, तोहे न मिलो कर्त्तार।।
कोट करो बंदगी, बाहेर हो निर्मल। तो लों न पीउ पाइए, जो लों न साधे दिल।।
3. `Lail-Tul-Quadr'-means historically the Dark-age and mystically the `Dark Night' of the soul which proceeds the dawning for light or Enlightenment.

place at the time of Braja lila, which is parallel to the dissolution witnessed by prophet Hood. The second phase was the night of Rasa lila, when after love dance the world was dissolved. The parallel of the same is found in the description of the ark of Noah, where the son of Noah i.e., Sham brought the Momins to a garden and gave them the celestial pleasure. The third phase or Lailat ul Qadra happened in the 11th. century which lasted for 83 years and 4 months. Then light was again brought by Mohammad and Fazra (day) happened in the 12th century.[1] These go to show that whenever darkness (of ignorance) deepens, the light of knowledge dawns from the heaven. In every age, the prophets come to salvage the Brahma Sristis or Momins, and work for spiritual enlightenment (Jagani).

In the scheme of Jagani, Mahamati feels his serious role, because the very purpose of his coming into this world was to collect the scattered souls[2], and to bring them back to the celestial abode.[3] He has compassion for the entire universe like a Budha, (Budh ji) and he yearns for the cosmic salvation. As Jesus said, I shall be in agony till each and every soul is redeemed, The voice of Christ speaks through Mahamati[4] when he says, I am the better-half and beloved of my Lord. When I shall enlighten all the souls, then I shall be contented.

मैं अबला अरधांग हों, पीउ की प्यारी नार।
सब जगाऊँ सुहागनी, तब मुझे होए करार।।

It is the truth of the spiritual life that one who is awakened is not satisfied with his personal salvation; it is his bounden duty to work for the cosmic emancipation also. Sankara has said, the liberated souls live in peace, they work like the spring season. Having themselves crossed the mighty ocean of the world, they make others also to cross it, without having any apparent motive for that.[5] Mahamati also says, "I am really awakened, only if I awaken others also, and having made them awake, I give them the pleasures of the celestial abode and unite them with God."

सब साथ करूँ आपसा, तो मैं जागी परवान।
जगाए सुख देऊं धाम के, मिलाएं मूल निशान।।
कलस, जागनी प्र० २५/४५

To work only for one's personal salvation is selfishness.[6] Hence Mahamati is not prepared to accept salvation, if it is personal, and not universal.

---

1. vide, Khulasa, 2/ 14-16, 23-29, 33
2. पिउ जाई मोहे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथे। कलस; २३/४४
3. हम आए हैं इतने काम, ब्रह्म सृष्टि लेने घर धाम। कलस हि० ३७/७६
4. तुम दुख पाया मुझे सालहीं, अब सुख सब तुम हस्तक। कलस, २४/६
4. कलस, 10/15
5. शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्ताः बसन्तवत लोकहितं चरन्तः।
   तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनान हेतु नान्यानपि तारयन्तः।। विवेक चूड़ामणि
6. vide, Sindhi Vani.

He refuses to be liberated when his fellow beings (Sundar-sath) are wreathing in pain. Just as the Buddha said, "I owe all the sins of the living creatures done in Kali Kala, so that they may be freed from it,"[1] Mahamati is also being pained by the sufferings of his fellow souls, he says,

"The souls are dearer to me than myself.
They are part and parcel of my being.
I am very much pained when I see them wandering in delusion.
I cannot stand their suffering."[2]

"I shall lay my self where there is any occasion of suffering for my fellow beings.

I shall give them the spiritual bliss, which is eternal and uninterrupted.[3]

For, I cannot stand the down—cast and morosed faces of my fellow beings."[4]

Qyamat and Jagani are the two aspects of the same process. In the process of cosmic evolution and dissolution, these happen as necessary accompaniments. God creates the universe to grant pleasure to the souls, and then he dissolves it, and recreates to kindle those who are asleep. In this way, the giant-wheel of Time moves on. Its purpose is the emancipation of the cosmos.

---

1. कलि कलुष कृतानि यानि पापानि। मयि निपतन्तु विमुच्यता हि लोकः।।
2. प्रीतम मेरे प्राण के, अँगना आतम नूर।
   मन कलपे खेल देखते, सोए दुख करू सब दूर।। **कलस.** २३/१७
   दुख पावत हैं सुहागनी, सो हम सहयो न जाय। **कलस,** ६/३१
3. अब दुख आवे तुमको, तहां आड़ा देऊ मेरा अंग।
   सुख देऊँ भलि भाँत सों, ज्यों होए न बीच में भंग।। **कलस,** २३/३६
4. कोईक दिन साथ मोहजल में, लेहर बिना पछटाने।
   कहे महामत प्यारी-मोहे वासना, ना सहूँ मुख करमाने।। **कलस,** २१/२८

Swami Prannath's Religious Movement

Dr. Bhagwan Das Gupta Ph.D.
113,Khatryana street, Jhansi

In Bundelkhand no two other names conjointly inspire so much respect and reverence as those of Maharaja Chhatrasal of Panna (1649-1731) and Swami Prannath (1618-94), the Pranami teacher. Chhatrasal, like his contemporary Shivaji in Maharashtra, was indeed the first in Bundelkhand to offer a determined resistance to the Mughals during the reign of Emperor Aurangzeb and his successors and had come out of the contest with a definite measure of success to his credit—a fact which is even acknowledgd by Sir J.N. Sarkar in these words, 'His long life of 81 years ended in 1731 with the complete effacement of Mughal rule in Bundelkhand. In his struggle, Chhatrasal was ably supported by his Guru Swami Prannath who, like Samarath Ramdass, preached a divine sanction to the cause of Bundela war of independence'.

Life Sketch

Shri Prannath was born at Jamnagar in Kathiawar on Sunday, the 6th September 1618 in a Khatriya family and was given the birth name of Mehraj. His father, Keshav Thakur was minister to then ruler of Jamnagar and his mother was a noble lady of great piety. Mehraj inherited her pious nature which later on blossomed out into a saintly disposition by his closer contacts with Shri Dev Chandra, the founder of the Pranami religious order. Shri Dev Chandra adopted him as his chief disciple and Mehraj learnt the tenets of the new creed at the feet of his master, who studied the Vedas and the Puranas and was well versed in Brahmanical learning.

On the death of his father, Mehraj, later known as Prannath, worked as minister for sometime. He was married to a fair lady named Phool Baiji, but all these ties could not hold him for long. He was a seeker after truth and his restless soul was impatient of the worldly bond. Departure of Shri Dev Chandra, (Wednesday the 5th September 1656) provided Shri Prananth with the much—sought opportunity to renounce the luxurious life of a state dignitary. Shri Dev Chandra had once expressed to Shri Prannath his desire to propagate his teachings in the other parts of the country; now that task devolved upon the latter.

Some time after the departure of Shri Devchandra, Shri Prannath accompained by his wife Baiji, set out on his mission to propagate the

principles of the Pranami sect. Besides touring extensively in Kathiawar, he also visited Bandar Abbas in the Persian gulf and travelled widely in Kutch, Sindh, Rajputana and Northern and Central India. He gave discourses, conducted recitations and also invited discussions with the learned Brahmans, Maulvis, Kabirpanthis, Nanakpanthis and others, and is said to have impressed a few of them so favourably that they embraced the new religious order.

Swami Prannath fervently appealed to Aurangzeb himself to desist from the policy of religious persecution. Aurangzeb, in his general persuit of converting into Muslims, the Hindu Maharajas and Maharanas, sent a word to Raj Singh Maharana of Udhaipur to either accept Islam or face the consequences of war with him. He threw a tempting offer to him that if he accepted it (Islam), he would be given, as a token of appreciation, the administration of five parganas. Swami Prannath happened to be there at Udaipur at that time. He asked the Maharana that he would discuss the real purpose of Islam with Aurangzeb and thus try to avert this situation, but the Maharana declined his offer.

Swami Prannath intutionally felt that Chhatrasal was the person who combined in him the spiritual and temproal powers. He sent his envoy to him who met the Bundela Chieftain and was received with due regard. Chhatrasal invited the wandering mendicant to his palace in Mau.

The eventful meeting of Chhatrasal and Swami Prannath took place at Mau in the year 1683. From now onwards Bundelkhand became the permanent abode of Swami Prannath till he left his mortal coil in 1694.

Chhatrasal and Swami Prannath

Shri Prannath provided the necessary spiritual sustaining force to the political activities of Chhatrasal. He actively voiced, through his religion, the political opposition to the reactionary and anti-Hindu policy of Aurangzeb. He roused the public opinion against the imperial Mughals and his missionary zeal popularised the cause of Bundela independence. Prannath inflammed the masses by his stiring appeals. One such piece of his eloquence runs thus: —

राजा ने मलो रे राणों राय तणों। धरम जाता रे कोई दौड़ो।
जागो ने जोधारे उठ खड़े रहो। नींद निगोड़ी रे छोड़ो।।
छूटत है रे खड़ग छत्रियों से। धरम जात हिन्दुआन।
सत न छोड़ो रे सतवादियो। जोर बढ़यो तुरकान।।
त्रलोकी में उत्तम खंड भरत को। तामें उत्तम हिन्दू धरम।
ताकी छत्रपतियों के सिर। आये रही इत सरम।।
असुरें लगाया रे हिन्दुओं पर जेजिया। वाको मिले नहीं खान-पान।
जो गरीब न दे सके जेजिया। ताए मार करें मुसलमान।।
बात ने सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने। आगे आय खड़ा ले तलवार।
सेवा ने लेइ रे सारी सिर खेंचके। साइयें किया सेन्यापति सिरदार।।
(किरंतन, प्रकरण ५८)

(O. The Rajas, the Ranas and the Raots,' the religion is in danger. Run to its rescue. You warriors, rise from the accursed sleep and be on your feet.

The swords of the Kshatriyas seem to be broken. Religion of the Hindus is endangered. You followers of the true religion, do not abandon it. The Turks are gaining the upper hand. In the three `Lokas' the land of Bharat is the most glorious and in it, Hinduism is the best of religions. The crowned heads of the land are down with the shame. The `Asuras' have imposed 'Jazia' on the Hindus. They are not even getting the food and the water. The poor who are unable to pay the "Jazia" are forcibly made Muslims. Lo! the Bundela Chhatrsal has heard the appeal. He has come forward with the sword in hand and has taken this service upon his head. The God has marked him to be general and the leader'.

Shri Prannath's piety and personality drew to himself many followers from all ranks who swelled the number of Bundela forces fighting the Mughals. He once even accompanied Chatrasal in his expedition to keep up the spirits of Bundela chief and his levels. Then again it was Shri Prannath who advised Chhatrasal to establish his capital at Panna and prompted him to perform the coronation ceremony to legalise his position as a ruler. In short, Swami Prannath was a perennial source of inspiration and strength upon which Chhatrasal often drew in moments of trouble and tribulation.

The Pranami sect

Founded by Shri Dev Chandra, the Pranami sect: "Nijanand Sampradaya" was organised as a definite order by Swami Prannath. The philosophy and the principles of this sect are said to have been revealed to Shri Dev Chandra by Lord Krishna Himself while he was listening the Srimad Bhagwat. The Puranas and the Vedas are also quoted in the holy scripture of this sect known as the `Kulzam' to impart authenticity to its doctrine. In the `Kulzam', theory of Dhyan-yog has been upheld and idolatory is discouraged. It emphasises the worship of one Supreme God (Akhshratit) and prescribes, love and meditation as the best form of worship.

A liberal reform movement

The Pranami sect was actually a socio-religious liberal movement within the folds of Hinduism. It is amply borne out of the verses of the `Kulzam' in which the Muslims and the Hindus come under equally severe satire and criticism for the superstitions and mal-practices of their respective religions. If Mohammadanns are denounced for their intolerance towards Hindus, the latter are also not spared for their caste rigidity and social discrimination. Shri Prannath also made attempts to reconcile the controversies between the vedic religion and the Islam. He pointed out repeatedly that both the Vedas and the Quran lay stress on the allegiance of the one Supreme God. Shri Prannath declares:

जो कछु कह्या कतेब ने, सोई कहया वेद।।
दोउ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाये भेद।।४२
बोली सबों जुदी परी। नाम जुदे धरे सबन।।
चलन जुदा कर लिया। तार्थे समझ न परी किन।।४३

ताथें हुई बड़ी उरझन। सो सुरझाऊं दोए।।
नाम निशान जाहेर करूं। ज्यों समझे सब कोए।।४४

(खुलासा ११)

—"The Quran and the Vedas emphasise the same. Both, Hindus and the Muslims, are the disciples of the same Master, but the differences of language, names and customs have created knotty problems. I will undo them by explaining various names and signs of the existence of common God to all of them.") (Kulzam, Khulasa, Prakaran, 11)

Then again, he lays stress that.

नाम सारों जुदा धरे, लई सबों जुदी रसम।
सब में उमत और दुनियाँ, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।३८

(वही)

—"There is only the difference of name and rituals, in fact Khuda and Brahm are the same." (Ibid)

Unity in diversity is well emphasised and the vices which have crept in both the religions are denounced in most unmistakable terms. The following lines breath unqualified condemnation of the religious intolerance of the Muslims :

ओ राजी एक भेष में, ताये मार छुड़ावे दाब।
ओ रोवे सिर पीटहीं, ये कहें हमें होत सवाब।।८

(कुलज़म सनंध प्रकरण ३९)

—They force the Hindus to abandon their dress and customs. The latter bewail but the former consider it a pious act. (Kulzam-Sanandh 39)

Then again,

करें जुलम गरीब पर, कोऊ ना काहू फरियाद।
कर सुंनत गोस्त खिलावहीं कहें हमें होत सवाब।।१३
खाना खिलावे आप में, देखलावे मसीत मेहराब।
लेकर कलमा पढ़ावहीं, कहें हमें होत सवाब।।१४
कोई जालिम जीव जनम का, खुराकी गोस्त सराब।
तिनको लेवें दीन में, कहें हमें होत सवाब।।१७

(वही)

—"They oppress the poor. None redresses the wrong done to them. They inflict cicumcision and forcibly make them eat meat. They compel them to visit the mosque and recite the kalma, and deem it all to be highly meritorious. They allow a born-tyrant addicted to meat and wine to embrace Islam and consider it to be a pious deed." (Ibid)

And in the following lines Shri Prannath defines a true Musalman.

जो दुख देवे किनको, सो नाहीं मुसलमान।
नबी ऐ मुसलमान का, नाम धरया मेहेरबान।।२४

(वही)

—"One who oppresses others, is not a Musalman. The Prophet named Musalman the one, who is kind." (Ibid)

Swami Prannath was also a social reformer of very high order. He

denounced the caste rigidity of the Hindus and condemned Brahmans for streching it to intolerable lengths. He praised purity, devotion and sincerity of heart and condemned mere display of outward symbols designed to deceive the innocent people. In a discourse to this effect, he poses the following question to the orthodox Hindu bigot.

अब कहो काके छुए, अंग लोग छोत।
अधम तम विप्र अंगे, चांडाल अंग उद्योत।।२०

(कुलज़म, कलस, प्रकरण १५)

—"Now tell me who is an untouchable, the Brahman with a most callous heart or a Chandal with an enlightened soul." (Kulzam-Kalas Parkarn. 15)

Examples of such pithy sayings may be multiplied to scores. Prannath emphasised the common brotherhood of man. He believed in them.

पर सवाब तो तिनको होवहीं, छोटा बड़ा सब जीऊ।
एकै नजारों देखहीं, सबका खाविंद पीऊ।।

(सनंध, ३९/१३)

—"The true piety is to love all the great and the small alike, and take God to be their common Lord." (Kulzam-Sanandh Parkarn, 39)

The disciples of Shri Prannath came from all grades of society. He had a few Muslim followers as well. As a matter of fact the Pranami sect was not directed against any other religion; it only emphasised the equality of all human beings and preached the golden rule of universal toleration. But if the followers of one religion oppress the adherents of an other, it is praisworthy for the oppressed to resist the oppressor. Therefore, Shri Prannath, while not opposing Islam as a religion, actively preached against the imperial Mughlas because they were the oppressors. Thus, he was not only a religious preacher, but also a social reformer and a tenacious fighter for the freedom of conscience.

The followers of Pranami sect are scattered all over Bundelkhand and India. But they are mostly drawn to Panna, which is their chief place of pilgrimage. Every year the followers of this faith from Kathiawar, Gujarat, Bombay, Sind, Punjab, Nepal etc. gather on the occasion of Sharad Purnima (Autumn full moon) in Panna. As a token of old spiritual allegiance of Maharaja Chhatrasal Bundela to Shri Prannath, the head priest of the Pranamis still gives betel and nuts to the ruler of Panna descending from Chhatrasal on the Vijay Dashmi day, according to an age old custom followed from the times of Chhatrasal.



Society, Culture And Economy of the Bundel khand Region From 1650-1700 A.D. As Revealed From the Literary Sources of the Pranami Sect

Dr Raj Kumar Arora
7/398, Panchkula (Haryana)

In the history of Bundhel Khand this was the most remarkable period During this time, the independent State of Bundel Khand was crystallized under Chhattarsal, after a very long struggle. Chhattrasal began to play, like the Maratha Chief, Shivaji an important role in the history of India. Swami Prannath, the Master of the Bundhela Chief had made Panna, the capital, his headquarters to preach his spiritual doctrines. The duo of Shivaji and Ram Dass found its parallel echo in this region.

Shri Kulzam Swaroop, the Bible of the Pranamis and several works like the Beetaks, Guru-Shishya Samwad, etc. discuss metaphysical and mystical subjects in detail, but they also throw light on other topics. The Beetaks are a trust worthy record of the travels of the Master from one place to another place, and thus we come to know about the general conditions of the people. The **Kulzam Swaroop** indirectly provides with much information about the beliefs of the people, the position of the caste, household articles, the jewellery, pastimes, the political conditions, flora and fauna etc. etc.

A brief account concerning these topics culled from the literary sources, is given below :

1.**RELIGION** : The **Meharaj Charita** mentions that there were the followers of six systems of philosophy, the practitioners of the Patanjali Yoga, the Mimansa, Nyaya, Sruti abd Vedanta. Gods like the Sun, Narayan, Vishnu, Bhairon, Krishna and Goddess like Bhawani were worshipped. People performed many sacrifices, went on pilgrimages and concentrated on Shiva Mantra. In the Kalash there is reference to several Yogic practices like hearing of the Anhad Nad, Ajpajap, physical postures, piercing of six Chakras, the Sunya State etc. In the Hriday Prakash some outward forms of religion like the applying of tilak, bath, growing hair or plucking them, have also been referred to. The **Qayamat Nama** writes that the joys of the Arshe-Azeem (the abode of the Supreme Lord) belong to the momins, but the priests of this

religion enjoy worldly pleasures. Such persons are kafirs, according to the Koran.

Against this background, Prannath preached his message of one God, purity of mind, nobility of soul, the path of love and a life free from ego and maya. According to the Khulasa, the Master came here to fulfil three jobs-to remove all conflicts—polictical, social and religious, to unite mankind and to proclaim the essential unity of all the faiths.

साहेब आए इन जियो, काज करने तीन ।।
सबका झगड़ा मेटके, या दुनिया या दीन।।
खुलासा, १३/८६

As a result of these teachings, the Beetak of Lal Dass mentions that the Sayyads, Pathans, Brahmans, Sudras and some Muslim women became his followers. At Ram Nagar, Pandeo Bhai-the carpenter ; Pooran-the hair cutter and Girdhar-the tailor, embraced this religion. The Koran was recited by Lal Dass and explained by the Master at the religious congregations where both the Hindus and the Muslims were present. In the same text, some names of the Qazis are also given who held discussions with the Master and became his followers.

Thus it seems that Prannath released liberal trends in religion whereby the people-both Hindus and Muslims, could unite again and end their mutual hatred and jealousies.

But many Muslims did not favourably look towards the religious beliefs of the Hindus. Fida Khan, as quoted by Fogson, gives the reaction in these words:" In the city of Orcha, the Hindus practice the right of idolatry, sounding of the conch, ringing bells, making offerings to the manes of the deceased ancestors, putting marks on their foreheads, doing all this with pride and conceit. By rites, infidelity remains in the world, the sound of the conch prevents the Muslims from going to the heavens. It is expedient to destroy these temples and turn them in mosques where the Muslims will recite the glorious Koran."

Temples dedicated to different gods and goddesses were found there. The most important of them was the imposing structure of Prannath Temple in Panna which was built in his lifetime. Here the followers worship the **Kulzam Swaroop**. This book is kept in a gold embroidied cloth. According to Fogson, the worship in the temple was quite elaborate. Sixty one devotees, all women, whose names are given by Fogson, were in attendance, for the service, in the temple. A temple dedicated to Hanuman was visited by Chhattarsal. According to the Indian antiquity, there was a temple of Neelkanth at Kalinjar, which was circular-a semi circular cave, about 28 feet in diameter. This figure is a large Lingam painted black, with two ill-shaped eyes. It is three feet high and two feet in circumfrence. The **Hriday Prakash** gives us the information that a temple dedicated to Ram, Laxman and Sita existed at Mahoba. The young and the old assembled there for the evening prayers. The usual form of worship was done there. According to Ward, the things for sacrifice included fruits,

flowers, garlands, tulsi, kush grass, seeds of sessaman, curd, twigs of sacred trees etc. Butter, boiled rice, rice boiled in milk and sweets with honey were also offered.

POLITY :There is scant reference to polity. Stray references given here and there tell us something about it. The **Chhattar Prakash** gives us an account of the training imparted to Chhattarsal. The disturbed political conditions as well as the desire to carve out an independent kingdom, Chhattarsal learnt diligently the theory and practice of warfare. He perfected in the use of matchlock, spear, dagger, sword, battle axe, bow and arrow and other war like weapons. He was a very good horse rider and displayed many feats.

When several methods of taking a definite political decision were exhausted, so says the **Beetak of Navrang Swami**, the method of tie was followed. It happened when Chhattarsal wanted the active help of Bir Baldeo the ruler of Aurangabad, in order to give shape to his grand designs. Two pieces of paper "War with the Emperor" and "Conciliation and Peace" were prepared and an ignorant child was asked to take one of them. He took the piece. "War with the Emperor". This was taken to be the divine will. Both the kings agreed on the spoils of the war. The same text refers to the then eight powers in India. These were the Muslims, English, French, Dutch, Portugese, Bijapur, Golkunda and the Abisiniyyans.

The service of the Harkaras was utilised in order to collect intelligence from the enemy country. Fogson gives the name of Ram Man, a harkara, who could travel forty kos in a day and transmit the desired information.

Summing up the ideals of the government the **Beetak of Lal Das** writes- that governemt is good, where the common man is happy and the army is contented and satisfied. In order to maintain inter-state relations, the Ambassadors (Vakis) were appointed from the royal families. The same Beetak maintains that a Vaki must carry weight and regard with the king of the state. This will enable the king to be favourably inclined to that state. The Vaki was to watch all activities of the capital and the court and report messages were sent in coded language.

Some of the names of the officials given in letter no.49. written by Chhattarsal to his son Jagat Raj are as under :-

1. Kitabi - Who looks after the records of the office
2. Bakshi - Who deals with accounts and money matters
3. Khas kalam- Who notes down the orders of the king
4. Diwan - The heir apparent
5. Musahib - Courtier of the king
6. Daftari - Who looks after all the important papers and files of the office
7. Rao - A Senior Official
8. Butapati - Store keeper
9. Kamdar - An official equivalent to the status of the Diwan.

The institution of panchayats, which has been functioning through out India, to provide speedy justice at the local level, were a part of the administration. They decided cases and dispensed justice to all. The farmers assembled in the evening, after their day's work. The king had built justice platforms in all the villages, where this work was carried out. In the panchayats, all the castes were represented, so as to avoid monopoly of any caste or any group. The judges were provided land free from the payment of revenue and other sources of income, so as to make them self-sufficient and remain independent. The cases of royal families were also decided by these judges. These judges were stationed in the cities and the towns.

Society

Chhattrasal was not a social scientist like Manu. He echoed the prevailing view about the functions of every caste. For the different offices of life the Lord created the four castes. He has given us hands and feet to enable us to support ourselves. It is proper that every person should perform the duties according to his temperament and make himself useful, respected and honoured in the world. The **Sanandh** castigates the Brahamans with mean mentality and extols those Chhandals whose minds are pure and who remember the Lord always. This they do not do with any motive, but they are saturated in the love of the Lord. Prannath was very forthright in thrashing those Brahmans who were egoists and believed in the outward forms of religion. He castigates them for their hypocrisy and attachment for the mundane matters.

अब कहो काके हुए, अंग लागे छोत।
अधम तम विप्र अंगे, चांडाल अंग उद्योत।।

सनंध, १६/२३

The sudras, it seems, started playing an important role in the social life. Lallu, the shepherd, the resident of village Nauhan came to the rescue of Chhattarsal in his early days when he had nothing for himslef. The seeds of greatness were sown by this low caste oldman in the mind of Chhattrasal. Mahabali ; the oil presser, a resident of village Dilwara-a village of the maternal uncle of Chhattarsal-taught him the idea of rebellion. When Champat Rai and his wife were roaming about here and there in fear of the royal forces, they gave this man a bag full of gold coins and a calf to be given to Chhattrasal after their death. When Chhattarsal became king, the same was handed over to him by Mahabali.

Chhattarsal raised a small band of 25 warriors. All these persons seem to be the representatives of all the people of Bundhelkhand. Their names, given in the **Praja Chhattar Aur Chhattrasal**, are : Narain Dass Govind Rai, Sunder Mani, Meghan Meghraj, Fauji Mian, Kishori, Rawat, Sanwah, Bhan Bhatt, Lachhe Rawat, Ram Mani, Prabal Misr, Dhir Mangal, Bakshi, Meghi, Dayal Man, Herbansi, Ram, Mani Dawa, Pardam, Har Kishan, Parmar, Dilsha, Lok Larek, Modi Pawal. This list has only two Bundhela names. The rest belong to different castes like Oil Pressers, Kangar, Manihar, Ahir, Kahar, Bori,

Muslims, Rajputs and Brahmans.

In the daily congregations, all types and castes of people assembled without any distinction. The low castes were enfranchised spiritually and there were no restrictions imposed on them as we find in the Brahmani order.

Though the women enjoyed full religious freedom, yet the prevailing view about the wife and her duties continued. The Vedic and Puranic tradition maintains that the husband should not be abandoned even if he is a pervert., unlucky, aged, blind or dull-headed. A wife who abandons such a husband, commits a sin. The **Sri Ras** mentions that a faithful wife does not leave her husband even if he has been sick since childhood. It is further stated in the same text, that a husband who is lame, deformed or physically handicapped should not be abandoned by the wife. It is stated that whatever has been justified by the Purans and other religious texts, cannot be disapproved. Some accomplished women like Lalita and Chandravati, who sang hymns of many saints in Punjabi language before the congregation were also there, writes the **Beetak of Lal Das :**

The prevalent Garba Dance of women is mentioned in **Shri Ras** as Gopi-Krishna plays where they danced in a circle with rhythm, with their arms round the neck of their friends. The sound of their bangles was distinctly audible. The women strike their one foot on the ground and there is the sound of a thud. All this is done in unison. They move in a circle striking their foot at regular intervals. The game of kikli, where the two women clasp their hands and dance in a circle, is also referred to. Clapping with two hands while sitting, standing, jumping and with other postures was also quite common. Hide and seek was also played on a large scale among the women.

Sri Ras gives a detailed description of the ornaments and dress, both of women and men, of the royal class, no doubt, which gives us much information of the life of the people of those days. Bangles, Rings, Necklace of different kinds and sizes, studded with jewels, rubies and pearls are referred to in the text. Blouse and Sari was the common dress. The rich and royal class ladies used to wear clothes of different colours and ornamented in a variety of ways. There is a clear reference to collyrium. Men also wore clothes of different colours. Reference to Pagri, Patka, towel are also there. Bed sheets, Cushions, pillows, chairs etc. were household articles of daily use. The habit of eating pan was very common and this delicacy was served many a time in a day. The reference to various kinds of utensils which we use even now-a-days is also available. The culinary culture of the aristocratic families shows that eating had attained a high degree of sophistication.

The reference to ordinary people in matters of food and dress hardly finds any mention.

Economy

The **Beetak of Lal Das** refers to thirty six kinds of industries at Panna, though their names are not mentioned there. The Capital had stores for cereals,

medicines, cloth, rice, pulses, dry fruits, wheat, yarn, cotton, silk, ornaments, cosmetics, herbs etc. All were available there. The preparation of the budget was done by Ghanisham Das. The yearly income and expenditure was calculated with great care. Dharam Dass looked after the treasury. **The Prakash**, devotes a full chapter on the spinning of yarn by the women. There is reference to inferior, middling and superior quality of yarn spun by the women. Woman spun yarn in a competitive spirit. The best spinner woman is that who used to spin a seer of fine yarn daily. This means that this profession was followed by a large number of women.

The industry of making diamonds was very active. The **Beetak of Lal Das** states that when Prannath applied tilak on the forehead of Chhattrasal, as a mark of royalty, he blessed him with power and wealth and said, "God has given you the land which abounds in diamonds. You and your posterity shall receive the produce of these mines''. The Pranamis believe that Prannath told the king that wherever his horse went, the land will be full of diamonds. The records (Geological Survey of India 1906 vol. xxxiii part iv, page 263) states that Panna diamond mines have been known since the Seventeenth Century. Fogson has divided these diamonds in four categories-the Moti Chool, which is clear and brilliant; the Manik, which is of greenish colour ; the Panna, which is tinged with orange and the Bespath has part which is blackish. Milton believes that a stone worth Rs. 50000/- was in the possession of Maharaja. It is believed that the king received Rs. 4 lacs revenue from this source.

Besides this, another source of revenue was the timber. A considerable area was covered with forests. The stunted teak, the small trees and other kind of trees were in abundance. Kalpi, a town in the State, was famous for its course cloth which was used for equipping the army. Sugar cane was in abundance. The numerous temples, palaces and other buildings show that construction activity continued unhindered by the political turmoils. Fogson is of opinion that musoleums of the various members of the Panna family, decorate the sides of the lake and exhibit much symmetry, excellence and perfection in the science of the architecture.

The **Kalash Hindustani** gives reference to the vendors who sold their merchandise in other villages and brought back the articles of use from there.

The Chauth was the common means of revenue collection. The health of the economy is known by the fact that when Chhattrasal died in 1731 A.D., he divided his possessions in three parts-Hirday Shah-his son got his share valued at Rs. 39 lakhs annually. The Peshwa got his share worth Rs. 32 lakhs, in return for his services and the third share went to Jagat Raj ; his third son valued at Rs. 31 lakhs annually.



Mahamati Prannath's Metaphysics and Contribution to Religious Integration

Late, Shree Raja Ram Shastri, M.P.
Vice-Chancellor, Kashi Vidyapeeth,
Varanasi.

Mahamati Prannath's metaphysics is complicated by theoretical as well as terminological difficulties. The central question of the ultimate reality being formless or formed is handled in a peculiar way. It seems that Shri Prannath believed that ultimate reality is neither formless nor formed. His reasons are that all things with form have their end and the formless is nothingness. *And how can a thing which is nothing can have bliss which is one of the attributes of the Absolute*. Therefore the ultimate reality is neither formed nor formless and is over and above both. When a soul attains this state of being, it is said to have attained salvation or deliverance (Mukti) which means attaining the nature of the Absolute (Brahamswaroop). This state has also been called *Brahmasakar*, which shows that the word *'Akar'* has not been used by Shri Prannath in the current sense of form but as a synonym of nature or state of Being. In this state the soul experiences the final self-bliss (Atmanand-Brahmanand) which, according to Shri Prannath, is not possible in a state of nothingness. For him, existense itself is form e.g., Substance. It is clear from this analysis that by `form' Shri Prannath means substance, and when he says that the *Absolute cannot be formless, he means in reality that the Absolute is not devoid af substance which is by consensus an attribute of the Absolute*.

In fact, the three attributes of the Absolute are : Substance, Consciousness and Bliss. And each proves the other two. *A non-substance can neither have bliss, consciousness and when there is either consciousness or bliss, substantial existence is self-evident.* That is why Mahamati Prannath finds it impossible to assume bliss in the Absolute without at the same time assuming substance which he, in his peculiar terminology calls *'form'* Shudh Sakar and this is the reason why he describes the ultimate reality as having form and not formless. At the same time, Shri Prannath does not think that the Absolute has form in the current sense of the word as he places the Absolute above and away from both form and formlessness. His theoretical position is summed up in Shankaracharya's Bajrasuchivedant in a verse which means that everything that has form must come to an end and the formless is nothingness.

That which is nothing is devoid of substance and therefore devoid of self-bliss. Thus the ultimate reality is distinct both from form and formless. It is in this light that we can understand such verses (Bani) of Mahamati Prannath, as the following and many others with the same content.

Akar na kahiye Tinko, Kal ko jo gras,
Kal so Nirakar hai. Akar sada abinas.

Kalas Hindustani, 16/26

Don't call them form which are morcels of death (kal). Kal is formless while form is deathless and eternal.

This verse clearly shows that by form, Shri Prannath means eternal existence which belongs to the Absolute Akshratit or Puranbrahma. All other things which have only a fleeting existence are, according to him, formless i.e. devoid of substance.

In the final analysis, Shri Prannath's Absolute is metaform which pervades both form and formlessness and at the same time transcends them. He describes this state as Chidanand Kishore Swaroop.

Another approach to his metaphysics can be made through his concept of "Rasa". The word Rasa is derived from the word 'Rasa' which means` joy'. A congregation of rasa is Rasa (Rasanam samooho Rasah) Now this joy contentment consequent on the return of the partial consciousness of the soul to the fulness of the God consciousness which is its true nature from which it was divorced at the moment of the genesis and the return to which it has always been hankering since. This everlasting agony of the soul has been very well symbolised by Shri Prannath as the cry of the `Gopis' when Krishna left them behind. Maulana Room symbolises the same principle when he says in his first couplet of the `Masnavi' that the flute in the play of its music is really complaining through the lips of all flute-players that it has been torn away from its source; the bamboo-tree out of which the flute was made. Similarly the bliss of regaining the state of Brahmahood has been symbolised by Rasa, the divine abandonment of love play, which endures till the Gopis get back Krishna to themselves and he dances with each one and all of them at the same time. This supreme state of Godhood is Meta Rasa the Parmanand or Brahmanand.

The absolute Brahma contains the whole creation and limitless time in His timeless and space-less Being, which transcends time and space. This absolute reality which is both immanent and transcendental at the same time, is difficult to grasp for mortals like us because in creation there is time and sequence and many-foldness, while the absolute contains all time and all sequence 'many-foldness' and all differences in one eternal moment. This timelessness containing all temporary sequence is difficult to grasp because we work throughout our lives in time, and event of our lives has a sequence. In fact it is from this time bound point of view that the absolute reality also has to be grasped in `Tartamya' that is, a heirachy and sequencee. The

Parabrahma thus becomes the Aksharatita the Akshara and the Kshra Brahman, the Aksharatita is the Purna Brahma. It contains and is composed of two aspects, the conscious reality that is *Akshara Brahma* and *Shyama* the eternal Bliss of having absorbed and transcended the limitless variety of creation. But in order to absorb manifoldness, it has first to be created. Our mind, conditioned as it is by temporal sequence, cannot grasp evolution and dissolution in one act of consciousness. Hence we conceive Srishti as first having been created, and then absolved back into the prime consciousness. Here the *Aksharatita*, the conscious reality, becomes the creator and Maya becomes his creative power which creates the grand illusion of limitless creation for *Akshara Brahma* and *Shyama* to experience the joys of creation and the sorrows of incompleteness and separation, before it is negated and regains its eternal communion with Brahma.

This creation of *Maya* in totality and essence, is *Kshar Brahma* who in turn creates the whole *Brahmanda*. Now in the Srishti state, when the one Brahma becomes many individual souls, there is always an unconscious hankering in them for re-union with Brahma, because that is their real nature. Manyness and otherness is just an illusion to enable them to experience, first the joy of creation and variety and then the agony of separation from their pristine nature. Once they have gone through this experience, they are irresistably drawn back to their original state in which there is perfect communion and identity with Brahma in Paramdhama. The joy of this communion after having experienced the Sansara is conceived as the bliss of Raslila, that is eternal play of the Atma with the Paramatma or the Shyama and her maidens, the Paramhansas or Brahmamunis, with Brahma Himself.

The main shortcoming of Hindu practice which made it difficult to face the challenge of Islam was that Hindus, although mainly Adwaitins in philosophy, did not follow Monism in their practice. Innumerable gods and sects woven around each of them were fighting with each other for supremacy and creating dissension among the people. At the same time the caste system also perpetuated numberless divisions in society. Prannathji and his teacher, Shri Dev Chandji, made notable contribution in this field. By their denunciation of casteism and multiplicity of warring creeds and also of external ritualism which consolidated differences and led people astray from the basic principle of spiritual thought and life. They tried to eliminate the very seeds of disunity in actual life and the contradiction of thought and deed in Hindu Society, and in Indian society as a whole, which they try to reform.

The Esoteric Karamkand And Shriyat

Religions enunciate three aspects of their methodology relating to knowledge, feeling and action. In Hindusim these are called **Jnana Marg, Bhakti Marg** and **Karma Marg;** in Islam the same are referred to as Hakikat, Tariqat and Shariyat. Among these, the way of actions is the most concrete, visible and external aspect. Here from we proceed towards the subtler and more

inward aspects through feeling and emotion towards knowledge and enlightenment. Swami Prannath has something additional to say on this point. He says that even the most manifest of action or work has three aspects. For instance, **Dan** or Zakat, both meaning charity, can be conceived as simple material help to the needy which entails parting with some of one's material possessions as a contribution to social welfare. At the feeling level, this charity may mean quantitatively parting with most of one's material possessions not just for social welfare but more for renunciation as an end in itself. This makes the charity quantitatively and qualitatively different from the charity at the first stage. Beyond this the pilgrim of spirituality proceeds to renounce not only his material possessions, but his ego itself and makes a complete surrender to the cosmic consciousness. This is the third and the highest stage of charity the consequence of which in action is that whatever the person does, he does not do for his own sake, but for the sake of others, keeping for himself only the portion that comes to him according to the scheme of general distribution for the welfare of all. In Bhagwad Gita, this has been named *Karma Yoga* and *Ishvardarpan,* and in Islam `*Fana*'. Thus we see that the way of action beginning from Karam Kand, that is, external rites and ceremonies leads to Karma Yoga, the highest spiritual attainment. Now these three stages of action were conceived by Swami Prannath as relevant to three types of personality or three stages of development, namely, those of the common people, the seeker after truth and the awakened. These have been variously named as Aam Khalaq, (*jiva Srishti, Mushrik*), Khas (*Ishvar Srishti, Daivi Srishti, Farishte*), and Khas-al-Khas (*Brahma Srishti, Momin, Sthita Pragya*) by Prannath, Islam and Hindusim. In other words, the way of action itself becomes the way of feeling or devotion in the second stage, and then the way of knowledge and surrender in the third stage of spiritual development. Let us see these principles in some detail in one or two religions. In Islam `Paki' means external purity but this is at the Shariyat stage. It enjoins that Quran should not be touched with bare hands (without gloves) but at the Tariqat stage, purity means conviction and it enjoins that Quran should not be touched unless one has attained conviction both in words and in heart. At the Haqiqat stage purity means monism or Tauheed, because the secret of Quran cannot be revealed without negating everything except God. Possessing anything except God (Ma Siwae Allah) takes away from His absoluteness and belief in any other existence pollutes the purity of conviction. Among five items of Islamic Shariyat the first is saying the Kalma which asserts the absolute entity of God and it can not be deemed as having been said and understood unless everything other than God has been denied and relinquished (Tarke ma Siwae Allah).

In the same way namaz of the body takes one away from faults and sins while Namaz of the mind keeps one away from any appearance other than the Reality of God and from all desires not directed towards Him. Similarly, Roza in Shariyat means abstainng from food and water as also from sex for

30 days in a year ; while in Haqiqat, it means abstaining from all desires and discarding everything other than God (Ma Siwae Allah). Under this interpretation, breaking the fast means seeing the light of God after which experience, the relish of food and drink looses its flavour.

Similarly Haj in Haqiqat means going round (Tawaf) the presence of God and not in any particular direction. West, East, North, South, up, down, far or near.

Thus through this analysis of the five items of Islamic Shariyat we arrive at a very revealing conclusion. There has been a lot of confusion regarding the meaning of the action method of spiritual ascent. For some people this method means external forms and ways of worship and ceremonial rites like 'Puja' and 'Yajna'. In Hindusim these are covered under *Karma Kand* which is the same as Shariyat in Islam. Now we have seen that in their higher reaches, the five items of the Islamic Shariyat lead to the realisation of the absolute entity of God's existence and complete surrender of one's ego, the practical outcome of which attitude is relinquishment of every material possession as also of all mental desires in the interests of the general good (*Lok Sangrah*). This *Ishwarpan* Buddhi and *Nishkam Karma*, constitute the *Karma Yoga* of *Bhagwad Gita* which is the same as Fana and `Tarke Masiwae Allah' in Islam. Now with this revelation, we cannot limit the method of action to outward form of worship and religious rites; and have to see that in its higher aspect *Karma Kand* means *karma Yoga*. In fact *Karma Yoga* is the real aim of *Karma Kand,* the external rites and ceremonies being only a step to their ultimate consummation in *Karma Yoga.* Swami Prannathji reveals this hierarchical relationship between the two aspects of *Karma Kand* very eloquently. He says that people perform Yajnas and underake pilgrimages for fame rather than for relinquishing their desires which are the source of bondage, and not for concentration of mind on God.

'जग करे नामनाए ... करम बन्धाता कोई नव देखे।'

किरंतन, १२६/२५

For him pilgrimage *Tirath* means communion with God-

'अहेनिस प्रीतें प्रेम सूं, रमिए, तीरथ एणी पेरे होय।'

किरंतन, १२६/२३

He points out that people generally do good and avoid evil because the former leads to praise and the latter leads to blame-

'असुभ करम जेम लिऐ निंदिया, सुभ करम नामना लई जाय।।'

किरंतन १३१/१४

Instead of these wordly aims one should work selflessly and the mind should be attuned to God, all egoism and desires surrendered to God and transformed into the one consuming desire for communion with Divinity-

अब तोको क्यों काढूं रे त्रस्ना, तोसों बड़ा मोहे काम।
त्रस्ना लाग तू पूरन पीउ सों, जो बस करूं धनी श्री धाम।।

प्रकाश हिन्दु २०/४०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

This sublimation of desires from their wordly objects towards divinity is the real meaning of Nishkam Karma and Ishvararpan Buddhi. The philosophic basis of this attitude is the conviction that God alone exists (Haqiqat, Sat); other things constituting the whole world are only illusion (Majaz, Bhrama). The outer Karma Kand is the first step towards the final realisation. The first stage itself seems to be necessary for the spiritual pilgrim who stands at the starting point. The subtle reality in abstract form cannot be grasped all at once. Therefore, the universal demand for the Divine presence in some form so that the natural yearnings of worshipful devotion and divine love (Ishque Haqiqi) may find a concrete object for its exercise. It is this natural craving that is so eloquently and artistically described by Iqbal when he says-

कभी ऐ हक़ीक़ते मुन्तजर, नज़र आ लिबासे मजाज़ में।
कि हज़ारो सज़दे तड़प रहे हैं, मेरी ज़बीने नेयाज में।।

—O Divine Being why not appear in a visible garb for a thousand obeisances are writhing in my bowing forehead.

Genesis of `Satan'

There is certainly a lurking danger in path of man trying to find identity with God, the inner `Spirit' of all. He may deliberately identify himself with `*Satan*' or the outer flesh of body. This is illustrated by the story of the fall of Arch Angel `*Azazil*' into the state of Satan in Hebrew, Christian & Muslim legends. According to *Qasasul Ambia*, God created the seven earths. On the seventh there were Angels, on the sixth the `Shaitan' and his descendants and on the first Man—Adam. God created Azazil in `Dozsakh' (Hell) by joining together the forms of the lion and wolf. *Azazil* observed `Sejada' obeisance and was awarded the names Kasha, Abid, Salah, Vali and *Azazil* as he gradually rose from status to status in his devotion to God. Having covered the whole world with `Sejda', he prayed to God to give him access to the `Loh-e-Mahfuz' and, his prayer having been granted, he had a look at the `Loh-e-Mahfuz' and saw it written there that a certain devotee will worship God for years, but once he fails to obey Him, God will obliterate his whole worship and name him Iblis, Mardud and Malun (rejected and condemned). Seeing this, Azazil wept and wept for long and God asked him what he thought should be the punishment for such a devotee. Azazil answerd `condemnation' whereupon God asked him to make a note of this. Thereafter Azazil was sent to heaven as a preacher to the Angels. One day the angels happened to see the same writing on the `Loh-e-Mahfuz' as Azazil had seen and they began to weep bitterly. When Azazil asked them the reason of their sorrow, they said that according to the writing, one of them willl be rejected and condemned. Hearing this Azazil said he would pray to God to allot this fate to him. The angles then became quiet. Some time after this event, God created Adam, seated him

6. Manazir-i-Akhass al-Khawass, Mss. Aligarh University Library, Aligarh.

in the heaven and ordered the angels to pay homage to him but while all other angels obeyed God and paid homage to Adam, Iblis did not. When God asked why he was refusing, was it his pride or did he consider him superior in status ? He replied that he was superior because he was created by God from `fire' light and man was created from earth and there he had paid obeisance to Him so how could he pay obeisance to anybody else. On this God rejected and condemned him till the dooms day. When he complained to God that he had condemned him for the sake of Adam, He reminded him of his fate which he had noted on the `Loh-e-Mahfuz' and later accepted before the angels to whom he preached earlier in the heaven. On this, the Satan was ashamed and disappointed and prayed that he be granted relaxation and permitted to enter the flesh and nerves of men while remaining hidden from their sight. His prayer was granted and he promised to God that he would misguide people except those among them who are `His chosen devotees'. Later on, God created Eve, taking out a rib from Adam's body and married her to Adam asking them to stay in Heaven and eat anything they liked except the fruit of a particular tree. But at the same time a voice came from one side instructing Iblis to tempt and beguile Eve. To a question asked by Qaza (Destiny) as to why these contradictory orders. God replied "It is a secret. I shall send to the world so that My power may be manifested and my glory shine" And so it happpened. Iblis did manage to enter the Garden of Adam and succeeded in misleading Eve and through her Adam, to eat the forbidden fruit, the Tree of Knowledge, for which `Original Sin' they were externed from the Garden, as a punishment and landed on the earth.

Now in this account, *Azazil* seems to mean an angel with a purpose in creation. God created angels and highest of them ; Azazil promptly develops Pride, Ahankar, Khudi, rebels and becomes Satan—the prince of devils. The Majesty of Benevolence, inverted, becomes the pride of benevolence. Another point to be noted is that this development is predestined by God Himself. Loh-e-Mahfuz literally meaning the guarded or preserved Tablet is hafeza the omniscient. Memory of God, Universal Mind, in which all past, present and future is eternally recorded and preserved. The destiny of Azazil becoming `*Satan*', having been recorded in the `Loh-e-Mahfuz' is proof enough that it was ordained by God Himself.

Then we come to the motive of this desire which, in God's own words, is a manifestation of His Power and Glory, which can only be fulfilled through earthlyman not through Heavenly angels or gods. According to Hebrew theology, God, commands His highest Angel to act as His reverse and adverse as Satan delibrately, to test and strengthen and advance Souls to salvation through sin and suffering. When they failed to stand his tests and temptation, Satan rejoices outwardly—inwardly he weeps. Ultimately when they spurn him he gnashes his teeth outwardly. Inwardly he rejoices greatly. This is the secret' motive of God referred to in the `*Qasasul Ambias*' legend. (Nada naram

mokshan Dadatia—he who brings release, salvation' is a different yet similar in Puranic mythology of Narad. He is a well known devotee of Vishnu and his chief sport and pastime is to cause wars between kings, by subtle praises by one to another to arouse their jealous pride.

Now let us see how Mahamati Prannath explains and elucidates the mystery of this legend.

1. God's order inverted his dear angel Azazil and for His dear souls created several supports and pastimes.
2. Iblis was ordered to become the ruler of hearts of all humans and he became hostile to them diverting them away from worship of God.
3. Azazil did not forget but he was ordained by God Himself to perform this function and He eternally carries His order.
4. The twelve thousand souls in the Supreme Abode (Paramdham) were innocent. They did not know the extent of His Glory. That is why this display of Maya so that the true may be recognised by contrast with false.
5. The souls do not realize the Glory of One God and put faith in Him without the creation of others.
6. God is real and One without a second, but how can the glory of the Real One be realised without the experience of the limited Second.
7. If there is only joy and no sorrow how can the taste of joy be experienced without experience of some sorrow.
8. How can the True be understood without its counterpart as an example.
9. In Eternal prosperity you do not realise its taste. Once you experience a bit of an adversity, you get a real taste of bliss and your eyes are opened by the grace of God to the world beyond.
10. According to Vedas, Narad is the mind of Vishnu whom Prajapati Brahma cursed so he, deviating from the faith of the Absolute, substitutes the worship of Vishnu. Similarly, in Quran, Iblis, Azazil, was doomed and he turned the hearts of men towards rituals and from One to duality.
11. By God's will when the Supreme Knowledge and Great book appeared and is revealed by the persons chosen for the purpose, the curse of Azazil would be removed and devotees would be established in light granted in immolately and sun of Eternity will shine on them.

Vishnu is the *Azazil*, Brahma-Mekail, God energy *Jabrail* and *Rudr-a-tamas Azrail*. Further *Brahma*, the Mekail is intellect, mind is Narad. Both together propounded through Vyas the rituals in the Vedas. Apart from the unravelling the mystery of the creation of Satan, the great moral drawn from the preaching of Swami Prannath is that the greatest devotees are liable to fall from grace by developing rude egoism or *Ahankar* which is their greatest enemy. In fact the higher a devotee goes in his spiritual progress, the greater the danger of ahankar spoiling his whole quest because his very greatness and superiority becomes the plausible base of *Ahankar*. That is why it is said to

be `The last infirmty of Noble minds" The devotees should perpetually guard themselves against the entry of this devil into their Sanctuary.

Thus we find many terms which are explained with inner meaning and give better understanding in Mahamati Prannath's philosophy.

Religious Unity

There are several levels of religious unity. The widest consensus that has recently developed in inter-relations of religions, concerns two points. First, that all religions should make a common point of social service particularly among the down-trodden people. As every religion enjoins this type of welfare service, this can serve as the most accepted platfrom for all religions to come together. Second, that in view of the growing craze for gross materialistic achievements, ignoring all spiritual aspirations, all religions should pool their resources in a common trust for re-instating spiritual ascendency over material aims. But, in order to achieve these two common objectives, the religions would have to sublate or gloss over their exclusive claims and differences in inner matters which have been and will remain an underlying force for conflict and tensions among different religions.

Advancing a step further in the direction of unity, some saints, prophets and scholars have tried to establish that in the first instance, the structure of all religions is common. For instance all of them have three aspects, derived from the psychological make-up of men, of (1) Knowledge, Jnana, Marfat or Ruhaniat; (2) Devotion, Bhakti, Tariquat and (3) Virtue, Karma, Shariyat. All of them have a sacred text as the prime authority on the religion concerned and a prime leader who has propounded it, be he an avatar, a prophet, saint or a sufi. But these common features relate only to the outer aspects of religions, the structural aspect. Apart from this, the saints going further or delving deeper, assert that there is unity among the religions in their content as well. For instance, their code of conduct revolves round the same virtues of non-violence, truth, non-acquisition etc. in the form of Manu's ten Dharmalakshanas (items of piety), Moses' ten commandments, the sermon on the Mount etc. Thus far there is more or less agreement. This is the second level of unity among religions.

But beyond this, regarding the mythology, the pantheon of gods and their nature, the theory of creation, the nature of life after death, the nature of salvation, heaven and hell, the final spiritual attainment and the nature and stages of the journey towards it, etc., there is a strong resistance to admit unity. This resistance takes its hardest form in the claim of every religion that it alone and no other religion can grant salvation to people. Now this sphere related to the inner aspects of knowledge and devotion, beyond the moral aspect, is not left out by some saints who establish unity of religions on this third level too. Among such saints are Kabir, Nanak, Sufis etc. who have shown some gods of several pantheons and several stages of spiritual attainment in different religions to be the same in nature, differing only in their names and descriptions

which come in different languages and styles of thinking in which the teachings of different religions have been propounded. The doyen of such spiritual leaders was Mahamati Prannath who went furthest, so far, in establishing unity of religions on this third level. The special technology by which he achieved this final advance is incorporated in the concept of symbology. While other leaders on this level saw the differences arising out of linguistic differences only, Swami Prannath saw difference in the symbology of religions as well. And this is a very important point. For the language of those days in which the great religions of the world arose was mainly symbolic, not grammatical. The achievement of insight into this sociological truth empowered Mahamati to discover unity in realms not perceived by other leaders. For instance, Prannath did not only see that the farishta whom Muslims call Azazeel, is the same god whom Hindus name as Vishnu. Also the spiritual practice which Hindus call `Japa' is the same as the Muslim `Zikra' and `Antarik Japa' is `Zikre Khafi'. Thus the unity here derives from the understanding of words from different languages having the same meaning. But Mahamati, with his newly acquired technology of symbols, also saw that what is `Rasa' among the devotees of Krishna is just an external and historical symbol of the same stage of the spiritual pilgrim's advance as is depicted by the symbol of `Wasl in Meraj' among the Muslims. These are just illustrations to show the different stages of advance towards the discovery of the essential unity of all religions. Mahamati Prannath's work is voluminous and he has shown extensively and intensively the complete unity of inner religious experience showing variety only in language and symbology. Contrary to our starting point that religions are more unified in externals than in esoteric experience, Mahamati says religions are completely unified in esoteric aspects; their differences being rather exoteric, particularly in the sphere of rituals, called Shariyat or Karma Kanda. His advice is to keep the ritualistic aspect of religion at a low key and lay most stress on the devotional and cognitive aspects. Only then the conflicts will come to an end, and real unity of the inner soul will be achieved resulting in the brotherhood of man and world peace on a sound basis.



The Humanitarian Views of Mahamati Prannath in the Islamic Background

Prof. Dr. Hafiz Mohd. Tahir Ali, M.A. Ph. D.,
Deptt. of Arabic, Persian & Islamic Studies,
Visva Bharti, Santiniketan

Mahamati Prannathji was one of the greatest reformers of the seventeeth century A.D. A study of his works shows that he was fully acquainted by Islamic teachings, and his reformative efforts were based on the Holy Quran as the editor of `Shri Kuljam Swaroop' explaining, the word 'कतेब' has also written :-

'अन्तिम कुरान को अपने काज़ी के न्याय की कसौटी भी मान लिया है।[1]

So an equation attempt is made in this paper to give an account of Mahamati Prannathji's humanitarian outlook in the Islamic perspective.

One of the most important and highly commendable efforts of Mahamati Prannathji was to make the human beings free from religious prejudice. He emphasised the basic unity of all religions and categorically affirmed, besides the Hindu scriptures, the divine character of the Psalms of David, the Torah of Moses, the gospel of Jesus and the Holy Quran. The Quran has mentioned the aforesaid three books as Heavenly scriptures. It has enjoined upon the Muslims to believe not only in the Quran but in all the books revealed to different prophets prior to prophet Muhammad. God says :-

"The believers in that which is revealed unto thee and that which was revealed before thee!"[2]

God again says addressing the Prophet Muhammad :-

Lo ! we inspire thee as inspired Noah and the Prophets after him, as we inspired Abraham and Ismael and Issaac and Jocob and the tribes, and Jesus and Jacob and John and Aaron and Soloman, and as We imparted unto the David the Psalms."[3]

Thus all the religions preached by the prophets from Adam to Mohammad at different times and different places are one and the same religion. Mahamati Prannathji says ;

"कहे महंमद करूं मैं एक दीन, जिन कोई जुदे पड़त।

1. Tartam Bani : Sahitya Kosh, Parishistha - P 20,
2. Quran ; 4 : 162. (Translation)
3. Quran ; 4 : 162. do

कुरान माजजा मेरी नबुवत, हुए एंक दीन होए साबित।"
खुलासा २/६५

He again says : -
'हादी किया चाहे एक दीन, ए कौल तोड़ जुदे जात।
सो क्यों बचे दोजख से, जाए छोड़े ना पुलसरात।"
खुलासा ३३/४

In this way Mahamati tried to diminish the differences of different religious communities, as the religious differences produce far reaching consequences in the society. Mahamati says that these differences are due to our ignorance of the Reality, otherwise being the slaves of one Master or the creature of one creator, we all are one.

'जो कुछ कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाये भेद।'
खुलासा १२/४२

Mahamati was a monothesist. He did not believe in idol worship. He advised his adherents to worship the one God who is the Supreme Being. In fact, the belief in one Supreme Being is found almost in all the religions of the world from the very beginning of human history. But people differed in the conception of that Being, His onesess and plurality, His essence and attributes etc., and started to quarrel due to lack of Gnosis. God Himself says in the Holy Quran :

"And among mankind is he who disputeth concerning Allah without Knowledge or guidance or a scripture giving light.[4]

That is why Mahamati made great emphasis on Marfat, the Brahma jnan. (ब्रह्मज्ञान). Marfat is the highest of the four mystical states namely Shariat, Tariqat, Haqiqat and Marfat. This Marfat or `Irfan-i-Haq', the gnosis of God is the main purpose of creating the world. Prophet Muhammad says in Hadith that God says :

"I was hidden treasure; when I liked that I should be known I created the world"[5]

Mahamati Prannathji not only used and explained the word Marfat at various places in his works but also wrote a complete book namely `Marfat Sagar'.

By means of marfat one realises that God is the only Reality and the world is His manifestation, so one cannot hate the other. A gnostic regards the human beings like the Family of God as Prophet Muhammad says : 'अल खलक अय्याल अल्ला'

The Sufis, who believed in Ibn `Arabi's mystical philosophy that existence belongs only to God and the phenomenal world exists with the existence of God, tried to foster the peaceful co-existence without making any

---

4. Quran : 22 : 8
5. Al-Tasharruf bi marifat-i.Ahadith al-Taswwuf by Ashraf Ali Thanwi, P. 231.

discrimination between man and man. Shaikh Muhibullah of Allahabad, a great Sufi and an outspoken exponent of Ibn `Arabi's `Wahdat-al-wujud, (Unity of Being), held that all the human beings are united like family descending from a common stock, He writes :

'पिदर हर कसी अज मा आदम सफी अस्त पस हरकसी वाजिवुल रहमत व उलशफकत वाशद।'

`Father of every one of us is Adam, So every one deserves mercy and kindness.[6]

Once Dara Shikoh asked Shaikh Muhibullah whether in the administrative affairs of the state discrimination between Hindus and Muslims was permissible. Shaikh Muhibullah replied :

"फकीर कुजा व नसीहत कुजा हक आंस्त के अदेशाये-रफाहियत खल्क खुदा दामनगीर खाति हुकाम बाशिद चे मोमन व चे काफर के खल्क खुदा पैदाइश खुदा अस्त व सैयद अबिन मकाम के साहब आ मकाम व हरकसी अज सालेह व फजिर व मोमन व काफर रहमकुनद रसूल खुदा अंस्त सलेह अल्लाह वालेह वसल्लम चुना के बयान याफ्ता दर फतुहात व वारद अस्त दर कुरान व माउर्र सलनाक उल रहमतुल आलमीन।"

`The Faqir is not in a position to give exhortation. The truth is this that the thought of well-being of the people must always remain in the heart of the rulers without any discrimination of the believer and infidel-because all human beings are creatures of God; and the Prophet, who is the leader of this world and hereafter, shows mercy to every one without making distinction between the pious, sinner, believer and non-believer, as it is described in the Quran ; "We sent thee not save as mercy unto all human beings". This Quranic verse has been elucidated in Fatuhat.

Mahamati Prannathji firmly believed and equally evolved this humanitarian view point and preached that every one should try to eliminate the discrimination of caste and creed and should make attempt to unite the whole mankind. he says :

पर सवाब तो तिनको होवहीं, छोटा बड़ा सब जीउ।
एकै नजरों देख हीं, सब का खाविन्द पीउ।।

खुलासा ४०/२३

These humanitarian views of Mahamati Prannathji are as important today as they were in his own days. By preaching these views we can eliminate the narrow communalism and can bring the different communities nearer, particulary the Hindus and Muslims of this country ; and the long desired national integration can be achieved in India.



---

6. Manazir-i-Akhass al-Khawass, Mss. Aligarh University Library, Aligarh.

Concept of Hindu-Muslim Unity in Kulzam Swaroop

Dr. Maheshchandra Pandya
Reader, History Department,
Saurashtra University, Rajkot.

Since many centuries, India has been facing the Himalyan task of bringing about national integration, social and religious understanding and Hindu-Muslim unity. These major problems have always pained those who cared for the progress of this country, inhabited by people of several castes, religions, sects etc.,

During 14th to 16th century, Bhakti movement had tried to solve these problems. The Bhakti literature consists of four different currents of poetry; (i) Saint poetry by Kabir, Nanak, Raidas, Dadu etc. (ii) Sufi Poetry by Jaysi Manjhan, Kutban etc. (iii) Ram Bhakti by Tulsi and (iv) Krishna Bhakti by Surdas, Mira etc.

In the seventeenth century, there arose a new fifth current in the form of the Pranami literature.[1] For the first time in India, this new current emphasized on the integration of India and Indian society through proper synthesis of all the religious scriptures. But in the seventeenth century, due to religious intolerance of Aurangzeb, the problem of Hindu-Muslim unity became the great burning problem of the century. Shri Prannath tried his best to bring this unity.

While listening to the discources on Shrimad Bhagwat Puran as the religious scripture, Shri Devchandraji got the glimpse of the Lord Supreme and the mantra of religious integration. Hence he founded a new sect named "Nijanand Sampradaya" at Jamnagar, situated in Saurashtra, in 1622 A.D.[2] Mahamati Prannath, the great disciple of Devachandraji was the second Guru of this sect. He learnt the first lesson of the Hindu-Muslim unity from his Guru Devchadraji, when Devchandraji had given Diksha to one Khojibai, a muslim widow.[3]

1. Matabadal Jaiswal Sahitya Ki 'Panchvin Samanvayi Dhara.' Seminar on Mahamati Prannath at New Delhi, 1976, P.5.
2. Pandit Krishnadatt Shastri, Shri Nijanand Charitamrit, Jamnagar, 1980 P. 77.
3. Vraj Bhushan Vritant Muktavali 49/5-8.

During his life time, Shri Devchandraji had entrusted him the task of conveying his message to Shri Khetabhai at Basra in Arab. At that time, many Indians were residing in Arabia. Prannath went to Basra in 1646 and stayed there for about five years. He went to Baghdad also and met Sultan Imam and learned religious practices.[4] He learnt there the various aspects of the Islamic theology.

In the last days of his life, Devchandraji commissioned Prannath to propagate the message of Tartamya to everybody, irrespective of caste, creed, community or country.

Shri Prannath started this holy work with great zeal. A large number of persons including Muslims were attracted, because equal status was given to them, irrespective of social status, wealth, birth etc. He went ahead and removed the caste barriers and gave them all only one Surname `*Sunder Sath*', meaning fellowship endowed with a divine grace. Thus he gave equal treatment to the Hindus as well as Muslim followers, and tried to remove the differences of caste and community from the Indian society.

An effort to introduce Aurangzeb to the real essence of religion :

During this time, Aurangzeb was ruling over India. Religiously he was quite intolerant. He coerced the non-Muslims and wished them to convert to his religion; Islam. During his tenure "as the subah of Gujrat" he demolished the Hindu temples at Dwarka and Somnath and banned construction of new temples.[5] In April 1669, he reimposed the Jaziya on the Hindus, which Akbar had wisely abolished.[6] The Hindus were highly dissatisfied with this. The anti-Hindu behaviour of Aurangzeb became a matter of concern for Prannath. He remembered that Guru Devchandraji had assigned him the task of awakening *Sakundal* and *Sakumar Sakhi*.[7] According to the interpretation of Pranami Saints, *Sakundal Sakhi* means Maharaja Chhatrasal and *Sakumar* Sakhi means Aurangzab. Therefore, Prannath had tried his best to convey the essence of religion to Aurangzeb.

Prannath saw that if Aurangzeb's misunderstanding of Islam could be removed, the country at large would be benefitted. Because of this conviction, Prannath undertook the task of giving Aurangzeb the true meaning of the word `Islam' and `Muslman'[8] He started for Delhi with a large number of his devoted followers via Ahmedabad, Siddhpur etc. He reached at `Merta' (Rajasthan). In Merta when he was passing by a mosque, the recitation of Quranic Kalma

---

4. Dr. P.S. Mukharia, 'Mahamati Prannath: His contribution to the integration of Indian Society.' concept of universal religion in the philosophy of Mahamati Prannath. Jagani New Delhi, P.7.
5. Shambhu Prasad Desai, Saurashtra Nun Itihas Rajkot, 1957, P. 312.
6. Sir Jadunath Sarkar, Aurangzeb ke Upakhayan. p.9.
7. Swami Laldas Bitak, 13/53-54.
8. Dr. Ranjit Kumar Saha, (Edi) 'Kirantan' New Delhi, 1981, P.5.

by the Mullah, caught his attention. He realised that the main features of Hindu and Muslim scriptures were very similar and common. Gita says, there are two persons in the world, the Perishable *Kshar* and the Imperishable *Akshar* and the highest spirit called Supremeself i.e. Lord Aksharatit. Prannath could visualise the message of Gita in the form of La-Ilah-Ill Illah. According to Shri Parannath La and Illah denote perishable and imperishable persons, respectively, while Il-Illah meant the existence of the Supremebeing. Here he finds the similarity in the Hinduism and Islam.

In his work, the `Sanandh' he has written that "There is only one Supreme Self though paths to reach Him might be different!

An attempt to convince Aurangzeb was a very risky job. Prannath was determined to win him over by love and affection.

At Delhi he selected his twelve disciples of which two were muslims to work for this cause. They had decided to convey the message of similarity of approach in the scriptures of Hindus and Muslims to Aurangzeb through his five courtiers, Kazi Shaikh Islam, Razavi Khan, Amir Auquil Khan, Sheikh Nizam and the Kotwal Siddi Faulad. But the courtiers paid no attention to it.

Aurangzeb used to visit the Jama Masjid on every Friday. So on one Friday, twelve disciples of Prannath met him through the Imam of the mosque, who was very much impressed by their knowledge. Aurangzeb was also amazed to hear the knowledge of Islamic scriptures from them. They appealed to him to give up his policy of persecution of Non—Muslims and discuss this problem with Prannath. But their mission failed as Aurangzeb had a suspicious nature and his courtiers kept on poisoning his ears. Thus a meeting could not be arranged between Prannath and Aurangzeb.

Then Prannath left Delhi and tried to search for brave and bold Hindu kings who could resist Aurangzeb. He visited Anupshahar, Aamer, Sanganer, Udaipur, Mandsor, Aurangabad, Ujjain, Ramnagar etc. for this purpose. But nobody was ready to face Aurangzeb.

At that time, in Budelkhand, Chhatrasal Bundhela had started a war of independence against Aurangzeb. During that time the meeting between Chhatrasal and Prannath was arranged at Mau (M.P.) in 1683. Prannath gave the economic, moral and spiritual support to Chhatrasal.[9] Chhatrasal succeeded against Aurangzeb and acquired a great empire.

Hindu-Muslim Unity and Pranami Literature

Before Pranami sect and Prannath, Kabir and Nanak had repeatedly given the call for Hindu-Muslim unity, in their works. Shri Prannath assimilated all their ideas in his great scripture "Kulzam Swaroop". The Pranamis are worshipping `*Swarup Sahib*' with great respect. For the first time in India Shri Prannath emphasized on the integration of India, through proper synthesis of all the religious scriptures including Quran and Puran ; in his

9. James Hastings, Encyclopeadia of Religion and Ethics, Vol-10 PP-150-151.

tive granthas, namely 'The Sanandh', 'The Khulasa', 'The Khilwat', 'The Marfat Sagar' and 'The Kyamatnama". Prannath had thoroughly emphasized on the Hindu-Muslim unity.

In 'Sanandh' He says :

जो दुःख देवे किनको, सो नाहिं मुसलमान।
नबिए मुसलमान का, नाम धराया महेरबान।

सनंध, ४०/२४

One who inflicts pain on others can not be called a Musalam. Therefore, Prophet says, that a true Musalam is one who is kind and whose heart is full of mercy.

ब्राह्मण कहे हम उतम, मुसलमान कहे हम पाक।
दोउ मुट्ठी एक ठौरकी, एक राख दूजी खाक।।

वही, ४०/४२

The Brahmins consider themselves to be superior and the Muslims regard themselves to be the holiest one, but both of them are mistaken as both orignate from the same source. The only difference is that one turns into ashes and the other in to dust.

करना सारा एक रस, हिंदु-मुसलमान।
धोखा सबका भान के, कहूँगी सबका ज्ञान।।

वही, ४२/४३

Mahamati Prannath says, "I desire that the Hindus and the Muslamans should be intensely integrated, and I want to give all such knowledge that will remove all confusion." In Khulasa he says,

लोक चौदे कहे वेदने, सोई कतेब चौदे तबक।
वेद कहे ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक।।

खुलासा, १२/३६

Both Vedas and Quran consider that there are fourteen Loks and one God in the world.

मलकूत कह्या वैकुंठ को, मोहतत्व अंधेरी पाल।
अक्षर को नूरजलाल, अक्षरातीत नूरजमाल।।

वही, १२/५१

In Islamic scriptures word 'Malkut' has been used for heaven and in Hindu scriptures word "Vaikunth" used for the same. The Muslim are using word "Noor Jalal" for Inperishable Person and word "NoorJamal" for the Highest Superself. In the same way in Gita we will find words "Akshar" and "Uttam Purush" for the Imperishable person and for the Highest Superself.

सबो दावा किया अरसका, हिंदु या मुसलमान।
वेद कतेब दोऊ पढ़े, पड़ी न काहू पहेचान।।

खुलासा, १/६६

Both the Hindus and Muslmans claim themselves to be having the faith leading to heaven. The former read the vedas and the latter recite the Quran, though neither understand the secret of the word sublime.

नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।

वही, १२/३८

In the above lines he stressed on the unity of the God, and said that Khuda and Brahma are the same. There is only the difference of name and rituals.

जो कुछ कह्या कतेबने, सोई कहया वेद।
दोउ बंदे एक साहेब के, पर लडत बिना पाये भेद।।

खुलासा, १२/४२

He says, the Quran and the Vedas emphasize on the same. Both the Hindus and the Muslims are the disciples of the same Master, they fight over their ignorance.

It is noteworthy fact that about 300 years ago, during the reign of Maharaja Chhatrasal, the followers of this sect used to read jointly the Puran and the Quran. A visitor, who visited the temple of Panna in 1764, had recorded that "He saw in it a small bed with turban on it, called Shri Prannath's seat. On each side of it there was a stool. On one of these was a copy of "Quran" and on the other a copy of the "Puran".[10]

In short, we can say that in the 17th century Devchandraji and Prannathji played a very important role in the unity of the Hindus and the Muslims. They emphasized the equality of *mankind* and propagated religious toleration. Mahamati proved that the Ved and the Kateb emphasized on the same thing. About 300 years ago the Hindus and the Muslims were reading together the Quran and the Puran in the temple of Pranami sect,[11]. —a symbol of the Hindu-Muslim unity. Prannath got inscribed the "Tartam Mantra" of Pranmi sect and the "Kalma" of the Islam on each side of the temple at Panna.[12]

Although, this sect did not spread far and vide, its importance is very much there. It is unfortunate event for this sect that it had neither attracted attention of the orthodox Hindus nor of the Muslims. It should be noted that no study has been done in the light of the historical facts. Even then with a little study of the literature of this sect, I can say that Prannath was a forerunner of Gandhiji who dedicated his life to the cause of the Hindu-Muslim unity.



10. Pyarelal, Mahatma Gandhi, Vol. 1, 1965, P. 214.
11. Dr. Maheshchandra Pandya, 'Social and religious contribution of Lord Prannath of the Pranami sect, concept of universal religion in the philosophy of Mahamati Prannath,' Jagani Shri Prannath Mission, New Delhi, p.23-24.
12. Dr. Rajbala Sidana, Shri Prannathji aur Unka Sahitya, (a thesis for the Ph. D. Degree) Jamnagar, 1968, p. 19.

MAHAMATI PRANNATH

(LIFE AND PHILOSOPHY)

Dr. Anil Mehta
4708 Panorama Drive
Bakersfield, Ca. 93306
USA

This brief essay will introduce the reader to a great moment in Indian history. Those of you who saw the film "Gandhi" may remember that in reply to a reporter's questions the Mahatma says, "My religion is the Pranami religion." He is referring to an idea, a concept that originated in India in the 17th century. It was in the reign of Mughal Emperor, Aurangzeb. Those were the times when the Hindus, persecuted by the rulers, were growing more conservative, more orthodox and clinging to mere rituals and formalities of religion. The Muslims, deriving wrong meanings from the words "Jehad" and "Kafir" and misinterpreting the Quran, were headed on a path of conflict.

This was the age which gave birth to a great progressive Saint "Shri Mahamati Prannath" (1618-1694 A.D.) He was born- Meharaj Thakur - in the home of Keshav Thakur, Dewan of Jamnagar Kingdom (in Gujarat). Early in life he was influenced by the teaching of a great saint, Shri Devchandraji who had a wide knowledge of the Vedas and Puranas. His teachings inspired Mehraj Thakur (he was later on called "Shri Prannath" or "Swamiji" by his disciples) to embark on a search for truth. At his Guru's behest, he traveled all over India and abroad including four years in Arabia. Though he was appointed the Dewan of Jamnagar, he soon got tired of the politics of the court and the viles and strategies of jealous courtiers. He resigned his job to devote himself exclusively to the Path of religion.

Swamiji was pained to see the state of things and he set about trying to eradicate the evils of society by word as well as deed. He soon converted a large number of followers to his belief, prominent among whom was a Bundela Chieftan, Maharaja Chhatrasal. His disciples were celled "Sathis" and there was no discrimination of caste or creed among them. Brahmin or Chandal, king or subject, trader or labourer, all ate together in the same place.

अब कहो काके छुए, अंग लागे छोत।
अधम तम विप्र अंगे, चांडाल अंग उद्योत।।

"The enlightened Chandal is far superior to the Brahmin who has deviated from the true path." He admitted people of all castes to his fold despite opposition from Bihariji, son of Shri Devchandraji.

He taught people to give up the 'externals' (rituals and formalities) and concentrate on the 'essentials' of religion. He had also many Muslims among his followers. He tried hard to gain an audience with Aurangzeb in an effort to convert him to his way of thinking but Aurangzeb's jealous courtiers and advisers would not permit this to happen.

In his old age Aurangzeb realized his folly. In one of his last letters to his son he wrote. "Life so valuable has gone for nothing. The master has been in my house, but my darkened eyes could not see his splendour. I have brought nothing with me and am carrying away with me the fruits of my sins." (History of Aurangzeb by J.N. Sarkar Vol. 5, pp. 210). The Lord mentioned in these lines is none other then Lord Prannath.

Frustrated by the failure of his attempts to make Aurangzeb see the light and depressed by the injustice and cruelties perpetuated in the name of religion, Swamiji inspired Maharaja Chhatrasal to fight against the tyrant. Chhatrasal was a brave warrior and he soon became a terror for the ruling group in Delhi and acquired a moderate-sized kingdom in Central India. Opposed to Aurangzeb, his kingdom was a model of secularism, tolerance and justice. There was no discrimination against any one. This was in pursuance of the teachings of Shri Prannath. Whenever he preached, a disciple sat on either side, one with the 'Ved' (Vedas, Puranas, Bhagwat) and the other with 'Kateb' (Jamboor, Toret, Anjeel, Quran). Verses flowed from Prannathji's lips through divine inspiration. These were noted and arranged by his disciples who then studied and analysed them, finding references in various scriptures. He talked to each one in a language which he could understand. His preachings are in all the major languages of that time-Hindustani (or 'Khari'), Urdu, Gujarati, Sindhi and Arabic, but a remarkable thing about these teachings is that they are all written in the Devanagari script. Thus Swamiji was ahead of his time. Though a Gujarati himself, he was the first to advocate a common national language, Hindi (or Hindustani, as it was then called). He was the first to suggest a common Nagari script for Indian languages. Not only were his ideas truly 'Indian' but also encompassed the whole of humanity. He advocated a 'Vishwa Dharma' (World Religion) which incorporated the ideas of all major religions of his time—Hinduism, Islam and Christianity. He gave references from various religious books to show that basically they all teach the same thing. He preached, 300 years aso, for religious unity, tolerance and secularism, which we have adopted now as the hall mark of the Indian constitution. His concept of 'Vishwa Samaj' is unique and as much, if not more,. valid today as it was then.

नाम सारों जुदे धरे लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनियाँ, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।

("There is only the difference of name and rituals, in fact Khuda and Brahma are the same.")

He did not confine himself to Hindu-Muslim unity alone but emphasised the common brotherhood of mankind as he observed that—

पर सवाब तो तिनको होवहीं, छोटा बड़ा सब जीव।
एके नजरों देखहीं, सबका खाबिन्द पीव।।

—"The true devotee loves all, great and small. They all are creation of the same Lord."

Swamiji was also pained to see the plight of women in India at that time. Under Muslim influence women were relegated to the role of second class citizens. Despite opposition from Bihariji, Swamiji gave Tartam Mantra to widowed women. Women like Kaushalya, Manbai, Lalbai, Lad Kunvri and Bahniben gained great prominence in the Pranami sect, and even achieved sainthood. Women were given administrative and leadership responsibilities in the various temples and centers of learning.

His 'Kuljam Swaroop' comprising of more than 18000 verses, is not only a treatise on religion, but a remarkable piece of poetry in itself. Many of his 'Prakarnas' (sets of verses) have been set to tunes and are sung in various temples. His followers call themselves 'Pranamis' and greet each other with the salutation "Parnam" They worship the "Kulzam Swaroop" just as Sikhs worship 'Guru Granth Sahib'. Pranamis number approximately fifty million and are spread over various parts of the country in Gujarat, M.P., U.P., Punjab, Haryana etc. and also in Nepal. Thousands of Pranamis are also living in the USA, Canada, Europe and Africa.

Swamiji's words, though addressed in the sweetest language are severely critical of the false beliefs, the frauds practised in the name of religion. He spares no one, be it Hindu or Muslim. With quotations from their own religious texts, he has shown people how and where they have deviated from that true path. His basic philosophy is that the 'Atma' (Soul) left her heavenly abode to see and experience this wide and varied world, but she got so engrossed in its complexities, the tribulations and trials of the world that she forgot her original home. Shri Prannath keeps exhorting his listeners to remember their true mission. He has painted a vary graphic picture of 'Paramdham' (Heaven) in a bid to awaken the sleeping souls and remind them of their original abode.

He said that God is Sat, Chit, Anand, i.e. Supreme Truth, Supreme Consciousness and Supreme Bliss. He advocated the immersion of oneself in this sea of joy and bliss. He said that Satan is also a creation of God- made to test the souls that are lost in this world and need to realise their true destination.

Several of Mahatma Gandhi's ideas are derived from Shri Prannath. Gandhiji's mother was a Pranami and as a child, he played in the Pranami temple. Swamiji advised against five objects that are impediments to an individual's rise to spirituality - meat, alcohol, tobacco, adultery, and robbery.

The year 1678 (Samvat 1735) is momentous in Pranami history. Prannathji was attending a national religious conference in Haridwar attended by followers of all the main sects of India at that time. He gave a beautiful description of the one God. 'Swalila Dwait' and "Ananya Premlakshana Bhakti." He advised every one that the path to attainment is through pure "Bhakti" - Devotion. The people attending this meeting were overwhelmed with his teachings. They accepted swamiji as 'Vijayaabhinanda Nishkalank Budha" - the Budha which has conquered all evils and is master of pure knowledge. From that year, on the eleventh day of Vaisakh (April), began 'Budh ji ka Saka' and a new calender was started. This day is honoured as a 'Day of Awakening'. Swamiji proclaimed himself to be 'the Messiah', "the Savior." With quotations from the Koran and the Bible he proved that he was the second Christ or the Imam Mehdi, the Shepherd who had come to collect his lost sheep (the lambs of his world).

It is indeed a pity that the teachings of this great saint have remained hidden from the world for three hundred years. They have been preserved with remarkable accuracy in hand-written books upto now. In the last 30 years, a lot of literature and commentaries on this material have been published in Hindi, Gujarati and even English. Several of theses treatises are now available for scholars to pursue this knowledge.

Hopefully, this small article will encourage people to delve into this 'Sea of knowledge' and partake of its pure nectre.



Mahamati Prannth and Mahatma Gandhi

Dr. Motilal Jotwani,
B-14, Dayanand Colony, New Delhi

Mahamati Pran nath (1618-94), the well-known author of Kulzam Swaroop and Mahatma Gandhi (1869-1948) appeared and intervened at two junctures of Indian history when the very ideal of secularism stood challenged. They tried their hardest to restore it to the Indian masses and were, as chronicles tell us, successful, in a way, in their mission. It was inherent in the Indian system and not merely an accident that they both opposed their respective regimes of the times, which tried to sectionalize people on the basis of narrow religion. They both believed in the one brotherhood of Man as also in fundamental unity of all religions.

Mahamati Prannath had a liberal, broad, human appeal in his work "Kulzam Swároop" which drew people from all walks of life near him and inspired them to follow him, becoming *Pran Nathis* (Nijanand Sampradaya). Putli Ba, Mahatma Gandhi's mother, too, belonged to this sect of the Prannath also called Pranamis. She very often visited the Pranami or Prannath temple near their home in Porbunder. Gandhiji says at one place, that after his marriage, his mother took him to this temple for seeking blessings for the happy married life. There were no idols, he says, in the temple, and on the walls there was a writing that looked like some Quranic Text. Having recounted Putli Ba's associations with the sect and Mahatma Gandhi's visit to this temple during his early young age, the biographer Pyarelal observes :

"Prannath disallowed to his followers the use of intoxicating drugs, tobacco, wine, meat and unlawful visits to women and preached peace and charity. He prohibited idolatry. A vistor, who visited a temple of his at Panna in 1764, has recorded that he saw in it a small bed, with a turban on it, called Shri Pran Nath's seat. On each side of it was a stool. On one of these was a copy of the Quran and on the other a copy of the Puranas, with learned men of both religions in attendance, ready to give profitable answers to all enquiries. Most of the replies made to them involved Unity of God."[1]

One has only to recall the young Gandhi's famous oath before his mother Putli Ba that he won't touch wine, woman and meat, and feel for oneself that

1. Pyarelal, Mahatma Gandhi, Vol. I, Ahmedabad, p. 213

Mahatma Gandhi's Prarthana Sabhas, too, exuded the same religious aroma of secular culture as those of Mahamati Prannath in the seventeenth century.

Apart from their very nature of taking the non-dualistic view of the things—the very nature, which knew no distinctions among the worldly objects and also in *Brahma and Khuda, Atma and Ruh,* the Mahamati and the Mahatma continuously strove for cultivation of cardinal virtues like *Ahimsa* (non-violence), *Satya* (truth) and *Aparigraha* (non-possession).

II

The word "language" has two-fold use : (i) as a particular vehicle of expression or verbal representation of thought, e.g., Gujarati, Hindi, Sindhi and (ii) as a general, non-verbal conflagration of concept, e.g., Advaita or monism. As for the latter, it is the Mahamati's Huqq ki Bani (language of the truth) and he says :

Mehdi speaks not in one language alone,
he speaks in many,
He in future will communicate
in the medium devoid of verbal body.[1]

And the Mahatma writes :

"I have known no distinction between relatives and strangers, country-men and foreigners, white and coloured, Hindus and Indians of other faiths, whether Musalmans, Parsis, Christians or Jews. I may say that my heart has been incapable of making any such distinctions."[2]

As for the former use of "language", they both spoke and wrote in Gujarati at home and in Hindustani for the masses. The Mahamati says :

One loves one's own language-
the language that is spoken in the family,
Now. in which of the languages should I communicate ?
There are hundreds of them right here.

* * *

Language and dialects
are numerous in the world,
Taking it as the easiest of all
I shall speak in Hindustani.[3]

And the Mahatma writes :

"The meeting afforded me a direct proof of the fact that Hindi-Urdu (Hindustani) alone could become the lingue franca of India. Had I spoken in English, I could not have produced the impression that I did on the audience."[4]

---

1. 'Sananha', Delhi, 1972.
2. M.K. Gandhi, An Autobiography, Ahmedabad, 1937, p. 207.
3. Sanadh, 13 and 15, Delhi, 1972, p. 408
4. M.K. Gandhi, An Autobiography, Ahmedabad, 1937, p. 365.

III

Curiously enough, Aurangzeb (1618-1707) was born in the same year the Mahamati was born and he (Aurangzeb) after his ascending the throne in 1658 tried, under the influence of the Mullas of the day, to create all the more differences between Hindus and Muslims, which provided an immediate occassion for Mahamati to intervene and further evolve the principle of resistance, to which Gandhiji appropriated the name of Satyagraha in modern times. Aurangzeb got the Hindus' temples and schools demolished in 1669 and re-imposed the toll tax on the 'Hindus in 1679, after Akbar had abolished it more than a century earlier. About the time that the toll tax was re-imposed on the Hindus, Mahamati Prannath was in Delhi with a view to preventing Aurangzeb from pursuing the orthodox path. He went to Hardwar for participating in the Kumbh fair and stayed there for four months. On his return to Delhi, he wrote letters to the five influential persons who were quite near to Aurangzeb, viz., Qazi Sheikh Islam, Chief Justice Rizvi Khan, Amir Aquil Khan, Sheikh Nizam and the Kotwal Sidi Faulad. The five letters embodied the true spirit of the Quran and the Hadith. But those remained unreplied to, for the theorocrats did not want to see the reason in the matter. Then the twelve disciples of the Mahamati, ten Hindus and two Muslims, devised another way of attracting the emperior's notice : they recited at the top of their voice the Mahamati's Sanandh-verses in the Jumma Masjid one day, thinking that they would get a chance to speak their mind to him there. At long last, they succeeded in securing the audience with the King and apprised him of what their Master Mahamati Prannath stood for. But here, too, the Mullas intervend to advise the King to the contrary. They fell in their hands once again and were tortured by them. The Qazi and the Kotwal working in collusion put them behind the bars for four months.

On this, the Mahamati realized that their passive resistance, directed to make merely an appeal to the conscience of the King would not do any good unless he aroused the Jana Shakti[1] (popular force) against him. He compaigned all along his way to the small kingdom in Rajasthan. According to his direction, the *twelve Satyagrahis* too, joined him in awakening the masses from slumber and enlisting their support for the secular cause. Mahamati toured many a state and worked ceaselessly for the forces of integration to grow from strength to strength till he entered into timelessness at Panna in 1694.

Gandhiji, too, in his days felt the urgent need of distinguishing Satyagraha from "passive resistance". He says in his autobiography :

"When in a meeting of Europeans I found that the term `passive resistance' was too narrowly construded, that it was supposed to be a weapon

1. Rajbala Sidana, Sri Prannath Aur Unka Sahitya; (Ph. D. Thesis) the Mahamati allowed the Use of force against atrocities.

of the weak, that it could be characterized by hatred, and that it could finally manifest itself as violence, I had to demur to all these statements and explain the real nature of the Indian movement. It was clear that a new word must be coined by the Indians to designate their struggle....Mohan Gandhi coined the word `Satyagraha' (Sat=truth, Agraha=firmness)....But in order to make it clearer, I changed the word to `Satyagraha' which has since become current as a designation for the struggle.'[1]

Such were the two of many makers of the Indian secular mind—Mahamati Prannath and Mahatma Gandhi.

IV

Mahamati tried to have a middle way between Hindusm and Islam and helped evolve the composite religion during his times. In His works, he opposed the idea of vyaktigata moksha or personal emancipation from the bondage of flesh and strove hard to ameliorate the general lot of man in that he led a movement against Aurangzeb who had reimposed the toll tax on Hindus after Akbar had it abolished earlier by more than a century. The Mahamati established sakhya (friendship), instead of dasya (Master-servant relationship), between God and himself and met Him at the equal level. He tells Him :

> My darling hubby! I lovingly play games with you
> And if in this play I somtimes behave impudently,
> It is because you and I stand an equal chance.
> In this competition initiated by you.

Apart from the friendly husband-wife relationship between God and man clearly brought out in this verse, it means on the worldly plane equality between sexes and raises the sociology of the Age to a new high: It is no small wonder that during the days of the Mahamati a woman is given a respectable place in the society.



1. M.K. Gandhi, An Autobiography, Ahmedabad, 1937, p. 239.

Mahamati Prannath

Vimla Mehta
72, Sidharth Enclave, New Delhi

The Guru and the Master mentioned in Kulzam Swaroop, Shri Devchandra (Nijanand Swami) was born in the house of Matu Mehta and Kunwar Bai. Matu Mehta was a big merchant in the town of Umarkot, Sindh (now in Pakistan).

Even at the tender age of five, Devchandra used to get lost in contemplation. All the time he was wondering-"Who am I?" "What is this world?" 'Where have I come from ?" 'Who is the creator of this world?", 'Why is there so much sorrow and misery all around?" He was very fond of the company of the saints and would ask them all these questions, but no one could satisfy him.

At the age of sixteen, Shri Devchandra left his home and went to Bhojnagar, a town in Gujrat, where he met many saints.

Each one suggested a different form of worship. Shri Devchandra followed each one's suggestion. He strained a lot but the queries in his mind were still disturbing him. The prevalent rituals and unnecessary pretensions and superstitions always disturbed him. He was in search of a true form of religion and a sure and the easiest way to reach the Lord.

Shri Devchandra did not believe in blindly following the rituals in the name of any religion. His firm conviction was that to live a noble life, was far more important than doing mechanically the pooja and chanting of prayers. When Devchandra explained this to others, everybody realized that he understood the true form of religion. Shri Devchandra told them that he believed in nourishing the soul. 'A glimpse of God and listening to the tales of His glory are as important for the spirit as is food for the body.'

After undergoing a rigorous self-discipline, Shri Devchandra got a glimpse of the Lord and he felt His internal bliss. Shri Krishna, the Lord Supreme, appeared before him and asked him the same question which were already disturbing him -'Who are you?'-the Lord asked-'Why have you come to this World?' 'My Lord! replied Shri Devchandra-'You are asking me the same questions which have been disturbing me since my childhood. I am confused by the happenings in the world and misconceptions about life and religion. Please clear my doubts and show me the right path.'

Lord Krishna gave him the 'Tartam Mantra' which dispelled all his doubts.

Tartam is a Sanskrit word which is the combination of two words-'Tar' and 'Tam'. It indicates the knowledge of the above and beyond this universe. Tartam is the integral knowledge which shows the difference between the perishable world and the imperishable entity of Akshar Brahman and the Lord Supreme. It also shows the relationship between the three types of creations and its souls.

The Lord revealed His name as Shri Krishna and explained about His eternal Abode. He enlightened Devchandra about the fact that he was His consort Shyama-the bliss-part of the Sachidanand Brahmn, who with other divine souls, have come to this world to experience pain and sorrow, so that they can ultimately have the feeling of their blissful state. 'Unfortunately, those enlightened souls,' stated Lord Krishna, 'are engrossed in the mirage of the world, I am giving you the Mantra and power to awaken these souls. Bring them back to their original true Home.' This movement of awakening of the souls was known 'Jagni'. With the help of this integral knowledge-'Tartam', Shri Devchandra started the work assigned to him by the Lord. Many souls were awakened to their true original state and they experienced the eternal bliss.

Shri Devchandra became so popular that within a short time he would have large crowds at his congregations. His preaching contained the essence of the Hindu Scriptures. He explained 'Satchidanand'-the God symbolized Truth, Eternal Bliss and Consciousness Supreme. He clarified that this illusory sorrowful world was created for the enternal souls, so that they can appreciate their 'Satchidanand' state better. Shri Devchandra told that, after having these experiences, they have to go back to their Eternal Home.

Shri Devchandra explained that the Supreme Lord, in a human form, comes to this universe whenever required and stays here as long as it is needed. That is why so many avtaras, prophets, great souls; keep coming in this world from time to time. They bring the Supreme Knowledge to improve this world but as nothing happens in a dream, so also the condition of this world remains the same. Few souls, the divine ones, rise from their dreamy state and go back to their Eternal Abode. All the scriptures are meant for them and only they can understand their true meaning.

Most of the avtaras are of Lord Vishnu; Shri Krishna. The power of Akshar Brahman, Akshratit Brahman was bestowed upon him in his child form only for eleven years and fifty two days. In Ras Lila, the Supreme Lord ; Shri Krishma, played with his own consort Shyama and His souls as Gopis. That is how Pranamis explain the three facets of Lord Krishna—the Uttam Purush, Akshar Brahman and Shri Hari Vishnu.

With regard to creation of the universe; views of Shri Devchandra were the same as those in the Bhagwat. The process of creation takes place with Lord's two powers. Kalmaya creates perishable dark world of the type in which Lord Krishna's Braj or chilhood play was enacted. Yogmaya which created the luminous world (Brindavan), where Ras Lila was enacted. For creation;

first the Moh—attachment and ego were created. Then the three qualities or Gunas (sat, raj, tam) and then five elements (earth, water, air, fire and akash) were created. With these, the whole world with 84 lakh species, comes into existence and the jiv evolves from the lowest to the highest form as human being. The Brahmi souls descended in human form and experienced the play of the world in Brij Lila, Ras Lila. Now they have come for the third act—Jagni Lila, which is supposed to awaken them to their original blissful state.

When Shri Devchandra gave discourses, people became deeply engrossed. Many a time, they would hear the sounds of the plays of Braj and Ras Lila like the churning of the curd and the cosmic vibrations of music and dance. The ecstasy of these experiences brought many people into Pranami fold. Shri Mehraj, later known as Shri Prannath, was one of them.

Shri Mehraj was born in 1618 A.D. His father, Keshav Thakur, was a Diwan of Jamnagar state. Mehraj's mother Smt. Dhanbai, was a pious lady. He was the third amongst their five sons. At an early age, he was well versed in worldly knowledge and his father was dreaming of his following him into his footsteps. He was bold and aggressive and had good aptitude for spiritual knowledge. He came to listen to Shri Devchandra's discourses, in the company of his brother; Govardhan Thakur, from an early age of twelve. As he bowed before the master, Shri Devchandra saw in him a great visionary and recognised in him the great divine soul of Indravati, who was to carry on the work of awakening the souls, after Swami Devchandra. Mehraj Thakur wanted to have a glimpse of the Lord and His Lila, as described by Shri Devchandra. For that he started a life of penance but Shri Devchandra told him that all these hard practices were not as essential as the contemplation, training of the mind and service of the mankind. 'One should see the world as a stage and perform his duties as a seer without getting engrossed into it.'

Shri Mehraj was with his Guru for many years. In this period, every aspect of spiritual, political, religious and social aspect, was discussed and plan for the future was drawn up. Shri Devchandra left his mortal body after assigning his job and after bestowing his powers and blessings on Mehraj. Mehraj later disclosed that Lord's consort; Shyama; working through Devchandra, had made him Her instrument to perform the great task of taking the divine souls back to their abode—Paramdham.

While fulfilling this assigned job, Shri Mehraj—Lord Prannath—brought many changes in Hindu society. While travelling throughout the country, he talked to the people in their language —Gujarati, Sindhi, Arabic, Persian, Urdu and Hindi and also words of many other prevalent languages are seen in his works. Most of the books of Kulzam Swaroop are in Hindi-Hindustani. The great thing about it is that all these languages are written in Devnagri—Hindi script. The Kulzam Swaroop contains fourteen books in 18758 verses and these were compiled by his followers, as they were spoken by the Lord. Thus the Kulzam Swaroop is the most authentic scripture of the world.

Shri Prannath never stayed in one place for long. Inspite of the difficulties of travelling, he was moving around from place to place to awaken the divine souls. At that time, the Hindus were divided in the name of caste, creed, rituals etc. Exploitation of the poor and downtrodden and low castes was a common feature. Woman was regarded as of a low species, not allowed to remarry even if she became widow at an early age. She was not allowed to read scriptures or to receive the sacred mantras. Sati was in vogue. Mahamati Prannath, in his travels and discourses, tried to reform the Hindu society. He gave 'Tartam Mantra' to the women. Some of them became preachers and started many centres for bringing awareness in the society.

During his travels, Mahamati met many saints and tried to unite them so that they could face the growing tyranny of the cruel Mughal King. He attended many religious congregations like the Kumbh in Haridwar and tried to convince the Hindu saints that instead of praying to thousands of deities, we should pray to Lord Supreme—the Adwait Brahman. In Haridwar, many saints and learned people were impressed by his philosophy. They realized that the time for the incarnation of 'Vijayabhinand Budh Ji' had come which signified that satanic instincts of the human beings will be ended and all will come under the fold of true religion—which is one, the only one and for all.

Emperor Aurangzed, with his cruel courtiers was trying hard to convert the whole of India into a Muslim country. Mahamati's twelve disciples met the Emperor with great difficulty. They gave him the message of Lord Prannath that the 'Day of Judgement' was near and 'Lord had already appeared and you will be punished for your atrocities.' Aurangzeb was somewhat convinced by their arguments but his courtiers changed his mind and created a doubt in him that these people were his enemies. Many cruel stalwarts were sent to chase these follwers. Many of them were killed.

Shri Prannath was very upset by all this. He started a crusade against the Mughal rule. He went to every Hindu ruler but no one was ready to face the mighty Mughal. At last, Maharaja Chhatrasal came forward. He totally surrendered himself to the command of Mahamati Prannath. The Lord blessed him with his own spiritual strength and diamond mines. Chhatrasal fought many battles with Mughal forces and won most of them. Maharaja Chhatrsal built a strong and big empire in Central India. In the south, Shivaji and the Peshwas had established Maratha Kingdom and in Punjab, the Sikhs were becoming strong under Guru Gobind Singh. After the death of Aurangzeb, only the territory around Delhi was under the Mughals. Aurangzeb ran away to south. He died there. From there, in a letter to his son, he wrote that, "I have committed many sins. My Lord came to my door but my blackened eyes could not see His splendour".

(*Jadhunath Sirkar, History of Aurangzeb, Vol. V.*)

While Chhatrasal was busy establishing his kingdom, Mahamati devoted his time for the welfare of human race. He wanted to establish a society

where there will be no difference of caste, creed, colour, high or low. He wanted to teach his followers what was the best in all the scriptures.

Mahamati would sit in the middle and different scholars with different scriptures would sit around him. They would read the scriptures and Mahamati would encourage them to find similar ideas or teachings in other books. The essence of the these concepts is imbibed in Kulzam Swaroop; meaning the sum total of the spiritual experiences of the scriptures. He preached the worship of one Lord Supreme—which is beyond the perishable world (Kshar Purush), Sunya (void) and Akshar—the three eternal causes and forces behind creation. He stated that all angels, deities are part of Virat Purush Narayan and are helpful in His grand design and the play of His creation. 'They should be respected and adored ; but Uttam Purush, Krishna the Lord Supreme; alone should be worshipped.' Shri Bhagwat Gita and Shri Mad Bhagwat also endorse the view that only the Supreme Lord should be worshipped ; the offering given to other deities also reach Him but 'awidhi purvak'—indirectly.

He explained that the Tartamya Mantra, being the Mantra of Purushotam—the Lord Supreme, is the highest. Its recitation and contemplation takes us to the highest abode—Paramadham.

Tartamya is integral knowledge. It clarifies all the doubts regarding the scriptures and talks about the different plains of consciousness. It states that everything is not God but esists because of God. Actually, nothing exists but God. This universe and many others are like imagination of the mind or things in the dream. They do not exist but look real just like water in mirage. Like bubbles they come into existence for a while and then disappear. The Truth and Reality is that which always is and will ever remain. 'Taramaya' gives the discriminating knowledge to distinguish the real from unreal and perceive the difference between them.

Mahamati stated that like Hindu scriptures—Puranas and the holy books of Koran and Bible also predict that a time will come when God himself will incarnate on the earth. He will disclose the true form of religion and that the duality-based differences will be eliminated. He will establish Heavenly Kingdom on earth. He will sit on the throne and judge all. The noble souls will be taken straight into the heaven. The true ones will be liberalized. The sinners will be purified and then taken to the divine plain. It is also mentioned in these scriptures that He will explain the inner meanings of the scriptures in such a way that each one will look like a message and a part of the divine knowledge that He wants to give to His blessed souls. In this way, One World Religion will be established. For that difficult task, says Mahamati, the Lord bestowed upon him the power of all the authors of great scriptures and prophets so that he can talk on their behalf and present such an account of religion which is its true form. Mahamati felt that this responsibility was too great. In the Kirantan (61 section) he states; 'Saheb Teri Sahibi Bhari' and section

'Bhai re Nav Khando Arati'., he felt that burden and declared that predictions of the scriptures are being fulfilled by him.

Practically all the scriptures have some terminology which creates some confusion in its literal meaning but when explained with inner and inherent meaning; it sounds more logical and understandable, like seven signs for the Day of Judgement or Qiamat (i) 'God will come in a veil of cloud; nobody will be able to see him'. Mahamati says that human form and my coming in particular sect (Hinduism) has not been accepted. (ii) 'A Creature with human face and animal organs will come.' This Mahamati explains that human being have adopted all the bad animal instincts and that is the true interpretation of this declaration. About dead rising from the grave on the Last day, he says that the souls will awaken from the graves of the body; so on and so forth.

Mahamati says that all the scriptures belong to everyone. The hisotic portions, the rituals and many statements which look different, can be useful for the whole humanity, if understood properly. He, therefore, taught his disciples to honour every prophet and scripture and then only can they understand the whole plan of creation and true knowledge. Mahamati's Kulzam Swaroop contains four books which explain the inner meanings of four Semitic books—Toret, Jamboor, Anjeel and Koran. They also depict the true form of religion and qualities of a noble human being. In four books, Hinduism is explained and the rest contain the indications about the form and abode of the Lord Supreme and His dialogues with his souls.

Mahamati was against sacrificing human being or an animal, as an offering to the Lord. He explained; showing references from the Koran that God does not like blood. Instead; offering your soul and mind, in the path of Lord's service, is the true sacrifice. He explained in detail the qualities of a true Muslim and a true Hindu and said that a kafir or asur is one who does not listen or ignores the words of the Lord.

Since Muslims and Christians would not believe, read or listen to any other book, he felt that it was essential for him to explain everything, in detail, from their own scriptures. This is the reason why we have so many couplets referring to the stories and theories of Semitic books in the Kulzam Swaroop. Without knowing the original sequence, people cannot understand why there is so much reference of Koran in the 'Kulzam Swaroop'.

Pranamis got this name as they greet each other with 'Pranam'—meaning salutation to the Lord Supreme.

For meditation, Mahamati says that while acting in the world, always remember your true state and Paramdham. You should contemplate on the celestial youth form of the Lord, sitting on a celestial throne with his consort-Shyama, and you are sitting in front of them with all other celestial souls. Mahamati states that remembrance of this state will help in contemplation. The devotee gets the glimpse of His divine presence in his life and after leaving the mortal coil, reaches Paramdham—His original Abode.



Linguistic Study of Mahamati Prannath

Dr. Laxmi Narayan Dubey

Department of Hindi
Hari Singh Gour University
Sagar (Madhya Pradesh)

Mahamati Prannath (1618-1694) was not only the propounder of Pranami Sect but also a great supporter of the integration of Indian Society through the synthesis of the different religions. His name is associated with a wide spiritual awakening in India in the later middle ages. His followers, spread throughout the length and breadth of India and Nepal, are also addressed as `Sunder Sath' meaning thereby to form fellowship endowed with divine grace.

Mahamati Prannath was a rare genius which India has ever produced. He was reconsciliatory in his attitude and vision. He may be regarded as the precursor of comparative religion in mediaeval India. He appeared as the saviour of entire humanity.

Shri Prannath, besides being a social reformer, was at the same time a great soul, an incarnation of Mahamati-Supreme Knowledge of the Lord. His verses are collected in `Qulzam Swaroop'. This voluminious Book consists of about 2,000 pages, about 19,000 couplets (4 line verses). It includes 14 books of Mahamati which are edited in Vikrami Samvat 1751 by Keshavdas, one of the chief disciples of Swamiji. A list of these books is given below :

Name of the book	*Number of chaupayees*	*Language*	*Place*
1. Shri Ras	913	Gujrati	Jam Nagar and Merta
2. Prakash	1602	Gujrati (Jati)	Jam Nagar
Prakash	1185	Hindi (or Hindustani)	Anupshahar (U.P.)
3. Shatruti	230	Gujrati	Jam Nagar
4. Kalash	506	Gujrati	Surat
Kalash	771	Hindi (or Hindustani)	Anupshahar
5. Sanandh	1691	Hindi	"
6. Kirantan	2102	Hindi, Gujrati,	Different places

7.	Khulasa	1020	Hindustani	Panna
8.	Khilwat	1074	„	„
9.	Parikarma	2481	„	„
10.	Sagar	1128	„	„
11.	Singaar	2211	„	„
12.	Sindhi Bani	0600	Sindhi Bani in Hindi Script	„
13.	Marfat	1034	Hindi (Hindustani)	„
14.	Qyamat Nama	0784	„	Chitrakoot

Ever since its first compilation in Vikrami Samvat 1751 (1694 A.D.) no alteration has been made in the text. There are, however, slight variations here and there because of the different scribes. But these variations are of no significance. Even today the text is preserved as authentically as the text of the original edition. Hardly any other book or any other language script can claim to be as authentic as the Qulzam Swaroop.

In the sphere of language too, Shri Prannath ji has made a fundamental contribution. Although Prannath's mother tongue was Gujrati, he was well acquainted with Hindi, Persian, Arabic, Sanskrit, Sindhi, Rajasthani etc. After the tour of northern and central India, he was convinced that Hindustani was understood by the majority of the people. To him is due the great honour of pouring verses in Hindi (or Hindustani), a derivative of Khari Boli, 300 years ago afer accepting it as the national language. He began to preach in Hindustani. In medieval India he used the word `Hindavi' (Hindustani) and considered it the national as well as the link language and best medium to convey the idea. This was not merely a theory. He practised it and his `Bani' or teachings in other languages were written in the `Dev Nagari' script during his life time. All the Pranami literature is in Hindustani, written in the `Dev Nagari' script. In the introduction of his book `Sanandh', he wrote-

"One loves one's own language, the language that is spoken in the family. There are millions of languages. Now in which of the languages should I communicate ? There are hundreds of them right-here. The languages and the customs of all are different but I say to all that they are entangled in them by adopting different names. Languages and dialects are numerous in the world. Taking it as the easiest. I shall speak in Hindustani. This language is good and all are acquainted with it. It will purify every body from within and without."[1]

The Bitak literature has also lingustic value and importance. It contains his biographies written in verse form by his learned disciples running into thousands of verses. There are 17 Bitaks prevalent in the Pranami Sect. All

1. Sanandh ch.2

are based on the Bitak written by Swami Laldas. Premdas Upreti `Pidit' has written a Nepali Bitak entitled `Shrikrishna Pranami Dharma Darpan' which is the biographical literature in Nepali language also. Premdas Upreti has also translated many Prannath's works in Nepali language.

According to linguistic point of view, the Bitak of Laldas is an embodiment of living interstate Khari Boli of seventeenth century. For the first time, any Hindu writer has used the words Hindavi, Hindviya and Hindustani as evident to Khari Boli in Hindi literature. This is the first biographical work written in Khari Boli.

From the linguistic point of view Swamiji's vision was comprehensive and all embracing. He himself called the language of `Qulzam Swaroop' as language of the Hindustan. His language, however, is neither the literary Hindi of today, nor is it Urdu. On the contrary, it resembles Khari Boli or Hindavi in its Medieval form. It is characterized by predominance of words derived from Khari Boli and freedom of using words derived from Sanskrit, Persian, Arabic and many other languages. Shri Prannathji has expounded and interpreted the Islamic religion in the pages of `Sanandh', `Khulasa', `Marfat' and `Qyamat Nama' etc. and has endeavoured to bring forth true spirit of Islam. Swamiji has used Persian and Arabic words, but he used them in their derivative and spoken (i.e. popular) forms. Nowhere he has attempted to use `pure' words in an artificial manner. Even while interpreting Islamic religion, he used too many Persian and Arabic words which makes it difficult for Hindi knowing readers to understand his languages.

Moreover, Swamiji has used symbolic and allegoric language too. He called upon people to become true Hindus (while addressing Hindus) and true Muslims or Momins (while addressing Muslims). He called his true followers only Momins, the true meaning of which is `Divine beings', `followers of true faith' or `Enlightened souls'. He called Tartamya Vani—Illam-e-Laduni. The true meaning of these words is "Knowledge of the Lord". There is every danger of misunderstanding these words if they are taken in their current usage (or connotation).

An attempt has been made to explain these words in the glossary appended to Shri Tartam Bani, towards the close of Shri Qulzam Swaroop published by Shri Prannath Mission; as to the symbolic use of these words. A non-Pranami finds it hard to digest. Notwithstanding this, looked at from the standpoint of the medieval period, Swamiji's use of these words is indicative of his eagerness for a religious and linguistic revolution.

Sindhis are indeed fortunate that their literature; particularly poetry, has been enriched by Saints who did not belong to their community. Swami Dadu Dayal (1544-1603 A.D.) has contributed 33 couplets and 7 kafis in Sindhi but Lord Prannath added about 600 chaupayees to its literature. The poetry of Mahamati Prannath provides a missing link between that of Shah Abdul Karim (1536-1622 A.D.) and Shah Abdul Latif (1690-1751 A.D.). His poetry

is closer to that of Shah Abdul Latif. From linguistic point of view, his pronunciations are also 'Lari' (belonging to the lower Sindh). He has used 'K' for 'Kh' dropping 'h' from 'Kh'.

From linguistic view point, at least ten research assistants are required to do work under a research project for about four years for deep and scientific study of Qulzam Swaroop. This study can be done from dictionary and constructive elements. The terminology used in this sacred book concerning relations, philosophy,.profession, sports, clothes, ornaments etc. can depict the social conditions of the relevant age. The names of gods, persons and sacred things show that the cultures from East and West—Dazla-Farat rivers to* Ganges and Yamuna were coordinated very nicely. The words of the dialects like Bundelkhandi and Brajbhasha are also used. It is a remarkable feature in Lord Prannath's works that usage of auxialry verbs are too much limited in the language while according to historical point, in the Hindi of contemporary age, these should be more. Lord Prannath also opens doors for study of stylistic research for his works.

Dr. Suniti Kumar Chatterji gave his valuable opinion on the linguistic aspect of the literature of Mahamati Prannath-"You are quite correct in appraising Prannath's contribution to the development of Hindustani or Hindi. It is so simple and easy to read. It is really Hindustani, the basis of both Hindi and Urdu and this is a great thing by itself. It uses Arabic and Persian words wherever they have become naturalised. Prannath through his use of this language was real unifier like Kabir and other All India Saints, I hope not only Hindi world but the whole of India should be apprised of the greatness of the contribution of Prannath."[1]

There are more than three hundred temples in India and eighteen in Nepal where Qulzam Swaroop is worshipped as Guru or the Lord.

---

1. Letter of Dr. Suniti Kumar Chatterji, dated 20-9-1976, yearly 'Jagani', 1979 page 99 New Delhi.



Shri Prannath Mission Publications

ENGLISH

Mahamati the Supreme wisdom;	*Dr. Budhi Prakash Vajpai*	Rs. 20/-
Secret Doctrine of Gita	*Dr. Budhi Prakash Vajpai*	Rs. 16/-
Mahamati Prannath: The saviour	*Dr. Sudershan Sharma*	Rs. 10/-
Hridaya Prakash	*Maharaja Hirde Shah*	Rs. 20/-
Daily Prayer	*Mohan Priyacharya*	Rs. 15/-
Kirantan: The Divine Symphony	*Trans.: Dr. Raj Kumar Arora*	$25; Rs. 250/-

MAHAMATI VANI IN HINDI

Kulzam Swaroop (Hindi)		Rs. 400/-
Sri Ras:	*Editors: Dr. Ranjit Saha* *Dr. Harendra P. Verma*	Not Available
Kirantan (2nd Edn:)	*Editor: Dr. Ranjit Saha*	Rs. 80/-
Beetak–Life of Mahamati Prannath	*Trans.: Sh. Maniklal Dubey*	Rs. 100/-
Mahamati Prannath: Sachitra Gatha	*Editor: Smt. Vimla Mehta*	Rs. 15/-
Tartam Vani Mukta (with Hindi meanings)	*Smt. Vimla Mehta*	Rs. 25/-
Vandana (Selected Bhajans and Puja)	*Smt. Vimla Mehta*	Rs. 10/-
Navrang–Gita Rahasya with meanings	*Smt. Vimla Mehta*	Rs. 10/-
Nitya Path (with meaning)	*Smt. Vimla Mehta*	Rs. 10/-
Kalash Hindustani (with meaning)	*Editors: Sh. Amrit Raj* *Smt. Vimla Mehta*	Rs. 40/-
Prakash Hindustani (with meaning)	*Editors: Dr. Kamla Sharma* *Sh. Amrit Raj*	Rs. 40/-
Sanandh (with meaning)	*Editors: Dr. Ranjit Saha* *Smt. Vimla Mehta*	Rs. 40/-
Khulasa (Hindi meaning)	*Editors: Dr. Ranjit Saha* *Smt. Vimla Mehta*	Rs. 40/-
Marfat/Qiamatnama II (Hindi meaning)	*Editors: Dr. Ranjit Saha* *Smt. Vimla Mehta*	Rs. 60/-
Virah Vani (with Hindi meaning)	*Editors: Dr. Ranjit Saha* *Smt. Vimla Mehta*	Rs. 50/-
Khilwat (with Hindi meaning)	*Editors: Dr. Ranjit Saha* *Smt. Vimla Mehta*	Rs. 60/-
Dharam Samanvaya Udgata	*Dr. Kamla Sharma*	Rs. 50/-
Mahamati Prannath Manisha	*Dr. Veena Bhagat*	Rs. 10/-
Mahamati Prerit Vangmaya	*Dr. Suchit Narayan Prasad*	Rs. 25/-
Jagni: Annual Research Journal (Yr. 1977 to 1993) each copy		Rs. 10/-
Jagni Sanchayan		Rs. 100/-

Postage Extra

Shri Prannath Mission,
72, Sidhartha Enclave,
Ring Road, New Delhi-110 014
Tel. : 6845230